

भूमिका ।

अग्निन् समये प्रचलितसंश्रुतादिकसमस्तवैद्यकग्रन्थेभ्योऽयं
महोत्कृष्टो वङ्गसेनाद्वयग्रन्थो गुप्तोऽलभ्यः सफलयोगः शीघ्रफलदः
समीचीनो भवति तथाऽन्यो नैति ज्ञात्वा तस्यावलोकनाय मह-
द्यत्नं मयाकृतम् । स चाऽऽवातरक्ताधिकारान्तोऽस्माकं गृह
आसीत् तदवगाहनेन सहस्रशो नवीनाः पदार्थाः सुयोगा वा-
ऽन्यतन्त्रेभ्योऽवशेषा दृष्टास्तदेवं प्रतिदिननिश्चयं चिन्तां जाता-
ऽस्यैष्टरूपग्रन्थस्य पूर्तिः कथं भवेदिति चिन्ततवता मया महो-
द्यमेन कस्माच्चिद्विषयवरात्कश्चिदधिकार आनीतः कस्माच्चिद्विष-
यवरात्कश्चिदधिकार आनीत एवमासमाप्तेः पूर्णं कृत्वा स्वमनो-
रयः सफलोक्तः । ततो वैद्यवराणां मनोरञ्जनाय स्वल्पज्ञान-
वैद्यानां मखिलज्ञानाय च बहुतन्त्राणां सम्प्रतिमायित्वं यथा
मति संशोधनं कृत्वा वैद्यकग्रन्थेषु भौत्कर इव प्रकाशितः स च
विद्वद्भिर्द्रव्यरूपणतां परित्यक्ता गृहीतव्यः । अग्निन् ग्रन्थे कुच-
चित्पदे मम दृष्टिदोषादऽक्षरनिर्माणकट्टदोषाद्वा यदऽवश्यं
भवेत्तद्वा मयि स्नेहार्द्र हृदयेन, कृपां कृत्वा परिशोधनीयमिति
विद्वद्भ्यः प्रार्थना ममास्ति ।

पण्डित नन्दकुमार गोस्वामी वैद्यः

गहर वेरी जिला, रोहतक ।

अस्मत्सूचना ।

वेरीति पदवाच्यं नगर्यां मे पितामहादयः सर्वे समस्तायु-
धेदपारगामिनः सकलवैद्यलक्षणसम्पन्ना वभुवुः मयापि समस्ता-
युर्वेदमहोपाध्यायिजपितुर्मुखादखिलाङ्गमयानि निदानादि-
वाग्भटान्तानि तन्त्राणि चान्यान्यपि रसादीनां तन्त्राणि संकेत
तन्त्राणि चाधीतानि । इदानीं सर्वतन्त्रास्तद्व्यापयामि । एता-
वता मयाऽयं वेङ्गसेनः प्रकाशितः भवति चात्र श्लोकः—

श्रीगोस्वामीकुलोद्भवो मनः पिता संपारगामी ह्यभूत्
चायुर्वेदमहोदधे बुधफले चन्दाभिधो वैद्यराट् ।

तत्पुत्रेण मया ह्ययं वरतरो ग्रन्थः प्रकाशकृतः

विद्वन्नन्दकुमारनामभिषजा वेरीति पुर्वासिना ॥ १ ॥

प्रसिद्धत नन्दकुमार गोस्वामी वैद्यः

शङ्कर वेरी जि० रोहतक ।

सूचीपत्रम् ।



| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------|---------------|
| मङ्गलाचरणम् | १ |
| निदानपञ्चकम् | २ |
| वैद्यकमार्गिणि | ३ |
| यद्यर्तुजलप्रकारम् | ५ |
| प्रकृतिलक्षणम् | ७ |
| देशप्रकृतिः | ८ |
| चिकित्सापादाः | ९ |
| वैद्यलक्षणम् | १० |
| रोगिलक्षणम् | ११ |
| श्रोत्रधिलक्षणम् | १२ |
| परिचारकलक्षणम् | १३ |
| मानम् | १४ |
| ईदृशस्यक्तोरोगी | १५ |
| रोगगणना | १६ |

अथ ज्वराधिकारः ।

| | |
|--------------------|----|
| सामान्यज्वरोपक्रमः | १७ |
| सामान्यज्वरलक्षणम् | १८ |
| तरुणज्वरविधिः | १९ |
| पथ्यविधिः | २० |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|------------------------------------|-----|-----|----|
| लङ्घनविधिः | ... | ... | १६ |
| पङ्क्त्युपायम् | ... | ... | १७ |
| कषायपेयामण्डयूपयधाम्वादीनां | ... | ... | १८ |
| प्रकाराणि | ... | ... | १९ |
| आमज्वरादिलक्षणानि | ... | ... | २० |
| वातज्वरलक्षणम् | ... | ... | २१ |
| द्रव्ययोजना | ... | ... | २२ |
| औषधकालम् | ... | ... | २३ |
| वातज्वरोपक्रमम् | ... | ... | २४ |
| पित्तज्वरलक्षणचिकित्साप्रकारः | ... | ... | २५ |
| कफज्वरलक्षणचिकित्साप्रकारः | ... | ... | २६ |
| चातुर्भद्रावलेहिका | ... | ... | २७ |
| वातपित्तज्वरलक्षणचिकित्साप्रकारः | ... | ... | २८ |
| मधुकादिकायः | ... | ... | २९ |
| पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्साप्रकारः | ... | ... | ३० |
| अमृताष्टकम् | ... | ... | ३१ |
| क्षण्टकादिकायः | ... | ... | ३२ |
| वातश्लेष्मज्वरनिदानचिकित्साप्रकारः | ... | ... | ३३ |
| आरोग्यपञ्चकम् | ... | ... | ३४ |
| पञ्चकोलम् | ... | ... | ३५ |
| चातुर्भद्रकम् | ... | ... | ३६ |
| दशमूलम् | ... | ... | ३७ |
| सन्निपातज्वरनिदानम् | ... | ... | ३८ |
| सन्निपातस्य भेदाः | ... | ... | ३९ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | |
|------------------------|-----|----|
| सन्निपातचिकित्सा | ... | ३८ |
| पञ्चमुष्टिकयूप | ... | ३८ |
| सप्तमुष्टिकयूपः | ... | ३९ |
| कवलग्रह. | ... | ३९ |
| मधूकसारादिनस्यम् | ... | ४० |
| अष्टाङ्गावलेहिका | ... | ४० |
| मरीचाद्युद्भूलनम् | ... | ४१ |
| भूनिम्बाद्युद्भूलनम् | ... | ४२ |
| चातुर्भद्रकपञ्चमूलम् | ... | ४२ |
| अष्टादशाङ्ग काय | ... | ४३ |
| हृहत्यादिकायः | ... | ४३ |
| शब्दादि. | ... | ४३ |
| हृहच्छब्दादिः | ... | ४३ |
| कटफलादि | ... | ४४ |
| द्वितीयोऽष्टादशाङ्ग. | ... | ४४ |
| गुडूचादि | ... | ४५ |
| तृतीयोऽष्टादशाङ्गः | ... | ४५ |
| सन्निपातस्य विविधयोगा. | ... | ४६ |
| आगन्तुकज्वरलक्षणम् | ... | ४७ |
| आगन्तुकज्वरचिकित्सा | ... | ४७ |
| विषमज्वरलक्षणम् | ... | ४८ |
| विषमज्वरचिकित्सा | ... | ४८ |
| माहिष्वरघूप. | ... | ४९ |
| चन्दनादिष्टतम् | ... | ४९ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | |
|------------------------------|-----|----|
| कल्याणघृतम् | ... | ५७ |
| महाकल्याणघृतम् | ... | " |
| पट्पलं घृतम् | ... | " |
| अमृतपट्पलं घृतम् | ... | ५८ |
| पट्कट्टरतैलम् | ... | " |
| महत् पट्कट्टरतैलम् | ... | " |
| महापट्कट्टरतैलम् | ... | ५९ |
| बाचादितैलम् | ... | " |
| बातबलासकज्वरलक्षणम् | ... | " |
| प्रलेपकज्वरलक्षणम् | ... | " |
| तयोश्चिकित्सा | ... | ६० |
| दाहशीतादिज्वरनिदानम् | ... | " |
| यक्षकतैलम् | ... | ६१ |
| रसादिधातुगतज्वराणां लक्षणादि | ... | ६२ |
| तेषां चिकित्सा | ... | ६३ |
| प्राकृतवैकृतज्वरभेदः | ... | " |
| अन्तर्वेगवहिवेगज्वरलक्षणम् | ... | ६४ |
| जीर्णज्वरलक्षणम् | ... | " |
| जीर्णज्वरचिकित्सा | ... | " |
| द्राक्षादिकायः | ... | ६५ |
| कौकुटं घृतम् | ... | ६७ |
| वासादिघृतम् | ... | ६८ |
| पिप्पल्यादिघृतम् | ... | ६९ |
| चीरहृद्यादितैलम् | ... | " |

विषयाः ।

१

६८

| | | |
|-------------------------|-------|----|
| गुडूच्याद्ये घृतम् | | ७० |
| चीरपट्टपलं घृतम् | | ७० |
| दशमूलीचीरपट्टपलं घृतम् | | ७१ |
| बलाद्यं घृतम् | | ७१ |
| वृहदासाद्य घृतम् | | ७१ |
| मञ्जिष्ठाद्यं घृतम् | | ७१ |
| कुलित्याद्यं घृतम् | | ७१ |
| पट्टचरणं तैलम् | | ७१ |
| पट्टतंक्रं तैलम् | | ७२ |
| अङ्गारकं तैलम् | | ७१ |
| लाक्षाद्यं तैलम् | | ७१ |
| महालाक्षादितैलम् | | ७३ |
| स्वर्जिकाद्य तैलम् | | ७१ |
| घलाद्य तैलम् | | ७१ |
| पटोलादिस्त्रेहः | | ७१ |
| पटोलाद्यनुवामनम् | | ७१ |
| चन्दनाद्यनुवामनम् | | ७४ |
| त्रिधास्त्रेहपाकलक्षणम् | | ७१ |
| तैलवाकविधिः | | ७५ |
| आरग्वधादिनिरूहवस्तिः | | ७१ |
| निरूहमात्राकल्पनाविधिः | | ७१ |
| ज्योतिष्यक्रमम् | | ७६ |
| धनिष्ठादिनक्षत्रशान्तिः | | ७७ |
| ज्वरमुक्तनियमानि | | ७८ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|--------------------|-----|-----|-----|
| ज्वरोपद्रवाः | ... | ... | ७८ |
| ज्वरारिष्टलक्षणानि | ... | ... | ... |
| ज्वरमुक्तालक्षणम् | ... | ... | ८० |

इति ज्वरोधिकारः ।

अथातिसाराधिकारः ।

| | | | |
|------------------------|-----|-----|----|
| सामान्यातिसारनिदानम् | ... | ... | ८० |
| सामान्यातिसारचिकित्सा | ... | ... | ८१ |
| अतिसारे खड्युष्णः | ... | ... | " |
| अतिसारे यवाग्नूः | ... | ... | " |
| आमातिसारलक्षणम् | ... | ... | ८२ |
| आमपाचनविधिः | ... | ... | " |
| आमातिसारे चिकित्सा | ... | ... | ८३ |
| धान्यपञ्चकम् | ... | ... | ८४ |
| चतुःसमागुटी | ... | ... | " |
| पित्तातुवन्ध्यामपरचनम् | ... | ... | " |
| काञ्चिकाहरीतकी | ... | ... | " |
| कलिङ्गायं चूर्णम् | ... | ... | " |
| चाङ्गेरीष्टतम् | ... | ... | ८५ |
| पक्वातिमारचिकित्सा | ... | ... | " |
| समझादिचूर्णम् | ... | ... | " |
| वातातिसारलक्षणम् | ... | ... | ८६ |
| वातातिसारचिकित्सा | ... | ... | ८७ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|--------------------------|-------------|
| पित्तातिसारनक्षणम् | ८८ |
| पित्तातिसारचिकित्सा | ९१ |
| धातुकं घृतम् | ९१ |
| रक्तौतिसारनक्षणम् | ८९ |
| रक्तौतिसारचिकित्सा | ९१ |
| श्लीवेरादिः कायः | ९१ |
| गिरिमल्लिकाद्यं घृतम् | ९० |
| पिच्छावस्तिः | ९२ |
| चाङ्गरीघृतम् | ९१ |
| कफातिसारनक्षणम् | ९२ |
| कफातिसारचिकित्सा | ९१ |
| विदोषातिसारनक्षणम् | ९१ |
| विदोषातिसारचिकित्सा | ९१ |
| बृहच्छानिपण्यादिः | ९१ |
| पञ्चमूल्यादिः | ९५ |
| धतिसारे चत्वारोयूयाः | ९६ |
| अथाऽन्तीसारे पुटपाकविधिः | ९६ |
| कुटजपुटपाकः | ९७ |
| खोनीकपुटपाकः | ९१ |
| न्यग्रोधादिः पुटपाकः | ९१ |
| शुण्ठीपुटपाकः | ९१ |
| कुटजावलेहः | ९१ |
| पुनः कुटजावलेहः | ७८ |
| पुनः कुटजावलेहः | ९९ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|----------------------------|-----|-----|-----|
| कुटजाष्टकावलेहः | ... | ... | ८८ |
| पुनः कुटजावलेहः | ... | ... | १०० |
| अङ्घ्रीटवटकाः | ... | ... | " |
| कलकाद्यागुटिका | ... | ... | " |
| अङ्घ्रीटगुटिकाः | ... | ... | " |
| अपराजितावलेहः | ... | ... | १०१ |
| पङ्कजघृतम् | ... | ... | " |
| कुटजाघृतम् | ... | ... | " |
| सप्ताङ्गघृतम् | ... | ... | " |
| महाबिल्वतैलम् | ... | ... | १०२ |
| वातपित्तातीसारलक्षणम् | ... | ... | " |
| वातपित्तातीसारचिकित्सा | ... | ... | " |
| श्लेष्मपित्तातीसारलक्षणम् | ... | ... | " |
| श्लेष्मपित्तातीसारचिकित्सा | ... | ... | १०३ |
| वातकफातिसारलक्षणम् | ... | ... | " |
| कफातीसारचिकित्सा | ... | ... | १०४ |
| कृद्यतीसारचिकित्सा | ... | ... | " |
| शोयातीसारचिकित्सा | ... | ... | १०५ |
| भयशोकज्वरतीसारौलं० | ... | ... | " |
| तयोद्यिकित्सा | ... | ... | " |
| केल्यरणावलेहः | ... | ... | १०६ |
| शामातिसारलक्षणम् | ... | ... | " |
| प्रवाहिकालक्षणम् | ... | ... | १०७ |
| तम्यभिदाः | ... | ... | " |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|------------------------|-----|-----|-----|
| तासां चिकित्सा | ... | ... | १०७ |
| वृषणादिद्वयम् | ... | ... | १०८ |
| पित्तावस्तिः | ... | ... | , |
| पुरीषक्षये चिकित्सा | ... | ... | , " |
| अतीसारस्यासाध्यलक्षणम् | ... | ... | १०९ |
| ज्वरातिसारलक्षणम् | ... | ... | ११० |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| नागरादिकायः | ... | ... | १११ |
| क्रीवरादिकायः | ... | ... | " |
| गुडूचादिकायः | ... | ... | " |
| व्योषाद्यं चूर्णम् | ... | ... | ११२ |
| कटुज्जाद्यो वटुकः | ... | ... | ११३ |
| पाठाद्यं द्रवम् | ... | ... | " |

इत्यतीसाराधिकारः ।

अथ ग्रहण्यधिकारः ।

| | | | |
|-------------------------|-----|-----|-----|
| सामान्यग्रहणीनिदानम् | ... | ... | ११३ |
| वातग्रहणीनिदानम् | ... | ... | ११४ |
| वातग्रहणीचिकित्सा | ... | ... | ११५ |
| पित्तादं चूर्णम् | ... | ... | " |
| हिम्वटुकम् | ... | ... | ११६ |
| त्रिफलादिगुटिका | ... | ... | " |
| द्विपञ्चमूलाद्यं द्रवम् | ... | ... | ११७ |
| पञ्चमूलाद्यं द्रवम् | ... | ... | ११८ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------|---------------|
| महदग्निघृतम् | ११८ |
| शुण्ठीघृतम् | ११८ |
| हृहचाङ्गेरीघृतम् | " |
| पित्तग्रहणीनिदानम् | " |
| पित्तग्रहणीचिकित्सा | " |
| रसाञ्जनाद्यं चूर्णम् | १२० |
| पाठादिक्रयचूर्णं वा | " |
| नागराद्यं चूर्णम् | " |
| तण्डुलोदकविधिः | " |
| भूनिम्बाद्यं चूर्णम् | " |
| पाठाद्यं चूर्णम् | " |
| चन्दनाद्यं चूर्णम् | १२१ |
| किराताद्यं चूर्णम् | " |
| मसूराद्यं घृतम् | " |
| पुनर्मसूराद्यं घृतम् | " |
| कलिङ्गघृतम् | १२२ |
| कफग्रहणीनिदानम् | " |
| तस्याधिक्रिया | " |
| यवागूविधिः | " |
| पिप्पल्याद्यं चूर्णम् | १२३ |
| भस्मातकचारः | " |
| दुरालभादिचारः | " |
| भूनिम्बाद्यः चारः | १२४ |
| मर्हीचारः | " |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------|---------------|
| वार्त्ताकगुटिका | १२४ |
| मध्वारिष्टः | " |
| मधुमुष्पांसवः | १२५ |
| दशमूलासवः | " |
| पिण्डासवः | १२६ |
| त्रिदोषजग्रहणीनिदानम् | " |
| तस्याधिकित्वा | " |
| शतावरीष्टतम् | " |
| आरुष्करं घृतम् | १२७ |
| संग्रहणीनिदानम् | " |
| तस्याधिकित्वा | " |
| गोतकस्य गुणाः | १२८ |
| चाङ्गेरीष्टतम् | १२७ |
| हृहचाङ्गेरीष्टतम् | " |
| सिद्धयोगः | १२९ |
| अष्टपलकं घृतम् | १३२ |
| विल्वाद्यं घृतम् | " |
| हृहन्मसूराद्यं घृतम् | " |
| कपित्थाष्टकम् | " |
| मधुकमुष्पांसवः | १३३ |
| कल्याणगुडः | " |
| महाकल्याणगुडः | १३४ |
| कल्याणको गुडः | " |
| पुनः कल्याणगुडः | १३५ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | |
|---------------------|-----|
| पुनः कल्याणगुडः | १३६ |
| कूष्माण्डकल्याणगुडः | |
| बहुशालिगुडः | १३७ |
| सारकल्पः | १३८ |
| अपरानितावलेहः | " |

इति ग्रहणधिकारः ॥

अथार्शोऽधिकारः ।

| | |
|----------------------------------|-----|
| वातार्शोनिदानम् | १४० |
| वातार्शश्चिकित्सा | १४१ |
| पित्तार्शोनिदानम् | " |
| पित्तार्शश्चिकित्सा | " |
| कफार्शोनिदानम् | १४२ |
| कफार्शश्चिकित्सा | " |
| त्रिदोषजार्शोनिदानम् | " |
| त्रिदोषजार्शश्चिकित्सा | " |
| कृष्णसर्पादिवसायाऽभ्यञ्जनधूपनञ्च | १४३ |
| नृकेयादिधूपनम् | " |
| निशादिलेपः | १४४ |
| सिद्धियोगः | " |
| द्रूपशाद्यं चूर्णम् | " |
| अग्नेः पातनम् | १४५ |
| गुडाद्यं चूर्णम् | " |
| हरिद्रादिप्रलेपः | १४६ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------|---------------|
| गुदप्रस्वेदः | १४६ |
| वार्ताकपुटपाकः | १४७ |
| शोणितस्त्रावविधिः | " |
| उदकपट्पलं घृतम् | १४८ |
| पलाशचारघृतम् | " |
| चव्याद्यं घृतम् | " |
| क्रीवेराद्यं घृतम् | " |
| अग्निघृतम् | " |
| वृहदग्निघृतम् | १४९ |
| पिप्पल्याद्यं घृतम् | १५० |
| कासीसाद्यं घृतम् | " |
| वृहत्कासीसाद्यं तैलम् | " |
| दन्त्याद्यं तैलम् | " |
| लवणोत्तमाद्यं चूर्णम् | १५१ |
| कटुत्रयाद्यं चूर्णम् | " |
| कल्याणलवणम् | " |
| समशर्कराचूर्णम् | १५२ |
| व्योम्नाद्यं चूर्णम् | " |
| फलवर्तितैलम् | " |
| विजयचूर्णम् | १५३ |
| दन्त्यरिष्टः | " |
| चतुस्त्रयोविंशतः | " |
| स्वल्पसुरणमोदकः | " |
| सुरणपिण्डी | १५४ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|------------------------|-----|-----|-----|
| बृहत्कृष्णमोदकः | ... | ... | १५४ |
| अगस्त्यमोदकः | . | ... | .. |
| प्राणदागुटिका | ... | ... | १५५ |
| कांकायनोमोदकः | ... | ... | १५६ |
| भस्मातकागुडः | ... | ... | .. |
| द्वितीयभस्मातकावलेहः | ... | ... | १५७ |
| पटोलाद्योऽवलेहः | ... | ... | .. |
| भस्मातकावलेहः | ... | . | १५८ |
| योगराजगुग्गुलुः | ... | ... | १५९ |
| योवाहुशालोगुडः | ... | ... | १६० |
| लोहभेदाः | ... | ... | १६१ |
| तोष्णशोधनम् | ... | ... | १६२ |
| लोहवर्णनम् | ... | ... | .. |
| अग्निमुखलोहः | ... | ... | १६४ |
| लोहाटकम् | ... | ... | .. |
| चन्द्रायं लोहम् | ... | ... | १६५ |
| शङ्करप्रणीतलोहम् | ... | ... | .. |
| रक्ताशोनिदानम् | ... | ... | १६८ |
| रक्ताशोवाताद्यनुबन्धम् | ... | ... | १७० |
| रक्ताशोधिकिक्षा | ... | ... | .. |
| कुटजाद्यं घृतम् | ... | ... | १७१ |
| अवाक्पुष्पोष्ठतम् | ... | .. | .. |
| महाचाङ्गेरीघृतम् | .. | ... | १७२ |
| कुटजरसक्रिया | ... | ... | १७३ |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------|-----|-----|---------------|
| कुटजलेहः | ... | ... | १७३ |
| चित्रकादिभस्मातकावलेहः | ... | ... | १७४ |
| सूत्रबन्धनम् | ... | ... | १७५ |
| चारसूत्रम् | ... | ... | " |
| कालपुष्पादिचारः | ... | ... | " |
| चारः | ... | ... | १७६ |
| अभयारिष्टः | ... | ... | " |
| यन्त्रप्रमाणाद्युपदेशः | ... | ... | १७७ |
| गुदप्रमाणम् | ... | ... | " |
| अर्शः छेदनप्रकारः | ... | ... | " |
| कपित्थाद्यं घृतम् | ... | ... | १७८ |
| प्रतिसारणमात्रा | ... | ... | १८० |

इत्यर्शाधिकारः ।

अयजीर्णाधिकारः ।

| | | | |
|------------------------|-----|-----|-----|
| अजीर्णनिदानम् | ... | ... | १८२ |
| अजीर्णचिकित्सा | ... | ... | " |
| अग्निमान्द्यम् | ... | ... | १८३ |
| अजीर्णभेदाः | ... | ... | १८४ |
| विदग्धलक्षणम् | ... | ... | १८५ |
| विष्टब्धलक्षणम् | ... | ... | " |
| अजीर्णोपद्रवाः | ... | ... | " |
| अजीर्णभेदानां चिकित्सा | ... | ... | " |
| हिंम्वटकम् | ... | ... | १८० |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------|-----|-----|---------------|
| अग्निमुखचूर्णम् | ... | ... | १८७ |
| द्वितीयमग्निमुखचूर्णम् | ... | ... | " |
| भास्करलवणम् | ... | ... | १८८ |
| वडवानलचूर्णम् | ... | ... | " |
| द्विगुद्वादशकं चूर्णम् | ... | ... | " |
| द्वहृदग्निमुखं चूर्णम् | ... | ... | १८९ |
| वडवानलं चूर्णम् | ... | ... | १९० |
| ज्वालामुखं चूर्णम् | ... | ... | " |
| द्वपद्वादशकं चूर्णम् | ... | ... | " |
| समशर्करं चूर्णम् | ... | ... | " |
| भरिचाद्यं चूर्णम् | ... | ... | " |
| नागराद्यं चूर्णम् | ... | ... | " |
| मस्तुपट्पलं घृतम् | ... | ... | १९१ |
| महापट्पलं घृतम् | ... | ... | " |
| भरिचाद्यं घृतम् | ... | ... | " |
| धान्यजीरकघृतम् | ... | ... | १९२ |
| धान्यघृतम् | ... | ... | " |
| जीरकघृतम् | ... | ... | " |
| द्वितीयं धान्यकघृतम् | ... | ... | " |
| अग्निघृतम् | ... | ... | १९३ |
| चुक्रसन्धानविधानम् | ... | ... | " |
| द्वहृचुक्रसन्धानविधानम् | ... | ... | " |
| चित्रकगुडः | ... | ... | १९४ |
| चारुगुडः | ... | ... | " |

विषयाः ।

'पृष्ठाङ्का' ।

| | | | |
|------------------------|-----|-----|-----|
| द्वितीयचारगुडः | ... | ... | १८५ |
| विपूच्यादीनां निदानम् | ... | ... | १८६ |
| विपूच्यादीनां चिकित्सा | ... | ... | १८७ |
| अर्करसादितैलम् | ... | ... | १८८ |
| अञ्जनम् | ... | ... | १८९ |
| द्वितीयाञ्जनम् | ... | ... | १९० |
| भस्मकनिदानम् | ... | ... | १९१ |
| भस्मकचिकित्सा | ... | ... | १९२ |

इत्यजीर्णरोगाधिकारः ।

अथ कृम्यधिकारः ।

| | | | |
|-------------------------|-----|-----|-----|
| कृमिनिदानम् | ... | ... | २०१ |
| कृमिचिकित्सा | ... | ... | २०२ |
| त्रिफलाद्यं घृतम् | ... | ... | २०३ |
| विडङ्गाद्यं घृतम् | ... | ... | २०४ |
| पिप्पल्याद्यं चूर्णम् | ... | ... | २०५ |
| सावित्रीवटकः | ... | ... | २०६ |
| मशकहरोधूपः | ... | ... | २०७ |
| गृहे भुजङ्गादिनाशकोधूपः | ... | ... | २०८ |

इति कृम्यधिकारः ।

अथ पाण्डुरोगाधिकारः ।

| | | | |
|-------------------|-----|-----|-----|
| पाण्डुरोगनिदानम् | ... | ... | २०९ |
| पाण्डुरोगचिकित्सा | ... | ... | २१० |
| अथ आदिमोदकम् | ... | ... | २११ |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------|-----|-----|---------------|
| मूर्धाद्यं छतम् | ... | ... | २०८ |
| कटुकाद्यं छतम् | ... | ... | " |
| व्योपाद्यं छतम् | ... | ... | २०९ |
| देवदार्याद्यं छतम् | ... | ... | " |
| रजनीचिफलाद्यं छतम् | ... | ... | " |
| दन्तीछतम् | ... | ... | " |
| योगराजः | ... | ... | २१० |
| शिवगुटिका | ... | ... | " |
| वृषपादिगुटिका | ... | ... | २११ |
| कामलाकुम्भकामलयोर्निदानम् | ... | ... | " |
| तयोचिकित्सा | ... | ... | २१२ |
| अष्टादशाङ्गगुटिका | ... | ... | " |
| हरिद्राद्यं छतम् | ... | ... | २१३ |
| गुडूचीछतम् | ... | ... | " |
| हलीमकनिदानम् | ... | ... | २१४ |
| हलीमकचिकित्सा | ... | ... | " |
| सिताद्यो लेह | ... | ... | " |
| नवायसं चूर्णम् | ... | ... | २१५ |
| मण्डूरवटकः | ... | ... | " |
| वृहन्नण्डूरवटकः | ... | ... | " |
| निम्बादिगुटिका | ... | ... | २१६ |
| मण्डूरगुटिका | ... | ... | " |
| विभीतकाद्या गुटिका | ... | ... | " |
| मण्डूरवज्रवटकः | ... | ... | २१७ |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------|-----|-----|---------------|
| विडङ्गाद्य लोहम् | ... | ... | २१७ |
| आमलक्यवलेहः | ... | ... | " |
| खदिरलेहः | ... | ... | २१८ |
| कल्याणगुडः | ... | ... | " |

इति पांडुरोगाधिकारः ।

अथ रक्तपित्ताधिकारः ।

| | | | |
|-------------------------|-----|-----|-----|
| रक्तपित्तनिदानम् | ... | ... | २१८ |
| रक्तपित्तचिकित्सा | ... | ... | २२० |
| पत्रकादिचूर्णम् | ... | ... | २२२ |
| श्यामाघृतम् | ... | ... | २२६ |
| दूर्वाद्य घृतम् | ... | ... | २२६ |
| दणपञ्चमूलीक्षीरम् | ... | ... | " |
| चन्दनाद्यं चूर्णम् | ... | ... | २२७ |
| द्वितीयदूर्वाद्यं घृतम् | ... | ... | २२८ |
| शङ्खाद्य घृतम् | ... | ... | " |
| गतावरीघृतम् | ... | ... | " |
| वृहच्छतावरीघृतम् | ... | ... | " |
| वासाञ्च घृतम् | ... | ... | २२९ |
| पुनर्गमाघृतम् | ... | ... | " |
| महावासाद्यं घृतम् | ... | ... | २३० |
| कामदेवघृतम् | ... | ... | " |
| अनन्ताद्यं घृतम् | ... | ... | २३१ |
| दूर्वाद्यं तैलम् | ... | ... | " |

| विषयः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------|-----|-----|---------------|
| मधुकाद्या गुटिका | ... | ... | २३१ |
| खण्डकूष्माण्डकम् | ... | ... | २३२ |
| पुनःखण्डकूष्माण्डः | ... | ... | " |
| वासककूष्माण्डः | ... | ... | २३३ |
| सूरणपाकः | ... | ... | " |
| वासाखण्डः | ... | ... | २३४ |
| शर्करासमं लेहम् | ... | ... | " |
| अमृताख्यं लोहरसायणम् | ... | ... | २३५ |
| खण्डखाद्योलेहः | ... | ... | २३६ |

अति रक्तपित्ताधिकारः ।

अथ राजयक्ष्माधिकारः ।

| | | | |
|-------------------------|-----|-----|-----|
| राजयक्ष्मनिदानम् | ... | ... | २३८ |
| राजयक्ष्मचिकित्सा | ... | ... | २४० |
| पङ्कजयूपः | ... | ... | २४१ |
| जीवन्त्याद्युद्वर्तनम् | ... | ... | २४३ |
| सितोपलादिलेहः | ... | ... | " |
| तालीसादिचूर्णगुटिका च | ... | ... | २४४ |
| महातालीसादिचूर्णम् | ... | ... | " |
| पुनस्तालीसाद्यं चूर्णम् | ... | ... | २४५ |
| कर्पूराद्यं चूर्णम् | ... | ... | " |
| जातिफलादिचूर्णम् | ... | ... | " |
| शृङ्गाद्यं चूर्णम् | ... | ... | २४६ |
| यवान्द्राद्यं चूर्णम् | ... | ... | " |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------|-----|-----|---------------|
| सूक्ष्मेलायं चूर्णम् | ... | ... | २४६ |
| अमृतायं घृतम् | ... | ... | " |
| वासायं घृतम् | ... | ... | २४७ |
| बलायं घृतम् | ... | ... | " |
| खर्जूरायं घृतम् | ... | ... | " |
| एलामन्यघृतम् | ... | ... | " |
| दशमूलोन्मृतं घृतम् | ... | ... | २४८ |
| पुडङ्गघृतम् | ... | ... | " |
| जीवन्यायं घृतम् | ... | ... | " |
| पिप्पलीघृतम् | ... | ... | " |
| पारागरघृतम् | ... | ... | " |
| खदंद्रायं घृतम् | ... | ... | २४९ |
| छागलायं घृतम् | ... | ... | " |
| बलागर्भं घृतम् | ... | ... | १५० |
| चन्दनायं तैलम् | ... | ... | " |
| शतपाकतैलम् | ... | ... | " |
| वासावलेहः | ... | ... | " |
| सर्पिगुहः | ... | ... | २५१ |
| अथवनप्राशावलेहः | ... | ... | " |
| उच्चटाद्योमोदकः | ... | ... | २५२ |

इति राजयज्माधिकारः ।

अथ चतचयाधिकारः ।

| | | | |
|--------------|-----|-----|-----|
| चतचयनिदान | ... | ... | २५४ |
| चतचयचिकित्सा | ... | ... | २५५ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | |
|-----------------------|-----|-----|
| एलाद्यागुटिका | ... | ... |
| बलाद्यं घृतम् | ... | ... |
| श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् | ... | ... |
| ट्राचाद्यं घृतम् | ... | ... |
| अमृतप्राशः | ... | ... |
| सर्पिर्गुडः | ... | ... |
| सर्पिर्मोदकः | ... | ... |

इति चैतन्मयाधिकारः ।

अथ कासाधिकारः

| | | |
|---------------------|-----|-----|
| वातकासनिदानम् | ... | ... |
| कामचिकित्सा | ... | ... |
| दशमूत्राद्यं घृतम् | ... | ... |
| भाङ्ग्यादिघृतम् | ... | ... |
| रास्नाद्यं घृतम् | ... | ... |
| पित्तकासनिदानम् | ... | ... |
| पित्तकासचिकित्सा | ... | ... |
| षट्प्रस्थघृतम् | ... | ... |
| क्षीरघृतम् | ... | ... |
| पुनः क्षीरघृतम् | ... | ... |
| कफकासनिदानम् | ... | ... |
| कफकासचिकित्सा | ... | ... |
| नवाङ्गयूषः | ... | ... |
| हृहृत्कण्टकारीघृतम् | ... | ... |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| विभीतकावलेहः | ... | ... | २७३ |
| जीवन्यायं चूर्णम् | ... | ... | " |
| पद्मकाय चूर्णम् | ... | ... | " |
| सिंहामृतं घृतम् | ... | ... | २७४ |
| कण्टकारीघृतम् | ... | ... | " |
| पुनः कण्टकारीघृतम् | ... | ... | " |
| पुनः कण्टकारोघृतम् | ... | ... | " |
| वृहदासकायं घृतम् | | " | १७५ |
| कण्टकारीलेहः | | | " |
| व्याघ्रीहरीतकी | | | २७६ |
| अगस्त्यहरीतकी | | | " |
| वृहदगस्त्यहरीतकी | | | २७७ |
| वशिष्टहरीतकी | " | | २७८ |
| कुलित्यगुडः | " | | २७९ |
| द्वितीयकुलित्यगुडः | ... | | " |
| कासश्लेष्मघ्नचूर्णम् | " | | २८० |

इति कासाधिकारः ।

अथ हिक्काधिकारः ।

| | | | |
|-----------------------|-----|---|-----|
| हिक्कानिदानम् | ; | | २८० |
| हिक्काचिकित्सा | | | २८२ |
| सप्तिकीटाद्यं चूर्णम् | ... | " | " |
| नारीचीराद्यं घृतम् | " | | २८३ |
| दशमूलाद्यं घृतम् | " | | " |

इति हिक्काधिकारः

विषयाः ।

| | |
|------------------------|-----|
| श्वासनिदानम् . | २८४ |
| श्वासचिकित्सा | २८६ |
| शृङ्गादिचूर्णम् | २८७ |
| शब्दादिचूर्णम् | २८८ |
| हिस्त्राद्यं घृतम् | ” |
| सोवर्चल घृतम् | ” |
| कुलित्याद्य घृतम् | ” |
| तिक्ताद्य घृतम् | ” |
| पुनः कुलित्याद्य घृतम् | ” |
| सुवह्नाद्य घृतम् | २८० |
| भृङ्गराजतैलम् | ” |
| चारपिप्पली | ” |
| भाङ्गीगुड | ” |
| कुलित्यगुड | २८१ |

इति श्वासाधिकारः ।

अथ स्वरभेदाधिकारः ।

| | |
|------------------|-----|
| स्वरभेदनिदानम् | १८२ |
| स्वरभेदचिकित्सा | ” |
| कासमर्दादिघृतम् | २८३ |
| शृङ्गाद्यं घृतम् | ” |
| निदग्धिकादिलेहः | २८४ |
| शब्दादिचूर्णम् | ” |
| कण्टकारीघृतम् | २८५ |

इति स्वरभेदाधिकारः ।

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

अयारोचकाधिकारः ।

| | | |
|------------------------|-----|-----|
| अरोचकनिदानम् | ... | २८५ |
| अरोचकचिकित्सा | ... | २८६ |
| कलहंसकाञ्चिकम् | ... | २८७ |
| दाडिमाद्यं चूर्णम् | ... | २८८ |
| खाण्डवचूर्णम् | ... | " |
| महाखाण्डवचूर्णम् | ... | " |
| यवानीखाण्डवचूर्णम् | ... | " |
| लवङ्गाद्यं चूर्णम् | ... | " |
| सूक्ष्मैलाद्यं चूर्णम् | ... | ३०० |

इत्यरोचकाधिकारः ।

अयं हृद्यधिकारः ।

| | | |
|-------------------------------|-----|-----|
| सामान्यहृदयः संप्राप्त्यादीनि | ... | ३०० |
| वातहृदि रोगनिदानम् | ... | " |
| वातहृदि रोगचिकित्सा | ... | ३०१ |
| पित्तहृदि निदानम् | ... | ३०२ |
| पित्तहृदि चिकित्सा | ... | " |
| कफहृदि निदानम् | ... | ३०३ |
| कफहृदि चिकित्सा | ... | " |
| त्रिदोषहृदि निदानम् | ... | ३०४ |
| त्रिदोषहृदि चिकित्सा | ... | " |
| एलादिचूर्णम् | ... | ३०५ |
| पद्मकाद्यं घृतम् | ... | ३०६ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | |
|---|-----|-----|
| योभक्षजादीनांमामन्तुकद्वर्दीनां निदानम् | ... | ३०७ |
| योभक्षजादिद्वर्दीनां चिकित्सा | ... | ३०८ |
| हृदिदृष्ट्याचिकित्सा | ... | ३०९ |
| इति हृद्यधिकारः । | | |

अथ दृष्ट्याधिकारः ।

| | | |
|------------------------------|-----|-----|
| दृष्ट्यानिदानम् | ... | ३०८ |
| वातदृष्ट्याचिकित्सा | ... | ३०९ |
| पित्तदृष्ट्याचिकित्सा | ... | ३१० |
| कफदृष्ट्याचिकित्सा | ... | ३११ |
| सामान्यदृष्ट्याचिकित्साविधि | ... | ३१२ |
| क्षतजादिदृष्ट्यानां चिकित्सा | ... | ३१३ |
| इति दृष्ट्याधिकारः । | | |

अथ मूर्च्छाधिकारः ।

| | | |
|----------------------|-----|-----|
| मूर्च्छानिदानम् | ... | ३१४ |
| मूर्च्छाचिकित्सा | ... | ३१५ |
| भ्रमनाशिनीगुटिका | ... | ३१६ |
| इति मूर्च्छाधिकारः । | | |

अथ मदात्ययाधिकारः ।

| | | |
|------------------|-----|-----|
| मदात्ययनिदानम् | ... | ३१६ |
| त्रिगुणमदलक्षणम् | ... | ३१७ |
| मदात्ययचिकित्सा | ... | ३१८ |
| अष्टागलवणम् | ... | ३२० |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|--------------------------|-----|-----|-----|
| अध्यादिचूर्णम् | ... | ... | ३२१ |
| मधुविफलागुडार्द्रकयोगौ | ... | ... | " |
| शतावरीपुनर्नवाद्यं घृतम् | ... | ... | ३२२ |

इति मदात्ययाधिकारः ।

अथ दाहाधिकारः ।

| | | | |
|---------------------------|-----|-----|-----|
| सामान्यदाहनिदानम् | ... | ... | ३२२ |
| सामान्यदाहचिकित्सा | ... | ... | ३२३ |
| आमलक्यादिखण्डः | ... | ... | " |
| कुशाद्यं घृतम् | ... | ... | ३२४ |
| रक्तजदाहनिदानम् | ... | ... | " |
| रक्तजदाहचिकित्सा | ... | ... | ३२४ |
| पित्तजदाहनिदानम् | ... | ... | ३२५ |
| क्ष्णानिरोधनदाहनिदानम् | ... | ... | " |
| तयोश्चिकित्सा | ... | ... | " |
| रक्तपूर्णकोष्ठजदाहनिदानम् | ... | ... | " |
| धातुचयजदाहनि० | ... | ... | " |
| सर्माभिघातजदाहनि० | ... | ... | " |
| तेषां चिकित्सा | ... | ... | " |

इति दाहाधिकारः ।

अथोन्मादाधिकारः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| उन्मादनिदानम् | ... | ... | ३२६ |
| उन्मादचिकित्सा | ... | ... | ३२७ |
| सिद्धार्थकाद्यञ्जनम् | ... | ... | ३२८ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|----------------------------|-----|-----|-----|
| वृषणाद्यावर्तिः | ... | ... | ३३० |
| सारस्वतं चूर्णम् | ... | ... | " |
| हिंवाद्यं घृतम् | ... | ... | " |
| महापैशाचिकं घृतम् | ... | ... | " |
| सारस्वतं घृतम् | ... | ... | ३३१ |
| यानीयकल्याणकं घृतम् | ... | ... | " |
| महाकल्याणकं घृतम् | ... | ... | ३३२ |
| चैतसघृतम् | ... | ... | " |
| द्वितीयं चैतसंघृतम् | ... | ... | ३३३ |
| निंशाद्यं घृतम् | ... | ... | " |
| चन्दनाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| भूताद्युन्मादानां निदानानि | ... | ... | ३३४ |
| भूताद्युन्मादानां चिकित्सा | ... | ... | ३३६ |
| महाधूपवरः | ... | ... | " |

इत्युन्मादाधिकारः ।

अथापस्माराधिकारः ।

| | | | |
|-----------------|-----|-----|-----|
| अपस्मारनिदानम् | ... | ... | ३३७ |
| अपस्मारचिकित्सा | ... | ... | ३३८ |
| जलमृतलक्षणम् | ... | ... | ३३९ |
| कल्याणक चूर्णम् | ... | ... | ३४१ |
| फलं कपातैलम् | ... | ... | " |
| त्रिफलातैलम् | ... | ... | " |
| ब्राह्मीघृतम् | ... | ... | " |

| विषयाः । | | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------|-----|---------------|
| कूष्माण्डवृत्तम् | ... | ३४२ |
| स्वल्पपञ्चगव्यवृत्तम् | ... | " |
| महापञ्चगव्यवृत्तम् | ... | " |
| महच्चैतसं वृत्तम् | ... | " |
| मधूकवृत्तम् | ... | ३४३ |
| मांसीवृत्तम् | ... | " |
| वचाद्यं वृत्तम् | ... | " |
| कटभीतैलम् | ... | " |
| शिशुतैलम् | ... | " |
| घोवनीययमकम् | ... | ३४४ |

इत्ययस्माराधिकारः ।

अथ वातव्याध्यधिकारः ।

| | | |
|---------------------------|-----|-----|
| सामान्य वातव्याधिनिदानम् | ... | ३४४ |
| सामान्य वातव्याधिचिकित्सा | ... | ३४६ |
| वैश्वारः | ... | ३४७ |
| वाजिगन्धादिगणः | ... | " |
| प्रेयं रसोनम् | ... | " |
| स्वल्परसोनपिष्टः | ... | ३४८ |
| मास्वणः स्वेदः | ... | ३४८ |
| महामास्वणः | ... | ३५० |
| पद्मरूपी योगः | ... | ३५१ |
| स्तनगाद्यं तैलम् | ... | ३५२ |
| दन्तादिघृतमण्डः | ... | " |

विषयाः ।

| | | | |
|-----------------------------|-----|-----|-----|
| हनुग्रहनिदानम् | ... | ... | ३५३ |
| हनुग्रहचिकित्सा | ... | ... | " |
| जिह्वास्तम्भनिदानम् | ... | ... | ३५३ |
| जिह्वास्तम्भचिकित्सा | ... | ... | " |
| मन्यास्तम्भनिदानम् | ... | ... | ३५४ |
| मन्यास्तम्भचिकित्सा | ... | ... | " |
| कुष्ठलक्षणम् | ... | ... | " |
| कुष्ठचिकित्सा | ... | ... | " |
| शिरोग्रहनिदानम् | ... | ... | " |
| शिरोग्रहचिकित्सा | ... | ... | ३५५ |
| वाहुशोषादीनां निदानम् | ... | ... | " |
| तेषां चिकित्सा | ... | ... | " |
| मापतैलम् | ... | ... | ३५६ |
| खड्जादीनां निदानम् | ... | ... | " |
| तेषां चिकित्सा | ... | ... | ३५७ |
| वातष्टीनाप्रत्यष्टीलयोर्नि० | ... | ... | ३५८ |
| तयोश्चिकित्सा | ... | ... | " |
| तूनीप्रतितूयोर्निदानम् | ... | ... | " |
| तयोश्चिकित्सा | ... | ... | " |
| तन्द्रानिदानम् | ... | ... | ३५८ |
| तस्याश्चिकित्सा | ... | ... | " |
| आधानप्रत्याधानयोर्निदानम् | ... | ... | " |
| तयोश्चिकित्सा | ... | ... | " |
| खलीनिदानम् | ... | ... | ३६० |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|-------------------------------------|-----|-----|-----|
| कागल्याद्यं द्रुतम् | ... | ... | ३६८ |
| बलाशैरीयतैलम् | ... | ... | ३६९ |
| महाबलातैलम् | ... | ... | ३७० |
| पुनर्महाबलातैलम् | ... | ... | ३७१ |
| सहचराद्यं तैलम् | ... | ... | ३७२ |
| महासहचराद्यं तैलम् | ... | ... | ३७३ |
| विष्णुतैलम् | ... | ... | ३७४ |
| महाकल्याणकतैलम् | ... | ... | ३७५ |
| स्वल्पनारायणं तैलम् | ... | ... | ३७६ |
| मध्यमनारायणं तैलम् | ... | ... | ३७७ |
| महानारायणं तैलम् | ... | ... | ३७८ |
| मापतैलम् | ... | ... | ३७९ |
| बृहन्मापादितैलम् | ... | ... | ३८० |
| महामापतैलम् | ... | ... | ३८१ |
| सामिपमहामापतैलम् | ... | ... | ३८२ |
| शतावरीतैलम् | ... | ... | ३८३ |
| द्वितीयमहामापतैलम् | ... | ... | ३८४ |
| मापतैलम् | ... | ... | ३८५ |
| अथ चतुर्विंशतिका प्रसारणीतैलारम्भम् | ... | ... | ३८६ |
| शुक्लविधिः | ... | ... | ३८७ |
| नखशुद्धिः | ... | ... | ३८८ |
| हरिद्रावचाशुद्धिः | ... | ... | ३८९ |
| मुस्तकशुद्धिः | ... | ... | ३९० |
| शैलजशुद्धिः | ... | ... | ३९१ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | |
|--------------------------------|-----|-----|
| खाटासीशुद्धिः | ... | ३८४ |
| इति चतुर्विंशतिकाप्रसारणीतैलम् | ... | ५८५ |
| तृतीयमहामापतैलम् | ... | " |
| शतकप्रसारणीतैलम् | ... | ३८६ |
| विंशतीप्रसारणीतैलम् | ... | " |
| कुक्षप्रसारणीतैलम् | ... | ३८७ |
| सप्तयतिकामहप्रसारणीतैलम् | ... | " |
| महाप्रसारणीतैलम् | ... | ३८८ |
| गन्धद्विप्रसारणीतैलम् | ... | ३८९ |
| अष्टादशशतकं प्रसारणीतैलम् | ... | ३९० |
| अजितप्रसारणीतैलारम्भम् | | ३९२ |
| अजितप्रसारणीतैलमसाप्तिः | | ३९५ |
| रसोनतैलम् | .. | " |
| मूलकाय तैलम् | . | ३९६ |
| द्वगमूलाय तैलम् | ... | " |
| प्रगमूलाय तैलम् | ... | " |
| गतावरीतैलम् | ... | ३९७ |
| वातरोगाणाममाध्यस्तक्षय | | ३९८ |
| अथादितनिदानम् | | " |
| अदितचिकित्सा | ... | ३९९ |
| द्वगमूलाय तैलम् | ... | ४०० |
| क्षीरतैलम् | . | " |
| गृध्रमीनिदानम् | ... | " |
| गृध्रमीचिकित्सा | ... | ४०१ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| रास्नादशमूलम् | ... | ... | ३०१ |
| रास्नादिगुग्गुलुः | ... | ... | ४०३ |
| पथ्यन्द्यो गुग्गुलुः | ... | ... | " |
| लशुनाद्य दृतम् | ... | ... | ४०४ |
| अश्वगन्धाद्य तैलम् | ... | ... | " |
| सैन्धवाद्य तैलम् | ... | ... | " |

इति वातघ्नाध्यधिकारः ।

अथ वातरक्ताधिकारः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| वातरक्तनिदानम् | ... | ... | ४०५ |
| वातरक्तचिकित्सा | ... | ... | ४०७ |
| गुग्गुलुवटी | ... | ... | ४०८ |
| नवकार्पिककायः | ... | ... | ४१० |
| बलादृतम् | ... | ... | ४११ |
| शतावरोदृतम् | ... | ... | " |
| गुडूचोदृतम् | ... | ... | " |
| अमृतादिदृतम् | ... | ... | ४१२ |
| द्वितीयममृतादिदृतम् | ... | ... | " |
| द्वितीय गुडूचोदृतम् | ... | ... | " |
| सन्ध्यममृताद्य दृतम् | ... | ... | " |
| महागुडूचोदृतम् | ... | ... | ४१३ |
| पिण्डतैलम् | ... | ... | " |
| गुडूचोतैलम् | ... | ... | ४१४ |
| अमृताद्वय तैलम् | ... | ... | " |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | |
|--------------------------|-----|
| नागवलातैलम् | ४१५ |
| दग्धपाकवलातैलम् | " |
| पुनर्नवागुम्बुलुः | ४१६ |
| अमृतागुम्बुलुः | " |
| अमृताक्षौ गुग्गुलुः | ४१७ |
| सूर्यप्रभागुटिका | " |
| कैशोरगुग्गुलुः | ४१८ |
| सिंहनादगुम्बुलुः | ४२० |
| द्वितीय सिंहनादगुम्बुलुः | ४२१ |
| चन्द्रप्रभागुटिका | ४२२ |
| वृहत्सिद्धिवगुटिका | ४२३ |
| गिर्नाजतुम्बुलिः | ४२४ |
| योगभारामृत. | ४२५ |

इति वातरक्ताधिकारः ।

अथोरुस्तम्भाधिकारः ।

| | |
|------------------|-----|
| उरुस्तम्भनिदानम् | ४२६ |
| तस्य चिकित्सा | " |
| कुटाद्यं तैलम् | ४२८ |
| पेटकटुरतैलम् | " |

इत्युरुस्तम्भाधिकारः ।

अथाम्बाताधिकारः ।

| | |
|---------------|-----|
| आमशातनिदानम् | |
| तस्य चिकित्सा | ४३० |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------------|---------------|
| पुनर्नवाद्यं चूर्णम् | ४३२ |
| कटिग्रहलक्षणम् | ४३३ |
| तस्य चिकित्सा | ४३४ |
| अमृताद्यं चूर्णम् | ४३५ |
| लघुरास्नाटिकाद्यः | ४३६ |
| महारास्नाटिकाद्यः | ४३७ |
| रास्नादशमूलकाद्यः | ४३८ |
| अलम्बुपाद्यं चूर्णम् | ४३९ |
| आभाटिचूर्णम् | ४४० |
| द्वितीयमलम्बुपाद्यं चूर्णम् | ४४१ |
| वैश्वानरं चूर्णम् | ४४२ |
| शुण्ठीघृतम् | ४४३ |
| द्वितीयं शुण्ठीघृतम् | ४४४ |
| काष्ठीकाद्यं घृतम् | ४४५ |
| शृङ्गवेराद्यं घृतम् | ४४६ |
| अजमोदादिवटकाः | ४४७ |
| योगराजगुग्गुलुः | ४४८ |
| शुण्ठीखण्डः | ४४९ |
| रसोनपिण्डः | ४५० |
| प्रसारणोतैलम् | ४५१ |
| द्विपञ्चमूलाद्यं तैलम् | ४५२ |
| वृद्धकैन्धवाद्यं तैलम् | ४५३ |
| निरुहः | ४५४ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|-------------------|-----|-----|-----|
| हिङ्ग्याद्यो वटकः | ... | ... | ४५२ |
| परण्डाद्यं घृतम् | ... | ... | " |
| बीजपूराद्यं घृतम् | ... | ... | " |
| शूलघृतम् | ... | ... | ४५३ |

इति शूलाधिकारः ।

अथ परिणामशूलाधिकारः ।

| | | | |
|-----------------------|-----|-----|-----|
| परिणामशूलनिदानम् | ... | ... | ४५३ |
| परिणामशूलचिकित्सा | ... | ... | ४५४ |
| विडङ्गाद्यो मोदकः | ... | ... | ४५५ |
| शम्बूकाद्यो मोदकः | ... | ... | " |
| क्षण्याद्यं लोहम् | ... | ... | ४५६ |
| पथालोहम् | ... | ... | " |
| त्रिफलाद्यं लोहम् | ... | ... | " |
| घृतसुसो लोहः | ... | ... | " |
| भक्तवारिगुटिका | ... | ... | ४५७ |
| पुनस्त्रिफलाद्य लोहम् | ... | ... | " |
| सामुद्राद्यं चूर्णम् | ... | ... | " |
| गुडपिप्पलीघृतम् | ... | ... | ४५८ |
| पिप्पलीघृतम् | ... | ... | " |
| लोहादिलोहः | ... | ... | " |
| कोलादिमण्डूरम् | ... | ... | " |
| भोमवटकमण्डूरम् | ... | ... | ४५९ |
| घोरमण्डूरम् | ... | ... | " |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|--------------------------|-----|-----|-----|
| शतावरीमण्डूरम् | ... | ... | ४५९ |
| तारामण्डूरगुडः | ... | ... | , |
| पुनर्नवादिमण्डूरम् | ... | ... | ४६१ |
| वृद्धघृणपणाद्यं मण्डूरम् | ... | ... | ४६२ |
| नारिकेललवणम् | ... | ... | ४६३ |
| अयोगुग्गुलुः | ... | ... | , |
| आमलकखण्डः | ... | ... | , |
| अन्नद्रवगूलनिदानम् | ... | ... | ४६४ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | ४६५ |
| गुडमण्डूरः | ... | ... | ४६६ |
| कलायचूर्णगुटिका | ... | ... | , |

इति परिणामगूलान्नद्रवगूलाधिकारः ।

अथोदावर्त्ताधिकारः ।

| | | | |
|---------------------------|------|-----|-----|
| उदावर्त्तनिदानम् | | ... | ४६८ |
| उदावर्त्तचिकित्सा | ... | ... | ४६९ |
| उदावर्त्तस्याप्त्रनिदानम् | | ... | ४७० |
| उदावर्त्तस्यापरचिकित्सा | ... | ... | , |
| हिग्वाद्यावर्त्तिः | ... | ... | ४७१ |
| फलवर्त्तिः | ... | ... | , |
| नाराचचूर्णम् | ... | ... | , |
| गुडाष्टकम् | ... | ... | ४७२ |
| मूत्रकाद्यं घृतम् | ... | ... | , |
| म्यिराद्यं घृतम् | ... | ... | , |

इत्युदावर्त्ताधिकारः ।

वपयाः ।

अथानाहाधिकारः ।

| | | | |
|---------------------------------|-----|-----|-----|
| अनाहनिदानम् | ... | ... | ४६८ |
| अनाहचिकित्सा | ... | ... | ४७० |
| त्रिवृत्ताद्या वटिका | ... | ... | " |
| फलवर्त्तिः | ... | ... | " |
| रामठाद्यावर्त्तिः | ... | ... | " |
| त्रिवृदाद्यागुटी | ... | ... | " |
| त्रिकटुकाद्यावर्त्तिः | ... | ... | ४७१ |
| द्विरुत्तराङ्गिन्वाद्यं चूर्णम् | ... | ... | " |
| ङ्गिन्वाद्यं चूर्णम् | ... | ... | " |
| वचाद्यं चूर्णम् | ... | ... | " |

इत्यानाहाधिकारः ।

अथ गुल्माधिकारः ।

| | | | |
|---------------------|-----|-----|-----|
| सामान्यगुल्मनिदानम् | ... | ... | ४७१ |
| वातगुल्मनिदानम् | ... | ... | ४७२ |
| वातगुल्मचिकित्सा | ... | ... | " |
| ङ्गिगुपञ्चकम् | ... | ... | " |
| द्रूपणाद्यं घृतम् | ... | ... | ४७३ |
| हनुपाद्यं घृतम् | ... | ... | " |
| चित्रकाद्यं घृतम् | ... | ... | " |
| ङ्गिन्वाद्यं घृतम् | ... | ... | ४७४ |
| पित्तगुल्मनिदानम् | ... | ... | " |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| हिम्वादिषटिकाप्रकारः | ... | ... | ४८४ |
| आरोग्यलक्षणम् | ... | ... | ४८५ |
| नादेयीचारः | ... | ... | ४८६ |
| सामान्यविधिः | ... | ... | ४८७ |
| स्त्रीगुल्मनिदानम् | ... | ... | ४८८ |
| स्त्रीगुल्मचिकित्सा | ... | ... | ४८९ |
| पलाशचारुघृतम् | ... | ... | ४९० |
| काङ्क्षारकं घृतम् | ... | ... | ४९१ |
| असाध्यगुल्मलक्षणानि | ... | ... | ४९२ |

इति गुल्माधिकारः ।

अथ हृद्रोगाधिकारः ।

| | | | |
|-----------------------|-----|-----|-----|
| सामान्यहृद्रोगनिदानम् | ... | ... | ४९३ |
| वातहृद्रोगनिदानम् | ... | ... | ४९४ |
| वातहृद्रोगचिकित्सा | ... | ... | ४९५ |
| हारीतक्याद्य घृतम् | ... | ... | ४९६ |
| पुनर्नवाद्यं तैलम् | ... | ... | ४९७ |
| पित्तहृद्रोगनिदानम् | ... | ... | ४९८ |
| पित्तहृद्रोगचिकित्सा | ... | ... | ४९९ |
| अर्जुनादिक्षीरपाकम् | ... | ... | ५०० |
| ककुभादिचूर्णम् | ... | ... | ५०१ |
| वसेरुकाद्य घृतम् | ... | ... | ५०२ |
| श्रेयस्याद्य घृतम् | ... | ... | ५०३ |
| कफहृद्रोगनिदानम् | ... | ... | ५०४ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|------------------------|-----|-----|-----|
| कफहृद्रोगचिकित्सा | ... | ... | ४८० |
| तिक्तकं चूर्णम् | ... | ... | ४८१ |
| सन्निपातहृद्रोगनिदानम् | ... | ... | " |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| हिंगुपञ्चकम् | ... | ... | ४८२ |
| बल्लभघृतम् | ... | ... | ४८३ |
| घोरबल्लभघृतम् | ... | ... | " |
| अर्जुनघृतम् | ... | ... | " |
| बलाद्यं घृतम् | ... | ... | " |

इति हृद्रोगाधिकारः ।

अथोरोग्रहाधिकारः ।

| | | | |
|-----------------|-----|-----|-----|
| उरोग्रहनिदानम् | .. | ... | ४८३ |
| उरोग्रहचिकित्सा | ... | ... | ४८४ |

इत्युरोग्रहाधिकारः ।

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः ।

| | | | |
|------------------------------|------|-----|-----|
| मूत्रकृच्छ्रनिदानम् | ... | ... | ४८४ |
| वातमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | ... | ... | ४८५ |
| पुनर्नवाद्यो मित्यकः | .. | ... | " |
| पित्तकृच्छ्रचिकित्सा | ... | ... | ४८६ |
| शताङ्गरोहत क्षीरञ्च | | ... | ४८६ |
| त्रिकण्टकाद्यं घृतम् | .. | ... | " |
| कफकृच्छ्रचिकित्सा | ... | ... | " |
| त्रिदोषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | ... | ... | ४८७ |

| विषयाः । | | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|-----|---------------|
| अभिधातजकृच्छ्रचिकित्सा | ... | ४८० |
| शुक्रजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | ... | ” |
| शक्लजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | ... | ” |
| मूत्रकृच्छ्रे विविधयोगाः | ... | ४८८ |
| सुकुमारकुमारकः पुनर्नवादिलेहः | ... | ” |

इति मूत्रकृच्छ्राधिकारः ।

अथ मूत्राघाताधिकारः ।

| | | | |
|-------------------------|-----|-----|-----|
| मूत्राघातनिदानम् | ... | ... | ५०० |
| मूत्राघातचिकित्सा | ... | ... | ५०२ |
| शिलोद्भिदादितैलम् | ... | ... | ५०३ |
| धान्यगोचुरकं घृतम् | ... | ... | ” |
| भद्रावहं घृतम् | ... | ... | ” |
| विदारो घृतम् | ... | ... | ५०४ |
| स्वगुप्तादिमन्यः | ... | ... | ५०५ |
| क्षौद्रार्द्धभागं घृतम् | ... | ... | ” |

इति मूत्राघाताधिकारः ।

अथाश्वयधिकारः ।

| | | | |
|-------------------|-----|-----|-----|
| वाताश्वरीनिदानम् | ... | ... | ५०६ |
| वाताश्वरीचिकित्सा | ... | ... | ५०७ |
| शुण्ड्यादिः | ... | ... | ” |
| एलादिकाथः | ... | ... | ” |
| पापाणभेदायं घृतम् | ... | ... | ” |
| वीरतवीदिगणः | ... | ... | ” |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|----------------------------------|-----|-----|-----|
| पित्ताश्मरोनिदानम् | ... | ... | ५०८ |
| पित्ताश्मरोचिकित्सा | ... | ... | ” |
| कुशाद्यं घृतम् | ... | ... | ” |
| कफाश्मरोनिदानम् | ... | ... | ४०८ |
| कफाश्मरोचिकित्सा | ... | ... | ” |
| वरुणादिघृतम् | ... | ... | ” |
| शक्ताश्मरोनिदानम् | ... | ... | ५१० |
| शर्कराश्मरोनिदानम् | ... | ... | ” |
| तयोश्चिकित्सा | ... | ... | ” |
| दृग्पञ्चमूलाद्यं घृतम् | ... | ... | ५११ |
| वरुणतैलम् | ... | ... | ५१२ |
| कुशाद्यं तैलम् | ... | ... | ” |
| वरुणादि चूर्णम् | ... | ... | ५१३ |
| वरुणादिचूर्णस्येवायमन्यः प्रकारः | ... | ... | ” |
| वरुणकगुडः | ... | ... | ” |
| कुलित्याद्यं घृतम् | ... | ... | ५१४ |
| शरादिपञ्चमूलघृतम् | ... | ... | ” |
| वरुण घृतम् | ... | ... | ” |
| वीरतराद्यं तैलम् | ... | ... | ५१५ |
| द्वितीयं वीरतराद्यं तैलम् | ... | ... | ” |
| पुनर्नवाद्यं तैलम् | ... | ... | ” |

इत्यश्मर्यधिकारः ।

अथ प्रमेहाधिकारः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| सामान्यप्रमेहनिदानम् | ... | ... | ५१६ |
|----------------------|-----|-----|-----|

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------------|-----|-----|---------------|
| कफप्रमेहनिदानम् | ... | ... | ५१७ |
| पित्तप्रमेहनिदानम् | ... | ... | " |
| वातप्रमेहनिदानम् | ... | ... | ५१८ |
| प्रमेहोपद्रवाः | ... | ... | " |
| स्त्रीणां प्रमेहाभावे कारणम् | ... | ... | " |
| प्रमेहपिडिका निदानम् | ... | ... | ५१९ |
| प्रमेह चिकित्सा | ... | ... | ५२० |
| फलत्रिकादिः कायः | ... | ... | ५२२ |
| न्यग्रोधाद्यं चूर्णम् | ... | ... | " |
| त्रिकट्वाद्या गुटिका | ... | ... | ५२३ |
| दाडिमाद्यं घृतम् | ... | ... | " |
| गोक्षुरादिचूर्णं गुटिका वा | ... | ... | " |
| सिंहानृतं घृतम् | ... | ... | ५२४ |
| धान्वन्तरं घृतम् | ... | ... | " |
| अर्जुनाद्यं घृतं तैलं वा | ... | ... | ५२५ |
| गोक्षुराद्यवलेहः | ... | ... | " |
| भारलेहः | ... | ... | ५२६ |
| शिलाजतुमाक्षिकयोः प्रयोगः | ... | ... | " |
| प्रमेहपिडिका चिकित्सा | ... | ... | ५२८ |

इति प्रमेहाधिकारः ।

अथ मेदोऽधिकारः ।

| | | | |
|----------------|-----|-----|-----|
| मेदोनिदानम् | ... | ... | ५२८ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | ५२९ |
| अमृतादिगुणुलुः | ... | ... | ५३१ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|-------------------|-----|-----|-----|
| दशाङ्गोपुगुलुः | ... | ... | ५३१ |
| लोहरसायनम् | ... | ... | " |
| लोहारिष्टः | ... | ... | ५३२ |
| व्योपायः शङ्खयोगः | ... | ... | " |
| चिलफाय तैलम् | ... | ... | ५३३ |
| महासुगन्धितैलम् | ... | ... | ५३४ |

इति मेदोऽधिकारः ।

अथोदररोगाधिकारः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| सामान्योदररोगनिदानम् | ... | ... | ५३५ |
| वातोदरनिदानम् | ... | ... | ५३६ |
| अजातोदकलक्षणम् | ... | ... | " |
| वातोदरचिकित्सा | ... | ... | " |
| सामुद्रायं चूर्णम् | ... | ... | ५३७ |
| दग्मूलपट्पन्नं घृतम् | ... | ... | " |
| दग्मूलायं घृतम् | ... | ... | ५३८ |
| लग्नतैलम् | ... | ... | " |
| पित्तोदरनिदानम् | ... | ... | " |
| पित्तोदरचिकित्सा | ... | ... | ५३९ |
| कफोदरनिदानम् | ... | ... | " |
| कफोदरचिकित्सा | ... | ... | ५४० |
| सन्निपातोदरनिदानम् | ... | ... | " |
| सन्निपातोदरचिकित्सा | ... | ... | " |
| नागरायं वमकम् | ... | ... | ५४१ |

विषयाः ।

| | | | |
|-----------------------|-----|-----|-----|
| उदरे सामान्या योगाः | ... | ... | ५४१ |
| पटोलाद्यं चूर्णम् | ... | ... | ५४२ |
| नारायणचूर्णम् | ... | ... | ५४४ |
| महाचारः | ... | ... | ५४५ |
| नाराचष्टतम् | ... | ... | " |
| पुनर्नाराचष्टतम् | ... | ... | ५४६ |
| त्रिवृताद्यं घृतम् | ... | .. | " |
| बिन्दुघृतम् | ... | ... | " |
| शालिपर्णितैलम् | ... | ... | " |
| प्रीहोदरनिदानम् | ... | ... | ५४७ |
| प्रीहोदरचिकित्सा | ... | ... | ५४८ |
| चारयोगः | ... | ... | ५४९ |
| यवान्यादिचूर्णम् | ... | ... | " |
| विडङ्गादिचूर्णम् | ... | ... | " |
| भक्तातको मोदकः | ... | ... | ५५० |
| अभयावटकाः | ... | ... | " |
| अग्निमुखलवणम् | ... | ... | " |
| पट्पलकं घृतम् | ... | ... | " |
| वज्रिपट्प्रस्थं घृतम् | ... | ... | ५५१ |
| चित्रकघृतम् | ... | ... | " |
| चित्रकाद्यं घृतम् | ... | ... | ५५२ |
| ब्रह्मघृतम् | ... | ... | " |
| शङ्खद्रावः | ... | ... | " |
| रोहितकं घृतम् | ... | ... | " |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------------|---------------|
| महारोहितकष्टतम् | ५५३ |
| कदोक्षारतैलम् | ... |
| माणादिगुटिका | ५५४ |
| चित्रकलेहः | .. |
| क्षारपिप्पली | .. |
| वृहत्क्षारपिप्पली | ५५५ |
| अभयालवणम् | ५५६ |
| यक्षनिदानम् | ... |
| यक्षचिकित्सा | .. |
| चित्रकष्टतम् | ... |
| पिप्पलीष्टतम् | .. |
| द्वरुदेः दरदकोदयोर्निदानम् | .. |
| तयोश्चिकित्सा | .. |
| क्षारगुटिका | .. |
| उदरारिलोहः | .. |
| उदररोगाणामसाध्यलक्षणम् | .. |
| तेषां सामान्यचिकित्सा | .. |
| आर्द्रकष्टतम् | ५६१ |
| विल्वादिष्टतम् | .. |

इत्युदररोगाधिकारः ।

अथ शोधाधिकारः ।

| | |
|-------------|-----|
| शोथनिदानम् | ५६१ |
| शोथचिकित्सा | ५६२ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------------|---------------|
| वातशोथचिकित्सा | ५६४ |
| पित्तशोथचिकित्सा | ५६५ |
| कफशोथचिकित्सा | ५६६ |
| पुनर्नवादि लेहः । | ५६६ |
| त्रिदोषजशोथचिकित्सा | ५६७ |
| विषशोथचिकित्सा | ५६८ |
| शोथे विविधा योगाः | ५६९ |
| दार्वादिचूर्णम् | ५६९ |
| बिड़ङ्गादिलोहः | ५६९ |
| मानमण्डः | ५७० |
| गुडचूर्णम् | ५७० |
| द्वितीयं गुडाद्यं चूर्णम् | ५७० |
| पुनर्नवाद्यं चूर्णम् | ५७० |
| शोमूत्रमण्डूरम् | ५७० |
| पुनर्नवाद्यं घृतम् | ५७० |
| द्वितीयं पुनर्नवाद्यं घृतम् | ५७० |
| चित्रकाद्यं घृतम् | ५७० |
| द्वितीयं चित्रकाद्यं घृतम् | ५७० |
| माणकं घृतम् | ५७१ |
| स्थलपद्मकाद्यं घृतम् | ५७१ |
| पञ्चकोलाद्यं घृतम् | ५७१ |
| शुष्कमूलकाद्यं तैलम् | ५७१ |
| वैतसाद्यः प्रदेहः | ५७१ |
| यवाद्यं तैलम् | ५७१ |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------|-----|-----|---------------|
| शैलाद्यं तैलम् | ... | ... | ५०१ |
| पञ्चमूलाद्यं तैलम् | ... | ... | ५०२ |
| कंसहरीतकी | ... | ... | " |
| दशमूलहरीतकी | ... | ... | ५०३ |
| विकटुकाद्यं लोहम् | ... | ... | " |
| शोथोदरहरं लोहम् | ... | ... | ५०४ |

इति शोधाधिकारः ।

अथान्वह्यधिकारः ।

| | | | |
|------------------------|-----|-----|-----|
| अन्वह्यदिनिदानम् | ... | ... | ५०४ |
| अन्वह्यदिचिकित्सा | ... | ... | ५०५ |
| पञ्चवल्कलम् | ... | ... | " |
| अन्वह्यद्वौ विविधयोगाः | ... | ... | " |
| कुरगलक्षणम् | ... | ... | ५०८ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| शतपुण्याद्यं घृतम् | ... | ... | ५०८ |
| गन्धर्वहस्तातैलम् | ... | ... | ५०९ |

इत्यन्वह्यधिकारः ।

अथ व्रधाधिकारः ।

| | | | |
|---------------------|-----|-----|-----|
| व्रथानिदानम् | ... | ... | ५१० |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| विष्णुपाद्यं घृतम् | ... | ... | ५११ |
| सप्तमेधवाद्यं तैलम् | ... | ... | " |

इति व्रधाधिकारः ।

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

अथ गलगण्डाधिकारः ।

| | | | |
|------------------------|-----|-----|-----|
| गलगण्डनिदानम् | ... | ... | ५८२ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| हिंसाद्यं तैलम् | ... | ... | ५८३ |
| अमृताद्यं तैलम् | ... | ... | ५८४ |
| शाखोटायं घृतम् | ... | ... | " |
| काञ्चनारगुग्गुलुगुटिका | ... | ... | " |

इति गलगण्डाधिकारः ।

अथ गण्डमालाधिकारः ।

| | | | |
|-------------------------|-----|-----|-----|
| गण्डमालानिदानम् | ... | ... | ५८४ |
| तस्याधिकित्सा | ... | ... | ५८५ |
| चन्दनाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| व्योपाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| काकादन्थादितैलम् | ... | ... | " |
| महाजमोदाद्यं तैलम् | ... | ... | ५८६ |
| वचाद्यं घृतम् | ... | ... | ५८७ |
| चक्रमर्दादिसिन्दूरतैलम् | ... | ... | " |
| निर्गुण्डोतैलम् | ... | ... | " |
| गुञ्जातैलम् | ... | ... | " |
| तुम्बीतैलम् | ... | ... | " |
| शाखोटकविस्वाद्यं तैलम् | ... | ... | ५८८ |
| कुष्ठुन्दरीतैलम् | ... | ... | " |
| शिफलाद्यो गुग्गुलुः | ... | ... | " |

इति गण्डमालाधिकारः ।

विषया ।

, पृष्ठाङ्का ।

अथ ग्रन्थप्रधिकार ।

ग्रन्थनिदानम् ५८८

ग्रन्थचिकित्सा ”

इति ग्रन्थप्रधिकारः ।

अथार्बुदाधिकार ।

अर्बुदनिदानम् ५८९

अर्बुदचिकित्सा ५९२

इत्यर्बुदाधिकारः ।

अथ श्लोपदाधिकारः ।

श्लोपदनिदानम् ५९४

श्लोपदचिकित्सा ,

गोमूत्रहरीतकी ५९७

छायाद्यो मोदक ”

पिप्पल्याद्य चूर्णम् .

वृद्धदारुकचूर्णम् ”

निर्गुण्डादिमण्ड ५९८

पाठान्तरेण पिप्पल्याद्य चूर्णम् ,

काकादन्यादि चारम ”

शौरश्वर घृतम् ५९९

दन्तोघृतम् ६००

वृद्धदारुक घृतं तैलञ्च ,

विडङ्गाद्य तैलम् ,

इति श्लोपदाधिकारः ।

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

अथ विद्रध्यधिकारः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| विद्रधिनिदानम् | ... | ... | ६०० |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | ६०३ |
| भूनिम्बाद्यं चूर्णम् | ... | ... | ६०५ |
| वरुणाद्यं चूर्णम् | ... | ... | ६०५ |
| करञ्जघृतम् | ... | ... | ६०६ |
| प्रियम्बाद्यं तैलम् | ... | ... | ” |

इति विद्रध्यधिकारः ।

अथ व्रणरोगाधिकारः ।

| | | | |
|----------------------------|-----|-----|-----|
| व्रणशोथनिदानम् | ... | ... | ६०६ |
| व्रणरोगनिदानम् | ... | ... | ६०८ |
| व्रणरोगचिकित्सा | ... | ... | ६०८ |
| वृहत्शोधादिलेपः | ... | ... | ६१० |
| व्रणेषु विविधप्रकारा योगाः | ... | ... | ” |

इति व्रणरोगाधिकारः ।

अथागन्तुव्रणाधिकारः ।

| | | | |
|--------------------|-----|-----|-----|
| आगन्तुकव्रणनिदानम् | ... | ... | ६१६ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | ६१८ |
| गुग्गुलुघटिका | ... | ... | ६२० |
| अमृतागुग्गुलुः | ... | ... | ” |
| जाल्पादिघृतम् | ... | ... | ” |
| तिक्ताद्यं घृतम् | ... | ... | ६२१ |
| जातिकाद्यं तैलम् | ... | ... | ” |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------|-----|-----|---------------|
| विपरोतमल्लतैलम् | ... | ... | ६२१ |
| कुठारतैलम् | ... | ... | ६२२ |
| दूर्वाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| नूलतैलम् | ... | ... | " |
| व्रणेषु वटिकागुग्गुलुः | ... | ... | " |
| सप्तविंशतिगुग्गुलुः | ... | ... | " |
| अग्निदग्धव्रणनिदानम् | ... | ... | ६२३ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| मधुच्छिद्याद्यं घृतम् | ... | ... | ६२५ |
| लाङ्गलीघृतम् | ... | ... | " |
| पटोलीतैलम् | ... | ... | " |
| चन्दनाद्य तैलम् | ... | ... | " |
| कम्पिल्लकतैलम् | ... | ... | ६२६ |

इत्यागन्तुकव्रणाधिकारः ।

अथ भग्नाधिकारः ।

| | | | |
|-------------------|-----|-----|-----|
| भग्ननिदानम् | ... | ... | ६२६ |
| भग्नचिकित्सा | ... | ... | ६२७ |
| आभागुग्गुलुः | ... | ... | ६२८ |
| लाक्षादिगुग्गुलुः | ... | ... | ६२९ |
| गन्धतैलम् | ... | ... | ६३० |

इति भग्नाधिकारः ।

अथ नाडोव्रणाधिकारः ।

| | | | |
|-----------------|-----|-----|-----|
| व्रणनाडोनिदानम् | ... | ... | ६३१ |
|-----------------|-----|-----|-----|

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|---------------------|-----|-----|-----|
| वषयाः । | | | |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | ६३२ |
| हिस्त्राद्यं तैलम् | ... | ... | , |
| श्यामाघृतम् | ... | ... | " |
| स्वर्जिकाद्य तैलम् | ... | ... | " |
| मैन्धवाद्यं तैलम् | ... | ... | ६३३ |
| कुम्भीकाद्य घृतम् | ... | ... | " |
| मेपरोमपी | ... | ... | " |
| कर्पूराद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| स्वर्जिकाद्यं तैलम् | ... | ... | ६३४ |
| सप्ताङ्गगुग्गुलुः | ... | ... | " |

इति नाडीव्रणाधिकारः ।

अथ भगन्दराधिकारः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| भगन्दरनिदानम् | ... | ... | ६३५ |
| भगन्दरचिकित्सा | ... | ... | " |
| विष्यन्दनं तैलम् | ... | ... | ६३७ |
| निशाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| करवीराद्य तैलम् | ... | ... | " |
| नवकार्पिको गुग्गुलुः | ... | ... | ६३८ |

इति भगन्दराधिकारः ।

अथोपदंशाधिकारः ।

| | | | |
|------------------|-----|-----|-----|
| उपदंशनिदानम् | ... | ... | ६३९ |
| लिङ्गार्थनिदानम् | ... | ... | " |
| उपदंशचिकित्सा | ... | ... | ६४० |

विषया ।

पृष्ठाङ्का ।

| | | | |
|-------------------|-----|-----|-----|
| करञ्जाद्य दृतम् | ... | ... | ६४२ |
| भूनिम्बाद्य दृतम् | | ... | " |
| आगारधूमाद्य दृतम् | ... | ... | " |
| गोजीतैलम् | .. | ' | " |
| लम्बाद्य तैलम् | . | ... | ६४३ |
| कोशातकीतैलम् | . | ... | " |
| लिङ्गार्थचिकित्सा | .. | ... | " |

इत्युपदंशाधिकारः ।

अथ शूकदोषाधिकारः ।

| | | |
|----------------|----|-----|
| शूकदोषनिदानम् | | ६४३ |
| शूकदोषचिकित्सा | .. | ६४५ |
| दार्दीतैलम् | | ६४६ |

इति शूकदोषाधिकारः ।

अथ कुष्ठाधिकारः ।

| | | |
|--------------------------|----|-----|
| कुष्ठनिदानम् | . | ६४७ |
| रसादिधातुगतकुष्ठलक्षणानि | | ६४८ |
| श्लेष्मलक्षणम् | . | ६५० |
| तस्य चिकित्सा | .. | ६५१ |
| पञ्चकषाय | ! | " |
| केशरपटकम् | ' | ६५३ |
| खदिरापटकम् | .. | ६५४ |
| नक्षकषाय | . | " |
| मिम्यादिमहाकषाय | . | " |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|------------------------------------|-----|-----|-----|
| मञ्जिष्ठादिमहाकषायः | ... | ... | ६५५ |
| उदयमार्त्तण्डमहाकषायः | ... | ... | ” |
| कुष्ठेषु लेपाः | ... | ... | ६५७ |
| धत्तूरकतैलम् | ... | ... | ६५८ |
| श्रीवासघृतम् | ... | ... | ६५८ |
| सिन्दूराद्यं तैलम् | ... | ... | ” |
| वृहत्सिन्दूरपद्यं तैलम् | ... | ... | ” |
| षर्कतैलम् | ... | ... | ६६० |
| त्रिफलाद्या गुटिका | ... | ... | ” |
| शशाङ्गलेखादिलेहः | ... | ... | ” |
| त्रिफलाद्यो भोदकः | ... | ... | ६६१ |
| महाभस्मातकम् | ... | ... | ” |
| पञ्चनिध्यादिचूर्णम् | ... | ... | ६६२ |
| त्रिफलाद्यं चूर्णम् | ... | ... | ६६२ |
| पथ्याद्यो वटकः | ... | ... | ” |
| तिक्तपट्कं घृतम् | ... | ... | ६६४ |
| पञ्चतिक्तकं घृतम् | ... | ... | ” |
| द्वितीयं पञ्चतिक्तकं घृतम् | ... | ... | ” |
| गुग्गुलुपञ्चतिक्तकं घृतम् | ... | ... | ६६५ |
| द्वितीयं गुग्गुलुपञ्चतिक्तकं घृतम् | ... | ... | ” |
| महातिक्तकं घृतम् | ... | ... | ६६६ |
| वज्रकं घृतम् | ... | ... | ” |
| महावज्रकं घृतम् | ... | ... | ” |
| खदिराद्य घृतम् | ... | ... | ६६७ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|-----------------------|-----|-----|-----|
| महाखदिराद्यं घृतम् | ... | ... | ६६७ |
| मेपशृङ्गाद्यं तैलम् | ... | ... | ६६८ |
| वज्रकं तैलम् | ... | ... | " |
| महावज्रकं तैलम् | ... | ... | " |
| वृणतैलम् | ... | ... | " |
| वृहत्तृणतैलम् | ... | ... | ६६९ |
| मरिचाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| वृहन्मरिचाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| पुनर्मरिचाद्यं तैलम् | ... | ... | ६७० |
| महामरिचाद्यं तैलम् | ... | ... | ६७१ |
| विपतैलम् | ... | ... | ६७२ |
| सोमराजीतैलम् | ... | ... | " |
| श्वेतकरवीरतैलम् | ... | ... | " |
| गण्डीराद्यं तैलम् | ... | ... | ६७३ |
| सुध्नाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| कनकविन्दुर्नमामरिष्टः | ... | ... | " |
| श्वित्रचिकित्सा | ... | ... | ६७४ |
| कटुकादिप्रलेपः | ... | ... | ६७५ |
| सोमराजीघृतम् | ... | ... | " |
| नीलीघृतम् | ... | ... | ६७६ |
| महानीलीघृतम् | ... | ... | " |
| ज्योतिष्मतीतैलम् | ... | ... | ६७७ |

इति कुष्ठाधिकारः ।

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

अथोदरदाधिकारः ।

| | | | |
|---------------------------|-----|-----|-----|
| उदरदशीतपित्तकोठनिदानम् | ... | ... | ६७७ |
| तेषां चिकित्सा | ... | ... | ६७८ |
| सिद्धार्थादिद्युद्धर्तनम् | ... | ... | ६७९ |

इत्युदरदाधिकारः ।

अथाम्लपित्ताधिकारः ।

| | | | |
|--------------------|-----|-----|-----|
| अम्लपित्तनिदानम् | ... | ... | ६७९ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | ६८१ |
| दशाङ्गकायः | ... | ... | ६८२ |
| वासागुग्गुलु | ... | ... | ६८३ |
| पिप्पलीष्टुतम् | ... | ... | ” |
| शतावरीष्टुतम् | ... | ... | ६८४ |
| चतुस्रसमचूर्णम् | ... | ... | ” |
| रसासृष्टचूर्णम् | ... | ... | ” |
| नारिकेरखण्डः | ... | ... | ” |
| वृहन्नारिकेरखण्डः | ... | ... | ६८५ |
| नारिकेरासृष्टम् | ... | ... | ६८६ |
| अविपत्यकरं चूर्णम् | ... | ... | ६८७ |
| पिप्पल्यादिलेहः | ... | ... | ” |
| खण्डकूष्माण्डकम् | ... | ... | ६८८ |
| द्राक्षाद्यष्टुतम् | ... | ... | ” |
| द्राक्षागुटिका | ... | ... | ” |

इत्यम्लपित्ताधिकारः ।

विषयाः ।

घटाङ्काः ।

अथ विसर्पाधिकारः ।

| | | | |
|-----------------|-----|-----|-----|
| विमर्पनिदानम् | ... | ... | ६८८ |
| विसर्पचिकित्सा | ... | ... | ६८९ |
| दग्गाङ्गलेपः | ... | ... | ६८२ |
| हृपाद्यं तैलम् | ... | ... | ६८४ |
| गौरवाद्यं घृतम् | ... | ... | ” |
| करञ्जतैलम् | ... | ... | ” |

इति विमर्पाधिकारः ।

अथ विस्फोटाधिकारः ।

| | | | |
|--------------------|-----|-----|-----|
| विस्फोटकनिदानम् | ... | ... | ६८५ |
| विस्फोटकचिकित्सा | ... | ... | ६८६ |
| दग्गाङ्गलेपः | ... | ... | ६८७ |
| पद्मकं घृतम् | ... | ... | ६८८ |
| पञ्चतिक्तं घृतम् | ... | ... | ” |
| कम्बोजकाद्यं तैलम् | ... | ... | ” |

इति विस्फोटाधिकारः ।

अथ स्नायुधिकारः ।

| | | | |
|----------------|-----|-----|-----|
| स्नायुनिदानम् | ... | ... | ६८९ |
| स्नायुचिकित्सा | ... | ... | ” |
| सृज्जिटादिलेपः | ... | ... | ७०० |

इति स्नायुधिकारः ।

वपयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

अथ मसूरिकाधिकारः ।

| | | | |
|-----------------|-----|-----|-----|
| मसूरिकानिदानम् | ... | ... | ७०० |
| तस्याश्चिकित्सा | ... | ... | ७०३ |
| पटोलादिक्वाथः | ... | ... | ७०६ |
| निम्बादिक्वाथः | ... | ... | " |
| दार्दीष्टतम् | ... | ... | ७०८ |

इति मसूरिकाधिकारः ।

अथ चुद्रोगाधिकारः ।

| | | | |
|---|-----|-----|-----|
| अजगल्लिकानिदानम् | ... | ... | ७०८ |
| तस्याश्चिकित्सा | ... | ... | " |
| विष्टतेन्द्रहृदादीनां निदानानि | ... | ... | ७१० |
| तासां चिकित्सा | ... | ... | " |
| अन्तालजीयवप्रस्थ्या कच्छपिकानां निदानम् | ... | ... | ७११ |
| तासां चिकित्सा | ... | ... | " |
| अनुशयोनिदानम् | ... | ... | ७१२ |
| तस्याश्चिकित्सा | ... | ... | " |
| विदारोका निदानम् | ... | ... | " |
| तस्याश्चिकित्सा | ... | ... | " |
| शर्करावुदनिदानम् | ... | ... | ७१३ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| जतुमणिमापतिस्तकालकानां निदानानि | ... | ... | ७१४ |
| तेषां चिकित्सा | ... | ... | " |
| सुखद्रूपिकान्यच्छब्दनीलिकानां निदानानि | ... | ... | " |

| विषयः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------|-----|-----|---------------|
| तासां चिकित्सा | ... | ... | ७१४ |
| मुखलेपः | ... | ... | ७१५ |
| हरिद्राद्यं तैलम् | ... | ... | ७१६ |
| मञ्चिष्टाद्यं तैलम् | ... | ... | ७१६ |
| कनकतैलम् | ... | ... | ६१७ |
| कुङ्कुमाद्य तैलम् | ... | ... | " |
| पद्मिकण्टकनिदानम् | ... | ... | ७१८ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| पाददारोनिदानम् | ... | ... | " |
| तस्याचिकित्सा | ... | ... | " |
| उपोदिकाद्यं तैलम् | ... | ... | ७१८ |
| उन्मत्ततैलम् | ... | ... | " |
| कदरनिदानम् | ... | ... | " |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| चिष्यनिदानम् | ... | ... | " |
| चिष्यचिकित्सा | ... | ... | " |
| कुनखनिदानम् | ... | ... | ७२० |
| कुनखचिकित्सा | ... | ... | " |
| अलसनिदानम् | ... | ... | ७२१ |
| अलसचिकित्सा | ... | ... | " |
| अरुपिकानिदानम् | ... | ... | " |
| अरुपिकाचिकित्सा | ... | ... | ७२२ |
| हरिद्राद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| घुङ्गाद्यं तैलम् | ... | ... | " |

विषयाः ।

| | | | |
|-------------------------------|-----|-----|-----|
| मांसीतैलम् | ... | ... | ७२३ |
| दारुणकनिदानम् | ... | ... | " |
| दारुणकचिकित्सा | ... | ... | " |
| गुञ्जातैलम् | ... | ... | ७२४ |
| कीचकाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| चित्रकाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| भृङ्गराजतैलम् | ... | ... | " |
| इन्द्रलुप्तखालित्ययोर्निदानम् | ... | ... | " |
| तयोश्चिकित्सा | ... | ... | " |
| स्रुद्धादिखालित्यहर तैलम् | ... | ... | ७२५ |
| यष्टीमधुकाद्यं तैलम् | ... | ... | ७२६ |
| पलितनिदानम् | ... | ... | " |
| पलितचिकित्सा | ... | ... | " |
| निम्बबीजतैलम् | ... | ... | ७२७ |
| केतक्यादितैलम् | ... | ... | " |
| नीलविन्दुतैलम् | ... | ... | " |
| काशश्मर्याद्यं तैलम् | ... | ... | ७२८ |
| केशरजनतैलम् | ... | ... | " |
| केतकाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| मयूरपित्ताद्यं तैलम् | ... | ... | ७२९ |
| मधुकतैलम् | ... | ... | " |
| प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| अग्निरोहिणीनिदानम् | ... | ... | " |
| तस्याश्चिकित्सा | ... | ... | " |

| विषयाः । | | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------|-----|---------------|
| बल्मीकनिदानम् | ... | ७३० |
| बल्मीकचिकित्सा | ... | " |
| मनःशिलाय तैलम् | ... | " |
| गुदभ्रशनिदानम् | ... | ७३१ |
| तस्य चिकित्सा | ... | " |
| मूषिकाद्य तैलम् | ... | " |
| द्वितीयमूषिकाद्य तैलम् | ... | ७३२ |
| तृतीयमूषिकाद्य तैलम् | ... | " |
| चतुर्थमूषिकाद्य तैलम् | ... | " |
| शूकरदंष्ट्रनिदानम् | ... | " |
| तस्य चिकित्सा | ... | " |
| मेध्याविक तैलम् | ... | ७३३ |
| परिवर्त्तिनिदानम् | ... | " |
| परिवर्त्तिचिकित्सा | ... | ७३४ |
| श्रवपाटिकानिदानम् | ... | " |
| श्रवपाटिकाचिकित्सा | ... | " |
| निरुद्धप्रकाशनिदानम् | ... | ७३५ |
| तस्य चिकित्सा | ... | " |
| सन्निरुद्धगुदनिदानम् | ... | " |
| सन्निरुद्धगुदचिकित्सा | ... | ७३६ |
| अद्विपूतननिदानम् | ... | " |
| अद्विपूतनचिकित्सा | ... | " |
| पटोलघृतम् | ... | " |
| हृषणकच्छुनिदानम् | ... | ७३७ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|-------------------|-----|-----|-----|
| वृषणकच्छुचिकित्सा | ... | ... | ७३७ |
| चर्मकीलनिदानम् | ... | ... | " |
| चर्मकीलचिकित्सा | ... | ... | " |

इति चुद्ररोगाधिकारः ।

अथ मुखरोगाधिकारः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| मुखरोगगणना | ... | ... | ७३८ |
| श्रोष्ठरोगनिदानम् | ... | ... | " |
| श्रोष्ठरोगचिकित्सा | ... | ... | ७३८ |
| सामान्यमुखरोगलक्षणम् | ... | ... | ७४० |
| दन्तवैष्टरोगनिदानम् | ... | ... | ७४१ |
| दन्तरोगनिदानम् | ... | ... | ७४२ |
| दन्तवैष्टरोगचिकित्सा | ... | ... | ७४३ |
| भद्रमुस्तादिऋटिका | ... | ... | ७४४ |
| चात्यादितैलम् | ... | ... | ७४५ |
| दन्तरोगचिकित्सा | ... | ... | ७४६ |
| विदार्यादितैलम् | ... | ... | ७४७ |
| बकुलाद्य तैलम् | ... | ... | " |
| महचराद्य तैलम् | ... | ... | " |
| छरिद्राद्य तैलम् | ... | ... | ७४८ |
| लाक्षाद्य तैलम् | ... | ... | " |
| हरिमेदाद्य तैलम् | ... | ... | " |
| स्यस्त्रदिऋटिका | ... | ... | ७४८ |
| महास्यदिऋटिका | ... | ... | " |

| विषयाः । | | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------|-----|---------------|
| जिह्वारोगनिदानम् | ... | ७५० |
| जिह्वारोगचिकित्सा | ... | " |
| तालुरोगनिदानम् | ... | ७५१ |
| तालुरोगचिकित्सा | ... | ७५२ |
| गलरोगनिदानम् | ... | ७५३ |
| गलरोगचिकित्सा | ... | ७५५ |
| सितादिघृतनस्थम् | ... | ७५६ |
| काल्यं चूर्णम् | ... | " |
| शीतकं नाम चूर्णम् | ... | " |
| यवचारादिगुटिका | ... | ७५७ |
| घारगुटिका | ... | " |
| सर्वमुखगतरोगाणां निदानम् | ... | " |
| तेषां चिकित्सा | ... | " |
| स्रैहिको धूमः | ... | ७५८ |
| सर्वमरोपक्रमः | ... | " |
| यष्टीतैलम् | ... | ७५९ |
| मुखरोगेष्वसाधारणरोगाः | ... | " |

इति मुखरोगाधिकारः ।

अथ कर्णरोगाधिकारः ।

| | | |
|-----------------|-----|-----|
| कर्णरोगनिदानम् | ... | ७६० |
| कर्णरोगचिकित्सा | ... | ७६२ |
| टीपिकातैलम् | ... | ७६३ |
| राधागुग्गुलुः | ... | ७६४ |

विषयाः ।

| | | | |
|---------------------|-----|-----|-----|
| श्लोनाकतैलम् | ... | ... | ७६४ |
| हिंम्वाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| देवदारवादितैलम् | ... | ... | " |
| पिप्पल्याद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| एरण्डादितैलम् | ... | ... | ७६५ |
| शूकरवसा | ... | ... | " |
| स्वर्जिकातैलम् | ... | ... | ७६६ |
| मयूरनानाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| बिल्वतैलम् | ... | ... | " |
| अपामार्गतैलम् | ... | ... | " |
| चारतैलम् | ... | ... | " |
| पञ्चकपायः | ... | ... | ७६७ |
| जम्ब्याद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| विषगर्भतैलम् | ... | ... | ७६८ |
| पञ्चवल्कलतैलम् | ... | ... | " |
| चतुष्पर्णतैलम् | ... | ... | ७६८ |
| चतुष्पल्लवतैलम् | ... | ... | " |
| कुष्ठाद्यं तैलम् | ... | ... | ७६९ |
| शम्बुकतैलम् | ... | ... | " |
| गन्धकाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| क्षमिकर्णचिकित्सा | ... | ... | ७६९ |
| योगचतुष्टयम् | ... | ... | " |
| कर्णकपालोचिकित्सा | ... | ... | ७७० |
| शतावरोतैलम् | ... | ... | " |

पृष्ठाङ्काः ।

विषयाः ।

सौवर्णीयतैलम्

...

...

७७०

इति कर्णरोगाधिकारः ।

अथ नासारोगाधिकारः ।

१

नासारोगनिदानम्

...

...

७७१

नासारोगचिकित्सा

...

...

७७२

कटुचिकादिचूर्णम्

...

...

"

कटुफलादिचूर्णम्

...

...

"

घ्नोपाद्यं चूर्णम्

...

...

७७४

व्याघ्रीतैलम्

...

...

"

विकटुकाद्यं तैलम्

...

...

"

विप्रतैलम्

...

...

७७५

राजरसायनम्

...

...

"

पिप्पलीतैलम्

...

...

७७६

शुण्ठीतैलं घृतञ्च

...

...

"

प्रतिश्यायनिदानम्

..

...

७७७

प्रतिश्यायचिकित्सा

...

...

७७८

धवाद्यं तैलम्

...

...

७८०

बलाद्ययाद्यं तैलम्

.

...

"

रमाश्रनाद्यं तैलम्

..

...

"

मुम्भकादितैलम्

...

...

"

शृङ्गभूतैलम्

...

...

७८१

शीघ्रतैलम्

..

...

"

कर्षोराद्यं तैलम्

.

...

"

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

व्योपाद्यं तैलम्

...

...

७८१

इति नामारोगाधिकारः ।

अथ नेत्ररोगाधिकारः ।

| | | | |
|------------------------------|-----|-----|-----|
| नेत्ररोगाणां संप्राप्तादयः | ... | ... | ७८२ |
| अभिष्यन्दचतुष्टयानां निदानम् | ... | ... | ” |
| वाताभिष्यन्दचिकित्सा | ... | ... | ७८३ |
| आद्यरोतनमात्राविधिः | ... | ... | ७८५ |
| तर्पणमात्रा | ... | ... | ७८७ |
| वृक्षादन्याद्यं तैलम् | ... | ... | ” |
| पित्ताभिष्यन्दचिकित्सा | ... | ... | ७८८ |
| रक्ताभिष्यन्दचिकित्सा | ... | ... | ७८९ |
| कफाभिष्यन्दचिकित्सा | ... | ... | ७९१ |
| विल्वान्नम् | ... | ... | ७९३ |
| मन्निपाताभिष्यन्दचिकित्सा | ... | ... | ” |
| पडङ्गगुग्गुलुः काथो घृतञ्च | ... | ... | ७९४ |
| वामकादिकाथः | ... | ... | ” |
| क्षण्णगतरोगाणां निदानम् | ... | ... | ७९५ |
| तेपाचिकित्सा | ... | ... | ७९६ |
| त्रिफलादिपुटपाकाञ्जनम् | ... | ... | ७९८ |
| लामञ्जकाद्यमञ्जनम् | ... | ... | ” |
| चन्दनादिवर्त्तिः | ... | ... | ७९९ |
| दन्तवर्त्तिः | ... | ... | ” |
| पेथमञ्जनम् | ... | ... | ” |

| | |
|--------------------|--------------|
| विषया । | पृष्ठाङ्का । |
| चूर्णाञ्जनम् | ८०० |
| पटोलाद्य घृतम् | |
| द्राक्षाद्य तैलम् | ८०१ |
| कृष्णाद्य तैलम् | , |
| बृहच्छगकाद्य घृतम् | , |
| दृष्टिगतरीगनिदानम् | |
| द्वादशदृष्टय | ८०४ |
| अमाध्यादृष्टय | ८०५ |
| वाततिमिरचिकित्सा | , |
| पित्ततिमिरचिकित्सा | ८०६ |
| कफतिमिरचिकित्सा | ८०७ |
| सप्तमृतागुटिका | ८०८ |
| भाम्बरवर्त्ति | ८०८ |
| अश्वमुदर्गकमञ्जनम् | ८१० |
| सुग्रावतीवर्त्ति | , |
| मुक्तादिमहञ्जनम् | |
| चन्द्रोदयावर्त्ति | ८११ |
| हरीतक्यादिवर्त्ति | , |
| विफलाद्यावर्त्ति | |
| शङ्खादिवटी | ७१२ |
| कुसुमिकावर्त्ति | , |
| चन्दनाद्यावर्त्ति | , |
| व्योपाद्यावर्त्ति | |
| नागार्जुनाञ्जनम् | ८१३ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------|---------------|
| शयचर्मगर्भागयो | ८१३ |
| शतावर्यादिचूर्णाञ्जनम् | " |
| नयनाञ्जनम् | ८१४ |
| शीसकशलाका | " |
| नेत्रनिर्माणप्रकारः | ८१६ |
| त्रिफलाद्य द्रुतम् | ८१७ |
| फलत्रिकाद्य द्रुतम् | " |
| मध्यमत्रिफलाद्य द्रुतम् | ८१८ |
| महात्रिफलाद्य द्रुतम् | ८१८ |
| द्वितीयं महात्रिफलाद्य द्रुतम् | " |
| भास्कराद्य द्रुतम् | ८२० |
| महापटोलाद्य द्रुतम् | ८२१ |
| रास्त्राद्य द्रुतम् | " |
| विभीतकाद्य तैलम् | " |
| त्रिफलाद्य तैलम् | " |
| गोमयतैलम् | " |
| भृङ्गराजतैलम् | " |
| द्वितीयं भृङ्गराजतैलम् | " |
| अजितं तैलम् | ८२२ |
| नीलोत्पलाद्य तैलम् | " |
| नृपवल्गुभ तैलम् | " |
| महापिप्पल्याद्य तैलम् | ८२३ |
| क्षुण्णं काचचिकित्सा | ८२४ |
| सरिचादिचूर्णाञ्जनम् | " |

| विषया । | | | पृष्ठाङ्का । |
|---------------------|-----|-----|--------------|
| नेपथ्यद्राव्यजनम् | ... | ... | ८२४ |
| नक्तान्ध्यचिकित्सा | ... | ... | ८२५ |
| दृष्टिरोगचिकित्सा | ... | ... | " |
| शुक्लगतरोगनिदानम् | ... | ... | ८२६ |
| शुक्लगतरोगचिकित्सा | ... | ... | ८२७ |
| सन्धिजाना निदानम् | ... | ... | ८२८ |
| सन्धिजाना चिकित्सा | ... | ... | ८२९ |
| वर्त्मजाना निदानम् | ... | ... | , |
| वर्त्मजाना चिकित्सा | ... | ... | ८३१ |
| पित्तलक्षणम् | ... | ... | ८३३ |
| पित्तचिकित्सा | ... | ... | , |
| उपपत्तलक्षणम् | ... | ... | ८३४ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | , |
| सद्यैत्यनेवलक्षणम् | ... | ... | ८३५ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | , |
| आज घृतम् | ... | ... | ८३६ |

इति नेत्ररोगाधिकारः ।

अथ शिरोरोगाधिकारः ।

| | | | |
|----------------------|-----|-----|-----|
| शिरोरोगनिदानम् | ... | ... | ८३६ |
| वातशिरोरोगचिकित्सा | ... | ... | ८३८ |
| मयूरघृतम् | ... | ... | ८३९ |
| महामयूरघृतम् | ... | ... | ८४० |
| पित्तशिरोरोगचिकित्सा | ... | ... | ८४१ |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------|-----|-----|---------------|
| रक्तशिरोरोगचिकित्सा | ... | ... | ८४१ |
| कफशिरोरोगचिकित्सा | ... | ... | " |
| हरिद्राद्यं तैलम् | ... | ... | ८४२ |
| सन्निपातशिरोरोगचिकित्सा | ... | ... | " |
| पङ्क्तिन्दुष्टतम् | ... | ... | ८४३ |
| पुनः पङ्क्तिन्दुष्टतम् | ... | ... | " |
| शताह्वातैलम् | ... | ... | ८४४ |
| जीवकाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| बलाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| क्षयजशिरोरोगचिकित्सा | ... | ... | " |
| क्रिमिजशिरोरोगचिकित्सा | ... | ... | " |
| विडङ्ग तैलम् | ... | ... | ८४५ |
| अपामार्गतैलम् | ... | ... | " |
| सूर्यावर्तचिकित्सा | ... | ... | ८४६ |
| अर्धवभेदकचिकित्सा | ... | ... | " |
| जीवकाद्यं तैलम् | ... | ... | " |

इति शिरोरोगाधिकारः ।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः ।

| | | | |
|----------------------------------|-----|-----|-----|
| नष्टकुसुमस्य प्रतिक्रिया | ... | ... | ८४८ |
| स्त्रीरोगाणां मध्ये प्रदरनिदानम् | ... | ... | ८४९ |
| वातासृग्दरचिकित्सा | ... | ... | ८५० |
| पित्तासृग्दरचिकित्सा | ... | ... | ८५१ |
| चन्दनादिकल्कम् | ... | ... | " |
| कफासृग्दरचिकित्सा | ... | ... | " |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|------------------------|-----|-----|-----|
| काष्मर्यादिघृतं त्रयम् | ... | ... | ८५३ |
| पुष्पाशुगं चूर्णम् | ... | ... | " |
| अशोवघृतम् | ... | ... | ८५४ |
| शीतकल्याणघृतम् | ... | ... | " |
| शतावरीघृतम् | ... | ... | ८५५ |
| सुदघृतम् | ... | ... | ८५६ |
| शास्त्रलीघृतम् | ... | ... | " |
| काष्मरीघृतम् | ... | ... | " |
| सोमरोगनिदानम् | ... | ... | ८५७ |
| सोमरोगचिकित्सा | ... | ... | ८५८ |
| भ्रूवातिमारम् | ... | ... | " |
| स्त्रीणां विद्वेषम् | ... | ... | " |
| योनिरोगनिदानानि | ... | ... | ८५९ |
| योनिरोगचिकित्सा | ... | ... | ८६० |
| गुडूच्यादिघृतम् | ... | ... | ८६१ |
| पुनर्गुडूच्यादिघृतम् | ... | ... | " |
| नताद्यं तैलम् | ... | ... | ८६२ |
| गर्भप्रदरयोगाः | ... | ... | " |
| सक्षणाद्यं तैलम् | ... | ... | ८६३ |
| फलघृतम् | ... | ... | " |
| गर्भोत्पादविधिः | ... | ... | ८६४ |
| सृष्टकल्याणघृतम् | ... | ... | ८६५ |
| सृष्टफलघृतम् | ... | ... | ८६६ |
| शतावरीघृतम् | ... | ... | ८६७ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|-----------------------------------|-----|-----|-----|
| सञ्जातगर्भलक्षणम् | ... | ... | ८६६ |
| गर्भस्त्रावपातयोरवधिपूर्वकलक्षणम् | ... | ... | ९ |
| स्त्रावपातयोश्चिकित्सा | ... | ... | ८६७ |
| अकालपाते निदानपूर्वकं दृष्टान्तम् | ... | ... | ९ |
| उचितकाले मूढगर्भलक्षणम् | ... | ... | ९ |
| असाध्यमूढगर्भगर्भिण्योर्लक्षणम् | ... | ... | ८६८ |
| मूढगर्भचिकित्सा | ... | ... | ९ |
| प्रतिमासं सवेदनागर्भिणीचिकित्सा | ... | ... | ८७० |
| गर्भिणीज्वरचिकित्सा | ... | ... | ८७१ |
| गर्भिणीप्रसवविलम्बे चिकित्सा | ... | ... | ८७२ |
| मद्यप्रसवकरायोगाः | .. | . | ८१३ |
| अयनमन्त्राः यन्त्रद्वय | ... | ... | ९ |
| अपराधातनविधिः | ... | ... | ८७४ |
| योनिशूलचिकित्सा | ... | ... | ८७५ |
| सकलशूलस्य लक्षणम् | ... | ... | ९ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | ८७६ |
| सूतिकारोगनिदानम् | ... | ... | ९ |
| सूतिकारोचिकित्सा | ... | ... | ८७७ |
| स्तनाभिमन्त्रणम् | ... | ... | ८७८ |
| योनिगाढकरणचिकित्सा | ... | ... | ९ |
| प्रतापलक्ष्मरोरसः | ... | ... | ८८० |
| यवादिरूपः | ... | ... | ९ |
| द्वितीयो यवादिरूपः | ... | ... | ९ |
| पिप्पल्यादिरूपः | ... | ... | ८८१ |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------|-----|-----|---------------|
| यथाद्य घृतम् | ... | ... | ८८१ |
| पिप्पल्यादि क्वाथः | ... | ... | " |
| पिप्पल्यादिघृतम् | ... | ... | " |
| भद्रोत्काटाद्यं घृतम् | ... | ... | ८८२ |
| पञ्चजीरकगुड' | ... | ... | " |
| स्तनरोगनिदानम् | ... | ... | ८८३ |
| स्तनरोगचिकित्सा | | | " |
| स्तन्यरोगाणां निदानानि | ... | ... | ८८४ |
| तेषां चिकित्सा | ... | ... | ८८५ |
| अन्यदपि लक्षणम् | ... | ... | " |
| स्तन्यवर्धनविधि' | ... | ... | ८८६ |
| बषकाञ्जितम् | ... | ... | " |
| पत्रकाञ्जितम् | | ... | " |
| स्तनदृढीकरणचिकित्सा | .. | | " |
| अलम्बुपाद्यं तैलम् | ... | ... | " |
| श्रीपर्णीतैलम् | ... | ... | ८८७ |
| लोमगातनप्रकारः | | | " |
| कासीभाद्य तैलम् | ... | ... | " |
| करवीराद्य तैलम् | ... | ... | " |
| कर्पूराद्य तैलम् | ... | ... | " |
| योनिक्न्दनिदानम् | .. | ... | " |
| योनिक्न्दचिकित्सा | ... | ... | ८८८ |

इति स्त्रीरोगाधिकारः ।

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

अथ बालरोगाधिकारः ।

| | | | |
|------------------------------|-----|-----|-----|
| बालस्य दुग्धरोगनिदानम् | ... | ... | ८८८ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | ८८९ |
| पलङ्कपादिधूपः | ... | ... | ८८२ |
| सर्पत्वगादिधूपः | ... | ... | " |
| बालवित्वादिः क्वाथोऽवलेहय | ... | ... | " |
| बालस्य विविधरोगाणां चिकित्सा | ... | ... | " |
| बालविसर्पनिदानम् | ... | ... | ८८६ |
| बालविसर्पचिकित्सा | ... | ... | ८८६ |
| कुक्कूकनिदानम् | ... | ... | ८८७ |
| कुक्कूकचिकित्सा | ... | ... | " |
| पारिगर्भिकनिदानम् | ... | ... | ८८८ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| तालुकण्टकनिदानम् | ... | ... | ८८८ |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| कथिद्रोगनिदानम् | ... | ... | ८९० |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | " |
| अन्यद्रोगविशेषाणां निदानम् | ... | ... | ८९१ |
| तेषां चिकित्सा | ... | ... | " |
| उपशोर्षकनिदानम् | ... | ... | " |
| तस्य चिकित्सा | ... | ... | ८९२ |
| अज्ञातदन्तानां निदानम् | ... | ... | " |
| तेषां चिकित्सा | ... | ... | " |

| वपयाः । | | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------|-----|---------------|
| अकालदन्तोत्पातलक्षणम् | ... | ८०३ |
| तेषामुत्पातानां प्रायश्चित्तम् | ... | " |
| सुप्तबालस्य दन्तगर्भनिदानम् | ... | ८०४ |
| तस्य चिकित्सा | ... | " |
| अश्वगन्धाद्यं घृतम् | ... | " |
| राक्षाद्यं घृतम् | ... | ८०५ |
| गौर्याद्यं घृतम् | ... | " |
| लाक्षाद्यं घृतम् | ... | " |
| चाङ्गेरीघृतम् | ... | " |
| पाठाद्यं घृतम् | ... | ८०६ |
| मोमघृतम् | ... | ८०७ |
| अटमन्नघृतम् | ... | " |
| कुमारकन्याणकं घृतम् | ... | ८०८ |
| अदिराद्यं घृतम् | ... | ८०९ |
| मिहार्थकाद्यं घृतम् | ... | " |
| द्विषदमूलाद्यं घृतम् | ... | " |
| बचाद्यं घृतम् | ... | " |
| श्यामाद्यं घृतम् | ... | " |
| नागराद्यं घृतम् | ... | " |
| शौरद्वयाद्यं घृतम् | ... | ८१० |
| विभोतकाद्यं तैलम् | ... | " |
| माक्षाद्यं तैलम् | ... | " |
| सामान्यबालघर्षनिदानम् | ... | " |
| सामान्यबालघर्षचिकित्सा | ... | ८११ |

| विषयः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|
| स्कन्दग्रहजुष्टनिदानम् | ८११ |
| स्कन्दग्रहचिकित्सा | " |
| स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टनिदानम् | ८१२ |
| तस्य चिकित्सा | " |
| सुरदादिगणम् | " |
| शकुनिग्रहनिदानम् | ८१३ |
| तस्य चिकित्सा | " |
| रेवतीग्रहनिदानम् | ८१४ |
| तस्य चिकित्सा | " |
| पूतनाग्रहनिदानम् | ८१५ |
| पूतनाग्रहचिकित्सा | " |
| अन्यपूतनाग्रहनिदानम् | ८१६ |
| तस्य चिकित्सा | " |
| शीतपूतनानिदानम् | ८१७ |
| तस्याश्चिकित्सा | ८१८ |
| सुखमण्डिकानिदानम् | " |
| तस्याश्चिकित्सा | ८१८ |
| नैगमेपग्रहनिदानम् | " |
| तस्य चिकित्सा | " |
| अन्यनिदानम् | ८२० |
| तस्य चिकित्सा | " |

इति बालरोगाधिकारः ।

अथ विषाधिकारः ।

| | |
|--------------------|-----|
| महानसिकस्य लक्षणम् | ८२२ |
|--------------------|-----|

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------------|---------------|
| विपलक्षणम् | ८२२ |
| विषदातुलक्षणम् | ८२३ |
| विषयुक्तान्नपरीक्षाक्रमम् | " |
| तस्य चिकित्सा | " |
| आमाशयगतविपलक्षणम् | ८२४ |
| मूलादिविषस्य निदानम् | " |
| विपविलिप्तग्रस्तस्य लक्षणम् | ८२५ |
| जङ्गमविपलक्षणम् | " |
| सामान्यचिकित्सा | ८२६ |
| सर्पदंष्ट्रस्यासाध्यलक्षणम् | " |
| दूषीविषस्य लक्षणम् | " |
| गरविषम् | ८२७ |
| लूताविपनिदानम् | ८२८ |
| आखूविपलक्षणम् | " |
| लकलासदृशलक्षणम् | ८२८ |
| हथिकादिदंष्ट्रानां लक्षणम् | ८२९ |
| अवरितविपलक्षणम् | ८३० |
| स्थावरविपचिकित्सा | " |
| विपजन्तूनां वातायुर्व्यानुबन्धत्वम् | ८३१ |
| तेषां चिकित्सा | " |
| जङ्गमाविपचिकित्सा | ८३२ |
| तार्क्ष्यागदः | " |
| महागदः | ८३४ |
| दर्गादोऽभ्यङ्गो घूपय | " |

| विषयाः । | | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------|-----|---------------|
| चन्द्रोदयोऽगदः | ... | ८३५ |
| सूर्योदयोऽगदः | ... | ८३६ |
| अमृतघृतम् | ... | " |
| नागदन्त्याद्यं घृतम् | ... | " |
| तण्डुलीयं घृतम् | ... | " |
| अजेयघृतम् | ... | " |
| मृत्युपाशापहं घृतम् | ... | ८३७ |
| दूषोविषचिकित्सा | ... | " |
| हृपाद्यं घृतम् | ... | ८३८ |
| लूताविषचिकित्सा | ... | " |
| आसुविषचिकित्सा | ... | ८३९ |
| अलर्कविषम् | ... | ८४० |
| हृदिकदष्टस्य चिकित्सा | ... | " |
| नखदन्तजविषस्य चिकित्सा | ... | ८४१ |
| जलौकाविषम् | ... | ८४२ |
| कोटविषम् | ... | " |
| मक्षिकाविषम् | ... | ८४३ |
| मत्स्यविषम् | ... | ८४४ |
| विषगुष्टस्यासाध्यलक्षणानि | ... | " |

इति विषरोगाधिकारः ।

अथ जलदोषाद्विषाधिकारः ।

| | | |
|---------------------------|-----|-----|
| जलदोषप्रतिक्रिया | ... | ८४५ |
| शुक्रस्तम्भकरणप्रतिक्रिया | ... | ८४६ |

इति जलदोषाद्विषाधिकारः ।

विषया.।

पृष्ठाङ्काः ।

अथ रसायनाधिकारः ।

| | | |
|-----------------------|-----|-----|
| शुक्ताम् | | ८४६ |
| मधुशुक्ताम् | ... | ८४७ |
| गुडतक्रम् | ... | " |
| पालिवर्धनचतु स्नेह | " | " |
| वृहच्चिखगुटिका | " | ८४८ |
| गुग्गुलुरसायनम् | " | ८४८ |
| गन्धककल्पम् | ... | ८५० |
| गन्धकद्रुति | " | ८५१ |
| गन्धकयोग | " | " |
| गन्धकरसपर्पटी | " | ८५१ |
| ताम्ररसायनम् | " | ८५२ |
| पुनस्ताम्ररसायनम् | " | ८५३ |
| पञ्चामृतनाभरस | " | ८५५ |
| ताम्रकम् | " | ८५६ |
| द्वितीय ताम्रकम् | " | ८५७ |
| ताम्रामृताख्य रसायनम् | " | " |
| पर्पटाख्य रसायनम् | " | " |
| अभ्रककल्प | " | ८५८ |
| महाबलविधानाभ्रकम् | " | ८६० |
| अभ्रकम् | " | " |
| उमाभापितमभ्रकम् | " | ८६३ |
| तृतीयमभ्रकम् | " | " |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|-------------------------------|-----|-----|-----|
| पानीयभक्तवटी | ... | ... | ८६४ |
| द्वितीयपानीयभक्तवटी | ... | ... | " |
| तृतीयपानीयभक्तवटी | ... | ... | " |
| चतुर्थपानीयभक्तवटी | ... | ... | ८६५ |
| पञ्चमपानीयभक्तवटी | ... | ... | " |
| षष्ठीपानीयभक्तवटी | ... | ... | " |
| लोह्ररसायनम् | ... | ... | ८६७ |
| सूर्यमयूखेन लोहमारणम् | ... | ... | ८६८ |
| सूर्यमयूखेनाभ्रकमारणम् | ... | ... | " |
| सप्तमीपानीयवटी | ... | ... | " |
| सर्वतोभद्रलोहः | ... | ... | ८६८ |
| वातश्लेष्मप्रकृतौ रसायनम् | ... | ... | ८७१ |
| कफपित्तप्रकृतौ रसायनम् | ... | ... | ८७२ |
| आमवातव्याधौ रसायनम् | ... | ... | ८७२ |
| श्लेष्मादिव्याधौ रसायनम् | ... | ... | ८७३ |
| वातरक्तादिव्याधौ रसायनम् | ... | ... | " |
| प्लीहोदरव्याधौ रसायनम् | ... | ... | " |
| राजयक्ष्मादिव्याधौ रसायनम् | ... | ... | ८७४ |
| वातग्रहण्यां रसायनम् | ... | ... | " |
| पित्तग्रहण्यां रसायनम् | ... | ... | " |
| श्लेष्मग्रहण्यां रसायनम् | ... | ... | ८७५ |
| वातपित्तग्रहण्यां रसायनम् | ... | ... | " |
| वातश्लेष्मग्रहण्यां रसायनम् | ... | ... | ८७६ |
| पित्तश्लेष्मग्रहण्यां रसायनम् | ... | ... | " |

| वपयाः । | | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------|-------|---------------|
| लोहाम्बकम् | ... | ८७६ |
| खपेराख्यं रसायनम् | ... | ८७७ |
| शिरोवस्ति | ... | ८७८ |
| मर्मनिर्देशः | ... | " |
| वातजादिरोगसंख्या | ... | ८८१ |
| पित्तजरीरोगगणना | ... | ८८२ |
| श्लेष्मजरीरोगगणना | ... | " |
| रसायनलक्षणम् | ... | ८८३ |
| विविधरसायनयोगाः | ... | " |
| मधुहरीतकी | ... | ८८८ |
| लोहगुग्गुलुः | ... | " |
| नरसिंहचूर्णम् | ... | " |
| अश्वगन्धाद्यं चूर्णम् | ... | " |
| स्रवदारुकल्पः | | ८८८ |
| ज्योतिष्मतीतैलपानविधिः | ... | ८८० |
| लोहरसायन्तम् | ... | ८८१ |
| दासरसायनं लोहम् | ... | " |
| साध्यसाधनविधिः | ... | ८८२ |
| श्यालीपाकभेयजानि | ... | ८८४ |
| नागार्जुनोलेह | ... | " |
| सारस्वतं घृतम् | ८ ... | " |
| गुडूष्पादिघृतम् | • ... | ८८५ |
| घृतपक्वलयघृतम् | ... | " |
| द्वितीयसारस्वतं घृतम् | • ... | " |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

अष्टाङ्गमङ्गलं दृतम्

...

...

८८५

इति रसायनाधिकारः ।

अथ बाजीकरणाधिकारः ।

शुक्रदोषाः

...

...

८८६

तेषां चिकित्सा

...

...

”

बाजीकरणयोगाः

...

...

८८७

पूपालिका

...

...

८८८

रसाना

...

...

”

वृहदश्वगन्धाद्यं दृतम्

...

...

”

अश्वगन्धाद्यं दृतम्

...

...

८८९

सप्तप्रकारकैव्यस्य लक्षणानि

...

...

१०००

तेषां चिकित्सा

...

...

”

शतावरीदृतम्

...

...

१००३

माषवलम्

...

...

”

गोधूमाद्यं दृतम्

...

...

”

जीवन्तीयमकम्

...

...

१००४

गुडकूष्माण्डकम्

...

...

१००५

इति बाजीकरणाधिकारः ।

अथ स्नेहपानाधिकारः ।

तत्र प्रथमरोगानुत्पादनक्रमम्

...

...

१००६

स्नेहपानविधिः

...

...

१००७

इति स्नेहपानाधिकारः ।

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

अथ स्वेदाधिकारः ।

| | | | |
|--------------------|-----|-----|------|
| स्वेदविधिः | ... | ... | १०११ |
| इति स्वेदाधिकारः । | | | |

अथ वमनाधिकारः ।

| | | | |
|------------------|-----|-----|------|
| वमनविधिः | ... | ... | १०१२ |
| इति वमनाधिकारः । | | | |

अथ विरेचनाधिकारः ।

| | | | |
|--------------------------|-----|-----|------|
| विरेचनविधिः | ... | ... | १०१६ |
| विरेचनमात्रा | ... | ... | १०१७ |
| एतावत्येकदिनमात्रा | ... | ... | १०१८ |
| अभयाद्यो मोदकः | ... | ... | १०१८ |
| माण्डभद्रमोदकः | ... | ... | १०२० |
| गुड़ाद्यं मोदकः | ... | ... | " |
| मिथ्यायोगातियोगयोधिकृतिः | ... | ... | १०२० |

इति रेचनाधिकारः ।

अथ वस्तिकर्माधिकारः ।

| | | | |
|---------------------------|-----|-----|------|
| वस्तेस्त्रयोभिदाः | ... | ... | १०२२ |
| तेषां नामानि लक्षणानि च | ... | ... | १०२३ |
| वस्तेर्लक्षणम् | ... | ... | " |
| वस्त्यर्थद्रव्यस्य मात्रा | ... | ... | " |
| वस्तिनेत्रप्रमाणम् | ... | ... | " |
| अनुवासनवस्तिदानविधिः | ... | ... | १०२४ |
| गुडूचोतैलम् | ... | ... | १०३० |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------|-----|-----|---------------|
| निरूहवस्तिदानविधिः | ... | ... | १०३० |
| द्वादशप्रसूताः | ... | ... | १०३४ |
| पिच्छिलवस्तयः | ... | ... | ” |
| उत्क्लेशनवस्तिः | ... | ... | १०३५ |
| दोषहरवस्तिः | ... | ... | ” |
| शोधनवस्तिः | ... | ... | ” |
| लेखनवस्तिः | ... | ... | ” |
| हं हणवस्तिः | ... | ... | १०३६ |
| विडङ्गादिनिरूहः | ... | ... | ” |
| मधुतैलिकनिरूहवस्तयः | ... | ... | ” |
| थापनवस्तिः | ... | ... | १०३७ |
| सिद्धवस्तिः | ... | ... | १०३८ |
| क्षारवस्तिः | ... | ... | ” |
| मूत्रवस्तिः | ... | ... | ” |
| वैतरणवस्तिः | ... | ... | ” |
| आहंमात्रिकनिरूहः | ... | ... | १०३८ |
| एरण्डादयो निरूहः | ... | ... | ” |
| उत्तरवस्तिदानविधिः | ... | ... | १०४१ |

इति वस्तिकर्माधिकारः ।

अथ धूमपानाधिकारः ।

| | | | |
|----------------------------|-----|-----|------|
| धूमाः पञ्चप्रकाराः | ... | ... | १०४४ |
| तेषां पानविधिः | ... | ... | १०४४ |
| एतेषां धूमपानं हितं न भवति | ... | ... | १०४५ |
| धूमपानादेते रोगा नश्यन्ति | ... | ... | १०४६ |

इति धूमपानाधिकारः ।

| विषयाः । | | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------------|-----|---------------|
| शिरोऽभ्यङ्गगुणाः | ... | १०५४ |
| केशप्रसाधनगुणाः | ... | ” |
| अभ्यङ्गदिहिताचाराणि | ... | १०५५ |
| शरीरे रसादिसप्तधातूनां परिमाणम् | ... | १०५६ |
| व्यजनादीनां गुणाः | ... | ” |

इत्यनागतामयप्रतिषेधाधिकारः ।

अथ द्रव्यगुणाधिकारः ।

| | | |
|-----------------------------|-----|------|
| मधुरादिपट्टसानां गुणाः | ... | १०५८ |
| अश्वगन्धादिद्रव्याणां गुणाः | ... | १०५८ |
| द्रव्याणां प्रतिनिधिः | ... | १०६३ |
| द्रव्यग्रहणे संकेतः | ... | १०६५ |

इति द्रव्यगुणाधिकारः ।

अथ गणपाटाधिकारमाह ।

| | | |
|-----------------|-----|------|
| स्थिरादिगणः | ... | १०६६ |
| आरम्बधादिगणः | ... | ” |
| सुरमादिगणः | ... | ” |
| कुटकादिगणः | ... | १०६७ |
| पिप्पल्यादिगणः | ... | ” |
| एलादिगणः | ... | ” |
| वचाहरिद्रादिगणौ | ... | ” |
| भूर्वादिगणः | ... | ” |
| सालसारादिगणः | ... | ” |
| वारुण्यादिगणः | ... | ” |
| वीरहृत्वादिगणः | ... | ” |

| विषयाः । | | | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------|-----|-----|---------------|
| रोध्नादिगणः | ... | ... | १०६६ |
| अर्कादिगणः | ... | ... | " |
| श्यामादिगणः | ... | ... | " |
| वृहत्यादिगणः | ... | ... | " |
| षटोत्तादिगणः | ... | ... | " |
| काकोल्यादिगणः | ... | ... | " |
| ऊपकादिगणः | ... | ... | " |
| सारिवादिगणः | ... | ... | " |
| अञ्जनादिगणः | ... | ... | १०६८ |
| पुरुषकादिगणः | ... | ... | " |
| प्रियंव्वस्वष्टकादीगणौ | ... | ... | " |
| न्यग्रोधादिगणः | ... | ... | " |
| गुडूच्यादिगणः | ... | ... | " |
| उत्पलादिगणः | ... | ... | " |
| मुस्तादिगणः | ... | ... | १०७० |
| त्रिफलायागुंदाः | ... | ... | " |
| आमलक्यादिगणः | ... | ... | " |
| वपुताम्नादिगणः | ... | ... | " |
| लाक्षादिगणः | ... | ... | " |
| वृहत्पञ्चमूलम् | ... | ... | " |
| लघुपञ्चमूलम् | ... | ... | " |

इति द्रव्यगणाधिकारः ।

अथ संगोधनसंशमनरसद्रव्यादिनां वर्गाधिकारः ।

| | | | |
|----------------|-----|-----|------|
| ऊर्ध्वभागहराणि | ... | ... | १०७१ |
|----------------|-----|-----|------|

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | | |
|--------------------|-----|-----|------|
| अधोभागहराणि | ... | ... | १०७१ |
| शिरोविरेचनानि | ... | ... | १०७२ |
| वातसंशमनोवर्गः | ... | ... | " |
| पित्तसंशमनोवर्गः | ... | ... | " |
| श्लेष्मसंशमनोवर्गः | ... | ... | " |
| मधुरोवर्गः | ... | ... | " |
| अम्लोवर्गः | ... | ... | १०७३ |
| लवणोवर्गः | ... | ... | " |
| कटुकोवर्गः | ... | ... | " |
| तिक्तकोवर्गः | ... | ... | " |
| कपायोवर्गः | ... | ... | " |
| दीपनीयोवर्गः | ... | ... | " |

इति संशोधनसंशमनरसद्रव्यादीनां वर्गाधिकारः ।

अथर्तुचर्यामाह ।

| | | | |
|----------------------------|-----|-----|------|
| वर्षर्तौ सदाचाराः | ... | ... | १०७४ |
| शरद्वर्तौ सदाचाराः | ... | ... | १०७ |
| हेमन्ते सदाचाराः | ... | ... | " |
| गिशिरे सदाचाराः | ... | ... | १०७६ |
| वसन्ते सदाचाराः | ... | ... | " |
| शीर्मे सदाचाराः | ... | ... | १०७७ |
| ऋतुसन्धिः | ... | ... | १०५८ |
| यमदंष्ट्रा | ... | ... | " |
| वर्षाद्यृतुषु जलयानप्रकारः | ... | ... | " |

इत्यृतुचर्याधिकारः ।

| विषयाः । | | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------------|-----|---------------|
| भोजनादौ लवणार्द्रकभक्षणम् ... | ... | १०८८ |
| विल्वकाञ्जिकगुणाः ... | ... | ” |
| सुम्नादियूपगुणाः ... | ... | ” |
| अङ्गारपक्ववार्त्ताकगुणाः ... | ... | ” |
| छतपूरादीनां गुणाः ... | ... | १०८० |
| शक्तीनां गुणाः ... | ... | ” |
| वार्त्ताकादीनां साधनम् ... | ... | १०८१ |
| पटोलफलादिभिः मांससाधनप्रकाराणि ... | ... | १०८२ |
| इति व्यञ्जनमांसव्यञ्जनयोगुणाधिकारः । | | |

अथ मत्स्यव्यञ्जनगुणाधिकारः ।

| | | |
|---|-----|------|
| मत्स्यानां गुणाः ... | ... | १०८३ |
| दग्धमत्स्यगुणाः ... | ... | १०८४ |
| मूलकादिभिः साधितानां मत्स्यानां गुणाः ... | ... | ” |
| इति समत्स्यव्यञ्जनगुणाधिकारः । | | |

अथ द्रवद्रव्याधिकारः ।

| | | |
|----------------------|-----|------|
| तत्रादौ तोयवर्गः ... | ... | १०८६ |
| घोरवर्गः ... | ... | १०८८ |
| दधिवर्गः ... | ... | १०८८ |
| तक्रवर्गः ... | ... | ११०० |
| नवनीतवर्गः ... | ... | ११०१ |
| तैलवर्गः ... | ... | ” |
| मधुवर्गः ... | ... | ११०२ |
| इक्षुवर्गः ... | ... | ” |
| मद्यवर्गः ... | ... | ११०३ |

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

अथ धान्यवर्गाधिकारमाह ।

| | | | |
|---------------------|-----|-----|------|
| शालीनां गुणाः | ... | ... | १०७८ |
| श्यामाकादीनां गुणाः | ... | ... | १०७९ |
| माषादीनां गुणाः | ... | ... | १०८० |
| यवगुणाः | ... | ... | " |
| गोधूमगुणा | ... | ... | " |

इति धान्यवर्गाधिकारः ।

अथ मांसवर्गाधिकारः ।

| | | | |
|------------------------------|-----|-----|------|
| लावादीनां मांसस्य गुणाः | ... | ... | १०८१ |
| गुहाशयादीनां मांसगुणाः | ... | ... | १०८२ |
| आनूपमांसगुणाः | ... | ... | " |
| हृगलादीनां मांसगुणाः | ... | ... | " |
| मत्स्यादिजलाशयानां मांसगुणाः | ... | ... | " |

इति मांसवर्गाधिकारः ।

अथ फलवर्गमाह ।

| | | | |
|-----------------------------|-----|-----|------|
| पाठादिशाकानां गुणाः | ... | ... | १०८३ |
| मूलकादिकन्दानां गुणाः | ... | ... | १०८४ |
| न्यग्रोधादिपत्राणां गुणाः | ... | ... | " |
| कारवेष्टकादिफलानां गुणाः | ... | ... | " |
| कर्कश्यादिमिष्टफलानां गुणाः | ... | ... | १०८५ |

इति फलवर्गाधिकारः ।

अथ व्यञ्जनमांसव्यंजनयोरधिकारमाह ।

| | | | |
|---------------|-----|-----|------|
| पोदनस्य गुणाः | ... | ... | १०८६ |
|---------------|-----|-----|------|

विषयाः ।

पृष्ठाङ्काः ।

| | | |
|------------------------------------|-----|------|
| भोजनादौ लवणार्दकभक्षणम् ... | ... | १०८८ |
| विल्वकाञ्जिकगुणाः ... | ... | ” |
| सुहादियूपगुणाः ... | ... | ” |
| अङ्गारपक्ववार्त्तिकगुणाः ... | ... | ” |
| घृतपूरादीनां गुणाः ... | ... | १०८० |
| शक्त्तूनां गुणाः ... | ... | ” |
| वार्त्तिकादीनां साधनम् ... | ... | १०८१ |
| पटोलफलादिभिः मांससाधनप्रकाराणि ... | ... | १०८२ |

इति व्यञ्जनमांसव्यञ्जनयोगुणाधिकारः ।

अथ मत्स्यव्यञ्जनगुणाधिकारः ।

| | | |
|---|-----|------|
| मत्स्यानां गुणाः ... | ... | १०८३ |
| दग्धमत्स्यगुणाः ... | ... | १०८४ |
| मूलकादिभिः साधितानां मत्स्यानां गुणाः ... | ... | ” |

इति समत्स्यव्यञ्जनगुणाधिकारः ।

अथ द्रवद्रव्याधिकारः ।

| | | |
|----------------------|-----|------|
| तत्रादौ तोयवर्गः ... | ... | १०८६ |
| चीरवर्गः ... | ... | १०८८ |
| दधिवर्गः ... | ... | १०८८ |
| तक्रवर्गः ... | ... | ११०० |
| नवनीतवर्गः ... | ... | ११०१ |
| तैलवर्गः ... | ... | ” |
| मधुवर्गः ... | ... | ११०२ |
| इक्षुवर्गः ... | ... | ” |
| मद्यवर्गः ... | ... | ११०३ |

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः ॥

वङ्गसेन ।

ध्यात्वा गिरीशमपचाय वचः प्रपञ्चं
हृद्वानुपास्य भिषजस्तदुद्धृतोद्य ।
श्रीवङ्गसेन भिषजा खलु वेद्य हृद-
सिद्धप्रयोगनिपहो बहु लिख्यतेऽस्मिन् ॥ १ ॥
नत्वा शिष्यं प्रथमतः प्रणिपत्य चण्डीं
वाग्देयतां तदनुतातपदं गुरुं च ।
संगृह्यते किमपि यत्सुजनैः सुदत्त
चेतो विधातुमुचितस्तदनुग्रहेण ॥ २ ॥
हेतुर्जनः परगुणेषु भवाद्देवानां
होप किमपि सहजो गुणतापहारी ।
याश्चापि दैन्यफलैर्भूरिफला तदानीं
तादृग्विधस्य मिथुनस्य विमोचनाय ॥ ३ ॥

कान्तिकावासनिर्जात योगदाधरसूनुना ।
क्रियते वङ्गसेनेन चिकित्सामारमग्रहः ॥ ४ ॥
हृदि तिष्ठति यम्यैष चिकित्सा तत्प्रमंघ्रः ।
मनिदानचिकित्सायां न दग्ध्वात्पमो भिषक् ॥ ५ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्तारं येयमो जीयितव्यं च ॥ ६ ॥
तेषां प्रगमनोपायमतिदुर्लभं रंजितम् ।
ब्रूमहे नातिविस्तीर्णं मनिदानचिकित्साम् ॥ ७ ॥

अथ निदानपंचकमाह ।

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
सम्प्राप्तिरिति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥ ८ ॥
येनाहारविहारेण रोगाणामुद्भवो भवेत् ।
क्षयो वृद्धिर्दोषाणां निदानं हि तदुच्यते ॥ ९ ॥
निमित्तहेत्वा यतनप्रत्ययोल्लानकारणैः ।
निदानमाहुः पर्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ १० ॥
उत्पित्तसुरामयो दोष विशेषेणानधिष्ठितः ।
लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्ग्राहीनां तद्यथा यथम् ।
संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ११ ॥
हेतुव्याधिविपर्यस्त विपर्यस्तार्थकारिणाम् ।
श्लोषधान्न विहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ १२ ॥
विद्यादुपशयं व्याधेः सहिसात्म्यमिति स्मृतम् ।
विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्यमिति स्मृतः ॥ १३ ॥
यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निवृत्तिरामयम्यासौ सम्प्राप्तिर्यार्तिरागतिः ॥ १४ ॥
संख्याद्विकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।
मा भिद्यते यथा त्वैव वक्ष्यन्तेष्टो ज्वरा इति ॥ १५ ॥
दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽंशांशकल्पना ।
स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १६ ॥
हेत्वादिकात्स्न्यायवैबलावलविशेषणम् ।
नक्तं दिनर्तु भुक्तांगैर्व्याधिकालो यथा बलम् ॥ १७ ॥
इति प्रोक्तो निदानार्थमृद्दशमेनोपदिश्यते ।
सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितामलाः ॥
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितमेवम् ॥ १८ ॥

निदानार्थकरीरोगी रोगस्याप्युपजायते ।
 तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥
 रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ॥ १८ ॥
 प्रीहाभिवृद्धराजठरं जठराच्छोफ एव च ।
 अर्शोभ्योजाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥ २० ॥
 प्रतिश्यायाद्भवेत्कासः कासात्क्षन्नायते क्षयः ।
 क्षयरोगस्य हेतुत्वे शोषश्चाप्युपजायते ॥ २१ ॥
 ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्देत्वर्थकारिणः ।
 उभयार्थेकरादृष्टास्तथैव कार्यकारिणः ॥ २२ ॥
 कश्चिद्विरोगी रोगस्य हेतुर्भूत्वा निवर्तते ।
 न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च ॥ २३ ॥
 एवं कृच्छ्र तमो नृणां दृश्यते व्याधिसंकरः ।
 तस्माद्यत्नेन सदैवैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ।
 ज्ञातव्यो वक्ष्यते योयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २४ ॥
 रोगमादौ परीक्षेत ततो नन्तरमौषधम् ।
 तत्तत्कर्मभिपक्पथार्ज्ज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ २५ ॥
 यस्तुरोगमविज्ञाय कर्मण्याभरते भिषेक् ।
 अथौषधविधानज्ञः स्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥ २६ ॥
 अथौषधविधानज्ञः सर्वभैषज्य को विदः ।
 देशकालप्रमाणज्ञः स्तस्य सिद्धिर्नसंशयः ॥ २७ ॥
 भैषज्याहारचेष्टानां यो न वेति गुणागुणम् ।
 न सवेति भिषक्सम्यक्तस्य स्वास्थ्युहिताहितम् ॥ २८ ॥
 आदावन्ते रुजां ज्ञाते प्रयतेतचिकित्सिकः ।
 साध्यासाध्यविभागज्ञः स्ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ २९ ॥
 यस्तुरोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्य को विदः ।

देशकालप्रमाणज्ञ स्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ३० ॥
 दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधिज्ञानं त्रिधा मतम् ।
 आदौ दृशस्ततः स्पर्शाच्छीतादिप्रग्रतो परम् ॥ ३१ ॥
 कच्छोपायः सुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते ।
 अमाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यथाप्रतिक्रियः ॥ ३२ ॥
 याप्याः केचित् प्रकृत्यैव साध्यायाप्या उपेक्षिताः ।
 स्वभावाद्वाधयो साध्याः केचिद्याप्या उपेक्षिताः ॥ ३३ ॥
 साध्यायाप्यत्व मायान्ति याप्याद्यासाध्यतां तथा ।
 घ्नन्तिप्राणानमाध्यास्तु नराणां निष्क्रियावताम् ॥ ३४ ॥
 जातमात्रयिकित्सस्तु नोपेक्ष्योत्पतया गदः ।
 वङ्गिगत्रुविपैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्पसौ ॥ ३५ ॥
 सच कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।
 म्यानान्तरगतथापि विकारान् कुरुते बह्वन् ॥ ३६ ॥
 निवृत्तेऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पे नायाति हेतुना ।
 क्षीणे मार्गे कृते दोषैः शेषः सूक्ष्म इवा नलः ॥ ३७ ॥
 कर्मजाव्याधयः केचिद्दोषजाः मक्षि चापरे ।
 कर्मदोषोद्भवाद्यान्ये कर्मजास्तु स्वहेतुकाः ॥ ३८ ॥
 यथा गाम्नन्तु निर्णीतो यथा व्याधिचिकित्सितः ।
 न ग्रसं याति यो व्याधिः सज्जेयः कर्मजो बुधैः ॥ ३९ ॥
 स्वल्पदोषो गरीयान्यः सज्जेयः कर्मदोषजः ।
 कर्मक्षयात्कर्मकृतो दोषजः स स्वमोपधैः ।
 कर्मदोषोद्भवं याति कर्मदोषक्षयात् क्षयम् ॥ ४० ॥
 तस्मिन्निरोधो विनादोषैर्द्वैतकातक्षाधिकित्सिकः ।
 अनुक्तमपि दोषाणां निवृत्त्यधिमुपाचरेत् ॥ ४१ ॥
 धिकाराणामनुगतो न जिह्वियात्कदाचन ।

न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थितिः ॥ ४२ ॥

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा ।

तथोपधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा ॥ ४३ ॥

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः ।

सांचिकित्साविकाराणां कर्मतद्विपजां मतम् ॥ ४४ ॥

नचैकान्ते न निर्दिष्टे शास्त्रेऽपि निवर्गेदुषः ।

स्वयमप्यत्रभिपजा ज्ञेयं बुद्धिमता भवेत् ॥ ४५ ॥

उत्पद्यते हि सावस्था देशकालबलं प्रति ।

यस्यां कार्यमकार्यं स्यात्कर्मकार्यञ्च वर्जितम् ॥ ४६ ॥

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।

एतद्द्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ४७ ॥

वर्षा नभो नभस्यौ तु तत्रवायुः प्रकुप्यतिः ।

पित्तं प्रायेण रक्तञ्च शरदाश्विनकार्तिके ॥ ४८ ॥

हेमन्तो मार्गपौषौ तु वातलो रूचं एव तु ।

तद्वच्च शिशिरो माघः फाल्गुनश्च प्रकीर्तितः ॥ ४९ ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ तस्मिन्नेषाप्रवर्तते ।

ज्येष्ठापादौ च विख्यातौ निदाघः पित्तवानपि ॥ ५० ॥

—०—

अथ जलप्रकारम् ।

यथर्तुक्रमनिर्दिष्टं जलं क्वाथञ्च वक्ष्यते ।

वर्षासूदकमादाय पचे तत्तप्तभागिकम् ।

अष्टभागावशिष्टन्तु निर्दोषमुदकं पिवेत् ॥ ५१ ॥

धारापातेन विष्टम्भि दुर्जरं पवनाहतम् ।

शृतशीतं त्रिदोषघ्नं वायान्तर्भावितं भुवि ॥ ५२ ॥

प्राहट् नभो नभस्यौ च ईषोर्जौ तु शरन्मतौ ।

मार्गपीपौ तु हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥ ५३ ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ निदाघः शुचिः शुक्लभाक् ।

प्राहट्काले शृतं तोयं दद्याच्चाष्टगुणं जलम् ।

अष्टभागावशिष्टन्तु निर्दोषमुदकं पिवेत् ॥ ५४ ॥

शरदिपद्गुणं तोयं दत्वा कथितमाचरेत् ।

पष्टभागावशिष्टन्तु पिवेद्दोषहरं जलम् ॥ ५५ ॥

हेमन्ते च शृतं तोयं दत्वा पञ्चगुणं जलम् ।

पञ्चभागावशिष्टन्तु निर्दोषमुदकं पिवेत् ॥ ५६ ॥

शिशिरे च शृतं तोयं दत्वा चतुर्गुणं जलम् ।

चतुर्भागावशिष्टन्तु निर्दोषमुदकं पिवेत् ॥ ५७ ॥

वसन्ते त्रिगुणं तोयं दत्वा कथितमाचरेत् ।

तृतीयभागशिष्टन्तु पिवेद्दोषहरं जलम् ॥ ५८ ॥

ग्रीष्मे च द्विगुणं तोयं दत्वा वापि भिषग्वरः ।

अर्धोदकावशिष्टन्तु पिवेद्दोषहरं जलम् ॥ ५९ ॥

कोषः शरद्वसन्ते पुनर्वसुर्कालेषु शान्तिः ॥

कफपित्तानिलाः पूर्वमध्यान्तेषु व्यवस्थिताः ।

वयो ह्येरात्रिभुक्तानां सन्धिवपि कफानिली ॥ ६० ॥

वायीः प्रत्युपसायाङ्गे जीर्णान्ते च विसर्पणम्

पित्त्याहो निगयाहो जीर्णमाने च लक्षयेत् ॥ ६१ ॥

भुक्तमात्रप्रदोषे तु पूर्वाङ्गे श्लेष्मणो भवेत् ।

एकद्विविधभागेन दुष्टान्दोषान् विगोधयेत् ॥ ६२ ॥

शीते शीतप्रतीकारमुष्णे चैवोष्णवारणम् ।

क्षत्वा कुर्यात्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न ह्यपयेत् ॥ ६३ ॥

अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न कृताक्रिया ।

क्रियाहीनातिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति ॥ ६४ ॥

यात्पुदीर्णं शमयति नान्यव्याधिं करोति च ।

साक्रिया नतु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ ६५ ॥

इतिपङ्क्तुशृतजलपानाध्यायः ।

—०—

अथ प्रकृतिलक्षणम् ।

शुक्रासृग्गर्भिणी भोज्य चेष्टा गर्भाशयान्तरे ।

यः स्यादोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः समधोदिता ॥ ६६ ॥

लघो रूचोऽल्पकेशश्च चलचितो न च स्थितः ।

बहुवाग्वोमगः स्वप्ने वातप्रकृतिको नरः ॥ ६७ ॥

अकालपलितो गौरः प्रस्वेदीकोपनो बुधः ।

स्वप्नेऽपि दीप्तिवत् प्रेक्षी पित्तप्रकृतिको नरः ॥ ६८ ॥

स्थिरचित्तः सुवदाङ्गः सुव्रतः स्निग्धमूर्ध्वजः ।

स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ ६९ ॥

ममित्रैर्लक्ष्णैर्ज्ञेयाद्विदोपातुगा नरः ।

दोषघेद्वसताद्भावे व्याधिकप्रकृतिः स्मृतः ॥ ७० ॥

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचिदाहुः

पवनदहनतौयैः कीर्त्तिनास्तास्तुतिभिः ।

स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान्

शुचिरथचिरजीवी नाभयः स्वैर्महद्भिः ॥ ७१ ॥

विषजातो यथा कीटो न विषेण विषयते ।

तद्वत् प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥ ७२ ॥

वायुः सामो विवन्धाग्निसादस्तम्भनकूजनैः ।

वेदना शोफनिस्तोद्रेः क्रमशोऽङ्गानि पीडयेत् ॥ ७३ ॥
 विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो मृगम् ।
 स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायाति मेघः सूर्योदये निशि ॥ ७४ ॥
 निरामो विगदो रुचो निर्विदम्बोऽल्पवेदनः ।
 विपरोतगुणेः शान्तिं स्निग्धैर्याति विशेषतः ॥ ७५ ॥
 दुर्गन्धं हरितं श्वावं पित्तमन्तरसं गुरु ।
 अम्बिका कण्ठद्वहाह्वकं सामं विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥
 आताम्रं पित्तमत्पुष्पं रसे कटुकमस्त्रिरम् ।
 यज्ञं विगन्धिविज्ञेयं रुचि वज्जिवलप्रदम् ॥ ७७ ॥
 फेनिलस्तंतुलः श्वावः कण्ठदेशेव तिष्ठति ।
 सामो वलागो दुर्गन्धः क्षुद्रुद्गारविघातकृत् ॥ ७८ ॥
 फेनवान् पिण्डिनः पाण्डुर्निभारो गन्ध एव च ।
 पक्वः स एव विज्ञेयः स्वेदवान् वक्त्रशुद्धिकृत् ॥ ७९ ॥

—०—

अथ देशप्रकृतिमाह ।

बृहदकनगोऽनूपः कफमारुतरोगवान् ।
 जाङ्गलोऽल्पाम्बुशाखी च रक्तपित्तगदोत्तरः ॥ ८० ॥
 मग्निष्टलक्षणी पेतो देशः साधारणो मतः ।
 समाः साधारणे यस्माद्वर्षाशीतोष्णमारुताः ।
 ममता तेन दीपाणां तस्मात्साधारणो वरः ॥ ८१ ॥
 स्वदेशे निचिता दीपाम्बुन्यग्निन् कोपमागताः ।
 वनवन्तस्तथा न म्युः जलेजावाम्यलाहताः ॥ ८२ ॥
 उचितं वर्तमानम्येनास्ति देशकृतं भयम् ।
 आहारस्यप्रचेष्टादौ तद्देशस्य गुणे सति ॥ ८३ ॥

मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराग्यातास्तथैव च ।

यथा दुष्परिष्टष्टाय मोहयेयुश्चिकित्सकान् ॥ ८४ ॥

इति देशप्रकृतिः ।

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भैषज्यं परिचारकः ।

एतं पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥ ८५ ॥

इति चिकित्सालक्षणम् ।

तत्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयं कृती ।

लघुहस्तः शुचिः शूरः सर्वोपस्करभैषजः ॥ ८६ ॥

प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् व्यवसायी प्रियंवदः ।

सत्यधर्म्मरतो यश्च स भिषक् पादमश्रुते ॥ ८७ ॥

इति वैद्यलक्षणम् ।

आयुष्मान् सत्यवान् साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि ।

उच्यते व्याधितः पादो वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ८८ ॥

इति रोगीलक्षणम् ।

—०—

अथौषधि लक्षणम् ।

प्रशस्तदेशसम्भूतं प्रशस्तेह निचोदृतम् ।

अल्पमात्रं महावीर्यं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ८९ ॥

दोषघ्नमग्लानिकरमविकारि विपर्यये ।

समीक्ष्यकाले दत्तं च भैषज्यं पाद उच्यते ॥ ९० ॥

स्निग्धोऽञ्जुगुप्सुर्बलवान्युक्तो व्याधितरक्षणे ।

वैद्यवाक्यकृदऽन्यान्तः पादः परिचरो मतः ॥ ९१ ॥

गुणवद्विस्त्रिभिः पादैश्चतुर्थी गुणवान् भिषक् ।

व्याधिमर्त्येन कालेन महान्तमपि साधयेत् ॥ ९२ ॥

चतुष्पलास्तु कुङ्कुमः सशरावाह उच्यते ।

मानिकाष्टौ पलान्येव धरणं दशभिः पलैः ॥ ४ ॥

द्वाभ्यां पलाभ्यां प्रसृतं तच्च षोडशकं विदुः ।

खारीच षोडशद्रोणा दशभिर्धरणैस्तुला ॥ ५ ॥

चत्वारः कुङ्कुमाः प्रस्थः स शरावद्वयं मतम् ।

पलानि चैव विद्वद्भिः षोडशैव प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥

प्रस्थाश्चत्वार एव स्युराढकोऽष्टशरावकः ।

कंसः स एव विज्ञेयः स तु पात्रं च पण्डितैः ॥ ७ ॥

अपि मानविदो ह्येषः चतुःषष्टिपलो मतः ।

चत्वारश्चाढको द्रोणः सो द्वात्रिंशच्छरावकः ॥ ८ ॥

सूर्पाङ्गिनस्त्वणं चैव कलशो घट एव च ।

अयं च पलसंख्यातः षट्पञ्चाशच्छतद्वयम् ॥ ९ ॥

द्रोणद्वयं च सूर्यः स्यात् स कुम्भ इति चोच्यते ।

चतुःषष्टिशरावोऽसौ व्यवहारार्थमुच्यते ॥ १० ॥

स द्वादशपलानीह शतानां पञ्च चोच्यते ।

गोणी द्रोणाश्च चत्वारः स शरावद्वयं मतम् ।

अष्टाविंशतिसंयुक्तं सर्वथा सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ ११ ॥

पलानां तु सहस्रेकं चतुर्विंशतिकं स्मृतम् ।

प्रस्थादिमानमारभ्य द्रव्यादेर्द्विगुणान्वितम् ।

कुङ्कुमोऽपि क्वचिद्वृत्ते यथादन्ते घृते स्मृते ॥ १२ ॥

वैणवाच्चायसादीनां भाण्डं तु चतुरङ्गलम् ।

विस्तीर्णमथवृत्तं च कुङ्कुमं तं विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

—०—

त्यक्तरोगिणमाह ।

खण्डः साहसिको भीतः कृतघ्नो ह्यग्र एव च ।

यो वैद्य नृपति द्वैष्टा तद्द्वेष्टा शोकपीडितः ॥ १४ ॥

यादिच्छको सुमुपैथ विहीनः करणैथ यः ।

वैरो वैद्यविदग्धश्च यद्वाहीनः सुशङ्कितः ॥ १५ ॥

भिषजामविधेयश्च नोपक्रम्या भिषग्विधाः ।

एतानुपाचरन् वैद्यो बहून् दीपानवाप्नुयात् ॥ १६ ॥

एभ्योऽन्ये समुपक्रम्या नराः सर्वैरुपक्रमैः ।

नैव कुर्वीतलोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम् ।

ईश्वराणां वसुमतां लिप्से तार्थन्तु वृतये ॥ १७ ॥

चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः ।

स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भियगश्रुते ॥ १८ ॥

क्वचिन्नैत्रो क्वचिदर्थः क्वचिदमी क्वचिदशः ।

कर्मभाष्यासः क्वचिच्चैव चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ १९ ॥

कुचैलः कर्कशः स्तब्धः ग्रामिणः स्वयमागतः ।

शस्यते यश्च वैद्यो न धन्वन्तरिसमो यदि ॥ २० ॥

स वैद्यस्तेन येऽसाध्यानारभन्ते चिकित्सितुम् ।

अवैद्यजीविकासिद्धिः स्याद्बुणाच्चरवत् क्वचित् ॥ २१ ॥

मापान्नं विड्ग्रहे जेहे यवमद्यं मदात्यये ।

अबुद्धिपूर्वमप्याशुसेवितं भेषजं भवेत् ॥ २२ ॥

आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्वन्ति स्वहिताय ये ।

पुण्यायुर्बुद्धिसंयुक्ता निरोगास्तु भवन्ति ते ॥ २३ ॥

आयुर्हिताहितं व्याधि निदानं शमनं तथा ।

विद्यते यत्र विद्वद्भिः स चायुर्वेद उच्यते ॥ २४ ॥

—०—

अथ रोगगणना ।

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी चार्शोऽजीर्णं विष्टचिका ।

अलसः सविलम्बी च कृमिरूक् पाण्डुकामलाः ॥ २५ ॥
हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्म उरः क्षतम् ।
कासो हिक्का तथा श्वासः स्वरभेदस्वरोचकः ॥ २६ ॥
छर्दीस्तृष्णा च मूर्च्छा च रोगाः पानात्ययादयः ।
दाहाख्यस्वपरोन्माद अपश्मारोऽनिलामयः ॥ २७ ॥
वातरक्तमुरुस्तम्भ आमवातोऽथ शूलरूक् ।
पङ्क्तिजं शूलमानाह उदावर्त्तोऽथ गुल्मरूक् ॥ २८ ॥
हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं तथाऽश्मरी ।
प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकाश्च प्रमेहजाः ॥ २९ ॥
मेदो दोषोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगण्डकः ।
गण्डमाला ततो ग्रन्थिर्वुदं श्लोपदं ततः ॥ ३० ॥
विद्रधिब्रणशोफौ च द्वौ ब्रणौ भग्ननाडिकौ ।
भगन्दरोपदंशौ च शूकदोषस्त्वगामयः ॥ ३१ ॥
शीतपित्तमुदरदंश्च कोठयैवाम्नापैत्तिकः ।
विसर्पश्च स विस्फोटः स रोमन्ती मसूरिका ॥ ३२ ॥
क्षुद्रास्यकर्णनासादृच्छिरः स्त्रीवालकामयाः ।
विष चेत्ययमेवात्र ज्ञेय उद्देशसंग्रहः ॥ ३३ ॥

—०—

अथ ज्वराधिकारः ।

ज्वरः समस्तरोगाणां यतो राजेति विश्रुतः ।
अतः प्रथमतस्तस्य प्रवक्षामि चिकित्सितम् ॥ ३४ ॥
दद्यापमानसंक्षुब्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ।
ज्वरोऽष्टधा पृथग् इन्द्रः सङ्घातागन्तुजः स्मृतः ॥ ३५ ॥

दुष्टाहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।

बहिर्निरस्य कोट्याग्निं ज्वरदाः स्युरसानुगाः ॥ ३६ ॥

श्रमो रतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।

इच्छा द्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ३७ ॥

जृम्भाङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।

अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्पुत्पत्स्यति ज्वरे ॥ ३८ ॥

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्पर्यं समीरणात् ।

पितान्नयनयोर्दीहः कफादन्नारुचिस्तथा ॥ ३९ ॥

सर्वलिङ्गसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे ।

रूपैरन्यतराभ्यां च संगृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः ॥ ४० ॥

ज्वरस्य पूर्वरूपेषु वर्तमानेषु बुद्धिमान् ।

पाययेत्सर्पिरेवात्तं ततः स लभते सुखम् ॥ ४१ ॥

विधिर्मार्क्तजेष्वेव पैत्तिकेषु विरेचनम् ।

मृदुप्रच्छेदनं तद्वत् कफजेषु विधीयते ॥ ४२ ॥

सर्वं त्रिदोषजेषूक्तं यथा दोषं विकल्पयेत् ।

पूर्वं ज्वरोपक्रमः ।

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा ।

युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ ४३ ॥

दोषैः सवेगैर्वहुधा समुद्भ्रान्तैर्विभार्गैः ।

विक्षिप्यमानोऽन्तरग्निर्भवत्याशु बहिश्चरः ॥ ४४ ॥

रुणद्धि चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः ।

भवत्यत्युष्णगान्धश्च स्त्रियति न च सर्वशः ॥ ४५ ॥

परिपेकान् प्रदेह्यांश्च स्नेहान् संशोधनानि च ।

दिवास्वप्नं व्यवायञ्च व्यायामं शिशिरं जलम् ।

क्रोधप्रवातभोज्यांश्च वर्जयेत्तरुणज्वरो ॥ ४६ ॥

गोथः कृदिर्मदो मूर्च्छा दृष्टा भ्रममरोचकः ।
 प्राप्नोत्युपद्रवानेतान् परिपेकादिसेवनात् ॥ ४७ ॥
 ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा भोजयेत्तृणभोजनम् ।
 श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोऽस्मा वलवाननलस्तदा ।
 वेगा पायेऽन्यथा तद्धि च ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥
 ज्वरितो हितमग्नीयाद्यद्यस्याऽरुचिर्भवेत् ।
 अत्र काले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽथवा ॥ ४९ ॥
 गुर्वभियन्यकाले च ज्वरीनाद्यात् कथञ्चनः ।
 न तु तस्या हितं भुक्तमायुषे वा सुखाय च ॥ ५० ॥
 आनहः स्तिमितैर्दोषैर्यवन्तं कालमातुरः ।
 तावत्कालन्तु लघ्वन्नमग्नीया तु विरक्तवत् ॥ ५१ ॥
 सातत्यात् स्वाहभावाच्च पथ्यं हेयत्वमागतम् ।
 कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः ॥ ५२ ॥
 अरुचौ मातुलुङ्गस्य केसरं साज्यसैन्धवम् ।
 धात्री द्राक्षा सितानां वा कल्कमास्येन धारयेत् ॥ ५३ ॥

इति तरुणज्वरविधिः ।

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते ।
 न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥ ५४ ॥
 शालयो रक्तशाल्याद्याः शस्यन्ते पट्टिकादयः ।
 यवाग्बोदनलाजार्यं ज्वरितानां ज्वरापहाः ॥ ५५ ॥
 सुदाम्भसूरांश्चणकान् कुलित्यान् समकुट्टकान् ।
 यूपार्यं यूपसात्मरानां ज्वरितानां प्रकल्पयेत् ॥ ५६ ॥
 पटोलपत्रं सफलं कुलकं कारवेल्लकम् ।
 कंकोटकं कटिस्त्रं च विद्याच्छाकं ज्वरे हितम् ॥ ५७ ॥
 लावान् कपिञ्जलानेणांश्चकोरानुपचक्रकान् ।

स कुरङ्गान् कालपुच्छान् हरिणान् पृषताच्छयान् ॥
 प्रदद्यान्मांससात्मगानां ज्वरितानां ज्वरापहान् ॥ ५८ ॥
 न कपायं प्रशंसन्ति नराणां तरुणज्वरे ।

कपायेनाकुलीभूता दीपा जेतुं सुदुस्तराः ॥ ५९ ॥
 दीपाः बद्धा कपायेन स्तम्भितास्तरुणज्वरे ।

स्तम्भन्ते न विपद्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् ॥ ६० ॥
 न च्यवन्ते न पथ्यन्ते कपायैस्तम्भितामलाः ।

तियैग्विभागान् स्थित्वा घोरं कुर्युर्नवज्वरम् ॥ ६१ ॥

इति पथ्यविधिः

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन् ।

विदधाति ज्वरं घोरं तस्माल्लङ्घनमादिशेत् ॥ ६२ ॥

लङ्घनेन चयं नीते दीपे संधुचितेऽनले ।

विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवास्थोपजायते ॥ ६३ ॥

शरीरलाघवकारं यदुद्रव्यं कर्म वा पुनः ।

तल्लङ्घनमिति ज्ञेयं ब्रह्मणं तु पृथग्विधम् ॥ ६४ ॥

बलाविरोधेनाऽथैनं लङ्घने नोपपादयेत् ।

बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थो हि क्रियाक्रमः ॥ ६५ ॥

तद्धि मारुत क्षुत्तृष्णा मुखशोषभ्रमान्विते ।

कार्यं न बाले वृद्धे वा हार्भिण्यां नच दुर्बले ।

न तथाध्वं श्रमक्रोध काम शोक भवेज्वरे ॥ ६६ ॥

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सामे विशेषतः ।

वमनं वमनार्हस्य पथ्यमित्याह वाग्भटः ॥ ६७ ॥

वातमूत्रपुरोपाणां विसर्गे गात्रलाघवे ।

हृदयोत्तारकण्ठास्य शुद्धौ तन्द्रा क्लमे गते ॥ ६८ ॥
 स्वेदे जाते रुचौ चैव क्षुत्पिपासा सहोदये ।

कृतं लङ्घनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ ६९ ॥

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो सुखस्य च ।

क्षुब्धपाशो रुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ ७० ॥

मनसः संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्वातः क्लमो हृदि ।

देहाग्निबलहानिश्च लङ्घनेति कृते भवेत् ॥ ७१ ॥

इति सुलङ्घितादि लङ्घनम् ।

दृढतः सलिलं चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे ।

तद्धि मार्दवं कृद्दोषस्रोतसां शीतमन्यथा ॥ ७२ ॥

पित्तमद्यविषोत्थेषु तिक्तकैः शृतशीतलम् ।

मुस्ता पर्यटकोशीर चन्दनोदीच्यनागरैः ।

शृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ ७३ ॥

इति पङ्कजपानीयम् ।

पादशेषः कषायः स्नात् प्रसाध्यः पीडयेद्भ्रमसि ।

कथितोऽन्तः पङ्कजादिर्न निषिद्धो नवज्वरे ॥ ७४ ॥

लङ्घिताय हिता पेया यथा स्वं पाचनैः कृता ।

दीपनी पाचनी लघ्नी ज्वरार्त्तानां ज्वरापहा ॥ ७५ ॥

लघुना पञ्चमूलेन पिप्पल्या सह धान्यया ।

महत्या पञ्चमूल्याथ व्याघ्री दुस्सर्गोक्षुरैः ॥ ७६ ॥

संसिद्धं भिषगाहारं प्रयुञ्जीत यथा क्रमम् ।

वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफवाते त्रिदोषजे ॥ ७७ ॥

वाते वा स कफे पित्ते सामे वा तरुणज्वरे ।

आद्यमण्डं प्रशंसन्ति पटोलमगधान्वितम् ॥ ७८ ॥

पेयां वा रक्तशालीनां वस्तिपार्श्वशिरो रुजि ।

श्वदंष्ट्रा कण्ठकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ ७९ ॥

विविधं वचाः सयवां पिप्पल्यामलकैः शृताम् ।

सर्पिष्मन्तीं पिबेत्पेयां ज्वरदोषानुलोमिनीम् ॥ ८० ॥

कासे ग्वासे च हिक्कायां पञ्चमूलो शृतां पिबेत् ॥ ८१ ॥

बला हृत्ताम्लकोलासकलशी धावनी शृता ।

अस्वेदनिद्राढ्यणार्त्तः पिबेत्पेयां सशर्कराम् ॥ ८२ ॥

क्लिन्नां यवागूं मन्दाग्नि पिपासात्तार्त्तत्र पाययेत् ।

मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफोत्थिते ।

ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूर्न हिता ज्वरे ॥ ८३ ॥

तत्र तर्पणमेवाग्रे देयं स्यात्ताजसक्तुभिः ।

ज्वरतापहैः फलरमैर्युक्तं समधुशर्करैः ॥ ८४ ॥

स्याद्वितः साधितो यूपस्त्वष्टादशगुणे जले ।

शृतं पञ्चगुणे भक्तं विलेपे च चतुर्गुणे ॥ ८५ ॥

क्वाथ्यद्रव्याञ्जलिं क्षुप्तं अपयित्वा जलाढके ।

अर्धशृतेन तेनाय यवाग्वायेव कल्पयेत् ॥ ८६ ॥

हृद्वैद्याः पले द्रव्यं ग्राहयन्त्याढके जले ।

भेषजस्यातिबाहुल्यात् कदाचिदरुचिर्भवेत् ॥ ८७ ॥

तदाप्सु शृतशीतासु पडङ्गादि प्रयुज्यते ।

कर्पमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रस्थिकेऽश्वसि ।

अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं पानपेयादिसंविधौ ॥ ८८ ॥

कर्पाईं पिप्पली शुण्ठोः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् ।

विनोय पाचयेद्युक्त्या वारिप्रस्थेन चापरान् ॥ ८९ ॥

यूषांश्च रसकांश्चैव कल्केनानेन साधयेत् ।

विल्वप्रमाणो घृततैलभृष्टो यूषो रसो वाप्युपकल्पनीयः ॥

कपायपानपथ्यान्नेर्दादशाहेति लङ्घिते ।

सर्पीर्दद्यात् कफे क्षीणे वातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥ ९० ॥

पक्तेषु दोषेष्वमृत तद्विषेऽपममन्यथा ।

दशाहात्परतो दाने ज्वरोपद्रववृद्धिकृत् ॥ ८१ ॥

बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सप्तरात्रात्परं ज्वरे ।

लङ्घनाम्बु यवागूभिर्यदादोषो न पच्यते ॥ ८२ ॥

तदा तं सुखवैरस्य लक्षणा रोचकनाशनैः ।

ज्वरघ्नैः पाचनैर्हृद्यैः कषायैः समुपाचरेत् ॥ ८३ ॥

लालाप्रसेकहृत्लासहृदयाशुडारोचकाः ।

निद्रालस्या विपाकास्य वैरस्यं गुरुगात्रता ॥ ८४ ॥

क्षुब्धशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवां ज्वरः ।

आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ८५ ॥

भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो वर्धयति ज्वरं मे ।

शोधनं शमनीयं वा करोति विषमज्वरम् ॥ ८६ ॥

यापयेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः ।

सुसुप्तं कृष्णसर्पं वा कराग्रेण परानृशेत् ॥ ८७ ॥

ज्वरवेगोऽधिकात्तृष्णा प्रलापश्चसनभ्रमाः ।

मलप्रवृत्तिरुक्ते शः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ८८ ॥

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् ।

दोषप्रकृतिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ ८९ ॥

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च ।

पक्वं दोषं विजानीयाञ्ज्वरे देयं तदोषधम् ॥ १०० ॥

दोषप्रकृतिवैकृत्या देतेषां पक्वलक्षणम् ।

पक्वोऽप्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन्महात्ययम् ।

विषमं वा ज्वरं कुर्याद्वलव्यापदमेव वा ॥ १ ॥

वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः ।

श्लैष्मिको द्वादशाह्येन ज्वरः पाकं नियच्छति ॥ २ ॥

पैत्तिके वा ज्वरे देयमल्पकालममुत्थिते ।

अचिरज्वरितस्यापि भेषजं दीपपाकतः ॥ ३ ॥
 पापयेदातुरं सामं पाचनं सप्तमेऽहनि ।
 शमने नाथवा दृष्ट्वा निरामं समुपाचरेत् ॥ ४ ॥
 पीत्ताम्बुर्लङ्घितः क्षीणोऽजीर्णो भुक्तः पिपासितः ।
 न पिवेद्दीपधं जन्तुः संशोधनमयेतरत् ॥ ५ ॥
 वैपथ्यविषमो वेगः कण्ठौष्ठपरिशोषणम् ।
 निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ६ ॥
 शिरो हृद्गात्ररुग्बद्धवैरस्यं गाढविट्कता ।
 शूलाधाने जृम्भणश्च भवत्यनिलजे ज्वरे ॥ ७ ॥
 नागरं देवकाष्टञ्च धान्यकं बृहतीद्वयम् ।
 दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम् ॥ ८ ॥
 हिमवद्विन्ध्यशैलाभ्यां प्रायोव्याप्ता वसुन्धरा ।
 सौम्या सौम्यं हिमं हैममाग्नेयं वैन्ध्यमौषधम् ॥ ९ ॥
 सर्वज्वरेषु ।

द्रव्याण्यभिनवाण्येव प्रशस्तानि क्रियाविधौ ।
 ऋते गुडहृतक्षौद्रधान्यं कृष्णाविडङ्गतः ॥ १० ॥
 यत्र येन प्रधानेन द्रव्यं समनुगृह्यते ।
 तत्संज्ञकः समं योगो भवतीति विनिश्चयः ॥ ११ ॥
 मात्रोत्तमापलेन स्यात् त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमाः ।
 जघन्यास्यात्पलार्धेन स्नेहकाथौषधेषु च ॥ १२ ॥
 काथद्रव्यपले वारिद्विरष्टगुणमिष्यते ।
 चतुर्भागावशिष्टन्तु पेयं पलचतुष्टयम् ॥ १३ ॥
 दीप्तानलं महाकायं यापयेदक्षलिं जलम् ।
 अन्ये त्वर्धं परित्यज्य प्रसृतिं तु चिकित्सकाः ॥ १४ ॥
 काथत्यागमनिच्छन्तस्त्वष्ट्रभागावशेषितम् ।

पारम्पर्योपदेशेन बृहद्वैद्याः पलद्वयम् ॥ १५ ॥
 ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्का निलादयः ।
 ऋधयः सौपधि ग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तुवः ॥ १६ ॥
 रसायणमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ।
 सुधैवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमश्रुते ॥ १७ ॥

—०—

अथ औषधकालः ।

तत्रोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदनेक्षणः ।
 औषधान् हिमरजतसृङ्गाजन्परिस्थितान् ॥ १८ ॥
 पिबेत्प्रसन्नहृदयः पित्वा पात्रमधोमुखम् ।
 निःक्षिप्याचम्यसलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ १९ ॥
 वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहो न
 हन्यात्तथामयमसंशयमाशु चैव ।
 तद्बालवृद्धयुवती मृदुभिश्च पीतं
 ग्लानिं परां समुपयाति बलक्षयञ्च ॥ २० ॥
 अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता ।
 लघुत्वमिन्द्रियोद्धारशुद्धिः जीर्णौषधाकृतिः ॥ २१ ॥
 औषधशेषे भुक्तं पीतञ्च तथौषधं स शेषान्ने ।
 न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ २२ ॥
 शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या-
 दन्नाहतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ।
 प्राग्भुक्तसेवितमधौषधमेतदेव
 दद्याच्च बृहद्वैद्यश्रीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ २३ ॥
 विल्वादेः पञ्चमूलस्य काथः स्याद्वातिकज्वरे ।

पाचनं पिप्पलीमूल गुडुची विश्वजोऽथवा ॥ २४ ॥

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि ।

समी करोति विपमांस्तत्तंशमनमुच्यते ॥ २५ ॥

किराताब्दानृतोदीच्य बृहतीद्वय गोक्षुरैः ।

स स्थिरा कलशी विश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ २६ ॥

पञ्चमूलीवला रास्त्रा कुलित्यैः सह पौष्करैः ।

पर्वभेदं शिरःकम्पं निहन्ति पवनज्वरम् ॥ २७ ॥

पिप्पली शारि वा द्राक्षा बला चांशुमती तथा ।

एषोऽपि परमः सिद्धो वातज्वरविनाशनः ॥ २८ ॥

द्राक्षा गुडुची काश्मर्यं त्रायमाणा स शारिवा ।

निष्कृाथ्य स गुडं क्वाथं पिबेद्वातकृते ज्वरे ॥ २९ ॥

दर्भं बलां गोक्षुरकं पिबेत्पादावशेषितम् ।

शर्कराघृतसंयुक्तं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ ३० ॥

शर्करा दाडिमाभ्याञ्च द्राक्षा दाडिमयोस्तथा ।

वैरस्ये धारयेत् कल्कं गण्डूपञ्च तथा हितम् ॥ ३१ ॥

आमं पचेदनिलजे हितो नित्यं रसोदनः ।

सुद्रामल्लकयूपस्तु गाढविट्के विधीयते ॥ ३२ ॥

इति वातज्वरः ।

तीक्ष्णोष्णदाहहृत् मूर्च्छा मदास्य कटुता भ्रमाः ।

प्रलापो घ्राणकण्ठीष्ठमुखपाकोचिमान्शुता ॥ ३३ ॥

शीताभिंलापिता पीतमलनेत्रनख त्वचः ।

पित्तोद्गारातिमारौ च प्लैत्तिकज्वरलक्षणम् ॥ ३४ ॥

दाहवम्यर्दितं क्षामं निरन्नं तृणयान्वितम् ।

शर्करा मधुसंयुक्तं पाययेत्ताजतर्क्यणम् ॥ ३५ ॥

कलिङ्गं कट्फलं भुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ।

पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ३६ ॥
 शर्करामधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् ।
 चन्दनोशीरश्रीपर्णी परुषकमधूकजः ॥ ३७ ॥
 गुडुचीपद्मरोध्राणां शारिवोत्पलयोस्तथा ।
 शर्करा मधुरो क्वाथः शीतः पित्तज्वरापहः ॥ ३८ ॥
 दुरालभा पर्पटकः पियङ्गु भूनिम्ब वासा कटुरोहिणीनाम् ।
 क्षलं पिबेच्छर्करयावगाढं दृष्ट्वा स्रपित ज्वरदाहयुक्तः ॥ ३९ ॥
 द्राक्षाभया पर्पटकाब्दतित्ता क्वाथं स सम्याकफलं विदध्यात् ।
 प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहमोहदृष्ट्यान्विते पित्तभवे ज्वरे तु ॥ ४० ॥
 पटोलयवधान्याकमधूकं मधुसंयुतम् ।
 हन्ति पित्तज्वरं दाहं दृष्ट्वा चैव प्रमाथिनीम् ॥ ४१ ॥
 पटोलयवनिःक्वाथो मधुना मधुरो कृतः ।
 तीव्रपित्तज्वरोन्मदीं पानदृष्ट्वाहनाशनः ॥ ४२ ॥
 गुडुचामलकैर्युक्तः केवलो वापि पर्पटः ।
 पित्तज्वरं हरित्पूर्णं दाहशोषभ्रमान्वितम् ॥ ४३ ॥
 रोध्रोत्पलान्मृतापद्म शारिवाणां सशर्करः ।
 क्वाथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवेः ॥ ४४ ॥
 पर्पटान्मृतादृष्ट्वा क्वाथः पित्तज्वरं जयेत् ।
 द्राक्षारन्ध्रयोश्चापि काश्मर्या अथवा पुनः ॥ ४५ ॥
 एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।
 किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोशीरनागरैः ॥ ४६ ॥
 विश्वपर्पटकोशीर घनचन्दनसाधितम् ।
 दद्यात्सुशीतलं वारि दृष्ट्वादिज्वरदाहनुत् ॥ ४७ ॥
 गुडुची सुस्तधान्याकं मधूकं कटुरोहिणी ।
 दृष्ट्वा शूलारुचिद्विं पित्तज्वरहरो गणः ॥ ४८ ॥

पाचनं पिप्पलीमूल गुडुची विश्वजोऽथवा ॥ २४ ॥

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि ।

समी करोति विपमांस्तत्संशमनमुच्यते ॥ २५ ॥

किराताब्दामृतोदीच्य बृहतीद्वय गोक्षुरैः ।

स स्थिरा कलशी विश्वैः काथो वातज्वरापहः ॥ २६ ॥

पञ्चमूली विला रास्त्रा कुलित्यैः सह पौष्करैः ।

पर्वभेदं शिरःकम्पं निहन्ति पवनज्वरम् ॥ २७ ॥

पिप्पली शारि वा द्राक्षा वला चांशुमती तथा ।

एषोऽपि परमः सिद्धो वातज्वरविनाशनः ॥ २८ ॥

द्राक्षा गुडुची काश्मर्यं त्रायमाणा स शारिवा ।

निष्कृष्य स गुडं काथं पिबेच्चातकृते ज्वरे ॥ २९ ॥

दर्भं वलां गोक्षुरकं पिबेत्पादावशेषितम् ।

शर्कराष्टतसयुक्तं पिबेच्चातज्वरापहम् ॥ ३० ॥

शर्करा दाडिमाभ्याश्च द्राक्षा दाडिमयोस्तथा ।

वैरस्ये धारयेत् कल्कं गण्डूपश्च तथा हितम् ॥ ३१ ॥

आमं पचेदनिलजे हितो नित्यं रसोदनः ।

सुद्रामल्लकयूपस्तु गाढविट्के विधीयते ॥ ३२ ॥

इति वातज्वरः ।

तीक्ष्णोष्णदाहलट् मूर्च्छा भ्रमदास्य कटुता भ्रमाः ।

प्रलापो घ्राणकण्ठौष्ठमुखपाकोचिसाश्रुता ॥ ३३ ॥

शीताभिलापिता पीतमलनेत्रनख त्वचः ।

पित्तोद्गारातिमारौ च पित्तिकज्वरलक्षणम् ॥ ३४ ॥

दाहवम्यर्दितं क्षामं निरत्रं क्षणयान्वितम् ।

शर्करा मधुसंयुक्तं पाययेत्ताजतव्यणम् ॥ ३५ ॥

कलिङ्गं कट्फलं मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ।

पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ३६ ॥

शर्करामधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् ।

चन्दनोशीरथीपर्णी परुषकमधूकजः ॥ ३७ ॥

गुडुचीपद्मरोध्राणां शारिवोत्पलयोस्तथा ।

शर्करा मधुरो काथः शीतः पित्तज्वरापहः ॥ ३८ ॥

दुरालभा पर्पटकः पियङ्गु भूनिम्ब वासा कटुरोहिणीनाम् ।

खलं पिबेच्छर्करयावगाढं तृष्णा स्वपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ ३९ ॥

द्राक्षाभया पर्पटकादतिक्ता क्वाथं स सम्याकफलं विदध्यात् ।

प्रलापमूच्छाभ्रमदाहमोहदृष्टान्विते पित्तभवेज्वरे तु ॥ ४० ॥

पटोलयवधान्याकमधूकं मधुसंयुतम् ।

हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृष्णाञ्चैव प्रमाथिनीम् ॥ ४१ ॥

पटोलयवनिःक्वाथो मधुना मधुरो कृतः ।

तीव्रपित्तज्वरोन्मदीं पानतट्टदाहनाशनः ॥ ४२ ॥

गुडुच्यामलकैर्युक्तः केवलो वापि पर्पटः ।

पित्तज्वरं हरेत्तूष्णं दाहशोषभ्रमान्वितम् ॥ ४३ ॥

रोध्नोत्पलामृतापद्म शारिवाणां सशर्करः ।

क्वाथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः ॥ ४४ ॥

पर्पटामृतधातृणां क्वाथः पित्तज्वरं जयेत् ।

द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्या अथवा पुनः ॥ ४५ ॥

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः ।

किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोशीरनागरैः ॥ ४६ ॥

विश्वपर्पटकोशीर घनचन्दनसाधितम् ।

दद्यात्सुशीतलं वारि तट्टर्क्कदिज्वरदाहनुत् ॥ ४७ ॥

गुडुची सुस्तधान्याकं मधूकं कटुरोहिणी ।

तृष्णा शूलारुचिर्क्कदि पित्तज्वरहरो गणः ॥ ४८ ॥

किरातामृतधान्याक चन्दनीशीरपर्पटैः ।

सपद्मकैः कृतः काथो हन्ति पित्तभवं ज्वरम् ।

दाहं हृत्तासमरुचिं मुक्तेश्वरमथूल्कमान् ॥ ४८ ॥

ससितो निशिपर्युपितः प्रातर्धान्याकतण्डुलकाथः ।

पीतः शमपत्यचिरादन्तर्दाहं ज्वरं घोरम् ॥ ५० ॥

चन्दनं मधुकं द्राक्षां कटुकं स दुरालभम् ।

चन्दनादि गणः प्रोक्तो हन्याद्दाहज्वरारुचिम् ॥ ५१ ॥

सुद्धानामञ्जलीचूर्णं पट्टीमधुकसाधितम् ।

पाक्यं शीतकपायं वा पिवेत्पित्तज्वरापहम् ॥ ५२ ॥

ह्रोवेरं धान्यकं मुस्तं चन्दनं मधुयष्टिका ।

हपोशीरयुतः काथः शर्करा मधुसंयुतः ।

रक्तपित्तं जयत्युग्रं दृष्ट्यादाहज्वरापहः ॥ ५३ ॥

भूनिम्बातिविषा लोघ्नं मुस्तकेन्द्रयवाश्रुताः ।

वासकं नागरं विल्वं कपायो माचिकान्वितः ।

श्वासं कासञ्च विट्मेदं रक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥ ५४ ॥

तिक्ता बालकभूनिम्बश्चामापर्पटवासकैः ।

मृतं जलं सितायुक्तं रक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥ ५५ ॥

पथ्यां तैलघृतचौद्रैर्लिहेद्दाहज्वरापहम् ।

कासासृक्पित्तवीर्यश्लासान् हन्ति कमीनपि ॥ ५६ ॥

हृद्यं शुभ्राभ्रमंकाशे शशाङ्कशरीतले ।

मलयोदकसिक्ते वा सुष्यात्पित्तज्वरी नरः ॥ ५७ ॥

जिह्वातालुगलक्लोमशोत्रे मूर्ध्नि च दापयेत् ।

केसरं मातुलुङ्गम्य मधुमैथ्वमंयुतम् ॥ ५८ ॥

हरीतकीं प्रियङ्गुय पिप्पली लोघ्नमेव च ।

दार्वी हरिद्रा तेजोघ्ना सर्वौघमुपधायने ॥ ५९ ॥

एतेन कटुभावाच्च सुखरोगश्च शाम्यति ।

वक्त्रं विशदतामेति भक्तकन्दश्च जायते ॥ ६० ॥

मुह्यूपोदनो देयः सितया पैत्तिके ज्वरे ॥

इति पित्तज्वरः ।

कासश्वासप्रतिश्याय प्रसेकारुचिर्हृदयः ।

निद्रा गुरुत्वं हृत्तासः स्तुमित्यं मधुरास्यता ॥ ६१ ॥

शीतरोमाश्चिता शीक्लामलाक्षिकरजत्वचम् ।

उष्णामिलापिता चेति श्लेष्मिकज्वरलक्षणम् ॥ ६२ ॥

मातुलुङ्गशिफा विश्वकायस्था ग्रन्थिकोद्भवम् ।

कफज्वरेषु सचारं पाचनं वा कणादिकम् ॥ ६३ ॥

त्रिफला त्रिवृता सुस्तं कटुकं सकलिङ्गकम् ।

पटोलारग्वधं चैव रोहिणी चित्रकं समम् ।

क्वाथः क्षौद्रयुतः श्लेष्मज्वरकासगलामये ॥ ६४ ॥

निम्बविश्वामृता भीरु गठीभूनिम्बपोष्करम् ।

पिप्पलो वृहती चेति क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ॥ ६५ ॥

कुष्ठमिन्द्रियवं मूर्वा पटोलं वापि साधितम् ।

पिवेन्मरीचसंयुक्तं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ६६ ॥

त्रिफला पटोलवासाक्षिन्नरुहातिक्तरोहिणीपङ्कज्या ।

मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूलीवासकस्य वा क्वाथः ॥ ६७ ॥

माचाक्षौद्रघृतादीनां क्वाथे स्त्रैहे सुचूर्णवत् ।

सप्तकदं गुडूची च निम्बस्फूर्जक मेव च ।

क्वाथयित्वा पिवेत्तोयं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ६८ ॥

आमलक्यभयाकृष्णाचित्रकश्चेत्ययं गणः ।

सर्वज्वरकफान्द्वे भेदीदीपनपाचनः ॥ ६९ ॥

तिक्तानिम्बविपाय्योप शक्राह्वाभिः शृतं जलम् ।

पिवेत्कफज्वरं घोरं हन्ति काससमन्वितम् ॥ ७० ॥
 सिन्धुवारदलक्वाथं कणाढ्यं कफजे ज्वरे ।
 जङ्घयोश्च बले चीणे कणं च पिहिते पिवेत् ॥ ७१ ॥
 'मुस्त' मधुकवीजानि त्रिफलाकटुरोहिणीं ।
 परुषकानि निष्कृाथः कफज्वरविनाशनः ॥ ७२ ॥
 कटुफलं पौष्करं कृष्णं शृङ्गी च मधुना सह ।
 श्वासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ ७३ ॥

चातुर्भद्रावलेहिका ।

लिङ्गेज्वरात्तस्त्रिफलां पिप्पलीं सममाचिकाम् ।
 कासे श्वासे च मधुना सर्पिंषा च सुखी भवेत् ॥ ७४ ॥
 कटुफलं पौष्करं शृङ्गीं मुस्तकं कटुकं शठीम् ।
 समस्तान्येकशो वापि सूक्ष्माचूर्णानि कारयेत् ॥ ७५ ॥
 पार्द्रकस्वरसचौद्रैर्लिङ्घ्यात्कफविनाशनम् ।
 शूलानिलारुचिच्छर्दिं कासश्वासक्षयापहम् ॥ ७६ ॥
 चौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः ।
 श्लोहानं हन्ति हिक्काश्च वालानाञ्च प्रशश्यते ॥ ७७ ॥
 कर्पधूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानाञ्च सर्वशः ।
 द्रवः शक्त्यावलेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः ॥ ७८ ॥
 माधायानाम्यवस्थानं दोषमग्निबलं वयः ।
 व्याधिद्रव्यञ्च कोटञ्च वीक्ष्यमात्रां प्रयोजयेत् ॥ ७९ ॥
 भजाजीशर्करायुक्तो दाडिमोस्वरसे न तु ।
 शचिथो मधुनायुक्तः कर्तव्यः कवलग्रहः ॥ ८० ॥
 मुद्गयूपौदनस्यापि पेयः कफसमुत्थिते ॥ ८१ ॥

इति शैशज्वरः ।

वातापित्तज्वरदेयमौषधं पञ्चमेहनि ।

पित्तश्लेष्मज्वरे देयमौषधं सप्तमेहनि ॥ ८२ ॥

अत ऊर्ध्वञ्च सप्ताह्वादातश्लेष्मज्वरे पिवेत् ॥ ८३ ॥

दृग्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ।

कण्ठास्य शोषो वमथू रोमहर्षो रुचिस्तथा ।

पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ ८४ ॥

संसृष्टदोषेषु हितं संसृष्टमथपाचनम् ।

निदग्धिकावलारास्त्रा चायमाणामृतायुतैः ।

मंसूरविदलैः क्वाथो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ ८५ ॥

त्रिफला शाक्यलीरास्त्रा राजवृक्षाटरूपकैः

शृतमम्बुहरत्याशु वातपित्तभवं ज्वरम् ॥ ८६ ॥

किराततिक्तममृतां द्राक्षामामलकीं शठीम् ।

निष्कृथपित्तानिलजे तं क्वाथं सगुडं पिवेत् ॥ ८७ ॥

मधुकं शारिवा द्राक्षा मधुकं चन्दनोत्पलम् ।

काश्मरीफलकं लोभ्रं त्रिफला पद्मकेशरम् ॥ ८८ ॥

परुषकं मृणालञ्च न्यसेदुत्तमवारिणि ।

मधुलाजसितायुक्तं तत्पीत्तमुपितं निशि ॥ ८९ ॥

वातपित्तज्वरं दाहं दृग्णामूर्च्छारुचिभ्रमान् ।

शमयेद्रक्तपित्तञ्च जीमूतमिवमारुतः ॥ ९० ॥

मधुकादिक्वाथः ।

विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमुन्वितैः ।

कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोत्तरं ज्वरम् ॥ ९१ ॥

बला भांग्यमृतेरण्ड चन्दनो शीरर्षपटैः ।

उपकुल्याब्दङ्गीवेरैः कषायञ्च पिवेत्ततः ॥ ९२ ॥

पर्वभेदशिरःकम्पं वातपित्तज्वरं जयेत् ।
 गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् ।
 वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभट्टमिदं शुभम् ॥ ८३ ॥
 नीलोत्पलमुशीराणि बलापद्मकमेव च ।
 काश्मरीमधुकं द्राक्षा मधुकं सपरुषकम् ॥ ८४ ॥
 पेयः शीतकषायोऽयं वातपित्तज्वरापहः ।
 सप्रलापं समोहञ्च शमयेत्यैत्तिकं ज्वरम् ॥ ८५ ॥
 आरग्वधफलं मुस्तं यष्टीमधुकमेव च ।
 उशीरमभया चैव हरिद्रा दारुसाह्वया ॥ ८६ ॥
 पटोलं पित्तुमन्दञ्च तथा कटुकरोहिणी ।
 एभिः सिद्धः कषायः स्याद्वातपित्तभवेज्वरे ॥ ८७ ॥
 कफपित्तहरामुक्ताः कारवेलादयस्तथा ।
 प्रायेण नतु ते देया वातपित्तोद्भवे ज्वरे ।
 शूलोदावर्त्तविष्टम्भ जनकाः ज्वरवर्धनाः ॥ ८८ ॥
 दाडिमामलमुद्गानां यूपस्वनिलपैतिके ।
 मुद्गामलकयूपस्तु वातपित्तात्मके हितः ॥ ८९ ॥
 महादाहि विधातव्यो यूपः चकणकसम्भवः ॥ ९० ॥

इति वातपित्तज्वरः ।

मुहुर्दाहो मुहुः शीतं स्नेदस्तम्भी मुहुर्मुहुः ।
 मोहः कासो रुचिस्तृण्णा श्लेष्मपित्तप्रवर्त्तनम् ।
 लिप्ततिक्तास्यतातन्द्रा पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ९०१ ॥
 गुडूचीनिम्बधन्याकं पद्मकं चन्दनान्वितम् ।
 लवणा दाह ज्वरच्छर्दिं पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ९०२ ॥
 गुडूचीनिम्बधन्याकं पद्मकं चन्दनानि च ।
 लवणा दाहारुचिच्छर्दिं सर्वज्वरहरो गणः ॥ ९०३ ॥

पटोलं पिचुमन्दञ्च त्रिफलामधुकं बला ।
 साधितोयं कषायश्च पित्तश्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ३०४ ॥
 दीपनं कफविच्छेदि पित्तवातानुलोमनम् ।
 ज्वरघ्नं पाचनं भेदि मृष्टं धान्यपटोलयोः ॥ ३०५ ॥
 पटोलं चन्दनं मूर्वातिक्तापाठामृतागणः ।
 पित्तश्लेष्मारुचिद्वर्हि ज्वरकण्डूविषापहः ॥ ३०६ ॥
 सशर्करामक्षमात्रां कटुकासुष्णवारिणा ।
 पित्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥ ३०७ ॥
 त्रिफलात्रायमाणा च मृद्धीकाकटुरोहिणी ।
 पित्तश्लेष्मज्वरे ह्योपां कषायो ह्यनुलोमनः ॥ ३०८ ॥
 वत्सकं यक्षकाष्टञ्च नागरं चन्दनामृते ।
 पटोलं धान्यकश्चैव क्षाथो मधुसमायुतः ।
 कफपित्तजरं शूलं दाहं हन्यद्विपाण्डि ॥ ३०९ ॥
 पटोल वालकश्चैव सुस्तकं रक्तचन्दनम् ।
 पाठा मूर्वामृताशुण्ठी चोशीरं कटुरोहिणी ।
 समभागैः शृतं तोयं सर्वज्वरहरं पिबेत् ॥ ३१० ॥
 स नागरं पर्पटकं पिबेद्वा स दुरालभम् ।
 किराततिक्तकं मुस्तं गुडूचीं विश्वमेपजम् ।
 पाठामुशीरं सोदोच्यं पिबेज्ज्वरस्य शान्तये ॥ ३११ ॥
 ज्वरघ्नो दीपनश्चैव कषायो दीपपाचनः ।
 वृष्णाहचिप्रशमनो मुखवैरस्य नाशनः ॥ ३१२ ॥
 यव पर्पटकं धान्यं पटोलं निम्बसाधितम् ।
 पिबेत्स शर्कराक्षोद्रं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३१३ ॥
 अमृतेन्द्रयवारिष्टं पटोलं कटुरोहिणी ।
 नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ।

अमृताष्टकमित्येतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३१४ ॥

इत्यमृताष्टकम् ।

कफपित्तवमिकण्डूज्वरविसर्पदाहनुत् ।

कपायः परिपीतस्तु शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ ३१५ ॥

कण्डकार्क्यमृताभांगीं नागरिन्द्रयवासकम् ।

भूनिम्बं चन्दनं सुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ ३१६ ॥

कपायं यायवेदेतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।

दाहलृणारुचिर्हृदिकासङ्गद्रोगशूलनुत् ॥ ३१७ ॥

कण्डकार्क्यादिः ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरिण

स पुष्करं चैव किराततिक्तम् ।

पिवेत्कपायन्त्वथ पञ्चतिक्तं

ज्वरं निहन्यष्टविधं समस्तम् ॥ ३१८ ॥

भांगीं पुष्करमूलञ्च सुस्तकं कण्डकारिका ।

त्रिकण्डकहृहल्यौ च कर्णिनी नागरैः शृतैः ॥ ३१९ ॥

एष भांग्यादिको नाम्ना पित्तश्लेष्मज्वरापहः ।

हृत्तासारोचकहृदि लृणादाहविबन्धनुत् ॥ ३२० ॥

नागरिन्द्रयवं सुस्तं चन्दनं कटुरोहिणी ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कपायन्तु पिवेन्नरः ।

भ्रममूर्च्छारुचिर्हृदिपित्तं श्लेष्मज्वरापहः ॥ ३२१ ॥

द्राक्षा मम्याकधान्याकं कटुकामुस्तग्रथिकम् ।

क्वाथं हन्यादुदावर्तं शूलं पित्तकफज्वरम् ॥ ३२२ ॥

पटोलयवधान्याकमुद्गामलकचन्दनम् ।

पैत्तिके श्लेष्मपित्तौ ज्वरे लट्कहृदिदाहनुत् ॥ ३२३ ॥

रूपद्रपुष्यवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः ।

कफपित्तज्वरं हन्ति मा षट्कृपित्तं म कामनम् ॥ ३२४ ॥

पटोमं पिचुमन्दश्च विफला मधुकं ययाः ।

माधितो यं कषायः श्यात्पित्तघ्ने ऋभवेज्वरे ॥ ३२५ ॥

मुस्तापर्पटकैरातनिर्युं ह्येण प्रमाधितः ।

कफपित्तज्वरहरो यूषो धान्यपटोमयोः ॥ ३२६ ॥

निम्बकोनकयूपस्तु हितः पित्तकफात्मके ॥

इति पित्तघ्ने ऋज्वरः ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रागौरवमेव च ।

शिरोपङ्गः प्रतिश्यायः कासः कम्पो रुचिस्तथा ।

मन्तापो मध्यवेगश्च यातघ्ने ऋज्वराकृतिः ॥ ३२७ ॥

घुद्रान्मृत्तानागरपुष्कराद्वयैः

कृतः कषायः कफमारुत्तोत्तरं ।

म ग्नासकामारुचि पार्श्वरुक्ते

ज्वरे विदोषप्रभवेऽपि शम्यते ॥ ३२८ ॥

मुस्तापर्पटकं गुण्ठी गुडूची म दुरानभा ।

कफवातारुचिहृदिदाहगोपज्वरापङ्कः ॥ ३२९ ॥

मातुलुङ्गफलकेसरोद्धतः मिश्रुजन्ममरिचान्वितो मुग्धे ।

हन्ति यातकफरोगमास्यगं गोपमागुजडतामरोचकम् ॥ ३३० ॥

पारग्वधपत्रिकमुस्ततिक्ता

हरीतकीभिः कथितः कषायः ।

सामे मशूले कफवातयुक्ते

ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ ३३१ ॥

पारोक्ष्यपङ्कजम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चयविषयनागरैः ।

दीपनीयः शृतो वर्गः कफानिलगदापहः ॥ ३३२ ॥

इति पञ्चकोलः ।

किराततिक्तं सुस्तं गुडूचीं विश्वभेषजम् ।

चातुर्भद्रकमित्याहुः वातश्चेष्मज्वरापहम् ॥ ३३३ ॥

चातुर्भद्रकम् ।

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यदिदीपनम् ।

वातश्चेष्मविकारघ्नं ज्वरघ्नं श्लेहनाशनम् ॥ ३३४ ॥

निम्बामृता विश्वदारुकट्फलं कटुकी वचा ।

कपायं पाययेदाशु वातश्चेष्मज्वरापहम् ॥ ३३५ ॥

पर्वभेदः शिरशूलकासारोचकपीडितम् ॥ ३३६ ॥

दारुपर्पटभांर्ग्यद् वचा धान्यककट्फलैः ।

सामया विश्वपूतीकैः कायो हिगुमधूत्कटः ॥ ३३७ ॥

कफवातज्वरे पीतो हिकाशोपगलग्रहान् ।

श्वासकासप्रमेहांश्च हन्यात्तरुमिवाशनिः ॥ ३३८ ॥

दशमूलोरसः पीतः कणाव्यय कफानिले ।

अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक् श्वासकासके ॥ ३३९ ॥

पर्णैर्हृहत्यो गोकण्यो विल्वोऽग्निमन्यनोऽरलुः ।

काश्मरी पाटला चेति सन्निपातहरो गणः ॥ ३४० ॥

दशमूलम् ।

दृष्टान्विते वातकफार्तिशूले

स श्वासकासारुचिवद विटके ।

हितं जलं दीपनपाचनञ्च

पटोलगुण्डीयवपिप्पलीनाम् ॥ ३४१ ॥

पीनसश्वासवाधिर्यो लङ्कापर्वोऽस्थिशूलिनि ।

कफवातज्वरे स्नेदं कायेतं विधानवित् ॥ ३४२ ॥

खर्परभृष्टपटस्थितकाश्चिकसंसिक्तवालुकास्वेदः ।

शमयतिवातकफामय मस्तकशूलाङ्गमङ्गादीन् ॥ ३४३ ॥

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ।

हृत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥ ३४४ ॥

पुष्करमूलयूपस्तु वातश्चेष्मादिकेऽहितः ।

वातश्चेष्मज्वरः ।

वैरोधिकैरन्नपानैरजीर्णाध्यसनेन च ।

व्यामिश्रसेवनाच्चापि सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ ३४५ ॥

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धि शिरोरुजा ।

स स्त्रावे कलुपे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ ३४६ ॥

स स्वनौ स रुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः ।

तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासो रुचिभ्रमः ॥ ३४७ ॥

परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गतापरम् ।

ष्टीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ ३४८ ॥

शिरसो लोठनं दृष्ट्वा निद्रानाशो हृदिबिधा ।

स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ ३४९ ॥

क्षयत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम् ।

कोष्ठानां श्यावरक्तानां भण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ ३५० ॥

मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ।

चिरात्पाकश्च दीपाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ ३५१ ॥

दोषे विबुधे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।

सन्निपातज्वरो साध्यः कृच्छ्रसाध्यस्तुतोऽन्यथा ॥ ३५२ ॥

वातपित्ताधिको यस्य सन्निपातश्च कुप्यति ।

तस्य ज्वरो मदस्तृष्णा मुखगोपप्रमोलिकाः ।

आभानारुचितन्द्राश्च कासश्चासंभ्रमकृमाः ॥ ३५३ ॥

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ।
 अन्तर्दाहो वह्निः शीतं तस्य दृष्ट्वा प्रवर्द्धते ॥ ३५४ ॥
 तुष्यते दक्षिणं पार्श्वं सुखशोषगलग्रहाः ।
 टीवति रक्तपित्तं चं कृच्छ्रात्कण्ठश्च दूयते ॥ ३५५ ॥
 विट्भेदश्चास हिक्काश्च बर्धन्ते स प्रमीलिकाः ।
 विधुः फलाय तौ नाम्ना सन्निपाता बुदाहृतौ ॥ ३५६ ॥
 श्लेष्मानिलाधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ।
 तस्य शीतत्वरो मूर्च्छां हृत्तृष्णा पार्श्वसंग्रहः ॥ ३५७ ॥
 शूलमखिद्यमानस्य हिक्काश्वासश्च जायते ।
 असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते ॥
 न हो जीवत्यहोरात्रमनेनाविष्टविग्रहः ॥ ३५८ ॥
 कासः श्वासस्तमो मूर्च्छां प्रलापो मोहवेपथुः ।
 पार्श्वयोर्वेदना जृम्भा कफायत्वं मुखस्य च ॥
 वातोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् ॥ ३५९ ॥
 एष विस्फोरको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ।
 अतिमारी भ्रमो मूर्च्छां मुखपाकस्तथैव च ।
 मात्रे च विन्दवो रंक्ता दाहो तीव्रः प्रजायते ॥ ३६० ॥
 पित्तोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् ।
 मिषग्भिः सन्निपातोयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥ ३६१ ॥
 जड़तागददावाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि ।
 प्रमत्तथे नयने चैव सुखमाधुर्यमेव च ॥ ३६२ ॥
 कफोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् ।
 मुनिभिश्च सन्निपातोयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ३६३ ॥
 हिनमध्याधिकैर्यस्य वातपित्तकफैः क्रमात् ।
 सन्निपातः प्रभवति पीडगन्दोपदर्शनात् ॥ ३६४ ॥

एकपक्षाभिघातस्तु तत्राप्येतद्विशेषतः ।

एष संमोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७७ ॥

हीनाति हृदमध्यैस्तु सन्निपातो यदा भवेत् ।

तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा दोष बलाश्रयाः ॥ ३७८ ॥

हृदयं दह्यते चास्य यक्तं ग्रीहान्त्वफुफुसाः ।

पथ्यन्ते त्वर्यमूर्च्छाश्च पूयशोणितनिर्गमः ॥ ३७९ ॥

प्रहृदहीनमध्येस्तु वातपित्तकफैश्च यः ।

तेन रोगास्त एवोक्ता यथा रोग बलाश्रयाः ।

प्रलापायायसंमोहः कम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ॥ ३८० ॥

सन्धास्तम्भेन मृत्युश्च तत्राप्येतद्विशेषणम् ।

मध्यप्रहृदहीनैश्च सन्निपातो यदा भवेत् ।

तस्य रोगास्त एवोक्ता यथा रोग बलाश्रयाः ॥ ३८१ ॥

मोहप्रलापमूर्च्छाः स्युस्तमः कम्पशिरोरहाः ।

कासश्वासौ भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशौ हृदिग्रहः ॥ ३८२ ॥

खेभ्यो रक्तं विस्त्रजति तत्राप्येतद्विशेषणम् ।

अर्वाक् विरावान्मृत्युश्च तन्द्री वा स्तब्धलोचनः ।

एषां त्रयाणां नामानि याम्यक्रकचपाकलाः ॥ ३८३ ॥

सर्वदोषैः प्रकुपितं सन्निपातं निबोध मे ।

त्रयाणामपिदोषाणां सर्वरूपाणि लक्षयेत् ॥ ३८४ ॥

यानिज्वरचिकित्सायां रूपाण्युक्तानि कृतस्त्रयः ।

तैः सर्वैरेव सम्पूर्णैर्विज्ञेयः कूटपाकलः ॥ ३८५ ॥

ध्याधिभ्यो दारुणेभ्यश्च वज्रशस्त्राग्निसन्निभः ।

केवलोल्लासपणमः स्तब्धाङ्गः सन्धलोचनः ॥ ३८६ ॥

विरावात् परमे तस्य वन्तोर्हरति जीवितम् ।

तदावशन्तु तं दृष्ट्वा मूर्ढां व्याहरति यतः ॥ ३८७ ॥

धर्षितो राक्षसैर्नूनमवेलायां चरन्ति ये ।
 अस्वयानुवते केचिद्यक्षिणां ब्रह्मराक्षसैः ॥ ३८८ ॥
 पिशाचैर्गुह्यकैश्च तथान्यैर्मस्तके हतम् ।
 कुलदेवार्चनाद्गोनं धर्षितं कुलदेवतैः ॥ ३८९ ॥
 नक्षत्रपीडामपरे गरकमेति चापरे ।
 वदन्ति सन्निपातन्तु भिषजाः कूटपाकलम् ॥ ३९० ॥
 कूटस्थैर्जायते दोषैर्वलिभिः कूटपाकलम् ।
 त्रयोदशविधं प्रोक्तं सन्निपातस्य लक्षणम् ॥ ३९१ ॥
 हृथ्यते वापि हीनस्य ज्ञीयते रुच्छितस्य च ।
 कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरक्रिया ॥ ३९२ ॥
 हीनस्य वर्धनाद्गानिर्हृदयो रिति निश्चयः ।
 हार्यनादतिवृद्धस्य हीनयोर्हृदिसम्भवः ॥ ३९३ ॥
 ततः समत्वं दोषाणामामस्थानं कफस्य तु ।
 तत्रस्थानां क्रियां तद्वदिति ज्वरविनिर्णयः ॥ ३९४ ॥
 यथा दोषोद्वयञ्चैव ज्वराब्जेषानुपाचरेत् ।
 निर्हरेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु ।
 दुर्निवारतरं तद्वि ज्वरात्तेषु विशेषतः ॥ ३९५ ॥
 सन्निपाते क्षुधात्तं यो भोजयेत्पिशितौदनम् ।
 स कथं भिषगाख्यातिं लभेन्मूढो नराधमः ॥ ३९६ ॥
 सन्निपाते तु दाहात्तं यः सिञ्चेच्छीतवारिणा ।
 आतुरः स कथं जीवेद्भियग्बामकथं भवेत् ॥ ३९७ ॥
 सन्निपातेन मनुजं विलपन्तन्तु योऽष्टतम् ।
 पाययेज्जोजयेद्वापि तौ च स्यातामुभौ बधम् ॥ ३९८ ॥
 सन्निपातेन दृष्यन्तं पार्श्वरुक्तालुशोपिणम् ।
 यः पाययेज्जलं शीतं समृत्पुनरविग्रहः ॥ ३९९ ॥

समुद्रतरणं ह्येतद्वदन्ति भिषगीश्वराः ।

मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातचिकित्सुना ॥ ४०० ॥

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युदरतिमानवम् ।

कस्तेन न कृतो धर्मः काञ्चपूजां न सोऽर्हति ॥ ४०१ ॥

श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्यादग्नाधौ त्रिदोषजे ।

निरस्ते श्लेष्मणिह्यस्य स्त्रोतः सूद्वाटितेषु च ।

लाघवं जायते ह्यस्य दृष्ट्या चैवोपशाम्यति ॥ ४०२ ॥

लङ्घनं बालुकास्वेदो नस्यं निष्टोवनं तथा ।

श्वलेहो जनश्चैव प्राक्प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ४०३ ॥

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा ।

लङ्घनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ४०४ ॥

दोषाणामेव साशक्तिर्लङ्घने या सहिष्णुता ।

न हि दोषक्षये कश्चित्सहते लङ्घनादिकम् ॥ ४०५ ॥

कंफपित्ते द्रवे धातू सहते लङ्घनं महत् ।

आमक्षयादूर्ध्वमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ४०६ ॥

ग्लान्यङ्गौरवेऽग्रदाविकृतिर्हीनलङ्घिते ।

प्रकाङ्खलाघवोऽग्लानिः स्वस्यतासु प्रसन्नता ॥ ४०७ ॥

उपद्रवनिवृत्तिश्च सम्यग्लङ्घितलक्षणम् ।

संमोहः सन्निधैयित्वं वातरूक् चातिलङ्घिते ॥ ४०८ ॥

शस्तं सुलङ्घितम्यादौ विधायकवलग्रहम् ॥ ४०९ ॥

लाजमक्तुकपथ्यं स्यात्सैन्धवेनावचूर्णितम् ।

तच्च स्त्रीर्यत्यविघ्नेन रोगीजीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ४१० ॥

इति केचित् ।

रक्तपित्तहरत्वेन दाहव्वरक्षते तथा ।

स ऋतः शीतशीर्याः स्युर्भाजपूर्वाहितानते ॥ ४११ ॥

पाचनो दीपनो लाजमण्डस्ते नोष्ण इथ्यते ।

अतोऽयं दशमूलादि साधितोऽयं भिषग्मतः ॥ ४१२ ॥

पञ्चमुष्टिकयूपेण त्रिकण्टककृते न च ।

त्रिदोषशमनात्यर्थं त्रिकण्टे नैव साधयेत् ॥ ४१३ ॥

यवकोलकुलित्यानां मुद्गामलकशुण्ठयोः ।

एकैकं मुष्टिमादाय पचेदष्टगुणे जले ॥ ४१४ ॥

पञ्चमुष्टिक इत्येव वातपित्तकफापहः ।

शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासे चये ज्वरे ॥ ४१५ ॥

इति पञ्चमुष्टिकयूयः ।

यवकोलकुलित्यैश्च मुद्गामलकसंयुतैः ।

धान्याकविश्वयुक्तैश्च यूपो वातकफापहः ॥ ४१६ ॥

सप्तमुष्टिक इत्येव सन्निपातज्वरापहः ।

कफवातामदोषघ्नः कण्ठहृद्दन्तशोधनः ॥ ४१७ ॥

इति सप्तमुष्टिकः ।

आर्द्रकस्वरसो पित्तं सैन्धवं स कटुवयम् ।

आकण्ठं धारयेदास्यं निष्टीवेच्च पुनः पुनः ॥ ४१८ ॥

ते नास्य हृदये श्लेष्मामन्यापार्श्वशिरो गलान् ।

नीलोप्याकृष्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते ॥ ४१९ ॥

पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राश्वासगलामयाः ।

सुखाच्चिगौरवं जाड्यं क्लेशश्चैवोपशाम्यति ॥ ४२० ॥

सकृद्विचित्रतुःकुर्व्यात् दृष्ट्वा दोषबलावलम् ।

एतद्विपरमं प्राहुर्भेजं सन्निपातिनाम् ॥ ४२१ ॥

इति कवलग्रहः ।

सुरसार्जकनिर्यासः समधुव्योपसैन्धवः ।

महाश्लेष्मानिलोद्रेक संज्ञानाशविमोचणः ॥ ४२२ ॥

मधूकसारमिन्धूत्य वचो पणकणाः समाः ।

श्लक्ष्णं टिड्वाभसानस्यं कुर्यात्संज्ञा प्रबोधनम् ॥ ४२३ ॥

इति मधूकसारादिनस्यम् ।

स्विन्नमामलकान् पिष्ट्वा द्राक्षयासहसृजयेत् ।

विश्वभेषजमंयुक्तं मधुना सह लेहयेत् ॥ ४२४ ॥

तेनास्य शाम्यते मूर्च्छाकासः श्वासस्तथैव च ॥ ४२५ ॥

अष्टाङ्गं मधुना लिह्यादार्द्रकस्वरसेन वा ।

समोहं दारुणं हन्ति तन्द्रा काससमन्वितम् ॥ ४२६ ॥

कटुफल पुष्करं भार्गी व्योषं यासञ्च कारवी ।

श्लक्ष्णं चूर्णीकृतञ्चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ ४२७ ॥

एपावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।

हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च कण्ठरोगं नियच्छति ॥ ४२८ ॥

एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमाद्र्द्रकजैरसैः ।

उर्ध्वजत्रुगदघ्नोया साय कार्यावलेहिका ।

अधोरोगहरीयातु मापूर्वं भोजनान्मता ॥ ४२९ ॥

इत्यष्टाङ्गावलेहिका ।

मरोचं पिप्पली शुण्ठी पथ्यालोध्रं सपुष्करम् ।

भूनिम्बकटुकाकुटं यवानोदकफलं तथा ॥ ४३० ॥

एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।

प्रस्वेदे कण्ठरोधे च सन्धौ मर्दनमिष्यते ॥ ४३१ ॥

एतदुद्बूलनं प्रोक्तं सन्निपातहरं परम् ।

इति मचिचाद्युद्बूलनम्

सर्वेषु सन्निपातेषु तच्चोदमयचारयेत् ।

शोतोपचारीक्षीद्रं स्याच्छोतं चात्र विरुध्यते ॥ ४३२ ॥

क्रियाभिस्तुष्यरूपाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते ।

भिन्नरूपतयातास्तु न कुर्वन्ति हि दूषणम् ॥ ३३३ ॥
यदास्वल्पानिलकफौ तालुक्तीमगती त्रितौ ।
कुर्यातामधिकं शोषं जिह्वायाः खरतां तथा ॥ ४३३ ॥
तदा तां स्फुटितां जिह्वासुच्छुष्कां मधुपिष्टया ।
द्राक्ष्या साज्यया चास्यं लेपयेत्सन्निपातिनः ॥ ४३५ ॥
घर्षेज्जिह्वां जडां सिन्धुतूपणैः साम्प्रवेतसैः ॥ ४३६ ॥

स्वेदोद्गमे भ्रष्टकुलित्यचूर्ण-
निपातनं शस्तमिति ब्रुवन्ति ।
मृत्युश्च तस्मिन् बहुपिच्छलत्वा-
च्छीतस्य जन्तोः परितः सरत्वात् ॥ ४३७ ॥
चूर्णं यथा कटफलकृष्णजोरकं
लोध्रं गवां काननविट् पुरातनम् ।
तिक्ता स पथ्यालवणं तथां जन-
मुद्बूलनं स्वेदविकारजित्परम् ॥ ४३८ ॥

भूनिम्बकारवीतिक्ता वचा कटफलजं रजः ।
उद्बूलनं विदोषोत्प्रे ह्यभिष्यन्दिनि च ज्वरे ॥ ४३९ ॥
इति भूनिम्बाद्युद्बूलनम् ।

विल्वोऽग्निमन्यः स्योनाकः काश्मरीपाटलास्थिरा ।
विकण्टकः पृष्टपर्णी बृहतोक्कण्टकारिका ।
दशमूलमिदं श्वास सन्निपातज्वरापहम् ॥ ४४० ॥
अविपाकानिलश्लेष्म तन्द्रा पार्श्वार्त्तिकासनुत् ।
पिप्पलीचूर्णसयुक्तं हृत्कण्टग्रहनाशनम् ॥ ४४१ ॥
महान्ति यानि मूलानि काष्टगर्भानि यानि च ।
तेषान्तु वल्कलं ग्राह्यं ऋक्षमूलानि क्षत्वृक्षशः ॥ ४४२ ॥
दशमूलस्य निर्यूहः कटफलादि रजो युतः ।

तुल्याद्रकरमो पेतो मृत्युकल्पं ज्वरं जयेत् ॥ ४४३ ॥

पञ्चमूली किरातादिगणो योज्य स्त्रिदोषजे ।

पित्तोत्कटे च मधुना कण्ठ्या वा कफोत्कटे ॥ ४४४ ॥

इति चातुर्भद्रकपञ्चमूलम् ।

चिरज्वरे घातकफोत्पन्ने वा

स्त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः ।

किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः

शुद्धार्थिने वा त्रिष्टप्ता विमिश्रः ॥ ४४५ ॥

दशमूलोग्ठीगृही पौष्करं स दुरालभम् ।

भांगी कुटजबीजश्च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ४४६ ॥

अष्टादशाङ्ग इत्येषः सन्निपातज्वरापहः ।

कासहृदग्रहपाखांतिश्वासहिक्का घ्नोहरः ॥ ४४७ ॥

इत्यष्टादशाङ्गः ।

दशमूलो कपायन्तु पुष्कराङ्गकणायुतम् ।

सन्निपातज्वरे देयं श्वासकासहृदपान्विते ॥ ४४८ ॥

वृहत्या पौष्करं भांगीगृहीगृही दुरालभा ।

यत्सकस्य च बीजानि पटोल कटुरोहिणी ॥ ४४९ ॥

वृहत्यादिगणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः ।

श्वासादिषु च सर्वेषु हितः स्त्रोपद्रवेषु च ॥ ४५० ॥

इति वृहत्यादिः ।

गृहीपुष्करमूलं च व्याघ्रीगृहीदुरालभा ।

गुडुचीनागर पाठा किरातं कटुरोहिणी ॥ ४५१ ॥

एष गव्यादिको वगः सन्निपातज्वरापहः ।

कासहृदग्रहपाखांतिश्वासे तन्द्राश्च गम्यते ॥ ४५२ ॥

इति गव्यादिः ।

शठीषुष्करमूलन्तु गुडूची विश्वभेषजम् ।
 त्रिकण्टकं त्रायमाणा पिप्पली स दुरालभा ॥ ४५३ ॥
 व्याघ्री पर्पटकं राक्ताऽभया कटुकरोहिणी ।
 देवदारुवचाभांगीं सम भागानि कारयेत् ॥ ४५४ ॥
 एष शब्द्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः ।
 कासं श्वासं दिवानिद्रां रात्रौ जागरणं तथा ।
 मुखशोषं तृपां दाहं त्रिदोषञ्च नियच्छति ॥ ४५५ ॥

इति वृद्धच्छद्यादिः ।

पित्ताधिक्ये तु शब्द्यादिर्वृहत्यादिः कफाधिके ।
 वातोत्तरे सन्निपाते कटुफलादिः प्रशस्यते ॥ ४५६ ॥
 कटुफलान्देवचापाठापुष्कराजानिपर्पटैः ।
 देवदारुभया शृङ्गीकणा मूनिम्बनागरैः ॥ ४५७ ॥
 भांगीकलिङ्गकटुकाशठिकटुधान्यकैः ।
 समांशैः साधितः काथो हिंम्वाद्वारसैर्युतः ॥ ४५८ ॥
 कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्तिमन्था गलाग्र्यम् ।
 कफवातज्वरं श्वासं कासं हिकां हनुग्रहम् ॥ ४५९ ॥
 दशमूलयुतो ह्येष सन्निपातज्वरं जयेत् ।
 अभिन्यासं समस्तञ्च कटुफलादिर्नियच्छति ॥ ४६० ॥

इति कटुफलादिः ।

दारुनागरमूनिम्ब धान्यतिक्ता कलिङ्गजैः ।
 गजाक्षा दशमूलार्धैर्मृत्युकल्पं ज्वरं जयेत् ॥ ४६१ ॥
 अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः ।
 कासश्च द्वाग्रहपार्श्वार्त्तिं श्वासहिकावमीर्हरेत् ॥ ४६२ ॥

इति अष्टादशाङ्गः ।

गुडूचीचन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवासकम् ।

अभयांरग्वधोशीरपाठा धान्याब्दरोहिणी ॥ ४६३ ॥

कपायं पाययेदेतत्पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ।

तन्द्रा कासज्वरश्वासपिपासा दाहनाशनः ॥ ४६४ ॥

विण्मूत्रानिलविष्टम्भ त्रिदोषप्रभवस्य च ।

गुडूच्यादिगणो ह्येष पाचनो दीपनः परः ॥ ४६५ ॥

इति गुडूच्यादिः ।

अमृता दशमूलीभ्यां साधितं विधिवज्जलम् ।

सन्निपातज्वरं हन्यात्तयोदशविधं नृणाम् ॥ ४६६ ॥

विपशुण्ठी दशमूली छिन्नापाठा च पिप्पलीन्द्रयवैः ।

स किराततिक्तवासा शमयति हतौजसं सद्यः ॥ ४६७ ॥

चूषणदशमूलशुण्ठी भांगीं छिन्नोद्भवोद्भवः काथः ।

पीतः शमयति सहसा ज्वरसुग्रं सन्निपाताख्यम् ॥ ४६८ ॥

हिपश्चमूलीषड्यया विशृङ्खलधनखीद्वयम् ।

कफवातहरः काथः सन्निपातहरः परः ॥ ४६९ ॥

सिंहास्य पर्पटारिष्टं यष्टिधान्यकनागरम् ।

दारुपगन्धेन्द्रयवाः शुदंष्ट्रा ग्रन्थिकं तथा ॥ ४७० ॥

एषां कपायमहनि सन्निपातज्वरे पिवेत् ।

शार्सातिसारकासघ्नं शूलारुचिहरं परम् ॥ ४७१ ॥

कट्फलं त्रिफला दारु चन्दनं स परुषकम् ।

कटुकं पद्मकोशीरं विपचेत्कार्पिकं जलम् ॥ ४७२ ॥

तत्सन्निपातदाहघ्नं पानमात्रे प्रपूजितम् ।

दीर्घकालप्रयुक्तानां ज्वरीणाममृतोपमम् ॥ ४७३ ॥

स मुक्तं पञ्चमूलञ्च दद्याद्वातोत्तरे गदे ।

शृङ्गोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वा दोष वनावलम् ॥ ४७४ ॥

कफोत्तरे हृहत्यादिगणस्य दशमूलजः ।

परुषकाणि विफला देवदारु स कटुफलम् ।
 पित्तोत्तरे नृणामेतत् सन्निपाते चिकित्सितम् ॥ ४७५ ॥
 मुस्ता पर्पटकोशीर देवदारु महीषधम् ।
 विफला धन्वयासथ नीलीकांपिप्तकं विवृत् ॥ ४७६ ॥
 किराततिक्तकं पाठा बला कटुकरोहिणी ।
 मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥ ४७७ ॥
 अष्टादशाङ्गमुदकं सन्निपातज्वरापहम् ॥ ४७८ ॥
 पित्तोत्तरे सन्निपाते हितमुक्तं मनोपिभिः ।
 मन्या स्तम्भ उरौ घाते हनुस्तम्भे शिरोगदे ॥ ४७९ ॥

इत्यष्टादशाङ्गः ।

व्योषाह्व विफलारिष्ट पटोली तिक्तवत्सकैः ।
 स भूनिम्बान्मृतापाठैस्त्रिदोषज्वरजिज्जलम् ॥ ४८० ॥
 विल्वकं विवृता दन्ती स मूलं चतुरङ्गुलम् ।
 पक्कं कपायं विस्त्राव्यनीलीचूर्णविमिश्रितम् ॥
 स सर्पिष्कं पिबेत्तूर्णं सन्निपाते विरचनम् ॥ ४८१ ॥
 कम्पप्रलापनं यस्य संज्ञानाशय दारुणः ।
 रसैश्च लावर्तैश्च कलिङ्गैश्च शशतित्तिरैः ॥ ४८२ ॥
 तर्पयेत्प्राक् पुराणेन सर्पिषाऽभ्यञ्जयेदपि ।
 बला रास्त्रा गुडूच्याद्यैस्तैलैश्च परिपेचयेत् ॥ ४८३ ॥
 आचितामाशयकफे सन्निपातज्वरे दृढे ।
 शान्ते प्यवश्यं तस्याशुतन्द्रासमुपजायते ॥ ४८४ ॥
 अभिद्रवरसक्षीर दिवास्त्रप्रनिषेवणात् ।
 दुर्बलस्याल्पवातस्य जन्तोः श्लेष्मा प्रकुप्यति ॥ ४८५ ॥
 वायुमार्गं समावृत्य धमनीरनुसृत्यसः ।
 तन्द्रां सुघोरां जनयेत्तस्या वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ४८६ ॥

उन्मीलित विनिर्भुग्ने परिवर्त्तिततारके ।
 भवतस्तस्य नयने लुलिते चलपद्मणी ॥ ४८७ ॥
 विहृत्ताननदन्तौष्टं मुहुर्त्तानशायिनाम् ।
 पिच्छिलोच्छिन्न तन्तुश्च कण्ठे श्लेष्मास्य गच्छति ॥ ४८८ ॥
 कण्ठमार्गाविरोधश्च वैकृतं चोपजायते ।
 सोऽर्वाक्षिरात्रं साध्यः स्यादसाध्यस्तु ततः परम् ॥ ४८९ ॥
 ज्योतिष्मत्यास्तथा तैलं मूलं पिण्डारकस्य च ।
 तन्द्रा विनाशनं श्रेष्ठं नस्यकर्मणि योजिनम् ॥ ४९० ॥
 सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्पपः कुष्टमेव च ।
 मूत्रेण पिष्ट्वा वत्सस्य नस्यं तन्द्राविनाशनम् ॥ ४९१ ॥
 असुराक्षयगन्धस्य विट्चूर्णमधुसंयुतम् ।
 भञ्जनाद्बोधयेन्मुग्धं तन्द्रित सान्निपातिनम् ॥ ४९२ ॥
 जातीपृष्णं प्रवालश्च मरिचं रोहिणी वचा ।
 सैन्धवं वत्समूत्रेण तन्द्रानाशनमुत्तमम् ॥ ४९३ ॥
 श्वयोरजः श्वेतलोध्रमञ्जनं मरिचं तथा ।
 गोपित्तेन समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्तमम् ॥ ४९४ ॥
 समिष्टातज्वरोत्पन्नां युक्त्यातन्द्रां जयेद्विषक् ।
 उपद्रवः कष्टतमो ज्वराणां सविशेषतः ॥ ४९५ ॥
 वयश्च कुपितादोषा उरः स्रोतोऽनुगाभ्यश्च ।
 श्मामाविवक्षाप्रयिताबुद्धौन्द्रियमनोऽनुगाः ॥ ४९६ ॥
 जनयन्ति मद्वाघोरमभिन्यासं ज्वरं नृणाम् ।
 प्रसूतव्यागावस्त्ववाग्मोत्तरेष्टो न क्लृप्तं ॥ ४९७ ॥
 न च दृष्टीर्भवे तस्य समर्थारूपदर्शने ।
 न च गन्धरसस्पर्शं शब्दान्वाप्ययमुध्यते ॥ ४९८ ॥
 गिरो लोठयतेऽभीक्ष्णं महारक्षाभि नन्दति ।

कूजते तुद्यते चैवं प्रतिपत्तिश्च हीयते ॥ ४८८ ॥
 कलं प्रभापते किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते ।
 प्रत्याख्येयः सभूयिष्ठं कश्चिदेवात्र सिध्यति ॥ ५०० ॥
 सप्ताहं वादशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।
 ते घ्नन्ति संहिताधातोः पाकान्मुञ्चति चान्यथा ॥ ५०१ ॥
 एतत्तु हारित्तस्वाहुघ्नन्ति मुञ्चति वानरम् ।
 दिवसैर्द्विगुणैः सप्त नवैकादशभिः क्रमात् ॥ ५०२ ॥
 दुर्गेभ्यसि यथा मग्नन् भाजनं त्वरया बुधः ।
 गृह्णीयात्तलमग्रासं तथाभिन्यासपीडितम् ॥ ५०३ ॥
 निद्रोपेतमभिन्यासं क्षिप्रं विद्याद्वत्तौजसम् ॥ ५०४ ॥
 कारयोपुष्करैरण्डत्रायन्तीनागरासृता ।
 दशमूलीशठीशृङ्गीवासां भार्गीपुनर्न वा ॥ ५०५ ॥
 तुल्यामूत्रेण निष्क्राथ्य पीतो स्त्रोत्तो विशोधनः ।
 अभिन्यासज्वरायासमाशुघ्नन्ति समुद्धतम् ॥ ५०६ ॥
 मातुलुङ्गाऽग्रमभिद्विल्व व्याघ्री पाठा रुबूकजः ।
 क्वाथो लवणमूत्राव्योऽभिन्यासानाह शूलनुत् ॥ ५०७ ॥
 व्याघ्रीदुरालभाभार्गी शठीशृङ्गी सपौष्करम् ।
 पक्वान्मुञ्चेत्तद्देयमभिन्यासप्रशान्तये ॥ ५०८ ॥
 भार्गीपुष्करमूलञ्च रास्त्राविल्वं समुस्तकम् ।
 नागर दशमूलञ्च पिप्पलीविषसाधितम् ॥ ५०९ ॥
 द्विग्वार्द्रकरसो घृतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ।
 सन्निपातज्वरं घोरमभिन्यासञ्च दारुणम् ।
 हृत्पाखंशूलमानाहं सद्यः पीतं नियच्छति ॥ ५१० ॥
 वीजपूरकविल्वाश्ममेदकं वृहतीद्वयम् ।
 सकाशकं तथैरण्डं जले चाष्टगुणे शृतम् ॥ ५११ ॥

पक्वागो मूत्रसंयुक्तं विडसौवर्चलान्वितम् ।
 हृदवस्तिशूलमानाहमभिन्धासे ज्वरे हितम् ॥ ५२२ ॥
 दन्तीं द्रवन्तीं वृहतीमैरण्डं बीजपूरकम् ।
 श्यामां व्याघ्रीञ्च निष्काप्याभिन्धासे बहुवर्चसि ॥ ५२३ ॥
 मिहीयाप्रमृताद्राक्षा अजाजी सकटुत्रिकम् ।
 शृङ्गीविडङ्गञ्च समं पक्वाविस्त्राव्यसाधयेत् ॥ ५२४ ॥
 घृताक्तैः स्तरण्डुलैर्भट्टैः पेयामुष्णां ज्वरोपिवेत् ।
 द्विक्ताश्वासी च कासी च तथाभिन्धासपीडितः ॥
 विषद्वदातविष्णुमूत्रः पानमेतद्वयोजयेत् ॥ ५२५ ॥
 वृहतीपौष्करं भांगीं शठीशृङ्गीदुरालभा ।
 पक्वापाने प्रशसन्ति श्लेष्मा तेनोपशाम्यति ॥ ५२६ ॥
 त्रिवृद्धिशालाकटुकात्रिफलारग्वधैः कृतः ।
 सक्षारो भेदनः काथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥ ५२७ ॥
 तिक्ताभयात्रिवृहन्तीफलं वै राजवृक्षजम् ।
 चाराद्यः सैन्धवो पेत कायो भेदी ज्वरापहः ॥ ५२८ ॥
 आर्द्रकस्तरसो पितं सिन्धूत्यं सकटुत्रिकम् ।
 प्रबोधाय मुखे दद्यान्नस्यञ्च मरिचेन वै ॥ ५२९ ॥
 मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोप्यन्विलवणान्वितम् ।
 अन्यद्वा सिद्धविहितं नम्यं तीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥ ५३० ॥
 शिरोपबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ।
 अञ्जनं स्याद्वबोधाय सरसो न शिलावचैः ॥ ५३१ ॥
 शिरोपबीजं मरिच वत्समूत्रेण तत्समम् ।
 अञ्जनं तदभिन्धासे मज्जा बोधनमिष्यते ॥ ५३२ ॥
 मातुलुङ्गरसं तस्य द्विद्विगुण्ठोयुतं मुखे ।
 दद्यादधमन तीक्ष्णं कीटुतिक्तोपसंहितम् ॥ ५३३ ॥

पटोलपत्रं सुषुवोद्वहतीकण्टकारिका ।
 मरिचं पिप्पलीविल्वं चिरविल्वं स चित्रकम् ॥ ५२४ ॥
 करञ्जबीजमञ्जिष्टा त्रायन्तीविश्वभेषजम् ।
 गलप्रबोधनं श्रेष्ठमभिन्यास ज्वरापहम् ॥ ५२५ ॥
 करञ्जो विल्वमञ्जिष्टे त्रायन्त्यग्निः प्रटोलकम् ।
 हृदयौ सुषुवोव्योषं काथः स्याद्गलशोधनः ॥ ५२६ ॥
 चिकित्सिते कृतेऽप्येवं यस्य संज्ञा न जायते ।
 ललाटे पादयोर्वापितस्य दाहः प्रशस्यते ॥ ५२७ ॥
 सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ।
 शोथः सञ्जायते तेन कश्चिद्देवविमुच्यते ॥ ५२८ ॥
 तं जयेच्छोणितसावैः सर्पिः पानप्रलेपनैः ।
 प्रदाहैः कफपित्तघ्नैः वमनैः कवलग्रहैः ॥ ५२९ ॥
 जीर्णानां रक्तशालिनां ज्वरघ्नकाथसाधितः ।
 प्रसृतस्त्वोदनोद्विस्त्रिः कार्थ्या यूपादिकोपि वा ॥ ५३० ॥
 स चेज्जीर्यत्यविघ्नेन ज्वरोजीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ५३१ ॥
 गैरिकं पांशुकं शुण्ठी वचा कटफलकाञ्जिकैः ।
 कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरे भृशम् ॥ ५३२ ॥
 अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः ।
 आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्त्रन्तं विभावयेत् ॥ ५३३ ॥
 स्यावास्थ्यताविप्रकृतिं दाहोऽतीसार एव च ।
 भक्तारुचिः पिपासा च तोदय सह मूर्च्छया ॥ ५३४ ॥
 औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरो रुग्णमथुस्तथा ॥ ५३५ ॥
 कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् ।
 हृदये वेदना त्रास्यं गात्रेषु परिशुष्यति ॥ ५३६ ॥
 भयात् प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ।

अभिचाराभिशापाभ्यां मोहदृष्ट्या च जायते ।
 भूताभिपङ्गादुद्देशो हास्य रोदनकम्पनम् ॥ ५३७ ॥
 कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तत्रयो मलाः ।
 भूताभिपङ्गात् कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ५३८ ॥
 अभिचाराभिशापोल्यो ज्वरो होमादिभिर्जयेत् ।
 दानस्वस्थयनातिथैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ५३९ ॥
 भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्वन्धावेशनताडनैः ।
 जयेद्भूताभिपङ्गोऽथ मनः स्वास्थ्यैश्च मानसैः ॥ ५४० ॥
 शीपधोगन्धविपजोविपपित्तप्रवाधनैः ।
 जयेत्कपायैर्मतिमान् सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ५४१ ॥
 क्रोधं जे पित्तजिल्कास्ये नार्याः सद्वाक्यमेव च ।
 आश्वासे नेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ।
 हृष्यणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥ ५४२ ॥
 कामात् क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः ।
 याति ताभ्यामुभाभ्याश्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ५४३ ॥
 विसर्पेण ज्वरो यद्य यद्य विम्फोटकज्वरः ।
 तत्रादौ सर्पिषः पानं कफपित्तोत्तरे भवेत् ॥ ५४४ ॥
 निम्बदारुकपायं वा हितं सौ मनसं तथा ।
 यमक्षयोऽथ भुञ्जीतदृताभ्यक्तं रसोदनम् ॥ ५४५ ॥
 रोगीत्यानप्रकोपाभ्यां यो ज्वरो जायते नृणाम् ।
 शमयेत्पाचयेद्वापि यथा योगैश्चिकित्सिकः ॥ ५४६ ॥
 स्त्रीणामप्यप्रजातानां प्रजातानां तथाऽऽहितैः ।
 स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रकुप्यति ।
 तस्य प्रशमनं कार्यं तथा दोषविधानतः ॥ ५४७ ॥
 अभिघातज्वरे कुर्यात् क्रियासुष्ठुविजिताम् ।

कषायमधुरस्निग्धां यथा दीपमयापि वा ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः ।

मध्येर्द्रव्यैश्च सात्त्विकैश्च तथा मांसरसौदनैः ॥ ५४९ ॥

व्यध्वन्मथ्यमात्यध्वमङ्गभ्रंशसमुद्भवान् ।

ज्वरानुपाचरेत्पूर्वं सुस्निग्धक्षीरभोजनैः ॥ ५५० ॥

इत्यागन्तुकज्वरचिकित्सा ।

दीपोऽल्पो हितसम्भूतो ज्वरोऽकृष्टस्य वा पुनः ।

धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ५५१ ॥

सन्ततो रसधातुस्थः सततो रक्तधातुगः ।

भिषजा चैव विज्ञेयः सोऽन्येद्युः विशितान्वितः ॥ ५५२ ॥

मेदो गतस्तृतीयेऽङ्गि ह्यस्त्रिमज्जागतः पुनः ।

कुर्याच्चातुर्थिकं घोरमन्तकं रोगसकरम् ॥ ५५३ ॥

सप्ताहं वादशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।

सन्तत्यायोऽविसर्गोऽस्याक्सन्ततः स निगद्यते ॥ ५५४ ॥

अहोरात्रे सततको द्वौकालावनुवर्तते ।

अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्तते ॥ ५५५ ॥

तृतीयकस्तृतीयेऽङ्गि चतुर्थेऽङ्गि चतुर्थकः ।

केचिद्भूताभिपङ्क्तौ तु भवते विषमज्वरम् ॥ ५५६ ॥

यस्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यान्तथैव च ।

वेगतथापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः ॥ ५५७ ॥

कफपित्ताक्षिकग्राही पृष्ठादातकफात्मकः ।

वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ५५८ ॥

चातुर्थिको दर्शयति प्रभावं विविधं ज्वरः ।

जङ्घाभ्यां शैथिल्यः पूर्वं शिरसोऽनिलसम्भवः ॥ ५५९ ॥

विषमज्वर एवान्यथातुर्थिकविपर्ययः ।
 अस्थिमज्जागतैर्दोषैश्चातुर्थिकविपर्ययः ।
 स मध्ये ज्वरयत्यङ्गीह्यादावन्ते विमुञ्चति ॥ ५६० ॥
 समौ वातकफौ यस्य हीनपित्तस्य देहिर्नः ।
 भवेत्तीक्ष्णो मृदुर्वापि ज्वरस्तस्य तु रात्रिजः ॥ ५६१ ॥
 ज्वरान्तु विषमाः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः ।
 यथोत्थणस्य दोषस्य तेषां कार्यं चिकित्सितम् ॥ ५६२ ॥
 विषमज्वरनाशाय चिकित्सावर्त्यतेऽधुना ।
 वातप्रधानं सर्पिर्भिर्वस्तिभिः सानुवासनैः ।
 स्निग्धोष्णै रन्नपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् ॥ ५६३ ॥
 विरेचनेन पयसा सर्पिषा संस्कृतेन च ।
 विषमं तिक्तशीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत् ॥ ५६४ ॥
 वमन पाचनं रुचमन्नपान विलङ्घनम् ।
 कपायोष्णान्तु विषमे ज्वरे शस्तं कफोत्तरे ॥ ५६५ ॥
 त्रायन्तीकटुकानन्ता सारिवाभिः शृतं जलम् ।
 सन्तताद्ये ज्वरे देयं वातादीनां निवृत्तये ॥ ५६६ ॥
 द्राक्षापटोलनिम्बाब्दशक्राह्वात्रिफलानृतम् ।
 जलं जन्तुः पिबेच्छीतमन्ये दुर्ज्वरशान्तये ॥ ५६७ ॥
 पटोलारिष्टमृद्वीकाशम्याकं त्रिफला हृषम् ।
 काय ऐकाद्विकं हन्ति शर्करामधुयोजितैः ॥ ५६८ ॥
 षोडशाष्टचतुर्भागं वातपित्तकफार्तिषु ।
 चौद्रं कपाये दातव्यं विपरीता तु शर्करा ॥ ५६९ ॥
 पटोलेन्द्रयवानन्ताप्यारिष्टामृताञ्जलम् ।
 ज्वरं सततकं पानं मिह्नत्यागप्रयोजितम् ॥ ५७० ॥
 उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूचीधान्यनागरम् ।

अभ्रसा कथितः पेयः शर्करामधुयोजितः ।

ज्वरे तृतीयके पुंसां तृणादाहसमन्विते ॥ ५७१ ॥

स्थिरासामलकीदारुशिवाह्वयमहीपथैः ।

शृतं शीतं जलं देद्यात्सितामधुविमिश्रितम् ।

चातुर्थिके ज्वरे तीव्रे मन्दे चैवाथ पावके ॥ ५७२ ॥

शैलूपमण्डनरजः वयसानुरूपं

शुभ्राङ्गवत्सुरभीपयसानिपीतम् ।

आदित्यवारभवपालदिने नरेण

चातुर्थिकं सुचिरजं जयति क्षणेन ॥ ५७३ ॥

कालिङ्गकः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ।

पटोलं शारिवा सुस्तं पाठाकटुकरोहिणी ॥ ५७४ ॥

निम्बः पेटोलं त्रिफला मृद्वीका सुस्तवर्त्सकौ ।

किरांततिक्तममृता चन्दनं विश्वमेपजम् ॥ ५७५ ॥

गडूच्यामलकं सुस्तमर्धश्लोकसमापनाः ।

कपायाः शमयन्त्याश्च पञ्च पञ्चविधं ज्वरम् ॥ ५७६ ॥

कल्कः शिरोपुष्पस्य रजनीद्वयसंयुतः ।

नस्यं सर्पिः समायोगाज्ज्वरं चातुर्थिकं जयेत् ॥ ५७७ ॥

अगस्त्यपत्रस्वरसेन नस्यं निहन्ति चातुर्थिकमुद्यदीर्यम् ॥ ५७८ ॥

सहदेवायामूलं विधिना कण्ठनिबद्धमपहरति ।

एकं द्वित्रि चतुर्भिर्दिवसैर्भूतज्वरं पुंसां ॥ ५७९ ॥

सितवर्षाभूमूलं पयसा पीतं च प्रैत्तिकं जयति ।

चातुर्थिकं सुचिरजं ताम्बूले नैव भक्षणादयथा ॥ ५८० ॥

कृष्णामलकीरामठ दावी वचा राजसर्पपरसोनेः ।

छागलमूत्रं सुपिष्टैर्नस्यं त्वेकाहिकादिघ्नम् ॥ ५८१ ॥

वन्दाकं विपजातञ्च तक्त्रेण विषमज्वरे ।

सर्पिषादधिमण्डेन हिङ्गुना च प्रयोजयेत् ॥ ५८२ ॥

पिप्पली शर्करा क्षौद्रं शृतं क्षीरं घृतं नवम् ।

खेजेन मथितं पेयं विषमज्वरनाशनम् ॥ ५८३ ॥

क्षीराविका रजनिमर्दक मन्त्रयाणाम्

मूलं ज्वरापहमवश्यमिदं शिखायाम् ।

वडं दिवाकरदिनेष्वयवाष्टमीषु

रात्रिज्वरं हरति रञ्जितसूत्रवद्धम् ॥ ५८४ ॥

घृतं पेयः शर्करा च पिप्पली मधुसर्पिषा ।

पञ्चसारमिदं देयं मथितं विषमज्वरे ॥

क्षतक्षीणे क्षये कामे हृद्रोगे चापि शस्यते ॥ ५८५ ॥

सुस्तामलकगुडक्षी विश्वौषधि कण्टकारिका कायः ।

पीतः सक्णाचूर्णः समधुर्विषमज्वरं हन्ति ॥ ५८६ ॥

रसोनकल्कं तिलतैलमियं

योऽग्राति नित्यं विषमज्वरार्तः ।

प्रमुच्यते मोऽप्यचिराज्ज्वरेण

वातामयैद्यापि सुघोररूपैः ॥ ५८७ ॥

जीरकं गुडसंयुक्तं विषमज्वरनाशनम् ।

अग्रिमाद्यं जयेच्छीघ्रं वातरोगापहमतम् ॥ ५८८ ॥

क्षीरेण पञ्चहृदगं वा दुग्धान्नाशी कणां पिबेत् ।

यावत्पूर्णं गतं तत्स्यात्तथा चैवापकर्षयेत् ।

वातास्त्रश्वामपाण्डुर्गो गुल्मशीफोदरापहम् ॥ ५८९ ॥

विषमज्वरेषु कर्तव्यमूर्ध्नि चाधस्य शोधनम् ।

शान्तिं नयेत् त्रिहृत्क्षारि मक्षीद्रा विषमज्वरम् ॥ ५९० ॥

सुराममडाः पानार्थं भक्षार्थं चरणायुधाः ।

तित्तिराय यूमराय प्रयोज्या विषमज्वरे ॥ ५९१ ॥

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सोराद्रमगंधेषु च ।

वाराणस्याच्च यद्वत्तं तत्तदेकाहिके स्मरेत् ॥ ५८३ ॥

योऽसौ सरस्वतीतीरेऽपुत्रस्तापसो मृतः ।

तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुञ्चत्येकाहिको ज्वर ॥ ५८४ ॥

एतन्मन्त्रेण वाञ्छत्यपत्रहस्तः प्रतर्पयेत् ॥ ५८५ ॥

आम्नोऽजसहस्रेण दलेन सुकृतां पिवेत् ।

पेयां घृतप्लुता जन्तुधातुर्थिकहरीं त्रयहम् ॥ ५८६ ॥

सैन्यवं पिप्पलीनाच्च तण्डुलाः समनः शिलाः ।

नेत्राञ्जनं तैलपिष्टं यस्यते विषमज्वरे ॥ ५८७ ॥

उर्णनाभेद्य जालेन कज्जलं ग्राहयेच्छनैः ।

अञ्जयेन्नेत्रयुगलं द्वाहिकेन्तु ज्वरं जयेत् ॥ ५८८ ॥

निम्बपत्रं वचा कुष्ठं पथ्यासिद्धार्थकं घृतम् ।

विषमज्वरनागायु गुग्गुलुयेति धूपनम् ॥ ६०० ॥

विडालं वा शकृच्छ्रेष्ठं विषमानस्य धूपने ।

सहदेवी वंचाभद्रानाकुलीभिः प्रधूपनम् ।

प्रदेहोद्वर्तनं कुर्यादिभिर्वा ज्वरशान्तये ॥ ६०१ ॥

मयूरचन्द्रकैर्धूपः सर्वज्वरग्रहापहः ॥ ६०२ ॥

पल्लकपा वचा कुष्ठैर्निम्बपत्रयवैर्घृतैः ।

पथ्यासिद्धार्थकैर्धूपः शस्तः सर्वज्वरापहः ॥ ६०३ ॥

पुरध्याम वचा सर्जनिम्बाकार्गुरुदारुभिः ।

सर्वज्वरहरो धूपः श्रेष्ठोऽयमपराजितः ॥ ६०४ ॥

रुद्रजटागोशृङ्गं विडालविष्टोरगम्य निर्मोक्तः ।

मदनफलभूतकोश्वी वंशत्वग्रूद्रनिर्मल्यम् ॥ ६०५ ॥

घृतयवमयूरचन्द्रकागलकरोमाणि सर्पपाः सबचाः ।

हिगुगवास्त्रि सरिचाः समभागाः क्षागमूत्रसंयुक्ताः ॥ ६०६ ॥

- धूपनविधिना शमयन्त्येते सर्वान् ज्वरान्नियतम् ।
ग्रहडाकिनीपिशाचप्रेतविकारानयं धूपः ॥ ६०७ ॥

इति माहेश्वरधूपः ।

ज्वरवेगस्य कालञ्च चिन्तयन् ज्वर्यते तु यः ।
तस्यैष्टैरङ्गुतैर्वापिर्विषयैनाशयेत् स्मृतिम् ॥ ६०८ ॥
सततं विषमं वापि क्षीणस्य सुचिरोत्थितम् ।
ज्वरं सम्भोजनैः पथ्यै ज्वरघ्नैः समुपाचरेत् ॥ ६०९ ॥
ज्वराः कपायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनैः ।
रूचस्य ये न शम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषङ्मतम् ॥ ६१० ॥
बलाग्निमन्यत्रिफला क्वाथेदं धातुतं पचेत् ।
तिल्वका वापमेतद्वि विषमज्वरनाशनम् ॥ ६११ ॥
चन्दनं चित्रकं सिंही वत्सकं मुस्तनागरं ।
कटुका त्रायमाणा च धात्रूशीरे दिशारिवे ॥ ६१२ ॥
द्राक्षाऽर्द्धपलमात्राणि सौम्यवारेषु संहरेत् ।
क्षीराढकसमायुक्तां सर्पियोऽर्द्धतुलां पचेत् ॥ ६१३ ॥
चातुर्यिकं हरेत्प्योतमुन्मादं विषमज्वरम् ।
व्याहिकं श्वासकासौ च सर्वापस्मारमेव च ॥ ६१४ ॥

इति चन्दनाद्यं घृतम् ।

विडङ्ग मुस्तत्रिफला मञ्जिष्ठा दाडिमोत्पलैः ।
श्यामैलवालुकैर्लाभिः चन्दनामरदारुभिः ॥ ६१५ ॥
वर्हिष्ट कुटरजनो पर्णिनीशारियाद्वयैः ।
हरेणुका त्रिहृदन्तीवर्चातालीयनागरैः ॥ ६१६ ॥
बला विशालतृद्धती भालती पृष्टिपर्णिभिः ।
एतैश्च कार्पिकैः कर्कशैर्घृतप्रस्यं विपाचयेत् ॥ ६१७ ॥

चतुर्गुणेन पयसा द्विगुणेन जलेन च ।

एतत्कल्याणकं नाम सर्पिः पक्कं त्रिदोषनुत् ।

विषमज्वरश्वासकासगुल्मीन्मादज्वरापहम् ॥ ६१८ ॥

इति कल्याणघृतम् ।

एतदेव हविः पक्कं जीवनीयोपसंस्कृतम् ।

द्विपक्ष मूलकाथेन शतावर्याः रसेन च ॥ ६१९ ॥

चतुर्गुणेन पयसा महाकल्याणमुच्यते ।

अपस्मारग्रहं शोषं क्लेशं कार्श्यमजीवितम् ॥ ६२० ॥

घृतमेतन्निहन्त्याशु ये चापि विषमज्वराः ।

जीवनीयगणत्वेन काकौल्यादिगणग्रहः ।

महाकल्याणके कार्यो घृते तु दशकार्षिकः ॥ ६२१ ॥

इति महाकल्याणकं घृतम् ।

शुण्ठीकणा चित्रकञ्च चथं ग्रथिकमेव च ।

कुर्यात्पञ्चपलान् भागानेकैकस्य तु कुट्टितान् ॥ ६२२ ॥

जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ।

एतैस्तु पलिकैः कल्कैः सैन्धवेन समन्वितैः ॥ ६२३ ॥

पट्पलं नाम विख्यातं विषमज्वरनाशनम् ।

श्वासकासाग्निदौर्बल्यं प्रतिश्यायित्वमेव च ।

भीहोर्ध्ववातश्चयथुपाण्डुरोगांश्च नाशयेत् ॥ ६२४ ॥

इति पट्पलं घृतम् ।

नागरञ्चविकाचारः पिप्पलीमूलचित्रकम् ।

कणा च पलिकान् भागान् घृतप्रस्थे विपाचयेत् ॥ ६२५ ॥

शृङ्गवेररसं प्रस्थं मस्तुप्रस्थं तथैव च ।

एकाहिकं द्वाहिकञ्च त्राहिकञ्च चतुर्थकम् ॥ ६२६ ॥

एतान् सर्वज्वरान् हन्ति स्थूलत्वं कुरुते भृशम् ।
दुर्नाम श्वासकासघ्नं बलवर्णान्निवर्द्धनम् ॥ ६२७ ॥

इत्यमृतषट्पलं घृतम् ।

सुवर्चिका नागरकुष्ठमूर्ब्बा
लाक्षा निशालोहितयष्टिकाभिः ।
तैलं ज्वरे षट्गुणं तक्रमिदं
मभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत्थात् ॥ ६२८ ॥

दध्ना स सारकस्यात्र तक्रं कट्टरमिथ्यते ।

इति षट्कट्टरतैलम् ।

शुक्लारनालैर्दधिमस्तु तक्रैः
फलाम्बुभागेन समं हि तैलम् ।
कृष्णादिकल्कैर्मृदुवर्जिसिद्ध-
मभ्यञ्जनं वातकफज्वराणाम् ॥ ६२९ ॥
ऐकाहिकद्वित्रिचतुर्थकानां
मासार्द्धमासद्वयमासिकानां ।
निवारणं तद्विषमज्वराणां
तैलन्तु षट्कट्टरकं महत्स्यात् ॥ ६३० ॥

—०—

कल्के कृष्णादिगणो यथा ।

कृष्णा चित्रकपङ्गुन्यत्र घातकं विषकायनम् ।
अन्यैकेले घातिविपारिणुकश्च कटुत्रयम् ॥ ६३१ ॥
यवानो गोस्तनो श्याघ्री भूनिम्बं विल्वचन्दनम् ।
मार्गो श्यामा शिंवा धात्री स्थिरामूर्वा सजीरका ॥ ६३२ ॥

सर्पपं हिङ्गुकटुकी विडङ्गश्च समांशकम् ।

एषः क्षणादिको नाम्ना गणो ज्वरविनाशनः ॥ ६३३ ॥

इति महापट्कट्टरतैलम् ।

लाक्षासोढके प्रस्थं तैलस्य विपचेद्विपक् ।

मस्वाढकं समादाय पिष्ट्वा चात्र विनिक्षिपेत् ॥ ६३४ ॥

शतपुष्पा हरिद्रा च सूर्वा कुट्टं हरेणुकम् ।

कटुकं मधुकं रास्ना अश्वगन्धा च दारु च ॥ ६३५ ॥

समुस्तं चन्दनं चैव पृथगक्ष समानकैः ।

द्रव्यैरुतैस्तु तस्मिन्मध्यङ्गं मारुतापहम् ॥ ६३६ ॥

विषमारुह्यान् ज्वरान् सर्वानाश्वेव प्रशमं नयेत् ।

कासं श्वासं प्रतिश्यायं कण्डूं दौर्गन्ध्यं गौरवम् ॥ ६३७ ॥

त्रिकष्टग्रहं शूलं गात्राणां स्फुटनं तथा ।

पाप्मा लक्ष्मीप्रशमनं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ६३८ ॥

अश्विभ्यां निर्मितं सम्यक् तैलं लाक्षादिकं त्विदम् ॥

इति लाक्षादितैलम् ।

सोमं सातुचरं देवं स मातृगणमीश्वरम् ।

पूजयन् प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ ६३९ ॥

त्रिदोषजे ज्वरे ह्येतदन्तर्वेगे च धातुगे ।

लक्षणं मौचकाले स्यादन्यस्मिन् स्वेददर्शनम् ॥ ६४० ॥

इति विषमज्वरः ।

नित्यं मन्दज्वरो रक्तः शूनः कृच्छ्रेण सिध्यति ।

स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातवलासकी ॥ ६४१ ॥

प्रलिपन्निव गात्राणि धर्मेण गौरवेण च ।

मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ६४२ ॥

कफवातज्वरप्रोक्तां क्रियां वातवलासके ।

प्रयुञ्जीत भिषक् श्लेष्मज्वरघ्नोन्तु प्रलेपके ॥ ६४३ ॥

विदग्धं ज्वरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते ।

तेनार्धं शीतलं देहमर्द्धमुष्णं प्रजायते ॥ ६४४ ॥

कायेदुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः ।

तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं करपादयोः ॥ ६४५ ॥

काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम् ।

शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ६४६ ॥

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम् ।

तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥ ६४७ ॥

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ।

तस्मिन् प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः ॥ ६४८ ॥

द्वावेतौ दाहशीतादि ज्वरौ संसर्गजौ मतौ ।

दाह पूर्वस्तयोः कष्टः कृच्छ्रसाध्यतमश्च सः ॥ ६४९ ॥

इति दाहशीतादिनिदानम् ।

शुण्ठीचरान्दी शीरैश्च पिवेत्तोयं सुसाधितम् ।

दाहशीतज्वरहरं पाचनं भिषजां मतम् ॥ ६५० ॥

शीताभिभूते पुरुषे कुर्याच्छीतहरी क्रियाम् ।

दाहाभिभूते तु विधिं कुर्याद्दाहविनाशनम् ॥ ६५१ ॥

मधुफाणितमित्रेण निम्बपत्राभसापि वा ।

दाहज्वरार्त्तं मतिमान् वामयेत् क्षिप्रमेव च ॥ ६५२ ॥

उत्तानसुप्तस्य गभीरुताम्बकास्यादिपाचं प्रणिधायनाभौ

तत्राम्बुधारावद्भुजपतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीताम्

वाप्य कमलहासिन्यो जलयन्त्रमृष्टा शुभाः ।

नार्ययन्दनदिग्धाग्नौ दाहदैत्यहरामताः ॥ ६५४ ॥

शतघृतघृताभ्यक्तं दिव्याह्वा यवशक्तुभिः ।
 कोलामलकसंयुक्तैः शूकधान्याम्लसंयुतैः ॥ ६५५ ॥
 अम्लपिष्टैः सुशीतैश्च फेनिलापल्लवैस्तथा ।
 अम्लपिष्टैः सुशीतैश्च पलाशतरुजैर्दिहेत् ॥ ६५६ ॥
 वदरोपल्लवोत्प्रेन फेनेनारिष्टकेन वा ।
 लिप्तेऽङ्गे दाहदण्मुर्च्छासर्वथैव प्रशाम्यति ॥ ६५७ ॥
 दाडिमं वदरं लोध्रं कपित्थं बीजपूरकम् ।
 पिष्ट्वा मूर्ध्निप्रलेपोऽयं पिपासादाहनाशनः ॥ ६५८ ॥
 कार्तीयवदरानन्ता पट्टीचन्दनकाञ्चिकैः ।
 स घृतैः स्याच्छिरोलेपस्तृष्णादाहविनाशनः ॥ ६५९ ॥
 स्वरसं मातुलुङ्गस्य संयुक्तं मधुसर्पिषा ।
 तालुशोषे प्रदेहोऽयं मूर्ध्निदाहे स सैन्यवः ॥ ६६० ॥
 करवीरस्य पत्राणि चन्दन सारिवातिलाः ।
 तृष्णाघ्नः शिरसाऽऽलेप आरणालेन पेपितः ॥ ६६१ ॥
 वारिशितं मधुयुतमाक्रण्ठाह्वापिपासितम् ।
 बामयेत्पाययित्वा तु तेन तृष्णाप्रशाम्यति ॥ ६६२ ॥
 पद्मकोत्पलकङ्कारमृणालविसर्पौष्करैः ।
 कुसुन्दो शीरमञ्जिष्ठा पद्मगैरिककट्फलैः ॥ ६६३ ॥
 शारिवाहयलोभाद्द क्षीरीखर्जूरसुस्तकैः ।
 धात्रीशतावरीयुक्तैः क्वाथे कल्के प्रयोजितैः ॥ ६६४ ॥
 स लाक्षाभः पयः शक्तस्वच्छकाञ्चिमस्तुभिः ।
 पक्वं तैलमिदन्त्यथं तृष्णादाहज्वरपहम् ॥ २६५ ॥
 पद्मप्रभृति यत्र स्युर्द्रव्याणि स्नेहसम्बिधौ ।
 तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक्स्याच्च चतुर्गुणम् ॥ ६६६ ॥
 इति पद्मकतैलम् ।

शीतस्तस्य तु वातघ्नं सुखोष्णाम्भोऽवगाहनम् ।
 पट्टकौशेय वासोभिः पत्रोर्णादिभिरावृतः ।
 निवाते मन्दिरे स्थाप्य क्षणागुरुसुधूपिते ॥ ६६७ ॥
 कायस्थानाकुलोत्तिक्ता वयस्थापुरचोरकैः ।
 सहदेवी वचा कुट्टैः शीतघ्नैर्धूपलेपनैः ॥ ६६८ ॥
 एतैरेवौषधैः पिष्टैर्लवणक्षारसंयुतैः ।
 सान्निर्विषाचितं तैलमभ्यङ्गाच्छीतनाशनम् ॥ ६६९ ॥
 सुखोष्णैर्मस्तु गोमूत्रशुक्लैः सेकीऽति शीतहा ।
 सुरसार्जकशिग्रूणां प्रलेपो दलसम्भवः ॥ ६७० ॥

इति दाहशीतादियुक्तज्वरविधिः ।

गुरुताहृदयोत्क्लेशः सदनं कुर्यरोचकौ ।
 रसस्ये तु ज्वरे लिङ्गं दैन्यञ्चास्योपजायते ॥ ६७१ ॥
 रक्तनिष्टीवनं दाहो मोहः कर्हं न विभ्रमौ ।
 प्रलापः पिडिकास्तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ६७२ ॥
 पिण्डिकोद्देष्टनं तृष्णाष्टमूत्रपुरीषता ।
 उष्मार्न्तर्दाहविक्षेपी ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ६७३ ॥
 भृशं स्वेदस्तृपा मूर्च्छा प्रलापः कर्हिरेव च ।
 दीर्गम्यारोचकौ ग्लानिर्मेदः स्वेचासहिष्णुता ॥ ६७४ ॥
 भेदोऽस्यां कूजनं श्वासो विरेकश्चर्हिरेव च ।
 विक्षेपणञ्च गात्राणामितदस्त्रिगते ज्वरे ॥ ६७५ ॥
 तमः प्रयेशनं हिक्का कामः शैत्यं वमिस्तथा ।
 अन्तर्दाहो महार्शामो मर्माभेदश्च मज्जगे ॥ ६७६ ॥
 मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रम्यानगते ज्वरे ।
 शेषस्तथ्यतामोचः शुक्रस्य तु विक्षेपतः ॥ ६७७ ॥

रसरक्ताग्रितः साध्यो मांसमेदो गतश्चयः ।

अस्थिमज्जगतः कृच्छ्रः शक्योऽपि न जीवति ॥ ६७८ ॥

—०—

अथ चिकित्साभाह ।

रसस्ये तु ज्वरे तस्मिन् कुर्याद्विमनलद्वने ।

सेकः संशमनो स्लेपो रक्तमोक्ष मसृगते ॥ ६७९ ॥

तीक्ष्णं विरेकश्च तथा कुर्यान्मांसगते ज्वरे ।

मेदस्ये मेदसो नाशमस्थिस्ये वातनाशनम् ॥ ६८० ॥

वस्तिकर्म प्रयोक्तव्यमभ्यङ्गोद्वर्त्तनं तथा ।

मज्जाशक्ते क्रियानोक्ता मरणं तत्र भाषितम् ॥ ६८१ ॥

कटुकारोहिणी मुस्ता पिप्पलीमूलमेव च ।

हरीतकी, च तत्तुल्यमामाशयगते ज्वरे ॥ ६८२ ॥

इति सप्तधातुगतचिकित्सा ।

वर्षा शरद्वसन्तेषु वाताये, प्राकृतः क्रमात् ।

वैकृतोन्य, सदु साध्यं प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ६८३ ॥

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ।

कुर्यात्पित्तं च शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥ ६८४ ॥

तत्र कृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्वयम् ।

कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥ ६८५ ॥

काले पथास्त्वं सर्वर्षा प्रवृत्तिर्वृद्धिरिव, च ।

निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशयिता, ॥ ६८६ ॥

अन्तर्दाहोऽधिका दृष्ट्या प्रलापः श्वसनं भ्रमः ।

सन्ध्यस्थि शूलमस्वेदो दोषवर्चा विनिग्रहः ॥ ६८७ ॥

अन्तर्बेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लेक्षयेत् ॥ ६८८ ॥
 सन्तोषो ह्यधिको वाह्यं दृष्ट्यादीनाञ्च मर्दवम् ।
 बहिर्बेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥ ६८९ ॥
 बलवत् स्वल्पदोषेषु ज्वर साध्योऽनुपद्रवः ॥ ६९० ॥
 ज्वरे तुल्यत्वं दूष्यत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता ।
 रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ ६९१ ॥
 न शाम्यति ज्वरो यस्य पक्षादूर्ध्वं शरीरिणाम् ।
 मन्दवेगानुचारी च स ज्ञेयो जीर्णता गतः ॥ ६९२ ॥
 आसत्तरात्रात्तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ।
 मध्यं चतुर्दशाहन्तु पुराणमत उत्तरम् ॥ ६९३ ॥
 पुराणेपिज्वरे दोषा यद्यपथ्यैः पुनस्तथा ।
 लङ्घयेत्तत्र त पश्चाद्यथोक्ता कारयेत् क्रियाम् ॥ ६९४ ॥
 निदग्धिका नागरिकान्मतानां
 तोयं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ।
 जीर्णज्वरारोचक कासशूल-
 श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसे तु ॥
 हन्यूर्ध्वजान् गदान् प्रायः सायन्तेनोपयुज्यते ॥ ६९५ ॥
 पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कायं क्षिप्रोद्भवोद्भवः ।
 जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलकतोऽथवा ॥ ६९६ ॥
 पिप्पली मधुसंमिश्रं गुडूची स्वरसं पिबेत् ।
 जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम् ॥ ६९७ ॥
 जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली ।
 कासाजीर्णरूपिश्वास हृत्पाण्डु क्षमिरोगनुत् ॥ ६९८ ॥
 अमृतायाः कपायन्तु शृतं चैव सुशीतलम् ।
 मधुपादयुतं पीतं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ६९९ ॥

अनन्तं बालकं सुस्तं नागरं कदुरोद्विणीम् ।
 सुखाम्बुना प्रागुदयात् पिबेदक्षसमं रवेः ।
 एष सर्वज्वरं हन्ति दीपयत्याशु चानलम् ॥ ७०० ॥
 द्राक्षाभृता शठो शृङ्गी सुस्तकं रक्तचन्दनम् ।
 नागरं कटुक पाठा भूनिम्बं सदुरालभम् ॥ ७०१ ॥
 उशीरं धान्यकं पद्म बालकं कण्टकारिका ।
 पुष्करं पिचुमन्दश्च दशाष्टाङ्गमिति स्मृतम् ॥ ७०२ ॥
 जीर्णज्वरारुचिश्चासकासश्चययुनाशनम् ॥ ७०३ ॥

इति द्राक्षादिकाथः ।

शिरोगोरवशूलघ्नमिन्द्रियप्रतिबोधनम् ।
 जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ ७०४ ॥
 मधुना वाय तैलेन ज्वरघ्नेन प्रयोजयेत् ॥ ७०५ ॥
 रक्तकरवीरपुष्प कुटुं धात्रीफल सधान्याम्बु ।
 कल्क सुखीणो लेपो ज्वरेषु शिरसीरुजं जयति ॥ ७०६ ॥
 हिङ्गुसैन्धवसयुक्तं नस्यं स्यादनवं घृतम् ॥ ७०७ ॥
 कणामधुकमृदीकावलाचन्दनशरिवा ।
 नि काथ्य पयसा पीतो जीर्णज्वरविनाशनः ॥ ७०८ ॥
 श्वेतजयन्तीमूलं विधिना बद्धं शिखान्तरे हन्ति ।
 जीर्णज्वरं नराणां खलु इव दुरितेन चात्मानम् ॥ ७०९ ॥
 तिक्ता पर्पटभूनिम्ब सुस्तच्छिन्नरुहा पिबेत् ।
 अभ्यासेन जयत्येष ज्वरमाप्त्युमातुरः ॥ ७१० ॥
 नावनं लङ्घनं चिन्ता व्यवाय शोकभीक्रुधः ।
 एभिरेव च निद्राया नाशः श्लेष्मातिसंघयात् ॥ ७११ ॥
 गुडः पिप्पलीमूलस्य चूणेनालीडितं लिङ्घनम् ।
 चिरादपि च सन्नष्टा निद्रामाप्नोति मानवः ॥ ७१२ ॥

सायं स्निग्धमशेषं कृत्वा वार्त्ताकमेव पूर्वाह्णे ।
 मधुयुतमश्वत्थं चिरान्नष्टामप्याप्रुया त्रिद्राम् ॥ ७१३ ॥
 बायसजङ्घामूलं मूलं वा शिरसिकाकमाद्याय ।
 विष्टृतं निद्राकरणं सुद्रूलं वाऽशितं सगुडम् ॥ ७१४ ॥
 निद्रानाशे प्रकर्त्तव्यं पादयोर्मृदुमर्दनम् ।
 तिलतैलारनालाभ्यां शतधौतघृतेन च ॥ ७१५ ॥
 छागक्षीरेण विजयां पिष्टोपादौ प्रलेपयेत् ।
 तेनायाति पुनर्निद्रा चिरकालमतापि वा ॥ ७१६ ॥
 सुस्वरं श्रावयेद्वापि संगीतं मधुरस्वनम् ।
 कर्णसंपूरणाद्वापि निद्रामाप्नोति मानवः ॥ ७१७ ॥
 मरिचं नालया घृष्टा कस्तूर्यां जनमिष्यते ।
 त्रिरात्रादपि सन्निष्टां निद्रामाप्नोति मानवः ॥ ७१८ ॥
 रक्तकरवीरपुष्पं कुष्ठं धात्रीफलं सधान्याम्बु ।
 कल्काः सोष्णो लेपो ज्वरेषु शिरोरुजं हन्ति ॥ ७१९ ॥
 क्षीणे कफे ज्वरे जीर्णे स्वल्पदोषे पिपासिते ।
 दाहार्त्ते च पयो योज्यं तत्र वेत्तु विषं भवेत् ॥ ७२० ॥
 श्लासात्कासाच्छिरः शूलात् पार्श्वशूलात्स पीनसान् ।
 मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलो नृतं पयः ॥ ७२१ ॥
 द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् ।
 क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ ७२२ ॥
 मिताज्यविश्वखर्जुरीरुमृद्दीकाभिः नृतं पयः ।
 शीतं मधुयुतं पीतं दृढदाहज्वरनागनम् ॥ ७२३ ॥
 त्रिकण्टकशलाघ्याघ्नो गुडनागरसाधितम् ।
 वर्षां मूत्रं विष्वक्पर्णं शीतज्वरहरं पयः ॥ ७२४ ॥
 शृण्वी च विष्वक्पर्णमूपययोदकमेव च ।

- चीरावशिष्टं तत्पीतं तद्धि सर्वज्वरापहम् ॥ ७२५ ॥
- चूर्णं त्रिवृत्कणा श्यामा त्रिफलानां सिता समम् ।
- भेदि कोष्ठरुजादाहगौरवज्वरनाशनम् ॥ ७२६ ॥
- साधितं बिल्वपेशिभिर्मूलेनाऽमण्डकस्य च ।
- सद्यो हन्ति पयः पीतं ज्वरं सम्यखिवर्तिकम् ॥ ७२७ ॥
- मधुकारग्वधद्राक्षा तित्तायास फलत्रिकैः ।
- सपटोलैर्जलं भेदि ज्वरं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ७२८ ॥
- ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् ।
- कामन्तु पायसं तस्य निरुहैर्वाहरेन्नलान् ॥ ७२९ ॥
- अरोचके गात्र सादे वैब ऐर्यं गमलादिषु ।
- शान्तज्वरेपि शोध्यः स्यादनुबन्धभयाव्रतैः ॥ ७३० ॥
- ज्वरोष्मणा ज्वरेऽजीर्णं वायुः कुप्यति रुक्षिते ।
- घृतं संश्रमनं तस्य दीप्तस्येवाम्बुवेश्मनः ॥ ७३१ ॥
- कल्याणकं कटुफलकं घृतं जीर्णज्वरे पिबेत् ॥ ७३२ ॥
- कुक्कुटं तरुणं सद्यः कृत्वा पादान्ध वर्जितम् ।
- तस्य मांसस्य कुर्वीत शृतं पलशतं भिषक् ॥ ७३३ ॥
- वृहती कण्टकारी च शृङ्गीकर्कटकस्य च ।
- वदराणि कुलित्यानि भांगीं क्षामलिकी तथा ॥ ७३४ ॥
- शठोपुष्करमूलञ्च पञ्चमूलं महत्तथा ।
- एतत्तुलाञ्च संगृह्य द्विद्रोणे त्वग्भसः पचेत् ॥ ७३५ ॥
- पादशेषं परिश्राव्यकपायं ग्राहयेद्विषक् ।
- पङ्गुणं चौरमाञ्जल्य विपचेत्तु घृतादकम् ॥ ७३६ ॥
- तत्र कल्कीकृतं दद्यादस्त्रल्यं पञ्चमूलकम् ।
- तस्माधुसिद्धं विज्ञायशुभे भाण्डे निधापयेत् ॥ ७३७ ॥
- तस्य काले पिबेन्मात्रां बलं दीपयन्वेष्ट्य च ।

जीर्णं तस्मिंस्तु भुञ्जीतरक्तशाल्योदनं तथा ॥ ७३८ ॥

जीर्णज्वरोपसृष्टानां शय्यतां श्वासकासिनाम् ।

प्रयोज्यं कौकुटं सर्पिर्यक्ष्मिणां विषमज्वरे ॥ ७३९ ॥

सैखनं हृहणीयञ्च बलवर्णाग्निवर्धनम् ।

इति कौकुटं दृतम् ।

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणां दुरालभाम् ।

पक्वाऽनेन कपायेण पयसा द्विगुणेन च ॥ ७४० ॥

पिप्पलीमुस्तमृद्दीकाचन्दनोत्पलनागरैः ।

कल्कीक्षतैश्च विपचेद् दृतं जीर्णज्वरापहम् ॥ ७४१ ॥

इति वासादिदृतम् ।

अत्र चाष्टगुणे तोये कथिने काथदुग्धयोः ।

प्रत्येकं द्विगुणं भागं पृथक् सर्पिषु निक्षिपेत् ॥ ७४२ ॥

कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्काथञ्चतुर्गुणम् ।

काथाच्चतुर्गुणं वारि काथः काथ्यं समो मतः ॥ ७४३ ॥

मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं तथा ।

कठिनात्कठिने द्रव्ये देयं पौडशिकं जलम् ॥ ७४४ ॥

मृदादि काथ्यसङ्घाते मानं उक्ते चिकित्सकाः ।

मध्यस्थोभयभागित्वादिच्छन्यष्टगुणं जलम् ॥ ७४५ ॥

सिद्धमेतद् दृढं सद्यो जीर्णज्वरमपोहति ॥ ७४८ ॥
 क्षयं कासं शिरःशूलं पाण्डुशूलमरोचकम् ।
 भङ्गाभितापमग्निञ्च विषमं सन्निवृणोति ॥ ७५० ॥
 जलान्नं हौषधानान्तु प्रमाणं यत्र नेरितम् ।
 तत्र स्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ ७५१ ॥
 इति पिप्पल्याद्यं दृढम् ।

पिप्पल्याद्यमिदं कापि तन्त्रे क्षीरेण पच्यते ।
 यत्राधिकरणेनोक्तिर्गणे स्नेहस्य सम्बन्धौ ।
 तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिनां ॥ ७५२ ॥
 एतद्वाक्यबलेनैव कल्कसाध्यपरं दृढम् ॥ ७५३ ॥

—०—

क्षीरद्वचासनारिष्टजम्बूसप्तच्छदार्जुनैः ।
 शिरोषखदिरास्फोतामृतबल्याटरूपकैः ॥ ७५४ ॥
 कटुकापर्पटोक्षीरवचातेजोवतीघनैः ।
 साधितं तैलमभ्यङ्गादाशुजीर्णज्वरं जयेत् ॥ ७५५ ॥
 इति क्षीरद्वचाद्यं तैलम् ।

चन्दनाद्यं हितं तैलं शोषाधिकारकोर्तितम् ।
 तथा नारायणं तैलं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ७५६ ॥
 जीर्णज्वरेषु सर्वेषु दोषे पक्ताशयान्विते ।
 स्नेहवस्तिः प्रयोक्तव्यः सनिरुद्धो यथा विधिः ॥ ७५७ ॥
 इति जीर्णज्वरः ॥

गुडूच्यारसकल्काभ्यां त्रिफलायावृषस्य वा ।
 मृन्दीकायाबलायाश्च सिद्धाः स्नेहाज्वरच्छिदः ॥ ७५८ ॥
 इति गुडूचादिदृढम् ।

जीर्णं तस्मिंस्तु भुञ्जीतरक्तशाल्योदनं तथा ॥ ७३८ ॥

जीर्णज्वरोपसृष्टानां शुष्यतां खासकासिनाम् ।

प्रयोज्यं कौक्कुटं सर्पिर्यक्ष्मिणां विपमज्वरे ॥ ७३९ ॥

लैखनं हृंहणीयञ्च बलवर्णाग्निवर्धनम् ।

इति कौक्कुटं घृतम् ।

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणं दुरालभाम् ।

पक्वाऽनेन कपायेण पयसा द्विगुणेन च ॥ ७४० ॥

पिप्पलीमुस्तमृद्धीकाचन्दनोत्पलनागरैः ।

कल्कीकृतैश्च विपचेद् घृतं जीर्णज्वरापहम् ॥ ७४१ ॥

इति वासादिघृतम् ।

अत्र चाष्टगुणे तोये कथिते काथदुग्धयोः ।

प्रत्येकं द्विगुणं भागं पृथक् सर्पिषु निक्षिपेत् ॥ ७४२ ॥

कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्काथञ्चतुर्गुणम् ।

काथाञ्चतुर्गुणं वारि काथः काथ्यः समो मतः ॥ ७४३ ॥

मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं तथा ।

कठिनाल्कठिने द्रव्ये देयं षोडशिकं जलम् ॥ ७४४ ॥

मृदादि काथ्यसङ्घाते मान उक्ते चिकित्सकाः ।

मध्यस्थोभयभागित्वादिच्छन्त्यष्टगुणं जलम् ॥ ७४५ ॥

पलैः षोडशभिः प्रस्थं शुष्काणां तद्विदो विदुः ।

द्विगुणं स्वरसार्द्राणां तैलचारघृताम्बसाम् ॥ ७४६ ॥

न लभ्यते रसो येषां काथन्तेषान्त्सु निक्षिपेत् ।

त्रिफलाव्यतिरेकेण मृतमेतत्पतञ्जलेः ॥ ७४७ ॥

पिप्पल्यचन्दनं मुस्तसुशीरं कटुरोहिणी ।

कलिङ्गकात्वामलकी शारिवातिविषे स्थिरा ॥ ७४८ ॥

द्राचामलकवीजानि त्रायमाणानिदग्धिका ।

सिद्धमेतद् घृतं सद्यो जीर्णज्वरमप्योहति ॥ ७४८ ॥
 चयं कासं शिरःशूलं पांश्वंशूलमरोचकम् ।
 अङ्गाभितापमग्निश्च विषमं सन्निवर्त्यते ॥ ७५० ॥
 जलस्र्जं हौषधानान्तु प्रमाणं यत्र नेरितम् ।
 तत्र स्यादौषधात् स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ ७५१ ॥
 इति पिप्पल्याद्यं घृतम् ।

पिप्पल्याद्यमिदं कापि तन्त्रे क्षीरेण पच्यते ।
 यत्राधिकरणेनोक्तिर्गण्ये स्नेहस्य सम्बधौ ।
 तत्रैव कल्कनिर्यूहाविध्यते स्नेहवेदिनां ॥ ७५२ ॥
 एतद्वाक्यवलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम् ॥ ७५३ ॥

—०—

क्षीरवृक्षासनारिष्टजम्बू मसच्छदार्जुनैः ।
 शिरीषखदिरास्फोतामृतबल्याटरूपकैः ॥ ७५४ ॥
 कटुकापर्पटोशीरवचातेजोवतीघनैः ।
 साधितं तैलमभ्यङ्गादाशुजीर्णज्वरं जयेत् ॥ ७५५ ॥
 इति क्षीरवृक्षाद्यं तैलम् ।

चन्दनाद्यं हितं तैलं शोषाधिकारकीर्तितम् ।
 तथा नारायणं तैलं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ७५६ ॥
 जीर्णज्वरेषु सर्वेषु दोषे पक्वाशयायिते ।
 स्नेहवस्तिः प्रयोक्तव्यः सनिरूही यथा विधिः ॥ ७५७ ॥
 इति जीर्णज्वरः ॥

गुडूच्यारसकल्काभ्यां त्रिफलायावृषस्य वा ।
 मृन्दीकायाबलायाश्च सिद्धाः स्नेहाज्वरच्छिदः ॥ ७५८ ॥
 इति गुडूच्यादिघृतम् ।

पञ्चकोलैः ससिन्धूतैः पलिकैः पयसासमम् ।

सर्पिः प्रस्थं शृतं ग्रीह विषमज्वरनाशनम् ॥ ७५८ ॥

इति चीरपट्पलं दृतम् ।

अत्र द्रवान्तरानुक्तौ चीरमेव चतुर्गुणम् ।

द्रवान्तरेण योगे हि चीरं स्त्री हसमं भवेत् ॥ ७६० ॥

—०—

दशमूलरसे सर्पिः सचीरे पञ्चकोलकैः ।

सचारैर्हन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताः ॥ ७६१ ॥

वातपित्तकफव्याधीन् ग्रीहानं चापकर्षति ।

इति दशमूलीचीरपट्पलं दृतम् ।

बलां खदंष्ट्रां वृहन्तीं कलशीं धावनी स्थिराम् ।

निम्बं पर्पटकं सुस्तं त्रायमाणां दुरालभाम् ॥ ७६२ ॥

कृत्वा कपायं कल्कार्यं दद्यादामलकी शठीम् ।

द्राक्षापुष्करमूलञ्च मेदामामलकानि च ॥ ७६३ ॥

दृतं पयस्य तत्सिद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम् ।

क्षयकामप्रगमनं शिरः पार्श्वरुजापहम् ॥ ७६४ ॥

इति बलाद्यं दृतम् ।

अत्राप्यष्टगुणैस्तृतीयैः कथितः काथदुग्धयोः ।

प्रत्येकं द्विगुणो भागः कर्त्तव्यो भिषजादृतः ॥ ७६५ ॥

—०—

वामामृतारिष्टभांगी पञ्चमूलफलत्रिकैः ।

सपायसमधुद्राक्षा कागमीर्यं रक्षमम्भितैः ॥ ७६६ ॥

दृतप्रस्थं विपक्तव्यमेभिर्मोक्षामतः विधेत् ।

वृहद्दामादृतं प्रीतमेतत्सर्वज्वरापहम् ॥ ७६७ ॥

इति वृहद्दामाद्यं दृतम् ।

मञ्जिष्ठातिविषापथ्या वचानागररोहिणी ।

देवदारुहरिद्रा च द्रोणेऽपांपालिकान्पचेत् ॥ ७६८ ॥

कायेऽस्मिन् साधयेत्पिष्टैर्घृतप्रस्थं पिचून्मितैः ।

शृङ्गवेरकणाहिङ्गुद्विचारपटुपञ्चकैः ॥ ७६९ ॥

तत्कफाहतसर्वकज्वरिणाममृतोपमम् ।

वर्धं हिधारुचिश्वास पाण्डुरोगविकारिणाम् ॥ ७७० ॥

मलयप्रमेहार्शः श्लेष्मापक्ष्मारशोषिणाम् ।

उदावर्त्तपरीतानां मन्दाग्निलक्ष्मिकुष्ठिनाम् ॥ ७७१ ॥

इति मञ्जिष्ठाद्य घृतम् ।

कुलित्यकोलत्रिफलादशमूलयवान् पचेत् ।

द्विपलान् सलिलद्रोणे घृते पिष्ट्वाऽक्षकान् क्षिपेत् ॥ ७७२ ॥

पञ्चकीलकसप्ताह्वा वयस्याहिङ्गुतुम्बुरु ।

शठीपुष्करमूलाकीमूलं प्रतिविषा वचा ॥ ७७३ ॥

किराततिक्तकं मुस्तं कर्कटोष्ठ्यां दुरालभा ।

नक्तमाल मुमे पाठे कटुकाशिशुतेजनी ॥ ७७४ ॥

सोमवल्कं द्विरजनी कटुकीकण्टकारिका ।

पटोलनिम्बगोजिह्वाकम्बुका मदनी जटाः ॥ ७७५ ॥

लवणानि पलांशानि चारानर्धपलोन्मितान् ।

प्रस्थं चाज्यस्य तत्तिष्ठं दीपनं कफवातजित् ॥ ७७६ ॥

हृत्प्लीहप्रहणीगुल्मश्वासकासार्यसांहितम् ।

दीर्घज्वराभिभूतानां ज्वरिणाममृतोपमम् ॥ ७७७ ॥

इति कुलित्याद्य घृतम् ।

लाघ्रामधुकमञ्जिष्ठा मूर्वाचन्दनसारिवा ।

तैलं पट्चरणं नाम ह्यभ्यङ्गाञ्ज्वरनाशनम् ॥ ७७८ ॥

इति पट्चरणं तैलम् ।

लाक्षानिशाकुटशृण्ठी मञ्जिष्ठा च सुवर्चिका ।

वर्चन्दनससिद्धं तैल तक्रोऽथ घङ्गुणे ॥ ७७८ ॥

अभ्यङ्गेन प्रशाम्येत दाहं शीतज्वरापहम् ।

इति षट्त्तक्रं तैलम् ।

मूर्वालाक्षाहरिद्रेहो मंजिष्ठासेन्द्रवारुणी ।

वृहतीसैन्धवं कुष्ठं रास्त्रामांसीशतावरी ॥ ७८० ॥

आरनालाटकेनात्र तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।

तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ७८१ ॥

इत्यङ्गारकं तैलम् ।

लाक्षारससमं तैलं तैलान्मस्तु चतुर्गुणम् ।

अश्वगन्धानिशादारु कौन्तीकुष्टाब्धचन्दनैः ॥ ७८२ ॥

समूर्वारोहिणीरास्त्रा शताह्वामधुकैः समैः ।

सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यजनादिना ॥ ७८३ ॥

सर्वज्वरक्षयोन्माद सर्वापस्मारवातनुत् ।

यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां प्रशस्यते ॥ ७८४ ॥

इति लाक्षादितैलम् ।

लाक्षाहरिद्रामंजिष्ठा फेनिलं मधुकं वला ।

लामज्जकं चन्दनञ्च गैरिकं नीलमुत्पलम् ॥ ७८५ ॥

एषां भागान् समान् कृत्वा पक्वातोये चतुर्गुणे ।

चतुर्भागावशेषे च गर्भे चैनं समावपेत् ॥ ७८६ ॥

रिणुकापद्मकक्षैव वाजिगन्धा तथैव च ।

वेतसं चौरकं कुष्ठं देवदारुनखत्वचम् ॥ ७८७ ॥

शतपुष्पापुण्डरीकं मासीमधुकमेव च ।

एभिरक्षसमैः कल्केः पापाणेनैव पेयितैः ॥ ७८८ ॥

मस्तुशूलारनालानामाटकाटकमावपेत् ।

क्षीरादृक्कसमायुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।

तदभ्यंगात् क्षपयति तैलं दाहं न संशयः ॥ ७८८ ॥

वातपित्तभवं क्षिप्रं ज्वरमेतन्नियच्छति ।

सपुलापञ्च दृष्ट्याञ्च तालुशोषणमुख्यणम् ॥ ७८९ ॥

ग्रहीपष्टा ये वाला रक्षःसन्दूपिताश्च ये ।

तेषां कष्टं प्रशमयेत्तैलं लाक्षादिकं महत् ॥ ७९० ॥

इति महालाक्षादितैलम् ।

स्वर्जिकाकुट्टसञ्चिष्टा लाक्षा मूर्वा महीषधैः ।

सक्षीरैः साधितं तैलमभ्यङ्गाद्वाहशीतनुत् ॥ ७९१ ॥

इति स्वर्जिकाद्यं तैलम् ।

बलामधुकमञ्चिष्टा पद्म पद्मकचन्दनैः ।

समुद्रफेन झीवर रजनीगैरिकीत्पलैः ॥ ७९२ ॥

पिटैरैतैः पचेत्तैलं मस्तुक्षीरं चतुर्गुणम् ।

वातपित्तज्वराल्जीर्णात्तेनाभ्यक्तः प्रसुच्यते ॥ ७९३ ॥

इति बलार्द्यं तैलम् ।

पटोलपिचुमन्दाभ्यां गुडूच्यामलकेन च ।

मदनैश्च शृतः स्त्री ह्ये ज्वरक्षमनुवासनम् ॥ ७९४ ॥

इति पटोलादिस्त्रैः ।

पटोलमदनारिष्ट गुडूचीमधुकैः शृतम् ।

श्वदंष्ट्रा मदनं शृङ्गी मधुकारिष्टवासकैः ॥ ७९५ ॥

अश्वगन्धेति तैलस्य कार्पिकैरादृक् पचेत् ।

अनुवासनकं तैलं सर्वज्वरविनाशनम् ।

स्तुक्ष्णान्वातविकारांश्च नाशयेदपि चोत्थितान् ॥ ७९६ ॥

इति पटोलाद्यनुवासनम् ।

क्रियायास्तु गणालाभे क्रियाभन्यां प्रयोजयेत् ।
 पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासंकरोद्दितः ॥ ७६८ ॥
 पङ्क्तिः केचिदहोरात्रैः केचिदष्टाभिरेव च ।
 बध्यन्ति मुनयः प्राज्ञो रसस्य परिवर्त्तनम् ॥ ७६९ ॥
 परिहृत्या रसस्यैव शान्तवेगा क्रिया भवेत् ।
 गुणा लाभे तु कर्त्तव्या विद्यामान्तरित चया ।
 सैव न स्याद्यथा तस्यां पूर्ववत्संकराद्भयम् ॥ ८०० ॥
 ज्वरे पुराणे संच्छीणे कफपित्ते दृढाग्नये ।
 रुचंवहं पुरीषाय प्रदद्यादनुवासनम् ॥ ८०१ ॥
 चन्दनोत्पलकाश्मर्यमधुकागुरुकल्ककैः ।
 सिद्धं तैलं विधातव्यं वस्ती सर्वज्वरापहम् ॥ ८०२ ॥

इति चन्दनाद्यनुवासनम् ।

घृतंतैलगुडादींस्तु चैकाहिनैव साधयेत् ।
 उपितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् बहून् ॥ ८०३ ॥
 स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवेत् ।
 बद्धौ क्षिप्ते तु नोऽग्न्यस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ८०४ ॥
 नम्ये मृदुः खरोभ्यङ्गे स्नेहे किदन्तु मध्यमम् ।
 नातिस्विरं पचेद्वस्ती खरमभ्यञ्जने पचेत् ॥ ८०५ ॥

—०—

तत्र स्नेहोपधि त्रिवेकमात्रं यत्र भेषजं स मृदुः ।
 मधूच्छिष्टमिव विगदमङ्गिलेपि यत्र भेषजं स मध्यमः ॥
 क्षणमवसन्नमीपदिशदं चिकणश्च यत्र भेषजं स खरः ॥
 इति विधास्नेहपाकसंक्षेपम् ।

—०—

उक्तञ्च—

स्रग्दृपाकोऽयकल्के स्यान्मृदुरंगुलिलेपिनि ।
 अगृह्णात्यङ्गुलिं मध्यः शीर्यमाणो खरः स्मृतः ॥ ८०६ ॥
 परं पाको मृदुः कार्यो द्रव्यस्य न खरो मतः ।
 किञ्चित् वीर्यमादत्ते तज्जहाति खरः पुनः ॥ ८०७ ॥
 शब्दस्यो परमे प्राप्ते फेनस्यो परमे तथा ।
 गन्धवर्णरसादीनां संपत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ ८०८ ॥
 घृतस्यैवं विपक्वस्य ज्ञानीयात् कुशलो भिषक् ।
 फेनोतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत् ॥ ८०९ ॥
 पक्वतैलाद्भवेद्योयं ह्रीनमब्दावतः परम् ।
 घृताच्चाब्दात्परं पक्वं गुडादेस्त्वब्दतः परम् ॥ ८१० ॥

इति तैलपाकविधिः ।

आरग्वधमुशीरञ्च मदनस्य फलानि च ।
 पर्ययतस्रो मधुकं निरुहमुपकल्पयेत् ॥ ८११ ॥
 प्रियङ्गुमदनं मुस्तं मधुकञ्च शताह्वया ।
 कल्कः सर्पिर्गुडचौद्रैर्व्वरघ्नो वस्तिरुत्तमः ॥ ८१२ ॥

इत्यारग्वधनिरुह वस्तिः ।

एकादशाष्टौ पट्कञ्च कपायस्य पलं मतम् ।
 कफपित्तानिलोत्थेषु विकारेषु यथाक्रमम् ॥ ८१३ ॥
 स्रग्दृस्य त्रिचतुःपष्टायत्वारो मधुनस्तथा ।
 पनहयन्तु कल्कस्य कर्पः स्यात्सैन्धवस्य च ॥ ८१४ ॥
 रमचौरान्ममूवाणामेकेकं प्रक्षिपेत् पलम् ।
 निरुहकल्पना सात्रा कथितैषा महर्षिणा ॥ ८१५ ॥

इति निरुह सात्रा कल्पना विधिः ।

विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरगुरुं विभुम् ।
 सुवन्नाम सहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति ॥ ८१६ ॥
 ज्योतिश्चक्रं धनिष्ठादि बध्यते दिन निश्चयात् ।
 दशरात्रं धनिष्ठासु ज्वरो भवति देहिनाम् ॥ ८१७ ॥
 वारुणेऽपि दशाहेन मृत्युमाप्नोति मानवः ।
 षडहे द्वादशाहे वा मृत्युर्भाद्रपदासु च ॥ ८१८ ॥
 उत्तरासु भवेन्नोचो दिवसोर्ध्वं चतुर्दशः ।
 चतुरात्राष्टरात्रं वा रेवत्यां वर्तते ज्वरम् ॥ ८१९ ॥
 अश्विनीष्वपि षड्रात्रं सुखं भवति देहिनाम् ।
 यमदेवे समुत्पन्ने मरणं पञ्चमेऽहनि ॥ ८२० ॥
 कृतिकासु गृहीतस्य सप्तरात्रं भवेज्ज्वरः ।
 न मुच्येद्यदि सप्ताहादेकविंशतिमे सुखम् ।
 अत ऊर्ध्वं विपद्येत त्रिपक्षात् मंगयो भवेत् ॥ ८२१ ॥
 रोहिण्यामष्टरात्रेण मुच्येदेकादशेऽनि ।
 मृगे च षडहे श्रेयं नवरात्रमथापि वा ॥ ८२२ ॥
 आर्द्रायामुपसृष्टस्य पञ्चाहान् मृत्युमादिशेत् ।
 ऊर्ध्वं मृदपि वर्तते त्रिपक्षात् मंगयो भवेत् ॥ ८२३ ॥
 पुनर्वसूपसृष्टेन ज्वरेण परिपीडनात् ।
 त्रयोदशाहान् मुच्येत सप्तविंशेऽथवाहनि ॥ ८२४ ॥
 पुष्ये विरात्रं ज्वरितः सप्तरात्राद्विवर्तते ।
 पात्रेषामु भवेन्मृत्युर्दीर्घकालक्रमात्तथा ॥ ८२५ ॥
 मघासु द्वादशाहेन मृत्युर्भवति देहिनः ।
 ऊर्ध्वं याति मघायान्तु पुनरेव सुखी भवेत् ॥ ८२६ ॥
 पूर्वासु चोपसृष्टस्य फाल्गुनीषु भवेद्दश ।
 उत्तरासु तथा चार्द्रौ नवरात्रमथापि च ।

एकविंशतिरात्राद्वा ज्वरः खोद्यत्व मृच्छति ॥ ८२७ ॥
 हस्ते च सप्तमे मोचयित्वायामष्टमेऽहनि ।
 ऊर्ध्वं प्रपद्यमानो वा मुच्येच्चिन्तागमे पुनः ॥ ८२८ ॥
 स्वातियोगी दद्याहेन मुच्यतेऽथ त्रयेण वा ।
 विशाखासु भवेन्मृत्युरेकविंशतिमेहनि ॥ ८२९ ॥
 ज्वरस्तु दिवसा नऽष्टा वनूराघासु वर्तते ।
 अत ऊर्ध्वं न मुक्तं स्यान्नास्ति तस्य चिकित्सितम् ॥ ८३० ॥
 ज्येष्ठायां पञ्चमे मृत्युरुर्ध्वं वा द्वादशात् सुखम् ।
 स्वास्थ्यं दशाहान्मूलेन त्रिसप्ताहे तथा गते ॥ ८३१ ॥
 अषाढायान्तं पूर्वायां नवमेऽहनि मुच्यते ।
 उत्तरासु त्वर्षादासु मासात् क्षिप्यत्वसंशयः ।
 अष्टमाब्दजान्मासात्ततोऽस्य सुखमादिशेत् ॥ ८३२ ॥
 यत्रापेनाष्टरात्रन्तु क्षिप्यन्ति ज्वरपीडिताः ॥ ८३३ ॥
 एतद्भगवतः प्रोक्तं न च त्राशां विचेष्टितम् ।
 य एवं वेत्ति तत्त्वेन स राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ ८३४ ॥

—०—

वसुवग्निरिति धनिष्ठायां वटशृङ्गमौदुम्बरं वा जुहुयात् ॥ १ ॥
 तत्वायामीति शतभिषजिजलपुष्पं जुहुयात् ॥ २ ॥
 उत्तरवह्निगौहि द्वे इति पूर्वाभद्रपदासु शाल्योदनं जुहुयात् ॥ ३ ॥
 अहिरिव भोजं गौरिति उत्तराभद्रपदासु घृतोदनं जुहुयात् ॥ ४ ॥
 पूष्णो प्राश्नेति रेवत्यां फलान्यक्षतानि जुहुयात् ॥ ५ ॥
 अग्निना तेजसेत्यश्विन्यां गुडोदनं जुहुयात् ॥ ६ ॥
 असियम इति भरण्यां तण्डुलान् जुहुयात् ॥ ७ ॥

अग्निर्मूर्धा इति क्षत्तिकासु घृत जुहुयात् ॥ ८ ॥
 हिरण्यगर्भ इति रोहिण्यां सर्वबीजानि जुहुयात् ॥ ९ ॥
 त्वभ्रसामेति मृगशिरसि पायसं जुहुयात् ॥ १० ॥
 अहे पितु मरुतामिति आर्द्रायां कसरां जुहुयात् ॥ ११ ॥
 महीमृषमातरमिति पुनर्वसौ तण्डुलं जुहुयात् ॥ १२ ॥
 हृत्क्षते अतियदर्थ इति पुष्ये घृतपायसं जुहुयात् ॥ १३ ॥
 नमोऽस्तु सर्पेभ्यो इति अश्लेषासु सर्वौषधीर्जुहुयात् ॥ १४ ॥
 कुष्ठ मानी हरिद्रे द्वे सुगन्धैलिय पञ्चकैः ।
 वचाकर्चूरमुस्तैश्च सर्वौषधिकमुच्यते ॥

इति सर्वौषधीवर्गः ।

इदं पितृभ्य इति मघासु शानितण्डुलं जुहुयात् ॥ १५ ॥
 प्रातर्जित भागमुग्रे ति पूर्वाफाल्गुनीष्वक्षतानि जुहुयात् ॥ १६ ॥
 तत्सवितुर्वरेण्यमिति उत्तराफाल्गुनीषु घृत जुहुयात् ॥ १७ ॥
 आश्विनो नेति हस्ते रक्तपुष्पं जुहुयात् ॥ १८ ॥
 देवस्य त्वामग्निनुमिति चित्रायां मधुपायसं जुहुयात् ॥ १९ ॥
 वायुरग्नेजा इति स्वातिषु तण्डुलान् जुहुयात् ॥ २० ॥
 इद्राग्नि आगतमिति विशाखायां यवघृत जुहुयात् ॥ २१ ॥
 अनी मित्रो वरुणेति अनुराधासु मसूरं जुहुयात् ॥ २२ ॥
 इन्द्रा सुनामेति ज्येष्ठासु कनकं तदभावे पीतपुष्पं जुहुयात् ॥ २३ ॥
 मूलाय स्वाहेति मूले तिलग्रीष्माज्यान् जुहुयात् ॥ २४ ॥
 अपाघंसुपकिंस्त्रियमिति पूर्वाषाढे घृतीदनं जुहुयात् ॥ २५ ॥
 विश्वेऽयमिति उत्तराषाढे मधुरान्नं जुहुयात् ॥ २६ ॥
 इदं विष्णुरिति श्रवणे मूर्वास्तदभावे तण्डुलं जुहुयात् ॥ २७ ॥

इति धनिष्ठादि स्वर्गयन

१ २ ३ ४
उरग वरुण आर्द्रा वासवेन्द्र त्रिपूर्वा ।

५ ६
यमभहुत विशाखाः पापवारिण युक्ताः ।

तिथि नवमषष्टी द्वादशीभिसत्तुर्थी

मरणसहितयोगा रोगिणा मृत्युरेव ॥ ८३५ ॥

स ज्वरो ज्वरमुक्तौ वा विदग्धानि गुरुणि वा ।

असात्मग्रान्यन्नपानानि विरुद्धाऽध्यशनानि च ॥ ८३६ ॥

व्यायाममतिचेष्टां चाऽभ्यङ्गं स्नान विवर्जयेत् ।

तेन ज्वरं शमं याति शान्तश्च न पुनर्भवेत् ॥ ८३७ ॥

व्यायामश्च व्यवायश्च स्नान चक्रमणानि च ।

ज्वरमुक्तौ न सेवेत यावन्नो बलवान् भवेत् ॥ ८३८ ॥

वार्यमाणो दिवा स्वप्नं भुङ्क्ताय सेवते नरः ।

तस्मात्तन्द्रा जडत्वश्च मोहश्चाप्युपजायते ॥ ८३९ ॥

न जातु तर्पयेत् पात्रं सहसा ज्वरकर्षितम् ।

तेन सशमितोऽप्यस्य पुनरेव भवेज्ज्वरः ॥ ८४० ॥

श्वासो मूर्च्छा रुचि कर्दिस्तृणानिसारविड्ग्रहाः ।

ह्रिकृक्कासाङ्गभेदाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ८४१ ॥

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः ।

ज्वरः प्राणान्तं कृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ८४२ ॥

ज्वरः क्षोणस्य शूनस्य गम्भीरो दैर्घ्यरात्रिकः ।

असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्तं कज्ज्वरः ॥ ८४३ ॥

विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा ।

१ अश्लेषा । २ शतभिषा । ३ धनिष्ठा । ४ ज्येष्ठा । ५ मरणी ।

६ कृतिका ।

शीतार्दितोऽतरुणश्च ज्वरेणऽन्वियते नरः ॥ ८४४ ॥

यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदिसंज्ञात शूलवान् ।

बक्त्रेण चैवोच्छसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ ८४५ ॥

ह्रिकृश्रासदपायुक्तं भूढं विभ्रान्तलोचनम् ।

सन्ततोच्छसितं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ ८४६ ॥

हतप्रभेन्द्रियं क्षाममरोचकं निपीडितम् ।

गम्भीर तीक्ष्णवेगाक्षं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ ८४७ ॥

अरोचके गात्र सादेवैवर्ण्येऽङ्गमलौदिषु ।

शान्तज्वरोपि शोध्यः स्या दनुवन्धभयावरः ॥ ८४८ ॥

बलवान् सर्वदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥ ८४९ ॥

ज्वरे तुल्यक्षुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदुष्यता ।

रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ ८५० ॥

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पो विड्भेदसंज्ञिता ।

कूजनं चातिवैगन्ध्यमाकृतिज्वरमोक्षणे ॥ ८५१ ॥

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूपाको मुखस्य च ।

क्षययुयाऽन्न लिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ८५२ ॥

• देहो लघुर्यपगतक्लममोहतापः

पाको मुखे करणसौष्टवमव्ययत्वम् ।

स्वेदं चवः प्रकृतियोगि मनोऽन्नलिप्सा

कण्डूय मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणम् ॥ ८५३ ॥

इति वङ्गसेने ज्वरनिदानचिकित्साधिकारः समाप्तः ।

—०::०—

अथातिसारनिदानमाह ।

गुपेतिस्निग्ध रुचोष्ण द्रवम्यूनातिशीतलैः ।

विरुद्धाध्यशनाजीर्णं रसात्मरैश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥

स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः ।

शोकदुष्टास्वुमद्यातिपानैः सात्मारत्तुं पर्ययैः ॥ २ ॥

जलाभिमरणैर्वैश्वविधातैः कृमिदोषतः ।

नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

संशय्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धो वर्चो मिश्रो वायुनाथः प्रणुन्नः ।

सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं पङ्क्तिविधन्तं वदन्ति ॥ ४ ॥

एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः पट्टमात्रेण चोक्तः ॥ ५ ॥

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः ।

विट्मद्ग्राधानमथाऽविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ६ ॥

हितं लङ्घनमेवादो पूर्वरूपेषु देहिनिः ।

कार्यज्ञानशनस्यान्ते सद्रवं क्षुधुभोजनम् ॥ ७ ॥

विश्वोदीच्योदकं पानं लङ्घनं चास्य शस्यते ।

हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेच्चात्रेण मानवः ॥ ८ ॥

खड्यूपयवागूभिः पिप्पल्यादि प्रयोजयेत् ।

मुह्यूपपरसं तक्रं धान्यजीरकसंयुतम् ।

खड्यूपमिति प्रोक्तं सैन्धवेन समन्वितम् ॥ ९ ॥

अग्निमन्दीपनं प्रोक्तं अक्षणीदीपनाशनम् ।

अरोचके ज्वरे चैव त्रेष्टमेतत्प्रवाहिके ॥ १० ॥

इति खड्यूपः ।

विल्वं सधान्यञ्च सजीरकञ्च पाठा च शुण्ठीतिलसंयुता च ।

पिप्पला पङ्कजः सुकतो नराणां यूपो ह्यतीसारहरः प्रदिष्टः ॥ ११ ॥

दृण्यापनयनीलघ्नीदीपनीवस्तिशोधनी ।

ज्वरे चैवातिसारे च यवागूः सर्वदाहिताः ॥ १२ ॥

आमपक्ककर्म हित्वा नातिसारे क्रियाहिता ।

अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्वामलक्षणम् ॥ १३ ॥

इति यवागू ।

संसृष्टमामंदोपैस्तु न्यस्तमश्ववसीदति ।

पुरोपं भृशदुर्गन्धिं पिच्छिलं चामसंजितम् ॥ १४ ॥

एताण्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै ।

लाघवञ्च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १५ ॥

न तु संग्रहणं दद्यात्पूर्वमामातिसारिणे ।

दोषाह्वादी वध्यमाना जनयन्त्यामयान्वहन् ॥ १६ ॥

शोयपाण्डुमयग्रीह कुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ।

दण्डकालसकाधानं ग्रहण्यर्शो गदास्तथा ॥ १७ ॥

डिम्बोयः स्रविरो वापि वातपित्तात्मकश्चयः ।

चीणधातुमलार्तस्य बहुदोषोऽतिविश्रुतः ॥ १८ ॥

आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं व्रजेत् ॥ १९ ॥

स्तोकं स्तोकं विवृढं वा सशूलं योतिसार्यते ।

अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत् ॥ २० ॥

दोषाग्निर्वहुदोषो विबन्धमतिमार्यते ।

विडङ्गत्रिफलाकृष्णा कपायैस्तं विरेचयेत् ॥ २१ ॥

क्षुत्क्षामस्य विरेके तु पेयां युञ्ज्याद्विचक्षणः ।

भेषजैर्मारुतघ्नैश्च दीपनीयैश्च कल्पिताम् ॥ २२ ॥

योतिद्रव्यं प्रभूतञ्च पुरोपमतिमार्यते ।

तस्यादौ वमनं योज्यं पथ्यास्तद्वनमेव च ॥ २३ ॥

शूलान्गण्डप्रमेकात्तं वामयेदतिसारिणम् ।

पिप्पलीलवणाभ्याश्च साधितेन जलेन वा ॥ २४ ॥

पथ्यादारुवचामुस्तौर्नागरातिविषान्वितैः ।

आमातिमारनागाय कायमेभिः पिवेच्चरः ॥ २५ ॥

पाठाहिंज्वजमोदोग्रा पञ्चकीलाब्दजं रजः ।

उष्णाम्बुपीतं सरुजं जयत्यामं ससैन्धवम् ॥ २६ ॥

इत्यामपाचनविधिः ।

द्रूपणातिविषाहिङ्गु वचा सौवर्चलाभया ।

पीतोष्णे नाम्भसाजह्वादामातिसारमुद्धतम् ॥ २७ ॥

वचाविल्वकणाविष्ठा कुलकं कुष्ठदीप्यकम् ।

सविडङ्गं जयेत्पीत्तमाममुष्णाम्बुना शृतम् ॥ २८ ॥

हरीतकी सातिविषाहिङ्गु सौवर्चलं वचा ।

सैन्धवं चेति पिष्टानि पाययेदुष्णवारिणा ।

आमातिसारं योगोऽय पाचयित्वा चिकित्सति ॥ २९ ॥

आमातिसारं योगेन यद्येतेन न शाम्यति ।

न तं योगशक्तेनापि चिकित्सति चिकित्सकः ॥ ३० ॥

एरण्डरसमपिष्टं पक्वभामञ्च नागरम् ।

आमातिसारशूलघ्नं दीपनं पाचनं तथा ॥ ३१ ॥

चित्रकं पिप्पलीमूलं वचाकटुकरोहिणी ।

पाठावत्सकं बीजानि हरितक्यो मञ्जौषधम् ॥ ३२ ॥

एतदामसमुत्थान मतीसारं सवेदनम् ।

कफात्मकं सपित्तञ्च सवातं हन्ति वै ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

श्वदंष्ट्रैरण्डधान्यान्त्र यवपुष्करसाधिता ।

पथ्यामधुयुतालीढा शूलग्रन्थिविनाशिनी ॥ ३४ ॥

नागरातिविषामुस्तैः काथः स्यादामपाचनः ॥ ३५ ॥

विल्वं मोचरस पाठा गुडूचीविश्वमुस्तकम् ।

गुडतक्रेण दुर्वारं पीतं हन्युदरामयम् ॥ ३६ ॥

धान्यनागरमुस्तञ्च वालकं विल्वमेव च ।

आमशूलविवन्धनं पाचनं वज्रिदीपनम् ॥ ३७ ॥

पित्ते धान्यचतुष्कञ्च शृङ्खलीत्यागाददन्ति हि ।

इति धान्यपञ्चकम् ।

देवदारुवचामुस्त नागरातिविषा भया ।

सर्वाजोर्णप्रशमनं पेयमेतैः शृतं जलम् ॥ ३८ ॥

नागरातिविषामुस्तै रथवा धान्यनागरैः ।

दृष्ट्याशूनातिसारघ्नं रोचनं दीपनं सधु ॥ ३९ ॥

धान्यकातिविषोदीच्य यवानोमुस्तनागरे ।

बलाद्विपंशीविल्वञ्च दद्याद्दीपनपाचने ॥ ४० ॥

अभयानागरं मुस्तं गुडेन सह योजितम् ।

चतुःसमेयं गुटिकात्रिदोषघ्नीप्रकीर्तिता ॥ ४१ ॥

प्रामातिसारमानाहं सविबन्धं विसृचिकाम् ।

कृमीनरोचकं हन्याद्दीपयत्याशु चानलम् ॥ ४२ ॥

इति चतुःसमागुटी ।

दलोत्पः स्वरमः पेयो हिष्ठलस्य समाक्षिकः ।

जयत्याममतीमारं कायो वा कुटजत्वचः ॥ ४३ ॥

पयस्युत्कायमुस्तानां विंशतिं त्रिगुणेभ्यसि ।

क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यामं शूलमेव च ॥ ४४ ॥

इति पित्तानुबन्धस्वरपाचनम् ।

एरण्डमूलैः मकणै रारनाले विमिश्रिते सयवैः ।

म्विषां खादेदमयामामातीसारशूलार्तः ॥ ४५ ॥

इति काञ्जिकहरीतकी ।

केगराजमुनिपत्र कच्छटं दाडिमस्य फलमर्जुनोद्भवम् ।

काय एषपरिशीलितो नृपां हन्ति सानमघशूलमहुतम् ॥

कलिङ्गातिविपाहिङ्गु, पथ्यामोवर्चलं वचा ।
शूलस्तम्भविवन्धनं पेय दीपनपाचनम् ॥ ४७ ॥

इति कलिङ्गाद्यं चूर्णम् ।

स्त्रिन्नामविल्वयवगोक्षुरकोरुवृक
छिन्नोद्भवातुपजलैर्मधुनावलीढा ।
बद्धाल्पविट्कमतिसारमृग्विमिश्र-
मामातिसारमपि हन्ति हरीतकीयम् ॥ ४८ ॥

निरामरूपं शूलार्त्तं लङ्घनाद्यैश्च कर्पितम् ।
नरं रूक्षमवेक्ष्याग्निं सत्त्वारं पाययेत् पृतम् ॥ ४९ ॥

—०—

चारनागरचाङ्गेरीकोलदध्यस्तसाधितम् ।
सर्पिः पक्कं पिवेद्वापि शूलातिसारशान्तये ॥ ५० ॥
शुण्डीचार सकल्काभ्यां विशिष्टं द्रव्यमिष्यते ।
इति चाङ्गेरीपृतम् । इत्यामातिसारः ।

अरुलुवक् प्रियङ्गुश्च मधुकं दाडिमाङ्गुरान् ।
अवाभ्यपिष्टा विषवेद्यवागून्धृतितां पिवेत् ।
एषा सर्वानतीसारान् हन्ति पक्वान्ससशयः ॥ ५१ ॥
सलोध्रं धातकीविल्वं मुस्ताम्बास्थिकलिङ्गकम् ।
पिवेन्माहिषतक्रेण पक्वातिसारनाशनम् ॥ ५२ ॥
अम्बटाधातकीलोध्रं समङ्गापद्मकेसरम् ।
मधुकाऽरुलुविल्वश्च पक्वातिसारहागणः ॥ ५३ ॥
पद्मं समङ्गामधुकं विल्वं जम्बू सलाटुकम् ।
पिवेत्तण्डुलतोयेन सत्तौद्रमगदं करम् ॥ ५४ ॥
पक्वातिसारिणे देयो मुस्ताकायः समाचिकः ॥ ५५ ॥

—०—

समङ्गाधातकीपुष्पं मञ्जिष्टालोघ्रमेव च ।

शाल्मलीवेष्टकं लोघ्रं वृक्षदाडिमयोस्त्वचौ ॥ ५६ ॥

आम्नास्थिमध्यं लोघ्रञ्च विष्वमध्यं प्रियङ्गु च ।

मधुकं शृङ्गवेरञ्च दीर्घवृन्तत्वगीव च ॥ ५७ ॥

चत्वार एते योगाः स्युः पितातिसारनाशनाः ।

उक्ता य उपयोज्यास्तु सचौद्रास्तण्डुलाभ्युना ॥ ५८ ॥

इति समङ्गादिचूर्णम् ।

दीर्घवृन्तत्वचं पिष्ट्वा महीपधंसमन्वितम् ।

पीतं तण्डुलतोयेन पक्कातिसारनाशनम् ॥ ५९ ॥

पथ्याजानीदुरालभाघीटाफलसमन्वितः ।

स्त्ररसोऽप्यथवा कल्कः पक्कातिसारनाशनः ॥ ६० ॥

नवचूतस्य पर्णानि कपित्थ फलमेव च ।

पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पक्कातिसारशान्तये ॥ ६१ ॥

कुटजं वङ्गिचूर्णञ्च मधुना सह लेहयेत् ।

चिरोत्थितमतीसारं पक्कं पितास्रजं जयेत् ॥ ६२ ॥

पक्कः शकदतीसारो ग्रहणोमार्दवाव्यता ।

प्रवर्तते यदा कार्यैः चिप्रं मांघ्राहिको विधिः ॥ ६३ ॥

कश्चटजम्पूदाडिमं शृङ्गाटकपत्रविष्वङ्गीवेरम् ।

जलधरनागरसहितं गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ६४ ॥

मोचरममुस्तानागर पाठाशालूकधातुकी कुसुमैः ।

चूर्णं मधितसमेतं रुणद्धि गङ्गाप्रवाहमपि ॥ ६५ ॥

मुस्तायत्सकवीजं मोचरमं विष्वधातकीलोघ्रम् ।

गुडमधितमप्रयुक्तं गङ्गामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ६६ ॥

षट्कोटमूलकल्कः सचौद्रास्तण्डुलाभ्युना पीतः ।

मेतुरिय सरिद्धे गं भाटितिनिरुन्ध्यादतीमारम् ॥ ६७ ॥

कृत्वा लवालं सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक् ।
 आर्द्रकस्वरसेनांशं पूरयेन्नाभिमण्डलम् ॥ ६८ ॥
 नदीवेगोपमं घोरं प्रवृद्धं दुर्द्धरं नृणाम् ।
 सद्योतीसारमजयं नाशयत्येष योगराट् ॥ ६९ ॥
 सौवीरपिष्टः सङ्कारकल्को नाभिप्रलेपादतीसारहन्ता ॥ ७० ॥

—०—

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं सुहुर्मुहुः ।
 सकृदामं सकृद् शब्दं मारुते नातिसार्थ्यते ॥ ७१ ॥
 लङ्घनमेकं मुक्ता नान्यदस्तीह भेषजं बलिनः ।
 समुदीर्णदोषनिचयं शमयति तत्पाचयत्येव ॥ ७२ ॥
 यथा दोषौषधैः सिद्धः यूषो मण्डादिकः क्रमात् ।
 लाजमण्डः कृतो योगैस्तेः कृताहस्तमण्डिका ॥ ७३ ॥
 वस्त्रसुतायवागूर्वा प्रसृतक्षुद्रभक्तकम् ।
 सर्वेषु मलभेदेषु लवणं न प्रयोजयेत् ।
 तद्वितैक्ष्ण्यत्करत्वाच्च दोषः क्षोभाय कल्पते ॥ ७४ ॥
 सुनिपन्नकवार्त्ताकं कञ्चटं हितमुच्यते ॥ ७५ ॥
 कपित्थविल्वचाङ्गेरी तक्रदाडिमसाधिता ।
 ग्राहिणीपाचिनीपेया वाते वा पञ्चमूलिका ॥ ७६ ॥
 पञ्चमूलीबलाविल्व धान्यकोत्पलविल्वजा ।
 वातातीसारिणे देया शुक्लेणान्यतमेन च ॥ ७७ ॥
 वचाचातिविषामुस्तं बीजानि कुटजस्य च ।
 येष्टो वातातीसारे च योगो वैद्येन योजितः ॥ ७८ ॥
 पृत्तिकं मागधीशुण्ठी बलाधान्यं हरीतकी ।
 पक्वास्थुना पिवेत्सायं वातातीसारशान्तये ॥ ७९ ॥

इति वातातीसारः ।

पीतं रक्तसितं नील दुर्गन्धिहरितं द्रवम् ।
 दाहपाकपिपासा च शकृत्पित्ताग्रवर्त्तते ॥ ८० ॥
 ग्रामान्वयमतिसारं पैत्तिकं लङ्घनैर्जयेत् ।
 लङ्घितस्य यथा सात्प्रं यवागूमण्डतर्पणे ॥ ८१ ॥
 शृतां चन्दनमुस्ताभ्या पटोलोदीचनागरैः ।
 पेयामन्धामनन्तां वा पाचनी ग्राहणीं पिबेत् ॥ ८२ ॥
 धान्योदीच्य शृतं तोयं दृष्ट्वादाहातिसारवान् ।
 ताभ्यामेव सपाठाभ्या सिद्धमाहारमाचरेत् ॥ ८३ ॥
 विल्वशक्यवाभ्रोद वालकातिविषायुतः ।
 कपायो हन्यतीसारं सामं पित्तमसुद्धवम् ॥ ८४ ॥
 विल्वविश्वघ्नोदीच्य धान्यकैः क्षयितं जलम् ।
 सामपित्तातिसारघ्नं दीपनं धान्यपञ्चकम् ॥ ८५ ॥
 रमाचनं सातिविषं कुटजस्य फलत्वचम् ।
 घातकी शृङ्गवेरञ्च पाययेत्तण्डुलास्त्रुना ॥ ८६ ॥
 माक्षिकेन युतो हन्यात्पित्तातीसारमुख्यवणम् ।
 मन्दं मन्दीपयेदग्निं शूलं चाशुनिवर्त्तयेत् ॥ ८७ ॥
 मधुकं कट्फलं लौघ्रं दाडिमस्य फलं त्वचम् ।
 पित्तातीसारं मध्वाक्षं यापयेत्तण्डुलास्त्रुना ॥ ८८ ॥
 समझा घातकीपुष्पं विल्वं मौवर्चलं विडम् ।
 मर्चोद्गं दाडिमश्चैककल्कं तण्डुलवारिणा ॥ ८९ ॥
 पीतं पित्तातीमारघ्नं सपैतं जठरामयम् ॥ ९० ॥
 धान्यकल्केन ससिद्धं चतुर्गुणजले घृतम् ।
 पित्तातीसारं मर्दजे देयं दीपनपाचनम् ॥ ९१ ॥
 इति धान्यकं घृतम् ।
 सुम्नं यक्षकबीजानि भूनिम्बं सरसाञ्जनम् ।

दार्वीं दुरालभा विल्वं बालकं रक्तचन्दनम् ॥ ८२ ॥

बालकं चन्दनं सुस्तं भूनिम्बं स दुरालभम् ।

उशीरं चन्दनं लोध्रं नागरं नीलसुत्पलम् ॥ ८३ ॥

पाठा सुस्तं हरिद्रे द्वे पिप्पली कौटजं फलम् ।

फलत्वचं वत्सकस्य शृङ्गवेरं घनं वचा ॥ ८४ ॥

षडेते पाठिका योगाः पित्तातीसारनाशनाः ।

इति पित्तातीसारः ।

पित्तकृन्ति यदात्यर्थं द्रव्याख्यऽश्राति पैत्तिके ।

तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसारमुख्यणम् ॥ ८५ ॥

तत्रतूर्णं क्रिया कार्या रक्तपित्तनिवर्हिणी ॥ ८६ ॥

हार्गे चार्धोदके क्षीरे नागरोत्पलबालकैः ।

पेया रक्तातिसारघ्नी पृष्टपण्यां च साधिता ॥ ८७ ॥

कंपायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्सकात् ।

सद्यो जयेदतिसारं रक्तजं दुर्निवारकम् ॥ ८८ ॥

—०—

ह्रीवेरातिविषा सुस्ता विल्वधान्यकवत्सकम् ।

समंगाधातकी लोध्रं विश्वं दीपनपाचनम् ॥ ८९ ॥

हन्थरोचकयिच्छामं विबन्धं सातिवेदनम् ।

सशोणितमतिसारं सञ्जरं वाथ विञ्जरम् ॥ ९० ॥

इति ह्रीवेरादिः ।

विल्वं हार्गी पयः सिद्धं सिता मोचरसान्वितम् ।

कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ९०१ ॥

गुडं न भक्षयेद्विल्वं रक्तातिसारनाशनम् ।

आमशूलविबन्धघ्न कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ ९०२ ॥

धातुकीवदरीपत्र कपित्थरसमाक्षिकम् ।

सलोध्रमेकतो दध्ना पिवेन्निर्वाहिकादितः ॥ १०२ ॥
 पयसा पिप्पली कल्कः पीतो वा मरीचोद्भवः ।
 त्राहानिर्वाहिकां हन्ति चिरकालानुवन्धिनीम् ॥ १०४ ॥
 रसाञ्जनं चातिविप्रा कुटजस्य फलत्वचम् ।
 धातुकोश्टद्वेरेष्वपि वेत्तण्डुलवारिणा ॥ १०५ ॥
 क्षौद्रेण युक्तं नुदति रक्तातिसारमुल्वणम् ॥ १०६ ॥

—०—

निःकाप्यमूलममलं गिरिमल्लिकायाः
 सम्यक्पलं द्वितयमम्बुचतुःशरावे ।
 तत्पादशेषसलिलं खलु शोयणीयं
 क्षीरे पलद्वयमिते कुशलै रजायाः ॥ १०७ ॥
 प्रक्षिप्य मापकानष्टो मधुनस्तत्र शीतले ।
 रक्तातिसारी तत्पीत्वा नैरुज्यमिह विन्दति ॥ १०८ ॥
 इति गिरिमल्लिकायां दृष्टम् ।
 वदरीमूलकल्कान्तु तिलकल्कं तथैव च ।
 संमृष्ट्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ।
 तत्पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातिसारनाशनम् ॥ १०९ ॥
 यष्टोमधुतिनाः क्षण्णा पद्मकेसरमुत्पलम् ।
 क्षौद्रमव्यन्डिका युक्तमाजेन पयसा पिबेत् ॥ ११० ॥
 पीत्वा शतावरी कल्कं पयसा क्षीरमुज्जयेत् ।
 रक्तातिसारं पीत्वा वा तथा सिद्धं दृढं नरः ॥ १११ ॥
 क्षीरपिटं पिबेन्नोषं यद्याक्षीत्पलमियितम् ।
 रक्तातिसारशमने शर्करा मधुयोजितम् ॥ ११२ ॥
 पीतः प्रियद्रुनः कल्कः सक्षौद्रस्त्रण्डुलांशुना ।
 रक्तस्त्रावं जयेच्छीघ्रं धव्यमासरसाश्वितः ॥ ११३ ॥

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करा पञ्चभागिका ।

आजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ११४ ॥

सल्लको वदरी जम्बू प्रियालाम्बार्जुनत्वचः ।

पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः धृथक् शोणितवारणा ॥ ११५ ॥

सुस्विन्नं कंचटं बालविल्वं स नवनीतकम् ।

लिङ्घ्याद्रक्तातिसारे च स शूले ग्रहणी गदे ॥ ११६ ॥

वयस्या शारिवा लोध्रं शर्करा मधुयष्टिका ।

पीतः शीतेन पयसा सक्षौद्रो रक्तनाशनः ॥ ११७ ॥

मुस्तकेन्द्रयवैः काथं सुशीतं मधुना युतम् ।

रक्तपित्तातिसारघ्नं ग्रहणीदोषनाशनम् ॥ ११८ ॥

नवनीतं मधुयुतं लिङ्घेद्वासितया सह ।

नागकेशरचूर्णं वा रक्तसंग्रहणं परम् ॥ ११९ ॥

केशराज समुद्भूता जलेन गुटिका कृता ।

जयेत्साममतीसारं सशूलं सास्त्रमाशु च ॥ १२० ॥

कृष्णामृन्मधुकं शर्करा कौटर्जं तण्डुलान्बुना ।

पीतमेकत्र सक्षौद्रं रक्तसंग्रहणं परम् ॥ १२१ ॥

पीत्वा सशर्करा क्षौद्रं चन्दनं तंडुलान्बुना ।

दाहदृष्ट्याप्रमेहेभ्यो रक्तसावाच्च मुच्यते ॥ १२२ ॥

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागे जले शृतम् ।

तथैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥ १२३ ॥

यावच्चलसिकाभासं शृतं तमुपकल्पयेत् ।

तस्यार्धकर्पे तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् ।

अवश्य मरणीयोपि मृत्योर्याति न गोचरम् ॥ १२४ ॥

कुटजकाथतुल्योऽत्र दाडिमस्य रसो मतः ॥ १२५ ॥

यो रक्तं शकृतः पूर्वं पथाद्वा प्रतिसार्थ्यते ।

सपल्लवैर्वटादीनां ससर्पिः साधितं पयः ॥ १२६ ॥
 पिबेत्सशर्करा क्षौद्रं मथ्य चैवातिमन्यितम् ।
 नवनीतं पिबेद्युक्त्या तक्रं चानुपिबेन्नरः ॥ १२७ ॥
 अल्पाल्पं बहुशो रक्तं सशूलमुपदेक्ष्यते ।
 यदा वायुर्विबहश्च पिच्छवस्तिस्तदा हितः ॥ १२८ ॥
 शाल्मलीराद्रं पुष्पाणि पुटपाककृतानि च ।
 संकुट्योल्बुखले सम्यग्गृह्णीयात् पयसि शृते ॥ १२९ ॥
 गृह्णित्वा च पलं तस्य त्रिपलं घृततैलयोः ।
 युक्तं मधुककल्केन माक्षिक त्रिपलेन च ॥ १३० ॥
 तैलाक्तं वपुषं दद्याद्वस्तेः प्रत्यागते रसे ।
 भोजयेत् पयसा वापि पित्तातिसारपीडितम् ॥ १३१ ॥
 इति पिच्छवस्तिः ।

क्षीरद्वुमाणाञ्च रसे विपक्वं
 तज्जैश्च कल्कैः पयसा च सर्पिः ।
 सितोपलार्धं मधुपादयुक्तं
 रक्तातिसारं शमयत्युदीर्णम् ॥ १३१ ॥
 दाहे पाके हितं चाजं पयः क्षौद्रं सशर्करम् ।
 गुदप्रचालने सेके प्रशस्तं पानभोजने ॥ १३२ ॥
 स्वेदोऽथ मूषिका मांसैस्तद्वसास्त्रं चणं तथा ।
 गुदनिस्ररणे शस्तं चाङ्गेरीघृतमुत्तमम् ॥ १३३ ॥
 इति चाङ्गेरीघृतम् ।
 गन्धूकमांसं सुस्निग्धं सतैनलवणान्वितम् ।
 ईपद् घृतेन चाभ्यग्न्य स्वेदयेत्तेन यत्रतः ॥ १३४ ॥
 गुदभ्रंशमशेषेण नाशयेत् क्षिप्रमथ या ॥ १३५ ॥

मेघनादस्य मूलानि मधुना सितया सह ।

निहन्ति शोणितस्त्रावं तंडुलोदकपानतः ॥ १३६ ॥

इति रक्तातिसारः ।

श्वेतं विस्रद्धनं स्निग्धं शोतलं मन्दवेदनम् ।

गौरवाऽरुचि हृत्तासैः पुरीषं सार्यते कफात् ॥ १३७ ॥

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लङ्घनपाचनम् ।

योज्यथामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनो गणः ॥ १३८ ॥

पूतिकव्योष विल्वग्नि पाठादाङ्गिमहिङ्गुभिः ।

योजयेत् संस्कृतैर्यूपः श्लेष्मातिसारनाशनः ॥ १३९ ॥

गोकण्टकं गुहा व्याघ्री कपायं सुमृतं पिबेत् ।

आमश्लेष्मातिसारघ्नं दीपन पाचनं परम् ॥ १४० ॥

पथ्यासौवर्चलं हिगु सैन्धवातिविषा वचा ।

आमातिसारकफजं पीतमुष्णाम्बुना जयेत् ॥ १४१ ॥

चव्यं सातिविषं कुष्ठं बालविल्वं सनागरम् ।

वत्सकत्वक्फलं पथ्या हृदिश्लेष्मातिसारनुत् ॥ १४२ ॥

पथ्याग्नि कटुका पाठा वचा ग्रन्थिकवत्सकैः ।

स नागरैर्जयेत् कायः कल्को वा श्लेष्मिकी स्नुतिम् ॥ १४३ ॥

पाठावचान्निकटुक कुष्ठं कटुकरोहिणी ।

उष्णाम्बु पीतान्ये तानि श्लेष्मातिसारनाशनम् ॥ १४४ ॥

हिङ्गु सौवर्चलं व्योषमभयातिविषावचा ।

पीतमुष्णाम्बुनाचूर्णं श्लेष्मातिसारनाशनम् ॥ १४५ ॥

कुष्ठं पाठावचामुस्तं चित्रक कटुरोहिणी ।

पीतमुष्णाम्बुनाचूर्णं श्लेष्मातिसारनाशनम् ॥ १४६ ॥

चव्यं सातिविषं कुष्ठं पाठाकटुकरोहिणी ।

अभयाम्बु धराशुण्ठी विल्वकर्कटिकायुता ॥ १४७ ॥

चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पलीगजपिप्पली ।

कृमिशतुवचाविल्वं पेशीधान्यककटफलम् ॥ १४८ ॥

श्लोकार्धविहतायोगाद्यत्वारः कण्टकाः स्मृताः ।

श्लेष्मातिसारिणे देया ह्येते वर्णबलप्रदाः ॥ १४९ ॥

नागरातिविषामुस्तं यवानोचित्रकं वचा ।

शुडीपुष्करमूलञ्च पाठाकटुकरोहिणी ॥ १५० ॥

भक्ष्मातकास्थीन्यभयाधातकीकौटजं फलम् ।

हिङ्गुसौवर्चलं चारं विडङ्गं विडसैन्यवम् ॥ १५१ ॥

मूत्रपिष्टान् समानेतान्वटकानक्षसम्भितान् ।

छायाशुष्कांस्तु तान् ज्ञात्वा दद्याच्छ्लेष्मातिसारिणे ॥ १५२ ॥

कृमिश्वपथुपाङ्गुर्त्तिं श्लेष्मगुल्मोदरापहान् ।

ग्रहण्यर्गो विकारघ्नानग्निरुन्दीपनान् पिवेत् ॥ १५३ ॥

इति नागराद्यो वटकः । इति श्लेष्मातिसारः ।

तन्द्रायुक्तो मोहसादास्य शोपी-

वर्चः कुर्यान्नैकरूपं तृपार्त्तः ।

सर्वोद्भूतः सर्वलिङ्गोपपत्तिः कृच्छ्रो-

ऽसाध्यो बालवृद्धासह्यानाम् ॥ १५४ ॥

—०—

शालिपर्णी पृष्णिपर्णी वृद्धतो कण्टकारिका ।

बलाश्वदंष्ट्राविल्वानि पाठानागरधान्यकम् ।

एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥ १५५ ॥

इति वृद्धच्छालिपर्णादिः ।

यत्र कल्केन संमिश्रा प्रसारिण्याग्निमन्ययोः ।

यवागूं प्राशयमानोऽपि पातोसारी सुखी भवेत् ॥ १५६ ॥

अजमोदासमज्ञा च बालकं पद्मकेसरम् ।

यवागूं साधयेदेतेः सर्वातीसारनाशिनीम् ॥ १५७ ॥
 शारकरकभद्रमुस्ता विश्वौषधविनुधातकीपुष्पैः ।
 सिद्धात्तत्र यवागू देया सर्वातिसारिषु च ॥ १५८ ॥
 खिन्नं कुतूहलदहने चाङ्गेरीपत्रसञ्चयं युक्त्या ।
 सिन्धूद्वयेन मित्रं हन्यरुचिं जठररोगञ्च ॥ १५९ ॥
 कटुङ्गमोचाद्वचनाम्बु विल्लैः ससारिवावत्सकनागरैश्च ।
 जलं शृतं सर्वभवं नराणां निहन्त्यतीसारं सक्तवेगम् ॥ १६० ॥
 पञ्चमूलीबलाविल्वं गुडूचीमुस्तनागरैः ।
 पाठाभूनिम्बज्जीवेरं कुटजत्वक् फलैः शृतम् ॥ १६१ ॥
 हन्ति सर्वानतिसारान् ज्वरदोषं वमिं तथा ।
 सशूलोपद्रवं श्वासं कासं हन्यात्सुदुस्तरम् ॥ १६२ ॥
 पञ्चमूलीति सामान्यात्पित्ते योज्याकनीयसी ।
 महतीपञ्चमूली च वातश्लेष्माधिके तथा ॥ १६३ ॥

इति पञ्चमूल्यादिः ।

समङ्गातिविषामुस्तं ज्जीवेरं विश्वधातुकी ।
 कुटजत्वक्फलं विल्वं क्वाथः सर्वातिसारनुत् ॥ १६४ ॥
 अभयानागरं मुस्तं गुडेन सह योजितम् ।
 चतुःसमेयं गुटिका त्रिदोषघ्नीप्रकीर्तिता ॥ १६५ ॥
 आम्रातिसारमानाहं सविविधं विसृचिकाम् ।
 क्षमीनरोचकं हन्याद्दीपयत्याशुचान्ननम् ॥ १६६ ॥
 विल्वान्बुधातुकीपाठा शुण्ठीमोक्षरसः समः ।
 पीतोरुन्ध्यादतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम् ॥ १६७ ॥
 दण्डी दीयरकेसरराजशिखरी चोराविकादीपकम् ।
 सूर्यावर्तकजीरकद्वययुतं भृष्टं मनाक् खर्परे ।
 पिष्ट्वा पर्युपिताम्बुना दिनमुखे पीतं निहन्त्यावृणाम् ।

नानावर्णरुजातिसारकगदम्भोवाच धन्वन्तरिः ॥ १६८ ॥
 पलमङ्कोटमूलस्य पाठादार्योश्च पेपयेत् ।
 यष्ट्याम्बुनाक्षमात्रस्य वटी सर्वातिसारहा ॥ १६९ ॥
 अकोटमूलं तक्रेण ह्यतिसारहरं परम् ।
 माहिषेण तु तक्रेण पाठापत्रं तथैव च ॥ १७० ॥
 कुटजत्वक्फलं मुस्तं क्षाथयित्वा जलं पिवेत् ।
 अतिसारं जयत्याशु शर्करामधुसंयुतम् ॥ १७१ ॥
 विभीतकफलं दग्धं हृन्ध्याल्लवणसंयुतम् ।
 महान्तमप्यतीसारं चक्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥ १७२ ॥
 वटप्ररोहं संपेष्य श्लक्ष्णं तडुलवारिणा ।
 तं पिवेत्तक्रसंयुक्तमतिसारहरं परम् ॥ १७३ ॥
 धातुकीनागरं विल्वं सलोध्रं पद्मकेसरम् ।
 जम्बूत्वङ्नागरं धान्यं पाठामोचरसं तथा ॥ १७४ ॥
 समगा धातुकी विल्वं मध्यजम्ब्यास्त्रयोस्त्वचः ।
 कपित्थानि विडगानि नागरं मरिचानि च ॥ १७५ ॥
 चांगीरी तत्र कौलाम्ना चत्वारस्ते कफोत्तरे ।
 श्लोकादिं विडितान् दद्यान् सस्त्रेह लवणान् गुडान् ॥ १७६ ॥

इत्यतीसारे च चत्वारो यूपाः ।

अवेदनं सुमम्पकं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ।
 नानावर्णमतोसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ १७७ ॥
 त्रिग्वं घ्नं कुटजयल्कनजन्तवऽजग्ध-
 मादाय तत्क्षणात्मनीयं च येन पित्वा ।
 जम्बूपलाशदलतंडुलतोयसिक्तं
 वदं कुगेन च वैहिर्धनपट्टलिप्तम् ॥ १७८ ॥

सुखिन्नमेतदवपोद्धारं गृहित्वा
क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् ।

क्षणातिपुत्रमतिपूजित एष योगः

• सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ १७६ ॥

इति कुटजपुटपाकः ।

काश्मरी पद्मपत्रैश्च पक्वा कटुङ्ग बल्कलम् ।

सपद्मकेसरी ग्राही स्याद्रसो मधुसंयुतः ॥ १८० ॥

इति स्थोनाकपुटपाकः ।

न्यग्रोधादिगणा पूर्णं पुटपाकश्च तित्तिरे ।

द्रवो मधुसितो पेयः पीतो हृन्त्युदरामयम् ॥ १८१ ॥

इति न्यग्रोधादि पुटपाकः ॥

शृण्ठीमल्पष्टतान्वितां परिहृतां गोधूमपिष्टैस्ततः ।

मद्यो गोमयवेष्टितान्तु विपचेन्मन्दाग्निना चातुरः ॥

शीतीकृत्यसितामसां प्रतिदिनं भक्षेन्नरः पथ्यभुक् ।

सर्वोपद्रवसंयुतानपि जयेद्दीर्घातिसारामयान् ॥ १८२ ॥

इति शृण्ठीपुटपाकः ।

पुटपाकस्य पाकोऽयं वहिरारक्तवर्णता ।

भेषजात्वात्पलस्यास्य पानमिष्टं चिकित्सकैः ॥ १८३ ॥

—०—

कुटजत्वकृतः काथो घनीभूतः सुशोभनः ।

सलीढोऽतिविषायुक्तः सर्वातिसारनुद्भवैत् ॥ १८४ ॥

इच्छन्त्यत्राष्टमांसेन काथादतिविषारजः ॥ १८५ ॥

इति कुटजावलेहः ।

मूर्लं त्वचः पलशतं रक्तस्य कुटजस्य च ।

जलद्रोणे विपाच्यैतत्पादशेषमथोदरेत् ॥ १८६ ॥

भूयस्तद्विपचेत्तावद्यावत्सान्द्रत्वमिति च ।

सैन्धवाच्चविडचार कृष्णेन्द्रियधातकी ॥ १८७ ॥

जीरं चूर्णं समं कृत्वा मध्वतं विलिहेत्ततः ।

ततो महिषदध्ना च भोजयेच्च तमातुरम् ॥ १८८ ॥

दुर्निवारमतिसारं जयेदेतदसंशयः ॥ १८८ ॥

—०—

शतं कूटजमूलस्य क्षुण्णं तोयाऽर्मणे पचेत् ।

क्वाथे पादावशेषेऽस्मिन्नेही भूतः पुनः पचेत् ॥ १८९ ॥

मौवर्चल यवचार विडसैन्धव पिप्पली ।

धातकीन्द्रयवा जाजी चूर्णं दत्त्वा पलद्वयम् ॥ १९० ॥

लिङ्गाद्वदरमात्रन्तु तच्छीतं मधुसंयुतम् ।

पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं मयेदनम् ॥

दुर्वारं ग्रहणी दोषं जयेच्चैव प्रसाहिकाम् ॥ १९१ ॥

इति कुटजावलेहः ।

नेहे यत्रास्ति नो भागो निर्दिष्टो द्रव्यकल्कयोः ।

तत्रापि पादिकः काथ्यो द्रवात्कल्को विजानता ॥ १९२ ॥

—०—

कूटजत्वक्फलशतं कपायमुपकल्पयेत् ।

वस्तपृतं पुनः काथ्यं यदा लेहत्वमागतम् ॥ १९३ ॥

भज्जातकं विडङ्गानि विफला त्रिकाटु तथा ।

रमाञ्जनं विषकक्ष कुटजस्य फलानि च ॥ १९४ ॥

यथा मातिविषा विषं पाठा मोचरमस्तथा ।

वानकश्च समङ्गा च प्रत्येकान्तु पनं पनम् ॥ १९५ ॥

द्विंशत्पनं गुडस्यास्य चूर्णं कृत्वा प्रदापयेत् ।

मधुनः कुडमं दत्त्वा एतन्न्य कुडव तथा ॥ १९६ ॥

एष सेहस्तु शमयेदृशो रक्तसमुद्भवम् ।

वातिकं पैत्तिकञ्चैव शैषिकं सान्निपातिकम् ॥ १८७ ॥

ये च दुर्नामजा रोगा स्तांस्तु सर्वान् व्यपोहति ।

रक्तपित्तमतीसारं पांडुरोगमरोचकम् ॥ १८८ ॥

ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ।

अनुपाने च तं दद्याद् दधि तक्रं घृतं पयः ॥ १८९ ॥

इति कुटजावलेहः ।

तुलामयार्द्रा गिरिमल्लिकायाः

संकुप्य पक्वा रसमाददीत ।

तस्मिन् सुतप्ते पलसंमितानि

संचूर्ण्य दद्यात् सह शाल्मलेन ॥ २०० ॥

पाठां समङ्गाऽतिविषां समुस्तां

विल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम् ।

प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च तावद्

दार्वीं प्रलेपः स्वरसस्य यावत् ॥ २०१ ॥

पीतम्बुसौ कालविदा जलेन

भण्डेन वाऽजापयसाथ वापि ।

निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं

कृष्णं सितं लोहितपीतकञ्च ॥ २०२ ॥

दीपञ्च हन्याद्विविधं मरुतं

पित्तं तथार्शांसि मयोणि तानि ।

असृग्दरञ्चैवममाध्य रूपं

निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ २०३ ॥

तुला द्रव्ये जलद्रोणी द्रोणे द्रव्य तुला मताः ।

इति कुटजाष्टकावलेहः ।

जीर्णं त्वपथ्यभोजी स्यादर्शोभ्यः प्रतिमुच्यते ।

रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह ईरितः ॥ २०४ ॥

इति कुटजावलेहः ।

मदार्थं कौटपाठानां मूलं त्वक्कुटजस्य च ।

शाल्मलीशालनिर्यासं धातकी लोघ्रदाडिमम् ॥ २०५ ॥

पिष्टाक्षसंमितान् कृत्वा वटकांस्तंडुलाम्बुना ।

तेनैव मधुमंयुक्तानैकैकान् प्रातरुत्थितः ॥ २०६ ॥

पिवेदत्वयमापन्नो विड्विसर्गेण मानवः ।

अङ्घोटवटको नाम्ना सर्वातिसारनाशनः ॥ २०७ ॥

इत्यङ्घोटवटकः ।

वत्सकस्याऽनृतायाश्च द्वे पले प्रस्थमौदकम् ।

अपयित्वा रसे तस्मिन् पादशेषेऽवतारि ते ॥ २०८ ॥

अष्टौ पलानि शकस्य यवायूणीं कृतानि तु ।

गृहपाकं विदित्वा तु यथा वङ्गावतारितम् ॥ २०९ ॥

सद्य मर्जातिमारांश्च सर्वांश्च ग्रहणी गदान् ।

नागयेदीपयेच्चाग्निं क्षणात्रेयस्य शासनात् ॥ २१० ॥

इति वत्सकाद्या गुटिका ।

पनमङ्घोटमूलस्य पाठां दार्यीश्च तत्समाम् ।

पिष्टा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसंमितान् ॥ २११ ॥

छाया शुष्कां पिवेत् क्षिप्रं पिष्ट्वा तंडुलवारिणा ।

वातपित्तकफप्रायान् हृन्दजान् भास्त्रिपातिकान् ॥

हन्यात् सर्वानतिमारान् गुटिकेऽयं प्रयोजिता ॥ २१२ ॥

इत्यङ्घोटगुटिका ।

पलार्धमरुणायाम्नु क्षिपनं कुटजस्य च ।

केशराजस्य मूलं तु कर्षं तत्सर्वमेकतः ॥ २१३ ॥

संकुप्य सलिलप्रस्थे पक्ता पादस्थिते रसे ।
 पूतेऽस्मिन्ऽर्धतः खण्डं छागक्षीरं चतुष्पलम् ॥ २१४ ॥
 विल्वातिविषयोद्युर्णं सुस्तस्येन्द्रियवस्य च ।
 प्रत्येकमक्षमात्रन्तु क्षिप्त्वा पक्ता च भक्षयेत् ॥ २१५ ॥
 गृहं तदनुभुञ्जीत काञ्चीकाम्बुप्रसाधितम् ।
 मापगोचुरसिद्धं वा छागक्षीरं पिबेन्नरः ॥
 ग्रहस्थितिसारहरो लेहोऽयमपराजितः ॥ २१६ ॥
 इत्यपराजितावलेहः ।

वत्सकस्य च बीजानि दार्व्याथैव त्वगुत्तमा ।
 पिप्पली शृङ्गवेरञ्च लाक्षा कटुकरोहिणी ॥ २१७ ॥
 पद्मिरेतैर्घृतं सिद्धं पेयं मण्डविमिश्रितम् ।
 अतिसार जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ॥ २१८ ॥
 इति षडङ्गघृतम् ।

कुटजत्वक्फल लोभ्रं कृष्णादार्वामहौषम् ।
 कटुका चेति तैः सिद्धं घृतं सर्वातिसारनुत् ॥ २१९ ॥
 इति कुटजाद्यं घृतम् ।

दार्वी सलाक्षाकटुका सविज्ञा त्वक्कौटजाशक्रयवः सङ्कणः ।
 एभिर्विषकं घृतमाशुहन्ति मण्डेन पीतं सकलातिसारम् ॥ २२० ॥
 इति सप्ताङ्गघृतम् ।

तुलां संकुप्य विलुप्त्य पचेत्पादावशेषिताम् ।
 सक्षीरं साधये तैलं श्लक्ष्णपिष्टैरिमैः समैः ॥ २२१ ॥
 धातुकी विल्वकुष्ठञ्च रास्त्राशुण्ठीपुनर्नवा ।
 देवदारुवचामुस्तं लोभ्रं मोचरसान्वितम् ॥ २२२ ॥

सृद्धग्निना साधितञ्च ग्रहण्यर्गोऽतिमारुतम् ।

विल्वतैलमितिष्यात् मुहृदात्रेय पूजितम् ॥ २३३ ॥

इति महाविल्वतैलम् ।

ग्रहण्यर्गो विकारे ये स्त्रे हाद्या उपकल्पिता ।

तेपि चात्र प्रयोक्तव्या यथा दोष विज्ञानता ॥ २३४ ॥

इति सर्वातिमारुम् ।

कटादिभूिस्त्रै, क्रुद्धै, प्रवृद्धौ पित्तमारुतौ ।

व्यास्राद्य ग्रहणी नृणामतीसारकरी स्मृतौ ॥ २३५ ॥

सशब्दं फेनिलं रूचं कपायोदकसन्निधम् ।

पक्वाक्षरसवर्णाभि हरिद्राप्रतिम घनम् ॥ २३६ ॥

विष्मूत्र कृष्ण सृजति सशूलं दाहपाकवान् ।

विद्यात्तदाहशोषान्त वातपित्तातिसारिणाम् ॥ २३७ ॥

—०—

लघुत्वा प्रज्ञमूलेन पिप्पल्या सह धान्यया ।

आहारो भिषजा योज्यः सर्वदा हितमिच्छता ॥ २३८ ॥

कटफलं मधुकं लोध्रं त्वग्दाडिमफलस्य च ।

वातपित्तातिसारघ्नं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ २३९ ॥

कलिङ्गकं वचा मुस्तं दारु सातिविषा समम् ।

कस्कं तण्डुलतोयेन पिबेत्पित्तानिलासयी ॥ २४० ॥

फेनिलं बहुशो रक्तं सकलं वेदनान्वितम् ।

विविधं सार्यमाणस्य वातपित्तातिसारिणाम् ॥ २४१ ॥

इति वातपित्तातिमारु ।

कटुस्त्रलवणस्त्रिगुणमिष्टोपसेवनात् ।

श्रेष्ठपित्ते प्रकुपिते वृद्धिं संकाय देहिनाम् ॥ २४२ ॥

कपायन्तं द्रव्यं स्त्रिगुणं मन्दवेगं सवेदनात् ।

घनं शाल्मली पिच्छाभं पद्मपत्रनिभं क्वचित् ॥ २३३ ॥
पिच्छिलं शङ्खवर्णाभं रक्तविन्दुभिराचितम् ।
क्षुत्तृष्णे चातिबहुले श्लेष्मपित्तातिमारिणाम् ॥ २३४ ॥

—०—

यथा दीपप्रशमनी दद्याद्दीपनपाचनी ।
यवागूर्वद्वदोषाणां श्लेष्मपित्तातिमारिणाम् ॥ २३५ ॥
शालिपर्णी बला विनूँ पृथक् पर्णी च साधिता ।
दाडिमान्मयुता पेया श्लेष्मपित्तातिसारिणाम् ॥ २३६ ॥
कुटजातिगिषा मुस्तं हरिद्रा पर्णिनीद्वयम् ।
सत्तोद्वर्गकरं शस्तं श्लेष्मपित्तातिसारिणाम् ॥ २३७ ॥
मुस्ता सातिविषा सूर्वा वचा च कुटजं समा ।
एषा कषाय सत्तोद्वर्ग श्लेष्मपित्तातिसारहृत् ॥ २३८ ॥
मुस्तं हरिद्रे मधुक पृष्टपर्णी सहस्रकम् ।
मधुयुक्तं निहन्त्याश श्लेष्मपित्तसमुद्भवम् ॥ २३९ ॥
सवेदनं सरक्तञ्च पुरीषं मन्दधाति च ।
श्लेष्मपित्तातिसारघ्नं रक्तं चाशं नियच्छति ॥ २४० ॥
पाठा वल्लकवीजानि चित्रकं विग्रहमेपजम् ।
पिवेन्नि क्वाथ्यचूर्णानि कृत्वा चोष्णेन वारिणा ॥ २४१ ॥
पित्तश्लेष्मातिसारघ्नं ग्रहण्या शूलनुद्धितम् ॥ २४२ ॥
लोध्रं चन्दनयथ्याक्तं दावीं पाठाऽनिलोत्पलम् ।
तण्डुलोदकसपिष्टं दीर्घहन्तं त्वगन्वितम् ॥ २४३ ॥
पूर्ववत् कथितादस्माद्रसमादाय शीतलम् ।
मध्वक्तं पाययेच्चै तत् कफपित्तोत्तरामये ॥ २४४ ॥
इति लोध्रादिपुटपाकः । इति श्लेष्मपित्तातिसारः ।
रसैः स्वादुकटुमायैरुभी वातकफौ नृणाम् ।

कुरुतस्तावतीसार ऋद्धौ वङ्गि निरस्य च ॥ २४५ ॥
 द्रव सफेनं पुरीष तत्तुल्यमामगन्धिकम् ।
 सशब्द वेदनावन्त न चामं परिपच्यते ॥ २४६ ॥
 नित्य गुडगुडायन्त तन्द्रा मूर्च्छा भ्रमकृमै ।
 प्रसक्त सन्धिकद्यूरूजानुष्टास्त्रिशूलिन ॥ २४७ ॥
 धान्यपञ्चकससिद्धो धान्यविश्वकृतोऽथवा ।
 आहारो भिषजा योज्यो वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ २४८ ॥
 चिरविल्व वचा दारुपञ्चकोल पुनर्नवा ।
 विदारी गन्धावृहती विल्वद्य खण्डितान्यवान् ।
 छाद्यो यवागूर्यष वा वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ २४९ ॥
 विल्व विल्ववाजीजानि पाठाहिगुशिवान्विता ।
 वातश्लेष्मातिसारेषु कषाय पाचनं पिवेत् ॥ २५० ॥
 चित्रकातिविषा सुस्त बालविल्व सनागरम् ।
 वत्सकत्वक् फल पथ्या वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ २५१ ॥
 पूति दारुत्वच रोध्न कटुङ्गमथ नागरम् ।
 दाडिमान्मथुत दद्याद्वातश्लेष्मातिमारिणाम् ॥ २५२ ॥
 वातश्लेष्मातिसारे यच्चोक्त पाचन आहि भेषजम् ।
 तदत्रापि प्रयुञ्जीत सपित्तकफमारुते ॥ २५३ ॥

इति वातश्लेष्मातिसार ।

विल्वचूतास्थि निर्यूह पीत सचोद्रशर्करा ।
 निहन्त्याच्छर्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ २५४ ॥
 पटोलयवधान्याककाथ पेय सुगीतम् ।
 शर्करा मधुसंयुक्त छर्यतीसारनाशन ॥ २५५ ॥
 प्रियम्बजनमुस्ताह पाययेत्तु यथा वनम् ।
 तृष्णातीसारच्छर्दिघ्न सचोद्र तण्डुलाम्बुना ॥ २५६ ॥

कपायो भट्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ।

हृद्यतीसारतट्टदाहज्वरघ्नः संप्रकाशितः ॥ २५७ ॥

जम्बाम्त्रपल्लवोशीरवटशृङ्गावरोहकम् ।

रसः क्वाथोऽथवा चूर्णं क्षोद्रेण सह योजितम् ॥ २५८ ॥

हृदिज्वरमतीसारं मूर्च्छां तृष्णाञ्च दुर्जयाम् ।

नियच्छत्यचिराद्रक्तच्युतिं वाऽनेकहेतुकाम् ॥ २५९ ॥

इति हृद्यतीसारः ।

विडङ्गातिविषा मुस्तं दारुपाठा कलिङ्गकम् ।

मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ २६० ॥

किराताद्धानृतोदीच्य मुस्तचन्दनधान्यकैः ।

शोथातिसारहृत्तासतट्टदाहज्वरनाशनः ॥ २६१ ॥

विश्वौषधस्य गर्भेण दग्धमूलजले शृतम् ।

घृतं मिहन्त्यतीसारं ग्रहणीं पाण्डुकामलाम् ॥ २६२ ॥

इति शोथातीसारः ।

तैस्तैर्भाविः शोचतोऽप्याशनस्य

वाष्पोष्मावैवज्जिमाविश्य जन्तोः ।

कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं

तच्चाधस्तात् काकणन्ती प्रकाशम् ॥ २६३ ॥

निर्गच्छेद्द्वै विड्विमिश्रं ह्यबिड् वा

निर्गन्धं वा शम्भवच्चातिसारः ।

शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्सोऽति मार

रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥ २६४ ॥

भयशोकसमुद्भूतो ज्ञेयो वातातिसारवत् ।

तयोर्वातहरी कार्थ्या हर्षणाश्वासनैः क्रिया ॥ २६५ ॥

इति भयशोकजावतीसारौ ।

विपार्श्वः कृमिसंभूते हिता चोभयशर्मदा ॥ २६६ ॥

शर्करा धातुकी लोभैः पाठारलुकपिप्पली ।

ममङ्गाभिर्मोचरसपद्मकेसरसंयुतैः ॥ २६७ ॥

अर्थः प्रभावकृमिजं विरुद्धपानान्न दीपसम्भूतम् ।

अतिसारभयं शमयति लेहः कल्याणकी नाम्ना ॥ २६८ ॥

इति कल्याणवलेहः ।

दीप्ताग्निर्वहुदोषो यो विबन्धं यातिसार्थ्यते ।

विडङ्गविफला कृष्णा कषायैस्तं विरेचयेत् ॥ २६९ ॥

शुत्क्षामस्य विरिक्तस्य युञ्ज्यात्प्रेयां विचक्षणः ।

भेषजैर्मास्तुतैश्च दीपनैः संप्रकल्पिताम् ॥ २७० ॥

अन्नाजीर्णाश्रुताः चोभयन्तः

कोटं दीपा धातुसङ्घान्मलांश्च ।

नानावर्णं नैकशः सारयन्ति

शूलोपेतं पट्टमेनं वदन्ति ॥ २७१ ॥

तत्रापि वमनं कार्यं लङ्घनञ्च यथाक्रमम् ।

शूलानाह प्रसेकान्तं वामयेदतिसारिणाम् ॥ २७२ ॥

पिप्पली लवणाभ्याञ्च साधितेन जलेन वा ।

विज्ञेयादीचोदकं पानं लङ्घनं वापि शस्यते ॥ २७३ ॥

पिप्पल्यादिः प्रयोक्तव्यो यूपः सह षड्रादिभिः ॥ २७४ ॥

—०—

नागरातिविषा मुह्यं हिङ्गुवत्सकचित्रकाः ।

घनतेजोवती पाठा पिप्पलीन्द्रयवाः समम् ॥ २७५ ॥

मैन्धवं कौटजं वीजं यथा कटुकरोहिणी ।

विडं पाठामतिविषां कुटजं विश्वभेषजम् ॥ २७६ ॥

प्लवाकुटजबीजानि लोभं साधरकं न्यसेत् ।

वत्सकातिविषा शुण्ठी विल्वङ्गुयवांबुदाः ॥ ३७७ ॥

श्लोकार्धं विहिता योगाः पडेते पाचना मताः ।

उष्णाम्बु मद्यधान्यास्त्रैः पीताः वा श्लक्ष्णचूर्णिताः ॥ ३७८ ॥

इत्यामपाचनविधिः ।

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासबुदत्यधस्तादहिताग्नेस्य ।

प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं

प्रवाहिकान्तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३७९ ॥

प्रवाहिका वातकृता सशूला

पित्तात्सदाह्वा सकफा कफाच्च ।

सशोणिता शोणितसम्भवाच्च

ताः स्नेहरुक्षप्रभवामतास्तु ॥ ३८० ॥

तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चामविषकृताच्च ॥ ३८१ ॥

तैलं सर्पिर्दधिचौद्रं सिता विश्वं सफाणितम् ।

सर्वमालोद्य पातव्यं सद्यो निर्वाहिकां जयेत् ॥ ३८२ ॥

कल्कः स्यादालविल्वानां तिलकल्कश्च तत्समः ।

दध्नः सारोऽस्त्रस्त्रे हाव्यः सद्यो हन्यात् प्रवाहिकाम् ॥ ३८३ ॥

वलाविल्वं गुडं तैलं पिप्पली विश्वभेषजम् ।

लिङ्घाद्वातप्रतिहते सशूले सप्रवाहिके ॥ ३८४ ॥

विल्वपेशी गुडं शोध्रं तैलं मरिचयोजितम् ।

शोढ्वा प्रवाहिकाक्रान्तः क्षिप्रं सुखमवाप्नुयात् ॥ ३८५ ॥

पयसा पिप्पली कल्कः पीतो वा मरिचोज्ज्वलः ।

अत्रहान्निर्वाहिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ३८६ ॥

घातकी बदरीपतं कपित्थरसमाक्षिकम् ।

सलोत्तमेकतो दत्ता पिबेन्निर्वाहिकार्दितः ॥ ३८७ ॥

त्रूपण त्रिफला मुस्तं चित्रको हस्तिपिप्पली ।
 विल्व कर्कटिवा हिगु थिडङ्ग सनिदग्धिकम् ॥ २८८ ॥
 घृतप्रस्थ पचेदेभिर्गवा मूत्रे चतुर्गुणे ।
 तत्रयोग पिवेत्कील हन्यात्तेन प्रवाहिकाम् ॥ २८९ ॥
 इति त्रूपणाद्य घृतम् । इति प्रवाहिका

यवा सक्तुश्च लाजाना मूल पुष्पञ्च शाळ्मले ।
 न्यग्रोधोडुम्बराश्वत्थशृङ्गाश्च द्विपलोन्मिता ॥ २९० ॥
 त्रिप्रस्थे सलिलस्येतत् क्षीरप्रस्थ विपाचयेत् ।
 क्षीरशेष कषायञ्च पूत कृत्वा क्षिपेदयम् ॥ २९१ ॥
 कन्क शाळ्मलि निर्य्यास, समङ्गा चन्दनोत्पलम् ।
 बल्लकस्य च वोजानि प्रियगु पद्मकेशरम् ॥ २९२ ॥
 पिच्छावस्तिरियं सिद्धा सघृतक्षीद्रशर्करा ।
 प्रवाहिका गुदध्वश रक्तास्त्राव ज्वरापहा ॥ २९३ ॥

इति पिच्छावस्ति ।

दीप्ताग्निर्निष्पुरीषो य सायते फेनिल शक्तत् ।
 स पिवेत् फाणित शण्ठी दधितैलसमन्वितम् ॥ २९४ ॥

‘दध्ना समारेण समाचिकेन

भुञ्जीत नि सारिकपीडितस्तु ।

सुतप्तकुप्य कथितेन वापि

क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ २९५ ॥

बला विग्वशृत क्षीर गुडतैलानुयोजितम् ।

दीप्ताग्नि पाययेन्नात सुखद वर्चस क्षये ॥ २९६ ॥

शगमासं सरुधिर समगा सघृत दधि ।

विपाच्य खादेत् सेवेच्च मृद्वन्न गहत क्षये ॥ २९७ ॥

इति पुरीषक्षय ।

विबन्धवातविट्शूलपरीतः सप्रवाहिकः ।

सरक्तपित्तश्च पयःपिवेत्तृणासमन्वितः ॥ २८८ ॥

जीर्णेऽसुतोपमं क्षीरं मतीसारे सुयोजितम् ।

स्वचिरोत्ये च तत्प्रेयमपांभागैस्त्रिभिः शृतम् ॥ २८९ ॥

—०—

अथासाध्यलक्षणमाह ।

पक्वजाम्बवसंकाशं यक्तत् पिण्डनिभन्तनु ।

घृततैलवसा मज्जा वेशवारं पयोदधि ॥ ३०० ॥

मांसधावन तोयामं क्षणं नीलारुणप्रभम् ।

कर्पूरं मेचकं स्निग्धं चन्द्रकोपगतं घनम् ॥ ३०१ ॥

कुणपं मस्तुलुङ्गार्भं सगन्धं क्षयितं बहु ।

दृष्ट्वादाहभ्रमश्वासहिकापाश्वीस्थि शूलिनम् ॥ ३०२ ॥

समूर्च्छाऽरतिमोहैश्च युक्तं पक्वबलीगुदम् ।

प्रलापयुक्तञ्च भिषग्वर्जयेदतिसारिणम् ॥ ३०३ ॥

असद्वृत्तगुदं क्षीणं शूलाधानमुपद्रुतम् ।

गुदे पक्वे गतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥ ३०४ ॥

श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिषोडितम् ।

विशेषेण नरं हृदमतिसारो विनाशयेत् ॥ ३०५ ॥

लिंगैरसाध्यो ग्रहणीविकारो

यैर्महैरतिसारगदो न सिध्येत् ।

हृदस्य नूनं ग्रहणीविकारो

ऽहत्वा तनुं नैव निवर्त्तते तु ॥ ३०६ ॥

शोथं शूलं ज्वरं मूर्च्छां श्वासं कासमरोचकम् ।

हृदि दृष्ट्वाश्च हिकाश्च दृष्ट्वातिसारिणं त्यजेत् ॥ ३०७ ॥

हस्तपादाङ्गुली सन्धि प्रपाको मूत्रविट्ग्रहः ।
 पुरोपस्थोष्णतातीव कोष्ठभेदी न जीवति ॥ ३०८ ॥
 यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।
 दोषाग्नेर्लघुकोष्ठस्थ स्थितस्तस्योदरामयः ॥ ३०९ ॥
 स्नानावगाहमभ्यङ्गं गुरुस्निग्धञ्च भोजनम् ।
 व्यायाममग्निसन्तापमतीसारे विवर्जयेत् ॥ ३१० ॥
 इत्यतिसारनिदानचिकित्साधिकाः ।

—०—

अथं ज्वरातिसारमाह ।

ज्वरातिसारयोरुक्तं निदानं यत् पृथक् पृथक् ।
 तस्माज्ज्वरातिसारस्य तेन नात्रोदितः पुनः ॥ ३११ ॥
 अथमानं ज्वरोत्सृष्टं सुपेक्षितमलं सदा ।
 अतिप्रवर्त्तमानन्तु साधयेत् स चिकित्सकैः ॥ ३१२ ॥
 ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत् पृथक् पृथक् ।
 न तन्मिलितयोः कार्यं मन्योन्यं वर्द्धते यतः ॥ ३१३ ॥
 अतस्तौ प्रतिकुर्वीत विशेषोक्तचिकित्सकैः ॥ ३१४ ॥
 लङ्घनमुभयोर्युक्तं मिलिते कार्यं विशेषतस्तदनु ।
 उत्पन्नपट्टिकमिदं लाजामण्डादिकं पेयम् ॥ ३१५ ॥
 पृष्णीपणीं वलाविल्वनागरोत्पन्नधान्यकैः ।
 ज्वरातिमारे पेयां वा पिवेत् साग्नां शृतां नरः ॥ ३१६ ॥
 धातकी कायममिहा विष्वमेपजसंस्कृता ।
 दाडिमास्त्रयुता पेया ज्वरातिमारशूलिनाम् ॥ ३१७ ॥
 परण्डमूलयवगोक्षुरकारंनलैः
 स्त्रियां लिहन्ति विजयां मधुना युता ये ।

तेषां प्रणाशमुपयान्युदरामयास्तु ।

सर्वे सशूलविषमज्वरकासयुक्ताः ॥ ३१८ ॥

कृशा करिकशा लाजा गणो मधुसिता युतः ।

पीतो ज्वरातिसारस्य दृष्ट्यावम्योश्च नाशमः ॥ ३१९ ॥

पाठेन्द्रियवभूनिम्ब सुस्त पर्पटकामृता ।

जयत्याममतीसारं ज्वरश्च समहौषधम् ॥ ३२० ॥

—०—

मागरातिविषा सुस्त भूनिम्बामृतवत्सकैः ।

सर्वज्वरहरः कायः सर्वातिसारनाशनः ॥ ३२१ ॥

इति नागरादिः ।

झीवेरातिविषा सुस्त विल्वनागरधान्यकम् ।

पिवेत्पिच्छा विबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम् ।

सरङ्गं हन्वतीसारं सज्वरं वायु विज्वरम् ॥ ३२२ ॥

इति झीवेरादिः ।

गुडूच्यतिविषा धान्य शुण्ठी विल्वाब्द बालकैः ।

पाठा भूनिम्बकुटजचन्दमोशोरपर्पटैः ॥ ३२३ ॥

पिवेत्कपायं सक्षौद्रं पिपासा दाहनाशनम् ।

ज्वरातिसारसन्तापं नाशयेदविकल्पतः ॥ ३२४ ॥

इति गुडूच्यादिः ।

वत्सकस्य फलं दारु रोहिणी गजपिप्पली ।

श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं विल्वं पाठा यवानिका ॥ ३२५ ॥

हावेतो सिद्धयोगौ ती श्लोकार्द्धेनाभिर्मापितौ ।

ज्वरातिसारशमनौ विशेषादाहनाशनौ ॥ ३२६ ॥

उत्पलं दाडिमत्वचं पद्मकेसरमेव च ।

पिवेत्तडुलतोयेन ज्वरातिसारनाशनम् ॥ ३२७ ॥

उशीरं बालकं सुस्तं धान्यक विश्वमेव च ।
 समङ्गा धातकी लोभ्रं विल्वं दीपनपाचनम् ॥ ३२८ ॥
 हृन्त्यरोचकपिच्छाम विविध सातिवेदनम् ।
 सशोणितमतीसारं सज्वरं वाय विज्वरम् ॥ ३२९ ॥
 विल्वबालकभूनिम्ब गुडूची धान्यनागरैः ।
 कुटजाव्ययुतः काथी ज्वरातिसारशूलनुत् ॥ ३३० ॥
 समङ्गा धातकीपुष्पं केशरं नीलमुत्पलम् ।
 तण्डुलोदकसयुक्तं ज्वरातिसारनाशनम् ॥ ३३१ ॥
 नागरातिविषा मुस्ता गुडूची विश्ववत्सकैः ।
 कपायः पाचनः शोथज्वरातिसारवारणः ॥ ३३२ ॥
 सुस्तकातिविषा शुण्ठी वत्सकाभयतिक्तकैः ।
 सर्वातिसारहृत्तास सर्वशोफज्वराघहः ॥ ३३३ ॥
 काथेन दशमूलस्य विश्वमक्षयुगं पिबेत् ।
 ज्वरे चेनातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ ३३४ ॥
 सुस्तकविश्वातिविषा गोषी भूनिम्बवत्सककाथः ।
 मकरन्दगर्भयुक्तो ज्वरातिसारं जयेद्दीरम् ॥ ३३५ ॥
 नागरामृतभूनिम्ब विल्वामलकवत्सकैः ।
 समुस्तातिविषोशीरैर्ज्वरातिसारहृज्जलम् ॥ ३३६ ॥

—०—

यथोप वत्सकबीजञ्च निम्बभूनिम्बमार्कवम् ।
 चित्रक रोहिणी पाठां दार्वीमतिविषां वचाम् ॥ ३३७ ॥
 श्लक्ष्ण चूर्णितं सर्वे तनुल्या वत्सकत्वचम् ।
 सर्पमेकत्र संयोज्य प्रपिबेत्तंडुलाम्बुना ॥ ३३८ ॥
 सक्षौद्रं वा पिबेदेतत्पाचनं प्राहि दीपनम् ।
 यस्यारुचिप्रगमनं ज्वरातिसारनाशनम् ॥ ३३९ ॥

कामला ग्रहणीदोषान् गुल्मं श्लीहानमेव च ।

प्रमेहं पाण्डुरोगञ्च श्वयथुश्चापकर्षति ॥ ३४० ॥

इति व्योपायं चूर्णम् ।

कटुङ्गविल्वजम्बास्थिकपित्तं सरसाञ्जनम् ।

खात्ता हरिद्रे क्लीवेरं कटुफलं शुकानासिकाम् ॥ ३४१ ॥

लोध्नं मोचरसः शङ्खं धातकी वटशृङ्गकम् ।

पिप्पला तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्भितान् ॥ ३४२ ॥

छाया शुष्कान् पिबेन्प्रातर्ज्वरातीसारशान्तये ।

रक्तापित्तज्वरहराञ्ज्यूलातिसारनाशनान् ॥ ३४३ ॥

इति कटुङ्गाद्यो वटकः ।

पाठागमतिमिषा निम्ब समङ्गा चन्दनं जलम् ।

धातकी सुस्त भूनिम्बं जटामांसी सनागरम् ॥ ३४४ ॥

दावीं च समभागानि घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

सज्वरेऽस्मिन्नतिसारे ग्रहण्यां पाण्डुरोगिणि ।

भूवह्नाच्छे गुदस्तावे विपूच्यामलसे हितः ॥ ३४५ ॥

इति पाठाद्यं घृतम् । इति ज्वरातिसारनिदानम् ।

इति वङ्गसेनेऽतिसाराधिकारः संमाप्तः ॥ २० ॥

—०—

अथ ग्रहणीनिदानमाह ।

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्ने रहिताशनः ।

भूयः सन्दूयितो वङ्गिर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥

तस्मात्कार्यः परिहारस्त्वतिसारे विरक्तवत् ।

यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥ २ ॥

मांसासृद्येदमं तिस्रस्तथुर्थी श्लेष्मधारिणी ।

पञ्चमी च भलं धत्ते पटी चाग्निधरा मता ।
 रेतोधरासप्तमी स्यादिति सप्तकला स्मृताः ॥ ३ ॥
 पटी पितधरा नाम या पूर्वं समुदाहृता ।
 पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
 आन्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता ।
 नाभेरुपरि सा ह्यग्निर्वलोपस्तम्भहं हिता ॥ ५ ॥
 अपक्वं धारत्यन्नं पक्वं सृजति चाप्यधः ॥ ६ ॥
 ग्रहस्यावलमग्निर्हि स चापि ग्रहणी श्रितः ।
 तस्मात् सन्दूषिते वज्जी ग्रहणी दूष्यते नृणाम् ॥ ७ ॥
 एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थं मूर्च्छितैः ।
 सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ ८ ॥
 पक्वं वा मरुजं पूति सुहृद्वदं सुहृद्वदम् ।
 ग्रहणीरोगमाहुस्तस्माद्युवेदविदो जनाः ॥ ९ ॥
 पूर्वरूपन्तु तस्येदं दृष्ट्यालस्यं बलक्षयः ।
 विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात् कायस्य गौरवम् ॥ १० ॥
 कटुतिक्तकषायातिरूक्ष शीतान्नभोजनैः ।
 प्रमितानशनात्यध्व वेगनिग्रह मैथुनैः ॥ ११ ॥
 मारुतः कुपितो वज्जिं संक्राय कुरुते गदान् ॥ १२ ॥
 तस्यायं पच्यतेदुःखं शूलपाकं खरां गता ।
 कंठांस्यशीपः क्षुत्तृणा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥ १३ ॥
 पाग्नेरूवं क्षणग्रीवा रूगभीष्ण विपूचिका ।
 हृत्पीण्डाकार्यदीर्घस्य वैरम्यं परिकर्तिका ॥ १४ ॥
 गृहिः सर्वरसात्ताश्च मनसः सदनं तथा ।
 जीणे जीर्यति चांघ्रानं भुङ्क्ते स्वास्थ्यमुपैति च ॥ १५ ॥
 सयातगुम्यं हृद्रोग ग्रीवायन्ती च मानवः ॥

चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ।
 पुनः पुनः सृजेद्दर्वः कासग्वासादितो निलात् ॥ १६ ॥
 ग्रहणीमाश्रितं दीप मजीर्णवदुपाचरेत् ।
 लङ्घनैर्दीपनीयैश्च सामातीसारभेषजैः ॥ १७ ॥
 दीपं सामं निरामञ्च विद्यादवातिसारवत् ।
 षतिसारोक्त विधिना तस्यामञ्च विपाचयेत् ॥ १८ ॥
 विशङ्खामाशयायास्मै पञ्चकोलक संस्कृतम् ।
 दद्यात्प्रेयादि लघुत्वं योजयेत् पुनः दीपनम् ॥ १९ ॥
 पञ्चकोलकपूपस्तु मूलकानां रसोऽयवा ।
 सुस्निग्धो दाडिमान्मथ वातनुद्गोजने हितः ॥ २० ॥
 पेयादि पटुलघ्नं पञ्चकोलादिभिर्युतम् ।
 दीपनानि च तक्रं च ग्रहणान्तु प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥
 कपित्थं बिल्वचाङ्गेरी तक्रदादिमसाधिता ।
 यवागूः पाचयत्वामं शकृत् संवर्त्तयत्यपि ॥ २२ ॥
 ग्रहणीदीपिणां तक्रं दीपनं ग्राहिलाधवम् ।
 पथ्यं मधुरपाकत्वा न्न चपितं प्रकीपयेत् ॥ २३ ॥
 कपायोष्णविकाशित्वा द्रौक्ष्याच्चैव कफेहितम् ।
 वाते स्वादुस्त्रसान्द्रत्वात् सद्यस्कमविदाहितम् ॥ २४ ॥
 शुण्ठीसमुस्तातिविषां गुडूचीं पिवेत् समांशां कथितां जलेन ।
 मन्दानलत्वे सततामताया मामानुवन्धे ग्रहणीगदे च ॥ २५ ॥

—०—

पिप्पली बृहतीथ्याघ्रो यवक्षार कलिंगकाः ।
 चिचकं शारिवापाठाशठी लवणपञ्चकम् ॥ २६ ॥
 तच्चूर्णं पाययेद्भ्रा सुरयोष्णांभसापिवा ।

मारुतग्रहणीदोषे शमन परम नतम् ॥ २७ ॥

इति पिप्पल्यादि चूर्णम् ।

धान्यकाति विषोदित्य यवानो सुस्तनागरम् ।

बलादिपर्णीविल्व च दद्याद्दीपनपाचनम् ॥ २८ ॥

कलिंग द्विग्वतिविषा वचासो वर्चलाभया ।

दार्वी शन्यिकमूलेन पातव्योष्णेन वारिणा ॥ २९ ॥

नागर कौटजं बीज पिप्पली हृहतीद्वयम् ।

चित्रकं शारिवापाठा चार लवणपञ्चकम् ॥ ३० ॥

चूर्णयित्वा सुरामण्डं दधिकोष्णा वुकाञ्जिकै ।

पिवेदग्नि विहृदार्थं कोटवातहर परम् ॥ ३१ ॥

—०—

यवानो, व्योषसिन्धूत्य जीरकद्वयद्विगुजम् ।

आय्यग्रासाशितं साज्यं चूर्णं वातनुदग्निहृत् ॥ ३२ ॥

इति द्विग्वष्टकम् ।

क्षणाविड विजयानां गुटिका सर्पिष्मतीपाने ।

ग्रहणीदोषे स्वरुचिमन्दाग्नि शक्तद्विवन्धे च ॥ ३३ ॥

—०—

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौचारो लवणानि च ।

व्योष द्विग्वजमोदाश्च चव्यं चैकत्रचूर्णयेत् ॥ ३४ ॥

गुटिकाभातुतुङ्गस्य दाडिमस्य रसेनवा ।

क्षताविषाचयत्याम न्दीपयत्याशुचानलम् ॥ ३५ ॥

सौवर्चनं मैत्र्यवश्च पिडमौद्विदं मेवच ।

मामुद्रेणसमं पश्य सङ्गान्यत्रपोजयेत् ॥ ३६ ॥

इति चित्रकादिगुटिका ।

घ्रात्वातु परिपक्वं च यातजं ग्रहणीगदम् ।

दीपनेर्भेषजैः पक्कैः सर्पिर्भिः समुपाचरेत् ॥ ३७ ॥
घान्धविल्व वलाशुण्ठी तालपर्णी शृतं जलं ।
स्याद्वातग्रहण्यो दीपे सानाहे सपरिग्रहे ॥ ३८ ॥
द्विपञ्चमूले सरलं देवदारु सनागरम् ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम् ॥ ३९ ॥
शण्डीज यवान् कोलान् कुलित्यानाकुलीकृतान् ।
पाचयेदारुणालेन दध्ना सौवीरकेण च ॥ ४० ॥
चतुर्भागावशेषेण पचेत्तेन घृताढकम् ।
स्त्रिजिका यावशूकानां चारी दत्त्वा च युक्तितः ॥ ४१ ॥
सैन्धवोद्भिदसामुद्रविडानां रोमकस्य च ।
ससोवर्चलपाकानां भागान् द्विपलिकान् पृथक् ॥ ४२ ॥
विनीय चूर्णितांस्तस्मात् पाययेत् प्रसृत बुधः ।
करोत्यग्निबलं वर्षे वातघ्नं भुक्तपाचनम् ॥ ४३ ॥

—०—

अथ शुष्कमानेन द्विपञ्चमूलादीनां पट्पञ्चाशत्पलाधिकः
पलशतद्वयमारुणालादीनामन्यत्तमस्य च ।
चतुर्भिर्द्रोणैर्निष्काय्य द्रोणावशेष इष्यते ॥
स्त्रिजिकाचार यवचारयोरपि द्विपलिकत्वम् ॥
इति द्विपञ्चमूलाद्यं घृतम् ।
पञ्चमूल्यभया व्योष पिप्पलीमूलसैन्धवैः ।
रास्नाचारद्वयाऽजाजी विडङ्गशठिभिर्घृतम् ॥ ४४ ॥
शक्तेन मातुलुङ्गस्य स्वरसेनार्द्रकस्य च ।
शुष्कमूलककोलाभ्यु चुक्रिका दाडिमस्य च ॥ ४५ ॥
तक्रमस्तु सुरामण्ड सौवीरक तुपोदकैः ।
काश्चिकेन च तत्पक्वं पीतमग्निर्कषं परम् ॥ ४६ ॥

शूलगुल्मीदरानाह कासानिलगदापहम् ॥ ४७ ॥

पञ्चमूलं कनीयांसमत्र । इति पञ्चमूलाद्यं घृतम् ।
चव्यचित्रकपाठानां तेजोवत्यास्तथैव च ।

कणापिप्पलीमूलानां भागान् दद्याच्चतुष्पलान् ॥ ४८ ॥

पलानि चाष्टौ सुस्तायाः सुनिशासुष्टयस्त्रिह ।

भास्कोतायाः प्रवालानां मालती करवीरयोः ॥

सप्तपर्णकरञ्जार्कतापसाऽचोटकस्य च ॥ ४९ ॥

एतान् संकुच्य विपचे ज्वलद्रोणचतुष्टये ।

चतुर्भागावशेषन्तु कुर्यान्मन्देन वङ्गिना ॥ ५० ॥

कटुकातिविषे स्यातां प्रत्येकं त्रिपलोन्मिते ।

पिप्पलीनाञ्च कुडवं विडङ्गानां घनस्य च ॥ ५१ ॥

तथा वत्सकबीजानां कल्कार्यं सम्प्रदापयेत् ॥ ५२ ॥

घारस्य यावशूकस्य स्वर्जिकायास्तथैव च ।

विडसैन्धवयोश्चैव दद्याद् द्वे द्वे पले शृते ॥ ५३ ॥

ततस्तेन कंपायेन कल्कैरेभिश्च पेशितैः ।

इधिमस्त्वस्तयुक्तैश्च पचेद्द्वयो घृतादकम् ॥ ५४ ॥

साम्बुकल्कं पिवेत् कर्पं विष्टम्भे द्विगुणं पिवेत् ।

उज्जोदकानुपानञ्च कुर्याज्जीर्णंऽथ भोजनम् ॥ ५५ ॥

अनेन ग्रहणी दोषाः सर्वे नश्यन्ति देहिनाम् ।

कफवातायययैव गुल्मस्यैव चतुर्विधः ॥ ५६ ॥

अर्गामि नागयत्येव म्रीहानं यमयत्यपि ।

महदग्निघृतस्येतद्विपञ्चा परिरक्ष्यते ॥ ५७ ॥

घृन्धं भुञ्जीत चाप्यन्नं मांसं खादेच्च भेदुरम् ।

अत्यग्निनागनार्याय भक्षयेन्मधुना सह ॥ ५८ ॥

इति महदग्निघृतम् ।

घृतं नागरकल्को न सिद्धं वातागुलोलनम् ।

ग्रहणी पाण्डुरोगघ्नं प्रीहकासज्वरापहम् ॥ ५८ ॥

विश्वैषधस्य गर्भेण दर्शमूलजले नृतम् ।

घृतं त्रिहन्त्याच्छययुं ग्रहणीं सामवातजाम् ॥ ५९ ॥

इति शुण्ठीघृतम् ।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पली ।

खदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं विष्वं पाठा यवानिका ॥ ६० ॥

चाङ्गेरी स्वरसे सर्पिः कल्को रेतैर्विपाचयेत् ।

चतुर्गुणेन दद्यात् च तदृतं कफवातनुत् ॥ ६१ ॥

अर्शसि ग्रहणी दीपं मूत्रकच्छं प्रवाहिकाम् ।

गुदभ्रं शार्त्तिमानाहमेतत्सर्पिर्व्यपोहति ॥ ६२ ॥

इति बृहत्चाङ्गेरीघृतम् ।

यस्तिकर्म भिषक् कुर्यान्मन्दाग्नेः सक्तवर्चसः ॥

इति वातग्रहणी ।

कटुजीर्णविटा ह्यम्ल चाराद्यैः पित्तमुल्लक्षणम् ।

संघ्रावयेदन्यनिर्लज्जं तप्तमिवानलम् ॥ ६३ ॥

सोऽजीर्णं नीलपीताभं पीताभः सार्यते द्रवम् ।

पूत्यन्तोद्गारहृत्कण्ठदाहारचिच्छर्दितः ॥ ६४ ॥

यज्ञैः प्रद्रूपणं पित्तं विरेकैर्वमनेन वा ।

हृत्वा भोज्यैर्लघुग्राही दीपनैरविदाहिभिः ॥ ६५ ॥

त्रिभिः संघं हयेद्वह्निं चूर्णस्त्रिग्वेद्य तित्ताकैः ॥ ६६ ॥

—०—

रसाञ्जनमतिविषा वत्सकस्य फलत्वचम् ।

नागरं धातकी चैव सक्षौद्रं तंडुलाम्बुना ॥

पित्तग्रहणीदोषाग्नौ रक्तपित्तातिसारनुत् ॥ ६७ ॥

इति रसाञ्जनादि चूर्णम् ।

पाठावत्सकबीजानि चित्रक विश्वमेपजम् ।

पिवेन्निष्काथ्य चूर्णानि कृत्वा चोष्णेन वारिणा ॥ ६८ ॥

पित्तक्षेप्साभिभूताना ग्रहण्यां शूलनुद्धितम् ॥ ६९ ॥

इति पाठादिकाथ्यचूर्णम् ।

नागरातिविषा मुस्तं धातुकी सरसाञ्जनम् ।

वत्सकात्वक्फलं विल्वं पाठातिक्तकरोहिणी ॥ ७० ॥

पिवेत् समाशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलावुना ।

पैत्तिके ग्रहणी दोषे रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ ७१ ॥

पर्णास्यय गुदे शूलं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ।

नागराद्यमिदं चूर्णं कृत्वा त्रैयेण पूजितम् ॥ ७२ ॥

इति नागराद्यं चूर्णम् ।

जलमष्टगुणं दद्यात् पलं कण्डितं तण्डुलान् ।

भावयित्वा ततो देयं तण्डुलोदककर्मणि ॥ ७३ ॥

इति तण्डुलोदकविधिः ।

भूनिम्बकटुका व्योष मुस्तकेन्द्रयवान् समान् ।

हौ चिक्रकाद्वत्सकत्वग्भागान् षोडशचूर्णयेत् ॥ ७४ ॥

गुडगीतावुना पीतं ग्रहणी दोष गुल्मनुत् ।

कामला ज्वरपाण्डुत्व मेहाराच्यतिपाण्डुनुत् ॥ ७५ ॥

गुडयोगाद् गुडांशुस्याद् गुडवर्णं रसान्वितम् ।

इति भूनिम्बाद्यं चूर्णम् ।

पाठा विल्वानल व्योष जम्बुदाडिमधातुकी ।

फटुकातिविषा मुस्ता दार्वी भूनिम्बवत्सकैः ॥ ७६ ॥

सर्वरैः समं चूर्णं कीटजं तण्डुलावुना ।

सञ्चोद्रेण पिवेच्छर्दि ज्वरातिसारशूलनुत् ॥ ७७ ॥
रुग्दाहग्रहणो दोषाऽरोचकानलसादननुत् ।

इति पाठाद्यं चूर्णम् ।

चन्दनं पद्मकीशीरं पाठा मूर्वा कुटं नटम् ।
पङ्कज्या शारिवाऽऽस्फोता सप्तपर्णाटिरुपकम् ॥ ७८ ॥
पटोलोदुम्बराग्न्य वटप्लवङ्गपित्तकान् ।
कटुका रोहिणी मुस्तं निम्बश्च द्विपलाशकम् ॥ ७९ ॥
द्रोणेऽपां साधयेत्पादशेषे प्रस्थं घृतं पचेत् ।
किराततिलेन्द्रियव बीरा मागधिकोत्पलैः ॥ ८० ॥
कल्कैरक्षसमैः पेयं तत्पित्तग्रहणो गदे ।

इति चन्दनाद्यं घृतम् ।

किराततिलं पङ्कज्या त्रायमाणा कटु त्रिकम् ।
चन्दनं पद्मकीशीरं दार्वी त्वक्कटुरोहिणी ॥ ८१ ॥
कुटजत्वक्फलं मुस्तं यवानी देवदारु च ।
पटोलनिम्बपत्रैला सोराश्चातिविषा वचा ॥ ८२ ॥
मधुशिग्रोद्य बीजानि मूर्वा पर्पटकं तथा ।
तच्चूर्णं मधुना लेह्यं पेयं सर्वैर्घृतेन वा ॥ ८३ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीदोष शूलगुल्मारुचि ज्वरान् ।
कामलां सन्निपातश्च मुखरोगश्च नाशयेत् ॥ ८४ ॥

इति किराताद्यं चूर्णम् ।

मसूरस्य कपायेण बिल्वगर्भं पचेद् घृतम् ।
इन्ति कुल्यामयान् सर्वान् ग्रहणी पांडुकामलान् ॥ ८५ ॥

इति मसूराद्यं घृतम् ।

मसूराणां पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन् दद्याद्विल्वं प्रलाष्टकम् ॥ ८६ ॥

घृतप्रस्थं पचेद्दीमान् शास्त्रविद्भृदुनाग्निना ।
 प्रवाहिकामतिसारं ग्रहणी दीपमेव च ॥ ८७ ॥
 हन्यात् क्षिप्रमसन्देहं क्षणाच्च यस्य शासनात् ।
 भिन्नं विट्के प्रसशन्ति मसूरघृतमुत्तमम् ॥ ८८ ॥
 इति तन्वान्तरोक्तं मसूरघृतम् ।

ब्रीहि प्राख्यद्भयोः काथ सुपितं परिवर्जयेत् ।
 नवं धान्यमभिष्यन्दि लघुसंवत्सरोपितम् ।
 विदाहि गुरुविष्टम्भि विरूढं वातकोपनम् ॥ ८९ ॥

—०—

कलिङ्गफलकल्केन घृतप्रस्थं प्रसाधितम् ।
 कफपित्तसमुद्भूतां ग्रहणीं हन्यान्न संशयः ॥ ९० ॥
 इति कलिङ्गघृतम् । इति पित्तग्रहणीनिदानम् ।

गुर्वतिस्त्रिग्वशीतादि भोजनादतिभोजनात् ।
 भुक्तमात्रस्य च स्वप्नादत्यग्निं कुपितः कफः ॥ ९१ ॥
 तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृत्तास कर्द्वरोचकाः ।
 आस्योपदेह माधुर्यं कासठीवनपीनसाः ॥ ९२ ॥
 हृदयं मन्यतेऽस्यानुसदरं स्तिमितं गुरुम् ।
 दुष्टो मधुर उद्गार सदनं स्त्रीध्वहर्षणम् ॥ ९३ ॥
 भिन्नामश्लेषसंसृष्टगुरुचर्चः प्रवर्त्तनम् ।
 अकृशस्यापि दीर्घस्यभालस्यश्च कफात्मके ॥ ९४ ॥

तस्याधिकिक्षामाह ।

ग्रहण्यां कफदुष्टायां तीक्ष्णैः प्रच्छर्दने कृते ।
 सवणाम्नकटुचारैः क्रमादङ्गि विवर्धयेत् ॥ ९५ ॥
 ग्रण्ठी सुप्तं विडङ्गश्च सुरातक्रोश्यावारिणा ।

शैषिकं ग्रहणी दीपं पीतं हन्यग्निवर्द्धनम् ॥ ८६ ॥
 पालाशं चित्रकं चर्व्यं मातुलुङ्गहरीतकी ।
 पिप्पली पिप्पलीमूलं पाठा धान्यकनागरम् ॥ ८७ ॥
 कर्पिकानुदकप्रस्थे पक्त्वा पादावशेषिते ।
 पानीयार्थं प्रयुञ्जीत यवागू तैश्च साधिताम् ॥ ८८ ॥

इति यवागूविधिः ।

समूलां पिप्पलीं चारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ।
 मातुलुङ्गाभया रास्ना शठी मरिचं नागरम् ॥ ८९ ॥
 कृत्वा समांशं तच्चूर्णं पिवेत्प्रातः सुखांबुना ।
 शैषिके ग्रहणीदीपे बलमांसाग्निवर्द्धनम् ॥ ९० ॥

इति पिप्पलाद्यं चूर्णम् ।

व्योषं साम्रत्वचं वक्षं चूर्णयेत्तंडुलाम्बुना ।
 निपीतं ग्रहणीदीपं कामंलां पाण्डुरोगजित् ॥ ९०१ ॥
 प्रमेहारुच्यतीसारं गुल्मं शोथज्वरापहः ॥ ९०२ ॥

—०—

भस्मातकं त्रिकटुकं त्रिफला लवणं त्रयम् ।
 भृत्तर्धूसं द्विपलिकं गोपुरीषाग्निना दहेत् ॥ ९०३ ॥
 सचारः सर्पिषा पीतो भोज्यैश्चाप्यथ चूर्णितः ।
 हृत्पाण्डुग्रहणीदीपं गुल्मोदावर्त्तं शूलनुत् ॥ ९०४ ॥

इति भस्मातकचारः ।

दुरालभाकरञ्जी द्वौ सप्तपर्णं सवत्सकम् ।
 पङ्कज्या मदनं मूर्वा पाठा चारुगन्धं तथा ॥ ९०५ ॥
 गोमूत्रे च समांशानि कृत्वा चूर्णानिदापयेत् ।

दग्ध्वा तच्च पितृत् चारं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ १०६ ॥

इति दुरालभादि चारः ।

मूनिम्ब रोहिणी तिक्ता पटोलं निम्बपर्पटम् ।

दहेन्नाहिषमूत्रेण चार एषोऽग्निवर्द्धनः ॥ १०७ ॥

इति भूनिम्बाद्यः चारः ।

द्वे हरिद्रे वचा कुटं चित्रकं कटुरोहिणी ।

सुस्तकं वर्समूत्रेण सिंहः चारोऽग्निवर्द्धनः ॥ १०८ ॥

इति हरिद्राद्यः चारः ।

यवचारं दशपलं सैन्धवं द्विगुणं भवेत् ।

भस्मातकानि त्रिवृता चित्रकं त्रिफलात्वचः ॥ १०९ ॥

सुधार्कयोश्च दुग्धञ्च तैलस्य च घृतस्य च ।

प्रस्थं प्रस्थं समावाप्य चूर्णैरेतैर्विमिश्रयेत् ॥ ११० ॥

तदाहयेन्महाचारं पाययेच्च सुखाम्बुना ।

ग्रहणो दीपने येष्टी गुल्माशौ कृमिनाशनः ॥ १११ ॥

इति महाचारः ।

चतुष्पलं सुधाकाण्डाक्षिपलं सवणत्रयात् ।

वात्ताकात् कुड्मव्याकाद्विस्वे द्वे चित्रकात्पले ॥ ११२ ॥

दग्धानि वात्ताकरसे गुड़िका भोजनोत्तराः ।

भुक्ताभुक्तं पचन्त्याशु कासश्वासाशंसं हिताः ।

विस्त्रिंशिका प्रतिश्लाय हृद्रोगघ्नाय ता मताः ॥ ११३ ॥

इति वात्ताकगुटिकाः ।

नवपिप्पली मध्वाक्ते कान्तिगुरुधूपिते ।

मध्वादकं जलसमं चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ११४ ॥

कुड्वाधं विडङ्गस्य पिप्पल्याः कुडवं तथा ।

चतुर्युकांशं त्वग्चीरं केसरं मरिचानि च ॥ ११५ ॥

त्वगैलापत्रं कर्पूरं क्रमुकाऽतिविषा घनान् ।

हरेण्वेली तु तेजोद्धा पिप्पलीमूलं चित्रकीन् ॥ ११६ ॥

कर्पिकं संस्थितं मांसमेतदूर्ध्वं नियोजयेत् ।

मन्दं सन्दिपयत्यग्निं करोति विषमं समम् ॥ ११७ ॥

हृत्पाण्डुयहणोरोगं कुटार्शः श्वययुज्वरान् ।

घातश्लेष्मामयांश्चान्या नरिष्टोऽयं व्यपोहति ॥ ११८ ॥

इति मध्वारिष्टः ।

द्रोणं मधुकपुष्पाणां विडङ्गस्य ततोऽर्धतः ।

चित्रकस्य ततोर्ध्वं तथा भस्मातकाटकम् ॥ ११९ ॥

मञ्जिष्ठाष्टपलं चैव द्रोणेऽपाञ्च विषाचयेत् ।

द्रोणावशेषं तच्छीतं मध्वाढकसमन्वितम् ॥ १२० ॥

एला मृणालं पुरुभिः चन्दनागुरुधूपिते ।

कुम्भे मासि स्थिते तापे मासान्ते तं वियोजयेत् ॥ १२१ ॥

ग्रहणी दीपयेत्येष हृणो रक्तपित्तनुत् ।

शीथकुटुकिलासानां प्रमेहानाञ्च नाशनः ॥ १२२ ॥

इति मधुपुष्पासवः ।

द्विपञ्चमूलरजनी जीवकर्पभचित्रकान् ।

पृथक् पञ्चपलैर्भागैश्चतुर्द्रोणेऽन्धसः पचेत् ॥ १२३ ॥

द्रोणशेषे रसे पूते गुडस्य कुडवं क्षिपेत् ।

चूर्णितान् पलिकान् सर्वान् दद्याच्चात्र समाक्षिकान् ॥ १२४ ॥

प्रियङ्गुपुष्पं मञ्जिष्ठा विडङ्गं मधुकं कणा ।

लोभ्रं सावरकं चैव मासार्द्धं स्थापयेत् क्षिती ॥ १२५ ॥

दशमूलासवः सिद्धो दीपनो रक्तपित्तनुत् ।

आनाह कफ हृद्रोग पाण्डुरोगाङ्गसादनुत् ॥ १२६ ॥

इति दशमूलासवः ।

प्रास्थिकी पिप्पलीप्रस्थं गुडं प्रस्थं विभीतकम् ।

उदकप्रस्थसंयुक्तं यवप्रस्थं निधार्पयेत् ॥ १२७ ॥

तस्मात् सुजातात्तुपन्नं मलिनाऽञ्जलिसयुतम् ।

पिवेत् पिण्डासवो ह्येष रोगानी कविनाशनः ॥ १२८ ॥

स्त्रस्योऽपि यः पिवेन्मास नरः स्निग्धरसाशनः ।

तस्याग्निं दीपयत्येष आरोग्याय प्रकीर्तितः ॥ १२९ ॥

इति पिडासवः ।

वृहतीचित्रकचारः सप्तवारपरिमुतः ।

द्विगुणेन घृत पक्वं वर्धयत्याशु पावकम् ॥ १३० ॥

इति वृहतीचित्रकचारघृतम् ।

स्यान्माय लठरस्याग्ने र्यस्य स्यान्न मलच्युतिः ।

तस्य वज्रिकरैः पक्वं युक्तियुक्तं द्रितं घृतम् ॥ १३१ ॥

इति श्लेष्मग्रहणी निदानम् ।

शृङ्गवातादिनिर्दिष्टहतुलिङ्ग समागमे ।

त्रिदोषं निर्दिशेदेवं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १३२ ॥

त्रिदोषं विधिवद्देयः पञ्चकम्माणि कारयेत् ।

सर्वजार्या ग्रहणान्तु सामान्यो विधिरीक्ष्यते ॥ १३३ ॥

दीपनान्यन्नपानानि चूर्णारिष्ट घृतानि च ।

प्रथिमज्य यथाऽवस्यं सर्वज्ञे यक्षिकम् च ॥ १३४ ॥

घृतचाराऽऽसवाऽरिष्टान् दद्यादग्निविबर्धनान् ॥ १३५ ॥

शतावरी चन्दनपद्मकोत्पलं

प्रियं गुपाठामगधास्त्रिराभिः ।

विल्वाजमोदातिविषा समंगा

जीवन्ति वज्रीन्द्रयवैः सुपिष्टैः ॥ १३६ ॥

घृतं कपाये तु कलिंगकानां

पक्कं निहन्त्यादग्रहणीं विदोषाम् ।

पित्तातिसारं रुधिरप्रवाहं

तथार्शसी दोषसमूहं बन्धम् ॥ १३७ ॥

इति शतावरीवृतम् ।

आरुष्करं हिंगुकणा सयष्टी

पूतिक शुण्ठी मरीचं गजाह्वा ।

अजाजी चव्यारुचकं सबद्धि-

मूलं विडङ्गं सह दीप्यकञ्च ॥ १३८ ॥

सत्तारहिंगुविकटूग्रगन्धा

पलार्धभागैर्विपचेद्विधिज्ञः ॥ १३९ ॥

अत्र धान्यकचांगिरी दशमूली समं पृथक् ।

हविः प्रस्थं निहन्त्याशं ग्रहणीं सर्वजां नृणाम् ॥ १४० ॥

विष्टभ्रमामजान् रोगान् क्षमिजान् कुक्षिजांस्तथा ।

मन्दानलं भवान् सर्वान्नभस्वानिव वारिदम् ॥ १४१ ॥

इत्यारुष्करं वृतम् । इति सर्वजा ग्रहणी त्रिदानम् ।

अन्तकूजनमालस्यं दीर्घत्वं सदर्नं तथा ।

द्रवं घनं सितं स्निग्धं सकटीवेदनं सकृत् ॥ १४२ ॥

आमं बहुसपैक्षित्यं सशब्दं मन्दवेदनम् ।

पचान्मासाश्चाह्वादा नित्यं वापि विमुञ्चति ॥ १४३ ॥

दिवाप्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं व्रजेच्च सा ।

दुर्विघ्ने या दुर्निवारा चिरकालानुबन्धिनी ।

सा भवेदामवातेन संग्रहग्रहणीमता ॥ १४४ ॥

चिकित्सामाह ।

मसूरयूपः संपीतः कायो नागरविल्वजः ।

संग्रहग्रहणीं हन्ति तक्रेण वृहती तथा ॥ १४५ ॥

विम्बाजाजी विल्वपेशी कल्कसिद्धं घृतं हरेत् ।

मसूरस्य कपायेण संग्रहग्रहणीगदम् ॥ १४६ ॥

इति मसूरघृतम् । इति संग्रहग्रहणी ।

अथ गीतक्रस्य गुणाः ।

ग्रहणीरोगिणां तक्रं संग्राही लघुदीपनम् ।

सेवनीयं सदा गव्यं त्रिदोषशमनं हितम् ॥ १४७ ॥

दुःसाध्यो ग्रहणी दीपो भेषजैर्नैव शाम्यति ।

सहस्रगोऽपि विहितैर्विना तक्रस्य सेवनात् ॥ १४८ ॥

यथा वृणचयं वड्डि स्तमांसि सविता यया ।

निहन्ति ग्रहणीरोगं तथा तक्रस्य सेवनम् ॥ १४९ ॥

संग्राह्या घेनवः श्रेष्ठा स्तक्रपानाय रोगिणाम् ।

तासां पयस्तत्रगुणा जायन्ते वर्णभेदतः ॥ १५० ॥

पीताया मारुतं हन्ति श्वेतायाः पित्तजान् गदान् ।

रक्तायाः गोः कफं हन्ति कृष्णायाः गोस्त्रिदोषजित् ॥ १५१ ॥

घरस्ये चारयेद्देनू नातिवृणलतान्विते ॥ १५२ ॥

पीतोदकाया विस्रम्भात् मन्दं मन्दं प्रचारयेत् ।

तासां दुग्धं परिपाद्यं तक्रायं भिषजां वरैः ॥ १५३ ॥

दुग्धमक्रयितं याते पित्ते त्वीपत्कृतं हितम् ।

कफे त्रिदोषजे रोगे पादोन कथितं श्रुतम् ॥ १५४ ॥

तदीपदन्त संयोगात् कठिन दधि शस्यते ।

तदल्पजलसयुक्तं मथनं मथितं भवेत् ॥ १५५ ॥

तक्रमुद्धृतसारन्तु शण्डीचूर्णयुतं पिबेत् ।

तक्रेण निर्बले जाते त्यक्ते चान्नादि भोजने ॥ १५६ ॥

शरीरे जाते रुक्षत्वं शुक्लत्वं मूत्र नेत्रयोः ।

किञ्चित् स्निग्धं पिबेत्तक्रं ततश्चाधिकसारवत् ॥ १५७ ॥

तक्रं सेनवनीतञ्च पिबेन्नागरसंयुतम् ।

शनैः शनैः हरिद्वं तक्रन्तु परिवर्द्धयेत् ॥ १५८ ॥

तक्रमेव यथाहारी भवेदन्नविधर्जितः ।

तक्रसात्म्यं यथा कुर्यान्नैवान्नं तत्र भक्षयेत् ॥ १५९ ॥

बुभुक्षाया पिपासाया पिबेत्तक्रं सनागरम् ।

अमं न कुर्याद्दृष्टो न कुर्याद्दिहृभाषणम् ॥ १६० ॥

न कुर्यान्मैथुनं तक्रं पाने क्रोध विवर्जयेत् ।

एवं यः सेवते तक्रं ग्रहणी तस्य नश्यति ।

शीघ्रमेव न सन्देहः शीर्यथा द्यूतकारिणः ॥ १६१ ॥

प्रशान्ते ग्रहणीरोगे अन्नं गृह्णाति योगतः ।

अन्नत्यागविधानेन गृह्णीयाच्च शनैः शनैः ॥ १६२ ॥

ग्रहणीरोगिणां तक्रं हितं दीपत्रयापहम् ।

कालंकूटविषं साक्षादन्यथा परिसंक्षितम् ॥ १६३ ॥

तस्माद्यज्ञेन संसेव्यं तक्रं संग्रहणीगदे ।

शस्तं नातुः परं किञ्चिद् ग्रहणीरोगशान्तये ॥ १६४ ॥

इति सर्वग्रहण्यां तक्रसेवनविधिः ।

आम्नातकाम्बजम्बूत्ये कपाये पादशेषिते ।

शालिमिवा यवागूस्तु भुक्ता कुक्ष्यामयं जयेत् ॥ १६५ ॥

अद्दोटमूलं धातक्यो विल्वपेशी भक्षौषधम् ।

कथितं शीतलं पेयं कुचिरोगहरं परम् ॥ १६६ ॥

अङ्गोटस्य त्रयोभागा. भाग्यैकोऽरुणा भवः ।

तण्डुलोदकसपीतं सर्वकुक्ष्यामयापहः ॥ १६७ ॥

तक्रेण वल्कलं पीतं स्निग्धं पथ्यातरुद्वयम् ।

ग्रहणी नाशयेत् क्षिप्रमामरक्ताश्रितां ध्रुवम् ॥ १६८ ॥

स्विन्नानि बालबिल्वानि खादेत् क्षौद्रेण मानवः ।

तक्रेणाऽनलगर्भेण सार्द्धं तद् ग्रहणीं जयेत् ॥ १६९ ॥

बालबिल्वं बला शृण्ठी धातकी सुस्तधान्यकैः ।

कपायै. साधिता हन्ति यवागूर्यहणोगदम् ॥ १७० ॥

खम्बू दाडिमं शृङ्गाटं पाठाकञ्चटपक्षवैः ॥ १७१ ॥

पक्कं पर्युषितं बालबिल्वं स गुडनागरम् ।

हन्ति सर्वानतिसारान् ग्रहणीमतिदुस्तराम् ॥ १७२ ॥

—०—

चाङ्गेरो खरसे दद्याद् दृतप्रस्थं चतुर्गुणम् ।

अजाक्षीरस्य च प्रस्थं पिवेत्सर्पिरिह्वीषधैः ॥ १७३ ॥

व्योषं बिल्वं कपित्थानि समङ्गा धातकी घनम् ।

अजाज्यतिविषा भोचा धान्यकोत्पलबालकम् ॥ १७४ ॥

बला यवानिकाग्निस्य पाठा ग्रन्थिकदाडिमम् ।

अक्षप्रमाणैरेतैस्तु सर्पि. सिद्धं महागुणम् ॥ १७५ ॥

ग्रहण्यर्शो विकारघ्नं शूलगुल्मज्वरापहम् ।

कफवातारुचिहरं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ १७६ ॥

हृमिदोषगुदभ्रं ग यक्षत् प्रीहामयापहम् ।

सर्वानतिसारशमनं ग्रहणीदोषनं परम् ॥ १७७ ॥

इति चाङ्गेरो दृतम् ।

पिप्पली नागरं पाठा शृङ्गा च पृथक् पृथक् ।

भागांस्त्रिपलिकान् दत्वा कषायमुपकल्पयेत् ॥ १७८ ॥
 गंडारी पिप्पलीमूलं व्योषं चव्यकचित्रकम् ।
 पिष्ट्वा कल्कं क्षिपेत् क्वाथे द्रव्यैरर्धपलैः पृथक् ॥ १७९ ॥
 पंलानि सर्पिषश्चात्र चत्वारिंशन्नदापयेत् ।
 चांगीरो स्वरसं तुल्यं सर्पिषा दधिषड्गुणम् ॥ १८० ॥
 सृद्धग्निना साधयेत्तत् सर्पिः सिद्धं निधापयेत् ।
 तदाहारे विधातव्यं पाने च योगिकैर्बुधैः ॥ १८१ ॥
 ग्रहण्यर्शां विकारघ्नं गुल्महृद्रोगनाशनम् ।
 शोथप्लीहोदरानर्शं मूत्रकृच्छ्रज्वरापहम् ॥ १८२ ॥
 कासहिकारुचिश्वासं सदनं पार्श्वशूलनुत् ।
 बलपुष्टिवर्णकरमग्निसन्दीपनं परम् ॥ १८३ ॥
 अत्र गण्डार्यादिचित्रकां तैस्त्रिपलिकैरेभिः षोडशगुणै-
 र्जलेस्तथा क्वाथयेद्यथा कषायः स्नेहसमत्वं भवतीति ।

इति वृहत्तन्त्राङ्गीरी वृत्तम् ।

मुस्तकातिविषा बिल्वं चूर्णितं कौटजं तथा ।
 मधुना वापि संलीढं ग्रहणीं हन्ति सर्वजतम् ॥ २८४ ॥
 पञ्चकोलकं सुस्विन्नं बालबिल्वं गुडान्वितम् ।
 शिषाद्रवानुपानं स्यात् संग्रहण्यतिसारनुत् ॥ २८५ ॥
 श्वेतो वा यदि वा रक्तः प्रपक्वो ग्रहणी गदः ।
 गुडेनाधिकसंज्ञेन भक्षितेनाशु नश्यति ॥ २८६ ॥

बिल्वाब्दं शक्रयवबालकमोचसिद्धं

भाजं पयः पिबति यो दिवसत्रयञ्च ।

सोऽतिप्रवृद्धः चिरजं ग्रहणीविकारं

शेषं सशोणितमस्राध्यमपि क्षिणीति ॥ २८७ ॥

भोजनायै समुन्नानां वर्चो वेगविनाशनम् ।

भारनालोदकैः पिष्टं प्रातः पिष्टकभक्षणम् ॥ १८८ ॥

केशराजोर्जुनचारं प्रातः पीतञ्च मस्तुना ।

निहन्ति साममत्वर्थं मचिराद् ग्रहणीरुजम् ॥ १८९ ॥

इति सिद्धोऽयं योगः ।

कपित्थमधिलीढ्वैव सव्योषं चौद्रशर्करम् ।

कट्फलं मधुसंयुक्तं मुच्यते जठरामयात् ॥ १९० ॥

शूषणत्रिफला कल्के विल्वमात्रे गुडात्पले ।

सर्पिषोऽष्टपलं पक्ता भावां मन्दानलः पिबेत् ॥ १९१ ॥

इत्यष्टपलकं घृतम् ।

विल्वान्नि चव्यार्द्रकान्ष्टुब्धवेरैः

काथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् ।

सह्यागदुग्धं ग्रहणीगदोले

शोथान्नि सादा ऽरुचिनुद्धरिष्टम् ॥ १९२ ॥

इति विल्वाद्यं घृतम् ।

मसूरस्य तुला काथे घृतप्रस्यं विपाचयेत् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ॥ १९३ ॥

तत्सिद्धं द्विगुणे चीरे ग्रहणीघ्नं त्रिदोषनुत् ।

दुर्नामानिलविष्टम् जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ १९४ ॥

बलवर्णकरं हृद्यमग्निसन्दीपनं परम् ।

इति वृहत्समूराद्यं घृतम् ।

यवानि पिप्पलीमूलं चतुर्जातकनागरैः ।

सरिचाग्निजलाजाजी धान्यसीवर्चलैः समैः ॥ १९५ ॥

वृषाम्नाधातको घृणाविश्व दाडिम दीप्यकैः ।

त्रिगुणैः षड्गुणमितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ॥ १९६ ॥

चूर्णीऽतिसारग्रहणी क्षयगुल्मगुदामयान् ।

श्वासकासाऽरुचि हिक्कां कपित्थाष्टमिदं जयेत् ॥ १८७ ॥

इति कपित्थाष्टकम् ।

मधूकपुष्पस्वरसं शृतमन्दक्षयी कृतम् ।

क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्ववत्सन्निधापयेत् ॥ १८८ ॥

तं पित्वा ग्रहणी दोषान् जयेत् सर्वाङ्गिताशनं ॥ १८९ ॥

इति मधूकपुष्पासवः ।

प्रस्थं त्रयेणामलकी रसस्य

शङ्खस्य दत्तामर्षतुला गुडस्य ।

चूर्णीकृतैर्यन्त्रिकजीरचव्य

व्योषेभ्यः कृष्णाह्वुपाजमोदै ॥ २०० ॥

विडङ्गसिन्धुत्रिफला यवानि

पाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः ।

दत्त्वा त्रिहृच्चूर्णं पलानि चाष्टा

वष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ २०१ ॥

तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं

यद्येष्टचेष्टस्त्रिसुगन्धियुक्तम् ।

अनेन सर्वे ग्रहणीविकारा

संवासकामस्वरभेदशोया ॥ २०२ ॥

गाम्भ्यन्ति चाऽयं चिरमन्तरग्ने

क्षतस्य पुंस्त्वस्य च हृदिहेतुः ।

स्त्रीणाञ्च बन्ध्यामयनाशनम्यात्

कल्याणको नाम गुडप्रसिद्धः ॥ २०३ ॥

तैले त्रिहृन्मनाक् भ्रष्टं त्रिसुगन्धिपलपलम् ।

सुसिद्धे निक्षिपेदत्र गुडे कल्याणपूर्वके ॥

इति कल्याणगुडः ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।

धान्यकञ्च विडङ्गानि यवानो मरिचानि च ॥ २०४ ॥

त्रिफला चाजमोदा च नीलिनी जीरकं तथा ।

सौवर्चल सैन्धवञ्च सामुद्रं रुचकं विडम् ॥ २०५ ॥

आरग्वधय त्वक्पत्रं सूक्ष्मैला चीपकुञ्चिका ।

नागरेन्द्रयवासैव षड्विंशत्येककार्पिकम् ॥ २०६ ॥

मृद्वीकायाः प्रधानाया दद्यात्पलचतुष्टयम् ।

त्रिहृतायाः पलान्यष्टौ गुडस्यार्धं तुलां तथा ॥ २०७ ॥

तिलतैलं पलान्यष्टौ चामलक्या रसस्य तु ।

प्रस्थत्रयमिदं सर्वं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २०८ ॥

श्रीदुम्बरं चामलकं वादरं वा यथा फलम् ।

तावन्मात्रं प्रयुञ्जीत भिषक् दृष्ट्वा यथा बलम् ॥ २०९ ॥

सर्वाश्च ग्रहणीरोगान् प्रमेहांश्चैकविंशतिम् ।

उरोघातं प्रतिश्यायं दीर्घलघुं वज्जि संक्षयम् ॥ २१० ॥

ज्वरानपि हरेत्सर्वान् कुर्यात्कान्तिं मतिं स्वरम् ।

पित्तपाठान्वयादन्ति रक्तपित्तञ्च विडग्रहम् ॥ २११ ॥

घातुचीणो वयः चीणः चीणः स्त्रीभिः क्षयी तथा ।

तेभ्यो हितय सर्वेभ्यो वन्ध्यानाञ्चैव पुत्रदम् ॥ २१२ ॥

रूपौदार्यं स्त्रीरौदार्यं मेघामावहति स्थिराम् ।

महाकल्याणकं नाम रसायणमनुत्तमम् ॥ २१३ ॥

इति महाकल्याणगुडः ।

विडङ्ग पिप्पलीमूलं त्रिफला धान्यचित्रकान् ।

मरिचेन्द्रयवा जाजी पिप्पली हस्तिपिप्पलीः ॥ २१४ ॥

लवणान्यजमोदाञ्च चूर्णितं क्लृप्तं पृथक् । २१३ ॥
तिलतैर्न त्रिवचूर्णं भागो चाष्टपलोन्मितौ ॥ २१५ ॥

घात्रीफलरसप्रस्थान् गुडानर्धतुलास्तथा ।
पक्ता मृदग्निना खादेद्ददरोदुम्बरोन्मितम् ॥ २१६ ॥

गुरोर्भुक्तं न चावस्था द्विहाराहारयन्त्रिणा ।
मन्दाग्नित्वञ्चरं भूर्च्छा मूत्रकृच्छमरोचकम् ॥ २१७ ॥

श्वयथु गात्रशूलञ्च कासं श्वासं भ्रमक्षयम् ।
कुष्ठार्थं कामला मेहान् गुल्मीदरभगन्दरान् ॥ २१८ ॥

ग्रहणी पाण्डुरोगाश्च हन्ति सर्वामयास्वयम् ।
कल्याणकोगुडं ख्यातं सर्वास्त्रुतुषु योजितम् ॥ २१९ ॥

इति कल्याणको गुडः ।

चित्रकामृत चागेरी चव्ययन्त्रिकनागरम् ।
विष्वक् धातकी पाठा क्लीवेरं सपुनर्नवा ॥ २२० ॥

कुटजत्वक्फलं लोध्रं पृथक् पञ्चपलाशकम् ।
जले चतुर्गुणे सिद्धं यावत्पादावशेषितम् ॥ २२१ ॥

षार्द्रकस्वरसं सुखं प्रसन्न चाम्बकाञ्जिकम् ।
तुलार्धञ्च पृथग् दद्याद् गुडस्यार्धतुला पचेत् ॥ २२२ ॥

तन्तुमल्लहयं तोये प्रक्षिप्तं न विसर्पति ।
चूषणं त्रिफला सुप्तं यवानो जीरकद्वयम् ॥ २२३ ॥

चूर्णमष्टपलैरेतैः सिद्धशीते प्रदापयेत् ।
मात्रामग्निबलं ज्ञात्वा उपयुञ्जीत बुद्धिमान् ॥ २२४ ॥

मन्दाग्न्यपहता केचिद्ये च वातकफामयौ ।
हतास्तेभ्यो हितं चेदं वज्रिहृदिकरं परम् ॥ २२५ ॥

ग्रहणीदोषशूलघ्नं शोथपाण्डामयापहम् ।
श्वासकासन्वरार्थान्नं ग्रीहगुल्मीदरापहम् ॥ २२६ ॥

दीर्घकालोत्थितश्चैव हन्ति रोगगणन्विदम् ।

दृष्टं वारसहस्रेण किं पुनश्चाचिरोत्थितम् ॥ २२७ ॥

गुडं कल्याणकं नाम वृथ्यं पौष्ट्यं बलप्रदम् ।

इति कल्याणकं गुडम् ।

मस्त्वारणाल चाङ्गेरी शृङ्गवेररसं तथा ।

तुलार्धन्तु पृथक् दद्यादामलक्याः शताह्वकम् ॥ २२८ ॥

तिलतैलपलान्यष्टौ गुडस्यार्धतुलां पचेत् ।

तन्तुमत्सदृशं तोये प्रक्षिप्तं न विसर्पति ॥ २२९ ॥

वत्सकातिविषा कुष्ठं धातकी च रसाञ्जनम् ।

सव्योषं पिप्पलीमूलं दारुचव्यं सचित्रकम् ॥ २३० ॥

मञ्जारलवणं चूर्णं दद्यादर्धपलांशकम् ।

मात्रामग्निबलापेक्षी चोपयुञ्जीत बुद्धिमान् ॥ २३१ ॥

दुर्नामश्वासकासघ्नो ग्रहणीदोषमेहनुत् ।

गुल्मीदावर्तहृद्रोग शोफपाण्डुमयापहः ॥ २३२ ॥

कफवातामदोषघ्नः पाचनो वज्रिदीपनः ।

गुडकल्याणको नाम्ना वृथ्यः पुष्टिवलप्रदः ॥ २३३ ॥

इति गुडकल्याणकः ।

कूष्माण्डकानां पक्वानां खिन्नानां निष्कुलत्वचाम् ।

मर्पिष्यस्ये पलशतं ताम्रपात्रे शनैः पचेत् ॥ २३४ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूल चित्रको हस्तिपिप्पली ।

धान्यकानि विडङ्गानि नागरं मरिचानि च ॥ २३५ ॥

त्रिफला चाजमोदा च कलिङ्गाजानि सैन्धवम् ।

एकैकस्य पलश्चैकं त्रिष्टदृष्टपलं तथा ॥ २३६ ॥

तैलमध्वं च पलान्यष्टौ गुडात् पञ्चाशदेवतु ।

प्रस्येक्षिभिः समेतन्तु रसेनामलकस्य च ॥ २३७ ॥

सावत्पाकं प्रकुर्वीत स्रुदुनाघञ्जिनाभिषक् ।

यावद्द्विप्रलेपः स्यात्तदेनमवतारयेत् ॥ २३८ ॥

पौदुम्बरं चामलकं वादरं वा प्रमाणतः ।

यथा बलं तु कायस्य भक्षयेत् गुडं नरः ॥ २३९ ॥

अनेनैव विधानेन प्रयुक्तश्च दिने दिने ।

प्रसह्यग्रहणीदोषान् कुष्ठानर्शो भगन्दरान् ॥ २४० ॥

ज्वरमानाहहृद्रोग गुल्मोदरविस्फुटिकाः ।

कामलापाण्डुरोगांश्च प्रमेहाश्चैक विंशतीन् ॥ २४१ ॥

वातशोषितवीर्यं राजयक्षाहलीमकान् ।

कफपित्तानिलान् सर्वान् प्ररुढांश्चापि नाशयेत् ॥ २४२ ॥

व्याधिस्त्रीणावयः स्त्रीणाः स्त्रीषु चोणाश्च ये नराः ।

तेषां हितं च बल्यं च वयःस्थापन एव च ।

गुडं कल्याणको नाम्ना बन्ध्यायाः पुत्रदः परः ॥ २४३ ॥

इति कुष्माण्डकल्याणगुडः ।

त्रिहस्तिता निकुम्भा च ग्गदंष्ट्रा चित्रकं गठी ।

विशालामुस्तकं शण्ठी कृमिशतुर्हरीतकी ॥ २४४ ॥

द्विपलांशाः पलान्यष्टौ भस्मातकफलानि च ।

सूर्यं द्वादशप्रोक्तं पथ्यलं वृद्धदारकम् ॥ २४५ ॥

एतानि खण्डशः कृत्वा द्विद्वीणेषां विपाचयेत् ।

पादशेषान्तु कुर्वीत पचेद्गुडतुलां भिषक् ॥ २४६ ॥

कन्दस्तिक्तस्त्रिहृद्गन्धर्मुस्तैलामरिचत्वचम् ।

नागकेशरचूर्णं च द्व्येकैकं द्विपलोन्मितम् ॥ २४७ ॥

एतानि सूक्ष्मचूर्णानि गुडमध्ये विनिक्षिपेत् ।

भक्षयेद्गुटिकां प्राञ्चः कर्पाशा पथ्यभुङ्क्ते ॥ २४८ ॥

वातपित्तकफप्रायां द्विदोषां सान्निध्यातिकाम् ।

ग्रहणीं नाशयत्याशु चक्रपाखिर्यथाऽसुरान् ॥ २४८ ॥
 कामलाकुष्ठमेहार्शः पाण्डुरोगभगन्दरान् ।
 श्वयथूदरगुल्माश्च जयेत्सम्यक् प्रयोजितः ॥ २४९ ॥
 सर्वास्त्रुतुषु कर्तव्यो गुडोऽयं बहुशालिकः ।
 इति बहुशालिगुडः ।

१
 शालिप्यतापीकरवीरकाभ्यां
 वैश्वानरे प्रज्वलिते निधाय ।
 तप्तं सुतप्तं विनियोज्यते क्र
 निर्वप्यवारान् बहुशः सुलोहम् ॥ २५१ ॥
 एभिः प्रकारैः सुमृताश्च लोहा-
 यूणीकृताश्चापि पलानि चाष्टौ ।
 सर्पिष्यलं तैलपले पलानि
 चत्वारि चांदाय वरारसस्य ॥ २५२ ॥
 तक्रस्य चोम्बस्य चतुष्पलानि
 कर्पञ्च कर्पे पृथगौपधानाम् ।
 धोयाजमोदा चविकानलानां
 मूलं प्रदद्याद्देशपिप्पलीनाम् ॥ २५३ ॥
 सिन्धुप्रभूतं सविडङ्गचूर्णं
 तक्रैर्ण हन्यादग्रहणीं समस्ताम् ।
 पंगोसिमेथं परिणानसंज्ञं
 शूलश्च दीप्तिं प्रकरोति यक्षैः ॥ २५४ ॥

इति सारकल्पोऽयम् ।

पलायमरणायास्तु द्विपले कुटजत्व चः ।

१ करवीरका मनःशिला ।

केशराजस्य मूलानि कर्पं तत्सर्वमेकतः ॥ २५५ ॥
 संकुप्य सलिलप्रस्थे पत्कापादस्थिते रसे ।
 दत्त्वा ममपलं तस्मिंश्छोगक्षीरं चतुष्पलम् ॥ २५६ ॥
 गोष्ठं पक्करसं भूय पचेद्दार्वीप्रलेपनम् ।
 विश्वातिविप्रयोश्चूर्णं मुस्तस्येन्द्रियवस्य च ॥ २५७ ॥
 प्रत्येकमक्षमात्रन्तु चिन्नायट्क्षमात्रकम् ।
 तदगित्वानुमुञ्चीत, काञ्जिकास्त्रप्रसाधितान् ॥ २५८ ॥
 मत्स्यान् गोपुच्छसंज्ञांस्तु छागक्षीरं ततः पिवेत् ।
 ग्रहण्यतिसारहरो लेहोऽयं मपराजितः ॥ २५९ ॥
 इत्यपराजितो लेहः ।

इति बह्वर्सेने ग्रहणीनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३ ॥

अथाऽर्शो निदानमाह ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितान्महजानि च ।
 अर्शासिपट्प्रकाराणि विद्यादगुदबलित्रये ॥ १ ॥
 दोषास्त्वद्भांसमेदासिः सदूष्य विविधाकृतीन् ।
 मांसाद्गुरान्नपानादो कुर्वन्त्यर्शासितान् जगुः ॥ २ ॥
 कपाय कटुतिक्तानि रूचशीतलघूनि च ।
 प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णमद्यमैद्युनसेविनम् ॥ ३ ॥
 लहूनं देशकालौ च शीतो व्यायामकर्म च ।
 शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वीतार्शसाम्मतः ॥ ४ ॥
 कटुश्चलवणोष्णानि व्यायामान्वातपप्रभाः ।
 देशकालावग्निगिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ५ ॥
 विदाहि तीक्ष्णसुण्णञ्च सर्वपानान्नं भिषजम् ।

यित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥ ३ ॥
 मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरुणि च ।
 अथ्यायामर्दिवास्त्रं शय्यासनसुखे रतिः ॥ ७ ॥
 प्राग्वातसेवाशीतो च देशकालावचिन्तनम् ।
 शैलिकानां समुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ ८ ॥
 हेतुलवणसंसर्गाद्विद्याहन्दील्बणानि च ।
 सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणैः समम् ॥ ९ ॥
 विष्टम्भोऽस्य दीर्घं कुक्षेराटोप एव च ।
 कार्श्यसुहृत्तारवाङ्मुख्यं सकृत्सिद्धोऽल्पविट्कता ॥ १० ॥
 महंणी दोषपाण्डुर्तेराशङ्का चोदरस्य च ।
 पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिष्टब्धये ॥ ११ ॥

—०—

शुदाङ्गुरावह्निललाः शुष्काद्यिमिचिमान्विताः ।
 ज्ञानाः श्यावारुणाः स्तब्धाविपदाः परुषाः खराः ॥ १२ ॥
 मिथो विसदृशावक्रास्तीक्ष्णाविस्फुटिताननाः ।
 विम्बोर्कर्मभुजर्जुर कर्पासीफलसन्निभाः ॥ १३ ॥
 केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्किङ्कार्यकोपमाः ।
 शिरः पार्श्वशकट्यूरु बद्धणाभ्यधिकव्यथाः ॥ १४ ॥
 धवयुद्धारविष्टम्भ हृदयहाऽरोचकप्रदाः ।
 श्वासकासाम्निषैषस्य कर्णनादभ्रमावहाः ॥ १५ ॥
 तैरात्ती घणितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ।
 रुक्मेनपि घृष्टानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ॥ १६ ॥
 क्षणत्वङ्मुखयिण्मूत्र नेत्रवक्त्राय जायते ।
 गुल्मघ्नीहोदराटोन्ना सम्भवस्तत एव च ॥ १७ ॥
 इति निदानम् ।

अथ तस्य चिकित्सामाह ।

तत्र वातप्रायेषु स्नेहस्वेदवमनविरेचनानुस्थापनानुवासन-
मतिसिद्धमिति । वातजे स्नेहस्वेदादीति ।

लवणान्यर्कपत्राणि विनीयतरुणानि च ।

तैलेनाम्नेन युक्तानि युक्त्याचारं दहेद्भिषक् ॥ १८ ॥

उष्णोदकेन मद्यैर्वा रसैरस्त्रैस्तु लाभतः ।

पीतः प्रशमयत्येपं चारोऽर्थो वातसम्भवम् ॥ १९ ॥

इति लवणादिचारः ।

—०—

अथ पित्ताऽर्थो निदानम् ।

पित्तोत्तरानीलसुखा रक्तपीत्तासितप्रभाः ।

तन्वस्तृक्साविणो विस्रा स्तनवो मृदवस्तथा ॥ २० ॥

शकजिह्वायुक्तत्खड जलौकावक्त्रसन्निभाः ।

दाहपाकज्वरस्वेद हृण्मूर्च्छाऽरतिमोहदाः ॥ २१ ॥

सौष्माणो द्रवनीलीष्णपीतरक्तामवर्चसः ।

यवमध्याहरितीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ २२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पित्तजेषु विरेचनमिति ।

बालकं शृङ्गवेरञ्च यापयेत्तंडुलास्त्रुना ।

मधुयुक्तं प्रशमये दर्शं पित्तसमुद्भवम् ॥ २३ ॥

—०—

अथ कफाऽर्शौ निदानम् ।

श्लेष्मोत्प्लवणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः ।
 उत्सन्नोपचिता स्निग्धा स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ २४ ॥
 पिच्छिला स्तिमिता श्लेष्मा कण्डूढ्याः स्पर्शनप्रियाः ।
 करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ २५ ॥
 वङ्गणानाहिनः पायुवस्तिनाभिविकर्पिणः ।
 सकासश्वासहृत्तास प्रसेकारुचिपीनसाः ॥ २६ ॥
 मेहकृच्छ्रशिरोजाड्य शिशिरन्वरकारिणः ।
 क्लीब्याग्निमार्दवच्छर्दि रामप्रायविकारदाः ॥ २७ ॥
 वसामासकफप्राण्य पुरीषाः स प्रवाहिकाः ।
 न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ २८ ॥

—०—

अथ चिकित्सा ।

कफजे शङ्खवेरस्य क्वाथो नित्योपयौगिकः ।

अथ निदानम् ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लघणैः सहजानि च ॥ २९ ॥

—०—

अथ चिकित्सांमाह ।

यथास्त्रीपथसंयुक्तं पाययेत्सहजेयु च ।
 सर्वाण्यर्शसि मतिमान् पूर्वमालेपनादिभिः ।
 स्वेदरक्तावसेकैश्च जयेच्च हितभोजनैः ॥ ३० ॥
 द्वयो विकाराः प्रायेण ये परस्परहेतवः ।
 अर्शसि चातिसारस्य वङ्गणी गुद एव च ॥ ३१ ॥

एषामग्निबले हीने वृद्धिं वृद्धे परिचयः ।
 तस्मादग्निं सदा रचे देपुत्रिषु विशेषतः ॥ ३२ ॥
 यद्वायोरनुलोम्याय यद्यदग्निबलवृद्धये ।
 अन्नपानौषधं सर्वं तत्क्षेप्यं नित्यभार्शसैः ॥ ३३ ॥
 यदतो विपरीतं स्यान्निदाने यद्यदर्शितम् ।
 गुदजाऽविपरीतेन न तत्कार्यं कदाचन ॥ ३४ ॥
 शालि पष्टिकगोधूमयवान्नं संस्कृतं घृतैः ।
 अजाचीरेण वा निम्ब पटोलानां रसेन वा ॥ ३५ ॥
 मांसैर्मांसरसैर्वापि कन्दवार्त्ताकमूलजैः ।
 जीवन्त्युपोदकाशकैः स्तण्डुलीयकवास्तुकैः ॥ ३६ ॥
 अन्यैश्च सृष्टविण्मूत्र मरुद्भिर्वह्निदीपनैः ॥ ३७ ॥
 घातातिसारवद्विन्नवर्चांस्यर्शांस्युपाचरेत् ।
 उदावर्त्तविधानेन गाढविट्कानि वाऽसकृत् ॥ ३८ ॥
 प्रवृतबहुलाऽस्त्राणि पित्तशोणितनाशनैः ।
 योगैरुपाचरेत्तत्तु विड्वन्धे बन्धनाशनैः ॥ ३९ ॥

—०—

कृष्णसर्पं वराहोद्भवं जम्बूकं हृषदंशकाः ।
 वसामभ्यञ्जनं दद्याद्घूपनं वार्शसां हितम् ॥ ४० ॥
 इति कृष्णसर्पादि वसाया अभ्यञ्जनं घूपनञ्च ।
 दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्तितः ।
 भेषजचारशस्त्राग्निसाध्यत्वं याग्यमुच्यते ॥ ४१ ॥

—०—

नृकेशं सर्पनिर्मोकं हृषदंशस्य चर्म च ।
 अर्कमूलं शमीपत्रं मर्शसां घूपनं परम् ॥ ४२ ॥
 इति नृकेशादि घूपनम् ।

निशा कोशातकीचूर्णं विशुष्कं सैन्धवान्वितम् ।

गोमूत्रेण समायुक्तं लेपो दुर्नामनाशनः ॥ ४३ ॥

इति निशादि लेपः ।

कृष्णानिशा शङ्खसुवर्चिका च

करञ्जबीजं सदलञ्च सिन्धुः ।

गुञ्जाफलं केशरमध्यबीजं

समूलकन्तुत्यकहेमवाक्यम् ॥ ४४ ॥

दक्षस्य वर्चः कनकं यवानी

कोशातकीबीजरसश्च तुल्यः ।

स्रुह्यर्कदुग्धेन च भावयित्वा

पश्चात्प्रभावं सुरभीरसेन ॥ ४५ ॥

क्षित्वा विष्टब्धाय विष्टब्धयोन्यं

लेपं विदध्याद्गुदजक्षयाय ।

ग्रन्थार्बुदं पूयवहाञ्च नाडीं

स्रग्ण्डमालामपचीं प्रहन्ति ॥ ४६ ॥

शास्तादिभिर्यं च जितः प्रलेपा-

त्तैऽपि प्रणश्यन्त्यधिमांसदोषाः ।

इति सिद्धयोगोऽयम् ।

गुदश्चययुशूलार्त्तं मन्दाग्निं पाययेत्तु तम् ।

यूप्यं पिप्पलीमूलं पाठा हिङ्गु सचिञ्चकम् ॥ ४७ ॥

सौवर्चलं पुष्कराण्य मजाजी विल्वपेशिकम् ।

विडं यवानी ह्रुपा विडङ्गं सैन्धवं वचाम् ॥ ४८ ॥

तिन्तिडीकञ्च मण्डेन मद्येनोष्णोदकेन च ।

तथाग्रां ग्रहणीदोषाच्छ्रुमानाद्याश्च सुष्यते ॥ ४९ ॥

इति व्रूपण्याद्यं चूर्णम् ।

पूतीकमभया मुस्त भूनिम्बाऽसितवत्सकाः ।

सूरणाग्निकमिन्धुत्वं देवटानो च चूर्णिताः ॥ ५० ॥

तक्रेण पिवतस्त्रान्नं तक्रेणैव समश्रतः ।

माघ्रात्पक्वफलानीव पतन्त्यर्शाम्यऽसशयः ॥ ५१ ॥

इत्यर्शः पातनम् ।

‘विडङ्गसारामलकञ्च पिष्टं’

भक्ष्नातकक्वाथमधुप्रगाढम् ।

अर्शांसि जन्तून्श्च जयत्यजीर्णा-

ऽज्यश्च सन्धुचयति क्षणेन ॥ ५२ ॥

कठिनं यः पुरीषन्तु कच्छान्मुञ्चति मानवः ।

सद्यत क्षवणैर्युक्तं नरोऽपानजहं पिवेत् ॥ ५३ ॥

सक्तुर्दधिरसोपेतो दधिसर्पिः समायुतः ।

त्वक्पत्रैस्त्रिंशो विड्व्योपजीरकद्वयमिश्रितः ।

विड्विविधान्मशूलघ्नो रोचनो गुदजे हितः ॥ ५४ ॥

विड्विविधैर्हृतं तक्रं यवानी विडमयुतम् ॥ ५५ ॥

सैन्धवं नागरं पाठा दाडिमस्य रसं गुडम् ।

सतक्रलवणं दद्याद्वातवर्चानुत्थीमनम् ॥ ५६ ॥

—०—

गुडभक्ष्नातकं शुण्ठी विडङ्गं वृद्धदारुकम् ।

त्रिगुणं द्वीपन्नं वृष्यं मर्शसो विड्विविधञ्जुत् ॥ ५७ ॥

इति गुडाद्यं चूर्णम् ।

न च रोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रं समाहृताः ।

तक्राभ्यासोऽर्शसां कार्यों बलवर्णाग्निवृद्धये ।

स्त्रोतःसु तक्रशब्देषु रसः सम्यगुपैति यः ॥ ५८ ॥

तेन पुष्टिर्यत्नं वर्णं ग्रहर्पयोपजायते ।
 वातश्लेष्मविकाराणां शतञ्च विनियत्तयेत् ॥ ५९ ॥
 चिरबिल्वाम्निदिग्भूत्य नागरेन्द्रयवारलून् ।
 तक्त्रेण पिवतोऽर्शांसि निपतन्त्यसृजा सह ॥ ६० ॥

—०—

हरिद्रा जालिनीचूर्णं कटुतैलसमायुतम् ।
 एष प्रलेपकः प्रोक्तो ह्यर्शसामन्तकारकः ॥ ६१ ॥
 इति हरिद्रादि प्रलेपः ।

स्वेदो गोमयपिण्डेन सक्तुनामलकेन च ।
 शबपुष्पेन वा कार्यो गुदजानां निवृत्तये ॥ ६२ ॥
 इति गुदस्वेदः ।

सगुड़ां पिप्पलीयुक्ता मभयां घृतभर्जिताम् ।
 त्रिवृदन्तीयुतां वापि भक्षयेदनुलोमिकीम् ॥ ६३ ॥
 अम्बुना वाप्यपामार्गं मूलं वा तडुलांबुना ।
 तिलारुष्करसंयोगं भक्षयेदग्निवर्धनम् ॥ ६४ ॥
 कुष्ठरोगहरयेष्टं मर्शसां नाशनं परम् ॥ ६५ ॥
 तिनभट्टातकं पथ्यां गुडयेति समांशकम् ।
 दुर्नामं ग्वासकासघ्नं प्लोहपांडुश्वरापहम् ॥ ६६ ॥
 मृत्तिसं सूरणं कन्दं पत्कूम्भौ मुष्टपाकवत् ।
 दद्यात्कतैलनयणं दुर्नामं विनिवृत्तये ॥ ६७ ॥
 असितानां तिलानां प्राक् प्रकुञ्चं शीतवारिणा ।
 खादतोऽर्शांसि शाम्यन्ति द्विजदार्व्यङ्गपुष्टिदम् ॥ ६८ ॥

—०—

सिक्त्रं वाताकफघ्नं प्योषायाः क्षारकेन सलिनेन ।
 तदघृतभट्टं युक्तं गुडेन यक्षितां याति ॥ ६९ ॥

पिबति च तक्रं नूनं तस्यान्वेवसुवृद्धगुदजानि ।
नाशं प्रयान्ति पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण ॥ ७० ॥

इति वार्त्ताकपुटपाकः ।

पित्तश्लेष्मप्रशमनीकच्छुकंदूरुजापहा ।
गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाभया ॥ ७१ ॥
त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत् ।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शो हरं पिबेत् ॥ ७२ ॥
दुस्पर्शकेन विल्वेन यवान्या नागरेण च ।
एकैकेनापि सयुक्ता पाठा हन्यर्शसा रुजम् ॥ ७३ ॥
प्रातः प्रातरदृष्टार्शो ब्रह्मचारी गुडाभयाम् ।
गोमूत्रद्रोणसंसिद्धा भक्षयेदनुलोमिकीम् ॥ ७४ ॥
कुशमूलं वलायुक्तं पानं तंडुलधावनम् ।
रुणदि गुदजास्त्रावं प्रदरं वापि सर्वजम् ॥ ७५ ॥

—०—

शस्त्रैर्वापि जलौकाभिः प्रोच्छूनकठिनार्शसः ।
शोणितं सञ्चितं दृष्ट्वा हरेत्प्रातः पुनः पुनः ॥ ७६ ॥
इति शोणितस्त्रावविधिः ।

रुगतं कफवातेन अत्यर्थं गुदकीलकम् ।
स्नेदयेद्वा वृषा पिंडैरास्रया वायु शिशूभिः ॥ ७७ ॥

—०—

नागरं ग्रन्थिकं चव्यं पिप्पली क्षार चित्रकम् ।
एतैश्च पलिकैः सर्वैः घृतप्रस्थं विषाचयेत् ॥ ७८ ॥
उदकस्य त्रयो भागाः क्षीरस्यैकं तदेकतः ।
दुर्नामं श्वास कामन्नं म्लीहा पाण्ड्यामयापहम् ॥ ७९ ॥

विपमज्वरशान्त्यर्थं दृष्टारोचकनाशनम् ।

एतत् पट्पलकं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ८० ॥

इत्युदकपट्पलं घृतम् ।

व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि ।

साधितं पिबतः सर्पिः पतत्यर्शांस्यऽसंशयम् ॥ ८१ ॥

इति पलाशचारघृतम् ।

चव्यं त्रिकटुकं पाठा क्षारं कुस्तंबुरुणि च ।

यवानी पिप्पलीमूलमुभे च विङ्गसैन्धवे ॥ ८२ ॥

चित्रकं बिल्वमभयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।

सक्तदातानुलोम्यार्थं जातेदध्नि चतुर्गुणे ॥ ८३ ॥

प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ।

गुदवद्वग्गशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ८४ ॥

इति चव्याद्यं घृतम् ।

झीवेरमुत्पलं लोध्रं समङ्गा चित्रचव्यकम् ।

पाठा सातिविषा बिल्वं धातकी देवदारु च ॥ ८५ ॥

दार्दीत्वङ्गागरं मांसी मुस्तं क्षारो यवापजः ।

चित्रकयेति पेय्याणि चाङ्गेरी स्वरसे घृतम् ॥ ८६ ॥

एकत्र साधयेत्सर्वं तत्सर्पिः परमौषधम् ।

अर्शोऽतिसारग्रहणी पांडुरोगेऽरुचौ तथा ॥ ८७ ॥

मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे वरुणानाह प्रवाहके ।

पिक्वास्त्रावेऽर्शमां शूले योज्यमेतच्चिदोपनुत् ॥ ८८ ॥

इति झीवेराद्यं घृतम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।

हिंगु चव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च ॥ ८९ ॥

ह्रीं चारौ हवुषा चैव दद्यादर्धपलोन्मितान् ।

दधिकाञ्जिकशक्तानि स्नेहमात्रा समानि च ॥ ८० ॥

आर्द्रकस्त्रसप्रस्थं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ ८१ ॥

अर्गसा नाशनं त्रैष्टं तथा गुल्मोदरापहम् ।

अन्यार्बुदापची कास कफमेदोऽनिलानपि ॥ ८२ ॥

नाशयेद् ग्रहणीदोषं श्वयथुं स भगन्दरम् ।

ये च वस्तिगता रोगा ये च कुक्षिसमाश्रिताः ॥ ८३ ॥

सर्वास्तान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ।

इत्यग्निघृतम् ।

भक्तातक सहस्राधं जलद्रोणे विपाचयेत् ।

अष्टभागावशिष्टन्तु कपायमवतारयेत् ॥ ८४ ॥

घृतप्रस्थं समावाप्य कल्कानीमानि दापयेत् ।

त्रूपणं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ८५ ॥

हिङ्गु चव्याजमीदा च पञ्चैव लवणानि च ।

ह्रीं चारौ हवुषा चैव दद्यादर्धपलोन्मितान् ॥ ८६ ॥

दधिकाञ्जिकशक्तानि स्नेहमात्रा समानि च ।

आर्द्रकस्त्रसञ्चैव गौभाञ्जनरसं तथा ॥ ८७ ॥

तत्सर्वमेकतः कृत्वा शमैः सृष्टग्निना पचेत् ।

एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ ८८ ॥

अर्गसा नाशनं त्रैष्टं मूढयातानुलोमनम् ।

कफवातोद्भवे गुल्मे ग्रीहोदरदकोदरे ॥ ८९ ॥

शोफं पाण्डुमयं कासं ग्रहणी श्वासमेव च ।

एतान् विनाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ ९० ॥

इति वृष्टदग्निघृतम् ।

उदावर्त्तपरिता ये ये चात्यर्थनिरुचिताः ।

विलोमवातशूलात्तां श्लेष्मिष्टमनुवासनम् ॥ १०१ ॥

पिप्पली मधुकं विल्वं शताह्वा मदनं वचा ।

कुटुं शठी पुष्कराह्वं चित्रकं देवदारु च ॥ १०२ ॥

पिद्धा तैलं विपक्वञ्च द्विगुणक्षीरसंयुतम् ।

अशमां दृढवातानां तच्छेष्टमनुवासनम् ॥ १०३ ॥

गुदनिस्तरणं शूलं मूत्रकृच्छं प्रवाहिकाम् ।

कट्यूहृष्टदौर्वल्यमानाहं वह्णामयम् ॥ १०४ ॥

पिच्छास्त्रावं गुदे शोथं वातवर्चो विनिग्रहम् ।

उत्थानं बहुशो यच्च जयेत्तच्चानुवासनात् ॥ १०५ ॥

इति पिप्पल्याद्यं दृतम् ।

कासीस दन्तीमिन्धूत्य करवीरानलैः पचेत् ।

तैलमर्कपयो मित्रमभ्यङ्गात्पायुकीननुत् ॥ १०६ ॥

इति कासीसाद्यं दृतम् ।

कासीसं सैन्धवं क्षणा शण्ठी कुटुञ्च लाङ्गुली ।

गिलाभिदग्धमारुचं जन्तुघ्नं दन्तीचित्रकम् ॥ १०७ ॥

हरितानं तथा स्वर्णक्षीरो चैतैः पचेत्समैः ।

तैलं सुहृत्कपयमा गर्वा भूवं चतुर्गुणम् ॥ १०८ ॥

एतदभ्यङ्गतोऽङ्गामि चारवत् पातयेद् ध्रुवम् ।

चारकर्माकरं ह्येतन्न च सन्दूषयेद्दनिम् ॥ १०९ ॥

दृढत्कासीद्यं तैलम् ।

दन्त्यग्नमारुकासीस विडङ्गैर्लाग्निसैन्धवैः ।

सारक्षीरैः पचे तैलमध्यङ्गात्पायुकीननुत् ॥ ११० ॥

इति दन्त्याद्यं तैलम् ।

लवणो तमवलि कलिङ्गयवान्-
चिरबिल्वमहापिचुमन्दयुतान् ।
पित्रसप्तदिनं मयितांलुलितान्
यदि मर्दितुं मिच्छसि पायुरुहान् ॥ १११ ॥

इति लवणोत्तमाद्यं चूर्णम् ।

कटुत्रयं वचाहिह्व पाठाक्षारौ विपक्षयम् ।
चव्यतिक्तकलिङ्गानि गजाङ्गालवणानि च ॥ ११२ ॥
ग्रन्थिविल्वजमोदा च गणो द्वाविशको मतः ॥ ११३ ॥
एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
एरण्डतैलसंयुक्तं सदा लिह्याततो नरः ॥ ११४ ॥
विडालपदकं वायि पिबेदुष्णेन वारिणा ।
श्वारं हन्यात्तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम् ॥ ११५ ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च सक्थिशूलमरोचकम् ।
प्लीहानं सप्रमेहञ्च कामलां पाण्डुरोगताम् ॥ ११६ ॥
आमवातमुदावर्तमन्तवृद्धिगुदकृमीन् ।
हन्याच्च ग्रहणीरोगान्ये मया परिकीर्तिताः ॥ ११७ ॥

इति कटुत्रयाद्यं चूर्णम् ।

भस्मातकञ्च त्रिफलां दन्तीचित्रकमेव च ।
एतानि समभागानि सैन्धवं द्विगुणं भवेत् ॥ ११८ ॥
कपालपुटसम्पक्कं मृदुना गोमयाग्निना ।
एतत्कल्याणलवणं त्र्यष्टमर्शो विकारिणाम् ॥ ११९ ॥

इति कल्याणलवणम् ।

शण्डिकणामरिचनागदलत्वगैला
चूर्णीकृतं क्षामविवर्धितमूर्धमम्ब्यात् ।

खादेदि दंसमसितं गुदजाग्निमान्द्य
 गुल्माऽरुचिश्चसन कण्ठहृदामयेषु ॥ १२० ॥
 इति समशर्कराचूर्णम् ।

व्योपाऽग्न्यऽरुष्करविडङ्गतिलाभयानां
 चूर्णं गुडेन सहितं सततं प्रयोज्यम् ।
 दुर्नामशोथगर कुष्ठशकृद्विबन्धमग्ने-
 र्जयत्य बलतां क्षमिपाण्डुतां वा ॥ १२१ ॥
 इति व्योपाद्यं चूर्णम् ।

तिक्ततुम्बुग्नवं तैलं तैलमलसि सम्भवम् ।
 आक्षोटकरसञ्चैव रसं निगुण्डिगोमयैः ॥ १२२ ॥
 प्रत्येकैकान्तु सर्वेषां ग्राह्यं पलचतुष्टयम् ।
 कर्पकं सैन्धवं दद्याद्वन्तीमूलं द्विमाषकम् ॥ १२३ ॥
 द्विमाषं सर्जिकाचारमेतत्तैल विपाचयेत् ।
 तिक्ततुम्बीकृतावर्त्तीर्यवेन्द्रस्वरसेन च ।
 तैलेनाभ्यञ्जनेनैव दद्यादुर्नामशान्तये ॥ १२४ ॥
 इति फलवर्त्तितैलम् ।

त्रिकनयं वचाहिङ्गु पाठाचारौ निशाद्वयम् ।
 चव्यतिक्ताकलिङ्गानि शताक्षालवर्णानि च ॥ १२५ ॥
 ग्रन्थिबिल्वाजमोदा च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः ।
 एतानि समभागानि श्लेष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १२६ ॥
 ततो विडालपदकं पिबेदुष्णे न वारिणा ।
 एरण्डतैलसंयुक्तं सदा लिङ्गात्ततो नरः ॥ १२७ ॥
 ग्रासं हन्यात्तथा शोथमर्गामि च भगन्दरान् ।
 दृग्दूले पार्श्वशूलश्च वातगुल्फं तथोदरम् ॥ १२८ ॥

हिकाश्रासं प्रमेहांश्च कामलापांडुरोगताम् ।
 आमवातमुदावर्त्तं मन्त्रवृद्धिगुदक्लमीन् ॥ १२८ ॥
 अन्ये च ग्रहणीद्रोपा ये मया परिकीर्त्तिताः ।
 महाज्वरोपसृष्टानां भूतोऽपहृत्तचेतसाम् ॥ १२९ ॥
 अप्रजानाश्च नारीणां प्रजावर्द्धनमेव च ।
 विजयो नाम चूर्णोऽयं महाव्याधिहरः परः ॥ १३० ॥
 इति विजयचूर्णम् ।

त्रिफलादशमूलान्नि निकुशानां पलं पलम् ।
 वारिद्रोणे शृतं पादं शेषे गुडतुलायुतम् ॥ १३१ ॥
 आज्यभाण्डे स्थितं मासं दन्त्यरिष्टो निर्वितः ।
 गुदजक्रस्युदावर्त्तं ग्रहणीपांडुरोगनुत् ॥ १३२ ॥
 अरिष्टादेस्तु सन्धानं धातकीलिप्तभाजने ।
 पानमानमरिष्टादेः क्षायपानसमं जगुः ॥ १३३ ॥
 भेषजत्वात्पलञ्चैकं प्रथमं मदलक्षणम् ।
 इति दन्त्यरिष्टः ।

सनागराऽरुष्करवृद्धदारकम्
 गुडेन यो मोदकमत्युदारकम् ।
 अशेषदुर्नामकरोगदारकं
 करोति वृद्धिं सह सैव दारकम् ॥ १३४ ॥
 इति चतुस्त्रयो मोदकः ।

मरिचमहीषधिचित्रक सूरणभागाः यथोत्तरे द्विगुणाः ।
 सर्वसमो गुडभागः सेश्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥ १३५ ॥
 ज्वलयतिज्वलनं जाठरं मुन्मूलयतिशूलगुदगुल्मगदान् ।
 निःशेषयति शीपदमर्शासि प्रणाशयत्याशु ॥ १३६ ॥
 इति स्वल्पसूरणमोदकः ।

चूर्णीकृताः षोडशसूरणस्य भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य ।
महौषधाऽर्धां मरिचस्य चैको गुडेन दुर्नामजयायपिण्डी ॥
इति सूरणपिण्डी ।

षोडशसूरणभागा वङ्गेरष्टौ महौषधस्याथ ।
अर्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततो पिचार्धेन ॥ १३८ ॥
त्रिफलाकणासमूलातालीसाऽरुष्करकमिघ्रानां
भागामहौषधसमा दहनांशातालमूली च ॥ १४० ॥
भागः सूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्यापि ।
भृङ्गैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य ॥ १४१ ॥
द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामधनैः ।
गुरुवृथभोज्यरहितेष्वितरेषूपद्रवं कुर्यात् ॥ १४२ ॥
भक्षकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजिन ।
भीमस्य मारुतेरपि महाशनी तेन तौ जाती ॥ १४३ ॥
अग्निबलमात्रहेतु न केवलं सूरणो महावीर्यः ।
प्रभवति शस्त्रं चाराग्निभिर्विनाप्यर्शंभामेपः ॥ १४४ ॥
श्वपयुक्षोपदगदजित् ग्रहणीञ्च तथा कफानिलजाम् ।
नाययति बलिपलितं मेधाद्भुक्ते वृषत्वञ्च ॥ १४५ ॥
द्विकां श्वामं कामञ्च मराजयन्मप्रमेहांथ ।
मोक्षानञ्च तयोर्ग्रहल्याशु रसायनं पुंसाम् ॥ १४६ ॥
इति वृद्धकूरणमोदकः ।

हरीतकीनां त्रिपलं त्रिपलं कटुकत्रयम् ।
त्वक्पत्रं सार्धपलकं गुडम्यार्धपलं मतम् ॥ १४७ ॥
अगस्त्यमोदकाद्भो ते कम्पितान् परिभक्षयेत् ।
शोयागो ग्रहणीदोष कामोदावर्त्तनाशनान् ॥ १४८ ॥
इत्यगस्त्यमोदकः ।

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुष्कं मरिचस्य च ।
 पिप्पल्याः कुङ्कुमार्धञ्च चव्यस्य पलमेव च ॥ १४८ ॥
 तालीशपत्रस्य पलं पलार्धं केशरस्य च ।
 द्वेपले, पिप्पलीमूलादर्धकर्मञ्च पत्रकात् ॥ १५० ॥
 सूक्ष्मैलाकर्पमेकञ्च कर्मञ्च त्वङ्मृणालयोः ।
 अजमोदाद्विजाज्योश्च सूक्ष्माण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ १५१ ॥
 गुडात्पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ।
 अक्षप्रमाणागुडिका प्राणदेति च सास्मृता ॥ १५२ ॥
 पूर्वं भवेत्तु पञ्चाच्च भोजनस्य यथा बलम् ।
 मद्यं मांसरसं यूपं क्षीरं तोयं पिवेदनु ॥ १५३ ॥
 हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यस्त्रजानि च ।
 वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च ॥ १५४ ॥
 पानात्त्रये सूत्रक्षच्छे वातरोगे गलग्रहे ।
 विषमज्वरपित्ते च पांडुरोगे तथैव च ॥ १५५ ॥
 क्षमिहृद्रोगिणाञ्चैव गुल्मशूलार्तिनां तथा ।
 हृद्यतीसाररोगाणां कामलाहिकिनां हिता ॥ १५६ ॥
 शुब्ध्याः श्यानेऽभयादेया विट्गुडे वातपित्तजे ।
 प्राणदेयं सितां दत्त्वा चूर्णमानाच्चतुर्गुणाम् ॥ १५७ ॥
 अम्लपित्ताग्निमान्द्यादी प्रयोज्यागुदजातुरे ।
 अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधी श्लेष्मभवे पलम् ।
 'प्रस्तुत्यप्युत्तिरुत्ति, पिप्पले, नु, प्रस्तुत्यप्यु' ॥ १५८ ॥
 स्त्रधान्यान्तरसोदकञ्च मद्यं मरुद्रोगिणि चानुपानम् ।
 रसः क्षीरहिमांस्तु पित्ते उष्णांस्तुयूपं कफजे विदध्यात् ॥ १५९ ॥
 गंडूपमात्रयादेयं मृदो क्रूरे च पञ्च च ।
 अनुपानं प्रयोक्तव्यं देशकालमवेक्ष्य च ॥ १६० ॥

यथा जलगतं तैल तत्क्षणादेवसर्पति ।

तथा भैषज्यमङ्गेषु प्रसर्पत्यनुपानतः ॥ १६१ ॥

इति प्राणदागुटिका ।

पथ्यापञ्चपलान्येकमजाज्यामरिचस्य च ।

पिप्पली पिप्पलीमूल चव्यचित्रकनागराः ॥ १६२ ॥

पलाभिवृक्षक्रमशो यवक्षारपलद्वयम् ।

भस्मातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्विगुणो मतः ।

द्विगुणेन गुड़ैर्नैपा वटकानक्षसन्मितान् ॥ १६३ ॥

कृत्वेन भक्षयेन्नातस्तक्रमम्भोऽनु वा पिबेत् ।

मन्दाग्नि दीपयत्येष ग्रहणीपाडुरोगनुत् ॥ १६४ ॥

काङ्गायणेन शिथ्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निमिर्विना ।

भिषग्जितमिदं प्रोक्तं श्रेष्ठमर्शो विकारिणाम् ।

इति काकायणो मोदकः ।

भस्मातकसहस्रे द्वे जलद्रोणे विपाचयेत् ।

परदशेपे रसे तस्मिन् पचेद् गुडतुला भिषग् ॥ १६५ ॥

भस्मातकसहस्राहं कृत्वा तत्रैव दापयेत् ।

मिद्वेऽस्मिंस्त्रिफला व्योष यवानो मुस्तसैन्धवम् ॥ १६६ ॥

कर्पाश चूर्णितं दद्यात्त्वगैलापत्रकेसरम् ।

खादेदग्निबलापेक्षी प्रातरुत्थायमानवः ॥ १६७ ॥

कुष्ठार्गः कामनामेहान् ग्रहणीं पांडुतामपि ।

हन्त्यात् प्रीहोदर काम कृमिदोषं भगन्दरम् ॥ १६८ ॥

भस्मातकगुडो ह्येपत्रे दद्यार्शो विकारिणम् ॥ १०० ॥

इति भस्मातकगुडः ।

शीतभूतेभ्यसेत्तत्र व्योषं पञ्चपलोन्मितम् ।
 पलत्रय त्रिजातस्य दत्त्वा सङ्गृह्येत् पुनः ॥ १७८ ॥
 ततो यथा बलं खादेत्पलार्द्धं पिचुमेव च ।
 नाहारे यन्त्रणा काचिद्भविहारे तथैव च ॥ १८० ॥
 विवन्धाध्मानगुल्मार्शः पाण्डुरोगकफकुमीन् ।
 कुष्ठमेहारुचिं हन्ति ह्यन्तर्हृदिषु शस्यते ॥ १८१ ॥

इति पटोलाद्योऽवलेह

मोदकं वटकं लेहं कर्पमात्रं प्रयोजयेत् ।
 कर्षद्वयं पलं वापि देयं रोगाऽन्यपेक्षया ॥ १८२ ॥

—०—

वीजं भक्ष्नातकस्यैकं पूते निःक्वाथ्यवारिणि ।
 क्वाथयेत् षोडशगुणे शक्तिशेषं हि तं पिवेत् ॥ १८३ ॥
 एकैकं वर्धयेद्बीजमापञ्चाशद्विचक्षणः ।
 आसप्तति पञ्चहृदया वर्धयेन्मतिमांस्ततः ॥ १८४ ॥
 शक्तिहृदया कपायञ्च वर्धयेद्दातुरः पलान् ।
 स कपायानि वीजानि वर्धितानि यथाक्रमम् ॥ १८५ ॥
 पुनः क्रमेण तेनैव क्वासयेदात्मवान्नरः ।
 इत्युत्कर्षापकर्षाभ्यां सहस्रं यावदादरात् ॥ १८६ ॥
 उपयुक्तं जयत्येतद् गुदजानि कृमीस्तथा ।
 भक्ष्नातकस्य विधानं मिदं गोपुररक्षितम् ॥ १८७ ॥
 इति भक्ष्नातकविधानम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः ।
 पाठा विडङ्गेन्द्रययं हिगुभागवचान्वितैः ॥ १८८ ॥
 सर्षपाऽतिविषा जाजी चित्रकैरङ्ककटुमैः ।
 तजकुट्टाजमोदाक्षा कटुक्षा तेजनी समैः ॥ १८९ ॥

भागैः मंचूर्णितैरेपां विफला विगुणा भवेत् ।
 सर्वेषामेव द्रव्याणां समो देयोऽय गुग्गुलुः ॥ १८० ॥
 एकीकृत्य शुभे भाण्डे मधुना सुपरिप्लुतः ।
 योगुराज इति ख्यातो योगोऽयमन्ततोपमः ॥ १८१ ॥
 एष निष्परिहारस्तु पानभोजनमैयुनैः ।
 रेतो दोषाश्च ये पुंसां योनिदोषास्तु योपिताम् ॥ १८२ ॥
 निहन्ति सर्वान् दुर्वारान् नात्र कार्या विचारणा ।
 अर्शांमि वातगुल्मश्च वातरोगमरोचकम् ॥ १८३ ॥
 नाभिशूलसुदावर्त्तं हृद्रोगं ग्रहणीं तथा ।
 क्षयं कुष्ठमपस्मारं प्रमेहं वातशोणितम् ॥ १८४ ॥
 महान्तमग्निमादश्च कासं श्वासं भगन्दरम् ।
 सर्वव्याधि विनिर्मुक्तो जीवेद्दुर्पगतद्वयम् ॥ १८५ ॥
 क्षीराज्यरसयूपाक्तं दोषधात्वऽनलोचितम् ।
 वुभुक्षितो मात्रयाऽत्र मद्याद् गुग्गुलुसेवकः ॥ १८६ ॥
 वातं स्थिरादिकाधेन पितं काकोलिकादिना ।
 आरग्वधाधेन कफं पीतो जयति गुग्गुलुः ॥ १८७ ॥
 दावीकाधेन मेहं जयति मधुयुतो मेदसद्यापि वृद्धिः ।
 पाण्डुत्वं मूत्रयुक्तः क्षपयति चितं छागदुग्धेन सिद्धम् ।
 निम्बकाधेन कुष्ठं श्लययुमतिबलं भूलककायपीतः
 क्षिप्रं कुम्भीकहृत्स्वरमपरिगतो मूषकग्रामदोषान् ॥ १८८ ॥
 इति योगुराजगुग्गुलुः ।

विहत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्राचित्रकं शठी ।
 गवाक्षी मुस्तविश्राद्धा विडङ्गानि हरोतकी ॥ १८९ ॥
 पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात् ।
 वृद्धद्वारुपलान्यष्टौ सूरपस्य च षोडश ॥ २०० ॥

जलद्रोणे पचेत् कायं चतुर्भागावशेषितम् ।

पूतन्तु तं रसं भूयः काथेभ्यो द्विगुणो गुडः ॥ २०१ ॥

लेहं पचेत्तु तं तावद्यावद्दार्ढ्यं प्रलेपनम् ।

अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानी मानि दापयेत् ॥ २०२ ॥

त्रिवृत्तेजोवती कन्द चित्रकान् द्विपलांगिकान् ।

एला त्वङ्गरिचं चापि गजाह्वाञ्चापि षट्पलम् ॥ २०३ ॥

द्वात्रिंशच्च पलञ्चैव चूर्णयित्वा निधापयेत् ।

ततो मात्रां प्रयुञ्जीतजीर्णं क्षीररसाशनः ॥ २०४ ॥

पञ्चगुल्मान् प्रमेहान्थ पाण्डुरोग हलीमकम् ।

जवेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥ २०५ ॥

दोषयेद् ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माणं चापकर्पति ।

पीनसे च प्रतिश्याय आमवाते तथैव च ॥ २०६ ॥

अथ सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तमः ।

दुर्नामान्तकरथरमो दृष्टो वारमहस्त्रगः ॥ २०७ ॥

भवन्त्यनेन पुरुषाः शतवर्षा निरामयाः ।

दोर्घायुषः प्रजननो वल्लोपलितनाशनः ॥ २०८ ॥

रसायनजरथैष मेधाजनन उत्तमः ।

गुडश्चीराहुगालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्तितः ॥ २०९ ॥

इति श्रीवाहुगालो गुडः ।

मार्धं पलं पलं चार्धं विदध्याहुडक्वण्डयोः ।

श्रेष्ठमध्यमहीनेषु मात्रेय मुनिना स्मृता ॥ २१० ॥

तोयपूर्णं यदा पात्रे क्षिप्तो न प्रवते गुडः ।

क्षिप्तस्तु निघ्नमस्तिष्ठेत्पतितस्तु न शीर्यते ॥ २११ ॥

यदा टार्यां प्रलेप स्यात्प्रायदातन्तुनी भवेत् ।

एष पाको गुडादीनां सर्वेषां पक्विकीर्तितः ॥ २१२ ॥

सुखमर्दः सुखस्पर्शा गन्धवर्ण रसान्वितः ।

पीडितो भजते सुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ २१३ ॥

—०—

अथ लोहभेदानाह ।

मुण्डं तीक्ष्णञ्च कान्तञ्च विप्रकारमयः स्मृतम् ।

मृदुकुण्डञ्च कण्डारं त्रिविधं मुण्डमेव च ॥ २१४ ॥

हतद्रावमविस्फोट मृदु कुम्भहतं च यत् ।

घटने प्रसरं दुःखात्तत्कुण्डं मध्यमं स्मृतम् ॥ २१५ ॥

विधृतं भज्यते भङ्गं क्षणां स्यात्तु कण्डालकम् ॥ २१६ ॥

मुण्डं वरं मृदुलकं कफवातशूल

शूलाममेहगुदजामय पाण्डुचारि ।

गुल्मामवातजठराग्निहरं प्रदीपि

शोफापहं रुधिरकृत् खलु कोटशोधि ॥ २१७ ॥

खराग्न्यं योगरं सारं कर्णकं द्रावकं तथा ।

रोमकं षड्विधं तीक्ष्णं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ २१८ ॥

हुन्तालमपरं तारं वटं वाजरकालकम् ।

कान्तं सप्तविधं प्रोक्तं भ्रामकं चुम्बकं तथा ॥ २१९ ॥

नीलं क्षणमतिस्निग्धं सूक्ष्मं सारमयः शुभम् ।

न नमेद्भङ्गुरं यत्तत् खरलोहमुदाहृतम् ॥ २२० ॥

क्षणपाण्डुर कच्छुर योजतुल्यन्तु योगरम् ।

विद्धेदनेऽतिपरुषं हुन्तालमिति कथ्यते ॥ २२१ ॥

योगरैर्वज्रसद्भागीः सूक्ष्मैर्युक्तेषु सान्द्रकैः ।

निश्चितं श्यामलाङ्गञ्च वाजरं तत्रकीर्तितम् ॥ २२२ ॥

नीलं कृष्णप्रभं सान्द्रं मत्रणं गुरुतारकम् ।

अथः पारश्ववन्तीक्ष्णशस्त्रं कालायसं खरम् ॥ २२३ ॥

रूचं स्यात् खरलोहकं समधुरं पाके च वीर्यं हिमम्
तिक्तोष्णं कफवातपित्तजनितं घ्नोद्दामपाण्डुर्तिरुत् ।

सद्यः शूलयुक्तत् गदक्षयजरामोद्दामवातापहम्

दीप्तं चातिरसायनं कफहरं दुर्नामभेदापहम् ॥ २२४ ॥

खरलोहात्परं सर्वमेकैकं स्याच्छतोत्तरम् ॥ २२५ ॥

गुडूचीहंसपादी च रक्तमालाफलत्रयम् ।

(१) (२)

गोपालिका गोरसना तुम्बुरुं लोहतप्तकम्

एषां रसैः सिञ्चयेत्तं द्विरिदोपनिवृत्तये ॥ २२६ ॥

इति तीक्ष्णशोधनम् ।

—०—

अथ लोहवर्णनम् ।

तत्तदाऽऽकरसम्भूतं तत्तद्रीगविनाशनम् ।

तेन तस्य परीक्षायां यतिमहिं महेतुकम् ॥ २२७ ॥

कन्तकं तंडुलाङ्गं स्यादार्थवग्नलयोपरि ।

कृशताडं कृशाङ्गश्च शूलाग्रक्षीयदेगजम् ॥ २२८ ॥

पाण्डिजं द्विविधं कृष्णं शुक्लञ्च समदाडिमम् ।

भद्रमैरण्डबीजाङ्गं क्षुदीपत्रनिभं शुभम् ॥ २२९ ॥

वज्रदमकपटाङ्गं मिषतुस्वर्णच्छविद्विधा ।

कान्तं मृदुतरं ताडं रुचं कान्तिं गितीकरम् ॥ २३० ॥

क्षुद्राङ्गं गुरुतारं स्यात् कलिहजमयः स्मृतम् ।

(१) गोपालिका गोपीवल्ली । (२) गोरसना गोजिह्वा ।

रुचं रुक्मप्रतिकाशं तीक्ष्णं स्रुदुफलं स्मृतम् ॥ २३१ ॥
 यक्षत्प्रीहशिरःशूलमन्तपित्तानिलोद्भवम् ।
 पार्श्वरोगहतं वातं हन्याद्वातकफोद्भवम् ॥ २३२ ॥
 हृद्यतीसारशूलानि परिणामोद्भवं तथा ।
 वातं सर्वाङ्गिकं पित्तं निहन्याच्चोद्यदेशजम् ॥ २३३ ॥
 भेदनं दीपनं वज्रे दुर्नामाख्यं त्रिदोषजम् ।
 गात्रभेदं कफं वातं हन्ति वज्रोद्भवं तु यत् ॥ २३४ ॥
 गुल्मश्च पांडुरोगश्च ज्वरांश्च विषमोद्भवान् ।
 अर्शांसि श्वासशोथांश्च प्रमेहांश्च विशेषतः ॥ २३५ ॥
 गलग्रहं रक्तपित्तं भरुद्रोगं भयानकम् ।
 निद्रालस्यावरोधश्च निहन्यान् पाणिदेशजम् ॥ २३६ ॥
 रक्तोत्थं चापि चोष्माणं रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
 मूर्च्छाक्वर्दिहरं दाहं वज्रं शमयति ध्रुवम् ॥ २३७ ॥
 सर्वान् रोगान्निहन्याशु कुटाष्टादशसम्मितान् ।
 पावनं पुत्रजननं वन्ध्याया वीर्यवर्धनम् ।
 वल्यं क्षयापहं धातु हंहणं स्यात् कलिङ्गजम् ॥ २३८ ॥
 एतानि सर्वाणि विचेष्टितानि
 हितानि रोगोपशमाय सन्ति ।
 वयो विशेषेषु विशेषविज्ञै-
 र्विज्ञायदत्तानि च देशकाले ॥ २३९ ॥
 सामान्यादिगुणक्षोभं तन्मादष्टगुणं कलिः ।
 कलेर्दशगुणं भद्रं भद्राद्वज्रं सहस्रधा ॥ २४० ॥
 वज्रात् पष्टिगुणं पाण्डिर्निरचिर्दशभिर्गुणैः ।
 ततः कोटिसहस्रेण त्वयः कान्तं महागुणम् ॥ २४१ ॥
 इति लोहवर्णनम् ।

त्रिवृच्चित्रकनिर्गूणडी क्षुहीमुण्डितकाजटा ।
 प्रत्येकशोऽष्टपलिका जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २४२ ॥
 पादशेषे रसे तस्मिन् पुनस्तोन विपाचयेत् ।
 पलद्वयं विडङ्गस्य व्योपात्कर्पद्वयं पृथक् ॥ २४३ ॥
 त्रिफलायाः फलं पञ्च शिलाजतु पलं न्यसेत् ।
 दिव्योपधहतस्यापि वैड्ढकत हतस्य वा ॥ २४४ ॥
 पलद्वादशकं देय रुक्मलोहस्य चूर्णितम् ।
 मधुशर्करयोर्युक्तं चतुर्विंशतिभिः पलैः ॥ २४५ ॥
 घनीभूते सुशोते च दापयेदवतारयेत् ।
 एतदग्निमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम् ॥ २४६ ॥
 मन्दमग्निं करोत्याशु कालाग्निसमतेजसम् ।
 पर्वतोऽप्यऽवजीर्येत प्रासादादस्य देहिनाम् ॥ २४७ ॥
 गुरुपिटान्नपानानि पयो मांसरसाहिताः ।
 दुर्नामपाण्डु श्वयथु म्लीहकुठोदरापहम् ॥ २४८ ॥
 नसरोगोऽस्ति यश्चापि न निहन्यादिदं क्षणात् ।
 करीरकाञ्जिकादीनि कङ्गारादीनि वर्जयेत् ।
 सखल्यतोऽन्यथा लोही देहात्किदृशं दुर्जयम् ॥ २४९ ॥
 इत्यग्निमुखलोहः ।
 पलद्वादशकं कृत्वा क्षुण्णलोहस्य खण्डयः ।
 भार्गव्यष्टा मगण्डीर मूलैः पिण्डं प्रलेपयेत् ॥ २५० ॥
 दत्त्वा प्रधमयेत्तावद्यावत्सर्वमृतं भवेत् ।
 घृतस्य पट्पलं देयं शर्करायास्तथैव च ॥ २५१ ॥
 सूर्यावर्त्तरमप्रस्ये विफला महिते शुभे ।
 प्रक्षिप्य विषचैद्रूयो यावत्सान्द्रत्वमेति च ॥ २५२ ॥
 सिद्धे रात्रुरपि ते योज सूर्यावर्त्तस्य दापयेत् ।

कर्पं त्रिकटुकस्यापि त्रिकर्पं चूर्णसंयुतम् ॥ २५३ ॥
 मधुत्रिपलसंयुक्तं यथाग्निं चोपयोजयेत् ।
 अर्शासि कामला कुष्ठपाण्डुरोग क्षमींस्तथा ॥ २५४ ॥
 हृदि गुल्मोदरं शोथं विशेषात्परिणामजम् ।
 शूलान्विहन्ति सर्वास्तु विकारान्नात्र संशयः ॥ २५५ ॥
 एतल्लोहाष्टकं नाम सर्वदोषहरं परम् ।

इति लोहाष्टकम् ।

चव्यं पलाष्टकं देयं खदिरं चार्द्धमेव च ।
 चित्रकस्य पलं पञ्च तालमूली च तत्समा ॥ २५६ ॥
 त्रिफलाप्रस्थसंयुक्तं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
 अष्टभागावशेषेण कपायमवतारयेत् ॥ २५७ ॥
 आज्यात्पलाष्टकं देयं रुक्मलोहस्य षोडशः ।
 पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारयेत् ॥ २५८ ॥
 विहृदन्ती विडङ्गानि पथ्या चामलकानि च ।
 शुण्ठी विभीतकं क्षणा एषां चूर्णं पलार्धिकम् ॥ २५९ ॥
 शर्करा मधु चत्वारि स्रग्ध्रे भाण्डे निधापयेत् ।
 गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरमो हितः ॥ २६० ॥
 दुर्नाम कुष्ठखययुपाण्डुप्लीहोदराणि च ।
 गुदशूले कुक्षिशूले परिणामकृते हितः ॥ २६१ ॥
 वलवर्णकरं हृथ्यमग्निसन्दीपनं परम् ।
 करीरं कान्तिकञ्चैव काकमाचीञ्च वर्जयेत् ॥ २६२ ॥
 इति चव्याद्यं लोहम् ।

—०—

अथातः शङ्करलोहमाह ।

प्रणम्य शङ्करं देवं दण्डपाणिं महेश्वरम् ।

जीवितारोग्यमन्त्रिद्वारदः पृच्छते गुरुम् ॥ २६३ ॥
 सुखोपायेन हे नाथ ! शस्त्रचाराग्निभिर्विना ।
 दुर्बलानाञ्च भीरूणां चिकित्सां वक्तुमर्हसि ॥ २६४ ॥
 सशिष्यवचनं श्रुत्वा लोकानां हितकाम्यया ।
 अर्गसां नाशनं श्रेष्ठं भैषज्यमिदमीरितम् ॥ २६५ ॥
 पाण्डिवज्रादिलोहानां मादायान्यतमं शुभम् ।
 कृत्वा निर्मलमादौ तु कुनव्या मात्तिके न च ॥ २६६ ॥
 पत्तूरमूलकल्केन स्वरसेन दहेत्ततः ।
 वङ्गी निक्षिप्य विधिवत् स्थूलाङ्गारेण निर्धमेत् ॥ २६७ ॥
 ज्वाला च तस्य रोद्धव्या त्रिफलाया रसेन तु ।
 ततो विज्ञायगलितं शङ्खुनोर्ध्वं विनिक्षिपेत् ॥ २६८ ॥
 त्रिफलाया रसे पूते तदाकृष्य विनिर्वपेत् ।
 न सम्यक् गलितं यत्तु तेनैव विधिना पुनः ॥ २६९ ॥
 धातं निर्वापयेत्तस्मिं ह्योहं तत्त्रिफलारसे ।
 यत्तोहं न सृत तत्त पाच्यं भूयोऽपि पूर्ववत् ।
 मारणान्न सृतं यच्च तत्पक्त्वमलोहवत् ॥ २७० ॥
 तदनुलोहवत् लोह पात्रे कालायसमुद्गरेण संचूर्ण्य ।
 हत्वा बहुगः सनिले प्रक्षान्याङ्गारादुद्धृतन्तदयः ॥ २७१ ॥
 केवलमग्नौ शुष्की कृत्वाऽऽतपेऽथवा भिषक् पद्यात् ।
 लोहशिलायां पिष्ट्वा तस्मिंश्छर्मिनि तदप्राप्नोति ॥ २७२ ॥
 ततः संगोप्य विधिवच्चूर्णयेत्तोहभाजने ।
 लोहेनैव तथा यत्स्यात् दृपदा सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ २७३ ॥
 कृत्वा लोहमये पात्रे मादं वा निम्नरभ्रके ।
 रमैः पटोपमं कृत्वा पचेद्दोमय वङ्गिना ॥ २७४ ॥
 पुटानि क्रमगो दद्यात् पृथगेषां विधानतः ।

त्रिफलार्द्रकभट्टाणां केशराजस्य बुद्धिमान् ॥ २७५ ॥
 मानकन्दकभल्लातवल्लीनां सूरणस्य च ।
 हस्तिकर्णपलाशस्य कुलिशस्य तथैव च ॥ २७६ ॥
 पुटे पुटे चूर्णयित्वा लोहात् पोडशिकं पलम् ।
 तन्मानं त्रिफलायाश्च पलेनाधिकमाहरेत् ॥ २७७ ॥
 अष्टभागावशेषेण रसे तस्याः पचेदुधः ।
 अष्टौ पलानि दत्त्वा च सर्पिसो लोहभाजने ॥ २७८ ॥
 ताम्ब्रे वा लोहदाव्यां तु चालयेद्विधिपूर्वकम् ।
 ततः पाकविधानज्ञः स्वच्छे चोर्ध्वं च सर्पिपि ॥ २७९ ॥
 मृदुमध्यादिभेदेन गृह्णीयात्पाकमाहतः ।
 आरभेत विधानज्ञः क्षतकौतुकमङ्गलः ॥ २८० ॥
 भ्रामरं घृतमंयुक्तं लिङ्गेद्वा रक्तिका क्रमात् ।
 वर्धमानानुपानञ्च गव्यं क्षीरोत्तमं मतम् ॥ २८१ ॥
 मध्यान्नाभेह्यजायाश्च स्निग्धवृथादिभोजनम् ।
 मद्यो वङ्गिकरश्चैव भस्मकञ्च नियच्छति ॥ २८२ ॥
 हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि विषमज्वरम् ।
 गुल्मशूलान्तिरोगांश्च निद्रालस्यमरोचकम् ॥ २८३ ॥
 शूलञ्च परिणामञ्च प्रमेहमपवाहुकम् ।
 श्वयथुं रक्तमावञ्च दुर्नामञ्च विशेषतः ॥ २८४ ॥
 वलकृहं हणञ्चैव कान्तिदं स्वरबोधनम् ।
 लाघवञ्च मनोज्ञञ्च आरोग्यं पुष्टिबर्धनम् ॥ २८५ ॥
 आयुष्यं श्लोकश्चैव यशस्तेजस्करं शुभम् ।
 सश्लोकं पुत्रजननं बलीपनितनाशनम् ॥ २८६ ॥
 दुर्नामारिरयं नाम्ना दृष्टो वारमहस्रशः ।
 निर्मूलं दह्यते शीघ्रं यथा तूलकमग्निना ॥ २८७ ॥

मौकुमार्याऽप्यकायत्वान्मद्यसेवी यदा नरः ।
 जीर्णमद्यादियुक्तानि भोजनैः सह पाययेत् ॥ २८८ ॥
 लावतित्तिरिवार्त्ताक मयूरशशकादयः ।
 चटकः कलविद्धश्च वर्त्तिश्च हरिणैणकः ॥ २८९ ॥
 श्येनः काकः वृहत्तापी वनविष्किरिकादयः ।
 पारावतमृगादीनां मांसं जाङ्गलजं शुभम् ॥ २९० ॥
 मङ्गुरो रोहितं योष्टः शकुलश्च विशेषतः ।
 मत्स्यराज इमे प्रोक्ता हितमत्स्याश्च ये नराः ॥ २९१ ॥
 प्रगस्थं वार्त्ताकफलं पटोलं वृहतीफलम् ।
 प्रलंवा भीरुवेत्तायं ताडकं तंडुलीयकम् ॥ २९२ ॥
 वास्तुकं धान्यशाकञ्च क्रमुकं चक्रवर्त्तनम् ।
 नारिकेलञ्च खर्जूरं दाडिमं लवलीफलम् ॥ २९३ ॥
 शृङ्गाटकञ्च पक्षाक्षं द्राक्षा तालफलानि च ।
 जातिकोशं लवङ्गञ्च पूगतांबूलपत्रकम् ॥ २९४ ॥
 हिताख्ये तानि वस्तूनि लोहमेतत्समग्रताम् ।
 नाग्रीयास्तकुचं कोल कर्कभुवटराणि च ।
 जम्बीर बीजपूरञ्च करमदेकतिन्तिडीः ॥ २९५ ॥
 श्वानुपानि च मांसानि क्रकुरं पुंड्रकादयः ।
 ह्रममारमटाल्यूह शङ्ख कंकबलाहकाः ॥ २९६ ॥
 माणकन्दक्रूरीराणि कतकञ्च कलिङ्गकम् ।
 कुष्माण्डञ्च कर्कोटं केसुकञ्च विशेषतः ॥ २९७ ॥
 कटुकं कालगाकञ्च कमेरु कर्कटीं तथा ।
 त्रिदलानि च सर्वाणि ककारादींश्च वर्जयेत् ॥ २९८ ॥
 लोहगजस्तथा चायं स्वयं रुद्रेण भाषितः ।
 जगतामुपकाराय दुर्नामारिरयं ध्रुवम् ॥ २९९ ॥

स्थानादपैति मेरुश्च पृथ्वीपथ्येति वा पुनः ।
 पतन्ति चन्द्रताराश्च मिथ्या नैव वदाम्यहम् ॥ ३०० ॥
 ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च क्रूरायेऽसत्यवादिनः ।
 यर्जनीया विशेषेण भियजाः गुरुनिन्दकाः ॥ ३०१ ॥
 मुनिरसपिष्टविडङ्गं मुनिरमलीढं चिरस्थितं धर्मे ।
 द्रावयति लोहदोषान् वह्निर्नवनीतपिण्डमिव ॥ ३०२ ॥
 काले मलप्रवृत्तिर्लाघवमुदरे विशुद्धिसुहारे ।
 अङ्गे चानवसादो मनःप्रसादोऽस्य परिपाके ॥ ३०३ ॥
 क्षमिरिषुधूर्णं लोढं सहितं स्वरसेन वज्रमेनस्य ।
 क्षपयत्यचिरान्नियतं लोहाजीर्णोद्भवं शूलम् ॥ ३०४ ॥
 कुर्यात्कनकबीजैश्च रेचनं किट्टगान्तये ।
 भवेद्यद्यतिसारश्च पित्वा दुग्धन्तु तं जयेत् ॥ ३०५ ॥
 गुञ्जाद्वादशकादूर्ध्वं हृदिरस्य भयप्रदा ।

इति शङ्करप्रणीतलोहः ।

—०—

अथ सामान्यविधिः ।

रक्तोत्पन्नाः गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ।
 वटप्ररोहसदृशा गुञ्जा विट्पुमसन्निभाः ॥ ३०६ ॥
 तेऽत्यर्थं दुष्टसुखञ्च गाढविट्क प्रपीडिताः ।
 स्तवन्ति महस्ता रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ ३०७ ॥
 भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितचयसम्भवैः ।
 हीनवर्णवलोक्ताहो हतौजा कलुषेन्द्रियः ॥ ३०८ ॥
 विट्श्यावं कठिनं रुचमधो वायुर्न वर्तते ॥ ३०९ ॥

—०—

वातायानुबन्धमाह ।

तनुवारुणवर्णश्च फेनिलं चासृगर्शसाम् ।
 कक्षूरुगुदशूलश्च दौर्बल्यं यदि चाधिकम् ।
 तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रुक्षणम् ॥ ३१० ॥
 शिथिलं श्वेतपीतश्च विट्स्निग्धं गुरुशीतलम् ।
 यद्यर्शसां घनं चासृक् तन्तुमत्पाण्डुपिच्छिलम् ॥ ३११ ॥
 बुदं सपिच्छंस्तिमितं गुरुस्निग्धश्च कारणम् ।
 श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ ३१२ ॥
 रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तामादौ सूत्रवेद्भिषक् ।
 दुष्ठास्त्रे निगृहीते हि शूलानाहाद्यऽसृग्गदाः ॥ ३१३ ॥
 चन्दनकिराततिक्तक धन्वयवासाः सनागराः कथिताः ।
 रक्तार्शसां प्रशमना दार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च ॥ ३१४ ॥
 नवनीततिलाभ्यासात्केसर नवनीत शर्कराभ्यासात् ।
 दधिरसमथिताभ्यामाद् गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवाहाः ॥ ३१५ ॥
 सपद्मकेशरक्षौद्रं नवनीतं नवं लिङ्गम् ।
 सिद्धा केशरसंयुक्तं रक्तार्शः स सुखो भवेत् ॥ ३१६ ॥
 नाजैः पेया पीता चुक्रिका केशरोत्पलैः सिद्धा ।
 हन्त्याशुरक्तारोगं तथा वलाष्टपणीभ्याम् ॥ ३१७ ॥
 प्रयसा शृतेन यूपैः सतीनमुद्रादकीमसूराणाम् ।
 भोजनमद्यादग्नैः शालिश्यामाकको द्रवाणाम् ॥ ३१८ ॥
 शशहरिणश्यावमांसैः कपिष्ठलैः पेयकैः सुसिद्धैश्च ।
 भोजनमप्यादग्नैः मधुरैरोषकुसुमधुरैर्वा ॥ ३१९ ॥
 ओत्स्रिका धीजकल्केन लेपो रक्तार्शसां हितः ।
 तद्वह्नीयोरजोमुहं नवनीतं प्रलेपयेत् ॥ ३२० ॥

रसप्रोत्पलमोचाङ्ग तिरीटतिनचन्दनैः ।

कागक्षीरं प्रयोक्तव्यं गुदजे शोणितात्मके ॥ ३२१ ॥

सातिविषा कुटजत्वक् फलञ्च रसाञ्जनञ्च मधुयुतानि ।

रक्तापुद्गानि दद्यात्पिपासवेत्तङ्गुलजलेन ॥ ३२२ ॥

ययानीन्द्रियं पाठा विल्वं गुण्ठी रसाञ्जनम् ।

चूर्णं शूले हितं पेयं प्रहृष्टे वातशोणिते ॥ ३२३ ॥

कुटजफलवल्ककेशरनीलोत्पलसोप्रधातकी कल्कैः ।

सिद्धं घृतं विधेयं शूले रक्तार्घसां भिषजा ॥ ३२४ ॥

इति कुटजाद्यं घृतम् ।

अवाक्पुष्पो बला दार्वी पृष्ठपर्णी त्रिकण्टकम् ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ शूङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ ३२५ ॥

कषाय एष पेयस्तु जीवन्ती कटुरोहिणी ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ ३२६ ॥

कसिष्ठं शालाब्जीपुष्पं वीरा चन्दनकुङ्कुमम् ।

कटुफलं चित्रकं सुस्तं प्रियम्बतिविषे स्थिरा ॥ ३२७ ॥

पद्मोत्पलानां किञ्चल्कं समङ्गा स निदग्धिका ।

विल्वं मोचरसं पाठा भागाः स्युः कार्पिकाः पृथक् ॥ ३२८ ॥

चतुष्पुष्पं घृतप्रत्ये कषायसुपक्वयेत् ।

त्रिशत्पलानि तु प्रस्यो विज्ञेयो द्विपलाधिकः ॥ ३२९ ॥

सुनियन्त्रकचाङ्गेय्याः प्रस्यो द्वौ स्वरसस्य च ।

सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रत्ये बिपाषयेत् ॥ ३३० ॥

एतदर्थं स्वतीसारं त्रिदोषे रुधिरप्युतौ ।

प्रवाङ्मये गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ ३३१ ॥

अन्याने चातिबहुयः शोथे शूले गुदाश्रिते ।

मूत्रप्रदे मूद्वार्मि मन्दाग्नावतर्चवर्षि ॥ ३३२ ॥

प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।

विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ ३३३ ॥

द्रव्याख्यष्टाविहावाप्य जलपोडशके कथेत् ।

निःकाथ्यप्रस्थशेषन्तु गृह्णीयात्प्रसृतं भिषक् ॥ ३३४ ॥

इत्यवाक्पुष्पीष्टम् ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ वदरी प्लक्षवेतसाः ।

एभ्यः प्रबालांस्तरुणांस्त्रिपलांश्च समाहरेत् ॥ ३३५ ॥

अवाक्पुष्पाः पलान्यष्टौ द्वौ च दार्व्यास्तथैव च ।

शालपर्ण्याः पलेद्वे तु सर्वमेतत् समावपेत् ॥ ३३६ ॥

द्वे पले कालशाकस्य सर्वमेतत्समावपेत् ।

हिद्रोणे सलिले साध्यमष्टभागावशेषितम् ॥ ३३७ ॥

घृतस्याऽर्धादं कश्च स्यात् सकपायं सुखाग्निना ।

कुचांगेर्यास्तिकाभ्याश्च स्वरसः स्नेहसम्मितः ॥ ३३८ ॥

देवदारु च सुस्तश्च चित्रकं बिल्वपेशिका ।

कट्फलं शृङ्गवेरश्च पिप्पली चन्दनं तथा ॥ ३३९ ॥

सौवेरमञ्जनं मूलं पिप्पल्याः कटुरोहिणी ।

गन्धप्रियंगुपुष्पश्च शाल्मली जीवकाङ्गया ॥ ३४० ॥

वत्सकस्य च बीजानि तथा चातिविषाभया ।

एषामक्षसमा भागाः पृथग्दत्त्वा विपाचयेत् ॥ ३४१ ॥

वातगुल्ममतीसारं शूलं ज्वरमरोचकम् ।

श्लोषामसृग्दरं सर्वं रक्तपित्तप्रवाहिकाम् ॥ ३४२ ॥

पांडुरोगं तथा कासं कृमिदोषांश्च नाशयेत् ।

अर्दिं साचिकसंयुक्तं शमयेद्दीपनं परम् ॥ ३४३ ॥

गर्भाधानश्च वन्ध्यानां करोत्यगो निवारणम् ।

चाङ्गेरोष्टतमित्युक्तं स्यात्तमशो निवारणम् ॥ ३४४ ॥

बलमासकरच्चैतद्रक्तगुल्महरं तथा ।

अर्शसां पित्तजातानां हितं तद्रक्तजेष्वपि ॥ ३४५ ॥

सन्निपातसमुत्थेषु सर्वतो भिपजः क्रमः ।

इति महाचांगेरीष्टतम् ।

कुटजत्वचो विपाच्यं पलशतमर्धं महेन्द्र सलिलेन ।

यावत्सान्द्ररसत इव्यं स्वरसस्ततो ग्राह्यः ॥ ३४६ ॥

मोचरसः ससमङ्गा फलिनी च पलांशकैस्त्रिभिस्तैश्च ।

वत्सकबीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्रदातव्यम् ॥ ३४७ ॥

पूतः कथितः सान्द्रः स्वरसो दावीप्रलेपनो ग्राह्यः ।

मात्राकालोपहिता रसक्रियैषा जयत्य सृक् स्रावम् ॥ ३४८ ॥

ह्यागचीरप्रयुक्ता पेया मण्डेन वा यथाग्निवलम् ।

जीर्णैपिधस्तु शालीन् पयसा ह्याग्नेन भुञ्जीत ॥ ३४९ ॥

रक्तगुदजातीसारं सासृगुजो निहन्त्याश ।

बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषाह्यभयमार्गगम् ॥ ३५० ॥

अष्टाष्टभागावशिष्टा कर्तव्या काथकल्पना ॥ ३५१ ॥

इति कुटजरसक्रियाः ।

कुटजत्वक् पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।

अष्टभागावशिष्टन्तु कपायमवतारयेत् ॥ ३५२ ॥

वस्त्रपूतं ततः काथ पचेद्देह त्वमागतम् ।

सुखं मोचरसं लोध्रं कपित्थफलधातकी ॥ ३५३ ॥

भस्मातकं विडङ्गानि त्रिकटुं त्रिफलां तथा ।

रसाञ्जनं चित्रकञ्च कुटजस्य पलानि च ॥ ३५४ ॥

वचामतिविपां बिल्वं प्रत्येकन्तु पलं पलम् ।

त्रिशत्पलं गुडस्याथ चूर्णीकृत्य निधापयेत् ॥ ३५५ ॥

मधुनः कुडवं दद्याद्दृतस्य कुडवं तथा ।

एपलेहः शमयति चाशौरक्तसमुद्भवम् ॥ ३५६ ॥

वातिकं पैत्तिकञ्चैव शैथिल्यं भान्निपातिकम् ।

ये च दुर्नामजारोगास्ताम् सर्वान् नाशयत्यपि ॥ ३५७ ॥

अम्लपित्तमतिसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ।

ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ॥ ३५८ ॥

अनुपानं घृतं दद्यान्मधुतक्रं जलं पयः ।

यथा सात्त्विकं निषेवेत पानाहारविचक्षणः ॥ ३५९ ॥

रोगानीकबधार्थाय कौटजो लेह उच्यते ।

इति कुटजलेहः ।

चित्रकं त्रिफलासुखं ग्रन्थिकञ्चविकानृता ।

हस्तिपिप्पल्यपामार्गं दण्डोत्पलकुठेरकाः ॥ ३६० ॥

एषां चतुष्पलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ।

भस्मातकसहस्रे द्वे क्लित्वा तत्रैव दापयेत् ॥ ३६१ ॥

तेन पादावशेषेण लोहपात्रे पचेद्भिषक् ।

तुलार्धं तीक्ष्णलोहस्य घृतस्य कुडवद्वयम् ॥ ३६२ ॥

वृषपणं त्रिफलावङ्गि सैन्धवं विडमोद्विदम् ।

भौवर्चलं विडङ्गानि पल्लिकांशानि कल्पयेत् ॥ ३६३ ॥

कुडवं हृद्ददारस्य तान्मूल्यास्तथैव च ।

सूरणस्य पत्तान्यष्टौ चूर्णे कृत्वा विनिक्षिपेत् ॥ ३६४ ॥

सिद्धगोते प्रदातव्यं मधुनः कुडवद्वयम् ।

प्रातर्भोजनकाले वा ततः खादेद्यथा बलम् ॥ ३६५ ॥

अर्शांसि ग्रहणीरोगं पाण्डुरोगमरोचकम् ।

कृमिगुल्माग्रमरीनेहं शूलद्याश्च व्यपोहति ॥ ३६६ ॥

करोति गुक्रोपचयं दन्तोपन्नितनाशनम् ।

रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ॥ २६० ॥

इति चित्रकादि भस्मातकावलीहः ।

असाक्ष्यतामेव मेपां दाहादिक्रम इष्यते ॥ २६८ ॥

—०—

भावितं रजनीचूर्णं क्षुहीचीरैः पुनः पुनः ।

बन्धनात् सुदृढं सूत्रं क्षिप्रत्वर्गां भगन्दरम् ॥ २६९ ॥

इति सूत्रबन्धनम् ।

क्षुहीकाण्डगते चीरे भस्मातकसमन्विते ।

ज्योतिष्मत् त्रिफलादन्तो कोशातक्यऽग्निसेन्धवैः ॥ २७० ॥

चूर्णैरेतैः समष्टतैः बन्धयेत् सूत्रकां दृढम् ।

सूत्रं तस्पातयेदर्गः क्षिन्नमूल इव द्रुमः ॥ २७१ ॥

इति चारसूत्रम् ।

श्वेतपुष्पः कालपुष्पो रक्तपुष्पस्तथैव च ।

पीतपुष्पो वरस्तेषु कालपुष्पः प्रकीर्तितः ॥ २७२ ॥

प्रशस्ते हनिनचत्रे क्षतमङ्गलपूर्वकम् ।

कालपुष्पकमाहृत्य दग्धाभस्मममाहरेत् ॥ २७३ ॥

घाटकन्तु समादाय जलद्रोणे विपाचयेत् ।

चतुर्भागाशिष्टे न वस्त्रपूतेन वारिणा ॥ २७४ ॥

शहचूर्णस्य कुङ्कुमं प्रक्षिप्य विपचेत्पुनः ।

शनैः शनैर्मृदावग्री यावत्सान्द्रतनुर्भवेत् ॥ २७५ ॥

स्वर्जिकायावशूके च शुण्ठीमरिचपिप्पली ।

वचातिविषा चैव हिङ्गुचित्रकयोस्तथा ॥ २७६ ॥

एषां चूर्णानि निक्षिप्य पृथगेवाऽष्टमांशकम् ।

दर्प्यासंघटितश्चैव स्थापयेदावसे घटे ॥ २७७ ॥

एषः वज्रिसमः चारः कीर्तितः काङ्गत्रपादिभिः ।

नातितीक्ष्णो न च मृदुः शिवः शीघ्रं सपिच्छलः ।
 शुक्लः श्लक्ष्णोऽत्यभिप्यन्दी चारस्याष्टाविमे गुणाः ॥ ३७८ ॥
 इति कालपुष्पादिचारः ।

करोपराशिमध्यस्थं कृत्वा कर्मसुयोजयेत् ।
 चारं चारोदकं कोष्णं न्यसेन्नन्दप्रवाहिनीम् ॥ ३७९ ॥
 तोये कालकमुष्ककस्य विपचेद्ब्रह्मादकं षड्गुणे ।
 पात्रे लोहमये दृढे विपुलधीर्द्वयांश्च नैर्घटयेत् ॥
 दग्ध्वाग्नी बहुशङ्खनाभिश्चकलान्पूतावशिष्ये क्षिपेत् ।
 यद्येरण्डजनालमेव दहतिचारो वरीवाक् शतात् ॥ ३८० ॥
 पानीयं प्रतिसारिणीयमिति च चारो द्विधा शश्यते ।
 तत्राद्योगरगुल्मकादिशमने दुर्नामकादौ परः ॥ ३८१ ॥
 पानीयं भावयित्वा तु स्थावयेच्च चतुर्गुणे ।
 द्विगुणे षड्गुणे वारि तद्वारानेकविंशतिम् ॥ ३८२ ॥
 प्रायस्त्रिभागशिष्टेऽस्मिन्नच्छपैच्छिखरक्तता ।
 सञ्जायते तदा स्थाव्यं चाराम्भो ग्राह्यमिष्यते ॥ ३८३ ॥
 तूर्थ्यं णाष्टमकेन शोडशगुणे नांशेन संव्यूहिमो ।
 मध्यः श्येष्ट इतिक्रमेण विहितः चारोदकः शङ्खकः ॥ ३८४ ॥
 इति चारः ।

हरीतकीनां प्रस्थार्धं प्रस्थमामलकस्य च ।
 कपित्थानां दशपलं तदर्धा चेन्द्रवारुणी ॥ ३८५ ॥
 विडङ्गं पिप्पलीलोध्रं मरिचं सैलवालुकम् ।
 द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्रोणे विपाचयेत् ॥ ३८६ ॥
 द्रोणशेषे रमे तस्मिन् पूतशेषे प्रदापयेत् ।
 गुडस्य द्विगतं तिष्ठेन्मासाधं घृतभाजने ॥ ३८७ ॥
 पलादूर्ध्वं भवत्येवं ततो मात्रा यथा बलम् ।

अस्याभ्यासादरिष्टस्य गुटजायान्ति सङ्ख्यम् ॥ ३८८ ॥

ग्रहणी पाण्डुरोगघ्नः प्रोहगुल्मोदरापह्नः ।

कुष्ठशोथारुचिहरो बलवर्णाग्नि वर्धनः ॥ ३८९ ॥

सिद्धोयमभयारिष्टः कामलाग्निवनाशनः ।

क्षमिग्रन्यर्वुदव्यङ्ग राजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ॥ ३९० ॥

प्राणमानमरिष्टादेः क्वाथपानसमं जगुः ।

भिषजत्वात्पलं केचित्प्रथमं मदलक्षणम् ॥ ३९१ ॥

इत्यभयारिष्टः ।

पङ्गुलं सकर्णिकं कुर्याद्यन्त्रस्य मण्डलम् ।

अद्भुटोदरविस्तीर्णं छिद्रं स्यादङ्गुलायतम् ॥ ३९२ ॥

पञ्चाङ्गुलं बालकानां वयस्थानां पङ्गुलम् ।

अर्गसान्तत् प्रयोक्तव्यं लुप्तोदन्तु भगन्दरे ॥ ३९३ ॥

यन्त्रं सप्ताङ्गुलं स्त्रीणामायतं चतुरङ्गुलम् ।

इति यन्त्रप्रमाणाद्युपदेशः ।

तत्र स्थूलान्त्रप्रतिबद्धमर्धपञ्चाङ्गुलं गुदमाहुः ।

तस्मिन् बलयस्तिस्त्रोऽध्यर्धाङ्गुलान्तरसंभूताः ॥

प्रवाहिणी विसर्जनी सम्बरणी चेति ।

रोमान्तोभ्यो यवाध्यर्धो गुदोष्टः परिकीर्तितः ॥ ३९४ ॥

प्रथमा तु गुदोष्टादङ्गुलमात्रा तत्राऽचिरकाल

जातान्यस्पदोपलिङ्गोपद्रवाणि भेषजसाध्यानि ।

मृदुमसृतावगाढान्युच्छ्रिताग्राणि चारेण ।

कर्कशस्थिरपृथु कठिनान्यग्निना ॥

तनु मूलान्युच्छ्रिताग्राणि क्लेदवन्ति च शस्त्रेण ।

चारिण्यं यज्जिना वापि वातश्चैषसमुद्भवम् ।

चारिण्यैव दृष्टे दृश्यः पितरक्तसमुद्भवम् ॥ ३८५ ॥

तत्र बलवन्तमातुरमर्शो भिरूपद्रुतमुपस्त्रिम्भं परिस्त्रिभमनित
वेदन्पहृष्टुपशान्त्यर्थं स्त्रिम्भमुष्णमल्पमन्नं द्रवप्रायं सुक्लवन्तमु
वेश्य शुची देशे साधारणे व्यम्बे काष्ठे समे फलके ग्रथ्यायां क
प्रत्वादित्यगुदमन्यस्योक्तं निषण्णपूर्वकायमुत्तानं किञ्चिदुद्धतक
टिकं वस्त्रकम्बलकोपविष्टं यन्वशाटकेन परिक्षिप्तग्रीवासकृषि
परिकर्मभिः सुपरिगृहीत मस्यन्दनशरीरं कृत्वा ततोऽस्मिन् हृत्
भ्यक्तं यन्वनृज्वणमुखं पायौ शनैः शनैः प्रवाहमानस्य प्रविषत्
प्रविष्टं चार्शो वीक्ष्यशक्ताकयोत्पीद्य पितुवस्त्रयोरन्यतरेण प्रद्वज
चारं पातयेदिति ।

—०—

पद्मपत्रसमः पिते चारलेपः प्रशस्यते ।

हेमन्ते ह्युद्धते सूर्ये वसन्तेऽस्तगते मतः ॥ ३८६ ॥

पातयित्वा च पाणिना यन्वहारं पिधाय वाच्छतमात्रमुपैवे
ततः प्रभृज्य चारय्याधिबलं चावेक्ष्य पुनः पातयेत् अथार्शं वा
जाम्बवसंकाशमभिवीक्ष्यावसन्नमीपक्षतमुपायर्त्तयेत् चारं प्रचारदे
हान्याम्बदधिमस्तुशुक्तानामन्यतमेन ततो यष्टिमधुकमिश्रितसर्गि
निर्वाप्य यन्वमपनीयोत्याप्यातुरमुष्णोदककोष्ठे ऽवगाह्यशीतानि
रक्षिः परिपिषेत् । अशीताभिरित्वेके तद्धो निर्वातमागारं प्रवेष्ट
ऽऽचारिकमादिशेत् ।

—०—

अन्तर्ग—

सुक्ष्मात्पाकाय लघुर्न मापतकसमन्वितम् ।

अथ चेत् स्थिरमूलत्वात् चारदग्धं न शीर्यते ॥ ३८७ ॥

इदमालेपनं तत्र समयमवधारयेत् ॥ ३८८ ॥

अम्बीकाश्लिकबीजानि तिलान् मधुकमेव च ।

सर्पिषा सम्भावाणि तथैवमनुलेपयेत् ॥ ४८७ ॥

तिलकल्कः समधुको घृताक्तो हृणरोपणः ।

सावशेषं पुनर्दाह्यैकैकं समुपक्रमेत् ॥ ३८८ ॥

प्राग्दक्षिणं ततो वामं ततः पृष्टाग्रजं पुनः ।

ज्वलनेनाथ सन्दग्धः पक्वजंबुफलोपमः ॥ ३८९ ॥

तत्र लेपं प्रयुञ्जीत पथ्यान्त्रचारचन्दनैः ।

दाहैवस्यादिजे लेपः गतधौतेन सर्पिषा ॥ ४०० ॥

विषदेवाह्न सुरसा कुष्ठ गुड़पुनर्नवैः ।

कल्कैः कृतैरधो नाभेर्लेपयेद्वस्ति बह्वर्णम् ॥ ४०१ ॥

क्वायां सुशोषिता गोविट् पिंडैः सौवीरपाचितैः ।

स्वेदयेदगुददेशन्तु दाहादि क्लेशशान्तये ॥ ४०२ ॥

चारमुष्णाम्बुनाऽवाप्या विबन्धे मूत्र वर्चसे ।

पिवेद्वर्णविशुद्धयं वरा क्वाथं सगुग्गुलुम् ॥ ४०३ ॥

आहारमुद्दिशेच्चापि स्वेदनं वेदनाश च ।

जौर्णशाल्यन्नमुहादि पथ्यं तिक्ताज्यसैन्धवैः ॥ ४०४ ॥

गुदेऽर्धशसु सर्वेषु तद्देशे पूर्वजन्मनि ।

जलोकाभिर्हरिश्चासृक् पुनर्जन्मनिवृत्तये ॥ ४०५ ॥

तत्र वातानुलोम्यमन्नरुचिरग्निदीप्तिलाघवं बलवर्धोत्पत्तिर्मान-

सुष्टिरिति सम्यग्दग्धलिङ्गानि । अतिदग्धं तु गुदावदरणं दाहो

ज्वरः पिपासा शोणितातिप्रवृत्तिस्तन्निमित्ताद्योपद्रवा भवन्ति ।

प्यामाब्जग्रणता कण्डूरनिलवैगुण्यमिन्द्रियाणामप्रसादो विकारस्य

वाशान्तिर्हीनदग्धे तु लक्षणमिति ।

स्वरसे तु कपित्याम्बदाङ्गिमामलकोद्भवे ।

द्विप्रस्थे सर्पिषोः प्रस्थं पचेत् चारार्त्तिदाहनुत् ॥ ४०६ ॥

इति कपित्याद्यं घृतम् ।

रूढं सर्वघ्नं वैद्यः चारं दत्वानुवासयेत् ।

पिप्पल्याद्येन तैलेन सेवेद्दीपनभेषजम् ॥ ४०७ ॥

—०—

मेढ्रादिष्वपि जायन्ते यथा खन्नाभिजानि^१ तु ।

गण्डूदास्यरूपाणि पिच्छलानि मृदुनि च ॥ ४०८ ॥

नाभिकर्णाक्षिनासासु जातेष्वर्शःसुयोजयेत् ।

लेपं तैलञ्च पूर्वीकं घ्राणजे शस्त्रकर्म त्र ॥ ४०९ ॥

—०—

प्रतिमाणेन च सैन्धवनिशायुगांगारधूमकाशीशलवणं प्रलेपानि
नासामेहनगुदजानि शमयन्तीति ।

—०—

प्रतिसारणमुद्दिष्टं^२ चूर्णं कल्कस्य तत्त्रिधा ।

कोनास्थिमात्रं पिण्डेन घर्मेण नवसप्तपट् ॥ ४१० ॥

त्रैष्टमध्यमहीनेषु कवलोक्तं च लक्षणम् ।

इति प्रतिसारणमात्रा ।

नामाजार्शःसु कुर्वीत चारेण प्रतिसारणम् ।

नामास्रोतः प्रमाणेन यन्त्रं सौवर्णं राजतम् ॥ ४११ ॥

अंगुलं कर्णकोपेतमर्धांगुलमथायतम् ।

उत्तानगायिनः चारं दद्यात् पिचु शलाकया ॥ ४१२ ॥

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्मागं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः ।
 कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलन्तु तद्दिदुः ॥ ४१३ ॥
 वातेन तोदपाकृत्य पित्तादमित रक्तता ।
 श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रन्थितत्वं सवर्णता ॥ ४१४ ॥
 चर्मकीलं दहेच्छित्वा चारेण दहनेन वा ॥ ४१५ ॥

—०—

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रये ।
 सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ ४१६ ॥
 तस्मादर्शांसि सर्वाणि बहुव्याधि कराणि च ।
 सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ ४१७ ॥
 वाङ्मायान्तु वलौ जातान्येकदोषोत्पन्नानि च ।
 अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पत्तितानि च ॥ ४१८ ॥
 बृंहजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ।
 कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसवत्सराणि च ॥ ४१९ ॥
 सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तराम्बलिम् ।
 जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यऽसाध्यानि निर्दिशेत् ॥ १२० ॥
 शेषत्वादायुपस्तानि चतुष्पाद समन्विते ।
 याप्यन्ते दीप्तिकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ १२१ ॥
 हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा ।
 शोथो हृत्पार्श्वशूलञ्च यस्या साध्योऽर्शसो हि सः ॥ १२२ ॥
 हृत्पार्श्वशूलं संमोहः कृर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः ।
 वृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥ १२३ ॥
 वृष्णारोचकशूलार्तं भतिप्रभुतगोणितम् ।
 शोयातोसत्संयुक्तं मर्शांसि चपयन्ति हि ॥ १२४ ॥

वेगावरोधः स्त्री पृष्ठयान् सुल्लटकासनम् ।

यथास्त्रं दोषलञ्चान्न मर्शसां परिवर्जयेत् ॥ १२५ ॥

इति वङ्गसेनेऽर्थो निदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ४ ॥

—०—

अथाऽजीर्णनिदानमाह ॥

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः ।

कफपित्तानिलाधिकात् तत्काम्याज्जाठरोऽनलः ॥ १ ॥

विषमो वातजान् रोगां स्तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान् ।

करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान् कफसम्भवान् ॥ २ ॥

समा समान्नेरगिता मात्रा सम्यग्विपच्यते ।

स्वल्पापि नैव मन्दान्ने विषमान्नेस्तु देहिनः ॥ ३ ॥

कदाचित् पच्यते सम्यक् कदाचि न विपच्यते ।

मात्रातिमात्राभ्यऽगिता सुखं यस्य विपच्यते ॥ ४ ॥

तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात् समान्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ५ ॥

समाग्निं रक्षयेन्नित्य मन्त्रपाने धनैर्हितैः ।

मन्दाग्निं कटुस्त्रिगैश्च कषाय वमनैर्हितैः ॥ ६ ॥

तीक्ष्णाग्निं मधुरस्त्रिगैः विरेकगुरुशीतलैः ।

स्त्रे ह्यन्त्रसवणाद्यैश्च विषमाग्निं सुपाचरेत् ॥ ७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अन्न मण्डं पिवेदुष्णं द्विगुभीवर्चलान्वितम् ।

विषमोऽपि समस्तो न भन्दो दीप्ये त पावकः ॥ ८ ॥

सुतण्डुलामां प्रसृतद्वयञ्च तदर्धमुहः कटुकत्रयञ्च ।
कुम्भुसुरसैन्धवहिङ्गुतैल मेभिश्च सर्वैः क्रियते च मण्डः ॥ ८ ॥
शुद्धोधनो वस्ति विशोधनञ्च प्राणप्रदः शोणितवर्धनञ्च ।
नरापहारी कफपित्तहन्ता वायुञ्जयेदष्टगुणो हि मण्डः ॥ १० ॥
हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा ।
सैन्धवोपहितां वापि सातत्ये नाग्निदीपनी ॥ ११ ॥
सैन्धुस्य हिङ्गु त्रिफला यवानो व्योषैर्गुडाशैर्गुडकान् प्रकुर्यात् ।
नेर्मचितैस्तृप्ति मवाप्नुवन्ना भुञ्जीतः मन्दाम्निरपि प्रभूतम् ॥ १२ ॥
गुडेन शुण्ठीमथचोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा ।
ग्रामे स्वजीर्णेपु गुदामयेपु वर्चो विवर्धेपु च नित्यमद्यात् ॥ १३ ॥
विडम भज्जातक चित्रकामृता सनामरा तुल्यगुडेन सर्पिषा ।
लिहन्ति ये मन्दहुतायना नरा भवन्ति ते वाडवतुल्यवद्भय ॥ १४ ॥
अभयानिस्व संयुक्ता भक्षितानलवृद्धिक्वत् ।
दद्गुविस्फोटकांश्चैव नाशयत्याशुदेहिनाम् ॥ १५ ॥
दहनाजमोद सैन्धव नागरमरिचाम्बतक्रेण ।
सप्ताहादग्निकरं पाण्डुरीं विनाशनं परम् ॥ १६ ॥
हरीतकी धान्यतुपोदसिद्धा सपिप्पली सैन्धवहिङ्गु युक्ता ।
सोद्गारधूमं भृशमप्यजीर्णं विजित्य सद्यो जनयेत् क्षुधां च ॥ १७ ॥
शुण्ठीचूर्णं समायुक्तं यवचारं समालिहेत् ।
सर्पिषा प्रातरुत्थाय ततो वृद्धिप्रदीपनम् ॥ १८ ॥
विजया पिप्पली शुण्ठी त्रिसमं परिकीर्तितम् ।
अग्निसन्दीपनं नृणां तृदोपमयनाशनम् ॥ १९ ॥
नागरावु सदा पथ्यं जीर्णाऽजीर्णविशंकिनाम् ॥ २० ॥
किञ्चिदामेन मन्दाम्नि रभयागुडनागरम् ।
अग्धातक्रेण भुञ्जीत युक्तमत्र पशूपणैः ॥ २१ ॥

विश्वामय्या गडूचीनां कपायेण षडूपणम् ।

पिवेच्छेऽपि मन्दाग्नौ त्वक्पत्रमुरभीकृतम् ॥ २२ ॥

कणामरोचशृङ्गीभि र्ग्रन्थिकानल चव्यकैः ।

भिषग्भिराद्यै राख्यातं चतुष्पञ्च षडूपणम् ॥ २३ ॥

उपवासादि मन्दाग्नि र्यवागूभिः पिवेद्धृतम् ।

रीचं मन्दे पिवेत् सर्पिः तैलम्वा दीपनैर्युतम् ॥ २४ ॥

चूर्णारिष्टासवैर्मन्द मभिस्त्रे हाट्टपाचरेत् ।

भिन्ने गुदोपलेपास्तु मले तैलसुरासवाः ॥ २५ ॥

उदावर्त्तं तु मन्दाग्नौ निरुद्धाः सानुवासनाः ।

व्याधियुक्तस्य मन्दाग्नौ सर्पिरेवाग्निदीपनम् ॥ २६ ॥

इत्यग्निमान्द्यम् ।

अजीर्णानाह ।

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ।

अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः ॥ २७ ॥

अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च ।

वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ २८ ॥

कफे क्षीणे यदां पित्तं स्वस्थाने भारुतानुगम् ।

तोत्रं प्रष्टव्येदग्निं तदातं भस्मकं वदेत् ॥ २९ ॥

वृद्धाहृष्टाभमूर्च्छादीन् कृत्वैवात्यग्निसम्भवान् ।

पक्वा रसादिकान् धातू आशयेदाशु जीवितम् ॥ ३० ॥

अल्पवुपानादिपमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ।

कालेऽपिसात्क्रान्त्यु चापि भुक्त मद्यं न पाकं भजते नरस्त्रिः ॥ ३१ ॥

इर्याभयक्रोधपरिचितेन लुब्धेन रुग्दैर्न्यनिपीडितेन ।

प्रद्वेषयुक्ते नच मेध्यमान मद्यं न सम्यक् परिपाकमेति ॥ ३२ ॥

ग्लानिगौरवमाटोप भ्रमो मारुतमूढता ।

विचन्वोऽति गृह्णतिर्वा सामान्याज्जीर्णं लक्षणम् ॥ ३३ ॥
तत्रामे गुरुतोत्तेदः शोथो गण्डाक्षि कूटगः ।
उद्गारय यथाशुक्तमविदम्भः प्रवर्तते ॥ ३४ ॥

—०—

विदम्भे भ्रमलक्ष्मूर्च्छा पित्ताच्च विविधा रुजः ।
उद्गारय सधूमाम्भः स्नेहोदाहृत्य जायते ॥ ३५ ॥

—०—

विष्टब्धे शूलमाधानं विविधा वातवेदनाः ।
मलवाताऽप्रवृत्तिश्च स्तंभो मोहोऽज्ञसादनम् ॥ ३६ ॥

—०—

रसशेषेऽन्नविहेयो हृदयाशुद्धिगौरवे ।
अनात्मवन्तः पशुबहुञ्जते चेऽप्रमाणतः ॥
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥ ३७ ॥
प्रायेणाहार वैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् ।
तन्मूलो रोगसङ्घात स्तद्धिनाशाद्धिनश्यति ॥ ३८ ॥

—०—

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणञ्चाप्यजीर्णतः ॥ ३९ ॥

—०—

वचा लवणतोयेन वान्तिरामे प्रशश्यते ।
धान्यं नागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः ॥ ४० ॥

आमाजीर्णं प्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ ४१ ॥

प्रन्नं विदम्भं हि नरस्य शीघ्रं शीताम्बुमा वै परिपाकमेति ।
तदास्य शैत्येन निहन्ति पित्तमाक्लेदिभावाच्च नयत्प्रधस्तात् ॥ ४२ ॥
विष्टब्धे स्नेदनं कार्यं पेयं वा क्षयापेदकम् ।

रसशेषे दिवास्वप्नं लङ्घनं वातवर्जनम् ॥ ४३ ॥

आनिव्यजठरं प्राज्ञो हिङ्गुद्रूपणसैन्धवैः ।

दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रणाशनम् ॥ ४४ ॥

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान् क्लान्तानतिसारिणः

शूलग्वासवतस्तृपापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् ।

चीणान् चीणकफाञ्छिशून्मदहतान् वृद्धानृषाजीर्णिनो ।

राक्षो जागरितान्तरान्तिरशनान् कामन्दिवास्त्रापयेत् ॥ ४५ ॥

पथ्यापिथ्यलोसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत् ।

मत्तुनोऽणोदकेनाथ मत्वा दोषगतिं निषेक् ॥ ४६ ॥

चतुर्निधमजीर्णञ्च मन्दानलमथारुचिम् ।

आधानं वातगुल्मञ्च शूलञ्चाग्नौ नियच्छति ॥ ४७ ॥

भवेदजीर्णं प्रतियस्य शङ्खास्त्रिधस्य जन्तोर्वलिनोऽन्नकाले ।

पूर्वं सशृण्वीमभयामगङ्गो भुञ्जीतसंप्राश्य हितं हिताशी ॥ ४८ ॥

विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं दह्येत हृत्कोष्ठगलञ्च यस्य ।

द्राक्षासितामाक्षिकमंप्रयुक्तां लोढाऽभयां वै नसुखं लभेत् ॥ ४९ ॥

चित्रकचविकानागर मागधिकाग्रन्यिकैर्यवागूः स्यात् ।

गुल्मानिलशूलहरो रुचिप्रदा वज्रि जननी च ॥ ५० ॥

यत्सकं मसपर्णञ्च करञ्चञ्च दुरालभाम् ।

पाठामारग्वधं मूर्ध्ना पङ्गुन्यां मदनं दहेत् ॥ ५१ ॥

गोमूर्खेणोपयुक्तस्तु घारोऽयं वज्रिदोषनः ।

शूले निरस्रकोटेऽङ्घ्रिः कोष्ठाभियूर्णितं पिबेत् ॥ ५२ ॥

हिङ्गुप्रतिविषाव्योष मौवर्धलं यचाभया ।

तोत्रातिरपि नाऽजीर्णो पिबेच्छूलक्ष्मीपघम् ।

दोषप्रस्तोऽनलो नालं पक्वं दोषोपधाशनम् ॥ ५३ ॥

प्रातराशेत्वजीर्णं तु सायमाशौ न दुष्यति ।

अजीर्णं सायमात्रे तु प्रातराशो विषो भवेत् ॥ ५४ ॥

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे

समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः ।

प्रथमकवलभोजी सर्पिषा चूर्णमेतत्

जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति ॥ ५५ ॥

इति हिंस्वष्टकम् ।

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् ।

पिप्पलीत्रिगुणा देया शृङ्गवेरं चतुर्गुणम् ॥ ५६ ॥

यवानिकापञ्चगुणा षड्गुणा च हस्तेतकी ।

चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठं चाष्टगुणं भवेत् ॥ ५७ ॥

एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रशस्यते ।

पिवेद्दध्ना मस्तुनावा सुरया कोष्णवाग्निना ॥ ५८ ॥

सोदावर्त्तमजीर्णं च म्लीहानसुदरं तथा ।

अङ्गानि यस्य शीर्यन्ति विषं वा येन भक्षितम् ॥ ५९ ॥

अर्शो हरो दीपनश्च श्लेष्मघ्नो गुल्मानाशनः ।

चूर्णं ह्यग्निमुखो नाम्ना न कश्चित् प्रतिहन्यते ॥ ६० ॥

इत्यग्निमुखचूर्णम् ।

चित्रकहृपुषा ग्रन्थिक पिप्पलीसौत्रचलाजमोदाभिः ।

धान्यशठोयवपुष्कर क्षाराजानितित्तिडोवैद्य ॥ ६१ ॥

चव्ययवानीदाङ्गिम नृद्धीकैलाशवेतसैद्य समैः ।

अग्निमुखोऽयं चूर्णः काक्षिकेन मस्तुना मिथुना ॥ ६२ ॥

पीतोऽन्यतमेन नृभिः गुल्मारुचिवज्जिष्णादशूलानि ।

दुर्नामं म्लीहोदर कफवातगदान्विनाशयति ॥ ६२ ॥

इति द्वितीयमग्निमुखचूर्णम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् ।
 सैन्धवञ्च विडञ्चैव पत्रं तालीशकेशरम् ॥ ६४ ॥
 एषां द्विपलिकान् भागान् पञ्च सौवर्चलस्य च ।
 मरिचाजजीशृङ्गोनामैकैकस्य पलं पलम् ॥ ६५ ॥
 त्वगेलि चार्द्धभागे च मासुद्रात् कुडवद्वयम् ।
 दाडिमात् कुडवच्चैकं द्वेपले चान्नवेतसात् ॥ ६६ ॥
 एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यमनृतीपमम् ।
 लवणं भास्करं नान्ना भास्करेण विनिर्मितम् ॥ ६७ ॥
 जगतोऽस्य हितार्थाय वातश्लेष्माभयापहम् ।
 तक्रमस्तुसुराशुक्त मग्नकाञ्चिकयोजितम् ॥ ६८ ॥
 जाङ्गलानूपमानेषु रसेषु विविधेषु च ।
 मन्दाग्निनाखादयतां शक्नो भवति पावकः ॥ ६९ ॥
 अर्शांसिग्रहणीदोषं शोथकुष्ठभगन्दरान् ।
 हृद्रोगमामदोषांश्च विविधानुदरे स्थितान् ॥ ७० ॥
 श्लोथानं वातरक्तञ्च श्वासकासोदरकृमीन् ।
 शूलञ्च नाशयत्येतद्दृष्टं नृपमिवापदः ॥ ७१ ॥

इति भास्करलवणम् ।

सैन्धव समूलमगधा चव्यानल नागरहरीतक्यः ।
 क्रमवृद्धमग्निवर्द्धनं करोति वङ्गवानलं चूर्णम् ॥ ७२ ॥
 इति वङ्गवानलचूर्णम् ।

हिङ्गुसैन्धव कृष्णानां कृष्णामूलककोलयोः ।
 यवान्याय हरीतक्या दाडिमाम्निकयोस्तथा ॥ ७३ ॥
 वङ्गिनागरकीयाणां भागाः सम्पर्धिताः क्रमात् ।
 हिङ्गु इादगजं नाम चूर्णं ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ ७४ ॥

अरुचिं पञ्चगुल्मांश्च हृद्रोगं संनियच्छति ।

अष्टौलाभानशूलानां हृन्मर्शांसि नाशयेत् ॥ ७५ ॥

इति हिङ्गुंहादशकं चूर्णम् ।

द्वौ चारो चित्रकं पाठा करञ्ज लवणानि च

सूक्ष्मैलापत्रकं भाङ्गी कृमिघ्नं हिङ्गु पुष्करम् ॥ ७६ ॥

शठीदार्वी विहङ्गुस्तं वचा चेन्द्रयवास्तया ।

धात्री जीरकहृत्पास्तं त्र्यम्बीचोपकुञ्चिका ॥ ७७ ॥

अम्लवेतसमस्त्रीका दाडिमं सकटु विकम् ।

भक्ष्मातकाजमोदा च यवानी सुरदारु च ॥ ७८ ॥

अभयातिविषा श्यामा हृषुपारग्वधं समम् ।

तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ॥ ७९ ॥

क्षाराणि लोहकिट्टञ्च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ।

सूक्ष्मचूर्णानि कृत्वा तु सम भागानि कारयेत् ॥ ८० ॥

मातुलुङ्गरसेनैव भावयेद्विषसत्रयम् ।

दिनत्रयञ्च शुक्तेन आर्द्रकस्त्ररसेन च ॥ ८१ ॥

अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ।

उपयुक्तं विधानेन नाशयत्यचिराद्भदम् ॥ ८२ ॥

अजीर्णक मथो गुल्मं श्लीहानं जठराणि तु ।

उदराण्यन्तर्हृदिञ्च अष्टौलां वातशोणितम् ॥ ८३ ॥

प्रणदत्युल्लणान् दीपान् नष्टमग्निञ्च दीपयेत् ।

समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं दत्त्वा च भाजने ।

दापयेदस्य चूर्णं विडालपटमात्रकम् ॥ ८४ ॥

गोदीहमात्रासत्त्वर्यं द्रवी भवति सोष्णकम् ॥ ८५ ॥

इति वृद्धदम्बिमुखं चूर्णम् ।

पथ्या नागर क्षुण्या करञ्जविल्वादिभिः सिता तुषैः ।

वङ्गवासुख इव जरयति बहुगुर्वपि भोजनम् ॥ ८५ ॥

इति समस्तं वङ्गवासुखं चूर्णम् ।

हिङ्गवान्मवेतसकटु त्रिकचित्रकैभ्यः

सच्चार पौष्करफलत्रिकदाडिमैभ्यः ।

कायं पृथग्गुडपलान्यवकुट्यचूर्णः

ज्वालामुखोयमनलस्य करोति दीप्तिम् ॥ ८६ ॥

इति ज्वालामुखं चूर्णम् ।

पिप्पल्यतिविषा हिङ्गु नागरेन्द्रयवाः वचा ।

पाठाजमोदकटुका हृषसौवर्चलाभयाः ॥ ८७ ॥

हृषद्वा दशकं चूर्णमजीर्णानाह गुल्मनुत् ।

भगन्दरश्वाशकास मूत्रक्षच्छार्शसां हितम् ॥ ८८ ॥

इति हृषद्वा दशकं चूर्णम् ।

एलात्वङ्गागपुष्पाणां मान्नोत्तर विवर्दिता ।

मरिचं पिप्पली शुण्ठी चतुष्यञ्च पङ्कजराः ॥ ८९ ॥

द्रव्याख्येतानि यावन्ती तावन्ती सितशर्करा ।

चूर्णमेतत्प्रक्तव्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ९० ॥

इति समशर्करं चूर्णम् ।

मरिचाग्निकणा पथ्या दाडिमश्च महीषधम् ।

हिङ्गु सौवर्चलोपेतं चूर्णमग्निकरं परम् ॥ ९१ ॥

इति मरिचाद्यं चूर्णम् ।

नागरं कीटजं बीजं पिप्पली हृष्टती हयम् ।

चित्रकं शारिवा पाठा चारं सवणपञ्चकम् ॥ ९२ ॥

चूर्णं पिष्ट्वा सुरा मण्ड दधिकोष्णांशु काष्ठिकैः ।

पिपे दग्निविह्वलयं कीटवातहरं परम् ॥ ९३ ॥

इति नागराद्यं चूर्णम् ।

पलिकैः पञ्चकोलैस्तु घृतं मस्तु चतुर्गुणम् ।

सत्त्वारसिद्धमग्निं कफगुल्मश्च नाशयेत् ॥ ८४ ॥

इति मस्तुपट्पलं घृतम् ।

शृङ्गवेररसप्रस्थं घृतप्रस्थञ्च तत्समम् ।

चुकुप्रस्थे न संयोज्यं तथा कान्त्रिकमस्तुनोः ॥ ८५ ॥

पिप्पली मरिचं हिङ्गु साजमोदं सजीरकम् ।

हृषुषाऽजाजि कृष्णा च सैन्धवं विड्मौद्भिदम् ॥ ८६ ॥

सौवर्चलं यवचारं चित्रको हस्तिपिप्पलो ।

चविका पिप्पलीमूलं यवानी धान्यनागरम् ॥ ८७ ॥

एतैः कर्पसमैर्भागैर्विपचेन्मृदुनाग्निना ।

कफजान् हन्ति रोगांश्च वातजान् कृमिसम्भवान् ॥ ८८ ॥

अजीर्णं जरयत्याशु नराणां बलवर्धनम् ।

गुल्मघ्नीहोदरं शूलं ज्वरं हिक्कां प्रमोलिकाम् ॥ ८९ ॥

महापट्पलमित्येतज्ज्वलनं दाववह्निवत् ।

चिप्रमेव तथा रोगा न्नाशयत्यग्निर्यथा ॥ ९० ॥

इति महापट्पलं घृतम् ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली तथा ।

भद्रातकं यवानीञ्च विड्मौद्भिदं हस्तिपिप्पलो ॥ ९०१ ॥

हिङ्गु सौवर्चलञ्चैव विड्सैन्धव चव्यकम् ।

सामुद्रश्च यवचारं चित्रको वचया सह ॥ ९०२ ॥

एतैरर्धपानैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

दशमूलरसे सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥ ९०३ ॥

मन्दाग्नीनां हितं सिद्धं ग्रहणीदोषनाशनम् ।

शिष्टधामामदौर्वल्यं ग्रीहानमपकर्षति ॥ ९०४ ॥

कासं श्वासं च यद्यापि दुर्नाम सभगन्दरम् ।

कफजान् हन्ति रोगांश्च वातजान् कृमिसम्भवान् ॥ १०५ ॥

तान् सर्वांश्चाशयत्याशु शुष्कं दावानलो यथा ॥ १०६ ॥

इति मरिचाद्यं घृतम् ।

धान्यजीरकसंसिद्धं घृतमग्निविबर्धनम् ।

रोचनं दोषशमनं कृदिदाह विनाशनम् ॥ १०७ ॥

इति धान्यजीरकघृतम् ।

धान्यकं निस्तुपं कृत्वा जले चाष्टगुणे पचेत् ।

तेन पादावशेषेण तत्कल्कैर्विपचेद् घृतम् ॥ १०८ ॥

वातरोगेषु सर्वेषु पैत्तिकेषु च शस्यते ।

कफजेषु च रोगेषु सर्पिरेतद्यथामृतम् ॥ १०९ ॥

इति धान्यघृतम् ।

द्वे जीरके चित्रकं चव्यं यवानि नागरं तथा ।

पलिकानि च तत्सर्वं पञ्चैव लवणानि च ॥ ११० ॥

आरनालादकं दत्वा घृतप्रस्यं विपाचयेत् ।

एतदग्निविह्वलार्थमर्शसां नाशनं परम् ॥ १११ ॥

इति जीरकघृतम् ।

धान्यकस्य तु श्वस्य चतुःपष्टिपलानि च ।

जलद्रोणे विपक्ताव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ११२ ॥

घृतप्रस्यं पचेत्तेन शनैर्मृदग्निना भिषक् ।

जीरकस्य पलान्यष्टौ कल्को कृत्यनिधापयेत् ॥ ११३ ॥

अग्निमन्दीपनं हृद्यं पित्तेष्कुपे निवर्धयम् ।

ग्रामशूलं गुदे शूलं शूलं वद्वणयोनिजम् ॥ ११४ ॥

ग्रामवातमुदायसं मर्शरोगांश्च नाशयेत् ।

इति धान्यकघृतम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।
 हिंगु चञ्चामोदा च पञ्चैव लवणानि च ॥ ११५ ॥
 द्वौ चारौ हपुषा चैव दद्यादर्धपलोम्भितान् ।
 दधिकाञ्जिकशक्तानि घृतमात्रा समानि च ॥ ११६ ॥
 आर्द्रकस्य रसप्रस्थे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 एतदग्निमुखं नाम मन्दाग्निनां प्रशस्यते ॥ ११७ ॥
 अर्घसा नाशनं श्रेष्ठं तथा गुल्मीदरापहम् ।
 अन्धर्वुदापचीकास कफमेदो निलानपि ॥ ११८ ॥
 नाशयेद् ग्रहणीदोषं श्वयथुं सभगन्दरम् ।
 ये च वस्तिगता रोगा ये च कुक्षि समाश्रिताः ।
 सर्वास्तान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ ११९ ॥

इति अग्निघृतम् ।

यन्मूत्रादि शुची भाण्डे मर्चौद्र गुडकाञ्जिकम् ।
 धान्यराशौ बिराजस्य शुक्तं चुक्तं तदुच्यते ॥ १२० ॥

इत्यल्पचुक्रम् ।

गुडक्षौद्रारणालानि समस्तुनि यथोत्तरम् ।
 शंसन्ति द्विगुणान् भागान् सम्यक् चुक्तस्य सिद्धये ॥ १२१ ॥

इति चुक्तसन्धानविधानम् ।

प्रस्थं तंडुलतोयत स्तूपजलावस्थत्रयं चाश्लतः ।
 प्रस्थार्धं दधितोऽश्लमूलकफलान्धौरी गुडान्धानिके ॥
 मान्यौ शोधितशृङ्गवेर सकलात् द्वे सिन्धुजाज्योः पले ।
 द्वे क्षणोपणयोर्निशापलयुगं निक्षिप्यभाण्डे दृढे ॥ १२२ ॥
 स्निग्धे धान्ययवादि राशिनिहितं चीन्वासरान् स्थापयेद् ।
 श्रीक्षौ तोयधरात्वये च चतुरो वर्षाणुपुष्पागमे ॥

पट्शीतेऽष्टदिनान्यतः परिमितं विस्त्राव्यसंवापयेत् ।
 चातुर्जातपलेन संहितमिदं शुक्रञ्च चुक्रञ्च यत् ॥ १२३ ॥
 हन्याद्वातकफामदोषजनिता नानाविधानामयान् ।
 दुर्नामानि च शूलगुल्मजठरान् हत्वाऽनलं दीपयेत् ॥ १२४ ॥
 इति वृहच्चुक्रसन्धानविधानम् ।

वङ्गेहिंपञ्चमूलस्य काथे पलशतद्वये ।
 भस्मताया रसस्यैके पूतेऽस्मिन्नभयादृके ॥ १२५ ॥
 एचेद् गुड़तुलां ताव द्यावदाऽऽपाकलक्षणम् ।
 अन्यद्युस्तत्र मधुनः सुशीते कुड़वहयम् ॥ १२६ ॥
 प्रलिपेच्चिसुगन्धस्य त्रिकटोश्च पलं पलम् ।
 प्रत्येकं स्याद्यथचाराच्छुक्तिस्तस्मिन् रसायने ॥ १२७ ॥
 उत्तमं कथितं पुंसामग्निभ्यामग्निहृदये ।
 जीर्येत्यपि हि काष्ठानि कासश्वासं क्षयं क्षमीन् ॥ १२८ ॥
 गुल्मोदरार्शः कुष्ठानि सान्त्वहन्ति निहन्ति च ।
 योगशतैरप्यऽजितां स्युहाज्जयति पीनसान् ॥ १२९ ॥

—०—

चित्रकहरीतक्यभृतेत्यत्र चित्रकादीनां त्रयाणामभ्यः प्रत्ये
 पञ्चाशत्पलं दत्वा विस्त्राव्य सार्धद्वादशवासराः स्थापयितव्यम् ।
 इति चित्रकगुड़ः ।

द्वे पाठे दशमूलार्कं कट्फलान्तिविषात्रिहत् ।
 भागैर्दशपलान् दत्वा जलद्रोणे विषाचयेत् ॥ १३० ॥
 पादशेषे गुड़तुलां दत्वा पक्वे गुड़े ततः ।
 चूर्णितां पञ्चपलिकां चय्यव्योषहरीतकीम् ॥ १३१ ॥
 चित्रकं मयबध्दारं द्विगुणं तत्र दापयेत् ।
 दर्व्याः प्रलेपनं वापि ततस्तमवतारयेत् ॥ १३२ ॥

हिंम्वस्त्रवेतमं चव्यं विवृतस्तु पले तथा ।

क्षिप्ता चैकीकृतं सर्वं स्थापयेद्वाजने शुभे ॥ १३३ ॥

वतः चारगुडं खादेदजीर्णरुचिनाशनम् ।

प्रीहार्शः शोथपांडुत्व मेहकुष्ठगरापहम् ॥ १३४ ॥

इति चारगुडः ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफला त्रिष्टम्भूलं शतावरी ।

दन्तीचित्रकमास्फोता रास्त्रा पाठा सुधा शठी ॥ १३५ ॥

पथ्या दशपलान् भागान् दग्ध्वान्मसिसमाहरेत् ।

विसप्तकृत्वस्तद्वस्त्र जलद्रोणे च गालयेत् ॥ १३६ ॥

तद्द्रोणं साधयेदग्नी चतुर्भागावशेषितम् ।

ततो गुडतुलां दत्त्वा साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ १३७ ॥

सिद्धं गुडन्तु विघ्नाय चूर्णानीमानि दापयेत् ।

वृश्चिकालीं द्विकाकोल्यौ यवचारं समावपेत् ॥ १३८ ॥

एतत्पञ्चपलान् भागान् पृथक्पञ्चपलानि च ।

हरीतकीं त्रिकटुकं सर्जिकां चित्रकं वचाम् ॥ १३९ ॥

हिंम्वस्त्रवेतसाभ्याश्च द्वे पले तत्र दापयेत् ।

अक्षप्रमाणां गुटिकां कृत्वा खादेद्यथाबलम् ॥ १४० ॥

अजीर्णं जरयत्येष जीर्णं सन्दीपयत्यपि ।

भुक्तं भुक्तश्च जीर्येत पाण्डुत्वमपकर्षति ॥ १४१ ॥

प्रीहार्शांसि श्वयथुश्च श्लेष्मकासमरोचकम् ।

मन्दान्निश्च विषान्निश्च कफं कण्ठोरसस्तथा ॥ १४२ ॥

कुष्ठानि च प्रमेहान्य गुल्मं चाश व्यपोहति ।

ख्यातः चारगुडोद्धोष रोगग्रस्ते प्रयोजयेत् ॥ १४३ ॥

इति चारगुडः ।

इत्यजीर्णाग्निमात्रनिदानचिकित्साधिकारः ।

अथ निदानमाह ।

खल्य' यदा दोषविवहमामं लीनं न तेजःपथमावृणोति ।
 भवत्यजोर्णंऽपि तदा बुभुक्षा सामन्दबुद्धि' विषवन्निहन्ति ॥ १४॥
 प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्ण' जायते नृणाम् ।
 तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशादिनश्यति ॥ १४५ ॥
 अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धञ्च यदीरितम् ।
 विसूच्यलसकी तस्माद्वेष्टापि विलम्बिका ॥ १४६ ॥
 सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् सन्तिष्ठतेऽनिद्राः ।
 यस्याजीर्णंन सावैद्यैर्विसूचीति निगद्यते ॥ १४७ ॥
 न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः ।
 मूठास्तामजितात्मानो लभन्तेऽग्निलोलुपाः ॥ १४८ ॥
 मूर्च्छातिसारी वमथुः पिपासा शूल' भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहा ।
 वैवर्ण्यकम्पौ हृदये कृजय भवन्ति तस्य शिरस्य भेदः ॥ १४९ ॥
 कुचिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत प्रकूजति ।
 निरुद्धो मारुतयैव कुक्षानुपरि धावति ॥ १५० ॥
 वायुः, कम्पभ्रमनाह शूल्यादीन् प्रकरोति वा ।
 पित्तं ज्वरातिसारी च दाहादि खेदनानि च ॥ १५१ ॥
 श्लेष्माङ्गगुरुताण्डि' वाग्भ्रष्टीवनानि च ॥ १५२ ॥
 वातवर्च्चं निरोधय यस्यात्यर्थं भवेदनु ।
 तम्यालमकमाचष्टे दृष्टोद्गारी च यस्य वै ॥ १५३ ॥
 नाधो गच्छति यो नोर्ध्वमाहारी न विपच्यते ।
 तेन सोऽलमको नाग्रा शीघ्रं देहविनाशकः ॥ १५४ ॥
 दोषास्त्वनमजे प्रोक्ताश्चर्यतीसारवर्जिताः ।
 कारकास्तीव्रगूलादेः स्रोतसः सप्तिरोधकाः ॥ १५५ ॥

तिर्थ्यमातास्तनुस्तब्धाः स्तम्भवत्स्तम्भयन्ति च ।

सदण्डालसकस्याज्यः शीघ्रं देशविनाशकृत् ॥ १५६ ॥

दुष्टञ्च भुक्तं कफमारुताभ्यां

प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य ।

विलम्बिकान्तां मृशदुश्चिकित्स्या-

माचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥ १५७ ॥

यत्रस्थमामं विरुजं तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः ।

दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥ १५६ ॥

यः स्यादन्तौष्टनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यन्तरजातनेत्रः ।

चामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥ १५७ ॥

उद्गारशङ्किरुत्साहो वेगोक्षर्गो यथोचितः ।

लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ १५८ ॥

निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता ।

अमी उपद्रवा घोरा विपूच्यां पञ्चदारुणाः ॥ १५९ ॥

विस्त्र्यां सर्वरूपाणि सन्नियम्य चिकित्सकः ।

यमनं कारयेत् क्षिप्रं मुष्णेन लवणाम्बुना ॥ १६० ॥

यावत्सन्तिष्ठते दुष्टो नरस्याऽरन्नसो हृदि !

तावन्मर्माणि भिद्यन्ते विषं पोतवतो यथा ॥ १६१ ॥

विपूच्यामतिवृद्धायां पाण्यत्रोर्दाहः प्रशस्यते ।

तद्दिने लङ्घनं कार्यं विरक्तवदुपाचरेत् ॥ १६२ ॥

जातिफलञ्च चुक्रञ्च मिष्टतैलेन पाचयेत् ।

तेन मर्दनमात्रेण खलीशूलं निवारयेत् ॥ १६३ ॥

कुष्टसेन्धवयोः कल्कं चुक्रतैलसमन्वितम् ।

विपूच्यां मर्दनं कोष्णं खलीशूलनियारणम् ॥ १६४ ॥

चुक्राभावेऽत्र काष्ठीकन्देयमित्रि ।

अर्कपत्ररसप्रस्थं प्रस्थं धतूरेकस्य च ।

श्वेतसुदीरसप्रस्थं प्रस्थं मोभाञ्जनार्द्रकात् ॥ १६५ ॥

कुटसैन्धवयोः कल्कं पले द्वे द्वे प्रमाणातः ।

एकीकृत्य समस्तं तद्द्विधं चान्नकाञ्जिकम् ॥ १६६ ॥

तैलप्रस्थं समावाप्य पचेन्मृदग्निना शनैः ।

खल्लीं निवारयत्येतद्दिपूचीरोगसम्भवाम् ॥ १६७ ॥

पक्षाघातामवातांश्च गृध्रसी खञ्जपद्भुताम् ।

इत्यर्करसादितैलम् ।

करञ्जनिम्बशिखरी गुडूच्यर्जुनवत्सकैः ।

पीतः कषायो वमनाद् घोरा हन्ति विपूचिकाम् ॥ १६८ ॥

हन्ति दन्त्यग्निकल्कस्तु पिप्पलीकल्कसयुतः ।

पीतः कोण्येन तोयेन क्षिप्रं हन्याद्विपूचिकाम् ॥ १६९ ॥

व्योषं करंजस्य फलं हरिद्रे मूलं समावाप्य च मातुलुङ्गा ।

छाया विगुप्फा वटिका तु कार्या हन्याद्विपूचीं नयनाञ्जनेन ॥ १७० ॥

इत्यञ्जनम् ।

गुडपुष्पमारशिखरी तडुल गिरिकर्णिका हरिद्रे द्वे ।

अञ्जनगुटिका विलयति विपूचिका त्रिकटुक मनाया ॥ १७१ ॥

इति द्वितीयमञ्जनम् ।

त्वक्पदराक्षाऽगुग्गियु कुट्टैरत्यम्लपिष्टैः सवचा शताह्नैः ।

उद्धर्त्तनं खल्लिविपूचिकान्नं तैल विषक्कञ्च तदर्थं कारि ॥ १७२ ॥

पिपामायामयोत्कृष्टे सप्तगस्यास्तु शस्यते ।

जातोफलस्य वा शीतं शृतं भद्रवनस्य च ॥ १७३ ॥

मरुगाऽऽनदमुदरं मस्रपिष्टैः प्रलेपयेत् ।

दारुहेमवती कुट्टगताद्या विगुप्तसैन्धवैः ॥ १७४ ॥

तक्रो ण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सत्चारमार्त्तिं जठरस्य हन्यात् ।
 स्वेदो घटैर्वा बहुवाप्यपूर्णे रुष्णैस्त्वथान्यैरपि पाणितापैः ॥ १७५ ॥
 विलंबिकाऽलसकयो रदमेव क्रिया क्रमः ॥ १७६ ॥
 उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ।
 लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ १७७ ॥
 सुरसादिकरञ्जादि सहकाररसं तथा ।
 हिंगुसौयर्चलं चुक्रं मधुमद्यानि यानि च ॥ १७८ ॥
 एतेषामूर्ध्वभागित्वात् सम्यज्जिर्णेऽपि देहिनाम् ।
 अजीर्णतामिवोद्गारो गन्धतो ह्युपलक्ष्यते ॥ १७९ ॥

इति वङ्गसेनेऽग्निमान्द्याजीर्णविषूचिकाऽलसक

विलम्बिकानिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ५ ॥

—०—

अथ भस्मकनिदानमाह ।

कफे क्षीणे यदा पित्तं स्वस्थाने मारुतानुगम् ।
 तोत्रं प्रवर्द्धयेदग्निं तदा तं भस्मकं वदेत् ॥ १ ॥
 लङ्घदाह श्वास मूर्च्छादीन् कृत्वैवात्यग्निसम्भवान् ।
 पक्वान्नमाशुधात्वादीन् संचयन्नाशयेत्तनुम् ।
 क्षणाद्भुक्तं भवेद्भस्म सरीगो भस्मकः स्मृतः ॥ २ ॥
 तं भस्मकं गुरुस्निग्ध सान्द्रमण्डहिमस्थिरैः ।
 अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं पित्तघ्नैश्च विरेचनैः ॥ ३ ॥
 अत्युषिताग्निगान्धै माहिषदधिदुग्धतक्रसर्पीषि ।

संसेवेत यवागूं समधुच्छिष्टां ससपिष्काम् ॥ ४ ॥
 असक्तपित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ।
 श्यामाविह्वदिपक्वं वा पयो दद्याद्विरेचनम् ॥ ५ ॥
 यत्किञ्चिन्मधुरं सेव्यं श्लेष्मलं गुरुभोजनम् ।
 सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ ६ ॥
 कफे पूर्वं जिते पित्ते मारुते वाऽऽमलः समः ।
 सम धातौ पचत्यन्नं पुष्ट्यायुर्वलयर्धनम् ॥ ७ ॥
 मुहुर्मुहुर्जीर्णोऽपि भोज्यान्नान्युपहारयेत् ।
 निरिन्धनो रसं लब्ध्वा यथैवान्नेन पाचयेत् ॥ ८ ॥
 कोलास्य मज्जा कल्कस्तु पीतो वाप्युदकेन वै ।
 अचिराद्विनिहत्येष प्रयोगो भस्मकं नृणाम् ॥ ९ ॥
 नारीक्षीरेण संयुक्तां पिवेदौदुम्बरीं त्वचम् ।
 ताभ्यां वा पायसं सिद्धं पिवेदत्यग्निशान्तये ॥ १० ॥
 सिततण्डुलसितकमलं छागक्षीरेण पायसं सिद्धम् ।
 भुक्त्वा घृतेन पुरुषो द्वादशदिवसान् बुभुक्षितो न भवेत् ॥ ११ ॥
 विदारी स्वरसं क्षीरे पचेदष्टगुणं घृतम् ।
 माद्विषं जीवनीयेन कल्के मात्यग्निनाशनम् ॥ १२ ॥
 इति वङ्गसेने भस्मकनिदानचिकित्साधिकाः
 समाप्तः ॥ ६ ॥

—०—

अथ कृमिनिदानमाह ।

क्षमयन्तु द्विधाः प्रोक्ता वाद्यभ्यन्तरभेदतः ।
 वह्निमेन कप्ताऽऽमृग्विट् जन्मभेदाद्यतुर्विधाः ॥ १ ॥

नामतो विंशतिविधा वाद्यास्तत्र मलोद्भवाः ।
 तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराग्रयाः ॥ २ ॥
 बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूकालिरयाश्च नामतः ।
 द्विधा ते कोठपिटिकाः कण्डूगण्डान् प्रकुर्वते ॥ ३ ॥
 अजीर्णभोजी मधुराम्बुसेवी द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता ।
 व्यायामवर्जो च दिवाशयी च विरुद्धभोजी लभते कृमीस्तु ॥ ४ ॥
 मापपिष्टास्त्रलवणगुडशकैः पुरीषजाः ।
 मांसमापगुडघोर दधि शुक्लैः कफोद्भवाः ॥ ५ ॥
 विरुद्धानीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ॥ ६ ॥

—०—

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः कर्दनं भ्रमः ।
 भक्तद्वेषातिसारश्च सञ्ज्ञातकृमिलक्षणम् ॥ ७ ॥

—०—

कफादामागये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ।
 पृथुवर्धनिभाः केचित् केचित् गण्डूपदोपमाः ॥ ८ ॥
 रुद्धधान्यादुराकारा स्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ।
 श्वेतास्ताम्रावभामाश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥ ९ ॥
 घन्यादा उदरायेष्टा हृदयादामहागुहाः ।
 चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥ १० ॥
 हृत्पासमास्यस्त्रवण मयिपाकमरोचकम् ।
 कटिशूलज्वरानाह कार्ग्यग्रययुपीनसान् ॥ ११ ॥

—०—

रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः ।
 अपादाहतताम्राश्च सीक्ष्मास्तेचिददर्शनाः ॥ १२ ॥

केशादालीमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः ।
 पङ्केते कुट्टकर्माणः सहस्रौरसमातरः ॥ १३ ॥
 पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधो विसर्पिणः ।
 संहृदयाद्य भवेयुथ ते यक्षमाशयोन्मुखाः ॥ १४ ॥
 तदास्योद्गारनिःश्वासविङ्गन्धानुविधायिनः ।
 पृथुवृततनुस्थूलाः श्यावाः पीताः सिताऽसिताः ॥ १५ ॥
 ते पञ्च नामभिः ख्याताः ककेरुकमकेरुकाः ।
 सौसुरादाः सशूलाख्या लेलिहा जनयन्ति च ॥ १६ ॥
 विद्धे दशूलविष्टम्भ कार्श्यपारुथपाण्डुताः ।
 रोमहर्षाग्निसदन गुदकण्डूविमार्गगाः ॥ १७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

तेषामन्यतमं वेद्यो जिघांसुः क्षिब्धमातुरम् ।
 सुरसादि विषक्लेन सर्पिषा वाऽन्त्रमादियेत् ॥ १८ ॥
 विरेचयेत्तीक्ष्णतमैः योगैरास्यापयेद्दिं च ॥ १९ ॥
 विङ्गङ्ग तण्डुलव्योपशियूभिर्मरिचेन च ।
 तक्रमिहा यवागूः स्यात् क्षुमिघ्नी समुवर्चिका ॥ २० ॥
 विङ्गव्योपमं युक्त मन्त्रमण्डं पिवेन्नरः ।
 दीपनं क्षुमिनागाय वङ्गिञ्च कुरुते भृशम् ॥ २१ ॥
 सघ्नोद्वः क्षुमिजिह्विः पीतः क्षुमिहरशिगुजय क्लृप्तः ।
 पीतं मूत्रमजायाः ग्रन्थिकचूर्णान्वितं वापि ॥ २२ ॥
 पुष्कराद्वाभ्यनिर्यामं क्षुमिघ्नाह्नेन संयुतम् ।
 निघ्नाह्नेभ्यस्ततः प्रातः सर्वक्षुमिनिवारणम् ॥ २३ ॥

पारशीय यवानी पीता पर्युषिता वारिणा प्रातः ।

गुडपूर्वा कृमिजालं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥ २३ ॥

पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।

किंशुकस्य रसं वापि घत्तूरस्यापि वा रसम् ॥ २४ ॥

ता सुपर्णीफलदारुशिग्रू कायः सकृष्णाकृमिशत्रु कल्कः ।

गन्धयेनापि चिरप्रवृत्तान् कृमीन्निहन्ति कृमिजांश्च रोगान् ॥ २५ ॥

आखुपर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन तु पूषिकाः ।

जग्ध्वासौवीरकं चानु पिबेत् कृमिहरं परम् ॥ २६ ॥

पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम् ।

पिबेत्तद्बीजकल्कं वा तक्तेण कृमिनाशनः ॥ २७ ॥

लिङ्गाक्षौद्रेण वैडङ्गं चूर्णं कृमिविनाशनः ।

सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोपयोजयेत् ॥ २८ ॥

प्रत्यहं कटुकं तिक्तं भोजनञ्च दितं भवेत् ।

कृमीणां नाशनं रुच्य मग्निसन्दीपनं परम् ॥ २९ ॥

—०—

फलत्रयं वचादन्तो त्रिवृत्कम्पिप्तकैः समैः ।

सिद्धं सर्पिर्गवांमूत्रे पीतं कृमिविनाशनम् ॥ ३० ॥

इति त्रिफलाद्यं दृतम् ।

त्रिफलायाः त्रयः प्रस्थाः विडङ्गं प्रस्थमेव च ।

दीप्यञ्च दशमूलञ्च लाभतः समुपाहरेत् ॥ ३१ ॥

पादशेषे जलद्रोणे पूते सर्पिर्विपाचयेत् ।

प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्परं कृमिनाशनम् ॥ ३२ ॥

विडङ्गदृतमित्येतस्त्रेह्यं शर्करया सह ।

सर्वकृमीन् प्रणदति वज्रं सुकृमिवाधुरान् ॥ ३३ ॥

इति विडङ्गाद्यं दृतम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं सैन्धवं कृष्णजीरकम् ।
 चञ्चचित्रकतालोसपत्रकं नागकेशरम् ॥ ३४ ॥
 एषां द्विपलिकान् भागान् पञ्चसौवर्चलस्य च ।
 मरिचाजानिशुष्ठीनामेकैकस्थ पलं पलम् ॥ ३५ ॥
 दाडिमात् कुडवच्चैव द्वे पले चान्नवेतसात् ।
 सर्वमेकत्र संघृत्य योजयेत्कुशलो भिषक् ॥ ३६ ॥
 पिप्पल्यायमिदं ख्यातं नष्टवह्निः प्रदीपनम् ।
 अर्गांसि ग्रहणीगुल्म मुदरं सभगन्दरम् ॥ ३७ ॥
 कृमिकण्डूऽरुचिहरं सुरयोष्णीदकेन वा ।
 नातः परतरं किञ्चिदामशीथेनिपूदनम् ॥ ३८ ॥

इति पिप्पल्यायं चूर्णम् ।

पलद्वयापले द्वे तु कृष्णायसपलद्वयम् ।
 पथ्यामृताक्ष धात्रीणां पृथगेकैकशः पलम् ॥ ३९ ॥
 पृतीकचञ्चव्योपाग्नि कारवीकृमिनाशनैः ।
 चूर्णितैरर्धपलिकैस्त्रिलतैलं पलद्वयम् ॥ ४० ॥
 त्रिफलायारसप्रखे खड्गं प्रस्थयुगं पचेत् ।
 दार्वीप्रलेपात्पाकश्चातुजातकसंयुतम् ॥ ४१ ॥
 सावित्रवटकाक्षते यथाग्निबलभक्षिताः ।
 कृमिकोष्टाग्निदोर्वन्य शायगुल्मोदरव्रणान् ॥ ४२ ॥
 कामलापाण्डुरोगार्गा भगन्दरगदज्वरान् ।
 निहन्त्युर्वां तु मन्त्रिहाः ययस्त्रैव्यवनप्रदाः ॥ ४३ ॥
 वातप्रमेहगमनाः चक्षुष्याः पुष्टिवर्धनाः ।
 भयस्त्यतिस्त्रिभुजां धातातपनिधेविनाम् ॥ ४४ ॥

इति सावित्रवटकः ।

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धतूरपत्रजः ।

ताम्बूलपत्रजो वापि लेपनं यूकनाशनम् ॥ ४५ ॥

ककुभङ्गुमं विडङ्गं लाङ्गली भस्मातकं तथोशीरम् ।

श्रीवेष्टकं सर्जरसं मदमञ्जैवाष्टमं दद्यात् ॥ ४६ ॥

एषसुगन्धो धूपो मशकानां नाशनः श्रेष्ठः ।

शय्यासुमत्कुणानां शिरसि वस्त्रे च यूकानाम् ॥ ४७ ॥

इति मशकहरो धूपः ।

भण्डीपिष्टाऽऽरनालेन गोमूत्रेणाभिपिष्टकाः ।

कुनटीकटुतैलेन योगायूकापहास्त्रयः ॥ ४८ ॥

—०—

लाक्षाभस्मातकश्च श्रीवासः श्वेताऽपररजिता ।

अर्जुनस्य फलं पुष्पं विडङ्गं सर्जगुग्गुलुः ॥ ४९ ॥

एभिः कृतेन धूपेन शाम्यन्ति नियतं गृहे ।

भुजङ्गमूपकादद्या घृणामशकमत्कुणा ॥ ५० ॥

इति गृहे भुजङ्गादिनाशको धूपः ।

—०—

सविडङ्गं गन्धशिलया सुसिद्धं सुरभीजलेन कटुतैलम् ।

निखिला नयति विनाशं लिप्यासहिताय वै यूकाः ॥ ५१ ॥

इति विडङ्गतैलम् ।

चीराणि मांसानि घृतानि चैव दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति ।

समापतोयान्मधुरान्नमांश्च क्षमीन् जिघांसुः परिवर्जयेत्तु ॥ ५२ ॥

इति वङ्गसेने कृमीनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ७ ॥

—०—

अथ पाण्डुरोगनिदानमाह ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः ।

चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणात् सृदः ॥ १ ॥

पिपासारुचिद्वक्त्रासैरुदाहोऽङ्गगौरवम् ।

रक्तलोचनता तस्य पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

व्यवायमग्नं लवणानि मद्यं सृदं दिवास्वप्नमतीवतीक्ष्णम् ।

निषेव्यमाणस्य समेत्य रक्तं कुर्वन्ति दोषास्त्वचि पाण्डुताञ्च ॥ ३ ॥

त्वक्स्फोटनिष्ठोवनगात्रसादो सङ्गच्छन्नेष्वक्षकूटशोथाः ।

विण्मूत्रपीतत्वं मथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरस्स्तराणि ॥ ४ ॥

त्वङ्मूत्र नयनादीनां रुच्यक्षणाक्षणाभता ।

वातपाण्डुमये कम्प तोदानाहभ्रमादयः ॥ ५ ॥

पीतमूत्रयक्षत्रेचो दाहवृण्णाज्वरान्वितः ।

भिष्वविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्डुमयी नरः ॥ ६ ॥

कफप्रमेकश्चययु तन्द्रालस्यातिगौरवैः ।

पाण्डुरोगी कफाच्छुक्ल त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ७ ॥

सर्वाश्रसेविनः सर्वं दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम् ।

चिदोपलिङ्गं कुर्वन्ति पाण्डुरोगं सृदुःसहम् ॥ ८ ॥

ज्वरारोचकद्वक्त्रास छर्दिदृष्ट्याक्लमान्वितः ।

पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैः स्यात्त्रयः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥ ९ ॥

सृत्तिक्वादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो भलः ।

कपाया मारुतं पित्तं मूपरा मधुरा कफम् ॥ १० ॥

कोपयेन्मृद्रसाग्दीप्य रीष्याद्रक्तञ्च रुचयेत् ।

पूरयत्यविपक्षेय स्रोतांसि निरुणहि च ॥ ११ ॥

इन्द्रियाणां यमं हत्वा तेषो धीर्यजिमी तथा ।

पांडुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥ १२ ॥

शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः ।

कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम् ॥ १३ ॥

पांडुरोगश्चिरोत्पन्नः खरोभृतो न सिद्धति ।

कासप्रकर्षाञ्छूनांगो यो वा पीतानि पश्यति ॥ १४ ॥

बहुलं विट्सुहरितं सकफं योऽतिसार्यते ।

दीनः स्वेदादिदिग्धाहः हृदिमूर्च्छाद्वडन्वितः ॥ १५ ॥

सनास्यऽसृग्चयाद्यस्तु पाण्डुः श्वेतत्वमाप्नुयात् ।

पाण्डुदन्तनखो यस्तु पाण्डुनेत्रश्च यो नरः ॥

पाण्डुसंघातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति ॥ १६ ॥

अन्तेषु शूनं परिहीनमध्यं स्नानं तथान्तेषु च मध्यशूनम् ।

गुदे च श्रेफस्यथ सुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यतमसंज्ञकल्पम् ॥ १७ ॥

विवर्जयेत्पाण्डु किनं यशोर्थी तथातिसारज्वरपीडितश्च ॥ १८ ॥

साध्यश्च पाण्डुः समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधय शुद्धम् ।

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

सम्पादयेन् चौद्रुतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णमयैः प्रयोमैः ।

पिबेदृतं वा रजनीविषकं यक्षैफलं तिक्तकमेव चापि ॥ १९ ॥

खिरचनद्रव्यकृतं पिबेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान् घृतेन ॥ २० ॥

विधिः स्निग्धोऽय वातोत्थे तिक्तः शीतस्तु पैत्तिके ।

शैषिके कटुरूचणाः कार्यी मिश्रस्तु मिश्रके ॥ २१ ॥

द्विपञ्चमूलीकथितं सविखं कफात्मके पांडुगदे पिबेत्तत् ।

ज्वरेऽतिसारे श्वयथौ ग्रहण्यां ज्ञासेऽरुचौ कण्ठद्वदामयेषु ॥ २२ ॥

अयस्तिलद्रूपणकोलभागैः सर्वैः समं माचिकघातुचूर्णम् ।

तैर्मोदकः क्षौद्रयुतः सुभुक्तः पाण्डुमयेदूरगतेऽपि शस्तम् ॥ २१ ॥
इत्यय आदिमोदकम् ।

दहनाजमोदसैन्धव नागरमरिचास्तत्रोण ।

सप्ताहादग्निबलं पाण्डुशो विमर्दनं परम् ॥ २४ ॥

सप्तरात्रं गवां मूत्रे भावितं चाप्ययोरजः ।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा वा पिवेन्नरः ॥ २५ ॥

गोमूत्रसिद्धमण्डूरचूर्णं सगुडमभ्यसेत् ।

पाण्डुरोगं जयेत्सर्वं पक्तिशूलञ्च दारुणम् ॥ २६ ॥

अयोमलन्तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रसाधितम् ।

मधुसर्पियुतं स्त्रीद्वया पाण्डुरोगी सुखी भवेत् ॥ २७ ॥

दीपनं चाग्निजननं शोथपाण्डुमयापहम् ।

कल्याणकाक्षयं दद्याद्भक्षयेद्वा गुडं नरः ॥ २८ ॥

मृत्तिकां भावितां दद्यात्तुल्यां निम्बरसेनया ।

वार्त्ताक्वा कटुरोहिण्या गोमूत्रेण च भावयेत् ॥ २९ ॥

मृद्वेपकरणार्थन्तु भिषक् पथान्नियोजयेत् ।

—•—

मूर्वातिक्तानिशायास कृष्णाचन्दनपपटैः ।

त्रायन्ती वत्सभूनिष्य पटोलाभ्युददारुभिः ॥ ३० ॥

अचमात्रैर्हृतप्रस्यं सिद्धं क्षीरचतुर्गुणे ।

पाण्डुताज्वरविस्फोटशोफाशो रक्तपित्तनुत् ॥ ३१ ॥

इति मूर्वाद्यष्टमम् ।

कटुकां रोहिणीं सुस्तां हरिद्रां वत्सकत्वचम् ।

पटोलचन्दनं मूर्वा त्रायमाणां दुरालभाम् ॥ ३२ ॥

सपिप्पलीं कर्कटिकां पूतिकां देवदारु च ।

पिप्पलाचमात्रं तैः सर्पिः प्रस्यं क्षीरादुक्ते पचेत् ॥ ३३ ॥

रक्तपित्तं ज्वरं दाहं श्वयथुं सभगन्दरम् ।

अर्शोऽसृग्गन्दरश्चैव हन्याद्विस्फोटकांस्तथा ॥ ३४ ॥

इति कटुकाद्यं घृतम् ।

व्योषं विल्वं द्विरजन्धौ त्रिफला द्विपुनर्मवा ।

सुस्ता चायोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च ॥ ३५ ॥

हृदिकाली च भार्गी च सचीरैस्तैः शृतं घृतम् ।

सर्वान् प्रशमयन्त्याश्च विकारान् मृत्तिकोद्भवान् ॥ ३६ ॥

इति व्योषाद्यं घृतम् ।

देवदु त्रिफला व्योष हृदिकाली हयोरजः ।

हरिद्रे चित्रकं भार्गी पाठे हे च पुनर्मवा ॥ ३७ ॥

विडङ्गं पिप्पली लोध्रं पचेन्मूत्र चतुर्गुणे ।

घृतं तत्पाण्डु हृद्रोग ग्रहणीगुददोषनुत् ॥ ३८ ॥

इति देवदार्याद्यं घृतम् ।

रजनीकाथकल्काभ्यां घृतं पाण्डु मयापहम् ।

त्रिफलाकल्कगोमूत्र सिद्धं वा माहिषं घृतम् ॥ ३९ ॥

इति रजनी त्रिफलाद्यं घृतम् ।

दन्याश्चतुष्पलरसे पिष्टैर्दन्तीशलाटुभिः ।

तद्वत्स्थो घृतादगुल्म श्लेष्मच्छर्द्दोगपाण्डुनुत् ॥ ४० ॥

—०—

दन्ती कुडवोऽत्राष्टपलिकः षोडशभिः सलिलकुडवैः निःकृष्य
पादावशेषः कृतः ।

इति दन्तीघृतम् ।

ताप्यरजतरुप्यायो मलाः पञ्चपलाः पृथक् ।

चित्रकत्रिफलाव्योष विडङ्गैः पलिकैः सह ॥ ४१ ॥

शर्कराष्टपलोन्मिश्रा चूर्णिता मधुनाप्लुता ।

उदुम्बरममां मात्रा मतः खादेद्यथाग्निमान् ॥ ४२ ॥
 दिने दिने प्रयोगेन जीर्णे भुञ्ज्याद्यथेक्षितम् ।
 वर्जयित्वा कुलित्यांश्च काकमाचोकपोतकान् ॥ ४३ ॥
 योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।
 रसायनमिदं येष्टं सर्वरोगहरं परम् ॥ ४४ ॥
 पांडुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् ।
 कुष्ठानि गरजं मेहं श्वासं हिक्कामरोचकम् ॥ ४५ ॥
 विशेषादन्त्यपश्मारं कामलां गुदजानि च ॥ ४६ ॥
 सुवर्णमथवा रूप्यं योगे यत्र न सम्भवेत् ।
 तत्र लोहेन कर्माणि भिषकुर्व्यादतन्द्रितः ॥ ४७ ॥

इति योगराजः ।

कुटजत्रिफलानिम्बं पटोलघननागरैः ।
 भावितानि दद्याद्धानि रसैर्द्विगुणितानि च ॥ ४८ ॥
 गिलाजतु पलान्यष्टौ तावतो सितशर्करा ।
 त्वक्क्षीरी पिप्पली धात्री कर्कटाख्या पलोन्मिता ॥ ४९ ॥
 निदग्धीफलमूलाभ्यां पलं युञ्ज्याच्चिजातकात् ।
 मधुध्रिपलसंयुक्ता कुर्यादक्षसमा गुटी ॥ ५० ॥
 दाडिमाम्बपत्रं घोर रसयूपसुरासवान् ।
 ताम्रचयित्वाऽनुपिवे चिरन्तो हितमत्यभाक् ॥ ५१ ॥
 पांडुकुष्ठगरभीष्टं कामलार्शोभगन्दरान् ।
 श्रुतिदृक्कुक्कुटमूलाग्नि दोषशोधगदोदरान् ॥ ५२ ॥
 कासासृग्वातपित्तासृक् शूलगुल्मगलगद्वहान् ।
 नेत्रचक्रगदान् हन्ति सर्वरोगहराग्ना ॥ ५३ ॥

इति शिशुगुटिका ॥

व्रूपणं त्रिफला दारु हरिद्रे नीलिनीफलम् ।
 द्राक्षा चेन्द्रयवं सुस्ता मञ्जिष्ठा कटुरोहिणी ॥ ५४ ॥
 शतावरी शिगुबीज चित्रकं गजपिप्पली ।
 शालिपर्णी पृष्टपर्णी वृहती कण्ठकारिका ॥ ५५ ॥
 पाठाभक्तातक दन्ती विशाला सदुरालभा ।
 शठीमधुरसा रास्त्रा विण्डगञ्ज समाचिकम् ॥ ५६ ॥
 एतैर्धूर्णेः समैर्वापि लोहं द्विगुणमावपेत् ।
 यावशूकञ्च संभृत्य गघां सूत्रेण पाचयेत् ॥ ५७ ॥
 तत्रोऽधमात्रां गुटिकां पाययेत्तडुलाम्बुना ।
 पाण्डुरोगं जयत्याय व्रज्जदण्ड श्वासुरान् ॥ ५८ ॥
 कृमिकुष्ठप्रमेहार्थं ग्रहणीदोषशोथहा ।
 भगन्दरखासकास श्लीङ्गगुल्मीदरापहा ॥ ५९ ॥
 इति व्रूपणादिगुटी ॥

—०—

अथ निदानम् ।

पाण्डुरोगी तु यौल्यर्थं पित्तलानि निसेवने ।
 तस्य पित्तमृक्ष्णामं दग्ध्वारोगाय कल्पते ॥ ६० ॥
 हारिद्रनेत्रः सभृश हारिद्रत्वङ्गखाननः ।
 रक्तप्रीतशक्त्वेत्रो मेकवर्णी हृतेन्द्रियः ॥ ६१ ॥
 दाहोऽविपाकदोर्वल्य सदनाऽरुचिकर्षितः ।
 कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखा त्रयामता ॥ ६२ ॥
 कालान्तरात् खरोभूता कृच्छ्रा स्यात् कुम्भकामला ॥ ६३ ॥
 कृष्णी पोतशक्त्वेत्रो भृश शून्य सामव ।
 सरक्ताक्षिमुखच्छर्दि विग्मूत्रो यद्य ताम्पति ॥ ६४ ॥
 दाहोऽरुचिष्ठडानाह तन्द्रामोहसमन्वितः ।

नष्टाग्निसंघ्नः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते ॥ ६५ ॥
 हृद्यरोचकहृत्तास ज्वरहृतमनिपोडितः ।
 नश्यति श्लासकसातीं विद्धे दी कुम्भकामली ॥ ६६ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

रेचनं कामलार्तस्य स्निग्धस्यादौप्रयोजयेत् ।
 ततः प्रशमनी कार्या क्रिया वैद्येन जानता ॥ ६७ ॥
 त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निवस्य वा रसः ।
 प्रातर्माचिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः ॥ ६८ ॥
 अञ्जनं कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसं शभम् ।
 निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा संप्रकल्पयेत् ॥ ६९ ॥
 नस्यं कर्काटिमूलस्य घ्न्ये वा जालिनीफलम् ॥
 गुडूचीपत्रकल्कं वा पिवेत्तन्त्रेण कामली ।
 भर्तं तन्त्रेण भुञ्जीत सजहात्याथ कामलाम् ॥ ७० ॥
 लोहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफलां कटुरोहिणीम् ।
 प्रलिह्य मधुसर्पिभ्यां कामलार्तः सुखी भवेत् ॥ ७१ ॥
 किराततिक्तं सुरदारु दार्वी सुक्ता गुडूची कटुकापटीला
 दुराश्रभा पर्पटकं सनिम्बं कटुचिकं वापि फलविकञ्च ॥
 विडङ्गसारञ्च समांशकानि सर्वैः समं चूर्णमथात्र लोहम्
 सर्पिमधुभ्यां गुटिका विधेया तक्रानुपानं भिषजा प्रयोज

लीढा निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि ॥ ७६ ॥

तुल्यां वायोरजःपथ्याहरिद्रां चौद्रसर्पिषा ।

चूर्णितां कामलीलिङ्गाद् गुडचौद्रेण चाभयाम् ॥ ७७ ॥

—०—

हरिद्रात्रिफलानिम्ब वलामधुकसाधितम् ।

सचोरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ ७८ ॥

इति हरिद्राद्य दृतम् ॥

गुडूघोरसकल्काभ्यां सिद्धं चीरचतुर्गुणे ।

माहिषं दृतमेवाशु कामलाहरमुत्तमम् ॥ ७९ ॥

इति गुडूचीदृतम् ॥

अयोरजो हरिद्रे द्वे त्रिफला कटुरोहिणी ।

चूर्णं कामलिनां श्रेष्ठं दृतमाक्षिकसंयुतम् ॥ ८० ॥

सकफो मासुतः पितं कामलायां वह्निः क्षिपेत् ।

तस्य स्युः पीतमूवत्वक् श्वेतविट्दशनानि च ॥ ८१ ॥

विष्टम्भगौरवाटोप हिक्काश्वासज्वरादयः ॥ ८२ ॥

तं हि कटु म्लरूक्षैश्च शिखितित्तिरदक्षजैः ।

रमेर्यूपैश्च कौलित्यैर् मुद्गजैरपि भोजयेत् ।

व्योपाय्यं बीजपूरान्ध्रं पिवेद् वातप्रगांतये ॥ ८३ ॥

कुम्भाख्यकामलायान्तु हितः कामलिको विधिः ॥ ८४ ॥

गोमूत्रेण पिवेत् कुम्भ कामलायां शिलाजतु ॥

मामं माक्षिकघातुं वा किट् वाथहिरण्यजम् ॥ ८५ ॥

दग्धाचकाष्टैर्मलमायसन्तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारम् ।

विचूर्णं लीढं मधुनाऽचिरेण कुम्भाद्वय पाण्डुगद निहन्ति ॥ ८६ ॥

इति कुम्भकामला चिकित्सा ।

—०—

कामलार्तः, सृजेद्यस्तु तैलपिष्टनिभम्रलम् ।

कफवद्वगुदस्तस्य श्लेष्मघ्नैःकामलां हरेत् ॥ ८७ ॥

इति कामला चिकित्सा ।

—०—

अथ निदानम् ।

अदा तु पाण्डोर्बर्णः स्याद्वरितः श्यावपीतकः ।

बलोत्साहचयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः ॥ ८८ ॥

श्लोष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च श्वासस्तृण्णाऽरुचिर्भ्रमः ।

हृलीमकन्तदातस्य विद्यादऽनिलपित्ततः ॥ ८९ ॥

सन्तापो भिन्नवर्चश्च वहिरंतश्च पीतता ।

पाण्डुता नेत्रयोर्यस्य पानकीलक्षणं वदेत् ॥ ९० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पिवेत् खदिरतोयेन मद्यं लोहरज्जांसि च ॥ ९१ ॥

—०—

सिता तिक्ता वंला यष्टी त्रिफला रजनीयुगैः ।

लेहं लिङ्गात् समध्वाज्यं हृलीमकं प्रशान्तये ॥ ९२ ॥

इति सिताद्ये लेहः ।

मधुरै रन्त्रपानैस्तं वातपित्तहरैर्हरेत् ।

कामलापाण्डुरोगोक्तां क्रियां चात्र प्रयोजयेत् ॥ ९३ ॥

—०—

अमृतलतारसकल्कं प्रसाधितं तुरगविद्धिषा सर्पिः ।

श्वीरचतुर्गुणमेतद्वितरेच्च हृलीमकार्तेभ्यः ॥ ९४ ॥

इत्यमृताद्यं घृतम् ॥ इति हृलीमकचिकित्सा ।

फलत्रिका मृतावासा तिल्ला भूनिम्ब निम्बके ।

क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात् पाण्डुरोगं सकागलम् ॥ ८५ ॥

दार्बीतिल्लाभयारिष्ट वर्षाभू सुपटोलजः ।

क्वाथः शोथोदरश्वास कामला पाण्डुरोगनुत् ॥ ८६ ॥

क्षूपणं त्रिफलासुस्तं विडङ्गचित्रकं समम् ।

लोहचूर्णं नवगुणं कृत्वाचूर्णं पिवेत्ररः ॥ ८७ ॥

मासं तक्त्रेण गोमूत्रैर्लिङ्घ्याद्वा मधुसर्पिषा ।

सजयेत् पाण्डुहृद्रोग कुष्ठशोथ भगन्दरान् ॥ ८८ ॥

क्षमीनर्शासि जयति मन्दाम्बित्व मरोचकम् ।

युक्तितोऽभ्यसनाच्चैव जरा न लभतेऽबलम् ॥ ८९ ॥

इन्द्रियाणां विशद्विद्ध बलवर्णप्रसादनम् ।

मासेन लभते जन्तु रेतचूर्णं नवायसम् ॥ १०० ॥

इति नवायसं चूर्णम् ॥

पुनर्नवात्रिंशद्वयोप विडङ्गं दारुचित्रकम् ।

कुष्ठं हरिद्रे त्रिफला दन्ती चव्यं कलिंगकम् ॥ १०१ ॥

कटुका पिप्पलीमूलं सुस्तचेति पलोन्मितम् ।

मंडूरं द्विगुणं चूर्णाद् गोमूत्रार्धाढके पचेत् ॥ १०२ ॥

गुडवट्टकान् कृत्वा तक्त्रेणाऽऽलोढतान् पिवेत् ।

ते पाण्डुरोगं प्रीहान् मर्शासि विषमज्वरम् ॥ १०३ ॥

श्वयथुं ग्रहणीदोषं हन्युः कुष्ठक्षमींस्तथा ॥

इति मंडूरवट्टकः ॥

क्षूपणं त्रिफलासुस्तं विडङ्गं चव्यं चित्रकी ।

दार्बीत्वष्पाज्जिकं घातु ग्रन्थिकं देवदारु च ॥ १०४ ॥

एषां द्विपलिकान् भागान् कृत्वा चूर्णं पृथक् पृथक् ।

मंडूरं द्विगुणं चूर्णां षुद्धमञ्जनसन्निर्भम् ॥ १०५ ॥

मूत्रे चाष्टगुणे पक्का तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः ।
 उदुम्बरसमान् कुर्याद्दृष्टकांस्तान्यथाग्निवान् ॥ १०६ ॥
 उपयुञ्जीततक्रेण सात्मां जीर्णे च भोजयेत् ।
 मंहूरवटका ह्येते प्राणदाः पांडुरोगिणाम् ॥ १०७ ॥
 कुष्ठानि गरजं शोथ मूरुस्तम्भं कफामयान् ।
 अशंसि कामलां मेहान् भीहानं शमयत्यपि ॥ १०८ ॥
 इति वृहन्मंहूरवटकः ।

निम्बं पटोलं कुटजं त्रिफला मुस्तनागरम् ।
 पचेज्जलादके पाद श्रेये दद्याच्च शीतले ॥ १०९ ॥
 शिलाजतु पलान्यष्टौ मासं संस्थापयेच्च तम् ।
 उद्धृत्य तं शिलातुस्य मेतांश्चापि पलोन्मितान् ॥ ११० ॥
 मोचधात्रीफलतुगा कर्कटादिनिदग्धिकाः ।
 त्रिवर्णपादसयुक्तं क्षौद्रं त्रिपलसंयुतम् ॥ १११ ॥
 पयोनुपानं गुटिकां कृत्वा खादेद्यथा बलम् ।
 कामलापांडुरोगार्थं शोथज्वरनिपीडितः ॥ ११२ ॥
 इति निम्बादिगुटिकाः ।

विडङ्गमुस्तत्रिफला देवदारु षडूपलैः ।
 निर्वाप्य सप्तधा मूत्रे मंडूरं ग्राह्यमिष्यते ॥ ११३ ॥
 तुल्यमात्रमयधूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
 तैरचमात्रां गुटिकां कृत्वा खादेद्दिने दिने ॥ ११४ ॥
 कामला पांडुरोगार्थं सुखमापद्यते क्षणात् ।

इति मंडूरगुटिकाः ।

विभीतकाऽयोमलनागराणां चूर्णं तिलानां गुडसप्रयुक्तम् ।
 तक्रानुपानं गुटिका निहन्ति ह्यतिप्रवृद्धानपि पांडुरोगान् ॥
 इति विभीतकाद्या गुटिकाः ।

पञ्चकोलं समरिचं देवदारुफलत्रिकम् ।
 द्विगुमुस्तसमायुक्ता भागास्त्रिपलसन्निताः ॥ ११६ ॥
 यावन्त्येतानि चूर्णानि मंडूरं द्विगुणं ततः ।
 पक्ता चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूतं तमुद्धरेत् ॥ ११७ ॥
 ततोऽक्षमात्रान्वटकान् पिबेत्तत्रैव तक् भुक् ।
 पांडुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ११८ ॥
 अर्शासि ग्रहणीं शोथं मुरुस्तंभं हलीमकम् ।
 कृमिं ग्रीहानमुदरं गलरोगञ्च नाशयेत् ॥ ११९ ॥
 मंडूरो वज्रनामायं रोगानीकप्रणाशनः ॥ १२० ॥
 निर्वाप्य सप्तधा मूत्रे मंडूरं ग्राह्यमिष्यते ।
 ग्राहयेदष्टगुणितं गोमूत्रं सर्वचूर्णतः ॥ १२१ ॥

इति मंडूरवज्रवटकः ।

विडङ्गं त्रिफला ज्योषं दार्वी कृष्णमयोरजः ।
 कामला पांडुरोगघ्नं लिङ्गात् चौद्रष्टतप्तम् ॥ १२२ ॥
 इति विडङ्गाद्यं लोहम् ।

रसमामलकीनान्तु संशुद्धं यन्त्रपोडितम् ।
 द्रोणं पचेत्तु मृद्वग्नी तत्र चेमानि दापयेत् ॥ १२३ ॥
 चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा ।
 प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः कल्कपेशितम् ॥ १२४ ॥
 शृङ्गवेरपले द्वे च तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् ।
 तुलार्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत् ॥ १२५ ॥
 मधुप्रस्थं समायुक्तं लेहयेत्पलसन्नितम् ।
 हलीमकं कामलाञ्च पांडुत्वं चापकर्षति ॥ १२६ ॥

इत्यामलक्यवलेहः ।

पचेत् खदिरनिःक्वाथे विडङ्गधान्ययोरजः ।

बलातिक्तासिता यष्टी त्रिफला रजनीद्वयम् ॥ १२७ ॥

लेहं लिङ्गाक्षमध्वाज्यैः पाण्डुरोगी हलीमकी ।

सलेहः कामलां हन्या दपि सम्बत्सरोत्थिताम् ॥ १२८ ॥

इति खदिरलेहः ।

कण्ठे द्वे ग्रन्थिकं वङ्गि दीप्यकोषणसैन्धवम् ।

क्षमिघ्नं त्रिफला धान्य कालजामजमोदकम् ॥ १२९ ॥

पलिकानि त्रिद्वत्पञ्च तैलं सर्पिः पलायकम् ।

रसप्रस्यत्रयं धात्र्या गुडस्यार्धशतं पचेत् ॥ १३० ॥

एतत्कल्याणकं पाण्डु कामलाऽर्शोज्वरापहम् ।

मेहकुष्ठक्षयश्वास ग्रहणीहृद्रसायनम् ॥ १३१ ॥

इति कल्याणगुडः ।

पुनर्नवा निम्बपटोलशुण्ठी तिक्तामृता दार्व्यभया कपायः ।

सर्वाङ्गशोथोदरकासशूल श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ १३२ ॥

यवगोधूमशाल्यत्र रसैर्जाङ्गलजैः समैः ।

सुहादकीमसूराद्यै र्यूपो भोजनमिथ्यते ॥ १३३ ॥

इति वङ्गसेने पाण्डुरोगकामलाकुम्भकामलाहलीमक

निदानचिकित्साधिकारः समाप्तः ॥ ८ ॥

—०—

अथ रक्तपित्तनिदानमाह ।

घ्नोभ्यायामशोकाध्व व्यवायैरतिसेवितैः ।

तोक्ष्णोष्णचारलवणै रम्नैः कटुभिरेव च ॥ १ ॥

पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् ।
 ततः प्रवर्तते रक्त मूर्ध्वच्चाधो द्विधापि वा ॥ २ ॥
 ऊर्ध्वं नासाच्चिकर्णस्थौ मेद्रयोनिगुदैरधः ।
 कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ॥ ३ ॥
 केचिच्चैव यत्कृत्स्नीकृता प्रवदन्त्यसृजोगतिम् ॥ ४ ॥
 सदनं शीलकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः ।
 लोहगन्धश्च निःश्वाप्तो भवत्यस्मिन् प्रविध्यति ॥ ५ ॥
 सार्द्धं सपांडुसस्त्रे हं पिच्छिलश्च कफान्वितम् ।
 श्यावारुण सफेनश्च तनुरुक्षश्च वातिकम् ॥ ६ ॥
 रक्तपित्तं कपायामं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम् ।
 मेचकाऽऽगारधूपाभ मञ्जनाभश्च पैत्तिकम् ॥ ७ ॥
 संसृष्टलिङ्गं ससर्गात् विलिङ्गं सान्निपातिकम् ।
 ऊर्ध्वं कफसंसृष्ट मधोगं मारुतानुगम् ।
 द्विमार्गं कफवाताभ्या मुभाभ्यां तत्प्रवर्तते ॥ ८ ॥
 ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्य मसाध्यं युगपद्गतम् ॥ ९ ॥
 एकमार्गं बलवती नातिवेगं नवीत्यितम् ।
 रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं श्यान्निरुपद्रवम् ॥ १० ॥
 एकदोषानुग साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ।
 यच्चिदोषमसाध्यं त न्मदान्नेरतिवेगवत् ॥ ११ ॥
 व्याधिभिः क्षीणदेहस्य हृदम्यानश्च तच्च यत् ॥ १२ ॥
 दौर्बल्यं श्वासकास ज्वर वमथुमदा पांडुता दाहमूर्च्छाः ।
 भुक्ते घोरो विदाहस्त्वष्टतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा ।
 दृष्ट्याकोटस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्टीवनश्च ।
 भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ १३ ॥
 मांसप्रचालनाभं क्षयितमिव च यत् कर्दमाश्लीनिमं वा ।

मेदः पूयास्रकल्पं यक्षदिव यदि वा पक्षजम्बूफलाम् ।
 यत् कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकृष्णं यत् चोक्ताविकारः ।
 तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ॥ १४ ॥
 येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः ।

पश्येद्दृश्यं वियच्चैव तच्चासाध्यमसंशयः ॥ १५ ॥

लोहितं कर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ।

लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥ १६ ॥

पित्तास्रं शमयेन्नादौ प्रवृत्तं बलिनोऽग्रतः ।

हृत्पाण्डु, ग्रहणीदोषं ग्रीहगुल्मक्षयादिहृत् ॥ १७ ॥

गलग्रहं पूतिनस्यं मूर्च्छाञ्च ह्यरुचिं तथा ।

कुष्ठानर्शांसि बीसर्पं वर्णनाशं भगन्दरम् ।

बुद्धीन्द्रियोपरोधञ्च कुर्यात् स्तम्भितमादितः ॥ १८ ॥

क्षीणमांसबलं बालं हृहंशोषानुबन्धिनम् ।

अवाभ्यमविरेच्यञ्च शमनीयैरुपाचरेत् ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वं प्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ।

अक्षीणबलनांसाग्नेः कर्त्तव्यऽमपतर्पणम् ॥ २० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

उर्ध्वं तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यञ्च विरेचनम् ।

प्रागधोगमने पेर्यं वामनञ्च यथा बलम् ॥ २१ ॥

आरग्वधेन धात्र्या वा विहृता पथ्ययाऽथवा ।

विरेचनं प्रयोक्तव्यं शर्करा मात्तिकोत्तरम् ॥ २२ ॥

मुस्तेन्द्रियवयव्याह मदनाहं पयो मधु ।

शिशिरं दमनं योज्यं रक्तपित्तहरं परम् ॥ २३ ॥

शालिपट्ट्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगते ।

रक्तातिसारहन्ता च योन्धो विधिरशेषतः ॥ २४ ॥

शालिपट्टिकनीवार कोरदूपप्रसाधिता ।

श्यामाकश्च प्रियंगूश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ २५ ॥

मसूरमुद्गचणकाः समुकुष्टाटकीफलाः ।

प्रगस्ताः सूपयूपार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ २६ ॥

दाडिमामलकं कोल मञ्जार्थं चापि दापयेत् ॥

पटोलनिम्बवेलाग्र प्लचवेतसपल्लवाः ।

शाकार्थं शाकशात्मयानां तण्डुली यादयो हिताः ॥ २७ ॥

पारावतकपोतांश्च लावरक्ताक्षवर्त्तकान् ।

शशान् कपिञ्जलानेणान् हरिणान् कालपुच्छकान् ॥ २८ ॥

रक्तपित्तहरान् दद्याद्द्रसांस्तेषां प्रयोजयेत् ॥ २९ ॥

इन्दुदन्तान्जनमृत्तांश्च घृतभ्रष्टान् ससैन्धवान् ।

कफानुगे यूपशाकं दद्याद्वातानुगे रसम् ॥ ३० ॥

पथं सतीनयूपेण ससितैर्लाजसक्तुभिः ।

जलं खर्जूरमृद्धीका मधुकैः सपरुपकैः ॥ ३१ ॥

झीवेरमुत्पलं धान्यं चन्दनं यष्टिकामृता ।

वृषोशीरयुतः काथः शर्करामधुसंयुतः ॥ ३२ ॥

रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं प्वरं तथा ॥ ३३ ॥

पद्मोत्पलानां किञ्चल्कं पृष्टिपर्णी प्रियंगुका ।

जले साध्यरसे तस्मिन् पेयास्याद्रक्तपित्तिनाम् ॥ ३४ ॥

चन्दनोशीरलोध्राणां रसे तस्मिन् सनागरे ।

किराततिक्तकोशीर सुहानां तद्वदेव तु ॥ ३५ ॥

शशः सवास्तुकः शस्ती विदम्बे रक्तपित्तजे ।

वातोत्तरे तित्तिरिः स्याद्दुदुम्बररसे ष्यतः ॥ ३६ ॥

मयूरक्षनिर्यूहः न्यग्रोधस्य च कुकुटः ।

रसो विषो पलादीनां वार्त्ताकिञ्चकरौ हिती ॥ ३७ ॥

लथ्यते तिक्तससिद्धं लण्णाघ्नं वा कफोदकम् ।

सिद्धं विदारोगन्धाद्यैः शृतशीतमथापि वा ॥ ३८ ॥

प्रियग्वञ्जनमृत्तोषधः श्लक्ष्णचूर्णावचूर्णितः ।

वासाक्षाथो रसो वाऽसृक् पित्तजिह्वसितामधुः ॥ ३९ ॥

हृपपत्राणि संपीड्य रसं समधुशर्करम् ।

पिवेत्तेन समं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ४० ॥

पत्रं त्वगैलानतचन्दनानां श्यामासशुण्ठीमधुकोत्पलानाम् ।

श्यावात्रीवासादिगुणोत्तराणां चूर्णं सिताक्षौद्रसमन्वितानाम् ॥ ४१ ॥

दाहे चरे लोहितपित्तयुक्ते कासे चये शोणित मूत्रकण्ठे ।

रक्तेऽतिमात्रं पतिते सुखेन गुदेऽथ नासाश्रुतिमेद्वयोनौ ॥ ४२ ॥

मोक्षं पुरा रक्तविनिग्रहार्थं चूर्णं वशिष्टेन महागदघ्नम् ।

इति पत्रकादिचूर्णम् ।

उत्पलं कुसुमं पद्मं कङ्कारं लोहितोत्पलम् ।

मधुकक्षेति पित्तासृक् लथ्याकृदिहरी गणः ॥ ४३ ॥

तथा हृषाकषायश्च शर्करा मधुसंयुतम् ।

पाययेत्तेन सद्यो हि रक्तपित्तं प्रशाम्यति ॥ ४४ ॥

आटरूपकनिर्यूहं प्रियंगुमृत्तिकाञ्जने ।

विनीय लोघ्नं मक्षौद्रं रक्तपित्तहरं पिवेत् ॥ ४५ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियंगु लोघ्राञ्जनाम्बोरुहकेशराणि ।

पीत्वा मिताक्षौद्रेयुतानि जन्धात् पित्तासृजो वेग मुदोर्धमा ॥ ४६ ॥

वासायां विद्यमानाया माशायां जीवितस्य च ।

रक्तपित्तो जयीकासी किमर्थमवसीदति ॥ ४७ ॥

तालीशचूर्णयुक्तः प्रियः क्षौद्रेण वासकस्वरसः ।

कफपित्तश्वासतमक स्वरमेदरक्तपित्तहरः ॥ ४८ ॥

घाटरूपकण्डिका पथ्या कायः सशर्करम् ।

घौद्राढ्यः कसनश्वास रक्तपित्तनिवर्हणः ॥ ४९ ॥

शतावरीवरारामा काश्मर्यं सपरूपकम् ।

पाययेद्रक्तपित्तघ्न सद्यः शूलहरं परम् ॥ ५० ॥

चन्दनेन्द्रयवाः पाठा कटुका सदुरालभा ।

गडूचीवासकं लोभ्रं पिप्पलीघौद्रसंयुतम् ॥ ५१ ॥

कफान्वितं जयेद्रक्तं वृणाकासज्वरापहम् ॥ ५१ ॥

पिवेच्छोतकपायं वा जन्वाम्नाचुर्नसम्भवम् ।

उदुम्बरफलानाञ्च रसं समधुपाययेत् ॥ ५२ ॥

त्रिहृतात्रिफलाश्यामा पिप्पलीशर्करामधु ।

मोदकः सन्निपातोर्ध्वं रक्तपित्तज्वरापहः ॥ ५३ ॥

अतसौकुम्भमसमङ्गा वटप्ररोहत्वग्भसा पीता ।

प्रशमयति रक्तपित्तं यदि भुङ्क्ते मुह्ययूपेण ॥ ५४ ॥

उशीरकालोयकलोभ्रपद्मकं प्रियङ्गुकाकटफलशङ्खैरिकम् ।

पृथक् पृथक् चन्दनतुल्यभागिकं सशर्करास्तुङ्गुलधावनमुतम् ॥ ५५ ॥

रक्तं सपित्तं तमकं पिपासा दाहञ्च पित्तं शमयन्ति सद्यः ॥ ५६ ॥

हृषस्य स्वरसं कृत्वा द्रवैरेभिः प्रयोजयेत् ।

प्रियङ्गुमृत्तिकालोभ्र मञ्जनश्चेति चूर्णयेत् ॥ ५७ ॥

एतच्चूर्णन्तु पातव्यं रसघौद्रसमन्वितम् ॥ ५७ ॥

नासिकासुखपायूभ्यो योनि मेढ्राञ्च विगतः ।

रक्तपित्तं स्रवदन्ति सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ५८ ॥

यच्च शस्त्रघतेनैव रक्तं स्रवति विगतः ।

तदप्यनेन चूर्णेण तिष्ठत्येवावचूर्णितम् ॥ ५९ ॥

अभयामधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता ।

श्लेष्माणं रक्तपित्तञ्च हन्ति शूलातिसारनुत् ॥ ६० ॥

द्रक्षूणां मध्यकाण्डानि सकन्दनीलमुत्पलम् ।

केसरं पुण्डरीकस्य मोचं मधुकपझके ॥ ६१ ॥

वटप्ररोहशङ्खाय द्राक्षाखर्जूर एव च ।

एतानि समभागानि कपायमवतारयेत् ॥ ६२ ॥

व्युषितं मधुसंयुक्तं पाययेच्छर्करान्वितम् ।

सप्रमेह रक्तपित्तं क्षिप्रमेतन्नियच्छति ॥ ६३ ॥

श्लोहगन्धिनि निःश्वासे उद्गारे धूमगन्धिनि ।

पृथ्विकां शाणमात्रान्तु खादेद्विगुणशर्कराम् ॥ ६४ ॥

कपायैर्विविधैर्योगैर्दीप्तेऽग्नौ विजिते कफे ।

रक्तपित्तं नचेच्छास्ये क्षत्र वातोत्त्वणं पयः ॥ ६५ ॥

छागं पयः स्यात्परमं प्रयोगे गव्यं शृतं पञ्चगुणे जले वा ।

सशर्करं भाक्षिकसप्रयुक्तं विदारो गन्धादिगणे शृतं वा ॥ ६६ ॥

यष्टीमधुकार्जुनजीवनीय द्राक्षा बला गोक्षुरकैः शृतं वा ॥ ६७ ॥

द्राक्षायाः फलिनीभिर्वा बलाया मधुकेन वा ।

श्वदंष्ट्रया शतावर्या रक्तजित्ताधितं पयः ॥ ६८ ॥

पक्वोदुम्बरकाश्मर्यं पथ्या खर्जूरगोस्तनी ।

मधुनाहन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक् ॥ ६९ ॥

खदिरस्य प्रियंगूनां कोविदारस्य शाल्मलिः ।

पुष्पचूर्णन्तु मधुना लिहन्नारोग्यमश्नुते ॥ ७० ॥

वासकस्य रसे पथ्या सप्तधा परिभाविता ।

क्षणा वा मधुना पीता रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥ ७१ ॥

—०—

खरसः सरसः प्रीक्तः कल्को दृषदिपेयितः ।

काधितस्तु शृतः शीतः शर्वरोमुपितो दिनः ॥ ७२ ॥

द्रव्येण यावता द्रव्य मेकीभूयाऽऽर्द्रतां व्रजेत् ।

तावत्प्रमाणं निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावना विधौ ॥ ७६ ॥

शीरेण लाक्षां मधुमिश्रितेन प्रपीयजीर्णे पयसान्न मद्यात् ।

उदो निहन्याद्गुधिरं क्षतोत्थं कान्तार्जुनानामथवापि कल्कम् ॥ ७७ ॥

कल्कं मधूकत्रिफलाजुनानां निशिस्थितं लोहमये सुपात्रे ।

राज्यं विलिङ्घानुपिवेत्सुशीतं सशर्करं क्षागपयः क्षुधार्त्तः ॥ ७८ ॥

अतिनिष्पृतरक्तो वा चौद्रयुक्तं पिवेदनु ।

यक्ष्मा भक्षयेदाजं मांसं पित्तसमायुतम् ॥ ७९ ॥

पारावतस्य मांसं वा घृतसिद्धं सशर्करम् ।

भक्षयेन्मधुना शीतं रक्तपित्तनिवारणम् ॥ ८० ॥

सकफे ग्रथिते रक्ते क्षारः सचौद्रमर्षिपा ।

मृणालोत्पलपद्मानां किंशुकासनयोस्तथा ॥ ८१ ॥

मधुकस्य प्रियंगूना मवलेहः पृथक् पृथक् ।

प्रायेणोपहृताग्नित्वात् सपित्तमतिसार्यते ॥ ८२ ॥

प्राप्नोति चास्यवैरस्यं नवान्नमभिनन्दति ।

नागरेन्द्रयवौ तत्र पातय्यौ तण्डुलांशुना ॥

मिक्षा यवागूर्जीर्णे वा चाङ्गे रोतक्रदाडिमैः ॥ ८३ ॥

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभ्रष्टं क्षणपिष्टमामलकम् ।

सेतुरिव तीयवेगं रुणद्धि मूर्ध्निप्रलेपेन ॥ ८४ ॥

घ्राणप्रवृत्ते जलमाशुदेय सशर्करं नासिकया पयो वा ।

द्राचारसं क्षीरघृतं पिवेद्वा सशर्करं चक्षुरसं पिवेद्वा ॥ ८५ ॥

रसो दाडिमपुष्पोऽथ रसो पूर्वाभवोऽथवा ।

आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्तुतररक्तजित् ॥ ८६ ॥

रसो दाडिमपुष्पस्य द्वारससमन्वितः ।

आलक्तकरसोपेतः पथ्या रससमन्वितः ॥ ८७ ॥

योजितो नासयोः क्षिप्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ।

नासारक्तं प्रवृत्तन्तु हन्यादिति किमद्भुतम् ॥ ८५ ॥

दूर्वाभयादाङ्गिमपुष्पकानां लाक्षामलक्याः खरसेन नखम् ।

दिनत्रयं यः कुरुते प्रभाते नासाऽरुजं नाम रुजं निहन्ति ॥

—०—

श्यामाऽग्नौ मोरटानन्ता शर्कराभिः शृतं घृतम् ।

सर्वदोषहरं हृद्यं नखं नासागतेऽरुजि ॥ ८७ ॥

इति श्यामाघृतम् ।

दूर्वाभव्यफलं माप कुलित्यौ वंशपत्रिका ।

जलस्थलोद्भवौ कर्णं मोचकौ खरमञ्जरी ॥ ८८ ॥

दण्डोत्पलस्य मूलन्तु निःक्वाप्याष्टगुणेऽभसि ।

तत्पादशेषित तैलं तुल्यं कृत्वा विपाचयेत् ।

तत्तैलं प्रतिमर्पेन श्रानाद्वाख्यं गदं जयेत् ॥ ८९ ॥

इति दूर्वाद्यं तैलम् ।

रक्तातिसारिकं कर्म रक्ते स्यात्पायुगामिनि ।

पित्तप्रमेहिकं कर्म मेद्वगे विनियोजयेत् ॥ ९० ॥

—०—

शृतं क्षीरं पिवेच्चापि पञ्चमूल्या दृणाङ्गया ।

गोकण्टकानां खरसैः पर्णिनीभिस्तथा पयः ॥ ९१ ॥

हन्याशुरक्तं सरुजं विशेषान्मूत्रमार्गगम् ।

मेद्वगे विहितश्चापि वस्तिरुत्तरसंज्ञिकः ॥ ९२ ॥

इति दृणपञ्चमूलीक्षीरम् ।

—०—

चन्दनं नलदं लोघ्रं मुशीरं पद्मकेशरम् ।

नागपुष्पञ्च विखञ्च भद्रमुस्तं सशर्करम् ॥ ९३ ॥

शीवेरक्षैव पाठात् कुटजोत्पलमेव च ।
 शृङ्गवेरं सातिविषा धातकी सरसाञ्जनम् ॥ ८४ ॥
 चास्त्रास्थि जम्बूसारास्थि तथा मोचरसोऽपि च ।
 नीलोत्पलं समझाञ्च सूक्ष्मैला दाडिमत्वचम् ॥ ८५ ॥
 चतुर्धिंगतिरेतानि समभागानि कारयेत् ।
 तण्डुलोदकजं युक्तं मधुना सह योजयेत् ॥ ८६ ॥
 योगो लोष्ठितपित्ताना मर्शिणां ज्वरिणां तथा ।
 मूर्च्छामेदोप्लष्टानां वृणान्तानां प्रदापयेत् ॥ ८७ ॥
 शरीसारं तथा हृदि स्त्रीणाञ्च रजसो ग्रहम् ।
 प्रच्युतानाञ्च गर्भाणां स्थापनं परमुच्यते ॥ ८८ ॥
 अश्विनोः सम्मतो योगो रक्तपित्तनिवर्हणः ॥

इति चन्दनाद्यं चूर्णम् ।

दूर्वासौत्पलकिञ्चल्कं मञ्जिष्ठा शैलवालुकम् ।
 शिवा लोघ्रमुशीरञ्च मुस्तं चन्दनपद्मकम् ॥ ८९ ॥
 विषचेल्कार्पिकैरेतैः सर्पिराजं सुखाग्निना ।
 तण्डुलांबु त्वजाक्षीरं दद्यादेवं चतुर्गुणम् ॥ ९० ॥
 द्राक्षायव्याह्नमधुक काश्मरी चन्दनं सितम् ।
 पिष्ट्वा तल्कार्पिकैर्द्रव्यैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९०१ ॥
 तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते ।
 कर्णाभ्यां यस्य गच्छेच्च तस्य कर्णैः प्रपूरयेत् ॥ ९०२ ॥
 चक्षुः स्राविणि रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी ।
 मेदृपायुप्रवृत्ते च वस्तिकर्म च तद्वितम् ॥
 रोगकूपप्रवृत्ते च तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत् ॥ ९०३ ॥

इति दूर्वाद्यं घृतम् ।

दूर्वासेन्द्रीवरं पद्मं मञ्जिष्ठा शैलवालुका ।

रास्त्रासुस्ता तथोशीरं चन्दनं मेधुकाह्वयेम् ॥ १०४ ॥
 पद्मकं लोभ्रकुटञ्च चन्दनं रजनीद्वयम् ॥ १०५ ॥
 काकोली शारिवे चेति कल्कैरेभिश्च कार्पिकैः ॥ १०६ ॥
 घृतप्रस्थमजाक्षीरं तंडुलोदकसंयुतम् ॥ १०७ ॥
 दूर्वायाः स्वरसेनापि साधितं मृदुनाग्निना ॥ १०८ ॥
 तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिका गते । ॥ १०९ ॥
 कर्णाभ्यां यस्य गच्छेच्च तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ ११० ॥
 रक्तास्त्रावीणि चार्शांसि लेपयेत्तेन सर्पिणा । ॥ १११ ॥
 मेद्वपायुप्रवृत्ते तु तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत् ॥ ११२ ॥
 पित्तजेषु विकारेषु स्फोटोदेषु च बुद्धिमान् । ॥ ११३ ॥
 विषेषु कीटदोषेषु विसर्पेषु प्रयोजयेत् ॥ ११४ ॥

इति महादूर्वाद्यं घृतम् ।

न्यग्रोधो दुम्बराग्वला शङ्खानाऽऽपोथ्य वासयेत् ।
 अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाग्निसा पचेत् ॥ ११५ ॥
 तदङ्गं शर्करायुक्तं लेहयेत् क्षौद्रपादिकम् ।
 र्धधो वा यदि वा चोर्ध्वं रक्तं यस्य प्रवर्तते ॥ ११६ ॥
 सुस्त तस्यांशुयुज्येत अग्निवेशवचो यथा ॥

इति शङ्खाद्यं घृतम् ।

शतावरीदाडिमत्तित्तिडीकं काकोलीमेदे मधुकं विदारीम् ।
 पिष्ट्वा तु मूलं फलपूगकस्य घृतं प्रचेत् चोरचतुर्गुणञ्च ॥ ११७ ॥
 कासज्वरानाहं विवन्धशूलं तद्रक्तपित्तञ्च घृतं निहन्ति ॥ ११८ ॥

इति शतावरीघृतम् ।

शतावर्यास्तु मूलानां रमं प्रस्थद्वयं मतम् ।
 तत्समञ्चं भवेत् क्षीरं घृतप्रस्थं लिप्ताचयेत् ॥ ११९ ॥
 जीवकपर्पभक्तौ मेदा मदामेदतयैव च ।

काकोलीचीरकाकोली मृद्वीकामधुकं तथा ॥ ११५ ॥

सुहृपर्णी माषपर्णी विदारोरक्तचन्दनम् ।

शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्त्रावयेद् दृतम् ॥ ११६ ॥

रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च ।

घ्नीणशुक्ते प्रदातव्यं वाजीकरणसुत्तमम् ॥ ११७ ॥

अद्भुदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम् ।

योनिशूलञ्च दाहञ्च मूत्रकृच्छ्रञ्च पैत्तिकम् ॥ ११८ ॥

एतान् रोगान्निहत्याशु क्षिप्वाभ्यापीव मारुतः ।

शतावरीसर्पिरिदं बलवर्णाग्निबर्धनम् ॥ ११९ ॥

शतावर्यादिके चाज्ये शर्करामधुपादिकम् ।

इति बृहच्छतावरीदृतम् ।

वासां सशाखां सपलाशमूलां कृत्वा कपायं कुसुमानि चास्याः ।

प्रदायकल्कं विपचेद् दृतं तत् त्वक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम् ॥ १२० ॥

शाणस्य कोविदारस्य वृषस्य ककुभस्य च ।

कल्कान् कृत्वा प्रयंसन्ति पुष्पकञ्च चतुष्पलम् ॥ १२१ ॥

इति कासायं दृतम् ।

समूलपत्रशाखन्तु वृषं धोतं सुकुटितम् ।

स्त्ररसं तस्य निष्कास्य कपायं वा जले शृतम् ॥ १२२ ॥

चतुर्गुणे जले तस्मिन् दृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

कुसुमैर्नङ्गरोमैश्च कल्कयेद्यैः सुखाग्निना ॥ १२३ ॥

विष्टब्धयेत् काष्ठदव्यां पात्रे लोहमये दृढे ।

अग्नेन विधिना पक्तं मधुपादसमायुतम् ॥ १२४ ॥

पिबेत्कासे घये श्वासे रक्तपित्ते हृलीमके ।

शिरोपघाते तिमिरे तथा सन्ने च पावके ॥ १२५ ॥

न तुल्यमस्तिभैषज्यं विशेषाद्रक्तपित्तिनाम् ।

इति वासाष्टतम् ।

वासाकल्करसे सर्पिं, पयसा सह पाचयेत् ।

कल्कैर्भूनिम्बकुटज सुस्तयध्याङ्गचन्दनैः ॥ १२६ ॥

उशीरमधुकानन्ता शारिवोत्पलपद्मकैः ।

व्रायन्त्युत्पलमूर्वाभिर्मन्दयन्त्याद्यपल्लवैः ॥ १२७ ॥

सिताक्षौद्रयुतहन्त्याद्रक्तपित्तं सुदारुणम् ।

पैत्तिकं वातिकं गुल्मं स्वरभेदं हलीमकम् ॥ १२८ ॥

ये चान्ये कीर्त्तितारोगा रक्तपित्तकफाश्रयाः ।

तान् सर्वान्नाशयत्येतत्पीयमानं हिताग्निना ॥ १२९ ॥

इति महावासाद्यंष्टतम् ।

अश्वगन्धापलशतं तदर्द्धं गोक्षुरस्य च ।

शतावरीविदारो च शालिपर्णीबिलासता ॥ १३० ॥

अश्वत्थस्य च शृङ्गानि पद्मबीजं पुनर्नवा ।

काश्मर्याथ फलञ्चैव मापबीजं तथैव च ॥ १३१ ॥

शृथग्दशपलान् भागाश्चतुर्दशेऽम्भसं पचेत् ।

द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूतशीते प्रदापयेत् ॥ १३२ ॥

मृद्वोकापद्मकं कुष्ठं पिप्पलीरक्तचन्दनम् ।

पत्रकं नागपुष्पञ्च आत्मगुप्ताफलं तथा ॥ १३३ ॥

नीलोत्पलं शारिवं हे जीवनीयान्यशेषतः ।

शृथक्र्षसमाभागा शर्कराया पलद्वयम् ॥ १३४ ॥

रसः स्यात्पीण्डैश्चैच्छूणा माढकाढकमाहरेत् ।

चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३५ ॥

रक्तपित्तं क्षतक्षीणं कामलां वातशोणितम् ।

हलीमकपाण्डुरोगं वर्णभङ्गं स्वरक्षयम् ॥ १३६ ॥

मूलकच्छसुरीदाहं पार्श्वशूलञ्च नाशयेत् ।
 एतद्वात्रां प्रदातव्यं बद्धन्तः पुरचारिणाम् ॥ १३७ ॥
 स्त्रीणाञ्चैवाप्रजातानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम् ।
 क्लीवानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम् ॥ १३८ ॥
 श्रेष्ठं बलकरं धन्यं हृद्यं हृद्यं रसायणम् ।
 श्लोमस्तेजस्करं स्वर्यं मायुष्यं प्राणवर्धनम् ॥ १३९ ॥
 सहं हयति शुष्कांश्च पुरुषान्दुर्बलेन्द्रियान् ।
 सर्वरोगविनिर्मुक्तं स्तोयसिक्तो यथा द्रुमः ।
 कामदेव इति ख्यातं सर्पिरुक्तं महागुणम् ॥ १४० ॥
 इति कामदेवघृतम् ।

अनन्ताशारिवापद्मं सलोभ्रं नीलमुत्पलम् ।
 कल्कैरेतैः पचेत्सर्पिः सक्षीरं नावनं परम् ॥ १४१ ॥
 रक्तपित्तं प्रशमयेन्नारीणां प्रदरं तथा ॥ १४२ ॥
 इत्यनन्ताद्यं घृतम् ।

हस्तपादाङ्गदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे ।
 वासाघृतं शतावर्था सिद्धं वा परमं हितम् ॥ १४३ ॥

—०—

दूर्वामधुकमञ्जिष्ठा द्राक्षेक्षुरसचन्दनैः ।
 शारिवाहयनक्ताक्षैः स्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४४ ॥
 क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ।
 रक्तपित्तहरं ह्येतं द्रव्यं वातघ्नमुत्तमम् ।
 दूर्वातैलमितिख्यातं शशिवर्णकरं महत् ॥ १४५ ॥
 इति दूर्वाद्यं तैलम् ।

मधुकं मधुकं द्राक्षात्वक्षीरोपिप्ली तथा ।
 त्रिजातस्य त्रयः कर्पाः शर्करायाः पलद्वयम् ॥ १४६ ॥

द्राचामधुकखर्जूरं पलांशं शृङ्गचूर्णितम् ।
 मधुनागुटिकाबद्धाः घ्नन्तोह पित्तशोणितम् ॥ १४७ ॥
 कासश्वासारुचिच्छर्दिं मूर्च्छां हिक्कामदन्ममान् ।
 क्षतक्षयं स्वरभ्रंशं श्लेहान दीर्घमारुतान् ॥ १४८ ॥
 रक्तनिष्टीव हृत्पार्श्वं रुक्पिपासाज्वरानपि ।

इति मधुकाद्यागुटिका ।

वृद्धं पुरातनं वापि कूष्माण्डं कठिनं दृढम् ।
 त्वक्क्षिराभिविनिर्मुक्तं मन्त्रबीजैर्विवर्जितम् ॥ १४९ ॥
 स्विन्नं सुपिष्टं दृढदि वस्त्रेणैव तु पीडितम् ।
 विशुष्कमातपे किञ्चिद् गृह्णीयात्तुतुला ततः ॥ १५० ॥
 शौदुम्बरे कटाहे तु पचेत्प्रस्थं तु सर्पिषः ।
 कृत्वा क्षौद्रनिभं तस्मिन् क्षिपेत् खण्डशतं भिषक् ॥ १५१ ॥
 कूष्माण्डपीडनात्तोयं तेनैव विपचेत्पुनः ।
 सुतसर्पिर्यदा पश्येत्तदा पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १५२ ॥
 सुस्विन्नपाके निष्पन्ने सर्पिरर्द्धं क्षिपेन्मधु ।
 कणापलद्वयं चूर्णं जीरकञ्च सनागरम् ॥ १५३ ॥
 त्रिशुगन्धं सधान्याकं मरिचं शुक्तिपाणिकम् ।
 खादेदग्निबलापेक्षी पथ्यभुञ्जान्नया नरः ॥ १५४ ॥
 कासश्वासं क्षतक्षीणं यक्ष्माणं हृदये रुजम् ।
 रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृट्छर्दिंश्च विमुञ्चति ॥ १५५ ॥
 वैस्वर्यं पीनसं काश्यं जीमूतमिव मारुतं ।

इति खण्डकूष्माण्डकम् ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
 पचेत्तप्तं घृतप्रस्थे शनैस्तान्त्रमये कटे ॥ १५६ ॥
 यदा मधुनिभं पाकं स्रुदा खण्डशतं न्यसेत् ।

पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वेपले जोरकस्य तु ।

त्वगैलापत्रमरिचं धान्यकानां पलाशकम् ॥ १५० ॥

न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्र दर्व्यासघट्टयेत्ततः ।

तत्पक्वं स्थापयेद्भाण्डे दत्त्वा क्षौद्रं घृताशकम् ॥ १५१ ॥

तद्यथाऽग्निबलं खादे द्रक्तपित्तेक्षतचयी ।

कासश्वासतमच्छर्दिं दृष्ट्वाञ्चरनिपीडितः ॥ १५२ ॥

दृष्यं धुनर्नवकरं वलवर्णप्रसादनम् ।

उरः सन्धानकरणं हृद्दणं स्वरबोधनम् ॥ १५३ ॥

अश्विभ्यां निर्मितं येष्ट कूष्माण्डकरसायनम् ।

इति खण्डकूष्माण्डकः ।

पञ्चाशच्च पलं खिन्नं कूष्माण्डाग्न्यमाज्यतः ।

पक्वं पुलयत खंडं वासाकाथाढके पचेत् ॥ १५४ ॥

शभाधात्रीघनैर्भागीं त्रिसुगन्धैश्च कर्पिकैः ।

शैलेय विश्वधान्याक मरिचैश्च पलाशकैः ॥ १५५ ॥

पिप्पलीकुडवच्चेव मधुमानी प्रदापयेत् ।

कास श्वास क्षय हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम् ।

हृद्रोगमस्त्रपित्तञ्च पीनसञ्च व्यपीडति ॥ १५६ ॥

—०—

युक्तसर्पिपिकूष्माण्डे पाके बन्धेत्तुसुद्रया ॥ १५७ ॥

इति वासाकूष्माण्डः ।

कूष्माण्डकविधानेन सूरण परिकीर्तित ।

अग्निमा मूढवाताना मन्दाग्निना विशेषतः ॥ १५८ ॥

इति सूरणपाकः ।

चीरमिचुरसं यूयं पञ्चमूलीकषायजम् ।

अनुपानं प्रयोक्तव्यं खण्डकूष्माण्डकादिषु ॥ १६६ ॥

—०—

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले ।

तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ १६७ ॥

चूर्णानामभयानाच्च खण्डाच्छुद्धाच्छतं तथा ।

हे पले पिप्पलीचूर्णात् सिद्धशीते च माघिकात् ॥ १६८ ॥

कुडवं पलमात्रन्तु चातुर्जातन्तु चूर्णितम् ।

चिन्ना विलोडितं खादे द्रक्तपित्तं यथानलम् ॥ १६९ ॥

काशश्वासस्यहीतश्च यक्ष्मणा च प्रपीडितः ॥ १७० ॥

इति वासायजम् ।

—०—

वासाकुटजकूष्माण्डं शतपत्रा सहस्रता ।

नित्यमाद्रीः प्रयोक्तव्या मानतो द्विगुणा मताः ॥ १७१ ॥

—०—

चीरं चतुर्गुणं सेह्याद् घृतं द्विगुणमुत्तमम् ।

चूर्णपादश्च वैडङ्गं दद्यान्मधुसिते समे ॥ १७२ ॥

एकीकृत्य पचेन्नेहं खादेदग्निबलं यथा ।

रक्तपित्तं जयत्युग्रं खण्डखाद्यं रसं स्मृतम् ॥ १७३ ॥

इति शर्करासमं खेजम् ।

अमृता त्रिहता दन्ती त्रायणी खदिरो हयः ।

विषको भृङ्गराजश्च कीकिलाश्च मपुष्करः ॥ १७४ ॥

धुनर्नवावसाकायाः शिपुमोरटदारकाः ।

क्षुहीरविरसो दभः कुशास्थि सह पीबरो ॥ १७५ ॥
 गवाक्षीवरुणः कन्द खविकातालमूलिका ।
 नागबलाकणामूलं कुष्ठं ब्राह्मणयष्टिका ॥ १७६ ॥
 पलोन्मितानि सर्वाणि जलद्रोणे विपाचयेत् ।
 अष्टभागावशिष्टन्तु कषायमुपकल्पयेत् ॥ १७७ ॥
 त्रिफलायास्तथा प्रस्थं जलाष्टगुणपाचितम् ।
 तस्मादष्टावशेषस्तु कषायस्तु परिसृतः ॥ १७८ ॥
 माचिकेन हतञ्चापि पुटितञ्च यथाविधिः ।
 शायसं चूर्णितं पूतं पलं शोडशसम्मितम् ॥ १७९ ॥
 पलान्यभ्रस्य चत्वारि तावन्ति गन्धकस्य च ।
 द्वे पले च रसस्यापि पुटितस्य यथाविधिः ॥ १८० ॥
 गुडस्य च पलान्यष्टौ सितायाश्चाथ पैत्तिके ।
 रक्तपित्तेऽथ खण्डस्य मत्स्यखण्डा वाथ कार्पिके ॥ १८१ ॥
 शुम्भुलोर्दिपलं दत्त्वा प्रस्थार्धं सर्पिषस्तथा ।
 एवं पाकविधिज्ञस्तु पचेद्भोहं समाहितः ॥ १८२ ॥
 शीतेऽवतार्यमधुनः क्षिपेदष्टपलं भिषक् ।
 माचिकस्य विशुद्धस्य द्विपलं रजसः क्षिपेत् ॥ १८३ ॥
 शिलाजतोस्तथा चूर्णं पलाहं सम्मितं भिषक् ।
 अथैषां प्रक्षिपेच्चूर्णं पलमात्रं पृथक् पृथक् ॥ १८४ ॥
 त्रिकटुत्रिफलादन्ती विहृता जीरकद्वयम् ।
 गायत्रिसारं तालीशं धान्यकं मधुयष्टिका ॥ १८५ ॥
 शमारसांजनं शृङ्गी चित्रकं चव्यमुस्तकम् ।
 चातुर्जातककडोलं लवङ्गं जातिकं फलम् ॥ १८६ ॥
 द्राक्षाश्चर्जूरकं चूर्णं पलाहं सम्मितं भिषक् ।
 एषः लोहवरः श्रीमान् सर्वव्याधिघ्ननाशनः ॥ १८७ ॥

यत्र यत्र प्रयुञ्जीत तत्तदाशु विनाशयेत् ।
 रक्तपित्तेऽम्बपित्ते च क्षये कुष्ठे ज्वरेऽरुचौ ॥ १८८ ॥
 दुर्गन्धि चोदरे शूले ग्रहण्याञ्चामवातके ।
 वातरक्ते मूत्रकृच्छ्रे प्रमेहे शर्करागदे ॥ १८९ ॥
 अस्योपयोगान्मनुजा स्तारुण्यमधिगच्छति ।
 ब्रह्मचर्येण कुर्वीत भुतं माक्षिकसर्पिषा ॥ १९० ॥
 मापकं रतिका हृदया यावदष्टौ च मापकाः ।
 वर्जयेद् द्विदल सूपं मांसं चानूपसम्भवम् ॥ १९१ ॥
 ककारपूर्वकं सर्वं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
 अमृताख्यो वरो लोहः सर्वत्रैवोपयुज्यते ॥ १९२ ॥
 अनेन जन्तवः स्वस्था नीरुजः सन्ति नान्यथा ।

इत्यमृताख्यं लोहरसायणम् ।

शतावरीक्षिन्नरुहा हृपमण्डतिकावला ।
 तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्वचस्तथा ॥ १९३ ॥
 मार्गीपुष्करमूलस्य पृथक् पञ्चपलानि तु ।
 जलद्रोणे विपक्तव्य मष्टभागावशेषितम् ॥ १९४ ॥
 दिथ्यौषधि हतम्यापि माक्षिकेन हतस्य च ।
 पलद्वादश देयं रुक्मलोस्य चूर्णितम् ॥ १९५ ॥
 खण्डतुल्यं घृतं देयं पलपोडशकं बुधैः ।
 पचेत्तान्ममये पात्रे गुड़ादेः पाकवद्यथा ॥ १९६ ॥
 मस्यार्धं मधुनी देयं शुभाश्वजतुकं त्वचम् ।
 शृङ्गं विडङ्ग कृष्णाच शृङ्गनाजी पलं पलम् ॥ १९७ ॥
 विफलाधान्याकं पत्र द्वयं मरिचकेगरम् ।
 घूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ॥ १९८ ॥

यथा कालं प्रयुञ्जीत विडालपदकं ततः ।
 गव्यक्षीरानुपानञ्च सेव्य मांसरसं पयः ॥ १८८ ॥
 गुरुवृथापानानि स्निग्धं मांसादि वृंहणम् ।
 रक्तपित्तं प्रदुष्टञ्च चयं कासं विशेषतः ॥ २०० ॥
 वातरक्तं प्रमेहञ्च शीतपित्तं वमिं कृमम् ।
 खयथुं पाण्डुरोगञ्च कुष्ठं ग्रीहीदरं तथा ॥ २०१ ॥
 पानाहं रक्तस्रावञ्च अस्त्रपित्तं निहन्ति च ।
 चक्षुष्यं वृंहणं वृथं माङ्गल्यं प्रीतिवर्धनम् ॥ २०२ ॥
 आरोग्यं पुत्रदं श्रेष्ठं कायाऽग्निबलवर्धनम् ।
 श्रीकरं लाघवकरं खण्डखाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ २०३ ॥
 छागं पारावतं मांसं तित्तिरिक्ककराः शशाः ।
 कुलिङ्गाः कृष्णसाराये तेषां मांसानि योजयेत् ॥ २०४ ॥
 नारिकेरपयः पानं सुनिपन्नकवास्तुकम् ।
 शुष्कमूलकजीवाण्य पटोलं वृहतीफलम् ॥ २०५ ॥
 फलं वार्त्ताकपक्वान् खज्जूरं स्वादुदाडिमम् ।
 ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसम्भवम् ॥ २०६ ॥
 वर्जनीयं विशेषेण खण्डखाद्य समञ्जता ।

इति खण्डखाद्यो लेहः ।

यच्च पित्तज्वरे प्रोक्तं वह्निरन्तश्च भेषजम् ।
 रक्तपित्ते हितं तच्च क्षीणक्षतहितं च यत् ॥ २०७ ॥
 शीतावगाहसेकाद्याः प्रशस्तारक्तपित्तिनाम् ।
 दाडिमामलकं विद्वानस्त्रसात्मनाय दापयेत् ॥ २०८ ॥
 शालिपष्टिकनीवारं चणसुहृमसूरकाः ।
 श्यामाकाश्च प्रियंवदश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ २०९ ॥
 पटोलनिम्बवेण्वाश्च तण्डुलीयादयो हिताः ।

पारावतकपोतांश्च लावान् रक्ताक्षवर्णकान् ॥ २१० ॥
 शशान्कपिञ्जलानैषां क्लृप्तिष्वान् कालपुच्छकान् ।
 रक्तपित्तहरान्विद्या द्रसांस्त्रेधां प्रयोजयेत् ॥ - -
 ईषदन्ताननमन्ताश्च घृतभृष्टान् सशर्करान् ॥ २११ ॥
 सामान्यो हितयोगेषु द्रव्यशक्तिं समीक्ष्य हि ।
 प्रयोज्यो रक्तपित्तादौ योगो वातादिजो गदे ॥ २१२ ॥
 इति वङ्गसेने रक्तपित्तनिदानचिकित्साधिका
 समाप्तः ॥ ८ ॥

—०—

अथ राजयक्ष्मनिदानमाह ।

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमासनात् ।
 त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतु च दुष्टयात् ॥ १ ॥
 कफप्रधानैर्दापिस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ।
 अतिव्यवायिनो वापि क्षीणैरेतस्यऽनन्तराः ।
 क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ २ ॥
 श्लासाङ्गसादकफसंस्त्रवतालुशोष
 वम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः ।
 शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः
 शुक्ले क्षणो भवति मांसपरोरिरं सुः ॥ ३ ॥
 स्वप्नेषु काकशुकशङ्खकिनीलकण्ठ
 गृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाय ।
 तं याद्वयन्ति सनदीर्विजलाय पद्मे-
 ष्टुष्कांस्तरुनूपवनधूमदवादितांश्च ॥ ४ ॥

षंसपार्श्वामितापश्च सन्तापः करपादयोः ।
 ज्वरः सर्वाङ्गगद्येति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ५ ॥
 कासो ज्वरः पार्श्वशूलं स्वरभेदो महारुचिः ।
 अग्निमान्द्यं विजानीया लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ६ ॥
 स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं सङ्कोचश्चांसपार्श्वयोः ।
 ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ ७ ॥
 शिरसः परिपूर्णं त्व मभक्ताच्छन्द एव च ।
 कासः कण्ठस्य चोद्गसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ ८ ॥
 भक्ताद्वेपो ज्वरः कासः श्वासः शोणितदर्शनम् ।
 स्वरभेदश्च जायन्ते पङ्कुरूपे राजयक्ष्मणि ॥ ९ ॥
 एकादशभिरेभिर्वा पङ्कभिर्वापि समन्वितम् ।
 कासातिसारपार्श्वार्त्तिं स्वरभेदाऽरुचिज्वरैः ॥ १० ॥
 त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैः ज्वरकासाऽष्टगामयैः ।
 जङ्घाच्छोपादितं जन्तुं स्मिच्छन् विपुलं यशः ॥ ११ ॥
 सर्वैरर्धैस्त्रिभिर्वापि लिङ्गैर्मांसबलक्षयैः ।
 युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोप्यतोऽन्यथा ॥ १२ ॥
 महाशनं क्षीयमाण मतिसारप्रपीडितम् ।
 शूनमुष्कोदरश्चैव यक्ष्मणं परिवर्जयेत् ॥ १३ ॥
 शक्ताच्चमन्नदेष्टार मूर्ध्वग्नासनिपीडितम् ।
 कृच्छ्रेण बहुमेहतं यच्चाहन्तीह मानवम् ॥ १४ ॥
 परं दिनसहस्रन्तु यदि जीवति मानवः ।
 सुभिषग्निरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः ॥ १५ ॥
 उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥ १६ ॥
 ध्यावायशोकवार्धश्च व्यायामाऽध्वप्रशोषितान् ।
 व्रणोरक्षतसंज्ञो च शोषिणो लक्षणैः शृणु ॥ १७ ॥

ध्यायशोषीशुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः ।
 पाण्डुदेहो यथा पूर्वं क्षीयन्ते चास्य घातवः ॥ १८ ॥
 मध्यान्शीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः ।
 विना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरुपलक्षितः ॥ १९ ॥
 जराशोषो कृशो मन्दो नष्टबुद्धिबलेन्द्रियः ।
 कम्पनोऽरुचिमान् भिन्न कांक्षयांश्च हतस्वरः ॥ २० ॥
 टीवति श्लेष्मणाहीनो गौरवारुचिपीडितः ।
 संप्रसृतास्यनासाक्षः शुष्करूचमलच्छविः ॥ २१ ॥
 पध्वशोषी च स्रस्ताङ्गः संभ्रष्टपरुषच्छविः ।
 प्रसृप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥ २२ ॥
 व्यायामशोषोभूयिष्ठ मेभिरेव समन्वितः ।
 लिङ्गैरुच्यतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ २३ ॥
 रक्तक्षयाद्देदनाभि स्तथैवाहारयन्त्रणात् ।
 मणितस्य भवेच्छेषः स चासाध्यतमो मतः ॥ २४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

ध्यायशोषिणां क्षीररसमांसाज्यभोजनैः ।
 सकलैर्मधुरैर्हृद्यैः जीवनीयैरुपाचरेत् ॥ २५ ॥
 हृष्यणाग्नासनैः क्षीरैः सिग्धैर्मधुरशीतलैः ।
 दीपनैर्लघुभिश्चात्रैः शोकशोषमुपाचरेत् ॥ २६ ॥
 पास्यासुखैर्दिवास्वप्न शीतैर्मधुरहृद्यैः ।
 तक्रमांसरसाहारै रध्वशोषिणमाचरेत् ॥ २७ ॥
 मणशोषं जयेत् सिग्धैर् दीपनैः स्वादुशीतलैः ।
 रूपदश्चैरनश्चैवां यूपमांसरसादिभिः ॥ २८ ॥

व्यायामशोषिणं स्निग्धैः क्षतक्षयहितैर्हिमैः ।
 उपाचरेज्जीवनीयैर्विधिना श्लेष्मिकेन तु ॥ २९ ॥
 बलिनी बहुदोषस्य पञ्चकर्माणि कारयेत् ।
 यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम् ॥ ३० ॥
 शुक्रायतं बलं पुसां मलायतञ्च जीवितम् ।
 अतो विशेपात् सरत्तेष्टु यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ ३१ ॥
 शालिपट्टिकगोधूम यवमुद्गादयः शुभाः ।
 मद्यानि जाङ्गलाः पक्षि मृगाः शस्ताविशोपिताः ॥ ३२ ॥
 मूलकानां कुलित्यानां यूपैर्वा सूपसंस्कृतैः ।

—०—

सपिप्पलीकं सयथं सकुलित्यं सनागरम् ।
 दाडिमामलकोपितं स्निग्धमाजं रस पिबेत् ॥ ३३ ॥
 ब्रेन पण्डुनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥ ३४ ॥
 दृश्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतोऽष्टगुणं जलम् ।
 पादस्थं संस्कृतं चान्नं पण्डितो यूप उच्यते ॥ ३५ ॥
 इति पण्डितयूपः ।

धान्यकं पिप्पली विश्व दशमूलीजलं पिबेत् ।
 पार्श्वशूलज्वरश्वास पीनसादि निवर्तये ॥ ३६ ॥
 अश्वगन्धान्ता भांगी दशमूलीवचाहपा ।
 पुष्करातिविप्रेक्षन्ति क्षयं क्षीररसाग्निः ॥ ३७ ॥
 कपिमांसं समादाय श्लक्ष्णचूर्णन्तु कारयेत् ।
 तत्पिबेत् क्षीरसंयुक्तं क्षयरोगहरं परम् ॥ ३८ ॥
 छादितं क्षागमांसन्तु श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ।
 अलाक्षीरेण पातय्य क्षयव्याधिविनाशनम् ॥ ३९ ॥
 दशमूलवचाराद्या पुष्करसुरदारुनागैः कथितम् ।

पेयं पार्श्वशिरोरुक् क्षयकासादि शान्तये सलिलम् ॥ ४० ॥

ककुभत्वङ्गागबला वानरिबीजानि चूर्णितं पयसि ।

पक्वं मधुघृतयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम् ॥ ४१ ॥

स्थिरा पुनर्नवैरण्ड वासर्पभाः सजीवकाः ।

स्त्रदंद्वाभीरुलांगूली विदारीहंसपादिका ॥ ४२ ॥

वृहत्थौ वृश्चिकाली च द्वे मेदे मर्कटी तथा ।

शोषगुल्मानिलश्वास कासपित्तहरो गणः ॥ ४३ ॥

द्विपञ्चमूलीमगधा धान्यनागरजं जलम् ।

चातुर्जातकसंयुक्तं पिबेन्नित्यं क्षयातुरः ॥

कासज्वरादिशमनं बलपुष्टिविवर्धनम् ॥ ४४ ॥

समूलपत्रच्छदपल्लवाया रसः प्रयोज्यो मदयन्तिकायाः ।

मासोपबोगेन समस्तलिङ्गं यक्ष्माणमुग्रं हरति प्रसङ्ग ॥ ४५ ॥

छागमांमं पयः छागं छागं सर्पिः सनागरम् ।

छागोपसेवाशयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ ४६ ॥

कूष्माण्डकफलोत्थेन रसेन परिपेषितम् ।

लाक्षाकर्षद्वयं पीत्वा जयेद्रक्तक्षयं नरः ॥ ४७ ॥

व्योषं शतावरोव्रोणि फलानि द्वे बले तथा ।

सर्वाभयहरो योगः सेव्यो लोहरजोन्वितः ॥ ४८ ॥

एतद्वचः क्षतं हन्ति कण्ठजां विविधां रुजम् ।

राजयक्ष्माणमत्युग्रं बाह्वृक्षभ्रमयार्दितम् ॥ ४९ ॥

मधुनाप्या विडङ्गाग्रं जतुलोद्घृताभयाः ।

घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताग्निः ॥ ५० ॥

धव्यव्योषविडङ्गानि चूर्णं कृत्वा निहेत्तरः ।

सर्पिमधुभ्यां सुष्येत क्षयरोगाच्च भङ्गयः ॥ ५१ ॥

दिनकरदीधितिशोपित पारायतमांममनुदिनं नियतम् ।

यो लेदिमधुष्टताभ्यां सजयति यक्ष्माणमत्युग्रम् ॥ ५२ ॥

कृष्णाद्राचासितालेहः क्षयहा क्षौद्रतैलवान् ।

मधुसर्पियुतो वाश्वगन्धा कृष्णासितोद्भवः ॥ ५३ ॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहेत् क्षयो ।

क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके ॥ ५४ ॥

शतपुष्पा नतं कुष्टं मधुकं देवदारु च ।

पिष्ट्वा लेपः ससर्पिष्कः पृष्टपार्श्वशरुक्षु च ॥ ५५ ॥

चूर्णं काकुभमिष्टं वासकरसभावितं बहन्वारान् ।

मधुष्टतसितोपलाभिर्लिह्यं क्षयकासरक्तपित्तहरम् ॥ ५६ ॥

—०—

जीवन्ती शतबीजा च विकसा सुपुनर्नवा ।

अश्वगन्धामयाभांगी तर्कारीमधुकं बला ॥ ५७ ॥

विदारोसर्पपा कुष्टं तंडुलीयाऽतसीफलम् ।

मापास्तिलाश्च किष्टश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ५८ ॥

यवचूर्णञ्च द्विगुणं दद्यायुक्तं समाक्षिकम् ।

एतदुद्धर्तनं कार्यं पुष्टिवर्णबलप्रदम् ॥ ५९ ॥

पुष्टये शोषिणां कार्यं मभ्यगोद्धर्तनार्दिकम् ।

इति जीवन्त्याद्युद्धर्तनम् ।

पिवेत्रागवलामूलं सार्धं कर्पं विवर्द्धितम् ।

पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवर्त्तीरनन्नभुक् ॥ ६० ॥

एष प्रयोगः पुष्ट्यायुः बलारोग्यकरः परः ॥ ६१ ॥

—०—

मितोपलातुगाक्षीरी पिप्पली बहुला त्वचः ।

अन्ध्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ ६२ ॥

चूर्णितं प्राशयेदेतच्छ्वासकासध्वरापहम् ।

पार्श्वशूलञ्च मन्दाग्निं सुप्तनिद्रामरोचकम् ।
हस्तपादाङ्गदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे ॥ ६२ ॥

इति सितोपलादिलेहः ।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा ।
यथोत्तरं भागद्वया त्वगैला चार्द्धभागिके ॥ ६४ ॥
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा ।
कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ ६५ ॥
हृत्पाण्डुरहणीदोषं घ्नीहशीपञ्चरापहम् ।
छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ ६६ ॥
कल्पयेद् गुटिकाञ्चैव चूर्णं पक्ता सितो पलम् ।
गुटिका ह्यग्निसंयोगा चूर्णालिप्ततरा स्मृता ॥ ६७ ॥

इति तालीसादिचूर्णगुटिका ।

तालीशं चित्रकं व्योषं दाडिमं तित्तिडोयकम् ।
एतेषां पलिकान् भागान् दीप्यको गजपिप्पली ॥ ६८ ॥
यवानो शतमेदश्च लमिघ्नं ग्रन्थिकं तथा ।
चञ्चलं केसरञ्चैव हृत्पुषाजाज्यधान्यकम् ॥ ६९ ॥
जातीफलं लवङ्गञ्च त्रिसुगन्धं कषा शुभा ।
एतेषां कर्पमेवान्तु द्विगुणा शर्करा भवेत् ॥ ७० ॥
पीनसं राजयक्ष्माणं हृद्रोगं वातपैत्तिकम् ।
मूषकच्छात्रेवरोगान् पाण्डुरोगं हलोमकम् ॥ ७१ ॥
अशोति वातजान् रोगाञ्चत्वारिंशश्च पैत्तिकान् ।
विंगतिं त्रैषिकांश्चैव त्रैकादशगन्धप्रधानान् ॥ ७२ ॥
ध्वराच्छूलानि चार्णांसि भगन्दराञ्च गोपकान् ।
वैशद्यं हननञ्चैव ऊरुन्तन्त्रं हृत्पुषम् ॥ ७३ ॥

महातालीशमित्येतत् सर्वान् व्याधीन् व्यपोहति ॥ ७४ ॥

इति महातालीशादिचूर्णम् ।

तालीसमरिचनानर पिप्पलीतन्मूलमुटिफलत्वचः ।

जातिफलमृणालं त्वक्क्षीरीमुस्ततुल्यांशम् ॥ ७५ ॥

चूर्णं विगुणसितोपल मेतद्द्वयं प्रदीपनं हृद्यम् ।

ज्वररक्तपित्तकास श्वासक्षयगुल्मशूलघ्नम् ॥ ७६ ॥

कृम्यतिसारग्रहणी हृद्रोगा मूढभारुतं दाहम् ।

करचरणादिषु शमयति पांडुमदं कण्ठरोगञ्च ॥ ७७ ॥

इति तालीशार्थं चूर्णम् ।

कर्पूरचोचकं कोल जाजीफलदलैः समैः ।

लवङ्गमांसीमरिचैः कृष्णाशुण्ठीविवर्धितैः ॥ ७८ ॥

चूर्णं सिता समं हृद्यं रोचनं क्षयकासजित् ।

वैश्वर्यश्वासगुल्मार्शः कृदिकण्ठामयापहम् ॥ ७९ ॥

प्रबुधं चान्नपानेषु भेषजहेषिणां हितम् ॥ ८० ॥

इति कर्पूरार्थं चूर्णम् ।

जातिफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं तिलोः ।

दालीसं चन्दनं शुण्ठी लवङ्गं चोपकुक्षिका ॥ ८१ ॥

कर्पूरं चामयाधानी भरिचं पिप्पलीतुगा ।

एषामक्षसमा भागा द्यातुर्जातकसंयुताः ॥ ८२ ॥

पलानि सप्तमङ्गायाः शर्करा सम योजिताः ।

जयेत्कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमग्निमार्दवम् ॥ ८३ ॥

वातक्षेपोद्भवांथान्यान् प्रतिश्यायानऽरोचकान् ।

एतानिव रुजो हन्ति हृक्षमिन्द्राशनिर्यया ॥ ८४ ॥

इति जातिफलादिचूर्णम् ।

शृङ्गार्जुनाश्वगन्ध नागबलापुष्कराद्वयाच्छिन्नहः ।
तालीसादिसमेता रोहता मधुसर्पिभ्यां यक्षहराः ॥ ८१ ॥
शृङ्गार्थं चूर्णम् ।

यवानीतित्तिडोकञ्च नागरश्चाम्बवेतसम् ।
दाडिमं वदिरश्चाम्बं कार्पिकानुपकल्पयेत् ॥ ८२ ॥
धान्यसौवर्चलाजाजी वराङ्गं चार्द्धकार्पिकम् ।
पिप्पलीनां पलञ्चैकं द्वे पले मरिचस्य च ॥ ८३ ॥
शर्करायाश्च चत्वारो पलान्येकत्र चूर्णयेत् ।
जिह्वासंशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचकम् ॥ ८४ ॥
हृत्प्रीहपार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाह नाशनम् ।
कासश्चामहरं ग्राहो ग्रहण्यर्शो विबन्धनुत् ॥ ८५ ॥
इति यवान्याद्यं चूर्णम् ।

सूक्ष्मैलाकेमरं त्वक् च पत्रं तालीशजं तुगा ।
पृथ्विका दाडिमं धान्यं जीरकञ्च द्विकार्पिकम् ॥ ८६ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूल चयचित्रकनागरम् ।
मरिचं दीप्यकञ्चैवं वृक्षाञ्च चाम्बवेतसम् ॥ ८७ ॥
अजमोदाजगन्धा च दधित्यस्येति कार्पिकम् ।
प्रदेयमिह शुद्धायाः कर्करायाश्चतुष्पलम् ॥ ८८ ॥
चूर्णं मस्ति प्रदातव्यं परमं रुचिवर्धनम् ।
भ्रीहकाममघागामि श्चामं शूलं ज्वरं वमिम् ॥ ८९ ॥
निहन्ति दीपयत्यग्निं बलवर्णप्रदं परम् ।
यातानुमोमनं हृद्यं कण्ठजिह्वादिशोधनम् ॥ ९० ॥
इति सूक्ष्मैलाद्यं चूर्णम् ।

गुडुचीगारियाकृत्या पक्षमूलीवलाहपम् ।
समूतपत्रयाश्चस्तु पृथग्दशपलानि च ॥ ९१ ॥

जलद्रोणे विषक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ।

पिप्पलीचन्दनं लोभ्रं ङ्गीविरोशीरर्पणम् ॥ ८६ ॥

पाठाभूनिम्बयद्याह त्रायन्तो नीलसुत्पलम् ।

सुस्तकेन्द्रयवाः शण्ठो कटुकं सदुरालम् ॥ ८७ ॥

त्वक्पत्रं वृषमूलञ्च कल्कैरर्धपलैर्भिषक् ।

अजाक्षीरेण तत्तुल्यं घृतप्रस्यं विपाचयेत् ॥ ८८ ॥

हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं रक्तपित्तं त्रिदोषजम् ।

श्वासकासक्षतक्षीण दाहशोथरुजापहम् ॥ ८९ ॥

इत्यमृतार्घ्यं घृतम् ।

शसामृतारिष्टनिदग्धिकानां रसेऽश्वगन्धेभवलार्जुनाम् ।

सिद्धं सपक्षोपणपुष्कराणां कल्कैर्घृतं छागपयस्य शोषे ॥ १०० ॥

इति वासाद्यं घृतम् ।

बलाविदारिगन्धाभ्यां विदार्थ्यामलकेन च ।

सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्थं पेयमनुत्तमम् ॥ १०१ ॥

इति बलाद्यं घृतम् ।

घृतं खर्जूरमृद्वोका मधुकैः सपर्ययकैः ।

सपिप्पलीकैर्वैश्वर्यं कासश्वासज्वरापहम् ॥ १०२ ॥

इति खर्जूराद्यं घृतम् ।

एलाजमोदामलकाभयाच्च गायत्रिनिम्बागनसालसारान् ।

विडङ्गभङ्गातकचित्रकञ्च कटुत्रिकाभोदसुराद्रिकांस्तु ॥ १०३ ॥

पक्वा जले तेन पचेत्तु सर्पिस्तस्मिंस्तु सिद्धे त्ववतारिते च ।

त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलायादद्यात्तुगाक्षीरिपलानि षड् च ॥ १०४ ॥

प्रस्ये घृतस्य द्विगुणञ्च दद्यात् चौद्रं ततो मन्यक्तं विदध्यात् ।

पल पल प्रातरतो लिहेच्च पश्चात्पिबेत् क्षीरमतन्द्रितश्च ॥ १०५ ॥

एतद्विधेयं परमं पवित्रं दोषघ्नमायुथतमं तथैव ।

यक्ष्माणमाशुव्यपहन्ति नूनं पाण्डुमयश्चैव भगन्दरश्च ॥ १०१ ॥
 न चात्र किञ्चित्परिवर्जनीयं रसायनश्चैतदुपास्य मानम् ।
 द्रव्यैल्लामन्यघृतम्

अत्र चतुर्गुणक्वाथेन कल्कमिदं पाच्यम् ।

—०—

दशमूलोऽमृतात् क्षीरात् सर्पिर्यदुदियान्नवम् ।
 सपिप्पलीकं सक्षीरं घृतं स्वरविशोधनम् ॥ १०७ ॥
 शिरः पार्श्वींशशूलघ्नं कासश्वासत्वरापहम् ॥ १०८ ॥
 इति दशमूलोऽमृतं घृतम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूल चव्यचित्रकनागरैः ।
 सयावशूकैः सक्षीरैः स्रोतसां शोधनं घृतम् ॥
 कल्कोऽन्नपादिकः कार्यः क्षीरश्चापि चतुर्गुणम् ॥ १०९ ॥
 इति षडङ्गघृतम् ।

जीवन्ती मधुकं द्राक्षा फलानि कुटजस्य च ।
 शण्ठीपुष्करमूलश्च व्याघ्रीगोक्षुरकं बला ॥ ११० ॥
 नीलोत्पल चामलकी त्रायमाणा दुरालभा ।
 पिप्पली च समष्टिष्टा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥ १११ ॥
 एतद् व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम् ।
 रूपमेकादशविधं सर्पिकृत् व्यपोहहि ॥ ११२ ॥
 इति जीवन्त्याद्यं घृतम् ।

पिप्पलीगुडसंयुक्तं क्षागक्षीरयुतं घृतम् ।
 एतदग्निं विह्वलयं सर्पिण्य चयकासिनाम् ॥ ११३ ॥
 इति पिप्पलीघृतम् ।

यटीयनागुडूथस्य पञ्चमूलतुलां पचेत् ।
 द्रोणिपामदभाक्ये तत्र पात्रं पचेद् घृतम् ॥ ११४ ॥

धात्रीविदारीक्षुरसे त्रिपात्रे पयसोऽर्मेणे ।

सुपिष्टैर्जीवनीयैश्च पाराशरमिदं दृतम् ॥ ११५ ॥

ससैन्धवं राजयक्ष्माणं सुन्मूलयति शीलितम् ॥

इति पाराशरदृतम् ।

श्वदंष्ट्रां सदुरालभां चतस्रः पर्णिनीं बलाम् ।

भागानेतान्मितान् कृत्वा पलं पर्पटकस्य च ॥ ११६ ॥

पचेदष्टगुणे तोचे चतुर्भागावशेषिते ।

रसे तु पूते द्रव्याणां मेघां कल्कं समाचरेत् ।

शठीपुष्करमूलानां पिप्पली त्रायमाणयोः ॥ ११७ ॥

आमलक्याः किरातस्य तिक्तस्य कुटजस्य च ।

फलानां शारीवायाश्च सुपिष्टानक्षरममितान् ॥ ११८ ॥

तैः साधयेद् दृतप्रस्थं चीरं द्विगुणितं भिषक् ।

ज्वरं दाहं भ्रमं शोषं मंशपार्श्वशिरोरुजम् ॥ ११९ ॥

लघ्णाश्लुर्दिमतिसारं मेतत्सर्पिर्व्यपोहति ।

पचेदष्टगुणेनात्र दृतं त्रेयं चिकित्सकैः ॥ १२० ॥

इति श्वदंष्ट्राद्यं दृतम् ।

कागर्मासं तुलां गृह्य साधयेन्नखणेऽश्वसि ।

पादशेषेण तेनैव सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत् ॥ १२१ ॥

ऋद्धिर्वृद्धिश्च मेदे द्वे जीवकर्पभक्तौ तथा ।

काकोलीचीरकाकोली कल्कैः पृथक् पलोन्मितैः ॥ १२२ ॥

सम्यक् सिद्धे चावतार्य्य शीते तस्मिन् प्रदापयेत् ।

शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः गुडवं चिपेत् ॥ १२३ ॥

पक्व प्रक्षालितेष्वात र्यक्ष्माणं हन्ति दुस्तरम् ।

क्षतक्षयश्च कासश्च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ १२४ ॥

स्वरक्षयसुरोरोगं श्वासं हन्यात् शुद्धस्तरम् ।

बलमांसकरं वृष्य मग्निसन्दीपनं परम् ॥ १२५ ॥

स्त्रिंशु चतुष्पदे श्रेष्ठं पुंस्तु वै विहगे मतम् ।

इति क्वागलाद्यं घृतम् ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कपाये प्रस्थद्वयं मांसरसस्य चैकम् ।

कल्कं बलायाः सुनियोज्यगर्भं सिद्धं पयः प्रस्थयुत घृतञ्च ॥ १२६ ॥

सर्वाभिधातोत्यतयक्ष्मशूल क्षतक्षयोत्कासहरं प्रदिष्टम् ॥ १२७ ॥

इति बलागर्भं घृतम् ।

चन्दनाम्बुनखं वाप्यं यष्टीशैलेयपद्मकम् ।

मञ्जिष्ठा सलिलं दारु कट्फलं पूतिकेशरम् ॥ १२८ ॥

पल्लैले च सुरामांसी कङ्कोलं वनितांबुदम् ।

हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ १२९ ॥

त्वयेणु नलिका चैभि स्तैलं मस्तुचतुर्गुणम् ।

लाक्षरससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकम् ॥ १३० ॥

अपभारज्वरोन्माद कृत्या लक्ष्मीविनाशनम् ।

आयुः पुष्टिकरश्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ १३१ ॥

इति चन्दनाद्यं तैलम् ।

क्षीरे चतुर्गुणे तैले प्रस्थं सिद्धं तिलोद्भवम् ।

शतशः पाचितं यष्टी पलकल्केन यत्नतः ॥ १३२ ॥

पाननस्यादिभिर्यक्ष्म हृद्बुदामयपांडुजित् ।

कर्ष्वजमुगुदोन्माद रक्तपित्तविसर्पनुत् ॥ १३३ ॥

इति शतपाकतैलम् ।

ज्वरमन्तापदीर्घान्ये लाघातैले प्रयोजयेत् ।

वासरोगाधिकारोक्तं पारम्यय्योपदेयतः ॥ १३४ ॥

वासकस्य रसप्रस्थं मानिका मितशर्करा ।

पिप्पलीद्विपलं सर्पिर्दत्त्वा सृहग्निना पचेत् ॥ १३५ ॥

लेहीभूते ततः पश्चात् शीते क्षौद्रपलाष्टकम् ।

इत्वावतारयेद्द्वयो मात्रया लेहमुत्तमम् ॥ १३६ ॥

नेहन्ति राजयक्ष्माणं श्वासकासश्च दारुणम् ।

गार्धूलश्च हृच्छूलं रक्तपित्तं क्ष्वरं तथा ॥ १३७ ॥

इति वासावलेहः ।

त्वक्क्षीरोश्वावणीद्राक्षा मूर्वर्यभकजीवकैः ।

श्रीरक्षीक्षीरकाकोली वृहतीकपिकच्छुभिः ॥

वृज्जूरविषमेदाभिः क्षीरपिष्टैः पलोन्मितैः ॥ १३८ ॥

धात्रीविदारोक्षुरस प्रस्थैः प्रस्थं वृतात्पचेत् ।

शर्करायास्तुलां शीते क्षौद्रार्धप्रस्थमेव च ॥ १३९ ॥

इत्वा सर्पिर्गुडान् कुर्व्यात् कासहिक्का क्ष्वरामयम् ।

यच्चाणन्तमकं श्वासं रक्तपित्तं हलीभकम् ॥ १४० ॥

शुक्रनिद्राचयं वृष्णां हन्युः कार्श्यं सकामलाम् ।

इति सर्पिर्गुडः ।

विल्वाग्निमन्यश्चोनाक काशस्यैः पाटलावला ।

पर्णस्यतस्तः पिप्पल्यः खदंष्ट्रा वृहतीद्वयम् ॥ १४१ ॥

शृङ्गीतामलकीद्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु ।

अमृता धाभया वृद्धिर्जीवकर्पभकौ शठी ॥ १४२ ॥

मूस्तं मृनर्नवा मेदा सूचमैलोत्पलचन्दने ।

विदारोक्षपमूलानि काकोलीकाकनासिका ॥ १४३ ॥

एषां पलोन्मितान् भागान् शतान्यामलकस्य च ।

पञ्चदद्यात्तदैकथं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १४४ ॥

ज्ञात्वा रसगतानेता नौषधानथ तद्रसान् ।

तच्चामलकमुदृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥ १४५ ॥
 पलद्वादशके भृष्टा दत्त्वा चार्धतुलां भिषक् ।
 मत्स्यण्डिकायाः पूताया स्नेहवत्साधुसाधयेत् ॥ १४६ ॥
 पदपलं मधुनद्यात्र सिद्धसिते प्रदापयेत् ।
 चतुष्पलं तुगाचीर्याः पिप्पल्याद्विपलं तथा ॥ १४६ ॥
 पलमेकं निदध्याच्च ज्वगैलापत्रकेशरात् ।
 इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥ १४८ ॥
 कासश्वासहरश्चैव विशिषेणोपदिश्यते ।
 क्षीणचतानां वृद्धानां बालानां चाङ्गवर्धनम् ॥ १४८ ॥
 स्वरक्षयसुरोरीगं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
 पिपासां मूत्रशकृत्स्थान् दोषांचैवापकर्षति ॥ १५० ॥
 अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत योऽपरुश्यान्नभोजनम् ।
 अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुष्ठ्वोऽभूत् पुनर्युवा ॥ १५१ ॥
 मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्व मायुः प्रहर्षं बलमिन्द्रियाणां
 स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ १५१ ॥
 रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाक्षमेतजीर्णोऽपि कुटीप्रवेगात् ।
 नराक्षतं रूपमपास्य पूर्वं विभर्त्तिरूपं नवयौवनानाम् ॥ १५१ ॥
 केचिदिच्छन्ति मत्स्यण्ड्याः स्थाने तु शितशर्करा ।
 मृदुकल्कं समः पाको भृष्टधात्रा प्रशस्यते ॥ १५४ ॥
 चतुर्भागजले प्रायो द्रव्यं गतं रसं भवेत् ।
 अयन्तु च्यवनप्राशः पित्तोद्रेके प्रशस्यते ॥ १५५ ॥
 चत्वारः पण्ड्यवायास्य दीयते प्रथमं किल ।
 इति च्यवनप्रागावलेहः ॥
 उच्चटेक्षुरसः क्षीद्रं तुगाचीर्यास्य सुविमान् ।
 प्रस्य प्रस्यं पृथग्गृह्य शर्करार्धतुलान्तया ॥ १५६ ॥

आत्मगुणाफलानाञ्च कुडवं मरिचस्य च ।
 त्रिसुरान्विकृतावापं मन्यानेन विमन्ययेत् ॥ १५७ ॥
 पलिकान्भोदकान् कृत्वा स्थापयेद्वाजने वरे ।
 एतद्विकालमेकं वा खादेदग्निबलं प्रति ॥ १५८ ॥
 बटकान्नियताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
 सहन्याद्यक्षिणः सद्य एकादशविधं चयम् ॥ १५९ ॥
 स्वरवर्णवलोदार्यं तुष्टिपुष्टिविवर्धनम् ।
 आयुथं पौष्टिकं चाग्न्यं भूतोपहतचेतसाम् ।
 व्याकुलीकृतदेहानां वृद्धाणां क्षीणरेतसाम् ॥ १६० ॥
 वाजीकरणमप्येवं बन्ध्यानां पुत्रदं परम् ।
 धनुः स्त्रीमद्यभाराध्व खिन्नानां बलवर्धनम् ॥ १६१ ॥
 हृत्प्लीहग्रहणीदोष मूलकच्छापतन्त्रकम् ।
 अपस्मारविषोन्माद नाशनं तद्रसायनम् ॥ १६२ ॥

इत्युच्चटाद्यो मोदकः ॥

ज्वराणां शमनीयो यः पूर्वमुक्तः क्रियाविधिः ।
 यक्ष्मिणां ज्वरदाहेषु ससर्पिष्कः प्रशस्यते ॥ १६३ ॥
 नित्यं स्वदेवपूजा भक्ति भैषज्य देवता गुरुषु ।
 छागलमांसपयोऽश्वन् जीवति यच्चाधिकारं प्रतिमान् ॥ १६४ ॥
 पद्रवान् सत्वरवैकृतादीन् जयेद्यथाक्षिप्रमवेक्ष्यशास्त्रम् ।
 गतेत् कुवेद्यप्रतिपादितानि बुद्धेर्विरुद्धानि च भैषजानि ॥ १६५ ॥
 इति वङ्गसेनेराजयक्ष्मनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ १० ॥

अथ क्षतक्षयनिदानमाह ।

धनुराऽऽयस्यतोत्यर्थं भारमुद्धहतो गुरुम् ।
 युद्धमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ १ ॥
 हृषं हयं वा धावन्तं दम्यं चान्यं निगृह्यतः ।
 शिला काष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ २ ॥
 अधीयानस्य बाल्यञ्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् ।
 महानदीं वातरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ ३ ॥
 सहस्रोत्पततो दूरं तूर्णं वापि प्रनृत्यतः ।
 तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा ॥ ४ ॥
 विक्षते वक्षसि व्याधिर्वलवान् समुदीर्यते ॥ ५ ॥
 स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रुक्षस्याल्पमिताशनः ।
 उरो विरुध्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विदह्यते ॥ ६ ॥
 प्रपीड्यते ततः पार्श्वं शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते ।
 क्रमादङ्गं बलं वीर्यं रुचिरग्निस्रवो ज्ञेयते ॥ ७ ॥
 ज्वरो दाहो मनोदैन्यं विड्मेदोऽग्निवधावपि ।
 कुष्ठः श्यावः सुदुर्गन्धः पीतो विप्रयितो बहु ॥ ८ ॥
 कासमानस्य वाऽभोक्ष्यं कफः सान्द्रय जायते ।
 सक्षतः क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्लौजसः क्षयात् ॥ ९ ॥
 अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ १० ॥
 उरोरुक् शोणितच्छदिः कागो वैशेषिकः क्षते ।
 घोषे मरुत्तमूयत्वं पार्श्वेष्टकटीग्रहः ॥ ११ ॥
 क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्यभिधीयते ।
 संगोपणादमादीनां गोप इत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥
 अन्यनिद्रस्य दीप्तान्तेः साध्यो यन्वतो मयः ।

परिसम्बलरो याप्यः सर्वलिङ्गं विवर्जयेत् ॥ १३ ॥
 भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासशोणितदर्शनम् ।
 स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राजयक्ष्मणि ॥ १४ ॥
 परं दिनसहस्रन्तु यदि जीवति मानवः ।
 सुभियग्निरुपक्रान्त स्तरुणः शोषपीडितः ॥ १५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

प्राणरोधात् क्षयाद्वापि कोष्टात्पूतियुतात्तथा ।
 क्षतोरस्थश्चपाकेन निःश्वासो वाऽतिपूतिकः ॥ १६ ॥
 उरो मत्वा क्षतं लाक्षां पयसामधुसंयुताम् ।
 सद्य एव पिवेज्जीर्णं पयोऽद्याच्च शर्कराम् ॥
 पार्श्ववस्तिरुजि चाल्य पित्ताग्निस्तां सुरायुताम् ॥ १७ ॥
 भिन्नविट्कः समुस्ताभिर्विषापाठा सबल्लक्षा ।
 बलाश्लगन्धश्चीपणी बहुपत्नीपुनर्नवा ॥ १८ ॥
 पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति क्षतक्षयम् ॥ १९ ॥
 शर्करायवगोधूमं जीवकर्पभकौ मधु ।
 शृतं क्षीरानुपानञ्च लिङ्घ्यात् क्षीणः क्षतः क्षणः ॥ २० ॥
 इक्ष्वालिका विसग्रन्थि पद्मकेशरचन्दनैः ।
 शृतं पयो मधुयुतं संधानार्थं पिवेत् क्षती ॥ २१ ॥
 रक्तष्टीवी पिवेक्लिष्टं लाचारसपयो हृतैः ।
 वर्षाभृशर्करासुस्त शालितण्डुलजं रजः ॥ २२ ॥
 लाक्षाचूर्णन्तु सुकृतं क्षौद्राज्येन समन्वितम् ।
 अक्षक्षौढं शमयति शोषोद्भूतां धमि तथा ॥ २३ ॥

—०—

एलापत्रं त्वचो द्राक्षा पिप्पल्यर्धं पलं तथा ।

सितामधुकखर्जूर मृद्विकाश्च पलोन्मिताः ॥ २४ ॥

संचूर्ण्य मधुना युक्ता गुटिकाः संप्रकल्पयेत् ।

अक्षमात्रास्ततश्चैकां भक्षयेच्च दिने दिने ॥ २५ ॥

कासं श्वामं ज्वरं ह्रिक्कां हृदि मूर्च्छां मदं भ्रमम् ।

रक्तनिष्टोदनं वृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ २६ ॥

शोथप्लीहाव्यवातांश्च स्वरभेदं क्षतक्षयम् ।

गुटिकातर्पणीवृष्या रक्तपित्तञ्च नाशयेत् ॥ २७ ॥

इत्येलाद्यागुटिका ।

यष्ट्याश्च नागबलयोः काथे क्षीरसमे घृतम् ।

पयसापिप्पलीमांसी कल्कैः सिद्धं क्षये हितम् ॥ २८ ॥

इति यष्ट्याद्यं घृतम् ।

घृतं बलानागबलार्जुनांबु सिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।

हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तं कासानिलोत्थान् शमयत्युदोर्णान् ॥ २९ ॥

इति बलाद्यं घृतम् ।

श्वदंष्ट्रीशीरमञ्जिष्ठा बलाकाशमर्यकतृणम् ।

दर्भमूलं वृष्टपर्णी बलासर्पभक्ता स्थिरा ॥ ३० ॥

पलिकान् साधयेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।

कल्कैः स्वगुप्तवर्षाभू मेदा जीवन्ति जीवकैः ॥ ३१ ॥

गतावर्थादिमृद्बीका शर्करायावणीवृष्यैः ।

प्रस्यं सिद्धं घृताद्वात पित्तहृद्रोगगुल्मनुत् ॥ ३२ ॥

मूत्ररुच्छप्रमेहार्शः कामशोषक्षयापहम् ।

धनुः स्त्रीमध्यभाराध्व खिन्नानां बलमांमदम् ॥ ३३ ॥

इति श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् ।

द्राक्षायाः समितं प्रस्थं मधुकस्य पलायकम् ।
 पचेत्तोयादृके शुद्धे पादशेषेण तेन तु ॥ ३४ ॥
 पलिके मधुकद्राक्षे पिष्टे कृष्णापलद्वयम् ।
 प्रदायसर्पिषः प्रस्थं पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे ॥ ३५ ॥
 सिद्धे शीते पलान्यष्टौ शर्करायाः प्रदापयेत् ।
 एतद्द्राक्षाष्टतं सिद्धं क्षीणक्षतसुखावहम् ॥ ३६ ॥
 वातपित्तज्वरखास सविस्फोटहलीमकान् ।
 प्रदरं रक्तपित्तञ्च हन्यान्मांसबलप्रदम् ॥ ३७ ॥

इति द्राक्षाद्यं दृतम् ।

क्षीरे धात्रीविदारीक्षु क्षीरीणाञ्च तथा रसे ।
 पचेत्क्षमे दृतप्रस्थं मधुकैरिक्षुकान्वितैः ॥ ३८ ॥
 द्राक्षाद्विचन्दनीक्षीर शर्करोत्पलपद्मकैः ।
 मधूककुसुमानन्ता काश्मरीदणसंज्ञकैः ॥ ३९ ॥
 प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलां तथा ।
 पलार्धकांश्च संचूर्ण्य त्वगैलापत्रकेसरान् ॥ ४० ॥
 विनीयतस्य संलिङ्घान् मात्रां नित्यं सुयन्त्रितः ॥ ४१ ॥
 अमृतप्राशमित्येतदग्निभ्यां परिकीर्तितम् ।
 क्षीरमांसाशिनां हन्ति रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥ ४२ ॥
 दृष्ट्या रुचिश्चासकास हृदिमूर्च्छाप्रमर्दनम् ।
 मूत्रकच्छज्वरघ्नञ्च बलं स्त्रीरतिवर्धनम् ॥ ४३ ॥

इत्यमृतप्राशः ।

बलाविदारोद्भवा च पञ्चमूलीपुनर्नवा ।
 पञ्चानां क्षीरवृक्षाणां शुद्धाः सुष्टांशिकाः पृथक् ॥ ४४ ॥
 विपाच्य सलिलद्रोणे पूते पादावशेषिते ।
 पादांश्च छागोक्षीरे विदार्याः स्वरसे पृथक् ॥ ४५ ॥

प्यतां क्षीणशक्ताणां रक्ते क्षीरसिंसस्थिते ॥ ५६ ॥
 यदिदुर्बलभोरुणां पुष्टिवर्णबलार्थिनाम् ।
 तेनिदोषक्षतस्त्राव दुर्बलानाञ्च योपिताम् ॥ ५७ ॥
 भार्थिनीनां गर्भञ्च स्त्रवेद्यासां म्रियेत च ।
 न्यावल्या हितास्तासां शुक्रशोणितवर्धनाः ॥ ५८ ॥

इति सर्पिर्मोदकः ।

यद्यच्च तर्पणं शीतं भविदाहो हितं लघु ।
 व्रजपानं निपेयन्तु क्षतक्षीणे सुखार्थिभिः ॥ ५९ ॥
 शोकं स्त्रियः क्रोधमसूयताञ्च
 त्यजेदुदारान्विपयान् भजेत्तु ।
 तथा द्विजातींस्त्रिदशान् गुरुञ्च
 वाचञ्च पुण्याः शृणुयाद्विजैभ्यः ॥ ६० ॥

इति वङ्गसेने क्षतक्षयनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ११ ॥

—०—

अथ कासनिदानमाह ।

मोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूचाश्रनिषेवणाच्च ।
 मार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात् श्वयोस्तथैव ॥ १ ॥
 णोष्णदुदानानुगतः प्रदुष्टः सभिद्रकांस्यस्वनतुल्यघोषी ।
 तरेति वक्त्राब्जहसा सदोषो मनोपिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥ २ ॥
 पञ्चकासाः श्रुता वात पित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ।
 श्वायोपेक्षिताः सर्वे बलिनद्योत्तराक्षरम् ॥ ३ ॥

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता ।

कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानां मवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥

हृच्छहमूर्धोदरपार्श्वं शूलीक्षामाननः क्षीणबलः स्वरौजा ।

प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासतिशृङ्गमेव ॥ ५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

रूक्षस्या निलजं कास मादौ स्नेहैरुपाचरेत् ।

सर्पिर्भिर्वस्त्रिभिः पेया क्षीरयूपरसादिभिः ॥ ६ ॥

वास्तुको वायसीशाकं मूलकं सुनिपण्णकम् ।

स्नेहाक्षैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ ७ ॥

दध्यारनालाम्बफलं प्रसन्नापानमेव च ।

शस्यते वातकासेषु स्वाद्वस्त्रलवणानि च ॥ ८ ॥

ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमपट्टिकान् ।

रसैः मांसात्मगुप्तानां यूपैर्वा भोजयेदितान् ॥ ९ ॥

दशमूलोऽशुता कास श्वासहृक्कारजापहा ।

यद्वागूर्दीपनीहृष्या वातरोगविनाशिनी ॥ १० ॥

पञ्चमूलोक्तः कायः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।

रसाश्चमयतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ ११ ॥

रसं कर्कटकानां वा घृतभृष्टं सनामरम् ।

वातकासप्रशमनं शृङ्गीमत्स्यस्य वा पुनः ॥ १२ ॥

शठीशृङ्गीकणाभांगी गुडवारिदवासकैः ।

सतैर्लैर्वातकासघ्नैर्लेहोयमपराजितः ॥ १३ ॥

भागीद्राक्षाशठीशृङ्गी पिप्पलीविश्वमेयजैः ।

शुडतैल्युतो लेहो दितो मारुतकासिनाम् ॥ १४ ॥

चूर्णिता विश्वदुःस्पर्शा शृङ्गीद्राक्षाशठीसिता ।

लोढा तैलेन वातोत्थं कासं जयति दुस्तरम् ॥ १५ ॥

—०—

दशमूलिकपायेण भांगीकल्कैर्दृतं पचेत् ।

दक्षतित्तिरोनिर्यूहे तत्परं वातकासनुत् ॥ १६ ॥

इति दशमूलाद्यं दृतम् ।

भांगीकल्कैर्दृतञ्चाथ पचेद्दघ्निचतुर्गुणे ।

भांगीरसं द्विगुणितं वातकासहरं परम् ॥ १७ ॥

इति भांग्यादिदृतम् ।

द्रोणेऽपां साधयेद्रास्त्रां दशमूलीं शतावरीम् ।

पलिकां मानिकाशांस्त्रीन् कुलित्यान्वदरान् यवान् ॥ १८ ॥

तुलाईं राजमापस्य पादशेषेण तेन तु ।

दृताढकं समं क्षीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ १९ ॥

सिद्धं तद्दशभिः कल्कैः नस्यपानानुवासनैः ।

समोक्ष्यवातरोगेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ २० ॥

पञ्चकासाच्छिरःकम्पं शूलं वङ्गणयोनिजम् ।

सर्वाङ्गैकाङ्गरोगाथ सङ्गीहोर्ध्वानिलं जयेत् ॥ २१ ॥

जीवकर्पभक्ती मेदे काकोत्थौ मधुकं सह ।

जीवन्तोजीवनीयोऽयं मधुरो जीवनो गणः ॥ २२ ॥

सूर्यपर्णीं विना केचि दष्टवर्गमिमं विदुः ।

ऋद्धिद्विद्युतं चान्ये जीवन्ती मधुकं विना ॥ २३ ॥

इति रास्त्राद्यं दृतम् ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं व्योषं सुखं दुरालभाम् ।

शठीपुष्करमूलञ्च त्र्यम्बकी सुरसायवा ॥ २४ ॥

भांगीक्षिन्नरुहारास्त्रा कर्कटाख्यां च कार्ष्णिकान् ।

कल्कान्निदग्धिकार्धस्य कपाये पलविंशतिः ॥ २५ ॥
 मत्स्यण्डिकाया दत्त्वा तु सर्पिषः कुङ्कुमं पचेत् ।
 सिद्धशोते पृथक् चोद पिप्पली कुङ्कुमान्वितम् ॥ २६ ॥
 चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः चूर्णितं तत्र दापयेत् ।
 लेहयेत्कासहृद्रोग श्वासगुल्मनिवारणम् ॥ २७ ॥

इति कण्टकार्यावलेहः । इति वातकासनिदानम् ।
 उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषै रभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृपार्तः ।
 पित्तेन पीतानि वमैत्कटूनि कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥ २८ ॥
 काकोलीवृहतीमेदा युग्मैः सहपनागरैः ।
 पित्तकासे रसक्षीर यूपाद्याप्युपकल्पयेत् ॥ २९ ॥
 वलाहिवृहतीद्राक्षा वासाभिः कथितं जलम् ।
 पित्तकासापहं पेयं शर्करा मधुयोजितम् ॥ ३० ॥
 शठोक्तीविरहृहती शर्करा विश्वमेपजम् ।
 पक्षारसं पिवेत्पूतं सष्टतं पित्तकासनुत् ॥ ३१ ॥
 सरादिपञ्चमूलस्य पिप्पलीद्राक्षयोस्तथा ।
 कपायेण शृतं क्षीरं पिवेत्समधुशर्कराम् ॥ ३२ ॥
 द्राक्षामधुकखर्जूर पिप्पलीमरिचान्वितम् ।
 पित्तकासहरं ह्ये तल्लिङ्गान्माक्षिकसर्पिषा ॥ ३३ ॥

—०—

महिष्यजाविगोक्षीर धात्रीफलरसैः समैः ।
 सर्पिःप्रस्यं पचेद्युक्त्या पित्तकासनिवारणम् ॥ ३४ ॥
 इति षट्प्रस्यं घृतम् ।
 पापोथक्षीरिणां शुक्लान् पचेत् क्षीरचतुर्गुणे ।
 द्राक्षाकल्को घृतं सिद्धं लिङ्गातत्पित्तकासनुत् ॥ ३५ ॥
 इति क्षीरघृतम् ।

क्षीरहृत्ताडुरक्ताथं पक्कं क्षीरसमं घृतम् ।

पाययेत्पित्तकासघ्नं मधुना चावलेहयेत् ॥ ३० ॥

इति द्वितीय क्षीरघृतम् । इति पित्तकासः ।

प्रलप्यमानेन मुखेन सीदन् शिरोरुजार्तः कफपूर्णदेहः ।

अभक्तरुगौरवसादयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥ ३८ ॥

कफजे छर्दनं कार्यं मामे लङ्घनमेव च ।

शस्तं यवान्विकृतियूपांश्च कटुतिक्तकान् ॥ ३९ ॥

सुहामलाभ्यां यवदाडिमाभ्यां कर्कन्धुनामूलकशुण्ठिकेन ।

शुण्ठीकणाभ्यां सकुलित्यकेन यूपो नवाङ्गः कफरोगहर्त्ता ॥ ४० ॥

इति नवाङ्गयूपः ।

शुण्ठीसातिविषा सुस्तं शृङ्गीकर्कटस्य च ।

अभयाशृङ्गवेरञ्च समान्दृष्टदिपेपयेत् ॥ ४१ ॥

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सुखोदकपरिप्लुतम् ।

काले पानाय दातव्यं श्लेष्मकर्मनिवर्हणम् ॥ ४२ ॥

तैलभृष्टश्च पिप्पल्याः कल्काच्चं ससितोपलम् ।

पिवेद्वा कफवातघ्नं कुलित्यं सलिलप्लुतम् ॥ ४३ ॥

पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्मसमुद्भवम् ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलोजलं पिवेत् ॥ ४४ ॥

पौष्करं कटुफलं भाङ्गी विश्वपिप्पलीसाधितम् ।

पिवेत्क्वाथं कफोद्रेके कासश्वासे च हृदग्रहे ॥ ४५ ॥

देवदारुशुण्ठीरसश्च शृङ्गीधन्वयवासकम् ।

तैलक्षोद्रयुतं लिङ्गाच्छ्लेष्मकासे सुदारुणे ॥ ४६ ॥

व्योपपुष्करमृद्धीका त्रिफलायुतिचित्रकैः ।

मधुतैलयुतो लेहः श्लेष्मकासनिवर्हणः ॥ ४७ ॥

समूलपत्रशाखायाः कण्टकाथीरसाटुके ।

घृतप्रस्थं बलाव्योष विडङ्गशठिचित्रकैः ॥ ४८ ॥

सौवर्चलयवच्चार विल्वामलकपुष्करैः ।

वृक्षीव वृहतीपथ्या यवानीदाडिमादिभिः ॥ ४९ ॥

द्राक्षापुनर्नवाचव्य दुरालम्भाम्बवेतसैः ।

शृङ्गीतामलकीभांगी रास्त्रागोक्षुरकैः पचेत् ॥ ५० ॥

कल्कैस्तु सर्वकासेषु हिक्काश्वासै च शस्यते ।

कण्ठकारीघृत सिद्धं कफकासनिपूदनम् ॥ ५१ ॥

इति वृहत्कण्ठकारीघृतम् ।

व्योषाजमोदचित्रक जीरकपङ्कग्न्यन्यकचव्यकल्कितम् ।

सर्पिः कफकासहरं वासकरसाधित समधु ॥ ५२ ॥

इति व्योषाद्यं घृतम् ।

निर्गुण्डिपत्रस्वरसेन सिद्धं

सर्पिः कफोत्थं विनिहन्ति कासम् ॥ ५३ ॥

इति निर्गुण्डीघृतम् ।

विभीक्ष्णं घृताभ्यक्त गोशक्त्यपरिवेष्टितम् ।

स्निग्धमग्नौ हरेत्कास ध्रुवमास्यविधारितम् ॥ ५४ ॥

इति श्लेष्मकासः ।

कट्फलं कटणं भार्गी मुस्तं घान्यं बलाभया ।

शुण्ठोपपेटकं शृङ्गी सुराक्षश्च जले शृतम् ॥ ५५ ॥

मधुहिङ्गयुतं पेय कासे घातकफात्मके ।

कण्ठरोगे मुखे शूले श्वासे हिक्काज्वरेषु च ॥ ५६ ॥

इति कट्फलादिः कायः ।

सर्वज्जातीफलपिप्पलीना भागान् प्रकल्प्याद्यसमानमीषान् ।

कर्पार्धमेकं भरिचम्य दद्यात्पलानि चत्वारि महीषघस्य ॥ ५७ ॥

तासमं चूर्णमिदं प्रसङ्ग रोगानि मांस्तु प्रबलाच्चिहन्ति ।

मज्ज्वरारोचकमेहगुल्म श्वासाग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु ॥ ५८ ॥

इति लघुलवङ्गादिसमशर्करं चूर्णम् ।

सिंहास्यामृतसिंहीना काथं मधुसमायुतम् ।

पित्तक्षेपित्ते कफजे कासे श्वासे ज्वरे चये ॥ ५९ ॥

वासकः स्वरसः पेयो मधुयुक्तो हिताग्निना ।

पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ॥ ६० ॥

वातश्लेष्मकृते कासे तालीसाद्यं प्रयोजयेत् ।

पित्तयुक्ते भवेच्छ्रेष्ठं वशरोचनयायुतम् ॥ ६१ ॥

—०—

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ।

पुष्कराक्षशठीविल्व सुरसाव्योषहिगुभिः ॥ ६२ ॥

पैयानुपेन तत्पेयं कासे वातकफात्मके ।

श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ६३ ॥

इति दशमूलार्घ्यं घृतम् ।

शृङ्गराजरसप्रस्थं शृङ्गवैररसं तथा ।

कटुतैलमथ च प्रस्थं गोमूत्रप्रस्थसंयुतम् ॥ ६४ ॥

दशमूलकुलित्याद्य शुष्कमूलकशिशुकम् ।

मांसीं च कुडवांशानि काथयेत्सलिलाढके ॥ ६५ ॥

पादशेषेण तेनापि कल्कं दत्वा विपाचयेत् ।

देवदारुवचाकुष्ठं शताह्वालवणत्रयम् ॥ ६६ ॥

हिगुतुम्बुरुष्णीव्योष यवानोजीरकद्वयम् ।

चित्रकं पिप्पलीमूल वरा शृङ्गरसस्तथा ॥ ६७ ॥

कट्फलं चित्रकश्चैव सम भागानि कारयेत् ।

सम्यक् सिद्धञ्च विज्ञाय पाने नस्ये प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

घृतप्रस्थं बलाव्योष विडङ्गशठिचित्रकैः ॥ ४८ ॥

सौवर्चलयवक्षार बिल्वामलकपुष्करैः ।

वृद्धीव वृहतीपथ्या यवानीदाडिमादिभिः ॥ ४९ ॥

द्राक्षापुनर्नवाचव्य दुरालम्भाश्वेतसैः ।

शृङ्गीतामलकीभाङ्गी रास्त्रागोक्षुरकैः पचेत् ॥ ५० ॥

कल्कैस्तु सर्वकासेषु हिक्काश्वासै च शस्यते ।

कण्ठकारीघृत सिद्धं कफकासनिपूदनम् ॥ ५१ ॥

इति वृहत्कण्ठकारीघृतम् ।

व्योषाजमोदचित्रक जीरकपङ्कगन्धिकचव्यकल्कितम् ।

सर्पिः कफकासहरं वासकरसाधित समधु ॥ ५२ ॥

इति व्योषाद्यं घृतम् ।

निर्गुण्डपत्रस्वरसेन सिद्धं

सर्पिः कफोत्थं विनिहन्ति कासम् ॥ ५३ ॥

इति निर्गुण्डीघृतम् ।

विभीषकं घृताभ्यक्तं गोशक्तत्परिवेष्टितम् ।

स्निग्धमग्नौ हरेत्कासं ध्रुवमास्यविधारितम् ॥ ५४ ॥

इति श्लेष्मकास ।

कट्फलं कट्फलं भाङ्गी सुस्तं धान्यं बलाभया ।

शुण्ठोपपटकं शृङ्गी सुराङ्गञ्च जले शृतम् ॥ ५५ ॥

मधुहिङ्गयुतं पेय कासे धातकफात्मके ।

कण्ठरोगे मुखे शूले श्वासे हिक्काज्वरेषु च ॥ ५६ ॥

इति कट्फलादिः काय ।

सवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान् प्रकल्प्याच्चसमानमीषान् ।

कर्पाधमेकं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि मद्दोषघ्नस्य ॥ ५७ ॥

ताम्रं चूर्णमिदं प्रसह्य रोगानि मांस्तु प्रबलानिहन्ति ।
 रसज्वरारोचकमेहगुल्म श्वासाग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु ॥ ५८ ॥
 इति लघुलवङ्गादिसमशर्करं चूर्णम् ।
 सिंहास्यामृतसिंहीनां काथं मधुसमायुतम् ।
 पित्तपित्ते कफजे कासे श्वासे ज्वरे क्षये ॥ ५९ ॥
 वातकः स्वरसः पेयो मधुयुक्तो हिताग्निना ।
 पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ॥ ६० ॥
 वातश्लेष्मकृते कासे तालीसाद्यं प्रयोजयेत् ।
 पित्तयुक्ते भवेच्छ्रेष्ठं वंशरोचनयायुतम् ॥ ६१ ॥

—०—

दशमूलादके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ।
 पुष्कराक्षगठीबिल्व सुरसाव्योपहिंगुभिः ॥ ६२ ॥
 पेयानुपानं तत्पेयं कासे वातकफात्मके ।
 श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ६३ ॥
 इति दशमूलार्घ्यं घृतम् ।

शृङ्गराजरसप्रस्थं शृङ्गवेररसं तथा ।
 कटुतैलस्य च प्रस्थं गोमूत्रप्रस्थसंयुतम् ॥ ६४ ॥
 दशमूलकुलित्याय शुष्कमूलकशिग्रुकम् ।
 मांसी च कुडवांशानि काथयेत्सलिलादके ॥ ६५ ॥
 पादशेषेण तेनापि कल्कं दत्वा विपाचयेत् ।
 देवदारुवचाकुष्ठं शताह्वलवणत्रयम् ॥ ६६ ॥
 हिंगुतुम्बुरुणोव्योषं यवानोजीरकद्वयम् ।
 चित्रकं पिप्पलीमूलं वरा शृङ्गरसस्तथा ॥ ६७ ॥
 कटुफलं चित्रकश्चैव समभागानि कारयेत् ।
 सम्यक् सिद्धञ्च विज्ञाय पाने नस्ये प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

सितासमं चूर्णमिदं प्रसङ्गं रोगानि मांस्तु प्रबलाविहन्ति ।
कासज्वरारोचकमेहगुल्मं श्वासग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु ॥ ५८ ॥

इति लघुलवङ्गादिसमशर्करं चूर्णम् ।
सिंहास्यामृतसिंहोनां कायं मधुसमायुतम् ।

पित्तश्लेष्मकृते कासे श्वासे ज्वरे चये ॥ ५९ ॥

वासकः स्वरसः पयो मधुयुक्तो हिताग्निना ।

पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ॥ ६० ॥

वातश्लेष्मकृते कामे तालीसाद्यं प्रयोजयेत् ।

पित्तयुक्ते भवेच्छ्रेष्ठं बंशरोचनयायुतम् ॥ ६१ ॥

—०—

दशमूलादके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ।

पुष्कराक्षशठीबिल्वं सुरसाव्योपहिङ्गुभिः ॥ ६२ ॥

पैयानुपोर्न तत्पेयं कासे वातकफात्मके ।

श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ६३ ॥

इति दशमूलाद्यं घृतम् ।

शृङ्गराजरसप्रस्थं शृङ्गवैररसं तथा ।

कटुतैलस्य च प्रस्थं गोमूत्रप्रस्थसंयुतम् ॥ ६४ ॥

दशमूलकुलित्याय शुष्कमूलकशियुकम् ।

भांगी च कुङ्कुमांशानि काथयेत्सलिलादके ॥ ६५ ॥

पादशेषेण तेनापि कल्कं दत्त्वा विपाचयेत् ।

देवदारुवचाकुष्ठं शताक्षालवणत्रयम् ॥ ६६ ॥

हिङ्गुतुम्बुरुणीव्योषं यवानोजीरकद्वयम् ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं वरा शृङ्गरसस्तथा ॥ ६७ ॥

कट्फलं चित्रकश्चैव समभागानि कारयेत् ।

सम्यक् सिद्धञ्च विज्ञाय पाने नस्ये प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

वातश्लेष्मात्मके कासे प्रतिश्याये च पीनसे ।

श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ६८ ॥

तैल त्विदं भङ्गराजं कफव्याधिविनाशनम् ॥

इति भङ्गराजतैलम् । इति वातपित्तश्लेष्माधिकारः ।

—०—

अथ निदानम् ॥

अतिव्यवायभाराऽथ युद्धाऽथ गजनियहै ।

रूक्षस्योरक्षतं वायुं गृहीत्वा कासमावहेत् ॥ ७० ॥

सपूर्वं कासते शुष्कं तत एवैक्षशोणितम् ।

कण्ठेन रुजताऽत्यर्थं विभिन्नेनेव चोरसा ॥ ७१ ॥

सूचिभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।

दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ ७२ ॥

पर्वभेदज्वरश्वासदृशा वैश्वर्यपीडितः ।

पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतोभूवात् ॥ ७३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

कासे तु क्षतजे वक्ष्ये जीवनीयैर्हतैरपि ।

शमनैः पित्तकासघ्नै रन्यैश्च मधुरौषधैः ॥ ७४ ॥

यथागू वा पिवेत्सिद्धा क्षतीरस्क सुशोतलाम् ॥ ७५ ॥

द्वाचेक्षुबालिकोपद्ममृणालोत्पचन्दनैः ।

शृतं पेया मधुयुतां सन्धानार्थं पिवेत् क्षती ॥ ७६ ॥

—०—

इत्थिचुवालिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनैः ।

मधुकं पिप्पलीद्राक्षा लाक्षाशृङ्गीशतावरी ॥ ७७ ॥

द्विगुणा च तुगाक्षीरो सिता सर्वैश्चतुर्गुणा ।

लिङ्गात्तन्मधुसर्पिभ्यां क्षतकासनिवृत्तये ॥ ७८ ॥

इतीक्षाद्यावलेहः ।

पिप्पलीपद्मकं द्राक्षा सुपक्वं वृहतीफलम् ।

घृतचौद्रयुतो लेहः क्षयकासनिवर्हणः ॥ ७९ ॥

मञ्जिष्ठमूर्वानतवज्जिपाठाः क्षणां हरिद्रां विलिहेद्विचूर्ण्य ।

घौद्रेण कासे क्षतजे क्षयोले पिवेद् घृत चेक्षुरसे विपक्वम् ॥ ८० ॥

—०—

इत्थिचुवालिकापद्म मृणालोत्पलचन्दनैः ।

शृतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं पिवेत् क्षती ॥ ८१ ॥

इतीक्षादिभिर्चरिपाकः ।

—०—

पञ्चाशच्च पलं स्त्रिवं कूष्माण्डात् प्रस्थमाज्यत ।

पक्वं पलशतं खण्डं वासा काथाढके पचेत् ॥ ८२ ॥

शुभ्राधात्रोघनो भार्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्पिकैः ।

पिप्पलीकुडवच्चैव मधुमानं प्रदापयेत् ॥ ८३ ॥

कासं श्वास क्षय द्विकां रक्तपित्त हलोमकम् ।

हृद्रोगमग्नपित्तञ्च पीनसञ्च व्यपोहति ॥ ८४ ॥

युक्तसर्पिषु कूष्माण्डे पाके गन्धेन सुद्रव्यम् ॥

इति वासाकूष्माण्डकः । इति क्षतकासः ।

विपमासात्प्रभोज्याति व्यवयातिप्रजागरैः ।

घृणिनां शोचता नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयोमलाः ॥ ८५ ॥

कुपिता चयज कास कुर्युर्देहचयप्रदम् ॥ ८६ ॥

मगावशूलज्वरदाहमोहान् प्राणचयं चोपलभेत कामी ।

शुष्कश्च निष्टीवति दुर्बलश्च प्रक्षीणमासो रुधिर संप्रयम् ॥ ८७ ॥

त सर्वलिङ्ग भृशदुश्चिकित्स्य चिकित्सितज्ञा चयजं वदन्ति ॥ ८८ ॥

इत्येव चयज कास क्षीणाना देहनाशनः ।

माथ्यो बलवता वास्या द्वाप्यस्वेव चतोत्थितः ॥ ८९ ॥

नवी कदाचित् सिध्येता मपि पादगुणान्विती ।

स्त्रविराणा जराकास सर्वो याप्य प्रकीर्तितः ॥ ९० ॥

चीन् पूर्वान् साधयेत् साध्यान् पथेर्याप्यास्तु यापयेत् ॥ ९१ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पिप्पलीपक्षक लाक्षा सपक्व हृहतीफलम् ।

घृतचौद्रयुतो लेह चयकामनिवर्हणः ॥ ९२ ॥

पूर्णं काकुभनिष्क वासकरसभावितं बङ्गन्वारान् ।

मधुघृतसितोपलाभि लेंड्य चयकासपित्तहरम् ॥ ९३ ॥

—०—

पिप्पलीगुडससिहं छागक्षोरयुतं घृतम् ।

एतदग्निविह्वल्य सर्पिश्च चयकामिनाम् ॥ ९४ ॥

इति पिप्पल्याय घृतम् ।

कुलीरशुक्तीशटकैणलावान्नि काप्यवर्गमधुरैस्तयान्यै ।

पचेद्वृतं तत्तु निषेव्यमानं हन्यात् चयोत्य चतजश्च कासम् ॥ ९५ ॥

इति कुलीराय घृतम् ।

द्विपञ्चमूलीत्रिफला भार्गीशुण्ठी मचिवकै ।

कुलित्यपिप्पलीमूल पाठाकीनयवैर्जले ॥ ९६ ॥

शृते नागरदुस्पर्शं शठीपिप्पलीपोष्करैः ।

कल्कैः कर्कटशृङ्गा च समैः सर्पिर्विपाचयेत् ॥ ८७ ॥

सिद्धेऽस्मिन् चूर्णितो चारो द्वौ पञ्चलवर्णानि च ।

दत्त्वा युक्त्या पिवेन्मात्रां क्षयकासनिपीडितः ॥ ८८ ॥

इति द्विपञ्चमूलाद्यं द्रव्यम् ।

शुभेऽङ्गिसुदेशसंभृतं मूलगतं सम्यग्द्व्यगन्धायाः ।

पुण्येऽहनि स क्षुण्णं विपचेद् द्रोणेऽभसि च विद्वान् ॥ ८९ ॥

ज्ञात्वाष्टभागसिद्धं गृह्णीयात्तद्रसं सुपरिपूतम् ।

द्वे चैवात्र पेलगते दद्याच्छागस्य मांसस्य ॥ ९० ॥

सर्पिःप्रस्थमथैकं गव्यञ्च पयश्चतुर्गुणं दद्यात् ।

कल्कानचसमाना नूर्ध्वमतः संप्रवक्ष्यामि ॥ ९१ ॥

काकोलीद्वयमृद्धी मेदे द्वे जीवकं स्वयं गुप्ताम् ।

हृषभकमेलान् मधुकं मृद्धीकां यासपिप्पली ॥ ९२ ॥

जीवन्तीसुपकुल्या वला विदारीं शतावरी चात्र ।

दत्त्वा सम्यग्विपचेत् सर्पिरथोद्धृत्यस्थित्वा च ॥ ९३ ॥

मधुशर्करयोः कुडवं दत्त्वा भाण्डे शुभे स्थितं मृदितम् ।

लीढा तत्प्राणितले यथेष्टमाहारमश्रीयात् ॥ ९४ ॥

क्षीणक्षतशिशुवृद्धाः क्षीणेन्द्रियहीनवलवर्णमासाद्य ।

प्राश्यप्रकुर्यात् सद्यः पुष्टिवलारोग्यं तेजासि ॥ ९५ ॥

उपयुज्यसर्पिरेतत् सप्ततिवर्षो युयेव पुनर्भूत्वा ।

बहुयः स्त्रियोऽधिगच्छेत् न चात्र शुक्रक्षयं लभते ॥ ९६ ॥

पुत्रार्थिनीचनारी लभते पुत्रान्वयस्यतीतेऽपि ।

वन्ध्यालभते पुत्रं प्राश्येदश्वाङ्गगन्धाद्यम् ॥ ९७ ॥

उपभुङ्क्ते यः पुरुषो मासत्रयं द्विमासं मासं वा ।

नारीगतं सर्गच्छेत्तैव भजेद्योपिता दत्तिम् ॥ ९८ ॥

खालित्यवलीपलितैर्नचास्य देहोभिभूयते क्षिप्रम् ।
 वातव्याधिभिरार्तस्तथैव हृदस्तिरोगार्त ॥ १०८ ॥
 न चिरादपि रोगार्ता भुञ्जानाः सर्पिररोगा भवन्ति ।
 अतो जगद्वितार्थि सर्पिरिदं वाजिगन्ध्यायाः ॥ ११० ॥
 श्रेष्ठं बाजोकरणं निर्दृष्ट्वा श्विभ्यां पूर्वं बहुशः ।
 प्रोक्तं वृष्यं वल्यं क्षयकासहरं पुष्टिकरञ्च ॥ १११ ॥
 इत्यश्वगन्धाद्यं घृतम् ।

पिप्पलीमधुकं वापि कार्पिकञ्च सितोपलम् ।
 प्रस्थिकं गव्यमाज्यञ्च क्षीरमिक्षुरसस्तथा ॥ ११२ ॥
 यवगोधूममृद्धीका चूर्णमामलकाद्रसम् ।
 तैलञ्च प्रसृतांशानि तत्सर्वं मृदुनाग्निना ॥ ११३ ॥
 पचेत्त्रैहं घृतक्षौद्र युक्तः सश्वासकामनुत् ।
 क्षयहृद्रोगकासघ्नो हितो वृद्धाऽल्परेतसाम् ॥ ११४ ॥
 इति पिप्पल्याद्व्याऽवलीङ्गः ।

सन्निपातभवो ह्येष क्षयकासः सुदारुणः ।
 सन्निपातहितं तस्मात् कार्यमत्र चिकित्सितम् ॥ ११५ ॥
 इति क्षयकासः ।

अमृतानागरं फञ्जी व्याघ्रीपर्णी सुसाधितः ।
 क्वाथः पिप्पलीचूर्णाव्यः कासश्वासौ जयत्यलम् ॥ ११६ ॥
 भांगी सनागरासिंहो कुलित्यं मूलकं तथा ।
 पिवेत्पिप्पलीचूर्णेन कासश्वासं व्यपोहति ॥ ११७ ॥
 खरसं शृङ्गवेरस्य माचिकेन समन्वितम् ।
 पाययेत्कामश्वासघ्नं प्रतिश्लायकफापहम् ॥ ११८ ॥
 पथ्या शुण्ठीघनगुडै गुटिकां धारन्मुखे ।
 सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा विभीतकम् ॥ ११९ ॥

नागरेणाभया तद्वत् कासमाश्रयपोहति ॥ १२० ॥
 सपिप्पलीपुष्करमूलपथ्या शुण्ठीशठीमुस्तकसूक्ष्मचूर्णैः ।
 गुडेन युक्ता गुटिकाः प्रयोन्याः श्वासेषु कासेषु च वर्धितेषु ॥ १२१ ॥
 अष्टाङ्गचूर्णसंयुक्त पक्का घोरं प्रयोजयेत् ।
 कासं श्वासान्वितं घोरं हन्यादेतन्नः संशयः ॥ १२२ ॥
 पञ्चकोलैः शृतं घोरं कफघ्नं लघुशस्यते ।
 श्वासकासारुचिहरं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ १२३ ॥

इति कासश्वासः ।

वाम्यमानस्य कासेन नासासावे स्वरं जडे ।
 चवथौ गन्धनासे च धूमपानं प्रयोजयेत् ॥ १२४ ॥

—०—

अथ कासे धूमानां पानम् ।

मनःशिलेलामरिचं मांसीमुस्तं सगुग्गुलम् ।
 धूमन्तस्यानु च पयः सुखोष्णं सगुडं पिबेत् ॥ १२५ ॥
 पञ्चकासान् चयद्वन्द्वं सर्वदोषसमुत्थितान् ।
 शतैरपि प्रयोगानां साधयेदप्रसाधितान् ॥ १२६ ॥

इति मनःशिलादिधूमपानम् ।

मनःशिलालिप्तदलं वदर्थ्याघर्मशोपितम् ।
 सचीरं धूमपानन्तु महाकासनिवारणम् ॥ १२७ ॥
 पिप्पला त्रिपुटधत्तूरं मूलव्योपमनःशिलाः ।
 तेन प्रलिप्यवसनं धूमवर्त्तिः प्रयोजयेत् ॥ १२८ ॥
 धूमं तस्याः पिबेद्यस्तु ब्रह्मात् कासमुदस्यति ॥ १२९ ॥
 अर्कचीरशिले तुल्ये तद्वर्द्धं कटुत्रिकम् ।
 चूर्णितं वज्रिनिक्षिप्तं पिबेद्धूमन्तु योगवित् ॥ १३० ॥

जातेरुत्तरदिङ्मूल शिलैलोगुंगुलुः समः ।

१९ यजामूर्त्रेण पिष्टोय धूमः कासहरः परः ॥ १३१ ॥

भक्षयेदथ तच्चूर्णं पिवेद्दुग्धमथांबुना ।

कासाः पञ्चविधायान्ति शान्तिमाशु न संशयः ॥ १३२ ॥

—०—

कण्टकारीकृत. काथ सक्कणः सर्वकासहा ।

कण्टकार्याः कणायाश्च चूर्णं मधुयुतं लिहेत् ॥ १३३ ॥

देवदारुबलारास्त्रा त्रिफलाव्योषधकैः ।

सविडङ्गैः शिलातुल्यं तच्चूर्णं सर्वकासनुत् ॥ १३४ ॥

—०—

कुनटीसैन्धवव्योष विडङ्गामलहिङ्गुभिः ।

सेहस्रान्यमधु, कास श्वासहिकानिवारणः ॥ १३५ ॥

इति कुनट्यादिलेहः ।

हरीतकीकणाशुण्ठी भरिचं गुडसयुतम् ।

करसप्तो मोदक प्रोक्तः पर चाग्निनदीपनः ॥ १३६ ॥

इति हरीतक्याद्यो मोदकः ।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगीलं

चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्ध्वमन्यात् ।

खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य

गुल्मादचिरसगरुण्डहृदामयेषु ॥ १३७ ॥

इति शर्करासमचूर्णम् ।

स्रवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान् प्रकृत्वा च समानमीषाम् ।

प्लतार्धमात्रं भरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महीषधस्य ॥ १३८ ॥

सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य रोगानि मानाश्वलान्निहन्त्यात् ।
कासज्वरारोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्द्य ग्रहणीप्रदोषान् ॥ २३८ ॥

इति वृहत्संस्कृतसमचूर्णम् ।

कर्षः कर्षाक्षिमयो पलं पलद्वयं तयार्धकैर्पथ ।

मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुड़यावशूकानाम् ॥ १४० ॥

मर्वीपधैरसाध्या ये कासाः सर्ववैद्यविनिर्मुक्ताः ।

अपि पूयं कर्दयतां तेषामिदमौषधं पथ्यम् ॥ १४१ ॥

अत्र दाडिमं दाडिमफलत्वक् च ।

इति मरिचाद्य चूर्णम् ।

प्रस्थं विभीतकानां मस्थि विहायसाधयेदजामूवे ।

लेहयेदवलेहोऽयं मधुयुक्तः श्वासकासघ्नः ॥ १४२ ॥

इति विभीतकावलेहः ।

जीवन्तीं मधुकं पाठां त्वग्चीरं त्रिफलां शठोम् ।

मुस्तैलां पिप्पलीं द्राक्षां द्वौ वृहत्यां विभीतकम् ॥ १४३ ॥

शरिषां पौष्करं मुलं कर्कटाख्यां रसाञ्जनम् ।

युनर्नवां लोहरज स्त्रायमाणां यवानिकाम् ॥ १४४ ॥

भार्गो तागलकीमृदि विडङ्गं धन्वयासकम् ।

चारं चित्रकहिंश्वस्त वेतसं देवदारु च ॥ १४५ ॥

चूर्णीकृत्यपलांशानि लेहयेन्मधुसर्पिषा ।

चूर्णं पाणितलं पञ्चकासान्नैतद्वपोहति ॥ १४६ ॥

इति जीवन्त्याद्य चूर्णम् ।

पद्मकं त्रिफलां व्योषं विडङ्गं सुरदारु च ।

चूर्णीकृत्यपलांशानि लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ १४७ ॥

एतैर्युग्मैः समैः सर्वैः पृथक् क्षौद्रं हृतं सिताम् ।

लिङ्गगलेहं विपचैतत् सर्वकासहरं परम् ॥ १४८ ॥

इति पञ्चकायं चूर्णम् ।

सर्पिर्गुडूचीतृपकण्टकारी क्वाथेन कल्केन च सिद्धमेतत् ।

पेयं पुराणज्वरकासशूल श्वासाग्निमान्द्यं ग्रहणोग्रदेष्टु ॥ १४९ ॥

इति सिंहासृतं घृतम् ।

घृतं रास्त्राबलापथ्या श्वदंष्ट्रा कल्कपाचितम् ।

कण्टकारीरसे सर्पिः पञ्चकासनिसूदनम् ॥ १५० ॥

इति कण्टकारीघृतम् ।

समूलपत्रशाखायाः कण्टकार्यास्तुलां शुभाम् ।

क्षुप्तां पचेज्जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १५१ ॥

मिश्रितेतत्कपायेस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

कल्कान्विल्वप्रमाणांश्च तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥ १५२ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।

सौवर्चलं यवक्षारो रास्त्रातिकटुकं वचा ॥ १५३ ॥

एतत्सर्पिः प्रशंसन्ति पञ्चकामनिवारणम् ।

श्वासं कासं प्रतिश्यायं श्लेष्मकासञ्च नाशयेत् ॥ १५४ ॥

निदग्धिकाघृतमिदं न व्याधिरतिवर्तते ।

जातशूलोऽपि संवृद्धो देवसेनामिवासुराः ॥ १५५ ॥

इति कण्टकारीघृतम् ।

कण्टकार्यास्तुलां क्षुप्तां कृत्वा द्रोणेऽग्निसि पचेत् ।

तेनादकेन क्वाथेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १५६ ॥

रास्त्रादुःस्यर्शपङ्कथ्या पिप्पलीद्वयचित्रकैः ।

सौवर्चलयवक्षार क्षणामूत्रैश्च तं जयेत् ॥ १५७ ॥

कासश्वासकफटीव हिंशारोचकपोनसान् ॥ १५८ ॥

इति कण्टकारीघृतम् ।

समूलपत्रशाखन्तु श्लक्ष्णं कृत्वाटरूपकम् ।

तस्य कुर्यात्पलशतं द्वौ प्रस्थौ पञ्चमूलयोः ॥ १५८ ॥

हरीतकी विभीतक्योर्वल्कलं कुडवद्वयम् ।

दद्यादामलकानाञ्च कुडवञ्च त्रिभागशः ॥ १५९ ॥

निःकाष्य सुलिलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ।

भेषजानि सुपिष्टानि तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥ १६० ॥

हे मेदे हे हरिद्रे च जीवकर्पभकाबुभी ।

काकोलीचीरकाकोली चन्दनं मधुकं तथा ॥ १६१ ॥

सुहृपणीमाषपणी पयस्या चापि पिप्पली ।

मरिचं चाग्नगन्धा च सशुण्ठीकाकनासिका ॥ १६२ ॥

सुध्मैला शतपुष्पा च मृद्वीका च शतावरी ।

पतैः सर्पिविपक्तव्यं गवां चीरे चतुर्गुणे ॥ १६३ ॥

सर्वकासाग्रहं सर्पिः क्षीणचतसुखावहम् ।

हिक्काश्वासहरश्चैव स्त्रररक्तप्रसादनम् ॥ १६४ ॥

इति बृहद्वासकायं द्रव्यं द्रव्यम् ।

कण्टकाय्यास्तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत् ।

पादावशेषिते तस्मिन् कल्कानेतान् प्रदापयेत् ॥ १६५ ॥

दुरालभाक्षिचरुहा भांगीकर्कटाह्वया ।

शस्त्रामुस्तं शठी चक्षुः चित्रकं वृषपं तथा ॥ १६६ ॥

पलांशानि पलान्यत्र शर्करायास्तु विंशतिः ।

द्रवतैलपलान्यस्मिन् द्रव्येष्टौ प्रदापयेत् ॥ १६७ ॥

कल्की कृत्वा द्रव्ये शीते मधुनोऽष्टपलं क्षिपेत् ।

चतुःपलं पिप्पलीनां तुगाक्षीर्याश्चतुःपलम् ॥ १६८ ॥

एषः श्लेहः शमयति पञ्चकासांश्चिरोत्थितान् ।

इति कण्टकाय्योलेहः ।

समूलपुष्पदकण्डकार्यास्तुलां जलद्रोणपरिष्कृताञ्च ।
 हरीतकीनाञ्च शतं निदध्यादेतत्तु पक्त्वा चरणावशेषम् ॥ १०० ॥
 गुडस्य दत्त्वा शतमेतदग्नी विपक्वमुतार्थं ततः सुशीते ।
 कटुत्रिकञ्च त्रिपलप्रमाणं पलानि षट्पुष्परसस्य चापि ॥ १०१ ॥
 क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्निप्रयुज्यमानो विधिनावलेहः ।
 वातात्मकं पित्तकफोद्भवञ्च द्विदोषकासानपि च त्रिदोषान् ॥ १०२ ॥
 क्षतोद्भवं च क्षयजञ्च हन्या तत्पीनसश्वासमुरक्षतञ्च ।
 यक्ष्माणमेकादशमुग्ररूपं भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥ १०३ ॥

इति व्याघ्रीहरीतकी ।

दशमूलीस्त्रयं गुप्ता शङ्खपुष्पीशठीबला ।
 हस्तिपिप्पल्यपामार्गं पिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ १०४ ॥
 मार्गीपुष्करमूलञ्च द्विपलांशं यवाढकम् ।
 हरीतकीशतञ्चैकं जले पञ्चादके पचेत् ॥ १०५ ॥
 यवैः स्त्रिभैः कषायन्तु पूतं तच्चाभयाशतम् ।
 पचेद् गुडतुलां दत्त्वा कुडवञ्च पृथग् दृतम् ॥ १०६ ॥
 तैलात्पिप्पलीचूर्णाञ्च सिद्धे शीते च माक्षिकात् ।
 कुडव पलमानं च चातुर्जातविचूर्णितम् ॥ १०७ ॥
 लिङ्गाद् द्वे चाभये नित्यं मतः खादेद्रसायनम् ।
 तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णयुर्बलवर्धनम् ॥ १०८ ॥
 पञ्चकासक्षयश्वासान् हिक्काः सविषमज्वरान् ।
 हन्यात् गुल्मग्रहण्यशौं हृद्रोगारुचिपीनसान् ॥ १०९ ॥
 अगस्त्रविहितं धन्यं मिदं श्रेष्ठं रसायनम् ।
 संख्या पलानां शतसो मतागस्त्यहरीतकी ॥ ११० ॥

इत्यगस्त्यहरीतकी ।

यथोद्दिष्टगुणं कुर्वन् पित्तञ्च कुरुते यदि ।

तथा सायं गुडो योज्य एष एवाल्पमात्रया ॥ १८१ ॥

आर्द्रद्रव्यद्रवद्रव्य पलैरष्टाभिरेव च ।

शष्पद्रव्यचतुष्केण कुडवः समुदाहृतः ॥ १८२ ॥

यवगोधूममाषाद्य तिलाद्यापि नवा हिताः ।

पुराणा विरसा रूक्षा न तदर्थकराः स्मृताः ॥ १८३ ॥

हरीतक्योऽपि नवा ग्राह्याः ।

—०—

अभयानां शतं दारुं शङ्खमुष्णीं मधूलिकाम् ।

स्वयं गुप्तां पञ्चमूल्यौ द्वे शठीं पुष्कराक्षयम् ॥ १८४ ॥

पञ्चकोलवला हस्ति पिप्पली साश्वमेदकान् ।

भार्गी पुनर्नवाञ्चैव द्विपलाशां यवाढकम् ॥ १८५ ॥

पञ्चेत्यश्वाढके तोये पादशेषं तथोद्धरेत् ।

विनीय चाभयां तत्र पुनश्चाग्नावधि त्रयेत् ॥ १८६ ॥

दत्त्वा गुडतुलां तत्र कषाये कुडवं पृथक् ।

तैलात् पिप्पलीचूर्णाच्च घृतात्क्षौद्रात्तथैव च ॥ १८७ ॥

पक्त्वा तस्मै हवत् स्थाप्य घृतभाण्डे विधानतः ।

पथ्यभुङ् नियताहारः खादेद् द्वे द्वे हरीतकी ॥ १८८ ॥

हन्त्याश्च ग्रहणीगुल्म पाण्डुर्ति विषमन्वरान् ।

यक्ष्मार्गं, घ्नीह वैश्वर्यं श्वासकासारचिह्नयान् ॥ १८९ ॥

बलवर्णान्निजनन बलीयलितनाशनम् ।

रसायनमिदं सिद्धं मगस्यविहितं मतम् ॥ १९० ॥

इति बृहदगस्यहरीतकी ।

यवाढके सप्तजलाढकानि हरीतकीभ्यान्तु शतं गुरुणाम् ।

लौहे कटाहे समधिग्रथित्वा द्रव्याणि चैतानि समाधीत ॥१८१॥
 दन्त्यश्वगन्ध्याचिरविल्वमूलं भस्मातकं विल्वफलं नतञ्च ।
 उभे हरिद्रे गंजपिप्पली च पत्रानि मूलानि च चित्रकस्य ॥१८२॥
 पिप्पल्यपामार्गमथात्कगुप्ता सर्वाणि कुर्यात्पलसम्मितानि ।
 एकत्र सर्वाणि भिषग्विदग्धाद् द्विपञ्चमूली च यवप्रमाणाम् ॥१८३॥
 मृदूनि सुखिन्नयवान् विदित्वा शनैः प्रयत्नादवतारयेच्च ।
 विस्त्राव्यतेनैव जलेन सार्धं पचेत्पुराणस्य शतं गुडस्य ॥ १८४ ॥
 भूयो गुरुणामपि तत्र दद्याद्वरोतकोनाञ्च सहस्रमन्यत् ।
 प्रस्यं पुराणस्य घृतस्य दद्यान्नवस्य तैलस्य च तावदेव ॥ १८५ ॥

शीते मधु स्नेहसमन्तु दद्यात्

पलानि चाष्टावथ पिप्पलीनाम् ।

सा कल्कमित्रा त्वथ सेव्यमाना

सर्वान् ज्वरान्नाशयतीहमासात् ॥ १८६ ॥

मासद्वयेनैव च नेत्ररोगान्विहन्त्यपूर्वाञ्च करोति दृष्टिम् ।

कुष्ठानि मासत्रयतो निहन्ति प्रभिन्नकर्णांगुलिनासिकानि ॥१८७॥

भगन्दरं श्लीषदवातगुल्मं

० श्वासं तथा मासचतुष्टयेन ।

संभक्षिता पञ्चभिरेव मासैः

करोति केशात् भ्रमराब्जनाभान् ॥ १८८ ॥

पण्डभिक्षु मासैः खलु मापि कुर्यात्

केशान् सुशीतान् घनकुञ्चिताग्रान् ।

सहस्रपथ्यामिथं चोपयुज्य

बले भयेदुत्तमकुञ्जरस्य ॥ १८९ ॥

स्वरं मयूरस्य हंसस्य वेगं शरच्छशाङ्कस्य पराञ्च कान्तिम् ।

सौभाग्यमेधांस्मृतसत्त्वयुक्तो बलान्वितः पञ्चदलायताक्षः ॥२००॥

जीवेत्समानाच्च सहस्रमग्रं प्रयोगकालादिति सत्यवाक्यम् ।
समीक्ष्यकल्पांस्तु चकारयोगं हिताय लोकस्य मुनिर्वसिष्ठः ॥ २०१ ॥

इति वशिष्ठहरितको ।

कुलित्यानां पलशतं दशमूलपलं तथा ।

शतं ब्राह्मणयज्याश्च चतुर्गुणजले शृतम् ॥ २०२ ॥

पादावशिष्टे पूते च गुडस्यार्धतुलां पचेत् ।

पाकं ज्ञात्वावतार्यैव सुशीते श्लेष्मचूर्णितम् ॥ २०३ ॥

षट्पलञ्च तुगाक्षीर्थाः पिप्पल्या द्विपलं तथा ।

कुडवं मधुनो दद्यात् स्यापयेत् स्निग्धभाजने ॥ २०४ ॥

खादेदग्निबलापिची नाशयेदचिरादयम् ।

यक्ष्माणं पीनसं कासं श्वासं जीर्णमजीर्णकम् ॥ २०५ ॥

जीर्णज्वरं पाण्डुरोगं हृद्रोगं श्लेष्ममारुतम् ।

कुलित्य गुड इत्युक्तः सर्वोपद्रवनाशनः ॥ २०६ ॥

इति कुलुन्यगुडः ।

चतुष्पलं मूलकशण्डिकस्य तथैव शुद्धस्य कुलित्यकस्य ।

तुल्यं प्रदद्याद्दशमूलतश्च द्रोणेऽग्नसः सर्वमिदं पचेत्तु ॥ २०७ ॥

दत्त्वा हविस्तैलपलाष्टकञ्च गुडस्य शुद्धस्य तुलां तथैव ।

तावत्पचेद्यावदिदं समस्तं सङ्ख्यदार्ढ्या गुडपाकमेति ॥ २०८ ॥

चूर्णीकृतैर्जीरकचव्यशृङ्गी भांगीर्विसौगन्धिककट्फलैश्च ।

मुस्तायवानीशठिपुष्करैश्च मथ्येपकैरर्धपलप्रमाणैः ॥ २०९ ॥

सार्धं क्षिपेन् मात्तिकप्रस्थमात्रं दद्यात् सुशीतेत्वथ वज्रपिप्प्लाम् ।

मात्रां ततो लेहवदालिहेश्च, पथ्याशनश्च द्वययोगकाले ॥ २१० ॥

कफोद्धवा ये, च विकारजाता सञ्ज्ञासकासाहृदयक्षतश्च ।

हृत्पार्श्वशूलज्वरच्छर्दिदृष्ट्या स्वरक्षयारोचकवह्निसादाः

तेनाशमायांत्युपयोगतश्च कुलित्यसंज्ञस्य गुडस्य शीघ्रम् ॥ २११ ॥

इति द्वितीयः कुलित्यगुडः ।

खादिरवासकपल्लव छाया शुष्कश्च संचूर्णम् ।

त्रिभागपिप्पलीयुक्तं कटुत्रयं मधुनावलिद्धात् ॥ ११२ ॥

इति कासश्लेष्मघ्नचूर्णम् ।

इति वङ्गसेने कासनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ १२ ॥

—०—

अथ हिक्कानिदानमाह

विदाहि गुरुविष्टम्भि रुक्षाभिष्यन्दिभोजनैः ।

शीतापानाशनस्नान रजो धूमातपानिलैः ॥ १ ॥

व्यायामकर्मभाराध्व वेगाघातापतर्पणैः ।

हिक्काश्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सखनो

यं कृत् श्लोहांवाणि सुखादि वा क्षिपन् ।

सघोषवानाशु हिनस्ति यस्मा-

त्ततस्तु हिक्कोत्यभिधीयते बुधैः ॥ ३ ॥

प्राणोदकाववाहीनि स्त्रोतांसि विकृतानिलः ।

हिक्कां करोति संरुध्य तासां लिङ्गं शृणु पृथक् ॥ ४ ॥

अव्रजो यमलां तुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ।

वायुः कफेनानुगतः पञ्चहिक्काः करोति च ॥ ५ ॥

कण्ठोरसो गुरुत्वञ्च वदनस्य कपायता ।

हिकाना पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ६ ॥

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः ।

हिकयत्यूर्ध्वगोभूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ७ ॥

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिका संप्रवर्तते ।

कम्पयन्तीशिरोभोवां यमलान्तां विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥

विकटकालैर्या पेनैर्मन्दैः समभिवर्तते ।

क्षुद्रिकानामसाहिका जत्र मूलाग्रधावति ॥ ९ ॥

नाभिप्रवृत्तायाहिका घोरागम्भीरनादिनी ।

अनेकोपद्रवती गम्भीरानाम सा स्मृता ॥ १० ॥

मन्मोण्यापीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते ।

महाहिकेति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी ॥ ११ ॥

आयम्यते हिकतो यस्य देहो

दृष्टिबोर्ध्वभ्राम्यते यस्य नित्यम् ।

क्षीणोन्नदिच्चैति यश्चातिमात्रं

तो हौ चांख्यौ वर्जयेदिकमानौ ॥ १२ ॥

अतिसंचितदोषस्य भक्तदोषकृतस्य च ।

व्याधिभिः क्षीणदेहस्य हृदस्यातिव्यवायिनः ॥ १३ ॥

आयासाद्यासमुत्पन्ना हिकाहन्त्याश्च जीवितम् ।

यमिकायाप्रलापार्तिमोहलश्यासमन्विता ॥ १४ ॥

अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः ।

तस्य साधयितुं शक्या यमिकाहन्त्यतोऽन्यथा ॥ १५ ॥

आस्रां क्षुद्रान्नजासाध्या शेषाः प्राणहरामताः ॥ १६ ॥

यथाग्निरिच्छोः पवनानुवहो वक्त्रं यथा वा सुररजसुक्तम् ।

रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः श्वास सहिका च विक्षम्बिका च ॥ १७ ॥

प्राणावरोधतर्जनविस्त्रापनभयभाषकैश्च घोरैः ।

कथाप्रयोगेः शयवेदिकां घोरामनोघातैः ॥ १८ ॥

हिकार्त्तस्य पयः क्षागं हित नागरसाधितम् ।

रसान् पिबेत् फुलिन्ध्याय साजमत्तून् ससैन्यवान् ॥ १९ ॥

मधुकं मधुसयुक्तं पिप्पलीशर्करान्विता ।

नागरं गुडसयुक्तं हिकाम्नं नावनत्रयम् ॥ २० ॥

स्तन्येन मल्लिकाविष्टा नस्यं बालककाम्बुना ।

योज्यं हिकामिभूताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ॥ २१ ॥

मधुसौवर्चलो पेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत् ।

अप्यसाध्यातयत्यस्तं हिकाक्षोद्गावलेहनात् ॥ २२ ॥

सद्य एव महायोगः काशमूलभवं रजः ।

हिकार्त्तो मधुना लिङ्गाच्छुण्ठीधात्री कणान्वितम् ॥ २३ ॥

प्रवालत्रिफलाशङ्ख चूर्णं मधुदृतप्लुतम् ।

पिप्पलीगैरिकं चेति लेहो हिकानिवारणः ॥ २४ ॥

कीलमजान्ननं लाजा तित्ता काञ्चनगैरिकम् ।

क्षणाधात्रीसिताशुण्ठी कासीमन्दधिनाम च ॥ २५ ॥

पाटल्याः सफलं पुष्यं क्षणाश्वजूरसुस्तकम् ।

पडेते पादिकालेहा हिकाम्नमधुसंयुताः ॥ २६ ॥

नैपाल्यागोविषाणाभ्यां कुटसर्जरसस्य च ।

धूमं कुशस्य वासाज्यं पिबेद्विक्रोपशान्तये ॥ २७ ॥

निर्दूमाङ्गारनिक्षिप्तं श्लक्ष्णमापरजोद्भवः ।

हिकार्यञ्चनिहन्त्याशु धूमः पीतो न सशयः ॥ २८ ॥

सुपूतिकोटं लसुनोपगन्धादिगन्धितं चूर्णमिदं सुभावितम् ।

अजाविमूत्रेण च समकृत्वा घ्राणानिपिक्तं विनिहन्ति हिकाम् ॥ २९ ॥

— इति सुपूतिकोटाद्ये चूर्णम् ।

हरेणवोऽयं पिप्पल्यः कायहिंसुसमायुतः ।
हिकाप्रशमनः श्रेष्ठो धन्वन्तरिवचो यथा ॥ ३० ॥
कुक्कूलानलसंस्विन्नं द्रुचुवात्यप्रसंभवेः ।
रसः समाक्षिकः पीतो हिकामाशु नियच्छति ॥ ३१ ॥

नारीक्षिरेण वा सिद्धं सर्पिमधुरकौरपि ।
नासानिसिक्तं पीतं वा सद्यो हिकां नियच्छति ॥ ३२ ॥
इति नारीक्षीराद्य-ष्टतम् ।

यत्किञ्चित्कफवातघ्नं सुणं वातानुलोमनम् ।
मेघजं पानमन्नं वा हिकाश्वामेषु तद्वितम् ॥ ३३ ॥
हिकाश्वामेषु पिवेद्वागीं सविश्वामुणवारिणा ।
नागरं वा सिताभांगीं सौवर्चलसमन्वितम् ॥ ३४ ॥
अभयानागरकल्कं पौष्करयावशूकमरिच कल्कं वा ।
तोयेनोष्णेन पिवेच्छासी हिको च तच्छान्त्यै ॥ ३५ ॥
द्विपितो दशमूलस्य कायं वाटेवदारुजम् ।
मदिरां वा पिवेद्युक्त्या हिकाश्वामिनिपीडितः ॥ ३६ ॥

दशमूलोरसे सर्पिर्दधिमण्डेन साधयेत् ।
कृष्णासौवर्चलचारं वयस्याहिगुरोचकैः ।
कायस्थयाचतत्पानाद्विकाश्वामि नियच्छति ॥ ३७ ॥
इति दशमूलार्थ-ष्टतम् ।

वासाघृतं वायपिवेत्पिवेत्पूषणमेव वा ।
वातपित्तानुबन्धे तु गुडविश्वसमेन्वितम् ॥ ३८ ॥

छागक्षीरं प्रयोक्तव्यं शृतं तोये चतुर्गुणे ।
 श्वासघ्नं भेषजं यच्च तच्च कार्यं प्रयत्नतः ॥ ४० ॥

इति वङ्गसेने हिक्कानिदानंचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ १३ ॥

—०—

अथ श्वासनिदानम् ।

यैरेव कारणैर्हिक्कां बहुभिः संप्रवर्तते ।
 तैरेव कारणैः श्वासः सद्यो भवति देहिनाम् ॥ १ ॥
 महोर्ध्वक्षित्रतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा ।
 भिद्यते समहाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ २ ॥
 प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाघ्नानमेव च ।
 आनाहो वक्रवैरस्यं शङ्खनिस्तोद एव च ॥ ३ ॥
 यदा स्त्रोतासि सरुध्य मारुतः कफमूर्च्छितः ।
 विश्वग्व्रजतिमक्रुद्ध स्तंदाश्वासान् करोति सः ॥ ४ ॥
 उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः ।
 उच्चैः श्वसति सरुवो मत्तर्पभ इवानिशम् ॥ ५ ॥
 प्रनष्टसन्नाविज्ञान स्तथा विभ्रान्तलोचनः ।
 विहताक्षाननो वह मूत्रवर्चाविशीर्ण वाक् ॥ ६ ॥
 दीर्घं प्रश्वसित चास्य दूराद्विज्ञाय ते भृशम् ।
 महाश्वासीपष्टसु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ ७ ॥
 उर्ध्वं श्वसति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः ।
 श्लेष्मावृत्तमुखस्त्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥ ८ ॥

उर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्च विभ्रान्ताश्च इतस्ततः ।
 प्रमुह्यन्वेदनार्त्तश्च शुष्कास्योरतिपीडितः ॥ ८ ॥
 ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते चाधः श्वासो निरुध्यते ।
 मुह्यतस्त्रास्यतयोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ॥ १० ॥
 यस्तु श्वसतिविच्छिन्नं सर्वप्राणैर्निपीडितः ।
 न वा श्वसिति दुःखार्त्तो मर्मछेदसगर्दितः ॥ ११ ॥
 श्वानाह स्वेदमूर्च्छार्त्तो दह्यमानेन वस्तिना ।
 विप्रुताच्चः परिक्षोणः श्वसन्नृक्कैक लोचनः ॥ १२ ॥
 विचेताः परिशुष्कास्योविवर्णः प्रलपन्नरः ।
 छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः सगोघ्नं विजहात्यसून् ॥ १३ ॥
 प्रतिलोमं यदा वायुः स्तोतांसि प्रतिपद्यते ।
 श्रोवां शिरश्च सगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १४ ॥
 करोति पोनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा ।
 श्वतोव तोव्रवेगश्च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १५ ॥
 प्रताम्यति सवेगेन चस्यते सनिरुध्यते ।
 प्रमोहं कासमानश्च सगच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥
 श्लेष्माणामुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः ।
 तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्त्तं लभते सुखम् ॥ १७ ॥
 तथास्योद्धंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोऽतिभाषितम् ।
 न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ १८ ॥
 पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरिणः ।
 आसीनो लभते सौम्यमुष्णश्चैवाभिनन्दति ॥ १९ ॥
 उच्छ्विताक्षो ललाटेन स्निध्यतामृगमार्त्तिमान् ।
 विशुष्कास्यो बहुश्वासो मुह्यद्यैवावधम्यते ॥ २० ॥
 मेघानुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च प्रवर्धते ।

मयाप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २१ ॥
 च्वरमूर्च्छापरोतस्य विद्यात्प्रतमकन्तु तम् ।
 उदावर्त्तरजोऽजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ २२ ॥
 तमसा वर्धतेऽत्यये शीतैश्चाशु प्रताम्यति ।
 मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकन्तु तम् ॥ २३ ॥
 रुचायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वातमुदीरयेत् ।
 क्षुद्रश्वासेन सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रवाधकः ॥ २४ ॥
 हितस्ति न स गात्राणि न च दुःखं यथोत्तरे ।
 न च भोजनपानानां निरुण्णद्वयं चिताङ्गतिम् ॥ २५ ॥
 नेन्द्रियाणां व्यथाञ्चैव काञ्चिदापादयेद्भुजम् ।
 स साध्य उक्तो बलिनः सर्वो वाऽव्यक्तलक्षणः ॥ २६ ॥
 क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ॥ २७ ॥
 त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥ २८ ॥
 काम प्राणहरारोगा बहवो न तु ते तथा ।
 यथा श्वासश्च कासश्च हरते प्राणमाशु हि ॥ २९ ॥
 वाताधिको भवेत्क्षुद्रस्तमकस्तु कफोत्तरः ।
 कफाद्वाताधिकात्पित्तं सस्पृष्टः क्षिप्तसञ्चकः ॥
 श्वासी माहृतसस्पृष्टो महानूर्ध्वस्तथा मतः ॥ ३० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्नेहवस्ति मृते केचिदूर्ध्वश्चाधश्च शोधनम् ।
 मृदुप्राणवतां श्रेष्ठं श्वाभिनामादिशन्ति हि ॥ ३० ॥
 दशमूलीशठीराम्ना पिप्पली विश्वपौष्करैः ।
 शृङ्गीतामलकीभार्गी गुडूचीनागरार्धिभिः ॥ ३१ ॥

यवागूँ विधिना सिद्धं कपायं वा पिवेन्नरः ।
 कासहृद्गृहपार्श्वार्त्तिं हिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ ३२ ॥
 कुलित्ययवकोलान्म दशमूलबलाजलम् ।
 पानार्थं कल्पयेत् कास हिक्काश्वासनिवृत्तये ॥ ३३ ॥
 कुलित्यनागरव्याघ्री वासाभि कथित जलम् ।
 पीत पौष्करसंयुक्तं श्वासकासनिवारणम् ॥ ३४ ॥
 दशमूलस्य वा काथः पौष्करेणावचूर्णितः ।
 श्वासकासप्रशमनः पार्श्वशूलविनाशनः ॥ ३५ ॥
 रश्माकुन्दशिरोपाणां कुसुम पिप्पलीयुतम् ।
 पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पीत्वा श्वासमपोहति ॥ ३६ ॥
 देवदारुवचाभांगीं विश्वपौष्करकटफलैः ।
 कृत्वा काथो जयत्याशु श्वासकासानशेषतः ॥ ३७ ॥
 शृङ्गोमहौषधिकणा घनपुष्कराणां
 चूर्णं शठोमरिचयोश्च सिताविभिन्त्रम् ।
 काथेन पीतममृता वृषपञ्चमूल्याः
 श्वास वाहेन विनिहन्ति हि घोररूपम् ॥ ३८ ॥
 कृष्णण्डकसिता चूर्णं पीत कीष्णेन वारिणा ।
 शोघं शमयति श्वास कासश्चैव सुदारुणम् ॥ ३९ ॥
 व्याघ्रीदुरालभाशृङ्गी बिल्वमध्यत्रिकण्टकैः ।
 सामृताग्निस्तृतेरैतै यूपः स्याच्छ्वासनुत्पन्नः ॥ ४० ॥
 कुलित्यदशमूलानां काथे स्युर्जाङ्गला रसाः ।
 कासमर्दकपत्राणां यूपः सौभाञ्जनस्य च ॥ ४१ ॥
 शुष्कमूलकयूपस्य हिक्काश्वासनिवारणम् ॥ ४२ ॥
 द्राक्षा हरीतकी, कृष्णां कर्कटाख्यां दुरालभम् ।
 विलिहन्मधुसर्पिभ्या श्वासान् हन्ति सुदारुणान् ॥ ४३ ॥

गुड कटुकतैलेन मिययित्वा समं लिङ्गन् ।
 त्रिसप्ताहप्रयोगेन श्वास निर्मूलता नयेन् ॥ ४४ ॥
 श्वाविध सूचका दग्धा सचीद्रष्टतश्कर्करा ।
 श्वाभकासहरा वर्हिपादी वा मधुसर्पिषा ॥ ४५ ॥
 हरिद्रा मरिच द्राक्षां गुड रास्ना कणा शठिम् ।
 तैलेन विलिङ्गन् हन्या च्छासान् प्राणहरानपि ॥ ४६ ॥
 हरिद्रापत्रमैरण्ड मूल लार्चा मन शिलाम् ।
 देवदारुधनं भासी पिष्ट्वा वर्त्ति प्रकल्पयेत् ॥ ४७ ॥
 तां घृताक्ता पिवेद्वूम श्वास हन्ति सुदारुणम् ।
 श्वासहिकापरिगत स्निग्धै स्वेदैरुपाचरेत् ॥ ४८ ॥
 युक्तैर्लवणतैलाभ्यां तैरस्य ययित कफः ।
 श्वासो विलयनं याति भारुतश्च प्रशाभ्यति ॥ ४९ ॥
 स्निग्ध ज्ञात्वा ततश्चैन भोजयित्वा रसौदनम् ।
 वातश्चेष्टविबन्धे वा भिषग्धूम प्रयोजयेत् ॥ ५० ॥

शृङ्गीकटुत्रयफलत्रयकण्ठकारी

भार्गी सपुष्करजटालवणानि पञ्च ।

१ चूर्णं पिवेदग्निशिरेण जलेन हिक्का

श्वासोर्ध्ववातकसनारुचिपोनसेपु ॥ ५१ ॥

इति शृङ्गादि चूर्णम् ।

निदग्धिका चामलकप्रमाणा हिम्वार्द्रयुक्ता मधुनाशयुक्ताम् ।

लिङ्गन् श्वासतिपोडितो हि श्वास जयत्यप बलात्वाहेण ॥ ५२ ॥

भक्ष्यातकमधुपर्णी पथ्यादशमूलनागरकाथ ।

तमके कफप्रधाने शस्त श्वासे च भारुतजे ॥ ५३ ॥

पथ्या कपायमयवा पिवेद्रस भार्कवस्य मधुना ।

तमके पुष्करजम्बा र्सेनागर क्षीरमेकश्च ॥ ५४ ॥

शठीपुष्करजीवन्ती त्वक्षुस्त पुष्कराङ्गयम् ।

सुरसा तामलकौ वा पिप्पल्यगुरुनागरम् ॥ ५५ ॥

बालकश्च समं चूर्णं कृत्वाष्टगुणशर्करम् ।

सर्वथा तमके श्वासै हिक्कायाञ्च प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥

अत्रैकस्माद्भ्रव्यादष्टगुणा शर्करा ॥ सर्वथेति पानभोजनादिषु ॥

इति शब्द्याद्यं चूर्णम् ।

हिंसाविडङ्गपूतिक विफलाव्योपचित्रकैः ।

द्विचीर सर्पिपः प्रस्थं चतुर्गुणजले मृतम् ॥ ५७ ॥

कर्पमात्रैः पचेत्तद्वि श्वासकासौ व्यपोहति ।

अर्शास्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेद क्षयं तथा ॥ ५८ ॥

इति हिंसाद्यं घृतम् ।

सौवर्चलययक्षार कटुकाव्योपचित्रकैः ।

घृतं वचाविडङ्गैश्च साधित श्वासशान्तये ॥ ५९ ॥

इति सौवर्चलघृतम् ।

कुलित्यरभसयुक्तं पञ्चकोलशृतं घृतम् ।

दीपन श्वासकासघ्नं कफव्याधिहरं परम् ॥ ६० ॥

इति कुलित्याद्यं घृतम् ।

तिक्तासौवर्चलक्षार पथ्यात्रिकटुहिङ्गुभिः ।

समालुरैर्घृतं मित्रं मचीर श्वासकासनुत् ॥ ६१ ॥

गुल्मानाहञ्ज शमयेत् प्रवृद्धान् गुदजानपि ।

इति तिक्ताद्यं घृतम् ।

कुलित्यदगमूलत्वं तथा द्राघ्नण्यष्टिका ।

प्रस्थं प्रस्थश्च सगृह्य दारिद्रेणेन साधयेत् ॥ ६२ ॥

पादशेषे रसेऽतस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

घोरकं द्विगुणं दत्त्वा कृष्टिन्ते पञ्चकोलकैः ॥ ६३ ॥

सञ्चारैः पलिकैः सर्वैः शनैर्मृदग्निना पचेत् ।

कासश्वासहरश्चैव हिक्काश्च विषमज्वरम् ॥ ६४ ॥

हृन्यात्तथार्थो ग्रहणी हृद्रोगारुचिपीनमान् ।

गुल्मं ग्रीहामयं हृन्याद्वलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ ६५ ॥

अग्निसन्दीपनश्चैव कौलित्यं षट्पल घृतम् ॥ ६६ ॥

इति कुलित्याद्यं घृतम् ।

सुवहाकालिकाभार्गी शुकाख्यं कौचुलं फलम् ।

काकादनीशृङ्गवेरं वर्षाभूर्बृहतीद्वयम् ॥ ६७ ॥

पलमात्रैर्घृतप्रस्थं पचेदेतैर्जलाढके ।

कदुष्णं पीतमेतच्चि श्वासामयविनाशनम् ॥ ६८ ॥

इति सुवहाद्यं घृतम् ।

तैल दशगुणे सिद्धं भृङ्गराजरसे शुभे ।

पीयमान यथा न्यायं श्वासकासौ व्यपोहति ॥ ६९ ॥

इति भृङ्गराजतैलम् ।

तिस्रस्त्रिस्त्रस्तु पूर्वाङ्गे भुक्ताग्रे भोजनस्य च ॥ ७० ॥

पिप्पल्य किंशुकक्षार भाविता घृतभाजिताः ।

प्रयोज्या मधुसमित्या रसायनगुणैपिणा ॥ ७१ ॥

जेतुं कासश्चयश्वास हिक्काशोपगलामयान् ।

अर्शोसिग्रहणोदोषं पाण्डुतां विषमज्वरान् ॥ ७२ ॥

वैश्वर्यपीनमं शोफं गुल्मं वातवलासकम् ।

मासमेवाग्रतो युक्त्या माध्विकां पिबतोऽनु च ॥ ७३ ॥

अवधारितवेगस्य यक्ष्मा न भवति ध्रुवम् ।

इति चारपिप्पली ।

शतं संगृह्यभाग्यास्तु दशमूल्यास्तथा परम् ।

शतं हरीतकीनाञ्च पचिन्नोये चतुर्गुणे ॥ ७५ ॥

पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे बस्त्रनियोडिते ।
 भालोद्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः ॥ ७६ ॥
 पुनः पचेत्तु मृद्वग्नी यावक्नेहत्वमागतम् ।
 शीते च मधुनश्चात्र षट्पलानि प्रदापयेत् ॥ ७७ ॥
 त्रिकटु त्रिसुगन्धश्च पलिकानि पृथक् पृथक् ।
 कर्पद्वयं यवचारं संचूर्णं प्रक्षिपेत्ततः ॥ ७८ ॥
 भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्धपलं लिहेत् ।
 श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ ७९ ॥
 स्वरवर्णप्रदोहेऽपि जठराग्निप्रदीपनः ।
 हरीतकीशतस्याव प्रक्षत्वादाढकं जलम् ॥ ८० ॥

इति भांगीगुडः ।

कुलित्यं दशमूलञ्च तथैव द्विजयष्टिका ।
 शतं शतञ्च संपाद्य जलद्रीणे विपाचयेत् ॥ ८१ ॥
 पादावशेषे तस्मिंस्तु गुडस्यार्धतुला क्षिपेत् ॥ ८२ ॥
 शीतोभूते च पक्के च मधुनोऽष्टौ पलानि च ॥ ८३ ॥
 षट्पलानि तुगाचीर्या पिप्पल्याश्च पलद्वयम् ।
 त्रिसुगन्धि सुगन्धश्च स्वादेदग्निबलं प्रति ॥ ८४ ॥
 श्वासं कासं क्ष्वरं हिक्कां नाशयेत्तमकं तथा ।
 योगसन्दर्शनादत्र हृद्वैद्योपदेशतः ॥ ८५ ॥
 जलं चतुर्गुणं देयं स्वल्पत्वाद्दोषवारिणा ।
 मानसान्निध्यं संवादाद्विपलं त्रिसुगन्धिनः ॥ ८६ ॥

इति कुलित्यगुडः ।

इति वङ्गसेने श्वासनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ १४ ॥

अथ स्वरभेदनिदानमाह ।

अत्युच्चभाषणविपाध्ययनाभिघात

सन्दूषणै प्रकुपिता पवनादयस्तु ।

स्रोतस्सु ते स्वरवहेषु गता प्रतिष्ठा

इत्यु स्वर भवति चापि हि षड्विधः स ॥ १ ॥

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्षा

भिन्न शनै भवति गर्दभवत् स्वरश्च ।

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्षा

ब्रूयाद्गलेन स च दाहममन्वितेन ॥ २ ॥

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठ

स्त्रुपं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ।

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत्

तं चाप्यसाध्यमृषय स्वरभेदमाहुः ॥ ३ ॥

धूमेत वाक्चयचते चयमाप्नुयाच्च

वागेषु चापि हतवाक् परिवर्जनीयः ।

अन्तर्गतं स्वरमलचपद चिरेण

भेदोन्वयाद्दति दिग्धगलस्तृयार्त्त ॥ ४ ॥

घोणस्य हृदस्य कर्णस्य चापि

चिरोत्थितो य सहजोऽपि जात ।

भेदस्त्रिन सर्वसमुद्भवश्च

स्वरामयोयो न स सिद्धिमेति ॥ ५ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

स्निग्धान् परं तापनकृष्यधातून्

स योजयेद्दमनवस्ति विरेचनैश्च ।

नस्यावपीडमुखधावनधूमलेहैः ॥ ६ ॥

सम्पादयेत्तु विविधैः क्ववलग्रहैश्च ॥ ६ ॥

यः श्वासकासविधिरादित् एव चोक्तः ॥

स्तञ्चाप्यशेषमवचारयितुं यतेत ॥ ७ ॥

स्वरोपघातेऽनिलजे भुक्तोपरि घृतं पिवेत् ॥ ८ ॥

कासमर्दकवार्त्ताक मार्कण्डस्वरसैः पचेत् ।

पीतं घृतं हन्यनिलं सिद्धं वार्त्ताकजे रसे ॥ ९ ॥

इति कासमर्दादिघृतम् ।

तथा कोष्णजलं देयं भुक्त्वा घृतगुडोदनः ।

पैत्तिके तु विरेकस्तु पयश्च मधुरैः शृतम् ॥

लिहेन्मधुरकानां वा चूर्णं मधुसमायुतम् ॥ १० ॥

अग्नीयाच्च समर्पिष्कं यष्टीमधुकपायकम् ॥ ११ ॥

शङ्गास्त्वर्चं क्षीरवतां द्रुमाणां संकुट्य दुग्धे विपचेत्तु तेन ।

कल्केन यष्टीमधुकस्य सर्पिः सिद्धं पिवेत्तन्मधुशर्कराक्तम् ॥ १२ ॥

इति शङ्गाद्यं घृतम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।

पिवेन्मूत्रेण मतिमात् कफजे स्वरसं चये ॥ १३ ॥

अजमोदां निशां धात्रीं चारं वङ्गिं विचूर्ण्य च ।

मधुसर्पियुतं लीढ्वा स्वरभेदं व्यपोहति ॥ १४ ॥

पलत्रिकवूरुपण्यावशूकचूर्णञ्च हन्यात् स्वरभेदमाश्रय ।

किं वा कुलित्यं वदनान्तरस्थं स्वरामयं हन्यथ पौष्करं वा ॥ १५ ॥

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाचिकम् ।

कफे सचारकटुकं क्षौद्रं केवलमिष्यते ॥ १६ ॥

गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः ।

तेन निष्क्रमते श्लेष्मा स्वरद्योश्चप्रसीदति ॥ १७ ॥

अगुरुसुरदारुदार्वी सन्तिल स्वरभेदद्वयवेत्कोष्णम् ।
 व्याघ्रीसुरतरुनागर ससिहमुखकाथमथवापि ॥ १८ ॥
 तैलाक्त स्वरभेदे वा खादिरं धारयेन्मुखे ।
 पथ्या पिप्पलीसंयुक्त युक्त वा नागरेण तु ॥ १९ ॥
 वदरीपत्रकल्कन्तु घृतभृष्टं ससैन्धवम् ।
 स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ २० ॥
 स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते ।
 चयजे सर्वजे वापि प्रत्याख्यामाचरेत् क्रियाम् ॥ २१ ॥

—०—

निदग्धिकापलशतं तदर्धं ग्रन्थिकस्य च ।
 चित्रकस्य तदर्धञ्च दशमूलञ्च तत्समम् ॥ २२ ॥
 द्रोणद्वयेऽप्यनि काथ्यकप्रायाटकमाहरेत् ।
 पूते क्षिपेत्तदर्धन्तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ २३ ॥
 सर्वमेकत्र कृत्वा च लेहवज्राधुसाधयेत् ।
 अष्टौ पलानि पिप्पल्या स्त्रिजातकपल तथा ॥ २४ ॥
 मरिचानां पलत्वेक सर्वमेकत्र चूर्णितम् ।
 मधुन बुडवं दत्वा तदश्रीयाद्यथानलम् ॥ २५ ॥
 स्वरभेदहर मुख्य प्रतिश्यायहर परम् ।
 श्वासकासाग्निमान्द्यार्शो गुल्ममेहगलामयान् ॥ २६ ॥
 आनाहमूत्रकृच्छ्राणि हन्याद् ग्रन्थार्बुदानि च ॥ २७ ॥

इति निदग्धिकादिखेदः ।

शर्करामधुमिश्रानि शृतानि मधुरै सह ।
 पिवेत्प्रासासि यस्वीक्षैर्वदतीऽभिहत स्वर ॥ २८ ॥
 वातादिजनिर्नश्वस कासघ्ना ये प्रकीर्त्तिताः ।
 योगास्तांश्चापि युञ्जीते यथा दोषं चिकित्सक ॥ २९ ॥

चव्याम्बवेजसकटुत्रयतित्तिङीके ।

तालीसजीरकतुगादहनैः समोश्चैः ।

चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुतं ।

वैश्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ३० ॥

इति चव्यादिचूर्णम् ।

व्याघ्रीस्वरसविपक्षं रास्त्रावाव्याल्लगोक्षुरव्योपैः ।

सर्पिः स्वरोपघातं निहन्ति कासश्च पञ्चविधम् ॥ ३१ ॥

शुष्कद्रव्यमुपादाये स्वरसानामसम्भवे ।

वारिष्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ३२ ॥

स्वरसानां चालाभे चूर्णस्याढकमाढकमुदकस्य च ।

तद्वारिपर्युषितं नृदितं स्वरसवत् प्रयोज्यम् ॥ ३३ ॥

इति कण्ठकारीष्टम् ।

ह्रिकाश्वासे चये कासे स्वर्याणि पठितानि तु ।

सर्पीपित्तानि योज्यानि भिषग्भिः स्वरसंचये ।

इति वेङ्गसेने स्वरभेदनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ १५ ॥

—०—

अथारोचकनिदानमाह ।

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ।

अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः कषायवक्त्रस्य नरोऽनिलेन ॥ १ ॥

कटुस्त्रसुष्णं विरसञ्च मूति पित्तेन विद्याल्लवणञ्च वक्त्रम् ।

माधुर्यपैक्विल्यगुरुत्वगैत्य विबन्धसम्बन्धयुतं कफेन ॥ २ ॥

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यद्व्यारुचिगन्धजे स्यात् ।

स्वाभाविकश्चास्यमथारुचिश्च त्रिदोषजनैकरसं भवेत्तु ॥ ३ ॥

हृच्छूलपोडनयुतं पवनेन पिप्पलात्,

दृढदाहशोषबहुलं सकफप्रसेकम् ।

श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिद्य विद्या-

हैगुण्यमोहजडताभिरथापरश्च ॥ ४ ॥

प्रक्षिप्तन्तु मुखे ह्यन्नं जन्तुर्न खादयेद्यदि ।

अरोचकः सविज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ ५ ॥

चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वा तु भोजनम् ।

द्वेषं करोति यो जन्तुः सभक्तद्वेष उच्यते ॥ ६ ॥

यस्य चान्नं भवेच्छ्रद्धा सभक्तहृन्द उच्यते ।

कुपितस्य भयार्त्तस्य ज्वरितस्य विरोधकः ॥ ७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

वस्तिः समीरणे पित्ते विरेको वमनं कफे ।

कुर्व्याद्विद्यानुकूलानि हर्षणश्च मनोघ्नजे ॥ ८ ॥

वान्तेवचाङ्गिरनिले विधिवत् पिवेच्च

स्त्रे होणतोयमदिरान्यतमेन चूर्णम् ।

कृष्णाविडङ्गयवभस्महरेणु भाङ्गी

रास्त्रै लङ्घिगुलवणोत्तमनागराणाम् ॥ ९ ॥

पैत्ते गुडामधुकैर्वमनं प्रशस्तं

लेहः समैश्वसितामधुसर्पिरिष्टः ।

निम्बामुहर्दितवतः कफजेऽनुपानं

राजद्रुमाद्रुमधुना सह दीप्यकाढ्यम् ॥ १० ॥

मरिचं मधुना लेह्यं कफजेऽरोचके भिषक् ।

अरुचौ कवलास्तावद्धूमाः सुमुखेधावनम् ॥

मनोममन्नपानञ्च हर्षणाऽऽश्वासनानि च ॥ १११ ॥

कुष्ठसीवर्चलाजाजी शर्करामरिचं विडम् ।

धान्यैलापद्मकोशीर पिप्पल्यथन्दनोत्पलम् ॥ १२ ॥

लोभ्रं तेजोवती पथ्या वृषणं संयवाग्रजम् ।

आर्द्रदाडिमनिर्ध्यासस्त्वजाजीशर्करायुतः ॥ १३ ॥

सतैलमाधिकास्वेते चत्वारः कवलग्रहाः ।

चत्वारो रोचकान् हृन्नुर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥ १४ ॥

अम्बिकागुडंतोयञ्च त्वगैला मरिचान्वितम् ।

अभक्तछन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ १५ ॥

शृङ्गवेररसञ्चैव मधुना सह योजयेत् ।

अरुचौश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ १६ ॥

भोजनाग्रे सदा पथं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ।

अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्दकभक्षणम् ॥ १७ ॥

कारव्यजाजीपत्रैला व्यापहृत्वास्त्रदाडिमम् ।

सघ्नीद्रशर्करं हृद्यं रुचिं वङ्गिप्रदीपनम् ॥ १८ ॥

इच्छाविनाशजनितेषु च बाधकेषु

भावान् भवायवितरेत् खलु शक्यरूपान् ।

अर्थेन चातिपतितेषु पुनर्भवाय

पौराणिकैः श्रुतिपथैरनुमानयेत्तम् ॥ १९ ॥

दैव्यं गते मनसि बोधनमत्र शस्तं

दद्यात् प्रियं मनसि सेव्यमरोचकेषु ॥ २० ॥

सात्त्विकान् सुदेशरचितान् विविधांश्च भक्ष्यान्

पानानि मूलफलसखाण्डवरागलेहान् ।

सेवेद्रसांश्च विविधान्विविधैः प्रकारै-

भुञ्जीत चापि लघुरुक्षमन सुखानि ॥ २१ ॥

यस्य यदीक्षितं किञ्चित्तदेयमरुचौ सदा ।

विडङ्गमधुस युक्तो रसो दाडिमसम्भव ॥

असाध्यमपि स हन्या दुरुचिं वक्तुधारित ॥ २२ ॥

षष्टादशशिशुफलानि दशमरिचानि विंशतिपिप्पली ।

पार्द्रकपलं गुडपलं प्रस्थत्रयमारनालस्य ॥ २३ ॥

विडलवणसहितमेतत्खजाहृतं सुरभिगन्धाढ्यम् ।

व्यञ्जनसद्वस्त्रधाति श्रेय कलहंसकं नाम्ना ॥ २४ ॥

इति कलहंसकाष्टिकम् ।

द्वेपले दाडिमादष्टौ खण्डाद्गोपात्पलत्रयम् ।

त्रिसुगन्धिपलञ्चैकं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ २५ ॥

दीपन रोचन हृद्य पीनसज्वरकासजित् ।

इति दाडिमाद्यं चूर्णम् ।

पिप्पलीना शतञ्चैकं द्वेशते मरिचस्य च ।

सितापलचतुष्कञ्च नागरार्धपलं तथा ॥ २६ ॥

धान्यसौवर्चलाजाज्य स्वर्गेलै चार्धकार्पिके ।

कीलदाडिमवृक्षाम्ल यवानो चास्त्रवेतसम ॥ २७ ॥

कार्पिकाचूर्णयेदेतान् हृद्यमन्नप्ररोचनम् ।

श्रीहृद्दग्रहणीदोष पञ्चकासनिवर्हण ॥ २८ ॥

खाण्डवो नाम गुल्मार्ति विबन्धानाह शूलनुत् ।

इति खाण्डवचूर्णम् ।

तालीशोपणचव्यनागलवणं स्तुल्याशकैर्द्विस्तुत ।

कृष्णाग्रन्यक्तित्तिडीकहुतभुग्वल्मीरकाख्यैर्युत ।

विखेलावदराम्ल वेतमघनैर्धान्याजमोदायुतै ।

स्य शैर्दाडिमपाद एष विहित श्रेष्ठ सिताऽर्द्यायुत ॥ २९ ॥

कण्ठास्योदरहृदिकारशमनः कायाग्निसन्दीपनी ।

गुल्माधानविस्त्रिंका गुदरुजाश्वासकमिच्छर्दिहा ॥ ३० ॥

कासारुच्यतिसारमूढमरुतां वा हृद्गुजां नाशनः ।

चूर्णोऽयं भिषजामतीव कथितः स्यातो महाखाण्डवः ॥ ३० ॥

इति महाखाण्डवः ।

क्षतोक्तन्तु यवान्याद्यं चूर्णं भव प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

—०—

यवानीतित्तिडीकष्व नागरं साम्बवेतसम् ।

दाडिमं वादरघ्वाञ्च कार्षिकानुपकल्पयेत् ॥ ३२ ॥

धान्यसौवर्चलाजाजी वराङ्गमर्धकार्षिकम् ।

पिप्पलीनां शतञ्चैकं द्देशते भरिचस्य च ॥ ३३ ॥

शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् ।

जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचकम् ॥ ३४ ॥

हृत्पीडापार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाह नाशनम् ।

कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यर्थो विकारनुत् ॥ ३५ ॥

इति यवानीखाण्डवचूर्णम् ।

लवङ्गकङ्गोलमुशीरचन्दनं नत सनीलोत्पलकृष्णजीरकम् ।

ऐला सकृष्णागुरुभृङ्गकेशरं कणा सविखानलदं सह्यां वुना ॥ ३६ ॥

कर्पूरजातीफलवंशरोचनं सिताष्टभागं समसूक्ष्मचूर्णितम् ।

सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं हृद्यतमं विदोषनुत् ॥ ३७ ॥

उरो विबन्धं तमकं गलग्रहं सञ्ज्ञासयश्चारुचिपीनसं तथा ।

ग्रहण्यतीमारमयासृजः क्षयं प्रमेहरोगश्च निहन्ति सत्वरम् ॥ ३८ ॥

इति लवङ्गाद्यं चूर्णम् ।

सूक्ष्मैलापत्रकं त्वक् च पत्रं तालिशवन्तुगा ।

पृथ्वीकाजीरकं धान्यं दाडिमं चाङ्गकार्षिकम् ॥ ३९ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।

मरिचं दीप्यकश्चैव वृक्षान्नं चाम्बवेतसम् ॥ ४० ॥

अजमोदाऽथ गन्धा च दधित्यं चापिकार्पिकान् ।

प्रदेया चातिशुद्धायाः शर्करायाश्चतुःपलम् ॥ ४१ ॥

चूर्णं भग्निप्रसादं स्यात्परमं रुचिबर्धनम् ।

घ्नीहानं काममर्शांसि शूलं खासं वमिं ज्वरम् ॥ ४२ ॥

निहन्ति दीपयत्यग्निं बलवर्णप्रदं परम् ।

धातानुलोमनं हृद्यं कण्ठजिह्वाविशोधनम् ॥ ४३ ॥

इति सूक्ष्मैलाद्यं चूर्णम् ।

व्याघ्रीस्त्रसविपकं रास्त्राकट्फलगोक्षुरव्योषैः ।

सर्पिः स्त्रोभिघातं हन्यात् कासं च प्रञ्चविधम् ॥ ४४ ॥

इति वङ्गसेनेऽरोचकनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ १६ ॥

—०—

अथ कृदिरोगनिदानमाह ।

दुष्टैर्दोषैः पृथक् सर्वे विभक्त्यालोकनादिभिः ।

कृदयः पञ्चविज्ञेया स्तामां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥

अतिद्रवैरतिस्निग्धै रद्वैर्लवणादिभिः ।

अकाले चातिमाष्यैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ २ ॥

अमाद्भयात्तथोद्देगा दजीर्णात् क्षमिदोषतः ।

नाय्याश्चायन्नसत्त्वाया स्तथातिद्रुतमश्रुतः ॥ ३ ॥

विभक्तैर्हंतुभिर्धान्यै र्द्रुतमुत्क्षेपितो बलात् ।

छादयन्नाननं वेगैरदयच्चङ्गभञ्जनैः ।

निरुध्यते कृदिरिति दोषो वक्तुं प्रधावति ॥ ४ ॥

हृत्तासोद्धारसरोधैः प्रसेकोलवर्णस्तनुः ।

द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमोनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

हृत्पार्श्वपीडासुखगोपशीर्षं नाभ्यर्त्तिकासस्त्ररभेदतोदैः ।

उद्धारशब्दप्रवल सफेन विच्छिन्नकृष्ण तनुकं कपायम् ॥ ६ ॥

नच्छ्रेण वाऽल्पं महता च वेगेनात्तीऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ॥ ७ ॥

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रवृत्ता सोपद्रवाशोणितपूययुक्ता ।

सचन्दिकां तां प्रवदन्त्य साध्यां साध्यां चिकित्सेदतुपद्रवाञ्च ॥ ८ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

आमाशयात् क्लेशभवा हि सर्वाः

स्युः छर्दयो लङ्घनमेव तस्मात् ।

प्रकारयेन्मारुतजां विना तु

सशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ ९ ॥

ससैन्धवं पिबेत्कर्पिं वातछर्दिनिवारणम् ।

लक्षणत्रयपुत्तेन सयुक्तं चूषणेन च ।

हृन्वात्क्षीरोदकं पीतं छर्दिं पवनसम्भवाम् ॥ १० ॥

मुद्रामलकयूपं वा ससर्पिष्कं ससैन्धवम् ।

यवागूं मधुमित्रां च पञ्चमूलीश्रुतां पिबेत् ॥ ११ ॥

घान्याकविश्वदशमूलकपायसिद्धान्

यूपानुसान् पथनवम्यरुचिप्रशान्त्यै ।

पीत्वा सुखानि लभते मधुमिश्रितां वा

शङ्खाद्वया स्त्रसमूपणचूर्णयुक्ताम् ॥ १२ ॥

अति मासकृतिः ।

—०—

अथ निदानम् ।

मूच्छ्रापिपासामुखशोथमूर्ध्नाल्बचिसंतापतमो भ्रमार्तः ।
पीतं श्लेष्मणं हरितं सतिक्तं धूम्रञ्च पित्तेन वसेत्सदाहम् ॥ १३ ॥

अथ चिकित्साम् ।

हृद्या पित्तोद्भवायान्तु श्लक्ष्णकुम्भोद्भवं रजः ।
मृद्वीकेक्षुविदारीणां रसोरिकाय शस्यते ॥ १४ ॥
पित्तोपशमनीयानि योज्यानि च हितानि च ।
कषाययूपकल्कानि घ्नन्तिपित्तोत्तरं वमिम् ॥ १५ ॥

सलाजमसूरयवमुद्भक्तता यवागूः
हृद्यां हिता मधुयुता बहुपित्तजायाम् ।
यूपाः सुगन्धिमधुतिक्तरसप्रगाढा
मृद्वष्टलोष्टभवमंबुहितं तृपायाम् ॥ १६ ॥
वट्टदाहपित्तबहुलेषु वमीगतेषु
द्राक्षारम पिबति माक्षिकसंयुतञ्च ॥ १७ ॥

सीदीच्यं गैरिकं पेयं सेव्यं वा तंडुलांबुना ।
शीतं धात्रीरसाद्यं वा पित्तहृदिनिवृत्तये ॥ १८ ॥
चन्दनेनाक्षमात्रेण संयोज्यामलकीरसम् ।
पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं हृदिस्तेन निवार्यते ॥ १९ ॥
चन्दनञ्च मृणालञ्च बालकं तगरं हृषम् ।
सतखलोदकचौद्रः कल्कः पीतो वमिं जयेत् ॥ २० ॥
कषायो मृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ।
हृद्यतीसारवट्टदाह क्ष्वरन्नः संप्रकाशितः ॥ २१ ॥
काथः पर्पटजः पीतः सघौद्रः हृदिनाशनः ॥ २२ ॥

हरोतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्मात्रिकसंयुतम् ।
 अधोभागोक्षते दोषे हृदिः शीघ्रं निवर्तते ॥ २३ ॥
 गुडूचीत्रिफलानिस्व पटोलैः कथित पिबेत् ।
 चौद्रयुक्तं निहन्त्याशु हृदिं पित्तास्रसम्भवाम् ॥ २४ ॥
 सिताचन्दनमध्वक्तं लिहेद्वा मात्रिकाशक्तम् ।
 सोपद्रवापित्तभवा हृदिरेतेन शान्यति ॥ २५ ॥
 सर्पिः चौद्रसितोपेतान् लाजशक्तून् पिबेत्तथा ।
 पित्तच्छर्दिश्च तेनाशु प्रशान्यति सुदुस्तरा ॥ २६ ॥
 इति पित्तच्छर्दिः ।

—०—

अथ निदानम् ।

तन्द्रास्यमार्धुर्त्यकफप्रसेक सन्तोषनिद्रारुचिगौरवार्तः ।
 स्निग्धं घनं स्वादुकफाद्विशुद्धं सलोलमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ २७ ॥

—०—

अथ चिकित्साम् ।

हृद्यां कफीद्धवायान्तु वमनं योजयेद्विपक्वम् ।
 तोयैः सर्पपसिन्धूत्यहिङ्गुनिस्वकणायुतैः ॥ २८ ॥
 शस्यन्ते शालिगोधूम यवमुद्गमकुटकाः ।
 तक्रकाञ्चिकयूपाश्च पटोलाद्याश्च भोजने ॥ २९ ॥
 भारग्वधादिनिर्यूहं दशाङ्गं योग्यमेव च ।
 पाययेन्मधुसंयुक्तं कफहृदिविनाशनम् ॥ ३० ॥
 मनःशिलायाः फलपूरकस्य रसैः कपित्थस्य च पिप्पलीनाम् ।
 चौद्रेण चूर्णं सरिचैश्च युक्तं लिह्यात्कफच्छर्दिमुदीर्णवेगम् ॥ ३१ ॥
 विडङ्गत्रिफलाविष्ठा चूर्णं मधुयुते जयेत् ।

विडङ्गप्रचयज्ञाना मयवा श्लेष्मजा वमिम ॥ ३२ ॥

सजाम्बवम्बा वदरस्य चूर्णं सुम्तायुत कर्कटकस्य शृङ्गम् ।

दुरालभं वा मधुसमयुक्तं लिङ्घेत्कफच्छर्दिनिग्रहार्थम् ॥ ३३ ॥

इति कफच्छर्दि ।

—०—

अथ निदानम् ।

शूलाविपाकारुचिदाहटपणा श्वासप्रमेहप्रवलाप्रसक्तम् ।

छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्बनील सान्द्रोष्णरक्तं वमता नृणां स्यात् ॥ ३४ ॥

पित्स्त्रेदमूत्राम्बुवहानि वायु श्रोतांसि सक्थ्य यदोर्ध्वमेति ।

उत्पन्नदोषस्य समाचितन्तु दोष समुद्भूय नरस्य कोष्ठात् ॥ ३५ ॥

विष्णुमूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं तट्श्वासकासार्त्तियुत प्रसक्तम् ।

प्रहृदयेद् दुष्टमिहाति योगात् तयार्दितश्चाशु विनाशमिति ॥ ३६ ॥

—०—

अथ चिकित्साम् ।

पिष्टाधात्रीफलं द्राक्षा शर्कराञ्च पलोन्मिताम् ।

दत्त्वा मधुपलञ्चैव कुडव सलिलस्य च ।

वाससागालितं पीतं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ ३७ ॥

मसूरसक्तवच्चौद्रमर्दिता दाडिमाश्रसा ।

पीता निवारयत्याशु छर्दिदोषत्रयोद्भवाम् ॥ ३८ ॥

श्रीफलस्य गुडूच्या वा कषायो मधुसयुतः ।

पेयश्छर्दित्रये शीतो मूर्वा वा लण्डुलाम्बुना ॥ ३९ ॥

समाचिका मधुरसा पीता वा तण्डुलाम्बुना ।

तर्पणं वा मधुयुतं तिमृणामपि भेषजम् ॥ ४० ॥

कृतं गुडूच्या विधिवत् कषाय हिमसञ्चितम् ।

तिसृष्वपि भवेत्पथ्यं माचिकेन संमन्वितम् ॥ ४१ ॥

युक्तान्नलवणः पिष्ट्वा उष्णविर्योऽथवा हितः ॥ ४२ ॥

एलासर्वङ्गजकेशरकोलमज्ज

लाजाप्रियङ्गु घनचन्दनपिप्पलीनाम् ।

चूर्णं सितामधुयुतं मनुजो विलिह्य

हृदि निहन्ति कफमारुतपित्तजां च ॥ ४३ ॥

इत्येलादिचूर्णम् । इति त्रिदोषच्छर्दिः ।

कोलमज्जाकणाधात्री लाजाविश्वफलत्रिकम् ।

श्यामाञ्जनाद्दकौलित्यं मक्षिकाविट्सितायुतम् ॥ ४४ ॥

कणोपणकपित्यन्तु त्वगेलापत्रकं समम् ।

सक्षौद्राः पादिकालेहाः पङ्केते हृदिनाशनाः ॥ ४५ ॥

कोलामलकमज्जानौ मक्षिकाविट्सितामधुः ।

सहस्रांशुतण्डुलो लेहः हृदिमाशु नियच्छति ॥ ४६ ॥

लाजाकपित्यमधुमागधिकोपणानां

क्षौद्राभयात्रिकटुधान्यकजीरकाणाम् ।

पथ्याऽमृतमरिचमाचिकपिप्पलीनां

लेहास्तयः सकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै ॥ ४७ ॥

मनःशिलाभागधिकोपणानां चूर्णं कपित्यान्नरसेन युक्तम् ।

लाजैः समाशैर्मधुनावलीढं हृदि प्रसक्तामसक्तनिहन्ति ॥ ४८ ॥

अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्धं निर्वापितं जले ।

तज्जलं पानमात्रेण हृदि धीयति दुर्जयाम् ॥ ४९ ॥

जात्यारसः कपित्यस्य पिप्पलीमरिचान्वितः ।

क्षौद्रेण युक्तः शमेये क्षेहोऽयं हृदिमुख्यणाम् ॥ ५० ॥

अथ जातीशब्देन धात्र्याः यत्परम् ।

निम्बाम्बपल्लवगवेधुकधान्यमेव

ह्रीवेरवारिमधुना पिबतोऽल्पमल्पम् ।

हृदिः प्रयाति शमन त्रिसुगन्धियुक्ता

लोढानिहन्ति मधुना सदुरालभा वा ॥ ५१ ॥

विदलानि च सुहानां पिप्पल्यथैव कुट्टिता ।

आशुतत्सलिलं पेय समधु हृदिनाशनम् ॥ ५२ ॥

तण्डुलीययुतं खादेत् कपित्थं द्रूपणेन वा ।

सौवर्चलमजाब्धय पिप्पलीमरिचानि च ।

युक्तोऽयं मधुना सेहः श्रेष्ठः हृदिनिवारणः ॥ ५३ ॥

भातुलुङ्गरसो लाजा शर्करामधुसयुतः ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः श्रेष्ठः हृदिनिवारणः ॥ ५४ ॥

कण्णोपणमिताचूर्णं लाजतुल्यं समाक्षिकम् ।

कपित्थबीजपूरान्न कल्कितं हृदिनाशनम् ॥ ५५ ॥

प्रियंग्वंजनमुस्तानि पाययेत्तु यथावलम् ।

दृष्ट्यातिमारहृदिघ्नं सद्योदतडुन्नाम्बुना ॥ ५६ ॥

आम्बास्थिविल्वनिर्यूहः पीतः समधुशर्करा ।

निहन्त्याश्चर्यतीमारं वैश्वानर इयादुतिम् ॥ ५७ ॥

लंबाम्बफनगतं क्षौद्रं दत्त्वा सुगीतल मलिनम् ।

भाजैरवचूर्णं पिये च्छर्यतिमारं परं मिहम् ॥ ५८ ॥

—०—

पद्मकामृतनिम्बानां धान्यचन्दनयोः पचेत् ।

कल्के क्षाये च हविषः प्रप्यं हृदिनिवारणम् ॥ ५९ ॥

दृष्ट्याहविप्रगमनं दाहस्वरहरं परम् ।

पद्मकायं दृतम् ।

कल्याणकद्रूपणजीवकानि घृतानि दद्यानि तु हृदिरोगे ॥ ६० ॥
इति साधारणेविधिः ।

अथ निदानम् ।

बीभत्सजा दीर्घदजामजा च ह्यमात्मगतो वा कृमिजा च यो हि ।
सा पञ्चमी ताय विभावयेत्तु दोषोच्छ्रयेनैव यथोक्तमादौ ॥ ६१ ॥
शूलहृत्तास्रवहुला कृमिजा च विशेषतः ।
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ ६२ ॥

अथ चिकित्साम् ।

बीभत्सजामबीभत्सै र्हेतुभिः संहरेद्वमिम् ।
दोर्हृदोत्थां वमिं हृदयैः काचित्तैर्वस्तुभिर्जयेत् ॥ ६३ ॥
लङ्घनैर्वमनैर्वापि सात्मै र्वा सात्मप्रसम्भवाम् ।
कृमिहृद्रोगवच्चापि साधयेत् कृमिजां वमिम् ॥ ६४ ॥
यथादोषश्च वितरेच्छस्तं विधिमनन्तरम् ।
पवनघ्नो चिरोत्थासु प्रयोज्या हृदिषु क्रिया ॥ ६५ ॥

अथ हृदिदृष्ट्याचिकित्सामाह ।

फल्गुप्रवालं छिन्नायां मधुकं नीलमुत्पलम् ।
शुभैः शोतकपायोऽयं दृष्ट्याहृदिनिवारणः ॥ ६६ ॥
एतैरेवोपधै सिद्धा लाजपेयां पिवेन्नरः ।
सशर्करां समाचीका दृष्ट्याहृदिनिवारणाम् ॥ ६७ ॥

- आम्रजम्बुकपाय वा पिवेन्माक्षिसयुतम् ।
 ११ छर्दि सर्वा प्रणदति तृष्णाञ्चैवापकर्षति ॥ ६८ ॥
 १२ वेष्टशङ्खं मितालोभं दाडिमं मधुक मधु ।
 पिवेत्तडुलतोयेन छर्दि तृष्णानिवारणम् ॥ ६९ ॥
 शोदन रक्ताशालीना शोत माक्षिकसयुतम् ।
 १३ भोजयेत्तेन शाम्येत छर्दि तृष्णे चिरोत्थिते ॥ ७० ॥
 महाकल्याणकं सर्पि कल्याणकमथापि वा ।
 शतावरीघृतं वापि तृष्णा छर्दिनिवारणम् ॥ ७१ ॥
 कामश्रामी ज्वरस्तृष्णा हिक्का वैचित्त्यमेव च ।
 हृद्रोगस्तमकयैव ज्ञेया छर्देरुपद्रवा ॥ ७२ ॥
 इति वङ्गरीने छर्दि तृष्णा छर्दिनिदानचिकित्सा-
 धिकारः समाप्तः ॥ १७ ॥



अथ तृष्णानिदानमाह ।

- भयश्चमाभ्या बलसंघयाद्वा उर्ध्वं चित्तपित्तविवर्धनैः ।
 पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रसन्नं जनवेत्तिपासाम् ॥ १ ॥
 स्त्रोतं स्त्रऽपावाक्षिषु दूषितेषु दोषैश्च तद् सञ्भवतीह जन्तो ।
 तिस्रः शृतास्ता घतजाचतुर्यी चयात्तया ग्रामसमुद्भवा च ॥ २ ॥
 भक्तोद्भवा सममिक्षेति तासां निबोधनिद्रान्यनुपूर्यशस्तु ॥ ३ ॥
 चासाम्यता मारुतमभवाद्यान्मोदस्तथा शङ्खशिरस्तु चापि ।
 स्त्रोतो निरोधो विरसश्च पक्व शीताभिरक्षिप्य विवृद्धिमेति ॥ ४ ॥
 मूर्च्छाश्च विट्पयिलापदश्च रक्तेक्ष्णत्वं प्रततश्च शोषः ।
 शीताभिरनन्दा सुखतित्वात्ता च पिपासाकार्या सुखधूमनश्च ॥ ५ ॥

वाप्यावरोधात्कफसहतेऽग्नौ दृष्ट्याबलामेन भवेत्तथानु ।
निद्रागुरुत्व मधुरास्यता च दृष्ट्यार्दितं शृण्यति चातिमात्रम् ॥६॥
क्षतस्य रुक् शोणितनिर्गमाभ्यां दृष्ट्या चतुर्थीक्षतजा मता तु ॥७॥
रसक्षयाद्या क्षयसम्भवासातयाभिभूतस्तु निशादिनेषु ।
प्रेषीयतेऽन्धं संसृज्य न याति ता सन्निपातादिति केचिदाहुः ।
एतच्चयोक्तानि च लक्षणानि तस्या मशेषेण भिषग् चिकित्सेत् ॥८॥
त्रिदोषलिङ्गामसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्टोवनसादकर्त्री ।
सिन्धु तथास्तु लवणञ्च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु दृष्ट्वा करोति ॥ ९ ॥
हीनस्वर प्रताम्यन् दीनाननसशुष्कहृदयगलतानु ।
भवति खलु सोपसर्गा चृष्ट्या सा शोषिणीकष्टा ॥ १० ॥ •
ज्वरमोहक्षयकास श्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ।
सर्वास्वतिप्रसक्ता रोगक्षयानां वमिप्रसक्तानाम् ॥
घोरोपद्रव्ययुक्ता दृष्ट्या मरणाय विज्ञेया ॥ ११ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

वातघ्नमन्नपानं मृदुलघुशीतञ्च वातदृष्ट्यायाम् ।
स्याज्जीवनीयसिद्धं क्षीरघृतं वातजतपे ॥ १२ ॥
दृष्ट्यातिवृद्धाबुदरे च पूर्णं तं वामयेन्भागधिकोदकेन ।
विलोमनञ्चात्र हितं विधेयं स्याद्वाडिमाम्नातकमातुलुङ्गैः ॥१३॥
सुवर्णरोप्यान्तिभिरग्नितप्तैः लोष्टैः कृतं वा सिकतोत्करैर्वा ।
जलं सुखोष्णं शमयेत्तु दृष्ट्या सशर्करं चौद्रयुतं हितं वा ॥ १४ ॥
दृष्ट्याया पवनोत्थाया सगुडं दधिश्च स्यते ।
रसाश्च हृद्दृष्ट्या शोता गुडूच्यारस एव च ॥ १५ ॥
पञ्चाङ्गका पञ्चगणाय उक्तास्तोष्वम्बुसिद्धं प्रथमं गण्ये वा ।

पिवेत्सुखोष्णं मनुजोऽल्पशस्तुमुच्येत वृद्धतः पवनात्मकातः ॥ १६ ॥

इति वॉतवृण्णाः ।

पित्तोत्थितां पित्तहरैर्विपक्तां निहन्ति तोयं पय एव वापि ॥ १७ ॥
स्वादुतिक्तं द्रवं शीतं पित्तवृण्णापहं परम् ।

काशमर्यं शर्करायुक्तं चन्दनोशीरधान्यकम् ।

द्राक्षाभधुकसंयुक्तं पित्ततर्पे जलं पिवेत् ॥ १८ ॥

स्याज्जीवनीयमिदं क्षीरं घृतं वा पित्तजे तर्पे ।

तद्वद् द्राक्षाचन्दन खर्जुरोशीरमधुसंयुतं तोयम् ॥ १९ ॥

द्राक्षाचन्दनखर्जुरी पीतं मधुयुतं जलम् ।

वृण्णाहरं पिवेद्वापि मधुना तंडुलोदकम् ॥ २० ॥

इति पित्तवृण्णाः ।

तिक्तं द्रवञ्च कटुञ्च कफवृण्णानिवर्हणम् ॥ २१ ॥

विस्वाढकीधातकीपञ्चकोल दर्मेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ।

हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ २२ ॥

सजीरधान्याद्र्कगृध्रवेर

सौवर्चलान्यर्धजलमुतानि ।

मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति

पीतानि मद्यः शमयन्ति वृण्णाम् ॥ २३ ॥

लाजीदकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम् ।

काशमर्यशर्करायुक्तं पियेत्तृणार्दितो नरः ॥ २४ ॥

शर्कराकैसरं क्षौद्रं क्षणाजोरकदाडिमेः ।

स्त्रेहो वा वटजयो वृण्णा मधुक्षीरद्रुमादुरेः ॥ २५ ॥

अम्लं दाडिमबीजं पीतं धात्रीफलञ्च धान्याम्लैः ।

पार्द्रपटाम्भारणकृतप्राहुतगात्रस्नृपां जयति ॥ २६ ॥

शोस्तनीक्षुरसक्षीर यष्टीमधुमधूत्पलैः ।

नियतं नस्यतः पीतै स्तृषा शान्म्यति दारुणा ॥ २० ॥

कर्णं शिरो मुखलेपः चुक्रिकयान्मदाडिमरसेन ।

तर्पयति शीघ्रमेव जलीघवत्सैकतराशिम ॥ २१ ॥

कोलदाडिमवृक्षान्मचु क्रिकोचु क्रिकारसः ।

पञ्चाम्नाको मुखे लेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ॥ २२ ॥

क्षीरेक्षुरसमार्द्धिकं क्षोद्रसिधुगुडोदकैः ।

वृक्षान्मन्त्रैश्च गण्डूपा स्तालुशोषप्रणाशनाः ॥ २३ ॥

तालुशोषे पिबेत्क्षपिं घृतमण्डमथापि वा ।

धान्यान्ममास्यबैरस्य मलदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥

तदेव शृतशीतं हि मुखशोषहरं परम् ॥ २४ ॥

बैशद्यञ्जनयत्यास्ये सन्दधाति मुखव्रणान् ।

दाहदृष्ट्याप्रशमनं मधुगण्डूपधारणम् ॥ २५ ॥

जिह्वातालुगलक्लोम शोषे मूर्ध्वनिदापयेत् ।

केशरं मातुलुङ्गस्य घृतसैन्धवसंयुतम् ॥ २६ ॥

दाडिमं बदरं लोभ्रं कपित्थं बीजपूरकम् ।

पिष्टान्मूर्ध्निप्रलेपय पिपासादाहनाशनः ॥ २७ ॥

वारिशीतं मधुयुक्तं माकण्डादा पिपासितम् ।

पाययेद्दामयेच्चापि तेन दृष्ट्याप्रशान्म्यति ॥ २८ ॥

बटप्ररोहं मधुकुटुमुत्पलं

सलाजचूर्णं गुटिकां प्रकल्पयेत् ।

सुसंहिता सा वदने विघारिता

दृष्ट्यां प्रहृद्दामपि हन्ति सत्वरम् ॥ २९ ॥

इति सामान्यविधिः ।

क्षतोद्भवार्ग्वनिवारणेन जयेद्द्रसानामसृजय पानैः ।

चयोत्थितां क्षीरजलं निहन्यान्मासोदकं वा मधुकोदकं वा ॥३०॥

श्रामोद्भवा वित्त्ववचायुताना जयेत्कपायैरयदीपनानाम् ।

छल्लेखने गुर्वशनप्रजाता जयेत्क्षतोत्था तु विनापिपासाम् ॥३८॥

स्निग्धेऽन्ने भुक्ते या तृष्णास्यात्ता गुडावुनाशमयेत् ।

अतिरुक्षदुर्बलाना तृप्ता शमयेन्मृणामिहाशु पय ॥३८॥

छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः ॥ ४० ॥

मूर्च्छां कर्दिदृषादाह स्तीमघभृशकर्षित ।

पिवैयुः शीतल तोय रक्तपित्ते मदात्यये ॥ ४१ ॥

तृप्यन्नूर्ध्वामयीक्षीणो न लभेत जलं यदि ।

मरणं दीर्घरोगश्च प्राप्नुयात्वरितं नरः ॥ ४२ ॥

सात्वप्रादपानभेषज्यै स्तृपार्तस्य जयेत्तृपाम् ।

तस्याञ्जितायामग्नौऽपि व्याधिः शक्ययिकित्सितुम् ॥ ४३ ॥

तृपितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति ।

तस्मात्सर्वास्त्रवस्यासु न कश्चिद्धारिवर्जयेत् ॥ ४४ ॥

अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान्धारयते चिरम् ।

तोयाभावे पिपासार्तं क्षणत्प्राणैर्विमुञ्चते ॥

इति वङ्गसेने तृष्णानिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ १८ ॥

—०—

अथ मूर्च्छानिदानमाह ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ।

वेगाघातादभीघाता हीनमत्वस्य वा युनः ॥ १ ॥

क्षरणायतनेषूभा वाद्येष्वभ्यन्तरेषु च ।

निवसन्ते यदा दोषा सादा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥

संघ्रायहासु नाड्यु पिहिताप्यनिलादिभिः ।
तमोभ्युपैति सहेसा सुखदुःखव्यपोहकत् ॥ ३ ॥
सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ।
मोहो मूर्च्छति तामाहुः पंडिधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ।
पट्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठति ॥ ५ ॥
हृत्पीडाजृम्भणं ग्नानिः संघ्रादीर्वल्यमेव च ।
सर्वासां पूर्वरूपाणि यथा स्रन्तं विभावयेत् ॥ ६ ॥
नीलं वा यदि वा कृष्णं माकाशमथवारुणम् ।
पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रञ्च प्रतिबुध्यते ॥ ७ ॥
येपयुष्मांगमर्दथ प्रपीडाहृदयस्य च ।
कार्श्यं स्यात्वारुणाच्छाया मूर्च्छाये वातसम्भवे ॥ ८ ॥
रक्तं हरिद्वर्णञ्च वियत्पीतमथापि वा ।
पश्यंस्तमः प्रविशति सखेदथ प्रबुध्यते ॥ ९ ॥
सपिपासः ससन्तापो रक्तपीताकुलीयणः ।
संभिववर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसम्भवे ॥ १० ॥
मेघमंकाशमाकाश माहृतं वा तमोवनैः ।
पश्यंस्तमः प्रविशति चिरञ्च प्रतिबुध्यते ॥ ११ ॥
गुरुभिः प्राहृतैरङ्गै र्यथैवाद्र्देण चर्मणाः ।
सप्रसेकः सङ्घृष्टासो मूर्च्छाये कफसम्भवे ॥ १२ ॥
सर्वाकृतिः सन्निपाता दंपञ्चार इवागतः ।
स जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥ १३ ॥
पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगन्धश्च तन्मयः ।
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन भुवि मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ १४ ॥
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदपि सुहृति ॥ १५ ॥

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमदयोः ।

त एव तस्मात्ताभ्यान्तु मोहौ स्याता यथेरितौ ॥ १३ ॥

स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वृजगूढोच्छासश्च मूर्च्छितः ॥ १४ ॥

मध्येन विलपन् शैते नष्टविभ्रास्तमानसः ।

गात्राणि विक्षिपन् भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ १५ ॥

वैषयु स्वप्रवृत्त्याः स्यु स्तमश्च विषमूर्च्छिते ।

वेदितव्यं तीव्रतरै र्यथास्व विपलक्षणैः ॥ १६ ॥

मूर्च्छां पित्ततमः प्रायां रजः पित्तानिलाद्भुमः ।

तमो बातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ।

अनायासश्चमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः ।

क्लमः स इति विज्ञेयः इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥ १७ ॥

इन्द्रियार्थेष्वसं वित्तिर्गौरव जृम्भनं क्लमः ।

निद्रार्तस्यैव यस्यैत तस्य तन्द्रा विनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥

इन्द्रियाणान्तु मनसो मोहो निद्रा निगद्यते ।

विमोहस्त्विन्द्रियाणान्तु स तु तन्द्रा विरच्यते ॥ १९ ॥

दोषेषु मदमूर्च्छाया गतविशेषु देहिनाम् ।

स्वयमेवोपशाम्यन्ति सत्र्याप्तो नोपधैर्विना ॥ २० ॥

वाग्देहमनसां चैष्टा भाक्षिष्यातिबलामलाः ।

सत्र्यस्यन्त्यबल जन्तुः प्रणायतनमाश्रिताः ॥ २१ ॥

सनासत्र्यामसत्र्यस्तः काटीभूतो मृतोपमः ।

प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं सुक्ता सद्यः फलां क्रियाम् ॥ २२ ॥

१ सद्यः फलादिकां सूचीप्यघनादिकामिति ।

अथ चिकित्सामाह ।

सेकावगाहामणयः सहाराः
 शीताः प्रदेहा व्यजनाऽनिलाश्च ।
 शीतानि पानानि च गन्धवन्ति
 सर्वान् मूर्च्छांस्तु निवारितानि ॥ २७ ॥
 सिद्धानि वर्गे मधुरे पयोसि
 सदाङ्गिमा जाङ्गलजा रसाश्च ।
 तथा यवा लोहितशालयश्च
 मूर्च्छांस्तु पथ्याश्च सतीनमुद्राः ॥ २८ ॥
 मूर्च्छां प्रशस्तांश्चिरोविरेकैः
 जयेदभोक्ष्यं वमनैश्च तीक्ष्णैः ॥ २९ ॥

कोलमज्जोषणोशीरं केशरं शीतवारिणा ।
 पीतं मूर्च्छां जयेत्क्षौद्रा कृष्णां वा मधुसयुताम् ॥ ३० ॥
 भ्रमः पित्तस्य सहस्रौ जायते पवनस्य च ।
 अतस्तयोः प्रशमनी क्रिया मन्त्रावचारयेत् ॥ ३१ ॥
 महीपधामृता चौद्रं पुष्करं ग्रन्थिकोद्ववम् ।
 पिबेत्कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायाश्च मर्देषु च ॥ ३२ ॥
 पिबेद्दुःखालभाक्त्वाथं सष्टतं भ्रमशान्तये ।
 त्रिफलायाः प्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि वा ॥ ३३ ॥
 कर्पासबीजपाण्डुरं तंडुलतक्रैः प्रकल्पिता पेया ।
 धान्यकङ्किणुनागरं जीरकलवणैर्विनाशयेद् भ्रमणम् ॥ ३४ ॥
 स्निग्धमामलकं पिष्ट्वा द्राक्षया सह संसृजेत् ।
 विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत् ।
 तेनास्य शाम्यते मूर्च्छा श्वासः कासस्तथैव च ॥ ३५ ॥

पञ्चमूलकपायश्च मधुना सितया पिवेत् ।
 यथास्त्रश्च ज्वरघ्नानि कषायानि प्रयोजयेत् ॥ ३६ ॥
 रक्तजायान्तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः ।
 मद्यजायां पिवेन्नद्यं निद्रां सेवेत वा सुखम् ॥ ३७ ॥
 विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥
 कृष्णाशताङ्गाशुण्ठीनां साभयानां पलं पलम् ।
 गुडस्य पट्पलान्येषा गुटिका भ्रमनाशिनी ॥ ३९ ॥
 इति भ्रमनाशिनीगुटी ।

अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमाः प्रथमनानि च ।
 सूचिभिस्तोदन शस्तं दाहपीडानखान्तरे ॥ ४० ॥
 लुञ्चन केशलोम्नाश्च दन्तैर्दशनमेव च ।
 आत्मगुप्तावघर्षय हितस्तस्यावबोधने ॥ ४१ ॥
 उत्थितो लब्धसङ्गश्च लशुनस्य रसं पिवेत् ।
 खादेत्सव्योपलवणं वोजपूरककेशरम् ॥ ४२ ॥
 पथ्या काथेन ससिहं घृतं धात्रीरसेन च ।
 सर्पिः कल्याणकं वापि मदमूर्च्छापहं पिवेत् ॥ ४३ ॥
 इति वङ्गसेने मूर्च्छानिदानचिकित्साधिकारः
 समाप्तः ॥ १८ ॥

अथ मदाल्ययनिदानमाह ।

ये विषस्य गुणाः प्रीक्ता स्ते मद्येऽपि प्रकीर्तिताः ।
 तेन मिथ्यापयुक्तेन भवत्युग्रो मदाल्ययः ॥ १ ॥
 किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवात्र तया श्रुतम् ।

अयुक्तियुक्त रोगाय युक्तियुक्त तथामृतम् ॥ २ ॥
 प्राणा प्राणमृतामन्न तदयुक्तन्तु हन्यसून् ।
 विष प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ ३ ॥
 विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथा वलम् ।
 प्रहृष्टोऽयं पिवेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ॥ ४ ॥
 स्निग्धैस्तदन्नैर्ममैव भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ।
 भवेदायुः प्रहर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ५ ॥
 काश्यता मनसस्तुष्टिं स्तेजो विक्रम एव च ।
 विधिना सेव्यमाने तु मद्ये सन्निहिता गुणा ॥ ६ ॥
 तथैवान्न मनोज्ञेन सेव्यमानममात्रया ।
 काम्याग्निना ह्यग्निसमं समेत्य कुरुते गदान् ॥ ७ ॥
 मदेन करणानान्तु भावान्यत्वे कृते सति ।
 निगूढमपि भावं स्व प्रकाशं कुरुतेऽवश ॥ ८ ॥
 श्लेष्मिकाश्चाल्पपित्ताश्च स्निग्धान्मासीपसेविन ।
 पानं न बाधतेऽत्यर्थं विपरीताश्च बाधते ॥ ९ ॥

अथ त्रिगुणमदलक्षणमाह ।

बुद्धिस्मृतिप्रोतिकरं सुखं च पानाच्च निद्रारतिवर्धनम् ।
 सपाठगीतस्वरवर्धनम् प्रोक्तोऽतिरम्यो प्रथमो मदो हि ॥ १० ॥
 अप्यक्तबुद्धिस्मृतिवाञ्छिषेष्टं सोऽमृतलीलात्ततिरप्रशान्तः ।
 आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मतः पुरुषो मदेन ॥ ११ ॥
 गच्छेद्गम्यान्गुरुश्च मन्येत् खादेदद्यान् च नष्टमज्ञः ।
 ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदिस्थितानि मदे तृतीये पुरुषस्त्वतन्द्र ॥ १२ ॥
 चतुर्थं तु मदे मूढो भग्नदार्ढ्यं निष्प्रियः ।
 कार्याकार्यविभागाज्ञो मृतादयः परो मृतः ॥ १३ ॥

को मदं तादृशं गच्छे दुष्माद् इव चापरः ।

बहुदोषमिवारूढः कान्तारं स्ववशः कृती ॥ १४ ॥

निर्भुक्तेकान्तत एव मदं निषेव्यमान पुरुषेण नित्यम् ।

आपादयेत् कष्टतमान्विकारा नापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १५ ॥

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ।

व्यायासभाराध्वपरिचितेन वेगावरोधाभिहतं चापि ॥ १६ ॥

अत्यस्तभक्ष्यावततोदरेण समीर्णभक्तेन तथा वलेन ।

उष्णाभितप्तेन च सेव्यमान करोति मद्य विविधान्विकारान् ॥ १७ ॥

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ।

पानविभ्रमसंज्ञश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १८ ॥

हिक्काश्वासशिरः कम्प पार्श्वशूलप्रजागरैः ।

विद्याद्विदुप्रलापस्य वातप्रायं मदाल्ययम् ॥ १९ ॥

दृष्ट्यादाहज्वरस्वेद मोहातिसारविभ्रमैः ।

विद्याद्वरितवर्षस्य पित्तप्रायं मदाल्ययम् ॥ २० ॥

हृद्यरोचकाह्लास तन्द्रास्तैमित्यगोरवैः ।

विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदाल्ययम् ॥ २१ ॥

श्लेयस्त्रिदोषजयापि सर्वलिङ्गैर्मदाल्ययः ॥ २२ ॥

श्लेष्मोच्छयोऽङ्गगुरुता विगसास्यता च

विण्मूत्रमक्तिरथतन्द्रिररोचकश्च ।

लिङ्गं परम्य तु मदस्य यदन्ति तज्ज्ञा-

स्तृणाश्रुजा शिरसिसन्धिषु चापि भेदः ॥ २३ ॥

आधानमुपमथबोद्धिरण विदाहः

पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ।

श्लेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि

पित्तमक्षीपजनितानि च कारणानि ॥ २४ ॥

हृत्तात्रतोदकफमंस्त्रैवकण्ठधूस
 मूर्च्छावमिव्यरशिरोरुजेनप्रदेहोः ।
 हेषः सुराज्विकृतेषु च तेषु तेषु
 तं पौनविभ्रमसुशल्यखिलेन धीराः ॥ २५ ॥
 हीनोत्तरीष्टमतिशीतममन्ददाहं
 तैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेत्तु ।
 जिह्वाष्टतालुमसित त्वथवापि नीलं
 पित्ते च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा ॥ २६ ॥
 हिक्काज्वरो वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
 कासभ्रमावपि च पानहतं त्यजेत्तु ॥ २७ ॥
 ध्वंसको विक्षयश्चैव रोगस्यास्योपजायते ।
 श्लेष्मप्रसेकहृत्कण्ठास्यशोषश्च सहिष्णुता ।
 तन्द्रानिद्रातियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥ २८ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

मद्यं मौर्वर्चलं व्योषं युक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ।
 जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ २९ ॥
 योजयेन्मातुलुङ्गाम्बु दाडिमैः पानकान्यपि ।
 खिग्धात्मलवणारुच्य रसाब्जाङ्गलजान् शुभान् ॥ ३० ॥
 सुतं सोमर्चनं शृङ्गी व्रूषणार्द्रकदीप्यकैः ।
 मद्यं पीत्वा जयत्युग्र पवनोत्थं मदात्ययम् ॥ ३१ ॥
 पित्तान्धवे मधुरवर्गं काषायसिद्धं
 मद्यं हितं समधुगर्करमिष्टगन्धि ।

पित्वा च मद्यमपि चेक्षुरसप्रगाढं

किञ्चित् क्षणस्थितमथोल्लिखितव्यमेव ॥ ३२ ॥

सतीनमुद्गमिश्रान् वा दाडिमामलकान्वितान् ।

द्राक्षामलकखर्जूरं परंप्रकरसेन वा ।

कल्पयेत्तर्पणान् यूपा नृसांश्च विविधात्मकान् ॥ ३३ ॥

पित्ते चौद्रसितायुक्तं मद्यमर्द्धोदकं पिबेत् ।

पित्तपानात्यये योज्या सर्वतश्च क्रिया हिमाः ॥ ३४ ॥

वमनद्रव्यसयुक्तं मद्येनोत्तेजनं हितम् ।

पानरोगे कफोद्भूते लङ्घनञ्च यथा बलम् ।

दीपनीयौषधोपेतं पिबेन्मद्यं समाहितः ॥ ३५ ॥

त्रिफलायारसो वाऽपि व्योषचूर्णसमन्वितः ।

शृङ्गमूलकजो यूपः कौलित्यो वा मधूत्कटः ॥ ३६ ॥

यवान्नं विक्षतिर्योज्या चाङ्गलान्नकृतानि च ।

—०—

सौवर्चलमजाजीयं वृक्षान्नं साम्बवेतसम् ।

त्वगेलामरिचार्द्रांश्च शर्कराभागयोजितम् ॥ ३७ ॥

एतद्वर्णमष्टाङ्गं भग्नमन्टीपनं परम् ।

मदात्यये कफप्राये दद्यात् स्तोतो विशुद्धये ॥ ३८ ॥

—०—

एतैकद्रव्यभागास्तु त्वगेलामरिचानामधीशकत्वम् । शर्करायाश्च
सौवर्चलादिभिश्च तुल्यो भागः ।

इत्यष्टाङ्गसंवर्णम् ।

सर्वज्ञे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिच्छिन्नैः ।

आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शान्तिं याति मदात्ययः ॥ ३९ ॥

नचेन्मद्यं क्रमं हित्वा क्षीरमेव प्रयोजयेत् ।

सहनाद्यैः कफे क्षीणे जाते दीर्घत्ववाचवे ॥ ४१ ॥

श्लोक्तुल्यगुणं क्षीरं विपरोतञ्च मद्यतः ।

क्षीरप्रयोगं मद्यञ्च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ॥ ४२ ॥

मेन्यः खर्जूरमृद्धीका वृक्षान्नाम्निकदाडिमैः ।

परुषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥ ४३ ॥

—०—

चव्यं सीवर्चलं हिङ्गु क्षीरकं विश्वदोष्यकम् ।

चूर्णं मद्येन दातव्यं पानात्म्यरुजापहम् ॥ ४४ ॥

इति चव्यादिचूर्णम् ।

मधुना हृत्युपयुक्तां त्रिफलारात्रौ गुडार्द्राकं प्रातः ।

सप्ताहात् पथ्यभुजो मदमूर्च्छाकामलोन्मादान् ॥ ४५ ॥

इति मधुत्रिफलागुडार्द्रकयोगौ ।

अहानि सप्तघाट्टौ च नृणां पानात्म्यं शतम् ।

पानं हि भजते जीर्णं मत ऊर्ध्वं विमार्गगम् ॥ ४६ ॥

कुष्माण्डकरसः सगुडः । शमयति मदमाशु मदनकोद्वजम् ।

घत्तूरकञ्च दुग्धं शर्करञ्च पानयोगिन ॥ ४७ ॥

सहर्दिमूर्च्छातिसारं मदं पूगफलोद्भवम् ।

सद्यः प्रशेमयेत्पीत मातृश्वे वारिशीतलम् ॥ ४८ ॥

वन्धकरीपद्माणाञ्जलपानास्तवणभक्षणादपि च ।

शाम्यति पूगफलमदचूर्णं रुजा शर्कराकबलात् ॥ ४९ ॥

मद्यं पीत्वा यदिना तत्क्षणमवलेटि शर्करां महताम् ।

जातु न मदयति मद्यं मनागपि प्रधितं जीर्णमपि ॥ ५० ॥

कट्फलमुस्तुगुडूची माषैः क्रमविवर्धितैश्च तत्सर्वम् ।
 चर्वितमुखघृतमात्रं हन्याद्भक्ष्यं सुराप्रभवम् ॥ ५१ ॥
 पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा ।
 सर्पिः कल्याणकं वापि मदमूर्च्छापहं पिबेत् ॥ ५२ ॥

—०—

शतावरी सवृषोव यष्टीकल्कैः शृतं घृतम् ।
 पथः पुनर्नवाक्वाथे पानात्ययमपोहति ॥ ५३ ॥
 घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानहतौजसः ।
 इति शतावरीपुनर्नवाद्यं घृतम् ।

ये च वृणादयो रोगा स्तेनिवार्याः स्वभेषजैः ॥ ५४ ॥
 मद्यप्रक्षीणदेहस्य वस्तयः सानुवासनाः ।
 अभ्यङ्गोष्मादनस्नान सर्पिः क्षीरनिषेवणम् ॥ ५५ ॥
 जलप्लुतयन्दनभूषिताङ्गः स्वग्वी सभक्तां पिशितोपदेशाम् ।
 पिवेत्सुरां नैव लभेत्तरीगान् मनोपघातांश्च मद न याति ॥ ५६ ॥
 यं दोषमधिकं पश्ये क्षमादौ प्रतिकारयेत् ।
 कफस्यानानुपूर्य वा तुल्यदोषे मदात्यये ॥ ५७ ॥
 कान्तिश्च क्षीना च विहीनकर्णौ जिह्वातिनीलादशनाबली च ।
 नेत्रे तु रक्ते शकपक्षपीते क्षणाधरो यत्र विवर्जनीयः ॥ ५८ ॥

इति वङ्गसेने पानात्ययपरमदपानाजीर्णपानविभ्रम
 निदानचिकित्साधिकारः समाप्तः ॥ २० ॥

—०—

अथ दाहनिदानमाह ।

त्वचं प्रातः समानोष्ण पित्तरक्तमभिमूर्छितः ।
 दाहं प्रकुर्वते घोरं पित्तवृत्तस्य भेषजम् ॥ १ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

शतधीतष्टताभ्यक्तं दिह्यात्तु यवशक्तुभिः ।
 कोलामलकसयुक्तैर्दाडिमाम्बुना नुविमान् ॥ २ ॥
 छादयेत्तस्य सर्वाङ्गं मारणालार्द्रवाससा ।
 लामज्जेनाथ शूक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ ३ ॥
 चन्दनाम्बुकणास्यन्दि तालवृन्तोपवीजितः ।
 सुप्याद्दाहार्दितोऽभोज कदलीदलसस्तरे ॥ ४ ॥
 परिपेकावगाहेषु व्यञ्जनानाञ्च सेवने ।
 शस्यते शिशिरं तोयं दृष्यादाहोपशान्तये ॥ ५ ॥
 चीरैः चीरकपायैश्च सुशीतैश्चन्दनान्वितैः ।
 अन्तर्दाहं प्रशमये देतैश्चान्यैः सुशीतलैः ॥ ६ ॥
 फलनीलोद्भसेव्याम्बु ज्ञेयपत्रं कुटनटम् ।
 कालीयकरसो पेतं दाहे शस्त प्रलेपनम् ॥ ७ ॥
 शृङ्गसूक्ष्मकृतो लेपश्चन्दनस्यापि दाहनुत् ।
 त्वग्जातस्योष्णो रीधाच्छीतकृत्वमयागुरु ॥ ८ ॥
 ज्जीवेरपद्मकोशीर चन्दनचोदवारिणा ।
 सम्पूर्णमवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ ९ ॥

—०—

आमलक्याथ कुडवं सुखिन्नं निष्कुलीकृतम् ।
 प्रस्थेन पयसः पिष्ट्वा पचेत्प्रस्थे च सर्पिणि ॥ १० ॥
 प्रस्थं दत्वा सितायाश्च वासापलचतुष्टयम् ।
 जीरकं मरिचं क्षेपणं चातुर्जातं क्षिपेत्पुनः ॥ ११ ॥
 कर्षं दत्वा ततः क्षिप्त्वे भाण्डे धृत्वोपभोजयेत् ।

दाहं सुदुर्जयं हन्ति मूर्छां हृदिं चिरोत्थिताम् ॥ १२ ॥

इत्यामलक्यादिखण्डः ।

मातुलुङ्गरसचोद्रे प्रदेहं नाहनाशनम् ।

शयने चात्र पानानि शीतानि विविधानि च ॥ १३ ॥

शीतवातजलस्पर्शः शीतान्युपवनानि च ।

पित्तज्वरहर यच्च दाहे तत्कार्यमिष्यते ॥ १४ ॥

वायुः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः ।

नार्ययन्दनदिग्धाग्नौ दाहदैव्यहरामताः ॥ १५ ॥

—०—

कुशादिशालिपर्णीभिर्जीविकर्षभसाधितम् ।

तेलं घृतञ्च दाहघ्नं वातपित्तविनाशनम् ॥ १६ ॥

इति कुशाद्यं घृतम् ।

—०—

अथ निदानम् ।

क्षत्स्त्रदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् ।

संचूयते लप्यते वा ताम्ब्राभस्ताम्ब्रलीचनः ।

खोद्यगन्धाद्भवदनो वज्जिनैवायकिर्यते ॥ १७ ॥

—०—

अथ चिकित्साभाह ।

तं त्रिन्ध्रविधानेन मण्डटाक्षरमाचरेत् ।

प्रशाम्यत्वयवा दाहो रमेत्पुष्ट्य जाग्रतैः ॥ १८ ॥

श्राद्याययं यथा न्यायं रोहिणीं धधयेद्भिराम् ॥ १९ ॥

—०—

अथ निदानम् ।

पित्तज्वरसमः पित्तात् स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥ २० ॥

दृष्ट्यातुरीधादध्यातो चीणे तेजस्यसुदिवः ।

मवाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्नन्दचेतसः ।

संशुष्कगलताल्बोष्टो जिह्वा निष्कृष्यवेपते ॥ २१ ॥

अथ चिकित्साम् ।

पाययेत् काममश्वश्च शर्करामः पयोऽपिवा ॥

चीरमिन्दुरसं वापि वितरेष्वरितं विधिम् ॥ २२ ॥

अथ निदानम् ।

असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्वात्सुदुस्तरः ।

विधिः सद्योव्रणोयोक्तस्तस्य लक्षणमेव च ॥ २३ ॥

धातुच्योत्यो यो दाहस्तेनमूर्च्छादृषान्वितः ।

चामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ २४ ॥

चतजोऽनश्नत्तद्यान्यः शोचतो वाप्यनेकधा ।

तेनान्तर्दह्यतेत्यर्थं दृष्ट्यामूर्च्छाप्रलापकम् ॥ २५ ॥

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सममो मतः ।

सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिनः ॥ २६ ॥

अथ चिकित्सामाह

तमिष्टविषयोपेतं सुदृढिरभिसन्मितम् ।

चीरमासरसाहारं विधिनोक्तेन साधयेत् ॥ २७ ॥

सर्व एव विवर्ज्यास्तु शीतगात्रेषु देहिषु ।

प्रशान्तोपद्रवो वापि शोधन प्राप्तमाचरेत् ॥ २८ ॥

इति वङ्गसेने दाहनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ २१ ॥

—०—

अथोन्मादनिदानमाह ।

मदयन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ।

मानसोऽयं मतो व्याधि रुन्माद इति कीर्तिता ॥ १ ॥

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।

मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते ॥ २ ॥

विपाद्भवति पष्ठस्तु यथास्वन्तेषु भेषजम् ।

स चाऽप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां विभर्त्ति च ॥ ३ ॥

विरुद्धदुष्टा शुचि भोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् ।

उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वा मनोऽभिधातो विपमाश्च चेष्टाः ॥ ४ ॥

तैरस्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ।

स्रोतांस्यधिष्टाय मनोवह्निनि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ।

अवहवाक्यं हृदयश्च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥ ६ ॥

रूचास्पृशीतान्निविरेक धातु चयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ।

चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युप हन्ति शीघ्रम् ॥ ७ ॥

अस्थानहास्यस्मितगीतनृत्य यागङ्गविषेपणरोदनानि ।

पारुष्य काश्याऽरुणवर्णता च जीर्णं बलं चानिलजस्य रूपम् ॥ ८ ॥

अजीर्णकटुम्लविदाह्यमौतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् ।

उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदिस्थितं पूर्ववदाश कुर्यात् ॥ ८ ॥
 अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यचोषाः ।
 प्रच्छायथीतान्नजलाभिलाषाः पीताचभापित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥ १० ॥
 संपूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोऽप्या कफो मर्मणि संप्रवृद्धः ।
 बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन् संजनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥
 वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियता च निद्रा ।
 हृदिस्थ लाला च बलञ्च भुक्ते नखादिशोक्तश्च कफात्मके स्यात् ॥ १२ ॥
 यः सन्निपातप्रभवोऽपि घोरः सर्वैः समस्तैरपि हेतुभिः स्यात् ।
 सर्वाणि रूपाणि विभर्ति तादृग् विरुद्धभेषज्यविधिर्विवर्ण्यः ॥ १३ ॥
 चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यै
 विव्रासितस्य धनवान्धवसंचयाद्वा ।
 गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसो-
 र्जायेत चोत्काटतरो मनसो विकारः ॥ १४ ॥
 चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगत विसंज्ञो
 गायत्यथो हसति रोदति चापि मूढः ।
 रक्तेक्ष्णो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः
 श्यावाननो विपकृतेन भवेद्विसृजः ॥ १५ ॥
 अवाप्नुखस्तूष्णीवा चोष्णमांसबलो नरः ।
 जागरूको ह्यसन्देह सुन्मादेन विनश्यति ॥ १६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

वातिके स्नेहपानं प्राग्विरक्तः पित्तसम्भवे ।
 कफजे वमनं कार्यं परो वक्ष्यादिकः क्रमः ॥ १७ ॥
 यच्चोपदिश्यते किञ्चित् अपस्मारचिकित्सिते ।

उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययोः ॥ १८ ॥

द्रुमाग्निजलशैलेभ्यो विषमेभ्यश्च तं सदा ।

रश्मेदुन्मादिनं चैव सद्यः प्राण हरं हि तत् ॥ १९ ॥

ब्राह्मी कुष्माण्डीफल पङ्कज्या ग्रहपुष्पिका स्वरसाः ।

उन्मादहृतो दृष्टा पृथगेति कुष्टमधुमिश्राः ॥ २० ॥

पाङ्गेरीरसकाञ्चिक गुडसमभागाः सुमथिताः क्रमशः ।

उन्मादरोगशमनाः पीता दिवसत्रयेणैव ॥ २१ ॥

मण्डूकपर्णः स्वरसः कनकदलसंयोजितः समभागः ।

शमयत्युन्मादगदं तृणराजवल्ली रमयुक्तः ॥ २२ ॥

सितकुसुमवलायाः सार्धकार्पत्रयं यः

शिखरिचरणकोलं क्षीरपाकेन पक्तम् ।

पिबति तदनुशीतं प्रातरुत्थाय नित्यम्

जयति रुटिति घोर व्याधिसुन्मादमुग्रम् ॥ २३ ॥

—०—

सिद्धार्यको हिङ्गुवचा करञ्जो देवदारु च

मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभीत्वक् कटुचिकम् ।

समांशानि प्रियङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयं

यत्समूचेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ २४ ॥

नस्यमालेपनञ्चैव स्नानमुद्धर्त्तनं तथा ।

अपस्मार विषोन्माद कृत्वा सक्ष्मी ज्वरापहम् ॥ २५ ॥

भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते ।

सर्पिरेतेन मिदं वा गोमूत्रे च तदर्थकम् ॥ २६ ॥

इति सिद्धार्यफाद्यञ्जनम् ।

दशमूलांशु सष्टतं युक्तं मर्मरसेन वा ।

ससिद्धार्यकचूर्णं च केवलं नावनं घृतम् ॥ २७ ॥

उन्मादशान्तये पेयो रसो वा तिलमाषजः ।

प्रयोज्यं सार्पपं तैलं नस्याभ्यञ्जनयोः सदा ॥ २८ ॥

आश्वासयेत् सुहृद्भिश्च वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ।

ब्रूयादिष्टविनाशं वा दर्शयेद्द्गुतानि च ॥ २९ ॥

बद्धं सर्पपतैलाक्त मुत्तानमातपे न्यसेत् ।

कपिकच्छाय वा तप्तै लोहितैलजलैः स्थलेत् ॥ ३० ॥

कषाभिस्ताडयित्वा च सुबद्धं विजने गृहे ।

रुन्ध्याच्चेतो हि विद्वां स्तं तथा व्रजति तत्सुखम् ॥ ३१ ॥

सर्पणोद्धृतदंष्ट्रेण दान्तैः सिंहैर्गजैश्च तम् ।

प्रासयेच्छस्त्रहस्तैश्च शत्रुभिस्तस्करैस्तथा ॥ ३२ ॥

अथवा राजपुरुषा बहिर्नीत्वा सुसंयतम् ।

प्रासयेयु र्बुधैरेनं तर्जयन्तो नृपाज्ञया ॥ ३३ ॥

देहदुःखभयेभ्यो हि परं प्राणभयं भवेत् ।

तेन तस्य शमं याति सर्वतो विप्लुतं मनः ॥ ३४ ॥

सततं धूपयेच्चैनं च गोमांसैश्च पूतिभिः ॥ ३५ ॥

इष्टद्रव्यविनाशिन मनो यस्योपहन्यते ।

तस्य तत्सदृशप्राप्त्या शान्त्याश्वासैः शमं नयेत् ॥ ३६ ॥

कामशोकभयक्रोध हर्षैर्यालोभसम्भवात् ।

परस्परप्रतिद्वन्द्वै रेभिरेव शमं नयेत् ॥ ३७ ॥

बुध्वादीपं वयः सात्त्विकं देशकालं बलाबलम् ।

चिकित्सितमिदं कुर्याद् दुन्मादे भूतदोषजे ॥ ३८ ॥

महर्षेः पितृगन्धर्वे रुन्मादस्य च बुद्धिमान् ।

यर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म च ॥ ३९ ॥

अपस्मारक्रियां वापि अहोहिष्टाञ्च कारयेत् ।

शान्तिं दोषविशुद्धिश्च स्नेहवास्त्रभिराचरेत् ॥ ४० ॥

मृदुपूर्वान्तु विपजे क्रियामूर्द्धां प्रयोजयेत् ।
 शोकशान्तिमपनये दुग्धादे पञ्चमे भिषक् ॥ ४१ ॥
 उरोबाहुललाटस्थां शिरां मुक्ता प्रयत्नतः ।
 निवाते शमनं युञ्ज्या द्वित्याद्यभ्युक्तान्वितम् ॥ ४२ ॥

—०—

व्रूपणं द्विगुलवर्णं वचाकटुकरोहिणी ।
 शिरीषनक्तमालानां बीजं श्वेताय सर्पपाः ॥ ४३ ॥
 गोमूत्रपिट्टैरेतैस्तु वर्त्तिर्नैवाश्वने हिता ।
 चातुर्थिकमपस्मार मुग्धादं वा नियच्छति ॥ ४४ ॥

इति व्रूपणाय वृत्तिः ।

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनिपाठा ।
 माद्वल्यपुष्पा च समानचूर्णं क्षत्वा च चूर्णेन वचोद्वेन ॥ ४५ ॥
 तुल्येन युक्तं बहुशो रसेन तद्भावितां वज्रविनिर्मितायाः ।
 सर्पिर्मधुभ्याश्च ततोऽचमात्रं लिङ्घ्यान्नरः सप्तदिनं हिताशी ॥ ४६ ॥
 ऐश्वर्यमिच्छन्नसद्य धैर्यं मेधां तथे छन्दिगुणश्च कालम् ।
 पठेन्नरः शोकसहस्रमष्टस्तद्वत् प्रयोज्यं द्विगुणश्च कालम् ॥ ४७ ॥

सारस्वतमिदं चूर्णं वज्रणा निर्मितं स्यम् ।

जगहितायलोकानां दुर्मिधानां विचेतमाम् ॥ ४८ ॥

इति सारस्वतं चूर्णम् ।

द्विगुमौवर्चनयोपे द्विपलांघैर्दृतादकम् ।

चतुर्गुणे गवा मूत्रे सिद्धमुक्तादनाग्नम् ॥ ४९ ॥

इति द्विगुणं दृतम् ।

अटिनापृतनाकेशी चारटीमर्कटीवचा ।

त्रायमाणाज्यावीरा चीरकः कटुरोहिणी ॥ ५० ॥

कायलागूकरोक्ष्वासातिदनापलंघपा ।

महापुरुषदन्ता च वयस्थानाकुनीद्वयम् ॥ ५१ ॥

फटम्भरावृत्तिकाली सस्त्रिराऽपि च तैर्हृतम् ।

सिद्धं चातुर्थिकोन्माद ग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ५२ ॥

महापैशाचकं नाम हृतमेतद्यथामृतम् ।

मेधाबुद्धिस्मृतिकरं बालानां चाग्निदीपनम् ॥ ५३ ॥

इति महापैशाचिकं हृतम् ।

त्रिफलालक्षणाऽनन्ता समझाशारिवामृता ।

ब्राह्मीपाठाद्विहृती द्विस्थिरा द्विपुनर्नवा ॥ ५४ ॥

सहदेवीसूर्यवल्ली वयस्था गिरिकर्णिका ।

तोयकुम्भे पचेदेतत् पलांशं पादशेषिते ॥ ५५ ॥

नतंकौन्तीवचाकुटं कृत्वा मर्पपमैन्मवैः ।

निरुक् सर्वर्षद्विष्टायाः संसिद्धं पयसा च गोः ॥ ५६ ॥

पुथ्ययोगे हृतप्रस्थं सुहेमकलशे स्थितम् ।

पानाभ्यञ्जनतो मेधा स्मृत्यायुः पुष्टिर्धनम् ।

रक्षोघ्नञ्च विषघ्नञ्च सारस्वतमिदं हृतम् ॥ ५७ ॥

इति सारस्वतं हृतम् ।

काथ्ये विचूर्णिते चिष्टा ततः षोडशिकं जलम् ।

पादशेषं प्रकर्त्तव्यमेषः काथ्य विधिः स्मृतः ॥ ५८ ॥

—०—

दशमूली तथा रास्त्रा वानरीचिहृता बला ।

मूर्वा शतावरी चेति काथ्यैस्तु कुडवैः पृथक् ॥ ५९ ॥

कृतकाथ्यं पृथक् प्रस्यद्वयं मृद्वग्निना पचेत् ।

विशान्ता त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ।

स्थिरानतं द्वे रजन्धो शारिवे द्वे प्रियङ्गुका ॥ ६० ॥

नीलीत्पलैला मन्त्रिष्ठा दन्तीदाडिमंकेमरम् ।

विङ्गङ्गं शृष्टयर्णी च कुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥ ६१ ॥
 तालीशपत्रं वृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ।
 अष्टाविंशतिभिः कल्कैः एतैः कर्पसमन्वितैः ॥ ६२ ॥
 चतुर्गुणं जलं दत्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 अपस्मारे ज्वरे शोषे कासे मन्दानले कृशे ॥ ६३ ॥
 वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकं चतुर्थके ।
 कटिशूले मूत्रकृच्छ्रे विसर्पोपहतेषु च ॥ ६४ ॥
 कण्डूपाण्डूमायोग्माद विषमेहं गरीषु च ।
 भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ॥ ६५ ॥
 शस्तं स्त्रीणाञ्च बन्धानां धन्यमायुर्वलप्रदम् ।
 अलक्ष्मी पापरक्षोभं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ६६ ॥
 कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥

इति पानीयकल्याणकं घृतम् ।

द्विजलं सचतुः क्षीरं तत्स्यात् कल्याणकं महत् ।
 एभ्य एव स्थिरादीनि जले पञ्चैव विंशतिम् ॥ ६७ ॥
 रसे तस्मिन् पचेत् सर्पिं घृष्टिक्षीरं चतुर्गुणम् ।
 वीरादिमाप काकोली स्वयं गुसर्पभर्दिभिः ॥ ६८ ॥
 मेदया च ममैः कल्कैः स्तुप्त्वात् कल्याणकं महत् ।
 हं हृणीयं विशेषेण सन्निपातहरं परम् ॥ ६९ ॥

इति महाकल्याणकं घृतम् ।

श्यामामधुरमाराध्या देवदारुगतावरी ।
 खट्वद्विदशमूलसं तैर्युक्त्वा कायकल्कितैः ॥ ७० ॥
 साधितश्चेतसं नाम घृतं चेतो विकारनुत् ।
 उन्मादमदमूर्च्छायां ज्वरापघ्नारभेपजम् ॥ ७१ ॥

इति चैतसं घृतम् ।

पञ्चमूल्या च काश्मर्य्यो रास्त्रैरण्डविह्वला ।
मूर्वाशतावरी चेति काथैर्द्विपलिकेरिमैः ॥ ७२ ॥
कल्याणकस्य चांशेन चैतसं नाम तद्भूतम् ।
सर्वचेतो विकाराणां शमनं परमुच्यते ॥ ७३ ॥

कार्य्यः कषायो द्विगुणाष्टतीयैः

पानीयकल्याणककल्कपाच्यम् ।

इति द्वितीयं चैतसं दृतम् ।

निशायुक् त्रिफलाश्यामा वचा सिद्धार्थहिङ्गुभिः ।
शिरिषकटभी श्वेता मञ्जिष्टाव्योपदारुभिः ॥ ७४ ॥
समैः कल्कैर्दृतं मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥

इति निशाद्यं दृतम् ।

चन्दनाम्बुनखं याव्यं यष्टीशैलेयपद्मकम् ।
मञ्जिष्टांसरलं दारु शठ्ये लापूतिकेशरम् ॥ ७५ ॥
पत्रं तैल्वं सुरामांसी कङ्गोल वनिताम्बुदम् ।
हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवणागुरुकुङ्कुमम् ॥ ७६ ॥
त्वयेणुनलिका चेति तैलान्मस्तु चतुर्गुणम् ।
लाक्षारमसमं सिद्धं ग्रहघ्नं परमं मतम् ॥ ७७ ॥
अपस्मारग्रहोन्माद कृत्या लक्ष्मीज्वरापहम् ।
आयुपुष्टिकरश्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ ७८ ॥

इति चन्दनाद्यं तैलम् ।

निवृतामिषमद्यो यो हृिताशीप्रयतः शुचिः ।
निजागन्तुभिरुन्मादैर्न कदाचित् स युज्यते ॥ ७९ ॥
प्रसादश्चेन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसां तथा ।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ॥ ८० ॥

अथ भूतोन्मादनिदानमाह ।

अमर्त्यं वाग्विक्रमवीर्यवेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।

उन्मादकालो नियतश्च यस्य भूतोन्मादमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ ८१

सन्तुष्टः शुचिरथ दिव्यमाल्यगन्धो

निस्तन्द्रोऽप्यवितथ संस्कृतभाषी ।

तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता

ब्रह्मण्यो भवति नरः सदेवजुष्टः ॥ ८२ ॥

संस्नेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता

जिह्वाक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ।

सन्तुष्टो भवति न चात्रपानजातै

दुष्टात्मा भवति च देवशत्रुजुष्टः ॥ ८३ ॥

हृष्टात्मापुलिनवनान्तरोपमेवी

स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः ।

नृत्त्यन् वै प्रहसतिचारु चाल्पशब्दं

गन्धर्वप्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ ८४ ॥

ताम्राक्षः प्रियतनु रत्नवस्त्रधारी

गम्भीरोद्भुतमतिरल्पवाक्सहिष्णुः ।

तेजस्वी वदति च किं ददामि कश्चै

यो यक्षप्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ ८५ ॥

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान्

शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्तः ।

मामिषेषु स्तितगुडपायसाभिकाम

स्तद्व्रतो भवति पित्रप्रहामिजुष्टः ॥ ८६ ॥

यस्तुर्ध्वा प्रभरति मर्षवत् कदाचित्

सक्लिष्टो विलिहति जिह्वया तथैव ।

क्रोधात्तुर्गुडमधुदुग्धपायसेषु-

विज्ञेयो भवति भुजङ्गमेन लुष्टः ॥ ८० ॥

मांसासृग्विविधेसुराविकारलिषु-

निर्लज्जो भ्रममतिनिष्टुरोऽतिशूरः ।

क्रोधात्तुर्विपुलबलो निशाविचारी-

शौचद्विड्भवति सराक्षसैर्गृहीतः ॥ ८८ ॥

देवविप्रगुरुद्वेषो वेदवेदाङ्गनिन्दकः ।

आत्मपीडाकरोहासो ब्रह्मराक्षससेवितः ॥ ८९ ॥

उद्वस्तः कृशपुरुषो चिरप्रलापी-

दुर्गन्धो भ्रममशुचिस्तथातिलोलः ।-

बह्वाशोविजनवगान्तरोपसेवी-

व्याचेष्टन् भ्रमतिरुदन् पिशाचलुष्टः ॥ ९० ॥

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनलेही-

निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति ।

यद्याद्रिद्विरदनगादिविच्युतः सन्

सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशाब्दे ॥ ९१ ॥

देवग्रहाः पौर्णमास्या मसूराः सन्ध्ययोरपि ।

गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्ष्माश्च प्रति यद्यपि ॥ ९२ ॥

पितरः कृष्णपक्षे स्युः पञ्चम्यामपिचोरगाः ।

रक्षांसि रात्रौ पेशाचाः चतुर्दश्यां विशन्ति हि ॥ ९३ ॥

दर्पणादीन्यथाक्याया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ।

स्वमणिभारकरार्चिश्च यथा देहश्च देहष्टक् ।

विंशति न च दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम् ॥ ९४ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

सर्पिथानादिरागन्तो र्मन्वादिद्यैच्यते विधिः ॥ ८५ ॥

पूजाबन्धुपहारेष्टि होममन्त्राञ्जनादिभिः ।

जयेदागन्तुमुन्मादं तथा विधिः शुचिर्भिषक् ॥ ८६ ॥

रक्तमाल्यानि गन्धश्च^१ बोजानि मधुसर्पिणी ।

भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो विधिरुच्यते ॥ ८७ ॥

ऋचजबुकरोमाणि सङ्गकीलसुनं तथा ।

हिंगुमूत्रञ्च वत्सस्य धूपमस्य प्रयोजयेत् ।

एतेन साम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ॥ ८७ ॥

शिरोपबीजं लशुनं शुण्ठीं सिद्धार्थकं वचाम् ।

मक्षिष्टां रजनीं कुटं वत्समूत्रेण पेययेत् ॥ ८८ ॥

वार्त्तिक्यायाविशुद्धा च सा योज्या नयनाञ्जने ॥ १०० ॥

—०—

कर्पासास्थिमयूरपिच्छहृहतोनिर्मात्यपिण्डीतकै-

स्वङ्गांसी हृपदंशविट् तुपवचाकेशा द्वि निर्मोचनैः ।

नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिंगुमरिचैस्तुल्यैः कृतं धूपनं

स्कन्दोन्मादपिशाराघससुरावेशज्वरघ्नं परम् ॥ १०१ ॥

इति महाधूपपरः ।

कल्याणकं प्रपुञ्जीत महद्वा चैतसंघृतम् ।

तैलं नारायणं वाय महन्नारायणं तथा ॥ १०२ ॥

न च रौद्रं प्रयुञ्जीत प्रयोगं देवताग्रहे ।

ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं न वा चरेत् ॥ १०३ ॥

वैद्यांस्तु वै निहन्त्युक्ते ध्रुवं क्रुद्धा महोजसः ।

हिताहितविधानञ्च नित्यमेव समाचरेत् ॥ १०४ ॥

इति वङ्गसेने उन्मादभूतोन्मादनिदान-

चिकित्साधिकारः समाप्तः ॥२२॥

—०—

अथापस्मारनिदानमाह ।

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्त्रोतसां स्थिताः ।

कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ १ ॥

वातात्पित्तात्कफात्सर्वः दोषैः स स्याच्चतुर्विधः ।

तमशो दर्शनं ध्यानं हृत्कम्पो नेत्रवैकृतम् ।

भ्रमो हृदयगून्यत्वभाग्निस्तस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

तमः प्रवेगः संरम्भो दोषोद्वेकहतस्मृतिः ।

अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ ३ ॥

हृत्कम्पगून्यता स्वेदो ध्यानमूर्च्छा प्रमूढता ।

निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवन्त्यथ ॥ ४ ॥

कम्पते प्रदग्नेदन्तान् फेनोदामीश्वसित्यपि ।

परुषारुणरूपानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ५ ॥

पीतफेनाद्भवक्लाचः पीतासृगृपदर्शनः ।

सदृशोष्णानलध्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ६ ॥

शुक्लफेनागदक्लाचः शीतहृष्टाद्भ्रजो गुरुः ।

पश्येच्छुक्लानि रूपाणि श्लेष्मिको मुच्यते चिरात् ॥ ७ ॥

सर्वैरेभिः समस्तैश्च लिङ्गैर्त्रयस्त्रिदोषजः ।

अपस्मारः स चाऽसाध्यो यः क्षीणस्याऽनवद्य यः ॥ ८ ॥

विस्फुरन्तं सुबहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ।

नेत्राभ्याश्च विकुर्वाणं मपस्मारो विनाशयेत् ॥ ९ ॥

पक्षाहाद्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः ।

अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं चिञ्चिदद्यान्तरम् ॥ १० ॥

देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ वीजानि कानिचित् ।

शरदिप्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयः ॥ ११ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पूर्वं युञ्ज्यादपस्मारं कूर्दनादीनि बुद्धिमान् ।

वातिकं बस्तिमि प्रायः पैत्तिकन्तु विरेचनेः ।

कफजं वमनैर्धर्मा नऽपस्मारमुपाचरेत् ॥ १२ ॥

ततस्तीक्ष्णं प्रयुञ्जीत भिषक् सम्यग्विशोधनम् ।

सर्वतः शुद्धदेहस्य स्यादुन्मादहरीक्रिया ॥ १३ ॥

उपयोगे ग्रहोक्तानां योगानां चाथ शेषतः ।

शिशुकटुङ्गकिण्विही निम्बत्वग्रससाधितम् ॥

चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलमभ्यजने हितम् ॥ १४ ॥

गोधानकुलनागानां वृषभर्चगवामपि ।

पित्तेषु तैलं सिद्धञ्च नस्याभ्यङ्गेषु पूजितम् ॥ १५ ॥

तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरसापि विरेचयेत् ।

पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानां विशेषतः ॥ १६ ॥

तैलेन लशुनं सेव्यं पयसा च शतावरीम् ।

ब्राह्मोरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ १७ ॥

उद्धन्धननरघ्रीवा पाशं दग्ध्वा कृतामसी ।
 शीतांबुना समं पीता हन्त्यपस्मारमुद्धतम् ॥ १८ ॥
 विदह्य निर्द्रवां कृत्वा छागजामन्त्रनालिकाम् ।
 तामन्त्रसाधितां खादेदपस्मारमुदस्यति ॥ १९ ॥
 निर्गुण्डी भव वन्दाक पाननस्योपयोगतः ।
 उपैति सङ्घसा नाश मपस्मारो महागदः ॥ २० ॥
 मनोह्वातार्च्यजश्चैव शक्त्यपरावतस्य च ।
 अञ्जनाहन्त्यपस्मार मुन्मादश्च विशेषतः ॥ २१ ॥
 श्वशृगालविडालानां कपीनाञ्च गवामपि ।
 पित्तानि नस्यतो दद्या दपस्मृतिनिवृत्तये ॥ २२ ॥
 यष्टीहिगुवचादारु शिरीषलशुनामयैः ।
 साजमूत्रैरपस्मारे सोन्मादे नावनाञ्जने ॥ २३ ॥
 कपित्थाब्धारदानुहान् सुस्तोशीरयवांस्तथा ।
 सव्योपान वक्षमूत्रेण पिष्ट्वावर्त्ति प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥
 अपस्मारे तथोन्मादे सर्पदंष्ट्रे गरार्दिते ।
 विषपीते जलमृते चैताः स्युरमृतोपमा ॥ २५ ॥

—०—

बहपायुं विपर्याच्च शीतपादकरोदरम् ।
 विद्याल्लभृतं जन्तुं शूनपान्नाभिमेहनम् ॥ २६ ॥
 इति जलमृतलक्षणमिदम् ।
 पुष्पोद्भूतं शुनः पित्त मपस्मारघ्नमञ्जनम् ।
 तदेव सर्पिपायुक्तं धूपनं परमं मृतम् ॥ २७ ॥
 याभिः क्रियाभिः सिद्धाभिर्हृदयं संप्रबुध्यते ।
 स्त्रोतांसि चास्यशृङ्गान्ति मृतिं सञ्जाञ्च विन्दति ॥ २८ ॥

नकुलीलूकमार्जार गृध्रकीटाऽहि काकजैः ।

तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्विषक् ॥ २८ ॥

गोमूत्रसिद्धार्थकशिशुपर्णै रूढर्त्तनं तैरथवा प्रलेपः ।

पूतिश्च गोमत्स्यकृतोऽत्र धूमो नस्यञ्च तीक्ष्णै रवबोधनार्थम् ॥ ३० ॥

अपेताराक्षसो कुष्टं पृतनाकेश चोरकैः ।

उत्सादन मूत्रपिष्टै र्मूत्रै रैवावसेचयेत् ॥ ३१ ॥

मूल बर्हिशिखाया गवाच्यालीढं नरेण मासेन ।

नि शेषयत्यपस्मृति मिति सिद्धं नात्र सन्देहः ॥ ३२ ॥

यः खादेत् क्षीरभक्ताशी माक्षिकेन वचारजः ।

अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद् ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

उत्तरदिग्गतमुस्तक मूल बुद्ध्या समुद्धृतं पेयम् ।

पीतं पयसा हन्यादपस्मृतिं गो सवर्णवत्सायाः ॥ ३४ ॥

कूष्माण्डकफलीत्येन रसेन परिपेपितम् ।

अपस्मारविनाशाय यष्ट्याञ्च स पिबेच्चरुम् ॥ ३५ ॥

काकोत्तरगतं मूल योगानीत विधूपितम् ॥ ३६ ॥

उग्रमक्षमितं चूर्णं कृतञ्च मधुसर्पिणा ।

भक्षयेत् क्षीरभक्ताशी त्रिदिनेऽपस्मृतिक्षयः ॥ ३७ ॥

क्षकलासस्य मत्तस्य धोषे च कठरे क्षिपेत् ।

विपाटिते च मरिचं शोषे स्थाप्य प्रयत्नतः ।

चूर्णयित्वा प्रथमये दपस्मारनिवृत्तये ॥ ३८ ॥

मदनस्य च बीजानि चूर्णयित्वा तथैव च ।

पिण्डीतकस्य चाल्पस्य कर्पकं पेपयेज्जले ॥

ततोऽस्य पानमात्रेण नश्यतेऽपस्मृतिर्गदः ॥ ३९ ॥

विपाठिना विक्रमेण ह्ययमुक्तो न मंगयः ।

दुष्टिकित्प्यो ह्यपस्मार विरकालो महागदः ॥ ४० ॥

तस्माद्रसायणैरेनं प्रायशः समुपाचरेत् ॥ ४१ ॥

हृत्कम्पोऽक्षिरजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता ।

दशमूलीजलं तस्य कल्याणान्वञ्च योजयेत् ॥ ४२ ॥

—०—

पञ्चकोलं समरिचं त्रिफलं विडसैन्धवम् ।

कृष्णाविडङ्गपूतीकं यवानीधान्यजीरकम् ॥ ४३ ॥

पीतमुष्णांबुनाचूर्णं वातश्लेष्मामयापहम् ।

अपस्मारे तथोन्मादे अर्गसां ग्रहणीगदे ॥ ४४ ॥

एतत्कल्याणकं चूर्णं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम् ।

इति कल्याणकं चूर्णम् ।

पलंकपावचायथो हृषिकाली च सर्पपा ।

जटिलापूतनाकेशी नाकुलीहिङ्गुजीरकैः ॥ ४५ ॥

लसुनातिविषातिक्ता कुष्ठैर्विड्भिष्य पचिष्णाम् ।

मांसाग्निनां यथा लाभं वक्त्रमूत्रे चतुर्गुणे ॥ ४६ ॥

सिद्धमभ्यञ्जने तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ४७ ॥

इति पलंकपातैलम् ।

त्रिफलाव्योषकुष्टाब्दं यवचारफणिज्जकैः ।

कल्कीकृतैरेभिर्द्रव्यैर्गजमूत्रे चतुर्गुणे ॥ ४८ ॥

साधितं नावनं तैलमपस्मारं विनाशयेत् ॥ ४९ ॥

इति त्रिफलातैलम् ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठं शङ्खपुष्पोभिरेव च ।

पुराणं पक्वमुन्मादग्रहापस्मारहृद्घृतम् ॥ ५० ॥

इति ब्राह्मीघृतम् ।

कूष्माण्डकरसे सर्पि रष्टादशं गुणे प्रचेत् ।

यस्याङ्गकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ ५१ ॥

इति कूषाण्डघृतम् ।

गोमक्षद्रसदध्यास्त्र क्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ।

सिद्धं चतुर्थकोन्माद मपस्मारविनाशनम् ॥ ५२ ॥

इति खल्पपञ्चगव्यघृतम् ।

द्वे पञ्चमूल्या विफला रजन्यो कुटलत्वचम् ।

सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीकटुरोहिण्यो ॥ ५३ ॥

शम्याकफलमूलञ्च पौष्करं सदुरालभम् ।

द्विपलानि जलद्रोणे पल्कापादावशेषिते ॥ ५४ ॥

भांशीपाठात्रिकटुकं त्रिवृत्ता निचुलानि च ।

त्र्येयसीमादकीं मूर्वा दन्तीं भूनिम्बचित्रकौ ॥ ५५ ॥

द्वे शारिरे रोहिप्रञ्च भूतिकं मदयन्तिकाम् ।

क्षिपेत् पिष्टाक्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥ ५६ ॥

गोमक्षद्रसदध्यास्त्र क्षीरमूत्रैश्च तत्तमैः ।

पञ्चगव्यमिदं ख्यातं महत्तदमृतोपमम् ॥ ५७ ॥

अपस्मारे तथोन्मादे श्वयथाबुदरेष्वपि ।

गुल्मार्यः पांडुरोगेषु कामलायां हलोमके ॥ ५८ ॥

अलक्ष्मीघहरक्षौघं चातुर्यिकनिवारणम् ।

इति महापञ्चगव्यं घृतम् ।

जङ्गमानां ययस्थानां चर्मरोमनखादिकम् ।

क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारेषु मंहरत् ॥ ५९ ॥

—०—

शणमिष्टतथैरण्ड दग्मूनीशतावरो ।

रास्त्रामागधिकाशिषु काप्ये द्वे द्वे पले पृथक् ॥ ६० ॥

विदारीमधुकं मेदे द्वे काकोर्च्यौ तथा मिता ।

खर्जूरीभीरुमृद्दीका गुञ्जातं गोक्षुरं तथा ॥ ६१ ॥

चैतसस्य घृतस्यांशैः पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम् ।

महाचैतससंज्ञन्तु ज्वरापस्मारनाशनम् ॥ ६२ ॥

गदोन्मादप्रतिस्थाय तृतीयकचतुर्थकान् ।

पाप्मालक्ष्मणौ जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ६३ ॥

श्वासकासहरश्चैव शुक्रार्त्तवविशोधनम् ॥ ६४ ॥

द्रव्यं आपोयिते काथ्ये दत्त्वा पीडशिकं जलम् ।

पादशेषञ्च कर्त्तव्यं मेघ काथविधिं स्मृतः ॥ ६५ ॥

इति महचैतसंघृतम् ।

मधूकद्विपले कल्के द्रोणे चामलकीरसे ।

तस्मिन् सिद्धं घृतप्रस्थं पित्तापस्मारभेयजम् ॥ ६६ ॥

इति मधूकघृतम् ।

मांसक्षीरेक्षुरसयोः काश्मर्यष्टगुणे घृते ।

कार्पिकैर्जीविनीयैश्च सर्पिष्प्रस्थं त्रिपाचयेत् ।

वातपित्तोद्भवं क्षिप्रं मयस्मारं नियच्छति ॥ ६७ ॥

इति मांसीघृतम् ।

वचाशम्याककैरण्ड वयस्याङ्गिगुचोरकैः ।

सिद्धं पलकंप्रायुक्तैर्वीतलेष्मात्मके घृतम् ॥ ६८ ॥

इति वचायं घृतम् ।

कटभीनिम्बकटुङ्ग मधुशिशुत्वचां रसे ।

सिद्धं मूत्रसमं तैलं मभ्यङ्गार्थं प्रशस्यते ॥ ६९ ॥

इति कटभीतैलम् ।

शिशुक्षुष्टशिलाऽजाजी लशुनव्योषहिगुभिः ।

वत्समूत्रे शृतं तैलं नावनं स्यादपस्मृतो ॥ ७० ॥

इति शिशुतैलम् ।

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः ।

घोरद्रोणे पचेत्सिद्ध मपस्मारविनाशनम् ॥ ७१ ॥

इति जीवनीययमकम् ।

इति वङ्गसेनेऽपस्मारनिदानचिकित्साधिकारः
समाप्तः ॥ २३ ॥

—o—

अथ वातव्याधिनिदानमाह ।

रूक्षशीतलः सलज्ज्वल व्याधयानि प्रकृताग्रैः ।

लघ्वनप्लवनात्यध्व व्याधामादिप्रचेष्टितैः ॥ १ ॥

विषमादुपचाराद्वा दोषासृक् आवणादति ।

धातूनां सत्त्वयाचिन्ता शोकरोगाऽतिकर्षणात् ॥ २ ॥

वेगसन्धारणादामा दमिघातादभोजनान् ।

मर्मबाधाद्गोद्वान् शीघ्रयानादिसेवनात् ॥ ३ ॥

देहे स्रोतासि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली ।

करोति विविधान् व्याधीन् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥ ४ ॥

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ ५ ॥

आत्मरूपन्तु यद्वाक्त्त मपायी लघुता पुनः ।

सङ्कोचपर्वणां स्तम्भो भङ्गोऽस्थ्यां पर्वणामपि ॥ ६ ॥

लोमहर्षः प्रलापश्च पार्श्वशृङ्खलकटीग्रहाः ।

खांज्यपांगुल्यकुञ्जत्व शोषोऽङ्गानामनिद्रताम् ॥ ७ ॥

गर्भशुक्ररजो नाशः स्यन्दनं गात्रसुप्तता ।

गिरोनामात्तिजन्तूना योवायाद्यापि घृण्डनम् ॥ ८ ॥

भेदस्तोदातिरादेयो मोहद्यायास एव च ।

एवं विधानि रूपाणि कुरुते कुपितोऽनिलः ।
 हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकत् ॥ ८ ॥
 तत्र कोट्याश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः ।
 ब्रध्महृद्रोगगुल्मार्श पार्श्वशूलञ्च मारुते ॥ १० ॥
 सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणभञ्जनम् ।
 वेदनाभिः परीताश्च स्फुटन्तीवास्थिसन्धयः ॥ ११ ॥
 ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाभ्यानाश्मशर्कराः ।
 जङ्घोरुत्रिकहृत्पृष्ठ रोगशोफा गुदे स्थिते ॥ १२ ॥
 रुक्पाश्वोदरहृन्नाभ्यां दृष्टोद्गारविसृचिकाः ।
 कासः कण्ठास्य शोषश्च श्वासश्चामाशयस्थिते ॥ १३ ॥
 पक्वाशयस्योन्मूलकं शूलाटोपी करोति च ।
 कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्व मानाहन्त्रिकवेदनाम् ॥ १४ ॥
 श्रोत्रादिविन्द्रियबधं कुर्यात् क्रुद्धः समीरणः ॥ १५ ॥
 त्वग्रूक्षास्फुटितासृक्ता कृशाकृष्णा च तुद्यते ।
 श्वातन्यते सरागा च सर्वरुक् त्वग् गतेऽनिले ॥ १६ ॥
 रुजस्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः ।
 गात्रे चारुं पिभुक्तस्य स्तम्भयासृग्गतेऽनिले ॥ १७ ॥
 गुर्वगन्तुद्यतेऽत्यर्थं दण्डमुष्टिहतं तथा ।
 सरुक् स्तिमितमत्यर्थं मांसमेदो गतेऽनिले ॥ १८ ॥
 भेदोऽस्थिपर्वणां सन्धि शूलं मांसबलक्षयः ।
 अस्त्रप्रं सन्ततारुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ १९ ॥
 क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा ।
 विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ २० ॥
 कुर्याच्छिरागतः शूलं शिरः कुञ्चनपूरणम् ।
 वाङ्माभ्यन्तरमायामं खलीकुञ्जत्वमेव च ॥ २१ ॥

सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च कुर्यात् स्यायुगतोऽनिलः ।

हन्ति सन्धिगतः सन्धोन् शूलशोथौ करोति च ॥ २२ ॥

प्राणे पित्ताहते कृदिर्दाह्यैवोपजायते ।

दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यञ्च कफाहते ॥ २३ ॥

उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः ।

अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफाहते ॥ २४ ॥

स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाः स्युः समाने पित्तसंयुते ।

कफेन संगो विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २५ ॥

अपाने पित्तयुक्ते तु दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता ।

अधःकाये गुरुत्वञ्च शीतता च कफाहते ॥ २६ ॥

व्याने पित्ताहते दाहो गात्रविचेष्टा क्लमः ।

गुह्मणि सर्वगात्राणि स्तम्भनं चास्थिपर्वणाम् ॥ २७ ॥

लिङ्गं कफाहते व्याने चेष्टास्तम्भस्तथैव च ।

स्तम्भनोत् क्षेपणश्वास शोफशूलानि सर्वशः ॥ २८ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

नरश्च शुद्धवातार्त्तं माद्री पानं नियोजयेत् ।

वसायायाय मज्जाया तैलस्याय घृतस्य च ॥ २९ ॥

अभ्यङ्गं स्वेदनं यन्ति नस्य स्नेहो विरेचनम् ।

स्निग्धाग्न्यलवणस्त्रादु हृष्यं यातामयापहम् ॥ ३० ॥

पटोलकफलैर्यूपो हृष्यो वातहरो लघुः ।

वाय्वानकफलतो यूपः परं वातविनाशनः ॥ ३१ ॥

पञ्चमूलीवनासिद्धं क्षीरं यातामये हितम् ॥ ३२ ॥

कोसं कुलित्या मुरदारुर्वासा माया उमातैलफलानि ।

यच्चाशताह्वयवचूर्णमम्बुमुष्णानि वातामयिनां प्रदेहः ॥ ३३ ॥
 स्नेहेद्यतुर्भिर्दशमूलमित्रैर्गन्धीपधैद्यानिलहृत्प्रदेहः ।
 आनूपमत्स्यामिप्रवेशवारैरुष्णैः प्रदेहः पवनापहः स्यात् ॥ ३४ ॥

—०—

निरस्थिपिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम् ।
 कृष्णामरिचसंयुक्तं वेशवारमिति स्मृतम् ॥ ३५ ॥
 इति वेशवारः ।

वृद्धत् फाणिज्जकोत्थेन रसेन परिलेपयेत् ।
 प्रदेशं वायुनाग्रस्तं नरः सम्यक् प्रशान्तये ॥ ३६ ॥
 तित्तिङ्गीकदलैः सिद्धं ताललिण्डिकया सह ।
 पिष्ट्वा सुखोष्णमालेपं दद्याद्वातरुजापहम् ॥ ३७ ॥

—०—

वाजिगन्धावलातिस्त्रो दशमूलीमहौषधम् ।
 द्वे गृध्रनख्यौ रास्त्रा च गण्यौ मारुतनाशनः ॥ ३८ ॥
 इति वाजिगन्धादिगणः ।

सहचराऽमरदारु सनागरं कथितमम्बसितैलविमिश्रितम् ।
 पवनपीडितदेहगतिः पियन् द्रुतविलम्बितगोभवतीच्छया ॥ ३९ ॥
 पलमर्धपलञ्चापि रसोनस्य च कुट्टितम् ।
 हिगुजीरकसिन्धूत्य सौवर्चलकटुत्रिकैः ॥ ४० ॥
 चूर्णैस्त्रैर्मरिचकोम्पानै र्वचूर्णैर्विलोडितम् ।
 यथाग्निभक्षितं प्रातः स्तुब्धे क्वाथानुपानतः ॥ ४१ ॥
 दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ।
 वातरोगान्निहन्त्याशु चार्दितं चापतन्त्रिकम् ॥ ४२ ॥
 एकाङ्गरोगिणे दद्यात्तथा सर्वाङ्गरोगिणे ।

उरुस्तम्भेषु च गृध्रस्यां क्षेमिदोपे विशेषतः ॥ ४३ ॥

इति मेय रसोनम् ।

पलमर्दपलं वापि रसोनस्य सुकुटितम् ।

हिगुजीरकसिन्धूत्य भौवर्चलकटुत्रिकैः ॥ ४४ ॥

चूर्णितैर्माषकोन्मानै रवचूर्णविलोडितम् ।

यथाग्निभक्षितं प्रातः खुक् क्वाथानुपानतः ॥ ४५ ॥

दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ।

वातामयं निहत्येव मर्दितं चापतन्त्रकम् ॥ ४६ ॥

एकाङ्गरोगिणां रोगं तथा सर्वाङ्गरोगिणाम् ।

उरुस्तम्भगृध्रसोच्च शूलहन्त्रं क्षमीनपि ॥ ४७ ॥

कटिपृष्ठामयं हन्या क्वाठरञ्च समीरणम् ।

इति स्वल्परसोनपिण्डः ।

मिष्टा समृद्धां लगुनस्य कन्द दृतेन लिङ्गाद् दृतभोजनाग्नी ।

तस्य प्रणश्यन्ति हि वातरोगाः संस्कारहीनात् पुरुषादिवार्यः ॥ ४८ ॥

दशमूलस्य निर्यूहो हिगुपुष्करचूर्णितः ।

शमयेत्परिपीतस्तु घातं मिन्मिणसञ्ज्ञितम् ॥ ४९ ॥

वातग्रहप्रदेशे च स्वेदं कायीं विजानता ।

सिद्धार्थकविमिश्रैस्तु पत्रैर्मदनमिश्रितैः ॥ ५० ॥

यदा तेन विधानेन सदोषत्वाद् सिद्धयति ॥ ५१ ॥

भेषजैः स्नेहभेषुतौ भोग्यैर्हि प्रचितो मलः ।

मार्गं रुद्धानिलं रुन्ध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ॥ ५२ ॥

क्षीणो यद्ये विरेचैः स्यात्तं निरुहैरुपाचरेत् ॥ ५३ ॥

गीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यै र्यातलो यो न शाम्यति ।

१ यातयिकारः ।

विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टमेवात्र शोणितम् ॥ ५४ ॥
 पिवेत् कुटजबीजानां चूर्णं प्रातः सुखांबुना ।
 शृण्ठोचित्रकयुक्तानां कुचिवातनिवारणम् ॥ ५५ ॥
 प्रातरुत्थाययत्नेन तैलमात्रा समन्वितम् ।
 पिवेद्दुपणवातघ्न मार्द्रकस्वरसं बुधः ॥ ५६ ॥
 ऊर्ध्ववातविनाशाय वासापत्रसमन्वितम् ।
 श्यामामूलं पिवेत्पिष्टं क्षीरेण परिमिश्रितम् ॥ ५७ ॥
 सुप्तवाते त्वष्ट्रघ्नोच्चं कुर्याच्च बहुशो भिषक् ।
 दिघ्नाच्च लवणागार धूमैस्तैलसमन्वितैः ॥ ५८ ॥
 हृदयानिलनाशाय गुडूचीमरिचान्वितम् ।
 पिवेत्प्रातः प्रयत्नेन रुन्धगुण्याम्भसा सह ॥ ५९ ॥
 पिवेद्दुष्णाम्भसा पिष्टं माश्वगन्धं विभीतकम् ।
 गुडयुक्तं प्रयत्नेन हृदयानिलनाशनम् ॥ ६० ॥
 देवदारुसमायुक्तं नागरं परिपेषितम् ।
 हृद्वातवेदनार्त्तम् तु पीत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥
 हृदिप्रकुपिते सिद्धं मंशुमत्यापयो हितम् ॥ ६२ ॥

—०—

काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वान्द्रव्यसंयुतः ।
 सानूपमांसः सुगन्धः सर्वस्त्रेहसमन्वितः ॥ ६३ ॥
 सुखोष्णः स्पष्टलवणः सास्त्रणः परिकीर्तितः ।
 तेनोपनाहं कुर्यात् सदा वै वातरोगिणाम् ॥ ६४ ॥
 काकोल्यादिगणो ग्राह्यो नाष्टवर्गिकसंज्ञिकः ।
 वातघ्नो दशमूलादि वर्गोऽन्त्रो दाडिमादिकम् ॥ ६५ ॥
 सर्वस्त्रेहयतुः स्त्रेहो लवणं सैन्धवादिकम् ।

अम्लादिभिर्य संस्कार्यं काकोल्यादिवयं त्रिभिः ॥ ६६ ॥

२० ॥ १० ॥ ११ ॥

इति सात्वणः खेदः ।

दशमूलीवलास्त्रिस्त्री विदारीष्टष्टिपर्णिका ।

शतावर्थ्यश्चगन्धा च जीवनीयगणैः सह ॥ ६७ ॥

श्यामापुनर्नवैरण्डं षष्टपर्णी च मर्कटी ।

पुण्डरीकं तुगाचीरी शल्ललोत्तरदारु च ॥ ६८ ॥

कुष्ठशूरभमूलानि कर्कटाख्यामृता निशा ।

आम्रातकोकिलाख्यश्च शठीपापाणभेदकः ॥ ६९ ॥

फलकीं वसुवण्टा च सूर्यावर्तः सकाञ्चनम् ।

यवकोलकुलित्याश्च तिलोमामर्षपास्तया ॥ ७० ॥

राक्षापसारणीकुष्ठं मातुलुङ्गान्धवेतसी ।

चूक्रानूपानि मांसानि स्नेहचत्वार एव च ॥ ७१ ॥

काञ्जिकं दधितक्रश्च जम्बीरं तित्तिडीफलम् ।

कुकुटीबीजपूरश्च सर्वाणि लवणानि च ॥ ७२ ॥

सुखोष्णैस्त्रैलयुक्तैस्तु सुपिष्टैर्वातरोगिण्यु ।

उपनाहः सदा कार्यो वातव्याधिनिवृत्तये ॥ ७३ ॥

अथ हि गुल्मश्च तथान्तराहिं हन्यात्तथा शोफमुदयमाङ्गम् ।

हन्यान्तरस्यादितवातमुपमाञ्जानुशीयश्च तथादितं वा ॥ ७४ ॥

इति महाशास्त्रेणः ।

वायौ जठरजे युज्जमात् घोरचूर्णादिपाचनम् ।

विशेषतस्तु कोटस्थे वातचिप्रे पिवेन्नरः ॥ ७५ ॥

पाचनीयमैर्युक्ते रन्ध्रेण पातयेन्ननाज् ।

गुदपक्षाशयस्थे तु कर्मादावर्त्तिकं हितम् ॥ ७६ ॥

श्यामाशयस्थे त्वनिले प्रगम्यं प्राग्भोजनं दीपनपाचनञ्च ।

प्रहर्दनं तीक्ष्णपिरेचनञ्च पुराणमुद्राययमालयय ॥ ७७ ॥

भूतीकपर्ण्याः शठिपुष्कराणि विल्वं गुडूचीसुरदारुशृङ्गी ।
 विडङ्गवामातिविपाकणा च काथास्त्रयः सामसमीरणन्नाः ॥७८॥
 आमाशयगते वायौ हृदिः श्वापो यथाक्रमम् ।
 देयः पट्धरणो योगः सप्तरात्रं सुखायुना ॥ ७९ ॥
 चित्रकेन्द्रयवौ पाठा कटुकातिविपाऽभया ।
 महाव्याधिप्रशमनो योगः पट्धरणस्मृतः ॥ ८० ॥
 योगेऽस्मिन् भिषजा ग्राह्याः पक्षां पट्धरणाः पृथक् ।
 दिनेषु पट्सदातव्या स्तेन पट्धरणः स्मृतः ॥ ८१ ॥
 इति पट्धरणो योगः ।

वज्रेः संहृणं कार्यं कर्मादावर्त्तिकं तथा ।
 पक्षाशयगते वापि देयं स्नेहविरचनम् ॥ ८२ ॥
 वस्त्यः शोधनीयाश्च प्राशाश्च लवणोत्तराः ।
 कार्यो वस्त्रिगते चापि विधिर्वस्त्रिविगोधनः ॥ ८३ ॥
 श्रोत्रादिषु प्रकुपिते कार्यस्थानिलङ्गाक्रमः ।
 स्नेहाभ्यङ्गोपनाहाश्च मर्दनालेपनानि च ॥ ८४ ॥
 वायौ त्वगाश्रितेभ्यङ्गं स्नेहं स्वेदश्च योजयेत् ।
 रक्तस्थे शीतलांक्षिपान्विरेकं रक्तमोक्षणम् ॥ ८५ ॥
 मांसमेदो गते वाते सविरेकं निरूहणम् ।
 पश्चिमज्जागते स्नेहं वाद्याभ्यन्तरतो भिषक् ॥ ८६ ॥

केतकीनागबलाति बलानां यदहुलेन रसेन विपक्वम् ।

१ . सप्तरात्रमिति प्रथमदिवसे वसनं कारयित्वा ततो द्वितीय-
 दिनमारभ्य पट्दिनपर्यन्तं पाठक्रमेणैकैकस्य चूर्णं टङ्गमितं देय-
 मित्यर्थः ।

तैलमनस्यतुषोदकसिद्धं मातुलुङ्गरसेन विनिर्हति ॥८०॥

इति केतकाद्यं तैलम् ॥

सन्धिस्रायुगते वाते दाहस्ये शोपनाहनम् ।

हर्षोऽवपान शुक्रस्ये बलशुक्रकरं हितम् ॥ ८८ ॥

अवगाहकुटीकर्पुः प्रस्तराभ्यङ्गवस्त्रिभिः ।

जयेत्सर्वगतं वातं शिरामोक्षेय बुद्धिमात् ॥ ८९ ॥

एकाङ्गवातं भतिमान् शृङ्गेयाऽवस्थितं जयेत् ॥ ९० ॥

वक्षस्त्रिकस्कन्धगतं वायुं मन्यागतं तथा ।

वमनं हन्ति नस्यञ्च कुशलेन प्रयोजितम् ॥ ९१ ॥

सर्वाङ्गगतमेकाङ्गं स्थितं वापि समीरणम् ।

रुणदिकेबलो वस्त्रि स्तोयवेगमिवाचलः ॥ ९२ ॥

पिबेदैरण्डतैलं वा वस्त्रिकुचिगुदाग्रये ।

दशमूलोकपायेन मातुलुङ्गरसेन वा ॥ ९३ ॥

मूर्धस्ये स्नेहकृत्तस्य शिरोवस्त्रिच लेपनम् ॥ ९४ ॥

—०—

बलाबिल्वशृते घीरे घृतमण्डं विपाचयेत् ।

तस्य शुक्तिं प्रकुर्वं वा नस्यं शीर्षगतेऽनिले ॥ ९५ ॥

इति बलादिघृतमण्डम् ॥

तैलं संकुचितं त्वगे मापसैन्यमाधितम् ।

बाहुशीर्षगते नस्यं पानश्चोपरिभक्तकम् ॥ ९६ ॥

गर्भे शुक्ले तु वातेन बालानाश्चापि शृण्वताम् ।

मिताकाशमर्थमधुकैर् हितमुत्थापने पयः ॥ ९७ ॥

अथ हनुग्रहमाह ।

जिह्वानिलेखनाच्छुष्क चर्वणादभिधातत ।

कुपितो हनुमूलस्थः संश्रयित्वाऽनिली हनुम् ॥ ८८ ॥

करोति विवृतास्यत्व मथवा सवृतास्यताम् ।

हनुग्रहः स तेनस्यात् कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ ८९ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

सवृतं चिवुक स्निग्धा सुन्नाम्यास्यश्च बुद्धिमान् ।

विवृतां नामयित्वा तु कुर्यादायामवत्क्रियाम् ॥ १०० ॥

सगुडां पक्कविम्बीन्तु प्रक्षिप्यवदनान्तरे ।

स्नस्तं सङ्गमयेत् स्थानं स्निग्धस्निग्धश्च नाशयेत् ॥ १०१ ॥

अर्दिते नवनीतेन खादेन्माषेण्डरीं नरः ।

अर्दिते शोथयुक्ते तु वमनं रक्तमोचणम् ॥ १०२ ॥

श्लेष्मभागे क्षयं नीति हंहणैः समुपाचरेत् ।

रसोनं घृततैलाभ्यां पिबेद्वाप्यर्दितापहम् ॥ १०३ ॥

अथ जिह्वास्तम्भमाह ।

याम्वादिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः ।

जिह्वा स्तम्भः सतेनाऽन्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ १०४ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

जिह्वास्तम्भे यथाऽवस्थं वातव्याधिचिकित्सितम् ।

सामान्योक्ताक्रिया चात्र अर्दितस्य हितामता ॥ १०५ ॥

—०—

अथ मन्यास्तम्भमाह ।

दिवास्वप्रासनस्थानं विहृतोर्ध्वं निरीक्षणैः ।

मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेषणाहतः ॥ १०६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पञ्चमूलोक्तः क्वाथो दशमूलोक्तोऽथवा ।

रूचं स्वेदं तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रयोजयेत् ॥ १०७ ॥

—०—

अथ कुञ्जलक्षणमाह ।

हृदयं यदि वा पृष्ठं सुव्रतं क्रमशः मरुक् ।

क्रुद्धो वायुर्यदा कुर्यात् सदातं कुञ्जमादिगेत् ॥ १०८ ॥

—०—

अथ चिकित्साम् ।

वातघ्नेर्दशमूल्या च वातकुञ्जमुपाचरेत् ।

स्त्रे हेमौसरमेयीपि प्रवृद्धन्तां विवर्जयेत् ॥ १०९ ॥

—०—

अथ शिरोग्रहमाह ।

रक्तमात्रित्यपवनं कुर्यान्मृद्वेधराः शिराः ।

रुक्षाः सवेदनाः कृन्त्याः सोऽभाध्यः स्याच्छिरोग्रहाः ॥ ११० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

शिरोग्रहे तु कर्तव्या शिरोगतमस्तृक्रिया ॥ १११ ॥

—०—

अथ निदानम् ।

असदेषस्थितो वायु शोषयित्वाऽसबन्धनम् ।
 असबन्धनशोष स्याद्बाहुशोष सुवेदन ।
 शिरासंकुच्य तत्रस्थो जन्यत्यपबाहुकम् ॥ ११२ ॥
 स्फिक्पायुकटिपृष्ठोरु जानुजङ्घापदं क्रमात् ।
 गृध्रसीस्तभरुक् तोदैर्गृह्णातिस्पर्न्दते मुहुः ॥ ११३ ॥
 वाताद्वातकफाभ्यां सा विज्ञेया द्विविधा पुनः ।
 वातजाया भवेत्तोदो देहस्यातीववक्रता ॥
 जानुजङ्घोरुसन्धीना, स्फुरणा स्तम्भता भृशम् ॥ ११४ ॥
 वातश्लोघवायान्तु गौरव वङ्घ्रिमार्दवम् ।
 तन्द्रासुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ ११५ ॥
 तलं प्रत्यङ्गुलीना या कण्डूरा बाहुपृष्ठतः ।
 बाह्वो कर्मक्षयकरो विश्वाचीति हि सोच्यते ॥ ११६ ॥

—०—

अथ चिकित्साम् ।

बाहुशोषे पिवेत् भुक्त्वा मर्पि कल्याणकं महत् ।
 वातेऽपबाहुके नस्य स्वेद चोत्तरभक्तिकम ॥ ११७ ॥
 यलामूलशृतं तोयं सैन्धवेन समन्वितम् ।
 बाहुशोषगते वायौ मन्यास्तम्भे च शस्यते ॥ ११८ ॥
 परमौषधमपबाहुक मन्यास्तम्भोर्ध्वजत्वुगतरोगे ।
 शोतलजलेन नावन सुपशमने जिङ्गिनी च पुर ॥ ११९ ॥

नस्येन शीतपयसा शुकशिवीमूलजिङ्गिनीः पिष्ट्वा ।
 अपवाहुककन्धरपीडा सचिराद्दिनाशयेद्योगमिदम् ॥ १२
 काकोदुम्बरिदुग्धैः सरामठैर्हरेत् सर्वयोगविषम् ॥ १२
 कपिकच्छुमूलयुक्तौ नस्यैरपवाहुजां पीडाम् ॥ १२ ॥
 मूलं बलायास्त्वथ पास्मिद्रं तथात्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा ।
 नस्यन्तु यो मापरसेन दद्यान्मासादसौ वज्रसमानबाहुः ॥ १२२ ॥
 दशमूलीबलामाषंकाथं तैलाज्यमिश्रितम् ।
 सायं भुङ्क्ता पिवेन्नस्यं विखाच्यामपवाहुके ॥ १२३ ॥

मापसिन्धुबलारात्रा दशमूलकहिङ्गुभिः ।

बचाजटाशतास्थामिः सिद्धं तैलं सनागरम् ॥ १२४ ॥

ऊर्ध्वभक्ता शनादन्याद्दुग्धोपापवाहुकौ ।

पक्षाघातं तथैवाशु विखाचीमुदतामपि ॥ १२५ ॥

इति मापतैलम् ।

अथ निदानम् ।

वायुः कथ्यायितः सक्थुः कण्डरामाक्षिपेद्यदि ।

खल्लस्तदा भवेज्जन्तुः पङ्कः सक्थोर्दयोर्वघात् ॥ १२६ ॥

कम्पते गमनारम्भे खजन्निव च गच्छति ।

कलायखंजन्तं विद्यान् सुक्तसन्धिप्रबन्धनम् ॥ १२७ ॥

दृश्येते चरणी यस्य भवेतांश्च प्रसुप्तकौ ।

पादहर्षः सविघ्नेयः कफमारुतकोपजः ॥ १२८ ॥

पादयोः कुरुते दाहं पित्ताद्यं संक्षितोऽनिलः ।

विशेषतयक्रमणात् पाददाहं तमादिशेत् ॥ १२९ ॥

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः ।

श्लेयः क्रीष्टकेशीर्षस्तु स्थूलक्रीष्टकेशीर्षवत् ॥ १३० ॥

रुक् पादे विप्रेमे न्यस्ते त्रमाद्वा जायते यदा ।

वातेन गुल्फेमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥ १३१ ॥

खञ्जपंग्वोः कलायास्ये विश्वाचीपादहर्षयोः ।

अथ चिकित्साम् ।

पाददाहे च गृध्रस्यां क्रीष्टके वातकण्टके ॥ १३२ ॥

शिरा विध्वाश कुर्वीत यथाविधिचिकित्सकः ।

उपाचरेदभिनवं खञ्जं पंगुमथापि वा ।

विरेकाऽऽस्थापनस्वेद गुग्गुलुस्नेहवस्तिभिः ॥ १३३ ॥

पादहर्षे तु कर्त्तव्यः कफव्याधिहरो विधिः ।

वातरक्तक्रमं कुर्यात् पाददाहे विशेषतः ॥ १३४ ॥

मसूरविदलैः पिष्टैः शृतशीतेन वारिणा ।

चरणौ लेपयेत् सम्यक् पाददाहप्रशान्तरे ॥ १३५ ॥

नवनीतेन सलिलौ घङ्गिना परितापितौ ।

मुच्यते चरणौ क्षिप्रं परितापात् सुदगरुणात् ॥ १३६ ॥

गुग्गुलुं क्रीष्टशीर्षे तु गुडूची त्रिफलाम्भसा ।

चोरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा हृद्ददारुकम् ॥ १३७ ॥

रसं तित्तिरिमांसस्य क्रीष्टके मधुरं पिबेत् ।

वातरक्तक्रियाभिन्नं जयेज्जांबुकमस्तकम् ॥ १३८ ॥

रक्तावसेचनं कुर्यात् दभीक्षां वातकण्टके ।

पिबेदेरण्डतैलं वा दहेत् सूचीभिरेव वा ॥ १३९ ॥

पुनर्नवायाः श्वेताया स्तूलं मूलेन सांधयेत् ।

यातकण्टकमाह्न्यात् पादाभ्यङ्गेन मर्दनात् ॥ १४० ॥

—०—

अथ निदानम् ।

नाभेरधस्तात्सञ्जातः सञ्चारी यदि वाऽचलः ।

अष्टीलावदनो ग्रन्थि रुर्ध्वमायत उन्नतः ॥

वातष्टीलां विजानीया हृदिमार्गावरोधिनीम् ॥ १४१ ॥

एतामेव रुजायुक्तां वातविष्मूत्ररोधिनीम् ।

प्रत्यष्टीलामिति वदे ज्जठरे तिर्य्यगुत्थिताम् ॥ १४२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अष्टीमायाः क्रिया कार्या गुल्मस्यान्तरविद्रुधेः ।

चूर्णं हिग्वादिकञ्चात्र पिवेदुष्णेन पारिणा ॥ १४३ ॥

—०—

निदानम् ।

अधो या वेदना याति वचोमूत्राशयोत्थिता ।

भिन्दतोवगुदोपस्थां सातूनी नामती मता ॥ १४४ ॥

गुदोपस्थोत्थिता या तु प्रतिलोमं विधाविता ।

वेगैः पक्काशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते ॥ १४५ ॥

—०—

अथ चिकित्साम् ।

नूत्याश्च प्रतितूत्याश्च प्रमास्ताः स्नेहवस्तयः ।

पिवेद्वा स्नेहलयणं पिप्पल्यादिमयां बुना ॥ १४६ ॥

उष्णेन रामठघारं प्रेलोटमयया हृतम् ।

७ अथ निदानमाह ।

वाताद्वातकफात्तन्द्रा गोरवारोचकान्विता ॥ १४७ ॥

—०—

अयोरज श्वेतलोघ्न मज्जनं मरिचं तथा ।

गोपित्तेन समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्तमम् ॥ १४८ ॥

पलाण्डुहिङ्गुलश्च वचाकटुकरोहिणी ।

जीवन्तीरससयुक्तं तन्द्राविलयनं परम् ॥ १४९ ॥

—०—

निदानम् ।

साटोपमत्युग्ररुज माधानमुदरं नृशम् ।

आधानमिति जानीयाद् घोरं वातनिरोधजम् ॥ १५० ॥

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोल्लिखितम् ।

प्रत्याधानं विजानीयात् कफव्याधुलिताऽनिलम् ॥ १५१ ॥

—०—

आधाने लङ्घनं पूर्वं दीपनं पाचनं ततः ।

फलवर्त्तिक्रिया कुर्याद्द्विस्तिकर्म च शोधनम् ॥ १५२ ॥

प्रत्याधाने समुत्पन्ने कुर्यात्तद्वनहर्दने ।

दीपनानि प्रयुञ्जीत पूर्ववद्विस्तिकर्म च ॥ १५३ ॥

—०—

निदानम् ।

सर्वाङ्गकम्पं शिरसो वायुवेपथुसञ्जकम् ।

खली तु पादजङ्घोरं करमूलावमोढिनी ॥ १५४ ॥

—०—

वायुं वैपद्यु नामानं स्वेदाभ्यङ्गानुवासनैः ।
 उपाचरेन्निरुहैश्च शिरोवस्तिविरचनम् ॥ १५५ ॥
 कुटसैन्धवयोः कल्कं शुक्रतैलसंमन्वितः ।
 सुखोष्णो मर्दने योज्यः खलीशूलनिवारणः ॥ १५६ ॥
 भस्मातकानि सिन्धूत्थं मधूच्छिष्टमहौषधम् ।
 अस्त्रेण पयसा वाऽपि घृतमेतद्विपाचयेत् ॥ १५७ ॥
 एतेनोद्धर्तनं कार्यं प्रदेहयैव शाम्यति ।
 अतिप्रवृद्धां खलीं तु तत्तृचनादेव नाशयेत् ॥ १५८ ॥
 इति भस्मातकार्यं घृतम् ।

अथ निदानमाह ।

आहत्यवायुः सकफो धमनोः शब्दवाहिनोः ।
 नरान् करोत्यवचनान् मूकमिन्मिणगद्गदान् ॥ १५९ ॥

अथ चिकित्सांमाह ।

प्रस्यं घृतस्य पलिकैः गोघुवचाधातकीलोध्रलवणैः ।
 अजे पयसि सपाठैः सिंहं सारस्वतं नाम्ना ॥ १६० ॥
 विधिवदुपयुज्यमानं जङ्गदमूकतां चणाल्लित्वा ।
 स्मृतिमतिमेधाप्रतिमाः कुर्यात् सम्यग्विष्टवाग्भवति ॥ १६१ ॥
 इति सारस्वतं घृतम् ।

सहरिद्रावचाकुष्ठं पिप्पलीविश्वभेषजम् ।
 अजाजी घाजमोदा च यष्टिमधुकसैन्धवम् ॥ १६२ ॥
 एतानि समभागानि श्लेष्मचूर्णानि कारयेत् ।

तच्चूर्णं सर्पिपालोद्य प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ १६३ ॥
 एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः ॥ १६४ ॥
 मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिःस्वनः ॥ १६५ ॥
 खड्गगद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणको जयेत् ॥ १६६ ॥
 इति कल्याणको लेहः ।

अथ निदानम् ।

मारुते प्रगुणि, वस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्तते ।
 विकारान्विविधान्वापि प्रतिलोमे भवन्ति च ॥ १६५ ॥
 स्थान नामानुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान्विनिर्दिशेत् ।
 सर्वेऽप्येतेषु संसर्गे पित्तादेरुपलक्षयेत् ॥ १६६ ॥
 यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोभ्येति मारुतः ।
 तदा चिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः ॥ १६७ ॥
 मुहुर्मुहुस्तदाऽऽचेपा दाक्षेपक इति स्मृतः ॥ १६८ ॥
 क्रुद्धः स्त्रैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रवर्तते ।
 षोडशं हृदयं गत्वा शिरः शङ्को च षोडशेत् ॥ १६९ ॥
 धनुर्वन्नामयेद्वावाण्याचिपेक्षो हयेत्तथा ।
 अक्ष्णुश्चादुच्छसेष्वापि स्तथाक्षो वा निमीलिका ॥
 कफोत इव कूजेन निःसन्नः सोऽपतन्त्रकः ॥ १७० ॥
 दृष्टिं संस्तम्भयेत्संज्ञाश्च हत्वा कण्ठेन कूजति ।
 हृदिमुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं हते पुनः ॥ १७१ ॥
 वायुना दारुणं प्रादुरेकेतमपतानकम् ॥ १७२ ॥
 कफान्वितो यदा वायु धमनीष्वेव तिष्ठति ।
 सदण्डयत् स्तम्भयति क्षण्यो दण्डापतानकः ॥ १७३ ॥

धनुस्तुल्यो नमेद्यस्तु सधनुस्तससञ्जितः ।
 विवर्णवद्वेवदनः सस्तांगो नष्टचेतनः ।
 प्रसिद्ध्य धनुस्तस्मै दशरात्रं न जोवति ॥ १७४ ॥
 अंगुलीजुल्फजठर हृद्वज्जोगलसञ्चितः ।
 स्रायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपतिवेगवान् ॥ ७५ ॥
 विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनु भग्नपार्श्वः कफं वमन् ।
 अभ्यन्तरं धनुरिव यदानमतिमानवः ॥ १७६ ॥
 तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ १७७ ॥
 बाह्यस्रायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ।
 तमसाध्यं बुधाः प्राहुः पृष्टकव्युरुभञ्जनम् ॥ १७८ ॥
 कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ।
 कुर्यादाक्षेपकत्वान्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ १७९ ॥
 गर्भपातनिमित्तस्य शोणितप्रसवाच्चयः ।
 अभिघातनिमित्तस्य न सिद्धरत्यपतानकः ॥ १८० ॥
 गतिं वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वक्षेपकादिषु ।

अथ चिकित्सामाह ।

प्रथापतानके नात्तं मसस्ताक्षमवेपनम् ।
 अस्तव्यमेद्रमस्वेदं वहिरायामवर्जितम् ॥ १८१ ॥
 अखड्गपातिनश्चैव त्वरितं समुपाचरेत् ॥ १८२ ॥
 तत्र प्रागेव सुखित्वं क्षिप्याङ्गे तीक्ष्णनावनम् ।
 स्तोतो विग्रहये युञ्ज्या दन्तपाने ततो घृतम् ॥ १८३ ॥
 विदार्यादिगणकाद्ये दधिघोररसेः शृतम् ।
 नातिमात्रं ततो वायुं घ्याप्नोति सहसैव च ॥ १८४ ॥

वेगान्तरैश्चुमूर्धानं मसक्तञ्चास्य रेचयेत् ।

अवपीडैः प्रथमनैः स्त्रीक्ष्णैः श्लेष्मनिवर्हणैः ॥ १८५ ॥

१

श्वसनासु विमुक्तासु तथा संज्ञां न विन्दति ।

सौवर्चलाभयाव्योष सिद्धं सर्पिद्यले कफे ॥ १८६ ॥

अपतानकिने शस्तं दशभूलोऽयतं जलम् ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं जीर्णं मांसरसोदनम् ॥ १८७ ॥

हृत्पुष्पभुक्तवतापीत मल्लं दध्यपतानकम् ।

मरिचेन समायुक्तं स्नेहवस्तिरयापि वा ॥ १८८ ॥

—०—

कुलितयवकोलानि भद्रदार्व्यादिकं गणम् ।

निष्कृष्यान्पूमांसञ्च तेनान्नैः पयमाऽथवा ॥ १८९ ॥

स्वादुकन्दयुतं चेमं महास्नेहं विपाचयेत् ।

स्वेदाभ्यङ्गावगाहैश्च नस्यपानानुवासनैः ।

सहन्तिवातं तेनैव स्नेहस्वेदान् प्रयोजयेत् ॥ १९० ॥

इति महास्नेहः ।

पलायकं तिल्वकतो वचायाः प्रस्यं पलं शिशुं च पञ्चमूलम् ।

सैरण्डसिंहीविहृत्तं घटेऽपां पक्षापचेत्पादशृतेन तेन ॥ १९१ ॥

दध्रोपेतं यावशूकांशविल्यैः सर्पिष्प्रस्यं हन्ति तत्सेव्यमानम् ।

दुष्टान्वातानेकसर्वाङ्गसंस्थान् योनिव्याघ्रभागुल्मीटरञ्च ॥ १९२ ॥

इति तिल्वकघृतम् ।

चिकित्सितमिदं कुर्याच्छुद्धवातेऽपतानके ।

१ श्वसना. प्रश्नासोच्छ्वासवहाधमन्यस्ताविति ।

संसृष्टदोषे संसृष्टः कुर्याद्येन क्रियाप्रथम् ॥ १८३ ॥
 दोषमाद्येपके ज्ञात्वा शिरां विहाय यथाक्रमम् । त्रिगुणैः
 समीरणहरं कर्म कारयेत् कुशलं भिषक् ॥ १८४ ॥
 बाह्यं चाभ्यन्तरायामे योज्या चार्दितवत् क्रिया । त्रिगुणैः
 अयापतन्त्रकेनात्तं मातुरं नापतर्पयेत् । त्रिगुणैः
 निरुहवस्ति वमनं सेवयेन्न कदाचनः ॥ १८५ ॥
 ज्वसनाः कफवाताभ्यां रुवास्तस्य विमोचयेत् ।
 तीक्ष्णैः प्रथमनैः सज्जां तासु सुक्तासु विन्दति ॥ १८६ ॥

मरिचं शिपुबीजानि विगङ्गञ्च फणिज्जकम् ।
 एतानि क्षुण्णचूर्णानि दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ १८७ ॥
 इति मरिचादिनस्यम् ।

ह्रिग्वस्त्रवेतसं गुण्ठी ससौवर्चलदाडिमम् ।
 पिवेदातकफघ्नञ्च वातघ्नद्रोगनुद्धितम् ॥ १८८ ॥
 हरीतकीधचारास्त्रा मैन्थवं चाम्बवेतसम् ।
 घृतमार्द्रकमंयुक्तं मपतन्त्रकनागनम् ॥ १८९ ॥
 विभीतकं सातिविषं भद्रमुस्तञ्च पिप्पली ।
 भांगी मशङ्गवेरञ्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २०० ॥
 चूर्णाण्येतानि मद्येन पीतान्युष्योदकेन वा ।
 नागयन्ति नृणां शीघ्रं कासगतासापतानकम् ॥ २०१ ॥
 इति विभीतकादिचूर्णम् ।

अथ निदानम् ।

गृह्णीत्वार्धन्तनो घायुः शिराघ्रायुर्विगाय च ।
 पचमन्यतमं हन्ति सन्धियन्थान् विमोचयन् ॥ ८८ ॥

कृतस्त्रौर्धकाय तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः ।

एकाङ्गरोगन्त' केचिदन्ये पंचवर्धं विदुः ॥ २०३ ॥

सर्वाङ्गरोगन्त' केचित् सर्वकायस्थितेऽनिले ॥ २०४ ॥

दाहसन्तापमूर्च्छाः स्त्रुं वायी पित्तसमन्विते ।

शैत्यशोफगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफाहते ॥ २०५ ॥

शुद्धवातहतं पचं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ।

साध्यमन्येन संयुक्तं मसार्धं चयहेतुकम् ॥ २०६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पचघातिनमघोणं स्निग्धं स्निन्नं विरचितम् ।

वस्तिभिः, संप्रयुज्येत क्रमेणाक्षैपकस्य च ॥ २०७ ॥

मा पात्नगुप्तामैरण्ड शृतं वाय्यालकं तथा ।

हिङ्गुमैन्धवसंयुक्तं पचाघातं विनाशयेत् ॥ २०८ ॥

आत्मगुप्तावलामाप विश्वैरण्डशृतं जलम् ।

ससैन्धवं पिबेन्नासा रन्ध्रेणाथ व्यपोहति ॥

पचाघातं शिरोरोगं नेत्ररोगहर धरम् ॥ २०९ ॥

—०—

मापवलाशुकगिम्बो कटण्णरास्त्रोरुवूकाखगन्धानाम् ।

कायो नस्यनिपीतो रोमठलवणान्वितः कीणः ॥ २१० ॥

अपहरति पचवातं मन्थास्तम्भसकर्णनादरुजम् ।

दुर्जयमर्दितघातं पचाह्वान्जयति चावश्यम् ॥ २११ ॥

मापिके हिङ्गुसिन्धूले जरणाद्यास्तु शाणिकाः ।

इति माषादिर्नष्टम् ।

ग्रन्थिकाऽग्निकणाग्रगुठी, रास्त्रासैन्यवक्रल्लितम् ।

मापकायावुनातैल पचाघातं व्यपीहति ॥ २२२ ॥

इति, ग्रन्थिकादितैलम् ।

मापकागुप्तातिविपोरुवूक रास्त्राशताक्षालयणेः सुपिटैः ।

चतुर्गुणे मापकलाकपोये तैलं कृतं हन्ति हि पचवातम् ॥ २२३ ॥

इति मापकतैलम् ।

पृथक् पलांशां त्रिफला पिप्पली चेति चूर्णितम् ।

दशमूलावुनाभाव्य त्वगैलार्धपलान्वितम् ॥ २२४ ॥

दत्त्वा पलानि पञ्चैव गुग्गुलोर्वटकीकृतम् ।

एव सासरसाभ्यासा हातरीगानशेषतः ॥

हन्ति सन्ध्यस्थिमज्जः स्थान् वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २२५ ॥

लेह्यद्विगुणेनायमप्लोद्यालोद्या चातपे ।

दशमूलावुना शोष्यं सप्तवारान् सुगुग्गु ॥ २२६ ॥

इत्यादित्वपाकगुग्गुलुवटकः ।

शुक्लं रण्डस्य मूलानि युग्मं सहचरस्य च ।

मुस्तादुरालभादीप्या देवाह्नं कटुकांशगुठी ॥ २२७ ॥

पञ्चकोल वलापय्या सुद्रे द्वे च पुनर्नवा ।

विपीया वाजिगन्धा च गताय्याटकरूपकम् ॥ २२८ ॥

धान्यं क्षिप्ररुद्धा चैव विडङ्गं व्याधिघातकम् ।

गोचुर वृद्धदारु च दीप्यको निगयुरक्षकम् ॥ २२९ ॥

चतुस्तिंशतिकी भागः पीतः कौशिकमयुतः ।

मर्ववातविकारत्र पाच्यो दीप्यो लघुः ॥ २३० ॥

ग्रामवातस्य शोथस्य स्रोतसां कफनाशनः ।

इत्येतादिगुग्गुलुयुतः कायः

गोशङ्खद्विर्दाहयेत् एतत्पत्रलवणमुपदिशति वातरोगिणामिति पत्र
लवणम् । एवं स्रुहीकाण्डवार्त्ताकुशिमुलवणानि संक्षुध्य घटे सर्पि
स्त्रैलवसामञ्जानं प्रक्षिप्याऽवलिप्याऽवलिप्य - पूर्ववद्देह्येत् - एतत्
सुहलवणमुपदिशति हि वातरोगिषु । इति सुहलवणम् ।

—०—

त्रिफलाशङ्खिनोदन्तो विडङ्गं त्रिवृता सुधा ।
कार्षिकाणि पचेत्तानि तिल्वकस्य पलेन च ॥ २३० ॥
दक्षि च त्रिवृताकाथे घृतप्रस्थं चतुर्गुणम् ।

तिल्वकाख्यं घृतं तत्स्याद्विरेके वातरोगिणाम् ॥ २३१ ॥

इति तिल्वकाख्यं घृतम् ।

रास्त्रापुष्करविल्वान्नि शिशुसैन्धवगोक्षुरैः ।

कृष्णां पिष्ट्वा पचेत्सर्पिः क्षतृक्षं वातार्त्तिनाशनम् ॥ २३२ ॥

इति रास्त्रादिघृतम् ।

अश्वगन्धाकषाये च कल्कैः क्षीरं चतुर्गुणम् ।

घृतं पक्वन्तु वातघ्नं वृष्यं मांसविवर्धनम् ॥ २३३ ॥

इत्यश्वगन्धाद्यं घृतम् ।

द्रोणेभ्यः पचेद्भागान् दग्धमूलांचतुष्पलान् ।

यवकीलकुलित्यानां भागैः प्रक्षोभितैः सह ।

क्षीरेण च घृतं पक्वं तर्पणं पवनार्त्तिजित् ॥ २३४ ॥

इति दग्धमूलाद्यं घृतम् ।

भार्जं धर्मविनिर्मुक्तं त्वत्काण्डसुरादिकम् ।

पञ्चमूलीदयश्चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २३५ ॥

तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

जीवनीयैः सयध्याह्नैः क्षीरश्चैव गतावरीम् ॥ २३६ ॥

कागल्यायमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।

अर्दिते कर्णशूले च बाधित्यं मूकमिन्निणे ॥ २३७ ॥

जडगद्गदपङ्गूनां खण्डे गृध्रसि कुक्षयोः ।

अपतानापतन्त्रे च सर्पिरेतत् प्रशस्यते ॥ २३८ ॥

द्वाविंशच्च पलान्येव देयानि दशमूलतः ।

घृते तैले च योगे च यद्द्रव्यं पुनरुच्यते ।

तज्ज्ञातव्यमिहाय्येण भागतो द्विगुणं भवेत् ॥ २३९ ॥

इति कागल्यायं घृतम् ।

बलानिष्कृथकल्काभ्यां तैलपक्वं पयोनितम् ।

सर्ववातविकारघ्नं मेवं शैरीयपाचितम् ॥ २४० ॥

इति बलाशैरीयतेनम् ।

बलाग्निमन्यमैरण्डं बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।

बिल्वनांगबलाभीरुं श्योनाकं पारिभद्रकम् ॥ २४१ ॥

पाटला साश्वगन्धां च केतकीं च प्रसारणी ।

पृष्ठपर्णीं स्थिरां चैव बृहतीसहचरद्वयम् ॥ २४२ ॥

एषा दशपलान् भागान् वारिद्रोणद्वये पचेत् ।

पादशेषं परिस्त्राव्य तैलं प्रस्थद्वयं पचेत् ॥ २४३ ॥

कल्कानि जीवनीयानि रास्नासेन्धवदारुं च ।

कुष्ठं मांसीवचाग्रन्थिं मञ्जिष्ठासरलानि च ॥ २४४ ॥

त्वक्पत्रकं वराङ्गञ्च एलामुस्तकबालकम् ।

एतैः कल्कैः सुपिष्टैश्च पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ २४५ ॥

चीरञ्च द्विगुणं देवाच्छेतावथ्यारसस्य च ।

एतत्तैलवरं तेषां रोगाणां वातजन्मनाम् ॥ २४६ ॥

नाशयेद्वातरक्तञ्च आमवातं सुदारुणम् ।

गृध्रम्रीपीठसर्पेषु चाव्यवाते सदाहितम् ।

पाने वस्तौ तद्याभ्यङ्गे नस्यै चैव प्रयोजयेत् ॥ २४७ ॥

इति महावलातेलम् ।

बलामूलीकपायस्य दशमूलीकृतस्य च ।

यवकीलकुलित्यानां क्वायस्य पयसस्तथा ॥ २४८ ॥

अष्टादष्टौ शुभाभागा स्तौलादेकस्तदेकतः ।

पचेदवाप्यमधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ २४९ ॥

तथाऽगुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च ।

मच्चिष्टां पद्मकं कुट्ट मेलां कालानुशारिवाम् ॥ २५० ॥

मांमीं गैलीयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम् ।

शतावरोमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ २५१ ॥

तक्काधुसिबं सौवर्णं राजते मृग्नये पिवा ।

प्रचिप्यकलसे सम्यक् तत्तुगुप्तं निधापयेत् ॥ २५२ ॥

बलातैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।

यथा बलमतो मात्रां सूतिकाये प्रदापयेत् ॥ २५३ ॥

या च गर्भार्थिनीनारी क्षीणशुक्रस्य या पुमान् ।

क्षीणे वाते मर्महते मयितेऽभिहते तथा ॥ २५४ ॥

भग्ने अमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयुज्यते ।

सर्वानाघेपकादींश्च वातव्याधीन् व्यपोहति ॥ २५५ ॥

द्विकाम्नाममधीमन्यं गुल्मं कामं मदुस्तरम् ।

पण्णामादुपयुज्येत दन्तहृदि व्यपोहति ॥ २५६ ॥

प्रत्ययधातुः पुरुषो भवेशाम्भिरयोधनः ।

एतद्विराशाकर्तव्यं राजमान्याय ये नराः ।

सुप्तिनः सुकुमाराय धनिनयापि सामिनः ॥ २५७ ॥

इति महावलातेलम् ।

साधयित्वा जलद्रोणे तुलां सहचरस्य च ।

पादशेषे पचेत्तैलं दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ २५८ ॥

चन्दनाऽगुरुयष्ट्याञ्च शठीदेवदुमं घनम् ।

सैन्धवञ्चाजमोदा च काकोल्यौ जोरकाबुभो ॥ २५९ ॥

कुष्ठं सौवर्चलं व्योषं राम्ना भाङ्गीत्रिकण्टकम् ।

एतैः रक्षसमैर्भागैः शर्करायाः पलायकम् ॥ २६० ॥

पक्कं प्रयोजयेत्पाना दभ्यङ्गे नावनेऽपि वा ।

ऊर्ध्ववाते ह्यधोवाते पक्षाघातेऽपवाह्यके ॥ २६१ ॥

कर्णवाते शिरःकम्पे शिरोरोगे तथार्दिते ।

सर्ववातकृते दोषे कफमेदः क्षतेऽनिले ॥ २६२ ॥

इति सहचराद्यं तैलम् ।

क्षत्स्नां सहचरादेकां क्षत्वा जर्जरितां तुलाम् ।

काश्मरीपाटलाविष्वं तुलात्रिभिरथापरम् ॥ २६३ ॥

अश्वगन्धां बलां तद्वत् मूलं शतावरं वचाम् ।

चतुर्द्रोणे विपक्ष्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ २६४ ॥

शताह्वाहिङ्गुयष्ट्याञ्च देवदारु सचित्रकम् ।

त्वगैला क्षमिहन्ता च राम्नातगरसैन्धवाः ॥ २६५ ॥

महासहचरं तैलं वातश्लेष्महर परम् ।

पाने नस्ये तथाभ्यङ्गे वस्तिकर्मणि शस्यते ॥ २६६ ॥

अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।

विगतिं क्षैपिकांश्चैव पानादेवापकर्षति ॥ २६७ ॥

इति महासहचराद्यं तैलम् ।

शालिपर्णीं पृष्टपर्णीं बला च बहुपुत्रिका ।

एरण्डस्य च मूलानि वृहत्याः पूतिकस्य च ॥ २६८ ॥

गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।

एतेषा पलिकान् भागान् तैलप्रस्थ विपाचयेत् ॥ २६८ ॥

आजस्रैवाय गव्यञ्च घोरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।

अस्य पक्वस्य तैलस्य शृणु वीर्यमत परम् ॥ २७० ॥

अश्वाना वातभम्नाना कुञ्जराणा तथैव च ।

तैलमेतत्प्रयोक्तव्य सर्ववातनिवारणम् ॥ २७१ ॥

आयुष्माच्च नर पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत् ।

दृच्छूल पार्श्वशूलञ्च तथैवार्द्धञ्च भेदकम् ॥

कामलापाण्डुरोगञ्च शर्करामशमरीं हरेत् ॥ २७२ ॥

क्षीणेन्द्रिया नरा ये च जरया जर्जरीकृता ।

येषा चापि क्षयोऽप्याधि रत्नवृद्धिश्च दारुणा ॥ २७३ ॥

अर्दित गलगण्डञ्च वातशोणितमेव च ।

स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासाञ्चैव प्रयोजयेत् ॥ २७४ ॥

गर्भमश्रुतरीविन्द्या च च मृत्युवशं नयेत् ।

एतदङ्गवर तैल विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ २७५ ॥

इति विष्णुतैलम् ।

बलाश्लगन्धामरदारुराम्ना स्थिरावचानागवला सलोहम् ।

आरुक्कर चन्दनपुष्कराण्य नतं गुडूचीसवणोत्तमं च ॥ २७६ ॥

काकोलिमेदे मधुकं विदारो सचित्रक गुग्गुलुजोरकञ्च ।

द्राक्षाऽगुरुर्नागरधान्यकञ्च एतानि सर्वाणि समानि कृत्य ॥ २७७ ॥

कर्कै कपायैर्विधिना प्रयुक्तैस्तैल पचेत्तोयचतुर्गुणञ्च ।

अम्भारणाल दधिदुग्धयुक्तं दत्त्वा मर्मासं विधिवद्विधिञ्च ॥ २७८ ॥

तवायनाभ्यञ्जननम्यपानैर् निहन्ति घोरानचिरिण रोगान् ।

कल्याणकं नाम महञ्च तैल स्नात्वा जयेत्कार्मुकनामधेयम् ॥ २७९ ॥

दण्डापतानार्दितयेपमाना सुपिण्डिता, पिण्डितकुण्डलञ्च ।

पुनर्युवानाऽऽतिमनोऽभिरागामवन्ति ते तैलवरण सर्वे ॥ २८० ॥

अश्वोऽपि भग्नः सक्तदेव दन्ती भग्नो भवेन्मारुतविक्रमश्च ।
 वन्ध्यापि पुत्रं लभते वरामं दीर्घायुषं सर्वगुणैरूपेतम् ॥ २८१ ॥
 अम्बुप्रवाताहतचञ्चलोर्मिं मंहोदधिल्लहयतीह वेलाम् ।
 सवातजा एव हि तैलराज रोगा न वै लङ्घयितुं समर्थाः ॥ २८२ ॥

इति महाकल्याणक तैलम् ।

शतावरी चांशमती शुष्णिपर्णीशटीवला ।
 एरण्डस्य च मूलानि हृहत्या पूतिकस्य च ॥ २८३ ॥
 गवेषुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।
 एषा दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २८४ ॥
 पादावशिषे पूते च गर्भे चैन समाचरेत् ।
 पुनर्नवा वचादारु शताह्वाचन्दनागुरु ॥ २८५ ॥
 शैलेयं तगर कुष्टमेलामासीस्थिरावला ।
 अश्वह्वात्सैन्धव राम्ना पलाहानि च पेपयेत् ॥ २८६ ॥
 गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौद्वावत्र प्रदापयेत् ।
 शतावर्थ्यारसप्रस्थं तेलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २८७ ॥
 अस्य तैलस्य मिदस्य शृणुवीर्यमत फलम् ।
 अश्वाना वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणां तथा ॥ २८८ ॥
 तैलमेतद्वयोक्तव्यं सर्ववातविकारनुत् ।
 आयुष्माद्य नरः पीत्वा निययेन पुमान् भवेत् ॥ २८९ ॥
 गर्भमश्वतरीविन्द्यात् किं पुनर्मानुषी तथा ।
 हृच्छूलोपार्श्वशूलश्च तथैवाऽर्धाव्रमेदकम् ॥ २९० ॥
 अपची गण्डमालाश्च वातरक्तं हनुग्रहम् ।
 कामला पादुरोगश्च अश्वरीश्चापि नाशयेत् ॥ २९१ ॥
 तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्तितम् ।

नारायणमितिख्यातं वातान्तकरणं तथा ॥ २८२ ॥
 इति स्वल्पनारायणं तैलम् ।
 बिल्वोऽग्निमन्य श्लोनाक पाटलापारिभद्रक ।
 प्रसारण्यश्चगन्धा च हृत्तकीकण्टकारिका ॥ २८३ ॥
 बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ।
 एषा दशपलान् भागाद्यतुद्रीणिभस पचेत् ॥ २८४ ॥
 पादशेषं परिस्त्राय तैलप्रस्य पचेच्छनै ।
 शतपुण्यादेवदारु मासीशैलेयकं वचा ।
 चन्दनं तगरं कुष्ठं मेला पर्णीचतुष्टयम् ॥ २८५ ॥
 राम्नातुरगगन्धा च संधवश्च पुनर्नवा ।
 एषा द्विपलिकान् भागान् पेययित्वा विनिक्षिपेत् ॥ २८६ ॥
 शतावरीरसश्चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ।
 आज वा यदि वा गन्धं चीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ २८७ ॥
 पाने वस्त्री तथाऽभ्यगे भोज्ये नस्ये प्रदापयेत् ।
 अश्वी वा वातसम्भ्रान्तो गजो वा यदि वा नरः ॥ २८८ ॥
 पगुलं पीठसर्पि च तैलेनानेन सिद्धति ।
 अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये ॥ २८९ ॥
 मन्थास्तमे हनुस्तमे दन्तरोगे गलग्रहे ।
 यस्य गन्धति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विघ्नला ॥ २९० ॥
 स्त्रीणेन्द्रियानटगुक्ता ज्वरघोणायये नरा ।
 वर्धिरालक्षजिह्वाय मन्दमेधम एव या ॥ २९१ ॥
 मन्दप्रज्ञा च या नारी या च गर्भं न विन्दति ।
 वातात्तां हृषणीं चैषा मन्वहृदिय दारुणा ।
 एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं स्मृतम् ॥ २९२ ॥
 इति मध्यमनारायणं तैलम् ।

बिल्वाश्वगंधाहृती श्वदंष्ट्रा श्योनाकबाध्यालकपारिमद्राः ।
 क्षुद्राकटिक्तातिबलाग्निमन्यं प्रत्येकमेकं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥३०३॥
 सपादप्रस्थं विधिनोवृतनां क्षिप्त्वा सुयन्त्रात्सरणीयुतानिम् ।
 मूलं विदध्यादयपाटलीनां द्रोणैरपामष्टभिरेव पक्त्वा ॥३०४॥
 पाटावशेषेण रसेन तेन तैलाढकाभ्यां सममेव दुग्धम् ।
 भ्राजं विदध्यादयवाऽपि गव्यं दद्याद्रसं वापि शतावरीणाम् ॥३०५॥
 तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र रास्नाश्वगन्धाऽमरदारुकुष्टम् ।
 पर्णीचतुष्कागुरुकेसराणि सिन्धूत्यर्मासीरजनीद्वयञ्च ॥३०६॥
 शैलेयकं चन्दनपुष्कराणि एला सयष्टीतगराब्दपत्रम् ।
 भृङ्गाष्टवर्गाऽम्बु वचापलाशं पृथ्वी च थौण्येयकं चौरकोष्यम् ॥३०७॥
 एतैः समस्तैः द्विपलप्रमाणैः कर्पूरकाश्मीरमृगाण्डजानाम् ।
 दद्यात्सुगन्धाय वदन्ति केचित् प्रस्वेददोर्गन्धविनाशनाय ॥३०८॥
 चूर्णीकृतानां द्विपलप्रमाणैरालोढ्य सर्वं विधिना विपक्तम् ।
 नारायणं नाम महश्च तैल सर्वं प्रकारैर्विधिवन्नयोज्यम् ॥३०९॥
 अश्वमेधपुंसां पवनार्दितानां ये पङ्कवः पीठविसर्पिण्य ।
 एकाङ्कशुष्कार्दितवेपमाना वाधिर्यं शुक्रक्षयपीडिताश्च ॥३१०॥
 मन्याहनुस्तम्भगलग्रहात्तीः त्यक्तामयास्ते बलवर्णयुक्ताः ।
 संसेव्यतैलं सहसा भवन्ति बभ्यापि नारी लभते सुपुत्रम् ।
 देवोपमं सर्वगुणोपपन्नं सुमेधसं त्रीविजयान्वितञ्च ॥३११॥
 शाखाश्रिते कोष्ठगते च वाते हृद्दी विधेयं पवनार्दितानाम् ।
 जिह्वाऽनिले दन्तगते च शूले वातापहं तैलवरं प्रसिद्धम् ॥३१२॥
 उन्मादकुजज्वरकर्पितानां नात.परं तैलवरं प्रदिष्टं ।
 वातामये वैद्यवरेणयोज्यवायुः प्रकर्षे प्रमदाप्रियत्वम् ॥३१३॥
 प्राप्नोति लक्ष्मीर्विजयञ्च नित्यं रक्षांसि दुष्टानि निहन्ति नूनम् ।
 तैलोपजीवीजरयाविमुक्तो जीवेन्नरो वर्षशतानि पञ्च ॥३१४॥

देवासुरे युद्धवरे समीक्ष्य सौयुस्त्रि भग्नानेऽसुरैः सुरांश्च ।
नारायणोक्तोऽसुरेभ्यः ह्येकार्थं नारायण तेन वदन्ति तज्ज्ञा ॥ ३१५ ॥

इति महानारायण तैलम् ।

मापप्रस्थं समादाय पचेत्सम्यक् जलाढके ।
पादमेपे रूमे तस्मिन् क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम् ॥ ३१६ ॥
प्रस्थं च तिलतैलस्य कल्कं दत्वा च समितम् ।
जीवनीयानि यान्यथो गतपुण्या समैश्वरा ॥ ३१७ ॥
राक्षसात्मगुप्ताकटुका मधुक कुष्ठमेव च ।
पक्षावातार्दिते वाते कर्णशूले च दारुणे ॥ ३१८ ॥
मन्दश्रुतो चाऽश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे ।
हस्तकपे गिरःकम्पे विष्ठाच्यामपवाहके ॥ ३१९ ॥
कलायखञ्जे शक्ता स्यात् पानाभ्यञ्जनवस्त्रिभिः ।
मापतैलमिदं येष्ट मूर्ध्वजलुगदापहम् ॥ ३२० ॥
यवमापतिनानाञ्च प्रस्थं षोडशभिः पलैः ॥

इति मापतैलम् ।

मापकाये बलाकाये रामाया दशमूलजे ।
यज्ज्वलीकुन्तित्याना छागमामरमे पृथक् ॥ ३२१ ॥
प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम् ।
राक्षसात्मगुप्तासिन्धृत्य गताक्षैरङ्गमुद्गाहे ॥ ३२२ ॥
जीवनीयवलाद्योपैः पचेदक्षममे पृथक् ।
हस्तकम्पे गिरःकम्पे वाङ्गुलोमेऽपवाहके ॥ ३२३ ॥
वाधियं कर्णशूले च कर्णनाटे च दारुणे ।
विष्ठाच्या मर्दिते कुक्षे गृध्रभ्यामपतानके ॥ ३२४ ॥
पद्मभ्यञ्जनपानेषु नारिणेषु प्रयोजयेत् ।

मापतैलमिदं श्रेष्ठ मूर्ध्वजतुमदापहम् ॥ ३२५ ॥

इति बृहन्नाभादितैलम् ॥

मापस्यार्द्धाटकं देयं तुलार्धं दशमूलतः ।

छागमासपलं त्रिंशज्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३२६ ॥

चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ।

प्रस्थञ्च तिलतैलस्य पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ३२७ ॥

जीवनीयानि मध्विष्टा चव्यचित्रककटफलम् ।

सव्योषं पिप्पलीमूलं रासुमलकगोक्षुरम् ॥ ३२८ ॥

आत्मगुप्ता तथैरण्डः शताङ्गालवणत्रयम् ।

अश्वगन्धामृताभीरु यवानि सवचाशठी ॥ ३२९ ॥

एतैरक्षसमैः कल्कैः साधयेन्मृदुनाग्निना ।

पक्षवातादिभिः सर्वैरर्दिते च हनुग्रहे ॥ ३३० ॥

कर्णमूले च बाधिर्ये तिमिरे च त्रिदोषजे ।

पाणिपादशिरोग्रीवा श्रवणे मन्द एव च ॥ ३३१ ॥

कलायस्त्रिंशं पङ्क्तौ च गृध्रस्यामपवाहुके ।

पाने वस्त्रौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ॥ ३३२ ॥

एतत्तैलं प्रशंसन्ति सर्ववातविकारनुत् ।

इति महाभापतैलम् ।

मापद्रोणं समावाप्य चाश्वगन्धां शतावरीम् ।

प्रसारणीं सातिवलां तथा गन्धर्वहस्तकम् ॥ ३३३ ॥

महश्चरस्य मूलन्तु केतकीनां तथैव च ।

आप्तगुप्ता च याव्याल दशमूलमथापि वा ॥ ३३४ ॥

एषां दशपलान् भागान् कीकट मांसमेव च ।

चतुःपष्टिपलं दत्त्वा जलसूर्यं विपाचयेत् ॥ ३३५ ॥

तेन पादावशेषेण आश्वविन्मृदुनाग्निना ।

चीरद्रोणसमायुक्तं तैलप्रस्यं विपाचयेत् ॥ ३३६ ॥

अतः कल्कानिमान्दद्यात् पलिकान् श्लक्ष्णपेपितान् ॥

जोवनीयानि यान्यहौ यष्टीचन्दनं सर्ववम् ॥ ३३७ ॥

देवदारुबलोकुण्डं रासुं लोशुकशिम्बिका ॥ ३३८ ॥

मांसीवचाशतपुष्पा विदारो च प्रसारिणी ॥ ३३९ ॥

वृद्धदारुकमूलञ्च विडङ्गं सरलं तथा ॥ ३४० ॥

शतावरीश्वगंधा च शठीकूपणमेव च ॥ ३४१ ॥

अम्बवेतसदावीं च शणं देयं पृथक् पृथक् ॥ ३४२ ॥

पाने वस्त्रौ तथाऽभ्यङ्गं नस्ये कर्णाचिपूरणे ॥

अर्दिते कर्णशूले च शिरोरोगे हनुग्रहे ॥ ३४३ ॥

मुखरोगेषु सर्वेषु मन्थोस्तम्भेऽपवाहके ॥ ३४४ ॥

कर्णस्त्रावे च वाधिर्ये तिमिरे च त्रिदोषजे ॥

हृद्रोगे चैव गृध्रस्थां मामबातेकटिग्रहे ॥ ३४५ ॥

कलायखञ्जे विस्वाध्याहितमेतद्विशेषतः ॥

जह्नोरुपादपृष्टे च पाण्डे शूलमतीव च ॥ ३४६ ॥

अग्न्यह्वराण्डहृदिश्च वातरंजं सुदारुणम् ॥

योनिमे कुलपंगू या चांगीतिं वातजान् गदोन् ॥ ३४७ ॥

बलिपलितखालित्यान् केशानां पतनं हरेत् ॥

बलमांमपदक्षेयं शुक्रहृत्तिकरं परम् ॥ ३४८ ॥

अपत्यजननं यैष्टं गर्भिण्याः परमं हितम् ॥

हृत्पत्रोद्वादिध्यायामैर्भ्रष्टमधिप्रमादकम् ॥ ३४९ ॥

तेनमात्रोपयोगिन व्याधिर्निर्मूलतां नयेत् ॥

सर्वदातविनाशाय हृद्यमिन्द्रागनियेयां ॥

गङ्गामापमिदं तैलं रुग्णाद्येयेण पुजितम् ॥ ३५० ॥

इति मामिषमहामायतवम् ॥

घोरादकं शतावर्था रसप्रस्यद्वयं पृथक् ।
 शृङ्गवेरस्य तैलस्य प्रस्यं साध्यञ्च कार्पिकैः ॥ ३४८ ॥
 शताह्वादारुशैलेय मांसीचन्दनबालकैः ।
 त्वगिलांशुमतीरास्त्रा तगरैरुष्णसैन्धवैः ॥ ३४९ ॥
 अश्वगन्धासमंगोष्ठा मूर्ध्नामरिचनागरैः ।
 तन्मासपीतं विधिवत्तैलं सिद्धार्यकं जयेत् ॥ ३५० ॥
 कुल्लवामनपंगुत्व वातभग्नावकुक्षनम् ।
 सर्वाङ्गीकाङ्गरोगांश्च हनुमन्त्याग्लामयान् ॥ ३५१ ॥
 वातरक्तञ्च कुष्ठानि कंडूपांसाविचर्चिकाः ।
 गण्डमालापचिवक्त्र पाकोदरभगन्दरान् ॥ ३५२ ॥
 कुष्ठव्रणान् सविषमा नारम्भान् विविधान् ज्वरान् ।
 सन्निपातांश्च शूलानि विषमहृन्मामयान् ॥ ३५३ ॥
 वातगुल्मं वह्नु मेहा नन्त्रहृदिश्च शर्कराम् ।
 कामलां पांडुरोगञ्च शूलं नेत्रगदोद्वगम् ॥ ३५४ ॥
 मूढगर्भांश्च भग्नांश्च योनिर्वन्ध्यामयान् वह्नु ।
 हृद्वातामल्यशुक्रदृक् स्मृतीनां क्षयरितमाम् ॥ ३५५ ॥
 रसायनं बलारोग्यं वर्णाग्न्यायुर्विवर्धनम् ॥ ३५६ ॥

॥ ३५६ ॥

ॐ नारायणाय स्वाहा उत्तराभिमुखः स्थित्वा खेदिरकीलकेन
 खन्यते । शतावरी औषधी च सर्वासां साधनायीत्पाटनायार्थं
 मन्त्रः ।

ॐ कुमारवीजनाय स्वाहा । इत्युत्पाटनमन्त्रः । इति शता-
 वरीतैलम् ।

मापस्यार्द्धाढक देय दशमूलं तुलार्द्धत । ३५० ॥
 बलामूलन्तु तस्यार्द्ध केतकीना तथैव च ॥ ३५१ ॥
 दक्षमास पल त्रिंश च्छ टिका पञ्चविंशति । ३५२ ॥
 जलद्रोणद्वये पक्षा पादशेषेऽवतारिते ॥ ३५३ ॥
 तिलतैलस्य च प्रस्थं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
 जीवनीयानि यान्यष्टौ मञ्जिष्ठाचव्यकटफलम् ॥ ३५४ ॥
 व्योष रास्त्राकणामूल मधुकं पुष्कर तथा ।
 मापात्मगुप्तकैरण्ड शताक्षालवणतयम् ॥ ३५५ ॥
 कुंठाश्वगन्धा ह्यमृता यवानी सवचाशठी ।
 नागरं मागधीमुखं यर्षाभूरजनीद्वयम् ॥ ३५६ ॥
 शतावरोहहृत्थौ च एतैरक्षसमन्वितै ।
 पक्षावातेषु सर्वेषु ह्यर्दिते च हनुग्रहे ॥ ३५७ ॥
 मन्दशुती च श्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे ।
 हस्तकम्पे शिर कम्पे गतकम्पे शिरोग्रहे ॥ ३५८ ॥
 शस्तं कलायखञ्जे च गृध्रस्यामपवाहुके ।
 याधिर्यं कर्णनादे च सर्ववातविकारनुत् ॥ ३५९ ॥
 दण्डापतानके चैव मन्यास्तम्भे विशेषतः ।
 हनुस्तम्भे प्रशस्तं स्यात् सूतिकावातनाशनम् ॥ ३६० ॥
 त्वच्य मासप्रदक्षैव शुक्राग्निबलवर्द्धनम् ।
 भण्डहृदिमन्त्रहृदि वातरक्तक्षौनाशयेत् ॥ ३६१ ॥

इति महामापतैलम् ।

मापप्रस्थं बलाप्रस्थ दशमूल्यास्तथा परम् ।
 प्रस्थं सहचरम्यैक मग्राह्याप्रस्थमेव च ॥ ३६२ ॥
 जलद्रोणद्वये पक्षा चतुर्भागावशेषिते ।

तैलप्रस्थं पचेच्छागं चौरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ३६८ ॥
 कल्कैः मिथून्यथोहं रासांघ्योपाधिगन्धकैः ।
 शतपुष्पासमायुक्तै स्तस्त्रिद्वं सर्वघातनुत् ॥ ३६९ ॥
 इति सोपतैलम् ।

शतत्रयं प्रसारिण्या द्वे च पीतसहाचरोत् ॥
 अश्वगन्धैरंडबला वरीराम्नापुनर्नवा ॥ ३७० ॥
 केतकीदगमूलञ्च पृथक् त्वक् पारिमदतः ।
 प्रत्येकमेपान्तु तुला तुलार्धं किलिमं तथा ॥ ३७१ ॥
 तुलार्धं स्याच्छिरीपस्य लाक्षायाः पञ्चविंशतिः ।
 पेलानि लोभाञ्च तथा सर्वमेकत्र साधयेत् ॥ ३७२ ॥
 द्रोणद्वयं काञ्जिकञ्च पञ्चविंशत्यादृकान्वितम् ।
 चौरदधोः पृथक् प्रस्था दगः सख्वादृकं तथा ॥ ३७३ ॥
 इक्षोरसादृके चैव छागमांसतुलां नयेत् ।
 जलं पञ्चचत्वारिंशत्प्रस्थे पके तु शेषयेत् ॥ ३७४ ॥
 मसदशरसप्रस्थान् मञ्जिष्ठाकाय एव च ।
 कुड़वीनादृकोन्माने द्रवैरेभिस्तु साधयेत् ॥ ३७५ ॥
 सुशुद्धतिलतैलस्य द्रोणप्रस्थेन संयुतम् ।
 आद्य एभिर्द्रवैः पाकः कल्कैर्भस्मातकं कणा ॥ ३७६ ॥
 नागरं मरिचं चैव प्रत्येकं पट्पलोन्मितम् ।
 भस्मातकाऽसद्वित्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते ॥ ३७७ ॥
 पथ्याक्षधातवः सरलं शताङ्गाककटीवचा ।
 चौरपुष्पीशटीमुस्तं द्वयं पञ्चस्र सौत्पलम् ॥ ३७८ ॥
 पिप्पलीमूलमञ्जिष्ठा साश्वगन्धापुनर्नवा ।
 दगमूलं समुदिष्टं चक्रमर्दी रसाञ्जनम् ॥ ३७९ ॥

गन्धद्वयं हरिद्राच जीवनीयगणस्तथा ।

एतेषां पलिकैर्भागैः राद्यः पाको विधीयते ॥ ३८० ॥

देवपुष्पीबोलपत्रे शङ्खकीरसंश्लिजे ।

प्रियंगूशीरमधुरी मांसीदारुखलावचा ॥ ३८१ ॥

श्रीवासी नलिकाख्येति सूक्ष्मैलाकुन्दुरुसुरा ।

नखोद्वयश्च त्वक्पत्री सुमना पूतिचम्पकम् ॥ ३८२ ॥

मदनं रेणुकाष्टका मातुलुङ्गं पलत्रयम् ।

प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते ॥ ३८३ ॥

गन्धोदकी च त्वक्पत्री पत्रकीशीरमुस्तकम् ।

प्रत्येकं सबलामूलं पलानि पञ्चविंशतिः ॥ ३८४ ॥

कुर्थाङ्गभागोऽत्र जलं प्रस्थास्तु पञ्चविंशतिः ।

अर्धावशिष्टाः कर्तव्याः पाके गन्धांबुकर्मणिः ॥ ३८५ ॥

गन्धांबुचन्दनांबुभ्यां द्वितीयः पाक इष्यते ।

फलकोऽत्र केशरं कुटं त्वक्कालीयककुडुमम् ॥ ३८६ ॥

भद्रत्रियं चन्द्रियं सताकसूरिका तथा ।

लवङ्गागुरुकांडोल जातीकोपफलानि च ॥ ३८७ ॥

एलालङ्गुलसी च प्रत्येकं त्रिपलीग्विता ।

कसूरुपद्मपलाचन्द्रा त्वलं सार्धं च गृह्यते ॥ ३८८ ॥

वेधार्थं पुनश्च मदी देयी तद्योग्मिती ।

महाप्रसारणीमेयं राजभोग्याप्रकीर्तिता ॥ ३८९ ॥

गुष्ठान् प्रसारणीनान्तु बह्व्येषां पलोत्तमान् ॥ ३९० ॥

—

अत्र गुणविधिमेष्टः प्रत्यपश्चादङ्कोमितम् ।

कान्त्रिकं कुडुवी दध्नी गुडप्रस्योऽम्बुमूलकात् ॥ ३९१ ॥

पलान्यष्टौ गोधिताद्रा त्वलपोङ्गकं तथा ।

कणाजोरकसिन्धूत्य हरिद्रामरिचं पृथक् ॥ ३८२ ॥

द्विपलं भाविते भाण्डे घृतञ्चाष्टदिनस्थितम् ।

सिद्धं भवति तच्छुक्तं यदवितार्थगृह्यते ।

तदा देयं चतुर्जातं पृथक्कर्षत्रयीन्मितम् ॥ ३८३ ॥

इति शुक्ताविधिः ।

पञ्चपल्लवतोयेन गंधानां चालनं तथा

शोधनं चात्र संस्कारो विशेषश्चात्र वक्षते ॥ ३८४ ॥

आम्रजंबूकपित्थानां बीजपूरकविल्लयोः ।

गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ॥ ३८५ ॥

चण्डीगोमयतोयेन यदि वा तित्तिडीजलैः ।

नख सक्राययेद्देभिः भाण्डेन मृण्मयेन तु ॥ ३८६ ॥

पुनरुद्धृत्य प्रक्षाल्य भर्जयित्वा निपेचयेत् ।

गुडपट्यांबुनाह्वेवं शुद्ध्यते नात्र सशयः ॥ ३८७ ॥

इति नखशुद्धिः ।

गोमूत्रे चालनुपके पक्वापञ्चदलोदके ।

पुनः सुरभितोयेन वाष्पस्नेदेन स्नेदयेत् ॥ ३८८ ॥

गन्धोग्राशुध्यते ह्येवं रजनी च विशेषतः ॥ ३८९ ॥

इति हरिद्रावचाशुद्धिः ।

सुस्तकन्तु मनाक् क्षुण्णं काञ्जिके त्रिदिनोषितम् ।

पञ्चपल्लवपानीये स्निग्धमातपशोषितम् ॥ ४०० ॥

गुडांबुना सिध्यमानं भर्जयेच्चूर्णयेत्ततः ।

आजसीभाञ्जनजलैर्भावेयेदिति शब्दाति ॥ ४०१ ॥

इति सुस्तकेशुद्धिः ।

काञ्चिके कथितं शैलं भृष्टा पथ्या गुडांबुना ।
सिञ्चेदेवं ततः पुष्पैर्विविधैरधिवासयेत् ॥ ४०२ ॥

इति शैलजशुद्धिः ।

यथालाभमपामार्गं स्नुह्यादि चारलेपितम् ।
वाष्पस्वेदेन संस्वेद्य पूतिं निर्लोमतां नयेत् ॥ ४०३ ॥
दोलापाकं पचेत्पथ्या त्वेक्षपल्लववारिणि ।
खलुः साधुमिवोत्पोष्य ततो निःस्नेहतां नयेत् ॥ ४०४ ॥
आजसौभांजनजलैर्भावेयेच्च पुनः पुनः ।
शिशुमूले च केतक्याः पुष्पपत्रपुटे च तम् ।
पचेदेवं विशुद्धयन्मृगनाभिसमो भवेत् ॥ ४०५ ॥

इति खाटासीशुद्धिः ।

तुरुष्कं मधुना भाव्य काश्मीरञ्चापि सर्पिषा ।
रुधिरणायसं प्राञ्चैर्गोमूत्रैर्ग्रन्थिपर्णिकम् ॥ ४०६ ॥
मधूदकेन मधुरी पत्रकं तंडुलांबुना ।
क्षेपत्क्षारानुगधा तु दग्धायाति न भस्मताम् ॥ ४०७ ॥
पीताकेतकीगंधा वा लघुस्निग्धान्मृगोत्तमा ॥ ४०८ ॥
पक्तात् कर्पूरतः प्राहु रपक्वं गुणवत्तरम् ।
तत्रापि स्याद्यदक्षुद्रं स्फुठिकाभं तदुत्तमम् ॥ ४०९ ॥
पक्कञ्च मदलं स्निग्धं हरितद्युति चोत्तमम् ।
भङ्गे मनागपि नचे त्रिपतन्ति ततः कणाः ॥ ४१० ॥
मृगशृङ्गोपमं कुष्ठं चन्दनं रक्तपीतकम् ।
वाकत्तुडाकृतिः स्निग्धो गुरुर्यैवोत्तमोऽगुरुः ॥ ४११ ॥
खिग्धान्पक्षे गरं त्वस्त्रं शैलजो वृक्षमांसलः ।
मृगपीतायराप्रोक्ता मांसोपि जटाकृतिः ॥ ४१२ ॥

रेणुकामुद्गसंस्थानां शस्तमानूपजङ्घनम् ।
जातोफलं सशब्दञ्च स्निग्धं गुरु च शस्यते ॥ ४१३ ॥

एलासूक्ष्मफलायेष्टा प्रियंगूः श्यामपाण्डुरा ।

नखमंश्चसुरं हस्ति कर्णञ्चैवात्र शस्यते ।

एतेषामपरिषाञ्च नवताप्रवरी गुणः ॥ ४१४ ॥

इति चतुर्विंशतिकाप्रसारिणीतैलम् ।

मापद्रोणं समादाय अश्वगन्ध्याप्रसारिणी ।

द्विपञ्चमूल्यात्मगुप्ता बलागन्धर्वहस्तकः ॥ ४१५ ॥

एषां दशपलान् भागान् वारिद्रोणे चतुष्टये ।

क्वाथमेभिः प्रकुर्वीत चतुर्भागावशेषितम् ॥ ४१६ ॥

यध्याह्नदारुकुटै ला रास्त्रामांभीबलावचा ।

शताह्वा चात्मगुप्ता च चाश्वगन्ध्या च चन्दनम् ॥ ४१७ ॥

शय्युरुषुकवचास्त्रचूरपणागुरुहृदिकम् ।

सिन्धूद्वर्ष विदारो च प्रसारिणी शतावरी ॥ ४१८ ॥

हृददारुकातिबला विडङ्गसरलानि च ।

कल्कैरेतैः पलैर्भागी स्तौलाढकसमायुतैः ॥ ४१९ ॥

घोरतुल्यसमायुक्तं शनैर्मृदग्निना पचेत् ।

पाने वस्ती तथाभ्यङ्गे नस्ये भोज्ये च पूजितम् ॥ ४२० ॥

अर्दिते कर्णशूले च शिरोरोगे हनुग्रहे ।

सुखरोगेषु सर्वेषु मन्थास्तम्भेऽपवाहुके ॥ ४२१ ॥

मन्दश्ववणवाधिर्ये कर्णरोगातिपीनसे ।

हृद्रोगे गृध्रसीञ्चैव आसबातकटिग्रहम् ॥ ४२२ ॥

जह्वोरुपादष्टे पु पाश्वर्गशूलमतीव च ।

अन्धदृष्टाण्डहृदि च वातरक्तं सुदारुणम् ॥ ४२३ ॥

वित्राचीखञ्जपंगूयां मशीतिं वातजान् हरेत् ॥ ४२४ ॥

बलीपलितखालित्यं केशानां पतनं परम् ।
 बलमांसकरश्चैव शुक्रवृद्धिकरं परम् ॥ ४२५ ॥
 अपत्यजननं श्रेष्ठं गर्भिणीनां परं हितम् ।
 हृद्यश्चोद्गादिव्यायामैर्भग्नसन्धिप्रसाधनम् ॥ ४२६ ॥
 तैलमात्रोपयोगेन व्याधिर्निर्मूलतां नयेत् ।
 सर्वातङ्गविनाशाय हृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ।
 महामापमिदं तैलं दृष्ट्वा त्रैयेण पूजितम् ॥ ४२७ ॥

इति महामापतैलम् ।

प्रसारणीशतकाथे तैलप्रस्थं पयः समम् ।
 जीवकर्षभकौ मेदे काकोत्थौ कुष्ठचन्दने ॥ ४२८ ॥
 शताङ्गादारुमञ्जिष्ठा रास्त्रापिष्टा विपाचयेत् ।
 वस्तिपानादिभिर्युक्तं मेतन्मारुतरोगनुत् ॥ ४२९ ॥

इति शतकप्रसारणीतैलम् ।

प्रसारण्यामुलामश्लगन्ध्यायादशमूलतः ।
 तुलां तुलां पृथग्वारि द्रोणे पादांशप्रेषिते ।
 तैलाढकं चतुःक्षीरं दधितुल्यं द्विकाञ्जिकम् ॥ ४३० ॥
 द्विपनैर्गन्धिकचारं प्रसारिण्यक्षसैन्धवैः ।
 समञ्जिष्टामियव्याह्नैः पलिकैर्जीवनीयकैः ॥ ४३१ ॥
 शुण्ठ्याः पञ्चपलान्दत्त्वा त्रिंशद्वक्त्रातकानि च ।
 पचेद्ब्रह्मादिनाबातं हन्ति सन्धिशिरास्त्रिगम् ॥ ४३२ ॥
 पुंस्त्वोक्ताहमृतिप्रज्ञा वलवर्षाग्निवृद्धये ।
 प्रसारिणीयं त्रिशतीत्वक्षं सौवर्चस्तन्विह ॥ ४३३ ॥

इति त्रिशतीप्रसारणीतैलम् ।

प्रसारणीशतं क्षुब्धं पचेत्तोयाऽर्मणे शुभे ।
 पादशिष्टे समं तैलं दधिदद्यात्सकाञ्चिकम् ॥ ४३४ ॥
 द्विगुणञ्च पयो दत्वा कल्कान् द्विपलिकांस्तथा ।
 चित्रक पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वचाम् ॥ ४३५ ॥
 शतपुष्पां देवदारुं रास्त्रां वारणपिप्पलीम् ।
 प्रसारिष्याद्य मूलानि मांसीभक्तातकं तथा ॥ ४३६ ॥
 पचेन्मृदग्निनातैलं वातश्लेष्मामयान् जयेत् ।
 अशीतिं नरनारीस्थान् वातरोगान् व्यपोहति ॥ ४३७ ॥
 कुष्ठस्त्रिमितपंगुत्वं गृध्रसीखञ्जकार्दितम् ।
 हनुपृष्ठशिरोग्रीवा स्तम्भश्चाशु नियच्छति ॥ ४३८ ॥
 इति कुष्ठप्रसारणीतैलम् ।

समूलपत्रामुत्पात्य शरत्काले प्रसारिणीम् ।
 शतं त्राघ्नं सहचरा च्छतवर्थाः शतं तथा ॥ ४३९ ॥
 वलात्सगुग्गुलुगन्धा केतकीनां शतं शतम् ।
 चतुर्गुणेन तोयेन द्रवैस्तैलाढकं पचेत् ॥ ४४० ॥
 मस्तुमांसरसं चुक्रं पयसाढकमाढकम् ।
 दध्नाढकं समायुक्तं पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ४४१ ॥
 द्रव्याणान्तु प्रदातव्या मात्रा चार्धपलात्मिका ।
 तगरं चन्दनं कुष्ठं केसरं मुस्तकं त्वचम् ॥ ४४२ ॥
 रास्त्रासैन्धवपिप्पल्यो मांसीमञ्जिष्टयष्टिका ।
 जीवकर्पभकौ मेदा महामेदा तथा पुनः ॥ ४४३ ॥
 शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुण्ठीदेवाङ्गमेव च ।
 काकोलीघोरकाकोली वचाभक्तातकं तथा ॥ ४४४ ॥
 येपयित्वा समानेतान् साधनीया प्रसारणी ।
 नातिपक्वं नातिहीनं सिद्धपूतं निधापयेत् ॥ ४४५ ॥

यत्र यत्र प्रदातव्यं तन्मे निगदतः शृणु ।

कुलानामथ पङ्कूनां वामनानां तथैव च ॥ ४४६ ॥

यस्य शृण्वति चैकाङ्गं ये च भग्नास्त्रिसन्धयः ॥ ४४७ ॥

वातशीणितदुष्टानां प्रातोपहतचेतसाम् ।

श्लोपदक्षीणशक्तानां वाजोकरणमुत्तमम् ॥ ४४८ ॥

पाने बस्ती तथाभ्यङ्गे नखे चैव प्रदापयेत् ।

प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान् विविधान् गदान् ॥ ४४९ ॥

इति सप्तशतिका महाप्रसारणीतैलम् ।

प्रसारणीपलशतं गुडूचीसहचरं बला ।

एरण्डमश्वगन्धा च दशमूलीशतावरी ॥ ४५० ॥

कुट्टयित्वा पलशतं साधयेत् सलिलार्मणे ।

चतुर्भागावशेषञ्च कषायमवतारयेत् ॥ ४५१ ॥

तैलं मांसरसं क्षीरं दधिशुक्तं तथैव च ।

एतानि समभागानि द्विगुणं चाम्बुकाञ्जिकम् ॥ ४५२ ॥

कल्के पेयाणि भागानि तत्रेमानि प्रदापयेत् ।

नागरातिविषामुस्तं शठी चैलांबुपत्रकम् ॥ ४५३ ॥

चन्दनं तगरं कुट्टं पुष्कराष्टं समैक्यवम् ।

वूरपणं कटुकं घारं मञ्जिष्ठाकटुकागुरु ॥ ४५४ ॥

शताह्वापिप्पलीमूलं मांसीचन्दनमिव च ।

प्रसारणीमूलमपि जीवनीयानि यानि च ॥ ४५५ ॥

एतैस्तु पनिकैर्भागे शौलपात्रे विषाधयेत् ।

अग्रं वा घातसंभग्नं गजं वा लज्जरीकृतम् ॥ ४५६ ॥

एकाङ्गं घवधुं कप मपतानेकमेव च ।

हन्यादेतान् गदान् सर्वांन् मण्डलेषा प्रसारणी ॥

बलवर्णकरी ह्येषा नित्यमात्रे यपूजिता ॥ ४५७ ॥

इति महाप्रसारणीतैत्तम् ।

समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याः शतत्रयम् ।

सहचरस्य शतं द्वे च शतावर्यश्वगन्धयोः ॥ ४५८ ॥

गुडूचैरण्डमूलानां वानरीक्षुरकस्य च ।

पुनर्नवायाः केतव्याः पञ्चमूलद्वयस्य च ॥ ४५९ ॥

त्रिफलाचित्रकं बिल्वं बलातिबलयोरपि ।

शिरीषमूलं पञ्चाश द्राक्षादारुतदंशिके ॥ ४६० ॥

सर्वमेतत् सुसंक्षुद्य कटाहे समधिचिपेत् ।

वारिद्रोणे शते क्वाथं दशभागस्थितेन वै ॥ ४६१ ॥

व्यक्तास्त्रेनारणालेन द्रोणद्वययुतेन च ।

मस्तुचीरेक्षुनिर्यास छागमांसरसैस्तथा ॥ ४६२ ॥

षाढकाढकसंयुक्ते तथा शुक्ताढकेन च ।

तेन द्रोणसमायुक्तं दृढे भाण्डे निधापयेत् ॥ ४६३ ॥

द्रव्याणि यानि पेयाणि तानि वक्ष्याम्यतः शृणु ।

भस्मातकं नतं शुण्ठि कृष्णाश्वथभयावचा ॥ ४६४ ॥

बलाप्रसारिणी चैव कणामूलन्तु चौरकम् ।

लवङ्गं शतपुष्पा च सूक्ष्मैलात्वक् च बालकम् ॥ ४६५ ॥

कुष्ठं व्याघ्रनखं मांसी सैन्धवं मदनं वचा ।

कस्तूर्यगुरुमज्जिष्टा तुरप्कनखकुङ्कुमम् ॥ ४६६ ॥

तुम्बुरं चन्दनं पूति कङ्कोलं त्रिसुगन्धिकम् ।

पद्मकोत्पलकालीय दार्व्यग्निसितचन्दनम् ॥ ४६७ ॥

शठीरेणुकशैलेय शोवासं कंडुरं नलम् ।

जातीकोषं वरी भीरु सरलं पद्मकेसरम् ॥ ४६८ ॥

प्रियंगूशीरतगरं नल्लिकाजीवनं गृणम् ।

लवङ्गं नागपुष्पञ्च तथा कर्पूरमञ्जनम् ॥ ४६८ ॥
 कटुकापूगजातीनां फलानि ताडिकीफलम् ।
 भागांस्त्रिपलिकान् कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४७० ॥
 इष्टवर्गरसस्यर्शं गंधेनापि समन्वितम् ।
 स्वभागशेषं तत्सिद्धं तत्तु गुप्तं निधापयेत् ॥ ४७१ ॥
 पानाभ्यङ्गे तथा नस्ये निरुहे चानुवासने ।
 एतद्धि बडवास्त्रानां किशोराणां यथाश्रुतम् ॥ ४७२ ॥
 एतदेव कुमारानां कुञ्जराणां गवामपि ।
 हृद्योप्येतन्नरः पीत्वा पुनश्च तरुणो भवेत् ॥ ४७३ ॥
 एतेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महादुग्धाः ।
 मूले सिक्ताः प्ररोहन्ति मनालक्षदपल्लवाः ॥ ४७४ ॥
 अप्रसूता च या नारी सम्यक् पीत्वा प्रसूयते ।
 अप्रजः पुरुषो यश्च सोऽपि पीत्वा सुतं लभेत् ॥ ४७५ ॥
 अशोतिर्वातजान् रोगां चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
 विंशतिः श्लेष्मिकांश्चापि संसृष्टान् मान्निपातिकान् ॥ ४७६ ॥
 क्षिप्रं विनाशयत्येव तैलमेतत् प्रयोजितम् ।
 पूर्वस्माद्विशिष्टतरं गन्धहस्तीति लक्षणम् ॥ ४७७ ॥
 इति गन्धहस्तीप्रसारिणीतैलम् ।
 समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याः शतत्रयम् ।
 शतमेकं शतावर्यां अश्वगन्धाशतं तथा ॥ ४७८ ॥
 केतकीनां शतत्रैकं दशमूलाच्छतं शतम् ।
 शतं वाय्वालकस्यापि शतं महचरस्य च ॥ ४७९ ॥
 जलद्रोणशतं दत्वा शतभागावर्गमितम् ।
 सतस्त्रेण कषायेण कषायद्विगुणेन च ॥ ४८० ॥
 सुव्यक्तो नारणालेन दधिमस्वादकेन च ।

शीरशक्तेक्षुनिर्यास छागमांसरसेन च ॥ ४८१ ॥
 तैलं द्रोणसमायुक्तं दृढे भांडे निधापयेत् । -
 द्रव्याणि यानि पेथाणि तानि वक्ष्याम्यतः शृणु ॥ ४८२ ॥
 भस्मातकं नतं शुण्ठी चित्रकं पिप्पलीशठी । -
 वचापृक्काप्रसारिस्थः पिप्पलीमूलमेव च ॥ ४८३ ॥
 देवदारुशताद्वा च सूक्ष्मैलात्वक् च बालकम् । -
 कुष्ठं व्याघ्रनखं मांसी वीरचन्दनशारिवाः ॥ ४८४ ॥
 कस्तूर्यगुरुमञ्जिष्ठा तुरप्कनखकुङ्कुमम् ।
 'कर्पूरकन्दुरुनिशालवङ्गध्यामसैधवंम् ॥ ४८५ ॥
 कङ्गोलनलिकासुस्ता कालीयोत्पलपत्रकम् ।
 शठीहरेणुगैलेय श्रीवासश्च कशेरुकम् ॥ ४८६ ॥
 त्रिफलाकच्छुराभीरु सरलापद्मकेसरम् ।
 प्रियंमूशोरजलदं जीवकाद्यं पुनर्नवा ॥ ४८७ ॥
 दशमूलाश्वगंधा च नागपुष्पं रसांजनम् ।
 कटुकाजातिपूगानां फलानि सप्तकीरसम् ॥ ४८८ ॥
 मगांस्त्रिपलिकान् दत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
 आयसे वाथ ताम्बे वा सुदृढे मृन्मयेऽपि वा ॥ ४८९ ॥
 प्रयोगः षड्विधस्यापि रोगार्त्तानां विधीयते ।
 अभ्यङ्गाश्चमातं हन्ति पानात्कीष्टगतं तथा ॥ ४९० ॥
 भोजनात् सूक्ष्मनाडीस्था च स्यादूर्ध्वगतांस्तथा ।
 आमाशयगते वस्ति निरुहः सर्वकायिके ॥ ४९१ ॥
 एतच्च वङ्गवाश्वानां किशोराणां यथामृतम् ।
 एतदेव मनुष्याणां कुक्षराणां गवामपि ॥ ४९२ ॥
 अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः ।
 सिक्ताः पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिनः ॥ ४९३ ॥

वृद्धोप्यनेन पीतेन पुनश्च तरुणी भवेत् ।

अप्रसूता च या नारी सा पीत्वाऽपि प्रसूयते ॥ ४८४ ॥

अप्रजः पुरुषो यश्च सोऽपि पीत्वा लभेत् सुतम् ।

अशीतिं वातजान् रोगान् पैत्तिकान् श्लैष्मिकानपि ॥ ४८५ ॥

सन्निपातसमुत्थांश्च नाशयेत् क्षिप्रमेव च ।

एतेनांधकहृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत् ॥

पुष्टिवर्णबलश्चाशु तैलमेतददापयेत् ॥ ४८६ ॥

इत्यष्टादशशतकं प्रसारणीतैलम् ।

शरत्सुसंपक्वसुजातसार प्रसारणीमूलशतं विशुद्धम् ।

दशैव मूलानि बलाश्लगंधा शतावरीसाहचरं श्वदंष्ट्रा ॥ ४८७ ॥

रास्त्रात्मगुप्तामृतहृदिकानां

शतं शतश्चापि सुकुटितश्च ।

पृथक् पृथक् त्वाङ्कसमितानां

कुलुत्थकोलांश्च यवांश्च दद्यात् ॥ ४८८ ॥

द्रोणैस्तु षड्भिर्बिषचेज्जलस्य द्रोणावशेषु विषचेद्वि तत्र ।

तैलाढकं मांसरसाढकश्च दध्याढकं क्षीरचतुर्गुणश्च ॥ ४८९ ॥

गुप्ताढकं मूलरसाढकश्च मरूवाढकश्चाढककाष्ठिकश्च ।

द्रव्यैः समैरर्द्धपलांगिकैश्च सुसूक्ष्मपिट्टैर्दृपदि प्रयत्नात् ॥ ४९० ॥

रास्त्रायताह्वाऽगुरुदारुयुतं मञ्जिष्टयटीमधुकं नताप्लम् ।

मांसीवचामैन्धवचित्रकश्च चारं यवानां सरलं कृमिघ्नम् ॥ ४९१ ॥

धारुपर्करं पुष्करमूलकुटं सपिप्पली पिप्पलीमूलचयम् ।

मेदायुगक्षार्यभका युभौ च काकोनियुग्मं मरिचं त्वगैलम् ॥ ४९२ ॥

शङ्खीशठीव्याघ्रनखं सचीचं पृकागजाङ्गामदनं मण्डली ।

सकेशरं चन्दनपत्र चोरं त्रिकण्टमृद्गाटककोलकञ्च ॥ ५०३ ॥

ऋहिं सङ्गहिं रजनीमृणालं

यवान्यजाजीत्वजमोदकञ्च ।

यद्वाशतन्तानऽधिकांश्चतुर्भिः

क्षिप्त्वा विपाच्यं मृदुनाग्निना च ॥ ५०४ ॥

संपूज्यविमान् भिषजीऽवतार्य

शान्तिं तथा स्वस्थवधार्यकुम्भे ।

क्षिप्त्वा च संपूज्यगृहे सुगुप्ते

तत् स्थापयेत्तैलवरं प्रयत्नात् ॥ ५०५ ॥

यान्यान्विकारान्विनिहन्ति युक्तं

नियुज्यते यत्र यथा निबोधमे ।

ये पद्मव. पीठविसर्पिणश्च

सङ्कोचितस्रायुशिराश्च कुजाः ॥ ५०६ ॥

गतिप्रणष्टाविनताश्च खण्डाः

सन्ध्यस्थि संपीडितभग्नगात्राः ।

मन्यासुपृष्टे भुजकण्ठकट्यां

स्तम्भे नृणां मारुतजं निहन्ति ॥ ५०७ ॥

एकाङ्गसर्वाङ्गजमध्यशेषं

वात जयेदर्दितशीथकाङ्गू ।

स्तम्भं जयेद्यापकृताभिधानं

वाह्यान्तरायामहनुग्रहश्च ॥ ५०८ ॥

ये वातसंघाद्यतिजर्जिताङ्गा-

विस्मिष्टजान्वस्थिकटीकपालाः ।

सन्धिष्युता. स्तब्धतमः शिराश्च

भवन्ति सर्वेऽपि पुनर्नवास्ते ॥ ५०९ ॥

स्नायुस्थिसन्ध्यूरुगवातशूलं
 शिरोभवं गात्रभवं निहन्ति ।
 कर्मायथार्थप्रभवञ्च शूलं
 सर्वाङ्गमेकाङ्गमाशु हन्ति ॥ ५१० ॥
 स्त्रीणाञ्च योन्युद्भववस्तिशूलं
 क्रुद्धेन वातेन च रक्तजञ्च ।
 पुंमाञ्च शुकचयमागते च
 शूलं तथा मेद्वगतं निहन्ति ॥ ५११ ॥
 क्षीणेन्द्रिया ये विकलाश्च गदगदाः
 स्मृत्याविहिताः पुनरुक्तवाचः ।
 निरुहवाचस्त्वथकश्मलाये
 स्त्रियश्च याः स्युः प्रजयाविहीनाः ॥ ५१२ ॥
 दुष्टेन्द्रिया ये पुरुषाश्च तेषां
 प्रसारणी चैव हिताक्रियासु ।
 विशोधयेदार्त्तवशुकदीपान्
 प्रजाकरोस्यात् स्मृतिदामदिष्टा ॥ ५१३ ॥
 प्रत्याधानाधानमाहार्त्तिकोष्टं
 लृम्भोद्धारं कर्णनादं चतञ्च ।
 वातोन्मादं वातजापश्मृतिञ्च
 शास्त्रावातं गृध्रमौ चापि हन्ति ॥ ५१४ ॥
 रोगान् जयेद्वातभयानभीतिं
 मित्यांस्तथा वातकफोद्भवांश्च ।
 सेवन्ति ये शूलजितां प्रमारणी-
 मभ्यद्रूपानाशननस्य वस्तिभिः ॥ ५१५ ॥

भवन्ति ते चाप्यजिताः सदामयेर्विशुष्यंयाऽभूदजितः सुरारिभिः ॥

अजितानामतः स्यात्ता वातरोगैर्न जीयते ।

क्षीणजर्जरिताङ्गानां वातसङ्कोचितात्मनाम् ॥ ५१७ ॥

प्रसारयति चाङ्गानि तेन प्रोक्ता प्रसारणी ।

अभ्यङ्गैस्त्वग्गतं हन्ति पाने नाङ्गीगतं तथा ॥ ५१८ ॥

भोजनेन तु कोष्ठस्था न्नस्ये नोर्ध्वगतान् गदान् ।

अधोगान्त्वस्तिदानेन सर्वान् हन्ति प्रसारणी ॥ ५१९ ॥

सकलभुवनरोगानुग्रहीर्यान्निहन्ति

प्रतिहतविषमाग्नीरूपसं पक्त्वभावः ।

उपचितसमगात्र, कान्तिलावण्ययुक्तो

भवति च बलवान् वा जाठरेऽग्नी प्रदीप्ते ॥ ५२० ॥

तुरगजवसमं स्याद् गृध्रदृष्टिर्वपुष्मान् ।

श्रुतिमयूरसमं स्याद् दारयेत् विश्रुतञ्च ॥

स्मृतिमतिष्ठितियुक्तः स्पष्टवाक् स्पष्टचित्तः ।

स्फुरपटुगुणयुक्तः शुद्धशक्रः प्रजावान् ॥ ५२१ ॥

विषगदविनिहन्ता यद्वदेवादरः स्यात् ।

धवनगदनिहन्ता तद्वदेवाशु दृष्टिः ॥

अमृतमिव सुराणां नागरार्जं सुधैव ।

भवति च पुरुषाणां तद्वदेतद्वि तैलम् ॥ ५२२ ॥

प्रसारण्यश्वगन्धा च नागराख्या वला तथा ।

नित्यमार्द्राप्रयोक्तव्या भागतो द्विगुणा मता ॥ ५२३ ॥

इत्यजितप्रसारणीतैलम् ।

रसोनकल्कस्वरसेन सिद्धं तैलं पचेद्यस्त्वनिलामयात्तं ।

तस्याशु नश्यन्ति च वातरोगाग्रव्या विशाला इव दुर्गृहीताः ॥ ५२४ ॥

इति रसोनतैलम् ।

बालमूलकमापीष्य तैलं दध्याम्बकाञ्चिकम् ।
 घोरश्चैवाढकं दद्यात्पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ॥ ५२५ ॥
 रास्त्राभस्त्रातकं शिगु सैन्धवं गजपिप्पली ।
 बला चातिबलाशुण्ठी पिप्पलीचित्रकं वचा ॥ ५२६ ॥
 श्वदद्या चेति तत्पक्वं वातश्लेष्माभयापहम् ।
 ब्रध्मगृध्रसिपंगुत्वं खञ्ज वै सापतानकम् ॥ ५२७ ॥
 कथूरुस्तम्भनं शोषं पर्वस्तम्भप्रकम्पनम् ।
 हन्याद् गुल्मञ्च वातोत्थं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥
 बन्ध्यानां पुत्रदक्षैव तैलमूलकसाक्षयम् ॥ ५२८ ॥

इति मूलकाद्य तैलम् ।

दशमूलं बलारास्त्रा चाश्वगन्धापुनर्नवा ।
 गुडूचैरष्टपूतीकभांगीहिपकरोहिषम् ॥ ५२९ ॥
 शतावरीसहचरकाकनासापलोन्मिता ।
 यवमापातसीकोल कुलत्याः प्रसृतोन्मिताः ॥ ५३० ॥
 चतुर्द्विण्डुश्वसः पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन तु ।
 तैलाढकं समक्षीरं जीवनीयैः पचेच्छनैः ॥ ५३१ ॥
 अनुवासनमेतद्भिः सर्ववातविकारनुत् ।

इति दशमूलाद्य तैलम् ।

शतं पक्त्वाश्वगन्धाया जलद्रोणेऽंशशेषितम् ।
 विस्त्रायविपचेत्तैलं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ५३१ ॥
 कल्कैर्मृणालशालूक विशकिञ्जल्कमालती ।
 पुष्पैर्द्विर्वैरमधुक शारिवा पद्मकेसरैः ॥ ५३३ ॥
 मेदापुनर्नवाद्राक्षा भस्त्रिष्टाहृतीद्वयैः ।
 एलेनवानुविफला सुस्तघन्दनपद्मकैः ॥ ५३४ ॥

पक्वं रक्ताश्रयं वात रक्तपित्तमसृग्दरम् ।

हृन्धात्पुष्टिवत् कुर्यात् कृशानां मांसवर्धनम् ॥ ५३५ ॥

रेतो योनिविकारघ्नं व्रणशोयापकर्षणम् ।

खण्डानपि वृषान् कुर्यात् पानाभ्यंगानुवासनैः ॥ ५३६ ॥

इत्यश्वगन्धाद्यं तैलम् ।

शतावरीरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थसमन्वितम् ।

तैलप्रस्थं प्रचेदेभिः समस्तैर्गोमयाग्निना ॥ ५३७ ॥

शतावरी सांशुमती पृष्टपर्णीबिलादयम् ।

अश्वगन्धा च विस्वञ्च श्वदंष्ट्रा पौड्रकं तथा ॥ ५३८ ॥

निष्काप्यमूलमेतेषां तस्मिंस्तैले विनिक्षिपेत् ।

शतपुष्पादेवदारु मांसी शैलेयकं वना ॥ ५३९ ॥

चन्दनं तगरं कुष्ठं मेलाचांशुमती वचा ।

वृद्धिजीवककाकोलि मेदामधुकमुत्पलम् ॥ ५४० ॥

सर्वमेतत्समाहृत्य कल्कै रक्षसमन्वितेः ।

पाने वस्त्रे तथाऽभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रदापयेत् ॥ ५४१ ॥

अङ्गशूलं शिरःशूलं मेहदण्डापतानकम् ।

वातरक्तं सदाहञ्च वातपित्तार्दितं गदम् ॥ ५४२ ॥

शोथपाण्डूमयप्तीह कामलागरगृध्रसीः ।

योनिशूलमसृग्दोषमाधानं विनिहन्ति च ॥ ५४३ ॥

क्षीणशुक्रौजसा पुंसां शस्तं वन्ध्यासुतप्रदम् ।

शतावरीतैलमिदं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ ५४४ ॥

इति शतावरीतैलम् ।

सर्पिस्तैलवसामञ्जा पानाभ्यञ्जनवस्तयः ।

स्वेदोऽग्निनानिवातश्च स्थानं प्रावरणानि च ॥ ५४५ ॥

रेसः पयांसिभोज्यानि स्वादुश्चलवणानि च ।
 वृंङ्गं यच्च तत्सर्वं प्रशस्तं वातरोगिणाम् ॥ ५४६ ॥

अथ निदानम् ।

हनुस्तम्भादिताक्षेप पक्षघातापतानकाः ।
 कालेन महताबाता यत्रात्मिहान्ति वा न वा ॥ ५४७ ॥
 नवान् बलवतश्चैतान् साधयेन्निरूपद्रवान् ॥ ५४८ ॥
 विसर्पदाहरुक्मङ्ग मूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः ।
 क्षीणमांसबलं बाता हन्युः पक्षवधादयः ॥ ५४९ ॥
 क्षीणं सुप्तञ्च भग्नं कम्पाभ्याननिषेडितम् ।
 रुजार्त्तिमन्तश्च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ५५० ॥
 अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थाः प्रकृतिस्थितः ।
 वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवे क्षीनरोगः समा शतम् ॥ ५५१ ॥

अथादितनिदानमाह ।

उच्चैर्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च ।
 हसतो नृश्वतो भारा द्विपमाच्छयनासनात् ॥ ५५२ ॥
 गिरोनासौष्टचिबुक ललाटे क्षणमन्धिगः ।
 अर्देयत्यनिलो वक्त्रं मर्दितं जनयत्यतः ॥ ५५३ ॥
 वक्त्रो भयति वक्त्रार्धं श्रोवाश्चाप्यपवर्त्तते ।
 गिरयन्ति वाक्मङ्गो नेत्रादीनाञ्च वैकृतम् ॥ ५५४ ॥
 श्रोत्राचिबुकदन्तानां तन्मिन्पाश्वं च वेदना ।
 तमर्दितमिति प्राहुः प्याधि व्याधिविचक्षणः ॥ ५५५ ॥

वातात्पित्तात्कफाच्च स्याद्विविधः सः समासतः ।
 लालास्रावो व्यथाकम्पः स्फुरणं वाग्धनुषहः ।
 ओष्ठयोः श्वयथुः शूलमर्दिते वातजे भवेत् ॥ ५५६ ॥
 पीतमास्यं ज्वरस्तृष्णा पित्तजे मोहधूपने ।
 गण्डे शिरसि मन्यायां शोफः स्तम्भः कफात्मके ॥ ५५७ ॥
 भाविनो लक्षणं तस्य वेपथुर्नैत्रमाविलम् ॥ ५५८ ॥
 क्षीणस्याऽनिमिषाक्षस्य प्रशस्ताव्यक्तभायिणः ।
 न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ५५९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्नेहपानानि नस्यच्च भोज्यान्यनिलहानि च ।
 उपनाहाच्च शस्यन्ते स्वेदनं कस्तयो हिताः ॥ ५६० ॥
 दशमूलीकषायेण मातुलुङ्गरसेन च ।
 बलायाः पञ्चमूल्या वा क्षीरं वातात्मके हितम् ॥ ५६१ ॥
 मापपिष्टकृतं जम्घा नवनीतेन सोऽदितौ ।
 क्षीरं मांसरसैर्भुक्ता दशमूलीरसं पिबेत् ॥ ५६२ ॥
 घस्तावभ्यंगनस्ये च स्वेदयेत्तत्परः पुमान् ।
 पिबेदुपरिभुक्त्वान्यमर्दितं सव्यपोहति ॥ ५६३ ॥
 अर्दिते पित्तजे शीतान् स्नेहांश्चैव विनिर्दिशेत् ।
 घृतवस्तिप्रसेकश्च क्षीरसेकन्तथैव च ॥ ५६४ ॥
 जिह्मोभूताननोमूको दाहवान्योऽर्दितो भवेत् ।
 कुर्यात्प्रतिक्रियां तस्य वातपित्तविनाशिनीम् ॥ ५६५ ॥
 शिरसो रचनं कार्यं द्रव्यैः पित्तहरैस्तथा ।
 सतीक्ष्णनस्यपानेन पुराणस्यैव सर्पिषः ॥ ५६६ ॥

श्लेष्मभागे क्षय नीते ह हणैस्समुपाचरेत् ।

अर्दिते शोथसयुक्ते वमन सप्रशस्यते ॥ ५६७ ॥

दाहेन च समायुक्ते शिरसारक्तमोक्षणम् ॥ ५६८ ॥

रसीनकल्क तिलतैलमिश्र खादेन्नरो योऽर्दितरोगयुक्त ।

तस्यार्दितं नाशमुपैति शीघ्रं हृन्द घनानामिव वायुवेगात् ॥ ५६९ ॥

दशमूलोरसक्षीर जीवनीयविपाचितम् ।

तैल हृत्यर्दितं नस्य पानाभ्यङ्गानुवासनै ॥ ५७० ॥

इति दशमूलाद्य तैलम् ।

—०—

सदृणमहापञ्चमूलमाहृत्य । दिगुणोदके क्षीरे निष्कृष्य ।

क्षीरावशिष्टमवतार्य । विस्त्राव्यतैलप्रस्थेन सहोन्मिश्र्य । पुनरन्ना

वधिशृत्य । विपाचयेत्, ततस्तैलानुगतमवतार्य, शीतीभूतमग्नौ

यात्, तदेतत् क्षीरतैलमर्दिताना पानादिषु प्रयोज्यम् । इति क्षीर

तैलम् ।

—०—

वातव्याधिविधान मिहकुर्व्याद्विचक्षण ।

—०—

अथ गृध्रसीनिदानम् ।

म्निक्पायूरुर्कटीपृष्ठ जानुजङ्घापद क्रमात् ।

गृध्रसीर्माभरुक् तोदो गृञ्जातिभ्यन्दते मुहुः ।

वाताहार्तजनामाभ्यां विज्ञेया माद्विधा पुनः ॥ १७१ ॥

वातप्रायां भवे तोदो देहम्यातोय वक्रता ।

जानुजङ्घोरुमथ्योना स्फुरणं दाव्यतामृगम् ॥ १७२ ॥

वातश्लेष्मोज्जवायान्तु स्तैमित्यं बह्निमार्दवम् ।
तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ ४७३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

सर्वत्राकर्षणं दुर्ग्या द्रूक्षदीपनपाचनम् ।
तप्ततैलेष्टकास्वेद मर्दनं चोपनाहनम् ॥ ५७४ ॥
गृध्रस्थानन्तरं सम्यक् रिकेन वमनेन वा ।
ज्ञात्वा निरामदीप्ताग्निं वस्तिभिः समुपाचरेत् ॥ ५७५ ॥
नादौ वस्ति विधिं कुर्याद् व्यावदूर्ध्वं न गृह्यति ।
स्नेहो निरर्थकस्तस्य भस्मन्येव हुतं यथा ॥ ५७६ ॥
दशमूलीबलारास्त्रा गुडूचीविश्वमेघजम् ।
पिवेदैरण्डतैलेन गृध्रसीसृङ्गपङ्गु ॥ ५७७ ॥

इति रास्त्रादशमूलम् ।

पञ्चमूलीकपायन्तु सुखोष्णं त्रिवृतायुतम् ।
गृध्रसीं गुल्मशूलञ्च सद्यः पीतं नियच्छति ॥ ५७८ ॥
द्वित्रिस्थानेषु गृध्रस्यां शिरां प्रच्छन्नवेधिताम् ।
शुद्धाकल्केन लिप्ता च सद्यस्त्वजति वेदनाम् ॥ ५७९ ॥

—०—

यद्येवं तथापि ग्रन्थान्तरमवलोकनीयम् ।

—०—

तैलभेरण्डजं वापि गोमूत्रेण पिवेन्नरः ।
मासमेकं प्रयोगीज्यं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ ५८० ॥
तैल घृतं सार्द्रकमातुलुङ्गं रसं सचुक्रं सगुडं पिवेद्वा ।

कट्यूरुष्टत्रिकगुल्मशूलं गृध्रस्युदावर्त्तहरः प्रयोगः ॥ ५८१ ॥
 विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ।
 तत्पायसं कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम् ॥ ५८२ ॥
 पञ्चमूलिकपायन्तूरुबुतैलतिवृद्युतम् ।
 गृध्रसीगुल्मशूलञ्च पीतं सद्यो नियच्छति ॥ ५८३ ॥
 मेपशृङ्गोविडङ्गानि श्वदद्या चाश्वगन्धजम् ।
 एरण्डमूलबिल्वञ्च बृहतीकण्टकारिका ॥ ५८४ ॥
 कपायोरुबुकोपेतः पीतो बङ्गणवस्तिजम् ।
 शूलं गृध्रसोजं हन्ति चिरकालानुबन्धि वा ॥ ५८५ ॥
 गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां कृत्वा पीतासुचूर्णिता ।
 दीर्घकालोत्थितां हन्ति गृध्रसीं कफवातजाम् ॥ ५८६ ॥
 सिंहास्यशुण्ठीकृतमालकानां पिवेत्कपायं रुबुतैलमियम् ।
 यो गृध्रसीनष्टगतिश्च सुप्तः सवीतरुक् स्यात्तु किमत्र चित्रम् ॥ ५८७ ॥
 अग्राति यो नरः सिद्धामेरण्डफलमिश्रिताम् ।
 यवागूं गृध्रसीखिन्नः पूर्वामाप्नोत्यसौ गतिम् ॥ ५८८ ॥
 बृहद्विम्बतरोर्मूलं वारिणा परिपेयितम् ।
 पीतः तन्नाशयेत् क्षिप्रं मत्साध्यामपि गृध्रसीम् ॥ ५८९ ॥
 श्रेफालिकादलैः क्वाथो मृदग्निपरिपाचितः ।
 दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रेण संहरेत् ॥ ५९० ॥
 तगरस्य शिफां भाधं पिष्ट्वा तक्त्रेण यः पिवेत् ।
 रिङ्गणानिलरोगस्तु तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ५९१ ॥
 शुण्ठीगन्धर्वबीजाभ्यां पिष्ट्वाभ्यां पायसं पचेत् ।
 मक्षितं तत्कटीशूले गृध्रसीं हन्यमेगयः ॥ ५९२ ॥
 वापनादिक्रियायोगै र्यदि गान्तिं न याति सा ।
 तदा कर्त्तव्यमेतन्तु व्यधनादिचिकित्सकैः ॥ ५९३ ॥

गृध्रस्यार्त्तस्य जङ्घायां स्नेहस्वेदे कृते भिषक् ।
 पद्भ्यां समर्दितायाञ्च सूक्ष्ममार्गेण गृध्रसीम् ॥ ५८४ ॥
 अवतार्याङ्गुली सम्यक् कनिष्ठायां शनैः शनैः ।
 ज्ञात्वा समुद्रतां ग्रन्थिं कण्डरायां व्यधेच्छिराम् ॥ ५८५ ॥
 तां शस्त्रेण विदार्याशु सवालाङ्कुरसन्निभाम् ।
 समुद्धृत्याग्निनादध्वा लिम्बेद्यध्याह्नचन्दनैः ॥ ५८६ ॥
 बिध्याच्छिरामेव वस्त्रे रधस्ताच्चतुरङ्गुले ।
 यदि नोपशमं गच्छेद्दृष्ट्वा दकनिष्ठिकाम् ॥ ५८७ ॥

—०—

रास्त्रायास्तु पलञ्चैकं पञ्चकर्पाणि गुग्गुलोः ।
 सर्पिषावटिकां कृत्वा खादेद्वा गृध्रसीहराम् ॥ ५८८ ॥
 इति रास्त्रादिगुग्गुलुः ।

पथ्याविभीतामलकी फलानां शतं क्रमेण द्विगुणाभिष्टम्भम् ।
 प्रस्थेन युक्तञ्च पलं कपाणां द्रोणे जले सस्थितमेकरात्रम् ॥ ५८९ ॥
 अर्द्धावशेषं कथितं कपायं भाण्डे पचेत्तत्पुनरेव लोहे ।
 अमूनिपद्यादवतार्यदद्याद्रव्याणि संचूर्ण्यपलार्धकानि ॥ ६०० ॥
 विडङ्गदन्तीत्रिफलागुडूचीकृष्णात्रिहन्नागरकीपणानि ।
 यथेष्टचेष्टस्य नरस्य शीघ्रं हिमास्युपानानि च भोजनानि ॥ ६०१ ॥

निषेध्यमानो विनिहन्ति रोगां-

स्तद्व्याधितान् गृध्रमि खञ्जितांश्च ।

भ्रीहानमुग्रं जठराणि गुल्मं

पाण्डुत्व कण्डूमपि वातरक्तम् ॥ ६०२ ॥

पथ्याङ्गयो गुग्गुलुरेव नाम्ना

ख्यातं चितौ चाप्रमितप्रज्ञावः ।

वलेन नागेन्द्रवलं मनुष्यं
 जवेन कुर्याद्वयतुल्यवेगम् ॥ ६०३ ॥
 आयुः प्रकर्षं विदधाति सद्यः
 चक्षुर्वलं पुष्टिकरो विपन्नः ।
 क्षतस्य सन्धानकरो विशेषा-
 द्रोगेषु शस्तः सकलेषु चैव ॥ ६०४ ॥

इति पथ्याद्यो गुग्गुलुः ।

पचेद्दृतादृक् काये लग्नस्थादृकोद्भवे ।
 कर्षे चव्याग्निकृष्णानां पलिके विश्वहिं गुनी ॥ ६०५ ॥
 लवणांश्च पृथक् पिष्ट्वा पलाहं चास्त्रवेतसम् ।
 गृध्रसीवातरुगुल्म पक्षाघातनिवारणम् ॥ ६०६ ॥

इति लग्नाद्यं घृतम् ।

वाजिगन्धाबलाबिल्व दशमूलांश्च साधितम् ।
 गृध्रस्यां तैलमैरण्डं परं वस्ती प्रयोजयेत् ॥ ६०७ ॥

इत्यश्वगन्धाद्यं तैलम् ।

शिंशिपात्वक् तुलां क्षुप्तां जलद्रोणद्वये पचेत् ।
 अष्टभागावशिष्टञ्च पूतं लेहञ्च कारयेत् ॥ ६०८ ॥
 पायसं सहविष्याचं तत्कर्पेण च मिश्रितम् ।
 भक्षयेदेकदिशाहं गृध्रसीनाशनं परम् ॥ ६०९ ॥
 द्वे पले सैन्धवात्पञ्च गुण्ट्याग्रन्यिकचित्रकात् ।
 द्वे द्वे भस्मातकास्योनि विंशतिर्हं तथादृके ॥ ६१० ॥
 आरणात्तात्पचेत्तस्य तैलम्यैरण्डजस्य च ।
 गृध्रस्यूरुग्रहांद्यापि सर्ववातविकारनुत् ॥ ६११ ॥

इति सैन्धवाद्यं तैलम् ।

स्वदंष्ट्रा स्वरसं तैलं चोरादकसमन्वितम् ।

शृङ्गवेरपस्तान्पञ्च विशदगुडपलानि च ॥ ६१२ ॥

सिद्धमेकत्र तत्तैलं शृङ्गप्रस्थां पादकम्पने ।

कटीपृष्ठग्रहे शोथे शस्तं वातविकारिणाम् ॥ ६१३ ॥

वन्ध्यानां गर्भजननं रेतो दोषापकर्षणम् ।

वस्तौ पाने हितञ्चैव विशेषान् मूत्रक्षष्टिणाम् ॥ ६१४ ॥

इति वङ्गसेने वातव्याधिनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ २४ ॥

—०—

अथ वातरक्तनिदानमाह ।

लवणस्त्रिमधुचारस्त्रिग्विष्णाजोर्णभोजनैः ।

क्लिन्नशुष्कांनुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥

कुलित्यमापनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः ।

दध्धारणालसौवीर चुक्रतक्रसुरासवैः ॥ २ ॥

विरुद्धाध्यशनक्रोध दिवास्वप्नप्रजागरैः ।

प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् ।

स्थूलानां दुःखितानाञ्च कुप्यते वातशोणितम् ॥ ३ ॥

हस्त्यग्नौद्वैर्गच्छतद्यायतय विदाह्यन्नं सविदाह्यशनस्य ।

कृत्स्नं रक्तं विदहत्यागु तच्च दुष्टं स्रस्तं पादयोश्चोयते तु ॥ ४ ॥

तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्रावल्यादुष्यते वातरक्तम् ॥ ५ ॥

स्वेदोऽत्यर्थं नवकार्श्यं स्पर्शाश्रित्वं कृतेति रुक् ।

सन्निधैयिष्यमालस्यं सदनं पिटिकोद्वमः ॥ ६ ॥

जानुजङ्घीरुक्थ्यंस हस्तपादाङ्गसन्निधु ।

निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरिव च ॥ ७ ॥
 कङ्कः सन्धिषु रुग्दाहो भूत्वा नश्यति चासक्तः ।
 वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक् पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥
 वाताधिकेऽधिकं तच्च शूलस्फुरणतोदनम् ।
 शोथस्य रुचकृष्णत्वं श्यावतावृद्धिदानयः ॥ ९ ॥
 धमन्यङ्गुलीसन्धीनां सङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् ।
 शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥ १० ॥
 रक्ते शोथोऽतिरुक् तोदस्ताम्रचिमिचिमायते ।
 स्निग्धरुचैः समं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥ ११ ॥
 पित्ते विदाहः समोदः स्वेदो मूर्च्छामदस्तृणा ।
 स्पर्शाक्षमत्वं रुग्णांगः शोफः पाको भृशोष्णता ॥ १२ ॥
 कफे स्त्रैमित्यगुरुता सुप्तिः स्निग्धत्व शीतता ।
 कङ्कर्मन्दा च रुग्दन्ते सर्वलिङ्गेषु सङ्करे ॥ १३ ॥
 उपद्रवैर्यच्च जुष्टं प्राणमांसचयादिभिः ।
 प्राक् स्थित्वा पाणिपादेषु कृत्स्नदेहं विसर्पति ॥ १४ ॥
 पादयोर्मूलमास्थाय कदाचित् सुप्तयोरपि ।
 आत्रोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥ १५ ॥
 आजानुस्फुटितं यच्च भिन्नं प्रसृतञ्च यत् ।
 वातरक्तमसाध्यं म्याद्याप्यं भवत्सरोत्थितम् ॥ १६ ॥
 अस्यप्रारोचकश्वास मांसकोयगिरोग्रहाः ।
 संमूर्च्छा मन्दरुक् दृष्ट्या ज्वरमोहप्रलेपकाः ॥ १७ ॥
 द्विक्तापागुल्फवीमर्ष पाकतोदभ्रमक्तमाः ।
 चंगुलीवक्रताम्फोट दाहमर्मप्रहार्युदाः ॥ १८ ॥

एतैरुपद्रवैर्युक्तो मोहेनैकेन वापि यत् ।
तमसाध्यमिति प्राहुर्वातरक्तं विचक्षणः ॥ १८ ॥
अकृतस्त्रोपद्रवं याप्य साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ।
एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्य द्विदोषजम् ॥
त्रिदोषजमसाध्यं स्यादस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ २० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् ।
आल्पाल्पं रक्षयेद्वायुं यथा दोषं यथा बलम् ॥ २१ ॥
उग्रांगदाहतोदेषु जलौकाभिविनिर्हरेत् ।
तुम्बीशृङ्गैश्चिमिचिमा कंडूरुग्वेदनान्वितम् ॥ २२ ॥
प्रच्छन्नेन शिराभिर्वा देशदेशान्तरं व्रजेत् ॥ २३ ॥
अग्रे स्नाने तु न स्नाव्यं रुचं वातोत्तरश्च यत् ।
गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं कम्पग्लानि शिरामयान् ॥ २४ ॥
ग्लानिमन्याश्च वातोत्थं कुर्याद्वायुरसृक् चयात् ।
खज्रादीन् वातरोगाय मृत्युं वात्यवशेषितम् ॥ २५ ॥
कुर्यात्तस्मात्प्रमाणेन स्निग्धाद्रक्तं विनिर्हरेत् ॥ २६ ॥
विरचयेच्च पित्तादीं स्नेहयुक्तैर्विरचनैः ।
रुचैर्वा मृदुभिः शस्त मसक्तद्वस्तिकर्म च ॥
नहि वस्तिमम किञ्चित् वातरक्तचिकित्सितम् ॥ २७ ॥
वाङ्मालेपनाभ्यङ्ग परिपेकोपनाह्नयैः ।
विरकाऽऽस्थापनस्नेह पानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ २८ ॥
टिवास्त्रं अमं तापं व्यायामं मैथुनं तथा ।
कटूणां गुर्वभिष्यदि लवणान् विवर्जयेत् ॥ २९ ॥

सुराण्यवगोधूमा नीवाराः शालिषटिकाः ।

भोजनार्थं रसार्थं तु विष्किताः प्रतुदाहिताः ॥ ३० ॥

आढक्ययशकामुद्रा मसूराश्चमकुष्टकाः ।

सूपार्थं बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते ॥ ३१ ॥

सुनिपण्यकनेत्रार्थं काकमाचीशतावरी ।

बास्तूकीपोदकीशाकं शाकं सौबर्चलं तथा ॥ ३२ ॥

दृढमांसरसैर्भृष्टं शाकसात्कयायदापयेत् ॥ ३३ ॥

सर्पिस्तैलवसामज्जा पानाभ्यञ्जनवस्तिभिः ।

सुखोष्णैरुपनाहैश्च घातोत्तरमुपाचरेत् ॥ ३४ ॥

हितं गोधूमचूर्णैर्वा कागचीरदृतमुतैः ।

लेपः पिष्टास्तिलास्तद्वद्गुष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ ३५ ॥

चीरपिष्टातसीलेपा दृढमानफलेन वा ॥ ३६ ॥

उभे शताह्वे मधुकं बला च प्रियालकश्चापि कश्चैरुक्च ।

दृढ विदारी च सितीपलाञ्च युष्मगायदेहं पवने सरक्ते ॥ ३७ ॥

रास्त्रागुडूचीमधुकं यले द्वे सजीरकं सार्यपकं पयश्च ।

दृढ सुसिद्धं मधुशेषयुक्तं रक्तानिलात्तं प्रणदेत् प्रदेहम् ॥ ३८ ॥

वासागुडूचीचतुर्गुलानामैरण्डतैलेन पिबेत्कषायम् ।

क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ ३९ ॥

त्रिविद्धिदारीक्षुरकः कायो वातास्त्रनाशनः ॥ ४० ॥

गुडूच्याः स्मरसं कल्कं चूर्णं वा कायमेव वा ।

प्रभूतकाबर्मासेवी मुच्यते वातशोणितात् ॥ ४१ ॥

अमृतानागरधान्यक कर्पटतीयेण पाचनं सिद्धम् ।

जयति सरक्तवातं सामं कुटान्यशेषेण ॥ ४२ ॥

वक्त्रादन्युद्भवः कायः पीतो गुग्गुलुमिश्रितः ।

ममीरणसमायुक्तं शोणितं संप्रणाशयेत् ॥ ४३ ॥

तिस्रोऽथवा पञ्चगुडेन पथ्या जग्ध्वा पिवेच्छिन्नरुहा कपायम् ।
तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णं माजानुभिन्नं च्युतमप्यवश्यम् ॥ ४४ ॥

गुग्गुल्वसृतवल्लीभिर्द्राक्षाजुङ्गरसेन वा ।

त्रिफलायारसैर्युक्ता गुटिकाकोलसन्मिता ॥ ४५ ॥

भक्षयेन्मधुनाऽऽलोद्य शृणु कुर्वन्ति यत् फलम् ।

पादस्फोटं महाधीरं स्फोटं सर्वाङ्गजञ्च यत् ॥

तत्सर्वं नाशयत्याशु ह्यसाध्यं वातशोणितम् ॥ ४६ ॥

इति गुग्गुलुघटि ।

माद्विषं नवनीतन्तु फलिनी परिमिश्रितम् ।

गोमूत्रमिश्रितं कृत्वा चोरेण सवणेन च ॥ ४७ ॥

तदेकत्र समालोद्य बज्जिना तापयेच्छनैः ।

गात्रमुद्धर्तयेत्तेन देहप्लुटनशान्तये ॥ ४८ ॥

घृतेन वातं सगुडाविवन्धं पित्तं सिताध्या मधुना कफञ्च ।

वातास्रमुग्रं रुवुतैर्लमित्राशुण्ड्यामवातं शमयेद् गुडूची ॥ ४९ ॥

सिंहास्य पञ्चमूलं छिन्नरुहैरण्डगोक्षुरकायः ।

एरण्डतैलरामठ सैन्धवचूर्णाग्नितः पोतः ॥ ५० ॥

शमयति वातरक्तं तथामवातं कटीशूलम् ।

मूत्रपुरीषविवन्धं व्रधविकारं सुदुर्वारम् ॥ ५१ ॥

गन्धर्यहस्तद्वपगोक्षुरकासृतानां

मूलं वलेक्षुरकयोश्च यचेत्तु धीमान् ।

वातासृगाश्च विनिहन्ति चिरप्ररूढ

माजानुगस्फुटितमूर्ध्निगतं तु धीमान् ॥ ५२ ॥

पिप्पलीवर्धमानं वा सेव्या पथ्या गुडेन वा ।

कीर्किलाचासृता काये पिवेत् कृष्णां यथा वक्ष्यम् ॥ ५३ ॥

मधुकाद्विगुणं तैलं तैलादाजं पयो भवेत् ।

यद्यथाग्निबलं पेयं वातरक्तरुजापहम् ॥ ५५ ॥

—०—

त्रिफलानिम्बमञ्जिष्ठा वचाकटुकरोहिणी ।

वत्सादनीद्वारुनिशा कषाय नवकार्षिकम् ॥ ५६ ॥

वातरक्तं तथा कुष्ठं पाप्मानं रक्तमण्डलम् ।

कुष्ठं कपालिकाकुष्ठं पानादेवापकर्षति ॥ ५७ ॥

पञ्चरक्तिकमापेण कार्योऽयं नवकार्षिकः ॥

इति नवकार्षिककाथः ।

कर्पादो तु पलं यावद्दद्याद्दशगुणं जलम् ।

ततस्तु गुडवं याव त्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ५८ ॥

विरेचनैर्घृतक्षीर पानैः सेकैः सबस्तिभिः ।

शीतैर्निर्वापयैद्यापि रक्तपित्तोत्तरं जयेत् ॥ ५९ ॥

रक्तोत्तरं क्षीरघृत मधुक्षीरवारिभिः ।

लेपनं शाल्मलीकल्क माविक्षीरेण संयुतम् ॥ ६० ॥

सेचनं वा प्रकर्तव्य माविक्षीरैः क्षणं क्षणम् ।

सहस्रगतधौतेन घृतेन रुधिरोचरे ॥ ६१ ॥

लेपनं शष्पक्षीतेन घृतसर्जरसेन वा ।

मरागं मरुजं दाहे रक्तं विस्तार्यलेपयेत् ॥ ६२ ॥

तिलाः प्रियालं मधुर्लं विषं मूलक्ष्व वेतसाम् ।

मृदुतः पयसापिष्टः प्रसेपो रागदाहनुत् ॥ ६३ ॥

पित्तोत्तरे तु काश्मर्य्य द्राघारग्वधचन्दनैः ।

मधुक्षीरकाकोनो युक्तैः काथं सुशीतलम् ॥

गर्करामधुमंयुक्तं वातरक्ते पिबेत्सरः ॥ ६४ ॥

पटोलत्रिफलामीरु गुडूचीकटुरोहिणी ।

काथः पित्ताधिके गस्तः गर्करा मधुमंयुतः ॥ ६५ ॥

वमनं मृदुनाऽत्ययं स्नेहसैकैर्विलङ्घनम् ।

कोष्ठाः सेकाद्यं यस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥ ६६ ॥

तैलमूत्रसुरायुक्तैः परिपेकः सदा हितः ।

गौरसर्पपकल्को न प्रदेहो वातरक्तहः ॥ ६७ ॥

शिशुवरुणस्य कल्को धान्याग्नेनानिलार्त्तिजिम्बे पात् ।

भवति नवेति च कल्को न विधेयः सिद्धियोगेऽस्मिन् ॥ ६८ ॥

कल्कः श्लेष्मोत्तरे लेप्यो वाजिगन्धातिलोद्भवः ।

लेपः सर्पपनिम्बार्कं हिंसाचारतिलैर्हितः ॥ ६९ ॥

मृहधूमबचाकुष्ठं शताद्वारजनीद्वयम् ।

प्रलेपः शूलनुदात रक्ते चायं कफोत्तरे ॥ ७० ॥

अमृतकटुकायष्टी शुण्ठीकल्कं समाक्षिकम् ।

गोमूत्रपीतं जयति सकफं वातगोणितम् ॥ ७१ ॥

धात्रीङ्गिरिद्रामुस्तानां कपायं वा समाक्षिकम् ।

संसर्गं सन्निपाते च क्रियामन्यविमिश्रिताम् ॥ ७२ ॥

—०—

बलामतिबलां मेदा मात्मगुप्तां शतावरीम् ।

काकोलीं क्षीरकाकोलीं रास्त्रां मृद्वीञ्च पेपयेत् ॥ ७३ ॥

घृतं चतुर्गुणं क्षीरं तैः सिद्धं वातरक्तनुत् ।

हृत्पाङ्कुरोगवीसर्पं कामला दाहनाशनम् ॥ ७४ ॥

इति बलाघृतम् ।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याथतुर्गुणे ।

क्षीरतुल्यं घृतं सिद्धं वातगोणितनाशनम् ॥ ७५ ॥

इति शतावरीघृतम् ।

गुडूक्षीकायकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं शृतम् ।

हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्टं जयति दुस्तरम् ॥ ७६ ॥

इति गुडूचीष्टतम् ।

अमृतायाः कपायेण कल्केन च महीषधम् ।

सृङ्गिना घृतं सिद्धं वातरक्तहरं परम् ॥ ७७ ॥

आमवातास्रवातादीन् क्षमिकुष्टव्रणानपि ।

अर्शांसिगुल्माश्च तथा नाशयेदाद्य योजितम् ॥ ७८ ॥

इत्यमृतादिष्टतम् ।

अमृतास्वरसविषकं सर्पिस्तत्कल्कसाधितं पीतम् ।

अपहरति वातरक्तं मुत्तारं चावगाढञ्च ॥ ७९ ॥

इति द्वितीयममृतादिष्टतम् ।

अमृतायाः पलशतं जलद्रोणेऽंशशेषितम् ।

घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कल्कानष्टौ पलानि च ॥ ८० ॥

चतुर्गुणेन पयसा वातासृकुष्टनाशनम् ।

कामलापाण्डुरोगघ्नं घ्नीहकासज्वरापहम् ॥ ८१ ॥

इति गुडूचीष्टतम् ।

अमृतामधुकं द्राक्षा विफलानागरं बला ।

वामारग्वधहृद्यौव देवदारुविकण्टकम् ॥ ८२ ॥

कटुकामवरीक्षणा काश्मर्यस्य फलानि च ।

रास्त्राक्षुरकगन्धर्षं हृददारुघनोत्पनीः ॥ ८३ ॥

कल्कैरेभि ममैः कृत्वा सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत् ।

धाक्षीरससमो देयो यारिविगुणमंयुतः ॥ ८४ ॥

सम्यक् सिद्ध्यन्तु विज्ञातं भोज्ये पाने च गम्यते ।

यद्बुदोपोत्थितं वातं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ ८५ ॥

उत्तारं चापि गन्धोरे विकजहोरुजानुजम् ।

क्रोष्टुशीर्षं महाशूले ग्रामंवाते सुंदारुणे ॥ ८६ ॥
 दाहरोगोऽपसृष्टस्य वेदनां चातिदुस्तराम् ।
 मूत्रकृच्छ्रसुदावर्त्तं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ ८७ ॥
 एतान् सर्वान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोत्थितान् ।
 सर्वकालोपयोगेन वर्णयुर्वलवर्द्धनम् ॥ ८८ ॥
 अग्निभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् ॥

इत्यमृताद्यं घृतम् ।

अमृतायाः शतं प्राप्य जलद्रोणे विपाचयेत् ।
 चतुर्भागावशिष्टन्तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८९ ॥
 क्षीरं चतुर्गुणं तत्र दापयेन्नतिमान् भिषक् ।
 कल्कं चात्र प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ९० ॥
 काकोलीक्षीरकाकोली जीवकर्पभकौ च यत् ।
 शतावरीवयस्था च मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ ९१ ॥
 अश्वगन्धः च मूलानि स्थिरा कटुकरोहिणी ।
 ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा मेदे श्वदंष्ट्राहृहतीद्वयम् ॥ ९२ ॥
 गुडूचीफलिनीराम्ना वासकं चापि संहरेत् ।
 तदेकत्र समैर्भागैः पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ९३ ॥
 पानाभ्यञ्जननस्येषु परिपेके च दापयेत् ।
 वातरक्तं सशोधाद्यं सदाहं क्रोष्टुशीर्षकम् ॥ ९४ ॥
 खञ्जोरुस्तम्भवातञ्च रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
 बहुविधं वातकृच्छ्रं गृध्रसीं वातकण्ठकम् ॥
 नाशयेद्योजितं सर्पिर्धन्वन्तरिवचो यथा ॥ ९५ ॥

इति महागुडूचीघृतम् ।

शारिवासर्जमञ्जिष्टा यष्टीसिक्थैः पयोन्वितैः ।

तैलं पक्वा प्रयोक्तव्यं पिण्डाख्य वातरक्तनुत् ॥ ८६ ॥

शारिवासर्जयव्याघ्र मधूच्छिष्टैः पयोन्वितैः ।

सिद्धमैरण्डतैल वा वातरक्तरुजापहम् ॥ ८७ ॥

अपूतमयितस्यास्य पिण्डतैलस्य योगतः ।

इति पिण्डतैलम् ।

तुनां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम् ।

घोरद्रोणन्तु ताभ्याञ्च पचेत्तैलाढक शनैः ॥ ८८ ॥

कल्कैर्मधुकमञ्जिष्टा जीवनीयगणस्तथा ।

कुष्ठैलागुरुमृदीका मासीव्याघ्रनखं नखी ।

हरेणुश्चावणीव्योष शताक्षान्मृद्भिः शारिवा ॥ ८९ ॥

त्वक् पत्रागुरुविक्रान्ता स्थिरातामलकी तथा ।

नर्तकैसरङ्गीवेरं पञ्चकोत्पलचन्दनम् ॥ ९० ॥

सिद्धं कर्पसमैर्भागैः पानाभ्यङ्गानुयासनैः ।

संख्य वातास्रजान् हन्ति सर्व धात्वन्तराश्रितान् ॥ ९०१ ॥

धन्यं पुसवने स्त्रीणां गर्भद वातपित्तनुत् ।

खेदकं डुरुजायास गिरःकम्पामयादितान् ॥ ९०२ ॥

हन्त्याद् व्रणक्षतान् दीपान् गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥

इति गुडूचीतैलम् ।

गुडूचीमधुकं ह्रस्व पञ्चमूलीपुनर्नया ।

राक्षामैरण्डमूलञ्च जीवनीयानि लाभतः ॥ ९०३ ॥

पलानां शतकैर्भागैर्वंलापञ्चगतं भवेत् ।

कोलाव्विषयवाग्नापान् कुरुत्यायादयोन्वितान् ॥ ९०४ ॥

काश्मर्याणाञ्च गुष्काणां षोडशद्रोणशारिणि ।

साधयेज्जर्जरं पूतं चतुर्द्रोणञ्च शेषयेत् ॥ ९०५ ॥

तैलद्वीणं पचेत्तेन दत्त्वा पञ्चगुणं पय ।
 पिष्ट्वा त्रिपलिकाश्चैव चन्दनोशीरकेशरम् ॥ १०६ ॥
 पत्रैलाऽगुरुकुष्ठानि तगरं मधुयष्टिका ।
 मञ्जिष्टार्धपलश्चैव तत्सिद्धं सर्वयौगिकम् ॥ १०७ ॥
 वातरक्ते चते चीणे भारात्ते चीणरेतसि ।
 विषयी क्षिप्तभग्नानां सर्वमेकाङ्गरोगिणाम् ॥ १०८ ॥
 योनिदोषमपस्मारं सुन्मादं विषमज्वरम् ।
 हन्यात् पुसवनश्चैव तैलाग्रं ममृताद्वयम् ॥ १०९ ॥

इत्यमृताद्वय तेलम् ।

शुद्धां पचेन्नागबला तुलान्तु जलार्मणे पादकपायसिद्धम् ।
 पाच्यन्तु तैलाढकमत्र देयमजापयस्तैलविमिश्रितन्तु ॥ ११० ॥
 नतं सयष्टीमधुक सकल्कं दत्त्वा पृथक् पञ्चपलं विपक्वम् ।
 तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णं वस्ति प्रदानेन हि सप्तरात्रात् ॥ १११ ॥
 दशाहयोगेन करोत्यरोगं पीतञ्च तैलोत्तममश्विजुष्ट ॥

इति नागबलातैलम् ।

बलाकपायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतुर्गुणम् ।
 दशपाकं भवेत्तेन वातासृग्वातपित्तनुत् ॥ ११२ ॥
 धन्यं पुसवनश्चैव नराणां शुक्रवर्धनम् ।
 रेतो योनिविकारघ्नं मेतद्वातविकारनुत् ॥ ११३ ॥

इति दशपाकबलातैलम् ।

बलाकपायकल्काभ्यां तैलं क्षीरं समं पचेत् ।
 सङ्गस्रशतपाके वा वातासृग्वातपित्तनुत् ॥ ११४ ॥
 रसायनमिदं श्रेष्ठमिन्द्रियाणां प्रबोधनम् ।

जीवनं वृहणं स्वयं शुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ १२५ ॥

बलातैलसहस्रेण तथा पाकसहस्रकम् ॥ ११६ ॥

—०—

पुनर्नवामूलशतं विशुद्धं रुबुकमूलञ्च तत्रा प्रगृह्य ।

दत्त्वा पलं षोडशकञ्च शृण्णः संकुट्य सम्यग्विपचेद्वटेऽपाम् ॥ ११७ ॥

पलानि चाष्टावथ कौशिकस्य तेनाष्टशेषेण पुनः पचेत्तु ।

एरण्डतैलं कुडवं च दद्यात्तथा त्रिवृच्चूर्णपलानि पञ्च ॥ ११८ ॥

निकुम्भचूर्णस्य पलं गुडूच्याः पलद्वयं चार्धपलं पलं वा ।

पलत्रयं त्रूपणचित्रकानि सिन्धूयभक्षातविडङ्गकानि ॥ ११९ ॥

कर्पं तथा माक्षिकधातुचूर्णं पुनर्नवायाः पलमेव चूर्णम् ।

चूर्णानि दत्त्वा ह्यवतार्यशीते खादेन्नरः कर्पसमप्रमाणम् ॥ १२० ॥

वातास्रजं हृदिगदञ्च सर्वं जयत्यवश्यं त्वय गृध्रसीञ्च ।

जङ्घोरुष्टष्टत्रिक वस्तिनञ्च तयामवातं प्रबलं जयेत्तु ॥ १२१ ॥

इति पुनर्नवागुग्गुलुः ।

चत्वारो मापकाहीने मध्यमेऽष्टौ च मापिकाः ।

अष्टौ द्वादशकाः प्रोक्ताः वैद्यैर्विज्ञायते त्रिधा ॥

संसरत्वाद गुरुत्वाद्वा गुग्गुलोः करणक्रमः ॥ १२२ ॥

—०—

प्रत्यमेकं गुडूच्याश्च चर्धप्रस्यन्तु गुग्गुलोः ।

प्रत्येकं त्रिफलायास्तु तत्प्रमाणं विनिर्दिशेत् ॥ १२३ ॥

सर्वमेकत्र संकुट्य काथयेन्नत्वणेऽग्निमि ।

पादशेषं परित्याज्यं कषायं ग्राहयेद्विपक्वम् ॥ १२४ ॥

पुनः पचेत्कषायन्तु यादक्षान्द्रत्वमागतम् ।

दन्तीं व्योपविडङ्गानि गुडूचीत्रिफलात्वचः ॥ १२५ ॥

ततश्चार्द्धपलं चूर्णं गृह्णीयाद्वा प्रति प्रति ।

कर्पन्तु त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १२६ ॥

तस्मिन् सुसिद्धं विज्ञायकघोष्णे प्रक्षिपेद्बुधः ।

ततश्चाग्निबलं ज्ञात्वा खादेत्कर्पप्रमाणतः ॥ १२७ ॥

वातरक्तं तथा कुटं गुदजनान्यग्निसादनम् ।

कुटव्रणं प्रमेहान्च सामवातं भगन्दरम् ॥ १२८ ॥

आव्यवातञ्च शयथुं सर्वानेतान् व्यपोहति ।

अग्निभ्यां निर्मितः पूर्वं भस्मताख्यो हि गुग्गुलुः ॥ १२९ ॥

इत्यमृतागुग्गुलुः ।

द्विप्रस्थभस्मतायाश्च प्रस्थमेकन्तु गुग्गुलीः ।

प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ १३० ॥

सर्वमेकत्र संकुट्य साधयेन्नस्वणेऽभसि ।

पुनः पचेत्पादशेषं यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ १३१ ॥

दन्ती चित्रकमूलानां कणः विश्वाफलत्रिकम् ।

गुडूचीत्वग्बिडङ्गानां प्रत्येकार्द्धपलोन्मितम् ॥ १३२ ॥

त्रिवृता कर्पमेकन्तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।

सिद्धे चोष्णे क्षिपेत्तत्र त्वमृतागुग्गुलुः परम् ॥ १३३ ॥

अतो यथा बलं खादे दम्भपित्तो विशेषतः ।

वातरक्तं तथा कुटं गुदजनान्यग्निसादनम् ॥ १३४ ॥

कुटव्रणं प्रमेहान्च सामवातं भगन्दरम् ।

नाद्याव्यवातं शयथुं हन्यात्सर्वामयांस्तथा ॥ १३५ ॥

अग्निभ्यां निर्मितो ह्येष ह्यमृताद्यस्तु गुग्गुलुः ॥

इत्यमृताद्यो गुग्गुलुः ।

चित्रकं त्रिफलानिम्ब पटोसमधुयष्टिका ।

वराङ्गं केसरश्चैव जीवन्ती चाम्बवेतसम् ॥ १३६ ॥

रामसेनकदाव्यला सुस्तापपटकं तथा ।

तुल्यकं कटुकाभांगीं चव्यं प्रद्वकदीप्यकौ ॥ १३७ ॥

पिप्पलीमरिचं दन्ती शठीशुण्ठी सपुष्करम् ।

विडङ्गं पिप्पलीमूलं जीरकं देवदारु च ॥ १३८ ॥

पद्मकं कटुकं रास्त्रा दुरालम्भान्मृता त्रिवृत् ।

लतातुरुष्कतालीशौ वृक्षाम्बलवणवयम् ॥ १३९ ॥

धान्यकं वाजमोदा च कारवीधातुमाक्षिका ।

जातीफलं तुगाक्षीरो वाजिगन्धा च दाडिमम् ॥ १४० ॥

कङ्कोलकमुशीरश्च द्विचारामलकं तथा ।

एतानि पलमात्राणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १४१ ॥

गिरिजस्य पलान्यष्टौ द्विपलञ्चैव गुग्गुलुः ।

प्रस्थमेकं सितायाश्च घृतस्य गुडवं तथा ॥ १४२ ॥

गिरिजेन समं लोहं प्रस्थार्धं माक्षिकस्य च ।

सर्वमेकत्र संमिश्र्य स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ १४३ ॥

वातव्याधिमुखस्तम्भ मर्दितं गृध्रसीं तथा ।

विद्रधीं श्लोपदं गुल्मं पाण्डुरोगं हस्तीकमम् ॥ १४४ ॥

क्षतक्षयमपस्मार मन्त्रहृदिश्च नाशयेत् ।

अरोचकं पाण्डूशूल मुदरश्च भगन्दरम् ॥ १४५ ॥

हृद्रोगशूलनुक्लम्य विषमज्वरनाशनम् ।

वर्षोपयोगात् कुरुते वलीपन्नितनाशनम् ॥ १४६ ॥

उरः क्षतश्च यान्त्रोगान् मुखरोगांश्च दारुणान् ।

नाशयेद् गुटिकाद्यापि चूर्णं पाणितलोम्नितम् ॥ १४७ ॥

विविधाभ्रानि भुङ्क्ते ययेष्टश्च यथा सुखम् ।

रमेमामैव यूपैश्च क्षीरैर्द्राक्षां शुभां पिबेत् ॥ १४८ ॥

भेषां संजनयेद्दोषिं क्षीविहर्षगतवयम् ।

बन्ध्यानां पुत्रदात्रेष्टा शुक्रवृद्धिकरा परा ॥ १४८ ॥

गुटिकाभास्करी नाम्ना प्रोक्ता देवेन शम्भुना ।

प्रमेह रक्तपित्तश्च सामवातमहाक्षयम् ॥ १५० ॥

नाडित्रिणाश्व घोरांश्च ह्यपचींश्च प्रणाशयेत् ।

श्वययुश्च शिरोरोगं कामलाश्च नियच्छति ॥ १५१ ॥

धात्विन्द्रियबलचीणो हतभो हनपोरुपः ।

भवेदनेन युक्तो ना बलधातुपराक्रमैः ॥

दृष्टिपुष्ट्या स युक्तश्च निर्विकारो निरामयः ॥ १५२ ॥

अग्निदीप्तियुतो हृष्टो दीर्घायुः पुरुषो भवेत् ।

ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ॥

कफरोगाश्च ये केचिद् द्वन्द्वज सन्निपातजम् ॥ १५३ ॥

ते सर्वे प्रशमं यान्ति भास्करेण तमो यथा ।

रोगविद्राविणी प्रोक्ता गुटी सूर्यप्रभा मता ॥ १५४ ॥

इति सूर्यप्रभागुटिका ।

वरमहिषलोचनोदर सन्निभवर्णस्य शुम्भुलोः प्रस्थम् ।

प्रक्षिप्यतोयराशौ त्रिफलाञ्च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ १५५ ॥

द्वात्रिंशच्छिन्नरुद्धा पलानि देयानि यत्नेन ॥ १५६ ॥

विपचेदग्रमत्तो दर्व्यासंघट्टयन्मुहुर्यावत् ।

अर्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात् ॥ १५७ ॥

अवतार्य वस्त्रपूत पुनरपि सम्पादयेदयः पात्रे ।

सान्द्रीभूतं तस्मिन्नवतार्य द्विमोपलप्रस्थे ॥ १५८ ॥

त्रिफलाचूर्णार्धपलं त्रिकटोक्षूर्णं षडक्षपरिमाणम् ।

कृमिरिपुचूर्णार्धपलं कर्षं कर्षं त्रिहृदन्वयोः ॥ १५९ ॥

पलमेकान्तु गुडूच्या दत्त्वा मधुर्णयत्नेन ।

उपयुज्य चानुपानं यूप क्षीरं सुगन्धिसलिलञ्च ॥ १६० ॥

इष्टाहारविहारोभैषज्यं सुपयुज्य सर्वकालमिदम् ।
 तनुरोधिवातशोणितं मेकजमथ सर्वजं जयति ॥ १६१ ॥
 सुतपरिशुष्कं स्फुटितं जीर्णं वा जानुजं वापि ।
 ब्रणकासकुष्ठगुल्मं श्लेष्मथूदरपाण्डुमेहांश्च ॥ १६२ ॥
 मन्दाम्निश्च विबद्धं प्रमेहपिठिकांश्च नाशयत्याशु ।
 सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धन्ति सर्वगदान् ॥ १६३ ॥
 अभिभूयजरादीपं करोति कैशोरकं रूपम् ॥ १६४ ॥
 प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं जलं तत्र पडाढकम् ।
 गुडवटु गुग्गुलीः पाकः सन्धेयस्तु विशेषतः ॥ १६५ ॥

इति कैशोरगुग्गुलुः ।

अष्टौ पलान्यत्र पलंकपायाः प्रस्थं पृथक् शुद्धफलत्रयस्य ।
 दत्त्वा पचेद्द्रोणयुगे जलस्य पादावशेषं पुनरेव वैद्यः ॥ १६६ ॥

दन्तोत्तिष्ठद्वूपणं वानरीणां
 विडङ्गमुस्ता त्रिफलामृतानाम् ।
 कट्वु यगन्धाग्निकमाणकानां
 सपारदानाञ्च सगन्धकानाम् ॥ १६७ ॥
 पलार्धमानप्रमितं संचूर्णं
 दद्याद्विपक्वे पुनरेव तत्र ।
 फलानि संचूर्ण्य च कातकानि
 सहस्रमंष्याकलितानि पथात् ॥ १६८ ॥
 खादेत्तु माषद्वितयं प्रवृत्तं
 तोयादिकं देयमतोऽनुपाने ।
 आमामिन्नं सन्धिगतं मशून्
 शिरेभगतं जानुकटिस्थितञ्च ॥ १६९ ॥

शोषाऽतिवृत्तिं विषमज्वरात्तिं

प्रमेहकुष्ठानि भगन्दरञ्च ।

हृन्मन्त्रराणामिति सिंहनादो

मेदो मरुच्छ्वासागदान् पुरोऽयम् ॥ १७० ॥

दाहोऽत्यन्तं प्रवृत्तिर्वा विकारोऽप्योऽपि चेद्दृष्टुः ।

तत्कृतस्तु तदा तत्र तत्र भक्तं हितं पिवेत् ॥

उद्धर्तनं शीतजलं स्नानञ्च शयनं तथा ।

विरेकातिशयं कुर्यात् सिंहनादे यतः सुधीः ॥ १७१ ॥

ज्ञात्वाऽबलं शरीरे तु दद्यादेवं न वा भिषक् ।

तोयारणालगोक्षीरैः क्रमात्पक्वं विशुद्धान्ति ॥

फलं कतकसंघ्नन्तु कृत्वा चूर्णं ततः क्षिपेत् ॥ १७२ ॥

इति सिंहनादगुण्युक्तः ।

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम् ।

सौगन्धिकपलञ्चैवं कौशिकस्य पलत्रयम् ॥ १७३ ॥

कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः ।

पाचयेत्पाकविद्वैद्यः पात्रे लोहमये दृढे ॥ १७४ ॥

हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्मिणं खञ्जपेगुताम् ।

श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ १७५ ॥

कुष्ठानि वातरक्तञ्च गुल्मशूलोदराणि च ।

धामवातं जयेदेतं दपि वैद्यविवर्जितम् ॥ १७६ ॥

मासादभ्योपयोगेन जरापलितनाशनम् ।

सर्पिस्तैलरसोपेतं मन्त्रीयाच्छानियटिकम् ॥ १७७ ॥

सिंहनाद इतिस्थातो रोगवारणदर्पहा ।

वज्रेर्दीप्तिकरं पुंसां भाषितं दंडपद्मिना ॥ १७८ ॥

अत्राहुस्त्रिफलाकायं पृथक् त्रिपलसम्मितम् ।
किञ्चिन्निर्याति चैरड स्त्रे हपाकेऽधिके खरे ॥ १७८ ॥

इति सिंहनादगुग्गुलु ।

धान्यतुम्बुरुशुण्डीनां मांसकूष्मांडमापयोः ।
गुडूचागुग्गुलोद्यैव प्रस्यं षोडशभिः पलैः ॥ १८० ॥

—०—

अथ चन्द्रप्रभागुटीकामाह ।

कमिरिपुदहनघ्नीपत्रिफलामरदारुचव्यभूनिस्त्राः ।
मागधिमूलं सुस्तं शठोषचाधतुमाचीकम् ॥ १८१ ॥
लवणं चारनिशायुगकुन्तुभुरगजकणातिविपा ॥ १८२ ॥
कर्पाशिकान्यैव समानि कुर्यात्पलाटकं चाश्लजतु प्रदद्यात् ।
निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धोमान् पलद्वयं लोहरजस्तथैव ॥ १८३ ॥
सिताचतुष्कं पलमत्र वा स्यात् निकुम्भकुम्भं त्रिसुगन्धियुक्तम् ।
पृथक् पल चूर्णमथावपेक्ष चन्द्रप्रमेय गुटिका विधेया ॥ १८४ ॥
स्वरातिसारग्रहणोविकाराद्यार्शासिनिर्नाशयते षडेव ।
भगन्दरान् कामलपाडुरोगान् नष्टस्य वङ्गेः कुरुते प्रदीप्तिम् ॥ १८५ ॥
इस्थामयान् पित्तकफानिलोत्थान् नाडीगते मर्मगते प्रणे च ।
क्षतक्षये गृध्रमियक्ष्णणोय मेहे गजास्थे प्रदरे प्रयोज्या ॥ १८६ ॥
शूकक्षये चाश्लरिभूत्रकृष्णे शूकप्रवाहेऽप्युदरामये च ।
शम्भुं समभ्यर्थ्य क्षतप्रसाद प्राप्ता गुटीचन्द्रममः प्रसादात् ॥ १८७ ॥
न पानभोज्ये परिहारमस्ति न शीतवातातपमैयुने वा ।
भक्तस्य पूर्वे क्षतं प्रयोज्या तक्रानुपानाप्यय मम्तुना वा ॥ १८८ ॥
धजारसो लाद्रसजो रसो वा पयोऽयवा शीतजलानुपानम् ॥ १८९ ॥

शक्रदोषान्निहन्त्यष्टौ प्रमेहांश्चैव विंशतिः ।

वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १८० ॥

इति चन्द्रप्रभागुटिका ।

कालेरवितापाव्ये चायः पात्रे शिलाजतु प्रवरम् ।

त्रिफलारससंयुक्तं त्र्यहं विशदं पुनः शुष्कम् ॥ १८१ ॥

दशमूलस्य गुडूच्या रसे वलायास्तथा पटोलस्य ।

मधुकरसे गोमूत्रे चरहं त्र्यहं भावयेत् क्रमशः ॥ १८२ ॥

एकाहं क्षीरेण तु ततः परं भावयेत्पुनः शुष्कम् ।

सप्ताहं भाव्यं स्यात् काथेनैषां यथा लाभम् ॥ १८३ ॥

काकोत्थौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरीद्राक्षा ।

वृद्धियुगर्पभवीरा मुण्डितकानीवांशुमत्यश्च ॥ १८४ ॥

रास्त्रापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकलिङ्ग चव्याश्च ।

कटुकांश्चङ्गीपाठा चैतानि पलांशुकानि कार्याणि ॥ १८५ ॥

अष्टगुणसाधितानां रसेन पादांशकेन भाव्यं स्यात् ।

गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलानि दशषड् वा ॥ १८६ ॥

द्विपलञ्च विश्वधात्रीमागधिका कर्कटाख्य मरिचानाम् ।

तुगाक्षीरीत्वग्नागदलैलानां मन्त्रयित्वा तु ॥ १८७ ॥

गिरिजस्य षोडशपलैर्गुटिकाः कार्यास्ततोऽक्षसमाः ॥ १८८ ॥

ताः शुष्कानवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्यात्तव्याः ।

तासामेकाकाले पेया भक्ष्यापि वा सततम् ॥ १८९ ॥

क्षीररसदाडिमरसाः सुरासवञ्च मधुकशिशिरतोयानि ।

आलोक्ष्य गुणं तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥ २०० ॥

सुजीर्णलघुन्नपयोजांगलनिर्यूहयूपभोजो स्यात् ।

सप्ताहं यावदतः परं भवेत्सर्वसामान्यः ॥ २०१ ॥

भुक्तापि भक्षतेऽयं यदृच्छया नोदहेद्द्वयं किञ्चित् ।

निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारैः कामिभिश्चैव ॥ २०२ ॥
 संवत्सर प्रयुक्ता हन्त्येषा वातशोणितप्रबलम् ।
 बहुवार्षिकेमपि गाढं यक्ष्माणं चाक्षवातञ्च ॥ २०३ ॥
 त्वरयोनिशुकदोषघ्नीहार्यः पांडुरोगेहृद्गुह्यो ।
 ब्रधवमिगुल्मपीनसहिकाकासारुचिश्चासान् ॥ २०४ ॥
 जठरं श्वित्रं कुष्ठं जाड्यं क्लैब्यं भेदक्षयं शोथम् ।
 उन्मादमपस्मारौ वदनाक्षिशिरोगदान् सर्वान् ॥ २०५ ॥
 आनाहमतीसारं साष्टगदरकामलां प्रमेहांथ ।
 यक्षदुर्बुदानि विद्रधिं भगन्दरं रक्तपित्तञ्च ॥ २०६ ॥
 अतिकार्ष्यमतिस्थौल्यं स्वेदमपि श्लेहगेदञ्च निहन्ति ।
 दद्याविषमपि चौग्रं गराणि चैषां बहुप्रकाराणि ॥ २०७ ॥
 मन्त्रौषधप्रयोगानरिप्रयुक्तांस्तान्त्रिकास्तथा बाधाः ।
 पाप्मा लक्ष्मीं चैवं शमयति गुटिका शिवा नाम्नी ॥ २०८ ॥
 बल्याहृष्याधन्याकान्तिवर्णं यशः श्रीकरो चैवम् ।
 दद्यान्नुपसहशतां जयति वादं सुखस्या सर्वम् ॥ २०९ ॥
 प्रकृतिभेदासुस्मृति बुद्धिवल्लयुक्तस्तथा हेदृशरीरः ।
 पुष्ट्योजो वर्णेन्द्रिय तेजोबलसपदोपेतः ॥ २१० ॥
 ॥ बलिपलितरीगरहितो जीवेहै शरदां शतं सपुण्यः ।
 संवत्सरप्रयोगात् द्वाभ्यां तु शतानि चत्वारि ॥ २११ ॥
 सर्वामयलिङ्घितं सुनिभिर्भक्त्या रसायनं रहस्यम् ।
 शिवगुटिकेति रसायनमुक्तं गिरिशेन गणपतये ॥ २१२ ॥
 ॥ . . . इति शिवसिद्धान्तात् वृद्धच्छिद्रगुटिका ।
 तेषु यत्कृष्णमनघृष्टिग्धं निःशर्करञ्च यत् ।
 गोमूत्रगन्धि यच्चापि तत्प्रधानं गिलाजतु ॥ २१३ ॥
 शिलाजतुसमं द्रव्यं क्वाप्यमटगुणे जले ।

पादावशिष्टं तत्पूतं तस्मिन् कोणो विनिक्षिपेत् ॥ २१४ ॥
 सम गिरिजमष्टगुणिते निःक्वाथ्यतन्मानौषधं तोये ।
 तन्निर्यूहेऽष्टांशे भूयोऽप्यो प्रक्षिपेद्गिरिजम् ॥ २१५ ॥
 तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्भ्रूसो भूयः ।
 स्वैः स्वैरेव क्वाथैर्भाव्यं वारान् भवेत्सप्त ॥ २१६ ॥

इति शिलाजतुशुद्धिप्रकारः ।

शतावरीनागवला हृद्ददारकमुच्चटा ।
 पुनर्नवामृताक्षणा वाजिगन्धात्रिकण्टकम् ॥ २१७ ॥
 धृग्वग् दशपलान्येषां सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
 तदर्धशर्करायुक्तं चूर्णं संमर्दयेद्बुधः ॥ २१८ ॥
 स्थापयेत् सुष्टुभे भाण्डे मध्वर्द्धादकसंयुतम् ।
 घृतप्रस्थेन चालोद्य त्रिसुगन्धिपलेन च ॥ २१९ ॥
 खादेद्यधेष्टचेष्टान्नो यथा बल्लिबलं नरः ।
 वातरक्तं क्षयं कुष्टं कार्श्यं पित्तास्रसम्भवम् ॥ २२० ॥
 वातपित्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तद्विधान् ।
 हत्वा करोति पुरुषं बलीपलितवर्जितम् ॥ २२१ ॥
 योगसारामृतो नाम्ना लक्ष्मीकीर्त्तिविवर्धनः ।

इति योगसारामृतः ।

व्यायामं मैथुनं कोपमुष्णांबुलवणं रसम् ।
 दिवास्वप्नमभिस्यन्दि गुरुधान्यं विवर्जयेत् ॥ २२२ ॥

इति वङ्गसेने वातरक्तनिदानचिकित्साधिकारः ।

समाप्तः ॥ २५ ॥

वर्जयेदाद्यवाते तु यतस्तै तस्य कोपनम् ॥ ११ ॥

तस्मादत्र सदा कार्यं स्वेदलङ्घनरूचणम् ।

आममेदः कफाधिक्यान् भारुतं नयतां शमम् ॥ १२ ॥

यत्स्यात्कफप्रशमनं न च भारुतं कोपनम् ।

तत्सर्वं सर्वदा कार्यं मूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १३ ॥

सर्वो रूचक्रमः कार्यो स्तत्रादौ कफनाशनः ।

पद्याद्वातविनाशाय कृत्स्ना कार्या यथा क्रिया ॥ १४ ॥

भोज्याः पुराणाः श्यामा क कोद्रवोद्दालशालयः ।

जाङ्गलैरष्टतैर्भासैः शाकैश्च लवणैर्हितैः ॥ १५ ॥

वायसीबास्तुकारिष्ट सुनिप्रमृककूलकैः ।

शाकैरलवणैर्युतं जीर्णशाल्योदनं भिषक् ॥ १६ ॥

रूचणाद्वातकोपये त्रिद्रानाशार्तिसूचकः ।

स्त्रि हस्तेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः ॥ १७ ॥

प्रतारयेन्नतिस्त्रोतो नदीं शीतजलां शिवाम् ।

सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनः पुनः ॥ १८ ॥

तथा विशुक्ले च कफे शान्तिमुखग्रहो व्रजेत् ।

गरीरवनमग्निश्च कार्ये पारक्षिता क्रिया ॥ १९ ॥

चारमूत्रस्वेदांश्च रूचानुत्तादनानि च ।

ग्रादिह च मूत्राण्यैः करप्लफलसर्पपैः ॥ २० ॥

वायश्चगन्धाया मूलैरर्कस्य वा भिषक् ।

वा मूलै रथवा देवदारुणा ॥ २१ ॥

मृत्तिकासंयुतैर्भिषक् ।

कुथ्या दूरुस्तम्भे सवेदने ॥ २२ ॥

सर्वपैथापि बुद्धिमान् ।

शिथु वचावत्कनिष्पकैः ॥

अथोरुस्तम्भनिदानमाह ।

शीतोष्णद्रवसंशुष्क गुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ।
 लीर्णाजीर्णं तथाऽऽयास संक्षोभस्त्रप्रजागरैः ॥ १ ॥
 सश्लेष्ममेदः पवनः साममत्यर्थसञ्चितम् ।
 अभिभूयेतरं दोषमूरुचेत्यतिपद्यते ॥ २ ॥
 सक्थस्थीनि प्रपूर्व्यान्तः श्लेष्मणास्तिमितेन च ।
 तदास्तम्भातितेनोरु स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥
 परकीया विवगुरू स्यातामतिभृशव्यथौ ।
 ध्यानाद्भ्रमर्दस्तैमित्यं स्तन्द्राच्छर्दयरुचिज्वरैः ॥ ४ ॥
 सयुक्तौ पादसदनं कृच्छ्रोद्वरणसुप्तिभिः ।
 तमूरुस्तम्भमित्याहु राव्यवातमथाऽपरैः ॥ ५ ॥
 प्राग्रूपं तस्य निद्रार्तिं ध्यानस्तिमितता ज्वरः ।
 लोमहर्षोऽरुचिरुर्दिर्जह्वोर्वाः सदनं तथा ॥ ६ ॥
 वातशक्तिभिरज्ञाना तस्य स्यात् स्नेहनात् पुनः ।
 पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्वरणं तथा ॥ ७ ॥
 जह्वोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वच्चानाहवेदने ।
 पादं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं नवेति मः ॥ ८ ॥
 संस्थाने पीडने गत्वां चालने थाप्यनीश्वरः ।
 अन्यनेयौ हि संभग्ना वूरुपादौ च मन्यते ॥ ९ ॥
 यदा दाहार्तितोदात्तो वैपनः पुरुषो भवेत् ।
 कुरुस्तम्भस्तादा हन्यात् माधवेदन्यथा नवम् ॥ १० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्नेहाष्टम् सावशमन वृत्तिकर्मविरचनम् ।

- वर्जयेदाग्न्यवाते तु यतस्तै तस्य कोपनम् ॥ ११ ॥
 तस्मादत्र सदा कार्यं स्नेहलङ्घनरूचणम् ।
 धाममेदः कफाधिक्यान् मारुतं नयता शमम् ॥ १२ ॥
 यत्स्यात्कफप्रशमनं नच मारुतकोपनम् ।
 तत्सर्वं सर्वदा कार्यं मूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १३ ॥
 सर्वो रूचक्रमः कार्यो स्तवादी कफनाशनः ।
 पथाद्वातविनाशाय कृत्स्ना कार्या यथा क्रिया ॥ १४ ॥
 भोज्याः पुराणाः श्यामाक कोद्रवोद्दालशालयः ।
 जाड्यलैरघृतैर्मसैः शाकैश्च लवणैर्हितैः ॥ १५ ॥
 वायमीवास्तुकारिष्ट मुनिपद्मककूलकैः ।
 शाकैरलवणैर्युक्तं जीर्णशाल्योदनं भिषक् ॥ १६ ॥
 रूचणाद्वातकोपये त्रिद्वानाशातिसूचकः ।
 स्नेहस्नेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः ॥ १७ ॥
 प्रतारयेत्प्रतिस्रोतो नदी शीतजलां शिवाम् ।
 सरस्य विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनः पुनः ॥ १८ ॥
 तथा विशुद्धे च कफे शान्तिमुरुग्रहो व्रजेत् ।
 शरीरवनमग्निञ्च कार्येपारक्षिता क्रिया ॥ १९ ॥
 सत्चारमूत्रस्नेदांश्च रूचानुत्सादनानि च ।
 कुर्यादिह च मूत्राण्यैः करप्लफलमर्पयैः ॥ २० ॥
 मूलं वायश्चगन्ध्याया मूलैरर्कम्य वा भिषक् ।
 पिचुमन्दस्य वा मूलै रघवा देवदारुणा ॥ २१ ॥
 चीद्रसर्पपवल्लीक मृत्तिकामंयुतैर्भिषक् ।
 गाढमुत्सादनं कुर्याद् दूरुस्तम्भे भवेदने ॥ २२ ॥
 दन्ती द्रवन्तीस्वरस सर्पपैश्चापि बुद्धिमान् ।
 तर्कारीस्वरसं शिष्टं यथावत्सकनिम्बकैः ॥ २३ ॥

यत्र मूलफलैस्त्रोयै स्तृणमुस्तेन सेचनम् ॥ २३ ॥

भक्तातकान्ताशुण्ठी दारुपथ्यापुनर्नवा ।

पञ्चमूलीदयोन्मिथा ऊरुस्तम्भनिवर्हणा ॥ २४ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूल भक्तातकफलानि च ।

कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भादिमुच्यते ॥ २५ ॥

रास्त्राश्यामाकपथ्या मरिचमिसिगिवा वैल्लकश्चाश्वगन्धा ।

यासंछिन्नाजमोदासुमुखमतिविपा हृददारुहृत्पथ्या ।

शुण्ठीतिक्तायवानी सहचरचविकैरण्डदार्व्याजकर्णा ।

ऊरुस्तम्भामवातं जठररुजकटिपृथ्वीशूलान्त्वहृदिम् ॥

वातामश्वासशीथान् कफपवनरुजादण्डकांश्चाश्व हन्यात् ॥ २६ ॥

अन्यिकारुष्कक्षणां क्वाथं क्षौद्रान्वितं पिवेत् ।

चव्ययासाग्निदारुणां कल्कं वा मधुसंयुतम् ॥ २७ ॥

त्रिफलाचव्यकटुकं अन्यिकं मधुना लिहन् ।

ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिवेत् ॥ २८ ॥

लिङ्गाद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ।

सुशामुना पिवेद्वापि चूर्णं पङ्कधरणं नरः ॥ २९ ॥

पिप्पलीवर्धमानं वा माचिकेण गुहेन वा ।

ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव वा ॥ ३० ॥

शिलाजतुं गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम् ।

ऊरुस्तम्भे पिवेन्मूत्रैर्दंशमूलीरसेन वा ॥ ३१ ॥

त्रिफलापिप्पलीमुस्तं चव्यं कटुकरोहिणी ।

निङ्गाद्वा मधुनाचूर्णं मूरुस्तम्भादिनरः ॥ ३२ ॥

घृतं मीरैयरं दद्याद्दूरुस्तम्भे कफोत्तरे ।

दद्याच्छुण्ठीघृतं यापि वैग्नानरमयापि वा ॥

सैन्यवाद्यं हितं तैलममृताद्योऽपि गुग्गुलु ॥ ३३ ॥

कुष्ठं त्रीविष्टकोदीचं सरलं दारुकीसरम् ।

अजगन्धाश्चगन्धे च तैलं तैः सार्षपं पचेत् ॥ ३४ ॥

सचौद्रं मात्रया तद्व दूरस्तम्भादितः पिवेत् ॥

इति कुष्टाद्यं तैलम् ।

पलाभ्यां पिप्पलीमूल नागरादष्टकट्वरः ।

तैलप्रस्थः समो दधौ गृध्रस्थूरुपह्नापहः ॥ ३५ ॥

मस्रं हं दधिसंभूतं तक्रं कट्वर उच्यते ।

अष्टकट्वरतैलेऽत्र तैलं सार्षपमिष्यते ॥

पिप्पलीमूलशण्ठयोश्च प्रत्येकं द्विपलं कृतम् ॥ ३६ ॥

इत्यष्टकट्वरं तैलम् ।

इति वङ्गसेने कुरुस्तम्भनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ २६ ॥

अथामवातनिदानमाह ।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च ।

स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामश्चाथ कुर्वतः ॥ १ ॥

वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति ।

तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥ २ ॥

वातपित्तकफैर्भूयो दूषितो ह्यन्नजो रसः ।

स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिष्टिलः ॥ ३ ॥

जनयत्यग्निदौर्वल्यं हृदयस्य च गौरवम् ।

ध्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥ ४ ॥

अजीर्णाद्योरसोजातः संचितः संक्रमेण वै ।

आमर्शं सल्लभते शिरोगात्ररुजाकरः ॥ ५ ॥
 युगपत् कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ।
 स्तब्धश्च कुरुते गात्र मामवातः स उच्यते ॥ ६ ॥
 भङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा भालस्यं गौरवं ज्वरः ।
 अपाकः शूनताङ्गानां मामवातस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥
 सकष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् ।
 हस्तपादशिरोगुल्फ त्रिकजानूरुसन्धिषु ॥ ८ ॥
 करोति सरुजं शीथं यत्र दीपः प्रपद्यते ।
 मदोपो रुजतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव हृदिकैः ॥ ९ ॥
 जनयेत् सोग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् ।
 उत्साहहानिर्वैरस्यं दाहश्च बहुमूत्रताम् ॥ १० ॥
 कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्रा विपर्ययम् ।
 दृष्ट्वादिभ्रममूर्च्छांश्च हृद्गुहं विड्ढिवन्धनम् ॥ ११ ॥
 जाड्यान्वक्लृजमानाहं कटांशान्यानुपद्रवान् ॥ १२ ॥
 पित्ताक्षदाहरागश्च सशूलं पवनानुगम् ।
 स्तिमितं गुरुकण्डूकं कफजुष्टं तमादिशेत् ॥ १३ ॥
 एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ।
 सर्वदेहचरः शीथः सकृच्छः सान्निपातिकः ॥ १४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

सङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ।
 विरेचनं स्वेदनञ्च वक्ष्येयमाममारुते ॥ १५ ॥
 रुचः स्वेदो विधातव्यो धातुकापुटकैस्तथा ।

उपनाहाय कर्त्तव्या स्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ॥ १६ ॥

आमवाताभिभूताय पोडिताय पिपासया ।

पञ्चकोलेन संसिद्धं पानीयं हितमुच्यते ॥ १७ ॥

शष्कमूलकयूपस्तु यूपं वा पाञ्चभौलिकम् ।

रसकं काञ्चिकं वापि शण्डिचूर्णावचूर्णितम् ॥ १८ ॥

सौबीरं खिन्नवार्त्ताकं तथा तिक्तफलानि च ॥ १९ ॥

वास्तूकशाकं सारिष्टं शाकं पौनर्नवं हितम् ।

पटोलं गोक्षुरक्षैव वरुणं कारवेक्षकम् ॥ २० ॥

यवान्नं कोरद्रूपान्नं पुराणं शालिषट्ठिकम् ।

लावकानां तथा मांसं हितं तक्रेण संस्कृतम् ॥ २१ ॥

हितं च यूपं कौलुत्थं कालापचणकस्य च ।

रुच्यं दद्याद्यथा सात्त्व्यं मामवातं हितं च यत् ॥ २२ ॥

शतपुष्पावचाविश्वं श्वदंष्ट्रावरुणत्वचः ।

पुनर्नवा संदेवाश्च शठीमुण्डितिकाः समाः ॥ २३ ॥

प्रसारणी च तर्कारी फलञ्च मदनस्य च ।

शुक्लकाञ्चिकपिष्टाय सुखोष्णालेपने हिताः ॥ २४ ॥

अहिंस्त्राकेमुकामूलं शिशुवल्मीकमृत्तिका ।

भूवपिष्टैश्च कर्त्तव्यं मुपनाहं प्रलेपनम् ॥ २५ ॥

चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गातिविषामृताः ।

देवदारुवचासुस्ता नागरातिविषाभयाः ॥

पिवेदुष्णाम्बुना नित्यं मामवातस्य भेषजम् ॥ २६ ॥

शठीशुण्ठभया चोग्रा देवाङ्गातिविषामृता ।

कषायमामवातस्य पाचनं रुचभोजनम् ॥ २७ ॥

रास्त्रां गुडूचीमैरण्डं देवदारुमहौषधम् ।

पिवेत् सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ २८ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूल चव्यचित्रकनागरै ।

कथितं वारितत्पेय माम्बातनिवर्हणम् ॥ २८ ॥

शटीविश्वौषधी कल्क वर्षाभूक्ताथसयुतम् ।

सप्तरात्र पिवेज्जन्तु रामबातविनाशनम् ॥ २९ ॥

रास्त्रासुतारग्वधदेवादारु त्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् ।

क्वाथ पिवेन्नागरचूर्णमिन्द्र जङ्घोरुपार्श्वत्रिकण्टशूले ॥ ३० ॥

आमबाते कणायुक्तं दशमूलीजल पिवेत् ।

खादेद्वाप्यभया विश्व गुडूर्वी नागरेण वा ॥ ३१ ॥

चित्रकेन्द्रयवापाठा कटुकातिविषाभया ।

आमाशयोत्पवातघ्न चूर्णं येयं सुखाश्विना ॥ ३२ ॥

पुनर्नवासुताशुण्ठी यताह्वाहृददारुकम् ।

शटीमुण्डतिकाचूर्णं भारणालेन पाययेत् ॥

आमबातं निहन्त्याशु गृध्रसीमुद्धतामपि ॥ ३३ ॥

इति पुनर्नवादि चूर्णम् ।

कर्प नागरचूर्णस्य काष्ठिकेन पिवेत् सदा ।

आमबातप्रथमन कफवातहरं परम् ॥ ३४ ॥

पञ्चमूलकचूर्णन्तु पिवेदुष्णिगं वारिणा ।

मन्दाग्निगूलगुल्मश्च कफारोचकनाशनम् ॥ ३५ ॥

आमबातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ।

एक एव निहन्त्याशु छोरण्डस्त्रेहकेसरी ॥ ३६ ॥

एरण्डतैलयुक्ता हरतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत् ।

आमनिनार्तिद्युक्ती गृध्रसी वृद्धारदितो नियतम् ॥ ३७ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि भृष्टानि कटुतैलतः ।

आमघ्नानि नरं कुर्यात् सूपभक्ताहतानि च ॥ ३८ ॥

अथ कटिग्रहलक्षणमाह ।

वायुः कट्याश्रितः शुद्धः सामो वा जनयेदुजम् ।

कटिग्रहः स एवोक्तः पट्टुः सक्थिद्वयाश्रितः ॥ ४० ॥

—०—

तस्य चिकित्सांचाह ।

शुण्ठीगोक्षुरकः कायः प्रातः प्रातर्निषेवितः ।

सामे वाते कटीशूले पाचनो रुक्प्रणाशनः ॥ ४१ ॥

यवक्षारसमायुक्तो मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ ४२ ॥

दशमूलीकपायेण पिवेद्वा नागराभसा ।

कुचिवस्ति कटीशूले तैलमैरण्डसम्भवम् ॥ ४३ ॥

मंहोपधगुडूच्योस्तु क्वाथं पिप्पलीसयुतम् ।

पिवेदामे सरुक्कोष्ठे कटीशूलेधिगेपतः ॥ ४४ ॥

विशोध्यै रण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ।

तत्पायसं कटीशूले गृध्रन्यां परमोपधम् ॥ ४५ ॥

शुकतरुवल्कलसहितं गोमूत्रं स्थापितं तु सप्ताहम् ।

द्विगुत्रचाशतपुष्पासैन्धवयुक्तेन तेनाथ ॥ ४६ ॥

तत्पुटकेन च हन्यात् कटीरुजं दारुणं पुंसाम् ।

आममेदो वृद्धिभवान् विकाराद्यानिलोद्भवान् ॥ ४७ ॥

अमृतानागरगोक्षुर मुण्डतिकावरुणकैः क्षत चूर्णम् ।

मस्रवारणालपीत सामानिलनाशन स्यात्तम् ॥ ४८ ॥

इत्यमृताद्यं चूर्णम् ।

रास्त्रैरण्डगतावरीमहचरादु.म्यर्गवासानृता

, देवाक्षातिविषाभयाघनशुण्ठीशुण्ठीकपायः क्षतः ।

पीतः सौरुवुतैल एष विहितः सामे सशूलेऽनिले
कथूरुत्रिकपार्श्वपृष्ठजठरे कोष्ठे च वातार्त्तिजित् ॥ ४८ ॥

इति क्षपुराक्षादिः ।

रास्त्रावातारिमूलश्च वासकः सदुरालभः ।

शठीदारुवलासुस्तं नागरातिविषाभया ॥ ५० ॥

श्वदंष्ट्राव्याधिघातय मिसिधान्यं पुनर्नवा ।

अश्वगन्धामृताक्षण्या हृददारुशतावरो ॥ ५१ ॥

वचासहचरा चैव चविकावृहतीद्वयम् ।

समभागान्वितैरेतै रास्त्राविगुणभागिकैः ॥ ५२ ॥

कपायं पाययेत् सिद्ध मष्टभागावशेषितम् ।

शुण्ठीचूर्णसमायुक्तं माभाद्येन युतं तथा ॥ ५३ ॥

अलवुपादिसंयुक्तं मूजमोदादिना तथा ।

यथादोषं यथा व्याधिः प्रक्षेपं कारयेद्वियक् ॥ ५४ ॥

सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जगतेषु च ।

कुल्लके वामने चैव पक्षाघाते तथार्दिते ॥ ५५ ॥

जानुजङ्घास्त्रिपीडासु गृध्रण्याश्च हनुमहे ।

प्रशस्तवातरक्ते स्या दुरुस्तम्भे तथाऽर्शसि ॥ ५६ ॥

विश्राचीगुल्महृद्भोग विषूचीकोटुशीर्षके ।

अम्लहृद्दी शीपदे च योनिशुकामये तथा ॥ ५७ ॥

पुंसां भेदगते रोगे स्त्रीणां वन्ध्यामयेपि च ।

योयितां गर्भदं मुग्यं नास्यस्य परमं क्वचित् ॥ ५८ ॥

सर्वेषां पाचनानान्तु श्रेष्ठमेतद्वा प्राचनम् ।

महारास्त्रादिको नाम्ना प्रजापतिविनिर्मितः ॥ ५९ ॥

इति महारास्त्रादिः ।

रास्त्राविश्वविडङ्गानि रुक्कत्रिफला तथा ।

दशमूल पृथक् श्यामा काथो वातामयापहः ॥ ६० ॥

अर्द्धावभेदके चाख्ये अर्दिते वातखञ्जके ।

नेत्ररोगे शिरःशूले ज्वरापस्मारयोस्तथा ॥

मनोभ्रंशे च विविधे कथितञ्च सुखप्रदम् ॥ ६१ ॥

इति रास्त्रादशमूलकायः ।

अलम्बुधागोक्षुरकत्रिफलानागरामृता ।

यथोत्तरं भागवृद्ध्या श्यामांचूर्णञ्च तत्समम् ॥ ६२ ॥

पिवेन्मस्तु सुरातक्र काञ्जिकोष्णोदकेन वा ।

आमवातं जयत्याशु रक्तपित्तं सशोणितम् ॥ ६३ ॥

त्रिकजानूरुसम्यस्थि ज्वरारोचकनाशनम् ।

अलंबुपादिकं चूर्णं रोगानीकविनाशनम् ॥ ६४ ॥

हरोतक्यध्वजाचीभिः प्रसिद्धा त्रिफला क्रमात् ।

प्रत्येकं तेन वा युञ्ज्यात् भागवृद्धिर्यथोत्तरम् ॥ ६५ ॥

इत्यलंबुपादयं चूर्णम् ।

आभारास्त्रागुडूची च शतावरी महीपधम् ।

शतपुष्पाश्वगन्धा च हपुषा वृद्धदारुकम् ॥ ६६ ॥

यवानो चाजमोदा च समभागानि कारयेत् ॥

सूक्ष्मचूर्णमिदं कृत्वा विडालपदकं पिवेत् ॥ ६७ ॥

कटीग्रहं गृध्रसीञ्च मन्यास्तम्भं हनुप्रहम् ।

ये च कायगता रोगा सर्वांस्तांश्च प्रणाशयेत् ॥ ६८ ॥

चूर्णमाभादिनामेदं सर्ववातविकारनुत् ॥

इत्याभादिचूर्णम् ।

अलम्बुधागोक्षुरकं गुडूचीवृद्धदारुकम् ।

पिप्पलीत्रिवृतामुस्ता वरुणं च पुनर्व्ववम् ॥ ६९ ॥

त्रिफलानागरक्षैव सूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ।

मस्त्वारणालतक्रेण पयो मांसरमेन वा ।

आमवातं जयत्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् ॥ ७० ॥

इत्यलम्बुपाद्यं चूर्णम् ।

माणिमन्यस्य भागी द्वौ यवान्यास्तावदेव तु ।

भागास्तयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥ ७१ ॥

दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ।

मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ ७२ ॥

पीतं जयत्यामवातं गुल्महृदस्तिजान् गदान् ।

मोहानं हन्ति शूलादी नानाहं गुदजानि च ॥ ७३ ॥

विबन्धं जाठरान् रोगान् तथा वै हस्तपादजान् ।

वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ ७४ ॥

इति वैश्वानरं चूर्णम् ।

पुष्ट्यर्थं पयसासाध्यं दध्नाविण्मूत्रसग्रहे ।

दोषनार्थं मतिमता मस्तुना वा प्रकीर्तितम् ॥ ७५ ॥

सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरकचतुर्गुणम् ।

सिद्धमग्निकरं त्रेष्ट मामवातहरं परम् ॥ ७६ ॥

इति शुण्ठीघृतम् ।

नागरकायकल्काभ्यां घृतप्रस्थे विपाचयेत् ।

चतुर्गुणेन तेनाय केवलेन जलेन वा ॥ ७७ ॥

वातश्लेष्मप्रगमनं मग्निसन्दीपनं परम् ।

नागरं घृतमित्युक्तं कटीशूनामनाशनम् ॥ ७८ ॥

इति द्वितीयशुण्ठीघृतम् ।

क्षिगुत्रिकटुकं चध्यं मानिमन्यं तथैव च ।

कलकान् कृत्वा पृथक् सर्वान् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७८ ॥

आरनालादकं दत्वा तत्सर्पिर्जाठरापहम् ।

शूलं विबन्धमानाह मामवातं कटिग्रहम् ॥

नाशयेद् ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ८० ॥

इति काञ्जिकाद्यं घृतम् ।

शृङ्गवेरं यवचावं पिप्पलीमूल पिप्पली ।

सचव्यं चित्रकं हिंगु माणिस्यं तथैव च ॥ ८१ ॥

कल्कं कृत्वा तु मतिमान् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

आरनालादकं दत्वा तत्सर्पिर्जाठरापहम् ॥ ८२ ॥

शूलं विबन्धमानाह मामवातं कटिग्रहम् ।

नाशयेद् ग्रहणीरोगं मग्निसन्दीपनं परम् ॥ ८३ ॥

इति शृङ्गवेराद्यं घृतम् ।

पिवेहिन्दुघृतं वापि धान्वन्तरमथापि वा ।

महाशृङ्गीघृतं चैव सामवाते पुनः पुनः ॥ ८४ ॥

यत्किञ्चित् खनं सर्पिर् दीपनं पाचनञ्च यत् ।

तत्सर्वमामवातेषु योज्यं वा भस्तुना घृतम् ॥ ८५ ॥

अजमोदमरिचपिप्पलीविडङ्ग सुरदारुचित्रकशताह्वा ।

सैन्धवपिप्पलीमूलं भागा नवकस्य पलिकाः स्युः ॥ ८६ ॥

शृङ्गीदशपलिका स्यात् पलानि तावन्ति वृद्धदारुस्य ।

अभयापलानि पञ्च तच्चूर्णं कारयेच्छूलम् ॥ ८७ ॥

समगुडबटकानदत्तं चूर्णं वा कोष्ठावारिणा पिबतः ।

नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुदारुणाः शीघ्रम् ॥ ८८ ॥

विषूचिकाप्रतितूनी तूनीहृद्रोगाः गृध्रसी चोग्रा ।

कटिबन्धिगुदस्फुटनं चैवास्थिजङ्घयोस्तोत्रम् ॥ ८९ ॥

श्लययुस्तथाङ्गसन्धिषु ये चान्ये ज्ञामवातसंभूताः ।

सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविष्वस्तम् ॥ ८० ॥

क्षुब्धो धनमारोग्यं स्थिरतरुणं बलीयलितनाशनम् ।

कुरुते सतताभ्यासाद् गुणानन्यास्तथा सुबद्धम् ॥ ८१ ॥

इत्यजमोदादिषट्कम् ।

चित्तकं पिप्पलीमूलं यवानोकारवी तथा ।

विडङ्गमजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥ ८२ ॥

चव्यैलासैन्धवं कुष्ठं रास्नागोक्षुरधान्यकम् ।

त्रिफलामुस्तकं व्योषं त्वगुशीर यवाग्रजम् ॥ ८३ ॥

तालीशपत्रं पत्रञ्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।

यावन्ध्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रञ्च गुग्गुलुः ॥ ८४ ॥

समर्थसर्पिपागाढं स्निग्धं भाण्डे निधापयेत् ।

ततो भावां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ ८५ ॥

योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।

शामवाताब्धवातादीन् कृमिदुष्टव्रणानि च ॥ ८६ ॥

प्रीहगुल्मोदरानाह दुर्नामानि विनाशयेत् ।

अग्निञ्च कुरुते दीप्तिं तेजोहृदिवल तथा ॥

वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जागतानपि ॥ ८७ ॥

इति योगराजगुग्गुलुः ।

मागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिः ।

घीराटकसमायुक्तं खण्डस्थार्धशतं पलम् ॥ ८८ ॥

व्योषत्रिजातकद्रव्यात् प्रत्येकञ्च पलं पलम् ।

निदध्याचूर्णितं तत्र खादेदग्निबलं प्रति ॥ ८९ ॥

शामवातप्रशमनं बलपुष्टिपिबर्धनम् ।

वक्ष्यमायुष्यमोजस्यं बलीयलितनाशनम् ॥ ९० ॥

इति शण्डीखण्डः ।

पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडव तथा ।
 हिंगुनिकटुर्कं चारौ द्वौ पञ्चलवणानि च ॥ १०१ ॥
 शतपुण्या तथा कुष्टं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
 अजमोदायवानी च धान्यकञ्चापि बुद्धिमान् ॥ १०२ ॥
 प्रत्येकञ्च पलञ्चैषा स्रक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
 घृतं भाण्डे दृढे चैव स्थापयेद्दिनपौडश ॥ १०३ ॥
 प्रक्षिपेत्तैलमानीय प्रस्थार्धं काञ्चिकस्य च ।
 खादित्कर्पप्रमाणन्तु तोयं मद्यं पिवेदनु ॥ १०४ ॥
 आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैः काङ्गसस्थिते ।
 अपस्मारेऽनले मन्दे श्वासे कासे गरेषु च ॥ १०५ ॥
 सोन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तुषु शम्यते ।

इति रसोनपिण्डः ।

प्रसारिण्या रसे सिद्धं तैलमैरण्डजं पिवेत् ।
 सर्वदोषहरश्चैव कफरोगहरं परम् ॥ १०६ ॥

इति प्रसारिणीतैलम् ।

द्विपञ्चमूलीनिर्यासं फलदध्यान्तकाञ्चिकैः ।
 तैलं कट्यूरुपाश्वर्त्तिं कफवातामतद्गदान् ॥ १०७ ॥
 हन्ति वस्तिप्रदानेन करोत्यग्निबलमहत् ॥ १०८ ॥

इति द्विपञ्चमूलाद्य तैलम् ।

सैन्धवं त्रेयसीरास्त्रा शतपुण्यायवानिका ।
 स्वर्जिकामरिचं कुष्टं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ १०९ ॥
 वचानमोदाजरण्यं पौष्करं मधुकं कणा ।
 एतान्यर्धपलाशानि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥ ११० ॥
 प्रस्थमेरुगुडतैलस्य प्रस्थं स्याच्छतपुष्पजम् ।
 काञ्चिकं द्विगुणं दत्त्वा मस्तु च द्विगुणं तथा ॥ १११ ॥

एतत्कमृत्यसंभारं शनैर्महग्निना पचेत् ।

सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यं सामवातहृत् परम् ॥ ११२ ॥

पानाभ्यञ्जनवस्त्रौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम् ।

वातार्त्तिवह्मणे शस्तं कटीजानूस्सन्धिजे ॥ १२३ ॥

शूले हृत्पार्श्वजे चैव वातश्लेष्मनिपीडिते ।

वाह्यायामार्दितानाहं प्वऽन्वहृदिनिपीडिते ॥

अन्यांधानिलजान् रोगा ब्राशयत्याशुदेहजान् ॥ ११४ ॥

इति वृद्धसैन्यवादितैलम् ।

स्वल्पप्रसारणीतैलं तैलं वा सैन्यवादिकम् ।

दशमूलद्वयतैलेन वस्तिदानं प्रशस्यते ॥ ११५ ॥

तैलस्य द्विपलं दद्यात् काञ्चिकस्य चतुष्पलम् ।

दशमूलरसं मूत्रं पृथक् पञ्चपलानि च ॥ ११६ ॥

वचामदनयद्वाह्वा शताह्वाकुटसैन्यवैः ।

पिप्पल्यतिविषामुस्ता राज्ञाकटफलपौष्करैः ॥ ११७ ॥

अक्षाशिकैश्च तत्सर्वं मन्ययीत विचक्षणः ।

प्रस्थार्धं प्रथमं देयो वस्तिभिरविशङ्कितः ॥ ११८ ॥

द्वितीये च तृतीये च वर्जयेत्प्रसृतहयम् ।

सर्ववातविकारैर्गु मोहे चाहृषणामये ॥ ११९ ॥

कुक्षौ हृत्पार्श्वपृष्ठेषु जानुजङ्घाकटोभङ्गे ।

विबन्धानाह रोगेषु शर्कराश्मरीपीडिते ॥ १२० ॥

भग्नास्थिपृष्ठभात्रेषु पिशितेषु क्षतेषु च ।

एतन्निरुहव्याघ्री निरायासो महागुणः ॥ १२१ ॥

इति निरुहः ।

दधिमाख्यं गुडक्षीरं पीतकीमापपिष्टकम् ।

वर्जयेदामवातार्त्तां मांसमानूपजञ्च यत् ॥ १२२ ॥

अभिस्यन्दिकराये च ये चान्ये गुरपिच्छलाः ।

वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमपीडादितैर्नरैः ॥ १२३ ॥

शोकालेपकसंकोच स्तम्भश्वयथुकम्पनम् ।

हनुग्रहार्दितं खञ्जं पांगुल्यं सुप्तवातता ॥ १२४ ॥

मन्थिच्युतिः पर्वभेदो भेटो मज्जास्थिजा गदाः ।

एते स्थानस्य गाम्भीर्यात् मिथ्येयु र्यत्रतो नवाः ।

तस्माज्जयेन्नवान्येव सुभिषक् निरुपद्रवान् ॥ १२५ ॥

इति वङ्गसेने आमवातनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ २७ ॥

—०—

अथ शूलनिदानमाह ।

दोषैः पृथक् समस्तामहन्तैः शूलोऽष्टधा भवेत् ।

सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

ध्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।

कलायमुद्गाढकिकोरदूपादत्यर्यरक्षाध्यगनाभिघातात् ॥ २ ॥

कपायतिक्तातिविस्तृङ्गान्त्र विरुद्धयक्षूरकगुल्फशाकात् ।

विट्शकमृत्वानिन्वयेगरीधाच्छोकीपयामादतिभाष्यद्राभ्यात् ॥ ३ ॥

वायुः प्रहृष्टो जनयेद्दि शूलं हृत्पाग्नेष्टट्टयिकवस्तिट्टे ।

जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च गीर्ते च कीर्णे समुपैति गाढम् ॥ ४ ॥

सुदुर्मृद्वथोपगमप्रकोर्षा विह्यातमस्तम्भनगोदभेदैः ।

संभेदनाभ्यस्त्रनमर्दनाद्यैः सिग्धात्रभोज्यैश्च गर्भं प्रयाति ॥ ५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

वमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्त्तयः ।

चारचूर्णानि गुटिका शस्यते शूलशान्तये ॥ ६ ॥

विज्ञायवातशूलन्तु मृ हस्वेदैरुपाचरेत् ।

पायसैः कृशरापिण्डैः सिग्धैर्वा पिशितोत्कटैः ॥ ७ ॥

आशुकारो हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ।

तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ ८ ॥

विल्धै रण्डतिलैः कृत्वा गुटिकामश्नपेपिताम् ।

वातशूलोपशान्त्यर्थं प्रमृज्यादुष्ण्या तथा ॥ ९ ॥

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि ।

गुटिकाशमयत्याशु शूलस्यैव सुदुस्तरम् ॥ १० ॥

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनः काञ्चिकान्वितः ।

जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलः पार्श्वशूलहा ॥ ११ ॥

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं मुं हेन युक्तस्तु कुलित्ययूपः ।

ममैन्धवो व्योपयुतः सलावः सङ्घिगुसौर्चलदाङ्गिमसाब्धः ॥ १२ ॥

यलापुनर्नवैरण्डं वृहतीद्वयगीक्षुरम् ।

सङ्घिगुल्लवणीपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ १३ ॥

इति बलादिचूर्णम् ।

तुम्बु रूखभयाङ्गिं पौष्करं लवणत्रयम् ।

पिवेद्यपांशुना वात शूलगुल्मापतन्धकी ॥ १४ ॥

इति तुंबुरादिचूर्णम् ।

हिंग्वम्बकणामलकं यवानो क्षीराभयासैधतुल्यभागम् ।

चूर्णं पिवेद्धारुणिमण्डमित्रं शूले प्रहृष्टेऽनिलजे शिवाय ॥ १५ ॥

विश्वमैरण्डजं मूलं काययित्वा जलं पिवेत् ।

मणिराजतताम्राणि भाजनानि च सर्वशः ।

परिपूर्णानि तोयेन शूलस्योपरिनिक्षिपेत् ॥ २६ ॥

विरेचनं पित्तहरं च शस्तं रसश्च शस्तः शशलावकानाम् ।

सतर्पणं लाजमधूपयत्र योगाः सुशीतामधुसंप्रयुक्ताः ॥ २७ ॥

शतावरीसयद्याह्वा वाय्यालकुशगोक्षुरैः ।

शृतशीतं पिवेत् तोयं सचौद्रगुडशर्करम् ।

पितामृगदाहशूलघ्नं सद्योदाहज्वरापहम् ॥ २८ ॥

धात्रारम विदार्या वा वायन्ती गोस्तनाम्बु वा ।

पिवेत् सशर्करं सद्यः पित्तशूल निपूदनम् ॥ २९ ॥

विफलारग्वधकाथं सचौद्रं शर्करान्वितम् ।

पाययेद्रक्तपित्तार्तं दाहशूलनिवारणम् ॥ ३० ॥

छर्द्यां ज्वरे पित्तभवे च शूले धोरे विदाहे वृषितेऽतिमात्रम् ।

यवस्य पेयां मधुना विमियां पिवेत् सुशीतां मनुजः दृष्टार्थी ॥ ३१ ॥

शतावरीरसं चौद्र युक्तं प्रातः पिवेन्नरः ।

दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ ३२ ॥

बृहत्या गोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुवालिङ्काः ।

पीताः पित्तभवं शूलं सद्योहन्युः सुदारुणम् ॥ ३३ ॥

प्रलिङ्घ्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रोचूर्णं समाक्षिकम् ।

सगुडाहतमियावा शूलं हन्यादहरीतकी ॥ ३४ ॥

कुशादिमूलयद्याह्नैः क्षीरमर्द्धोदके शृतम् ।

रक्तपित्तोपशमनं वेदना क्षीपशान्त्यति ॥ ३५ ॥

कुशादिमूलारुणपञ्चवल्कल शतावरीकोमलकांबुमाधितम् ।

वृत्तपयम्यूल्यणपित्तशूलजित् मिता मधूकारुणकल्कमाधितम् ॥ ३६ ॥

कुशाद्य वृत्तम् । इति पित्तशूलम् ।

अथ श्लेष्मशूलमाह ।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारै-
मांसैश्चुपिष्टकृगरातिलगण्कुलीभिः ।
अन्यैर्धलासजनकैरपि हेतुभिश्च
श्लेष्माप्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ ३७ ॥
हृत्तासकाससदनारुचिसंप्रसेकै-
रामाशयेस्तिमितकोटशिरोगुरुत्वैः ।
भुक्ते सदैव हि रुजं कुर्वतेऽतिमात्रम्
सूर्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च ॥ ३८ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

संस्त्रिद्यकोष्णसञ्चार सक्तुतक्रैस्तथापरैः ।
प्रवाप्य कफशूलार्तं मवश्यमुपवासयेत् ॥ ३९ ॥
शाल्यद्रव^१ जाङ्गलं मांसं सारिष्टं कटुक रसम् ।
मद्यानि जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत् ॥ ४० ॥
लवणत्रयसयुक्तं पञ्चकोलकरामठम् ।
सुखोष्णं नान्दुना पानं कफशूले प्रदापयेत् ॥ ४१ ॥
श्लेष्मशूलहरा पेया पञ्चकोलेन साधिता ॥ ४२ ॥

व्याघ्रो ससिंहीफनविल्वमूलं शिलोद्भवं गोक्षुरकञ्च तुल्यम् ।
एरडमूलं द्विगुणं च पक्त्वा पिवेद्यवचारयुतं कपायम् ॥ ४३ ॥
हृत्कुचिपाश्चानुगत निहन्त्या च्छूलं नराणां कफजं प्रहृदम् ।
इति श्लेष्मशूलम् ।

१ अरिष्टं भेषजवारि कायसाध्यमरिष्टम् ।

अथ द्वंद्वजं विदोपजं च शूलमाह ।

विदोपलक्षणेनै विद्याच्छूलं विदोपजम् ॥ ४४ ॥
 सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं विद्याङ्गिपक् सर्वभवञ्च शूलम् ।
 सुकष्टमेनं विषवज्जकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ४५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

शहचूर्णं सलवणं सहिगुब्धोपसंयुतम् ।
 उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति विदोपजम् ॥ ४६ ॥
 गोमूत्रसिद्धं मंडूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।
 विलिङ्गन्मधुसर्पिभ्यां शूलं हन्ति विदोपजम् ॥ ४७ ॥
 विदारोदाडिमरसः सव्योपलवणान्वितः ।
 चौद्रयुक्तो जयत्याशु विदोपप्रभवां रुजम् ॥ ४८ ॥
 एरण्डफलमूलानि वृद्धतीक्ष्णगोक्षुरम् ।
 पर्णिन्यः महदेवी च सिंहपुच्छीक्षुवाल्मिका ॥ ४९ ॥
 तुल्यैरेतैः शृतं तोयं यवचारयुतं पिवेत् ।
 घृयग्दोषभवं शूलं हन्यात्सर्वं भवं तथा ॥ ५० ॥
 इत्येरण्डादशकः काथः । इति विदोपशूलम् ।

—०—

अथामशूलमाह ।

अटोपहृत्तासवमीगुरुत्वं स्तैमित्यमानाह कफप्रसेकैः ।
 कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं भगमोद्वं शूलमुदाहरन्ति ॥ ५१ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी ।
 सेव्यमामहर सर्वं यद्यदग्निविवर्द्धनम् ॥ ५२ ॥
 चित्रकग्रन्थिकैरण्ड शुण्ठीधान्यजलैः शृतम् ।
 शूलानाह विबधेषु सहिगुविङ्गसैन्धवम् ॥ ५३ ॥
 एरंडविल्ववृहतीद्वयमातुलुङ्ग
 पापाणभित्तिकटमूलकृतः कषायः ।
 सक्षारहिङ्गुलवणोरुघुतैलमियः
 शोण्यसमेद्रहृदयस्तनुरुक्षुपेयः ॥ ५८ ॥
 इत्येरण्डसप्तकः कषायः ।

अथ शूलस्थानमाह ।

आतात्मकं वस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् ।
 त्राभिकुक्षौ कफसन्निहृष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥ ५८ ॥
 बक्षौ हृत्कण्ठपार्श्वेषु सशूलः कफवातिकः ।
 कुक्षौ हृन्नाभिमध्येषु सशूलः कफपैत्तिकः ॥
 दाहज्वरकरो घोरो विघ्नो यो वातपैत्तिकः ॥ ६० ॥
 एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ।
 सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युषद्रवः ॥ ६१ ॥
 निगृह्यमारुतं श्लेष्माकुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः ।
 साधानाटोपसरुद्धः सूचीभिरिव निस्तुदन् ॥ ६२ ॥
 उच्छसित्वेव वक्त्रेण नवान्नमभिनन्दति ।
 न च निर्द्रामुपैत्येष पार्श्वशूलः प्रकीर्तितः ॥ ६३ ॥
 प्रकुप्यति यदा कुक्षौ वज्रिमाक्रम्यमारुतः ।

तदास्य भोजनं भुक्तं वातस्तब्धं न पच्यते ॥ ६४ ॥
 उच्छ्वसन्नतिमात्रेण शूलेनाऽऽह्वयते मुहुः ।
 शयनेनासने चैव तिष्ठन्तो लभते सुखम् ॥
 कुचिशूल इति ख्यातो वातादामसमुद्भवात् ॥ ६५ ॥
 कफपित्तावरुदस्तु मारुतो रसमूर्च्छितः ।
 हृदिस्थं कुरुते शूल मुच्छासारोधनं परम् ॥ ६६ ॥
 हृच्छूल इति सख्यातो रसमारुतकोपतः ॥ ६७ ॥
 सरोधात् कुपितो वायुवस्त्रिं संभृत्यतिष्ठति ।
 वस्तिवद्वणनाडीषु ततः शूलोऽस्य जायते ॥
 विस्मृत्तवातसंरोधो वस्तिशूलः ससंज्ञितः ॥ ६८ ॥
 नाभ्यां बह्वण्णार्खेषु कुक्षौ मेढ्रानुबन्धकः ।
 मूत्रमाहृत्य गृह्णाति मूत्रशूलः समारुतात् ॥ ६९ ॥
 वायुः प्रकुपितो यस्य रुचाहारस्य देहिनः ।
 वातान् रुण्धि कोष्ठस्यः मन्दीकृत्य तु पावकम् ॥ ७० ॥
 शूलं संजनयन् शीघ्रं स्रोत आहृत्य मारुतः ।
 दक्षिणं यदि वा वामं कुचिमादायजीर्यते ॥ ७१ ॥
 सर्वत्र वर्धते क्षिप्रं भ्रमन्निःश्वामघोपवत् ।
 पिपासावर्धतेऽतोव भ्रमो मूर्च्छा च जायते ॥ ७२ ॥
 उच्चारितो मूत्रितय न शान्तिमधिगच्छति ।
 बिट्शूलमेतज्जानीया द्विपक्व परमदारुणम् ॥ ७३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

रमोनं मद्यसंमिश्रं पिवेत्प्रातः प्रकाहितः ।
 वातश्लेष्मकृतं शूलं निरुन्याद्वह्निदीपनम् ॥ ७४ ॥

क्षीरोदकं पिवेत्तत्र पिप्पल्या सगुडान्वितम् ।

कुक्षिशूलं जयत्वृग् ये च वातकफोद्भवाः ॥ ७५ ॥

पटोलत्रिफलारिष्टैः शृतं क्षौद्रयुतं पिवेत् ।

पित्तश्लेष्मज्वरहृदि दाहशूलोपशान्तये ॥ ७६ ॥

पित्तजे कफजे वापि या क्रिया कथिता पृथक् ।

एकीकृत्यप्रयुञ्जीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥ ७७ ॥

निदग्धिकावृहत्पौ च कुशकामेक्षुबालिका ।

श्वदंष्ट्रैरण्डमूलानि वारिणा सह पोचयेत् ॥

पिवेत्सर्कराक्षौद्रं शूले पित्तानिलात्मके ॥ ७८ ॥

इति हृन्मजं शूलम् ।

हिङ्गुसौवर्चलं पथ्या विडसैन्धवंतुम्बुरु ।

पौष्करं च पिवेच्चूर्णं दशमूलीयवाग्भसा ॥ ७९ ॥

पाश्वहृत्कटिपृष्ठानां शूले तन्द्रापतानके ।

श्लेष्मणोत्थे प्रसेके च गलरोगे च शस्यते ॥ ८० ॥



इति हिङ्गवादिचूर्णम् ।

तुम्बुरुण्यभयाहिङ्गु पौष्करं लवणत्रयम् ।

यवानो च यवचारं विडङ्गं नागरं वचा ॥ ८१ ॥

त्रिवृत्तिगुणितं चूर्णं रुतुतैलसमन्वितम् ।

उष्णांबुना च तत्पियं गुल्मे वातकफात्मके ॥ ८२ ॥

उदरेषु विवस्त्रे च वातविण्मूत्ररतसाम् ॥ ८४ ॥

इति वृहत्तुम्बुर्वादिचूर्णम् ।

तुम्बुरुण्यभयाहिङ्गु पौष्करं लवणत्रयम् ।

पिवेद्यवांबुनावातं गुल्मशूलापतन्त्रकी ॥ ८५ ॥

विश्वोरुवृकदशमूलयवाग्भसा च

द्विचारहिङ्गुलवणत्रयपुष्कराणाम् ।

चूर्णं पिवेद्दृढदृष्टकटिग्रहाम-

पक्वाशयार्तिभृशरुग्ज्वरगुल्मशूली ॥ ८६ ॥

इति विखादिचूर्णम् ।

चूर्णं समं रुचकहिङ्गुमहौषधानां

शण्ठावुना कफसमोरणसम्भवासु ।

हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्तिविषूचिकासु

पेयं तथा यवरसेन च विङ्गिवित्थे ॥ ८७ ॥

क्वायेन चूर्णपानञ्च तत्र क्वायप्रधानता ।

प्रवर्ततेन तेनायं चूर्णपेक्षाच्चतुर्गुणः ॥ ८८ ॥

हिङ्गुनः स्वल्पमानोक्ते समशब्दे सहाय्यता ॥ ८९ ॥

इति रुचक्तादिचूर्णम् ।

त्रिफलाक्वाथगोमूत्र चोद्वचोररसैः पृथक् ।

एरंडतैलहिङ्गुणै र्हितं शान्त्यै विरेचनम् ॥ ९० ॥

हिङ्गुतैलं सलवणं गोमूत्रेण विपाचितम् ।

नाभिस्थाने प्रदातव्यं यम्य गूलं सवेदनम् ॥ ९१ ॥

दारुहैमवतीकुट शताक्षा हिङ्गुमैत्र्यवैः ।

अस्त्रपिष्टैः सुखोष्णैश्च शूलार्त्तमुदरं दिहेत् ॥ ९२ ॥

इति दारुपट्कलेपः ।

पुनर्नवैरंडयवातमीभिः

कर्पामजैरस्थिभिरारनानैः ।

स्त्रिद्वैरमीभिर्भिषजा च कार्यः

स्वेदः समीरार्तिहरो नराणाम् ॥ ९३ ॥

इति पुनर्नवादिस्वेदः ।

तैन्नमैरंडजं वापि दगमूलम्य वारिणा ।

पीतं निहन्ति साटोपं हिङ्गुर्मावर्धनान्वितम् ॥ ९४ ॥

पंथां सशक्रयवपुष्करमूलयुक्तां
निष्काप्य हिंगुजटिलातिविपासुयुक्ताम् ।
पीत्वा सुखोष्णमथ वातकृतञ्च शूल-
मामोद्भवं कफकृतञ्च निहन्ति तूर्णम् ॥ ८५ ॥

मातुलुङ्गरसो वापि शिग्रुकाथस्तथाऽपरः ।
सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृदस्तिगूलनुत् ॥ ८६ ॥
मातुलुङ्गरसः सर्पिः सहिङ्गुलवणान्वितम् ।
सुखोष्णं पाययेदेत द्विद्विवन्धानुलोमनम् ॥ ८७ ॥
कुचि हृत्पार्श्वशूलेषु वेदना चोपशाम्यति ॥ ८८ ॥
पिप्पली पित्तलीमूल चव्यचित्रकजागरैः ।
यवागूर्दीपनीयास्या च्छूलघ्नी चोपसाधिता ॥ ८९ ॥
सहिङ्गुतुम्बुरुव्योष यवानीचित्रकाभयाः ।
सक्षारलवणाधूर्णं पित्त्रातः सुखांशुना ।
विण्मूत्रानिलशूलघ्नं याचनं वह्निदीपनम् ॥ १०० ॥
विल्वमूलमथैरंडं चित्रकं विश्वभेषजम् ।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यशूलनिवारणम् ॥ १०१ ॥
भूवान्धः पाचितां शुष्कां लोहचूर्णसमन्विताम् ।
सगुडामभंयामद्यात् सर्वशूलप्रशान्तये ॥ १०२ ॥
त्रिफलायास्तथा चूर्णं चूर्णं वा काललोहजम् ।
शर्कराचूर्णसंयुक्तं सर्वशूले निवारणम् ॥ १०३ ॥
कम्बुलाघतदेहस्य प्राणायामं प्रकुर्वतः ।
कटुतैलाक्तशक्नूनां धूपं शूलनिवारणम् ॥ १०४ ॥
हिङ्गुत्रिकटुकं कुटं यवक्षारोऽथ सैन्धवम् ।
मातुलुङ्गरसो पेतं घ्नीहशूलापहं रजः ॥ १०५ ॥

वाते निरूहाः सविरेचनाथ क्षौरप्रयोगामधुराथ ॥ ११ ॥

तिक्तः कषायः कटुकस्तथैव कफेन शूले खलु सन्निविष्टे ॥

हिगुसौवर्चलं पाठा द्वौ चारौ लवणत्रयम् ।

चूर्णोक्त्यविधातव्यं भिषजास्तशुने रसे ॥ १०६ ॥

हृच्छूले पार्श्वशूले च मन्थास्तम्भे सुदारुणे ।

प्रयोज्यं कुक्षिशूले च भिषजासिद्धिभिच्छ्रुता ॥ १०७ ॥

इति हिग्वाद्यो वटकः ।

एरंडमुलं वृहती श्वदंष्ट्रा पुनर्नवागोक्षुरकस्य मूलम् ।

शतावरीहंसपदो बला च महासहाक्षुद्रसहाविदारी ॥ १०८ ॥

बिल्वस्य मूलं सन्ट्यालचित्रं निदग्धिकाजीवककर्षभी च ।

कुशे कुशाख्या सह देवदेवे पचेत्कषायं जलपादशेषम् ॥ १०९ ॥

काथेन कल्केन पचेत्तु धीमान्रसेन तुल्यं फलपूरकस्य ॥ ११० ॥

उत्कृष्टदोषो यस्य स्याद्यस्य शूलो न शाम्यति ।

तत्र सर्पिरिटं दद्यात् प्रसह्यविनिवारणम् ॥ १११ ॥

सर्वस्थानगतं शूलं मेतद्वन्ति चतुर्विधम् ।

एरंडाद्यमिदं सर्पिः कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ ११२ ॥

इत्येरंडाद्य वृत्तम् ।

बीजपूरकमैरंडं रास्त्रागोक्षुरकं बला ।

ष्टयक्षपलान् भागान् यथप्रस्थसमायुतान् ॥ ११३ ॥

दारिद्र्येण साध्यं स्यात् यावत्पादावशेषितम् ।

वृत्तप्रस्थं पचेत्तेन कल्कं दत्वाक्षसंमितम् ॥ ११४ ॥

तुम्बुरुष्यभयाहिगु घ्योषं सौवर्चलं पिडम् ।

सैन्धवं यावशूकस्य स्वर्जिका साम्बमेतसम् ॥ ११५ ॥

मन्तुप्रस्थद्वयं दद्यान् सिंहं गृह्णन्नाभिषक् ।

पानमेतत् प्रगंसन्ति शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ११६ ॥

घातशूलं यत्कच्छूनं गुल्मघ्नीहायहं परम् ।

हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च अन्त्रशूलञ्च यद्ववेत् ॥ ११७ ॥
 वलवर्णकरं हृद्य मग्निसन्दीपनं परम् ।
 याज्ञवल्केन मुनिना भाषितं तत्त्वदर्शिना ॥ ११८ ॥
 इति बीजपूराद्यं दृतम् ।
 दृताश्चतुर्गुणो देयो मातुलुङ्गरसो यदि ।
 शुष्कमुलककोलान्त्र कंषायो दाडिमाद्रसः ॥ ११९ ॥
 विडङ्गलवणचारं पञ्चकोलयवानिभिः ।
 पाठामुलककल्कैश्च सिद्धं शूलं मृतं दृतम् ॥ १२० ॥
 हृत्पार्श्वशूलं वै श्वासं कामं हिक्कां तथैव च ।
 ब्रध्मगुल्मप्रमेहार्थी वातव्याधिं विनाशयेत् ॥ १२१ ॥
 इति शूलदृतम् ।

यस्य नैवं प्रशाम्येत तस्य वस्ति विधिर्मृतः ।
 नारायणेन तैलेन प्रसारण्या तथैव च ॥ १२२ ॥
 वेदना च दृष्यामुच्छ्वासाद्गौरवारुचीः ।
 कासश्वासा च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ १२३ ॥
 व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकानि च ।
 वेगरोधं शुचिः क्रोधं वर्जयेच्छुलवान्तरः ॥ १२४ ॥
 इति वङ्गसेने शूलनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ २८ ॥

अथ परिणामशूलनिदानमाह ।

स्वैर्निदानप्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तदा ।
 कफपित्ते समावृत्य शूलकारीभवेद्वली ॥ १ ॥

भुक्ते जीर्येति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ।
 तस्य लक्षणमप्येतत्समासेन विधीयते ॥ २ ॥
 आधानाटोपविण्मूत्र विबन्धारतिबेपनैः ।
 क्षिग्धोष्णैः प्रशमं याति वातिकं तद्वदेद्विपक् ॥ ३ ॥
 लण्णादाहारतिस्त्रेद कटुस्त्रलवणोत्तरम् ।
 शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं तद्वदेद्विपक् ॥ ४ ॥
 छर्दिहृत्ताससंमोह स्वल्परुग्दीर्घसन्ततिः ।
 कटुतिक्तोपशान्तौ च तद्विज्ञेयं कफात्मकम् ॥ ५ ॥
 ससृष्टलक्षणं बुद्ध्वा हिदोषं परिकल्पयेत् ।
 त्रिदोषजमसाध्यं स्यात् क्षीणमांसबलाऽनलम् ॥ ६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

लहनं प्रयमं कुर्याद् वमनं सविरेचनम् ।
 वस्त्रिकर्मपरं चात्र पक्तिशूलोपशान्तये ॥ ७ ॥
 निरुद्धो वाजिगन्धा च मधुनैलिकवस्तयः ।
 निम्बक्वाथेन वमनं कटुतुम्बोरसेन वा ॥ ८ ॥
 पटोन्मपत्रक्वाथेन कारवेक्षोदकेन वा ।
 प्रियंगुपत्रक्वाथेन हितं मोचरसेन वा ॥ ९ ॥
 यथ्याह्वादिक्योगेन वमनं परिगम्यते ।
 पीत्वा च क्षीरमाकण्ठमदनक्वाथमंयुतम् ॥ १० ॥
 कान्तारकस्य पौण्ड्रस्य कीमकारस्य वा रमम् ।
 परिणामशूलशान्त्यर्थं वमनाय प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥
 दन्ती च त्रिहृताश्यामा कर्णिकाकटुकाद्या ।
 नीलिकानागरं घूर्णं तैलेनैरण्डजेन वा ॥

युक्तं विरेचनं सद्यः पक्तिशूलनिवारणम् ॥ १२ ॥
 विडङ्गं तंडुलं व्योषं वृहद्वन्ती सचित्रकम् ।
 सर्वाण्येतानि चाहृत्य श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ १३ ॥
 गुडेन मोदकं कृत्वा भक्षयेद्वातरुत्थितः ।
 उष्णोदकानुपाचनं च दद्यादग्निविवर्धनम् ॥ १४ ॥
 जयेत्त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ १५ ॥

इति विडङ्गाद्यो मोदकः ।

नागरगुड़तिलकल्कं पयसासंसाध्ययः पुमानद्यात् ।
 उग्रं परिणति शूलं तस्य नश्यति विरात्रेण ॥ १५ ॥
 एरण्डवह्निशंबूक वषाभूगोचुरं समम् ।
 अन्तर्दग्धा पिवेदङ्गि रुष्णाभिः शूलशान्तये ॥ १६ ॥
 शंबूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ।
 पक्तिजं विनिहत्येतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ १७ ॥
 शंबूकतुषपण्यैव पञ्च वै लवणानि च ।
 समांशैर्गुटिकां कृत्वा कलम्बुकरसेन वा ॥ १८ ॥
 प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेच्च यथा बलम् ।
 शूलादिमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥ १९ ॥
 विष्णुकान्तामूलकल्कः पीतः सष्टतशर्करः ।
 पयसाशमयत्वाश्च शूलं पक्तिस्तमुद्भवम् ॥ २० ॥
 यः पिवति सप्तरात्रं शक्नुनेकान् कलाययूपेण ।
 जयति परिणामशूलं शमयेत्तज्जलं वा प्रयोजितम् ॥ २१ ॥
 पलानि त्रीणि शंबूकालोहचूर्णात्पलद्वयम् ।
 रसाक्षनात्पलत्रैकं लोहसिंघातकात्पलम् ॥ २२ ॥
 सर्वैः समं शर्करा च मधुना च परिप्लुतम् ।
 सर्वमेतत्समाहृत्य मोदकान् कारयेद्विपक्वम् ॥ २३ ॥

तान् भक्षयेच्च यत्नेन शूले गुल्मे हृदामये ।

विशेषतः पक्षिशूले शोथे पांडुगदे भ्रमे ॥ २४ ॥

दुर्नान्नि कासे कृच्छ्रे च प्रमेहाश्मरिष्ठदिषु ।

अग्निमान्द्ये स्मृतिभ्रंशे पीनसेऽर्धावभेदके ॥ २५ ॥

इति शंबूकाद्यो मोदकः ।

कृष्णामया लोहचूर्णं विलिहन्मधुसर्पिषा ।

परिणामोद्भवं शूलं सद्यो हन्ति मुदुस्तरम् ॥ २६ ॥

इति कृष्णाद्यं लोहम् ।

पथ्या लोहरजः शुण्ठी तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ।

परिणामभवं हन्ति वातपित्तकफात्मकम् ॥ २७ ॥

इति पथ्यालोहम् ।

त्रिफलां लोहचूर्णन्तु यष्टीमधुकमेव च ।

मधुसर्पिषुतं लिङ्घ्याच्छूलं हन्ति विदोषजम् ॥ २८ ॥

इति त्रिफलाद्यं लोहम् ।

अभ्रन्ताम्रं रसं लोहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम् ।

सर्वमेतत्समाहृत्य गृहीयात्कुशलो भिषक् ॥ २९ ॥

आज्ये पलद्वादशके दुग्धे वत्सरसंख्यके ।

चिह्ना तत्र पचेच्चूर्णे सुपूतं घनतन्तुना ॥ ३० ॥

विडङ्गं त्रिफलावल्लीन् त्रिकटून्वा तथैव च ।

पिष्ट्वा यत्लोम्नितानेतान्यया संमिश्रितावयेत् ॥ ३१ ॥

ततः पिष्ट्वा शुभे भांडे स्थापयेत्तु विचक्षणः ।

आत्मनः शोभने वष्टिं पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥ ३२ ॥

हृतेन मधुना मासं भक्षयेन्मापकादिकम् ।

यष्टी मापान् क्रमेणैव वर्धयेत्तु समाहितः ॥ ३३ ॥

अनुपानश्च दुग्धेन नारिकेलोदकेन च ।

जीर्णशर्कराख्यत्रं सुहुर्मांसरसादयः ॥ ३४ ॥
 रसायनानां विरुद्धा न्यानन्यान्यपि कारयेत् ॥ ३५ ॥
 हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च आमवातं कटिग्रहम् ।
 गुल्मशूलं म्लीहशूलं यकृच्छूलं विशेषतः ॥ ३६ ॥
 अग्निमान्द्यं चयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ।
 अश्मरीं मुत्रकृच्छञ्च योगेनानेन नश्यति ॥ ३७ ॥

इति चतुस्समो लोहः ।

त्रिवृताचित्रकं सुस्तं त्रिफलात्रुपणं तथा ।
 एकैकस्य समोभागः स्रद्धो रसगन्धयोः ॥ ३८ ॥
 लोहाच्चिकं विभागानां भङ्गस्तद्विगुणो भवेत् ।
 एतत्सकलचूर्णन्तु चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥ ३९ ॥
 त्रिफलायाः कपायेण गुटिकां कारयेद्विपक्व ।
 तत्रैकं भक्षयेत्प्रातः भक्तवारिपिवेदनु ॥ ४० ॥
 पक्तिशूलं त्रिदोषत्य मन्त्रपित्तवमिं ज्वरम् ।
 हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वस्तिकुक्षिगुदे रजम् ॥ ४१ ॥
 कासं श्वासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषनाशनम् ।
 यकृत्म्लीहोदरश्चैव राजयक्ष्मज्वरापहम् ॥ ४२ ॥

इति भक्तवारिगुटिका ।

अचामलकशिवानां स्वरसैः पक्वं सुलोहजञ्च रजः ।
 सगुडं यद्युपभुङ्क्ते सुञ्चति त्रिदोषजं शूलम् ॥ ४३ ॥

इति त्रिफलाद्य लोहम् ।

सामुद्रं सैन्धवं चारोरुचुकं रौमकं विडम् ।
 दन्ती लोहरजः किष्टं त्रिवृच्छूर्णकं ममम् ॥ ४४ ॥
 दंघिगोमूत्रपयसा मन्दपायकपाचितम् ।
 तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिवेदुष्णं न वारिणा ॥ ४५ ॥

जीर्णेऽजीर्णे तु भुञ्जीतमांसादिघृतसाधितम् ।

नाभिशूलं यक्षच्छूलं गुल्मप्लीहकृतञ्च यत् ॥ ४६ ॥

विद्वध्यटीलजं हन्ति कफवातोद्भव तथा ।

अन्नद्रवं जरयितु मजीर्णं ग्रहणीगदम् ॥ ४७ ॥

शूलानामपि सर्वेषां मौपधं नास्त्यतः परम् ।

परिणामसमुत्पत्त्य विशेषेणान्तकं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

इति सासुद्राद्यं चूर्णम् ।

सपिप्पलीगुडं सर्पिः पचेत् चौरचतुर्गुणे ।

विनिहन्त्यस्तपित्तञ्च शूलञ्च परिणामजम् ॥ ४९ ॥

इति गुडपिप्पलीघृतम् ।

क्वाथेन कल्केन च पिप्पलीनां

सिद्धं घृतं माचिकसंप्रयुक्तम् ।

जीरानुपानं विनिहन्त्यवश्यं

शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम् ॥ ५० ॥

इति पिप्पलीघृतम् ।

लोहस्य रजसो भागं स्निग्धलायास्तयस्तथा ।

गुडस्याष्टौ तथा भागा गुड्यन्मूर्ध्वं चतुर्गुणम् ॥ ५१ ॥

एतत्सर्वन्तु विपचेद् गुडपाकविधानवत् ।

लिहेच्चै तद्यथा शक्तिः क्षये शूले च पाकजे ॥ ५२ ॥

इति लोहादिलेहः ।

कोनप्रन्दिकगृह्यवेरचपलाचारैः समं चूर्णितम् ।

मडूरं सुरभोजनेऽष्टगुणितं पक्वाय मान्द्रीकृतम् ॥ ५३ ॥

तत् पादेह्यनादिमध्यविरतो प्रायेण दुग्धाय भुक् ।

जेतुं वातकफामयान् परिणतौ शूलं हि शूलानि च ॥ ५४ ॥

इति कोनादिमडूरम् ।

यवत्तारं कणाशुण्ठी कीलं ग्रन्थिकचित्रके ।

पलप्रमाणमादाय प्रस्थं लोहस्य किट्टकम् ॥ ५५ ॥

शनैः पचेद्दार्ढ्यलेपं गोमूत्राष्टगुणेन च ।

ततोऽक्षमात्रान्वटकान्योजयेत्सप्तरात्रकम् ॥ ५६ ॥

भक्षयेद्भोजनस्याग्रे मध्ये भुक्तवतस्तथा ।

सर्पिः क्षीररसोपेतैरसैर्जाङ्गलजैः शुभैः ॥ ५७ ॥

विनिहन्त्यस्त्रपित्तञ्च शूलञ्च परिणामजम् ।

सर्वशूलगदांश्चांशु नाशयत्येष वीर्यवान् ॥

सभीमवटको ह्येष योगराजः प्रकीर्तितः ॥ ५८ ॥

इति भीमवटकमंडूरम् ।

लोहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रस्याढके पचेत् ।

क्षीरप्रस्थेन तत्सिद्धं पक्तिशूलहरं नृणाम् ॥ ५९ ॥

इति क्षीरमंडूरम् ।

संगोध्यचूर्णितं कृत्वा मंडूरस्य पलाटकम् ।

शतावरीरसस्याष्टौ दध्नाथ पयसस्तथा ॥ ६० ॥

पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः ।

विपचेत् सर्वमेकत्र यावत्पिण्डत्वमागतम् ॥ ६१ ॥

सिद्धान्तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्यायतोऽपि वा ।

वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणामजम् ॥

विनिहन्त्येह योगेऽयं मंडूरस्य न संशयः ॥ ६२ ॥

इति शतावरीमंडूरम् ।

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफलाद्रूपणानि च ।

नयभागानि सर्वाणि लोहकिट्टसमानि च ॥ ६३ ॥

गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्राद्विगुणितं गुडम् ।

शनैर्मृदग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ॥ ६४ ॥

स्त्रिंशे भांडे विनिक्षिप्य भक्षयेत् कोलमात्रया ।
 प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः ॥ ६५ ॥
 योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् ।
 कामलापांडुरोगश्च शोथं मन्दाग्निनामपि ॥ ६६ ॥
 अर्शांसि ग्रहणीरोगं कृमिगुल्मोदराणि च ।
 नाशयेदम्बपित्तं च स्थूलं चाप्यपकर्षति ॥ ६७ ॥
 वर्जयेच्छुष्कशकानि विदाह्यस्त्रकटूनि च ।
 पक्तिशूलान्तकी ह्येव गुडो मंडूरसंज्ञकः ॥
 शूलार्त्तानां कृपाहेतो स्तारया परिकीर्तितः ॥ ६८ ॥
 इति तारामंडूरगुडः ।

वर्षाभूर्वरुणोमान लोहकिङ्कनु पृतकम् ।
 भार्गी च समभागानि भूवे दशगुणे पचेत् ॥ ६९ ॥
 अन्तर्धूमविषकेन मधुसर्पियुतं लिङ्गन् ।
 वाताधिकं तथा पित्तं हन्तुं जं श्लेष्मजं तथा ।
 एष त्रिदोषजं हन्ति शूलं हि परिणामजम् ॥ ७० ॥
 इति पुनर्नवादिमंडूरम् ।

वूरपणं त्रिफलाचव्यं विड्द्वानलजीरकम् ।
 गृहीमुस्तं देवकाष्टं कारवीधान्यतुम्बुरु ॥ ७१ ॥
 दन्तीक्षित्तजयोर्मूलं ग्रन्थिकं गजपिप्पली ।
 त्वगैलापत्रकं घूर्णं मर्यमहंषलं पृथक् ॥ ७२ ॥
 गृहीयाद्दन्धपायाण केसरं चाक्षसन्निभम् ।
 मंडूरस्य विगुहस्य पलानां पञ्चविंशतिः ॥ ७३ ॥
 कृत्वा घूर्णं ततः सूक्ष्मं स्वरसैर्भावयेत्तु तम् ।
 फकोटककेशराजं यन्म्यातानममुद्बैः ॥ ७४ ॥
 धात्रीफलरसप्रस्यं भूवमटगुणं तथा ।

दत्त्वा विपाचयेत्ताव द्यावत्पाकञ्च गच्छति ॥ ७५ ॥

खादेदग्निबलं भत्वा परिहारविवर्जितः ।

• वातक्षेप्तोद्भवं शूलं मलपित्तं सुदारुणम् ॥ ७६ ॥

प्लीहानमुदरं गुल्मं ग्रहणीपाण्डुकालाम् ।

क्षमीनर्शांसि कुष्ठानि शोषस्थौल्यमरोचकम् ॥ ७७ ॥

ये वातप्रभवारोगा ये च पित्तकफोद्भवाः ।

• तान् सर्वांश्चाशयत्याश्र भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ७८ ॥

व्रूपणं नामविख्यातं वङ्गेदीप्तिकरं परम् ।

• इति वृहच्चूपाण्यं मंडूरम् ।

नारिकेलस्य तोयञ्च लवणेन प्रपूरितम् ।

विपक्षमग्निना सम्यक् परिणामजशूलनुत् ॥ ७९ ॥

वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैषिकं सान्निपातिकम् ॥ ८० ॥

इति नारिकेललवणम् ।

• त्रिफलामुस्तकं व्योषं विडङ्गं पुष्करं वचा ।

चित्रकं मधुकं चैव पलांशं क्षणञ्चूर्णितम् ॥ ८१ ॥

अथयूष्णं पलान्यष्टौ गुग्गुलोस्तावदेव तु ।

• प्रातर्विलिञ्च्य भुञ्जानोऽजीर्णोऽस्मिंस्तु जयेद्भुजम् ॥ ८२ ॥

जीर्णाक्षसम्भवं शूलं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।

आमवातं तथा गुल्मं श्रयथुं विषमज्वरम् ॥ ८३ ॥

इत्ययोगुगुलुः ।

• स्निग्धपीडितकूष्माण्डा तुलार्धं मृष्टमान्जतः ।

• प्रस्थाद्वै तुल्यखण्डञ्च पचेदामलकीरसात् ॥ ८४ ॥

प्रस्थे सुस्निग्धकूष्माण्ड, रसप्रस्थं विचट्टयन् ।

दर्व्यापाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य निधापयेत् ॥ ८५ ॥

हे हे पले कणाजाजी गुण्डीनां मुरिचस्य च ।

पलं तालीशधान्याक चातुर्जातिकमुस्तकम् ॥ ८६ ॥
 कर्पप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माचिकस्य च ।
 पक्तिशूलं निहन्येव दोषत्रयकृतञ्च यत् ॥ ८७ ॥
 हृद्यन्त्रपित्तमूर्च्छाश्च कासश्चासावरोचकम् ।
 हृच्छूलं रक्तपित्तञ्च शूलञ्च नाशयेत् ॥ ८८ ॥
 रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञकम् ॥

इत्यामलकखण्डः ।

अशोविकारनिर्दिष्टो लेहो लोहान्मृताह्वयः ।
 परिणामशूलशान्त्यर्थं कर्तव्यः संप्रजानता ॥ ८९ ॥

—०—

अथान्नद्रवशूलनिदानमाह ।

जीर्णोऽजीर्यत्यजीर्णं वा यच्छूलमुपजायते ।
 पथ्याऽपथ्यप्रयोगेन भोजनभोजनेन वा ॥
 न शम याति नियमात् सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ ९० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अन्नद्रवाग्ये शूले तु न तावत् स्वास्थ्यमश्नुते ।
 यावत्कटुकपित्तास्त मन्त्रं न हृदयेद्वयम् ॥ ९१ ॥
 यान्तमात्रे रजत्पित्ते शूलमाशु प्रशान्ति ।
 पित्तार्तं वमनं कार्यं कफार्तञ्च विरेचनम् ॥ ९२ ॥
 अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम् ।
 आमपक्षाग्ये गुहे गच्छेदन्नद्रवः शमम् ॥ ९३ ॥
 मापेण्डुरीं ममधुकां सुप्तिद्यान्तेनपाचिताम् ।
 तादृशीं सर्पिषा ष्ठादे दन्नद्रवनिषीडितः ॥ ९४ ॥
 धात्रीफलभवं चूर्णं नयगूर्णममायुतम् ।

यष्टीचूर्णेनश्वा युक्तं लिङ्घ्यात् क्षीद्रेण तप्तदे ॥ ८५ ॥

श्यामाकतंडुलैः सिद्धं सिद्धं कोद्रवतंडुलैः ।

प्रियङ्गुतंडुलैः सिद्धं पायसं शर्करं हितम् ॥ ८६ ॥

गौडिकं सौरणं कन्दं दूष्मांडं वापि भक्षयेत् ।

कलाययवशक्नून्वा शक्नून्वा लाजसम्भवान् ॥ ८७ ॥

कुलित्यशक्नून्वा दध्नाऽद्याद्विस्तरेण तु ।

चणकानामथवाशक्नून् कोद्रवस्योदनं तथा ॥ ८८ ॥

गोधूममंडकं तत्र सर्पिषा गुडसंयुतम् ।

ससितं शीतदुग्धेन नृदितं वा हितं मतम् ॥ ८९ ॥

पटोलपत्रयूपेण खादेच्चणकशक्नूकान् ।

भृङ्गा वा चणकान् खादे ढुङ्गावानथ निस्तुपान् ॥ ९० ॥

कलायान्वा निराहार स्तृपितः क्षीरपो भवेत् ॥ ९०१ ॥

अन्नद्रवो दुश्चिकित्स्यो दुर्विज्ञेयो महागदः ।

तस्मात्तस्य प्रशमने परं यत्नं समाचरेत् ॥ ९०२ ॥

अन्तर्द्रवे ज्वरत्पित्ते वज्जिर्मन्दो भवेद्यतः ।

तस्मादन्नानि पानानि दीपनीयानि कारयेत् ॥ ९०३ ॥

कलायववगोधूम श्यामाकाः क्षीरद्रूपकाः ।

क्षीरमापाः स्थूलमापाः कुलित्याः कङ्कणीयवाः ॥ ९०४ ॥

भोजनार्थं प्रशस्ताश्च पुराणाः सप्रियङ्गवः ।

दधिलुसरसं क्षीरं गव्यमाजं समाहिषम् ।

घृतं पुराणं शाकार्यं वाम्बुको निम्बपल्लवाः ॥ ९०५ ॥

कर्कोटकारवेल्लानां पत्राणि स्वरमन्य वा ।

यानि कानि प्रयोज्यानि कासमर्दफलानि च ॥ ९०६ ॥

वर्हिणे हरिणामत्स्या रोहिताः सकपिञ्जलाः ।

एतस्मिन्नामये शस्ता मतामुचिचिकित्सकैः ॥ ९०७ ॥

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम् ।
 विपलं लोहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुसर्पिपा ॥ १०८ ॥
 समालोच्य ततः खादे दक्षमात्रं प्रमाणतः ।
 आदिमध्यावसानेषु भोजनस्य निवृत्तिं तत् ॥ १०९ ॥
 अन्नद्रवं रजत्पित्तं मन्त्रपित्तं सुदारुणम् ।
 परिणामसमुत्पद्य शूलं सखत्सरोत्थितम् ॥ ११० ॥
 इति गुडमण्डूरः ।

कलायचूर्णौ भागौ द्वौ लोहकिट्टस्य चापरः ।
 कारवेक्षपलाशानां रसेनैव विमर्दयेत् ॥ १११ ॥
 कर्पमात्रां ततश्चैकां मध्वेदगुठिकां नरः ।
 मण्डानुपानात्काहन्ति जरत्पित्तं सुदुर्जयम् ॥ ११२ ॥
 इति कलायचूर्णगुटिका ।

एरण्डसप्तकं पेयं हृषुपाद्यं सदाहितम् ।
 धान्वन्तरं सकौमारं घृतं रमायणञ्च यत् ।
 इति संक्षेपतः प्रोक्तं मन्त्रद्रवचिकित्सितम् ।
 अन्नद्रवेऽपि यत्प्रोक्तं जरत्पित्ते पित्तहितम् ।

इति वङ्गसेने परिणामगूलान्नन्नद्रवजरत्पित्तनिदानं
 चिकित्साधिकारः समाप्तः ॥ २६ ॥

—०—

अथोदावर्त्तनिदानमाह ।

वातविण्मूत्रश्लेष्मांशु चयोद्धारवमोन्द्रियैः ।
 चुत्तृयाम्नासनिद्राणां हृल्लोदावर्त्तमभ्ययः ॥ १ ॥

बातमूत्रपुरीषाणां सङ्गाधानं क्लमो रुजः ।

जठरे बातजायान्ये रोगाः स्युर्बातनिग्रहात् ॥ २ ॥

आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तयोर्ध्वबातः ।

पुरीषमास्यादथवा निरिति पुरीषवेगेऽभिहिते नरस्य ॥ ३ ॥

वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रक्लृप्तं शिरोरुजा ।

विनामो वङ्गणानाहः स्यात्त्रिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्पवनात्मका स्युः ।

तथाक्षिनासावदनामयाथ भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ५ ॥

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तमसुञ्चतो हि ।

शिरो गुरुत्वं नयना मयाथ भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ६ ॥

मन्यास्तम्भः शिरः शूलं मर्दितार्धोवभेदकौ ।

इन्द्रियाणाञ्च दौर्बल्यं क्षवयोः स्याद्विधारणात् ॥ ७ ॥

कण्ठास्यं पूर्णत्वमतीव तोदः कूजथ वायोरथवा प्रवृत्तिः ।

उत्तारवेगेऽभिहिते भवन्ति जन्तोर्विकाराः पवनप्रसृताः ॥ ८ ॥

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गः शोफपाण्डुमयज्वराः ।

कुष्ठविसर्पहृत्तासाः क्षुर्दिनिग्रहजादगाः ॥ ९ ॥

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहस्य ।

शक्नाश्मरीतत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकाराभिहितेति शुक्ले ॥ १० ॥

तन्द्राङ्गमर्दारुचिविभ्रमाथ क्षुधाभिघातात् कृशाता च दृष्टेः ।

कण्ठास्य शोषः श्वपावरीधस्तृष्णाभिघाताद्दृढव्यथा च ॥ ११ ॥

आन्तस्य निःश्वासाविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवापि गुल्मः ।

जृम्भाङ्गमर्दाच्च शिरोऽतिजाड्यं निद्राभिघातादथवापि तन्द्रा ॥ १२ ॥

दृष्टार्दितं परिक्षिप्तं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ।

शक्नहमन्तं मतिमानु दावर्त्तिनमुत्सृजेत् ॥ १३ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

सर्वेभ्यो विधिवदु दावर्त्तं कृतस्त्रगः ।
 वायोः क्रियाविघातव्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥ १४ ॥
 पुरोपजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिकश्चयः ।
 चारयैतरणौ वस्ती युञ्ज्यादत्र चिकित्सकः ॥ १५ ॥
 सौवर्चलाब्धां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिवेत् ।
 एलां वाप्यथ मद्येन क्षीरं वारि तथा पिवेत् ॥ १६ ॥
 दुस्पर्शा स्वरसं वापि कषायककुभस्य च ।
 एवार्क्ष्वोजं तोयेन पिवेद्वा लवणीकृतम् ॥ १७ ॥
 शर्करेक्षुरसं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ।
 सर्वत्रैव प्रपुञ्जीत मूत्रकक्षाशमरोविधिम् ॥ १८ ॥
 स्नेहस्नेदैरुदावर्त्तं जृम्भजं समुपाचरेत् ।
 अशुमोचोऽशुजे कार्यः सिग्धस्त्रिवस्य देहिनः ॥ १९ ॥
 क्षवजे क्षवपत्रेण घ्राणस्थेनानयेत् क्षवम् ।
 तयोर्ध्वजवृक्षेऽभ्यङ्गः स्वेदो धूमः समाहृतः ॥ २० ॥
 उद्गारजे क्रमोपेतं सैहिकं धूममाचरेत् ।
 वम्याघातं यथा दोषं सम्यक् स्नेहादिभिर्जयेत् ॥ २१ ॥
 सक्षारलवणोपेतं मभ्यङ्गं वाऽत्र दापयेत् ।
 वस्तिगुदिकरं सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥ २२ ॥
 आयारिनागात् कथितं पीतवन्तं प्रकामतः ।
 रमयेयुः प्रियानार्थैः गुक्तीदावर्त्तिनं परम् ॥ २३ ॥
 अत्राभ्यङ्गापगाह्य मदिरायरणायुधाः ।
 गालिपयो निरुद्धाय दितं मैथुनमेव च ॥ २४ ॥
 सुहिघाते दितं सिग्धं मुखमव्यांशुभोजनम् ।

हृष्णाघाते पिवेन्नम्यं यवागूं वा सुशीतलम् ॥ २५ ॥

रसेनाद्यातुविद्यान्तः अमखासातुरो नरः ।

निद्राघाते पिवेत् क्षीरं सुप्याच्चेष्टकथारतः ॥ २६ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कपायकटुतिक्तकैः ।

भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्त्तं करोति च ॥ २७ ॥

वातमूत्रपुरीषाणि कफमेदो बह्वानि च ।

स्रोतांस्युदावर्त्तयति पुरीषं चापि वर्त्तयेत् ॥ २८ ॥

ततो हृद्बस्तिशूलात्तौ हृत्सासाऽरतिपीडितः ।

वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ २९ ॥

श्वासकांसप्रतिश्याय दाहमोहदृषाज्वरान् ।

वमिद्विकाशिरोरोग मनः श्रवणविभ्रमान् ॥

बह्वनन्यांश्च लभते विकारान् वातकोपजान् ॥ ३० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

उदावर्त्तिनमभ्यक्तं स्निग्धगात्रमुपाचरेत् ।

वर्त्तिकास्थापनस्नेद बस्तिरेचनकर्मभिः ॥ ३१ ॥

अहस्तुधापतिलदिशाक ग्राम्यौदकानूपरसैर्यवाक्षम् ।

रन्ध्रैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भिरद्याध्रसन्नागुडसोधुपायी ॥ ३२ ॥

चारधिवक्त्रकहिम्बाम्ब वेतसैर्भेदनैर्मता ।

यवागूः साधिता वापि तत्रारग्वधकैः पलैः ॥ ३३ ॥

श्यामादन्तो द्रवन्तो मृक् मृदाश्यामांश्मृताविहत् ।

समलाशङ्कितोश्चेता राजवृक्षः सतिस्त्वकः ॥
 काम्पिल्लकं करञ्जश्च हेमक्षीरीत्ययं गणः ॥ ३४ ॥
 सर्पिस्तैलरजः काथ कल्के श्वन्यतमेपुं च ।
 उदावर्त्तादरानाह विषगुल्मविनाशनः ॥ ३५ ॥
 बल्मीकसृत्तिकामूलं करञ्जस्य फलत्वचम् ।
 पिष्ट्वा मूत्रेण सिद्ध्यत्यमुदावर्त्तप्रलेपनम् ॥ ३६ ॥
 हरीतकीयवचार पीलूनि चिह्नता तथा ।
 घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्त्तविनाशनम् ॥ ३७ ॥
 हिङ्गुकुष्ठवचास्वर्जं विडञ्चेति हिरुत्तरम् ।
 मद्येन चाथ पिप्पल्या मूलकानां रसेन वा ।
 भुक्त्वा क्षिण्यमुदावर्त्ता हातगुल्मादिमुच्यते ॥ ३८ ॥
 हिङ्गुमाचिकसिन्धुतैः पक्त्वा वर्त्तिं सुनिर्मिताम् ।
 घृताभ्यक्तां गुदे दद्यादुदावर्त्तविनाशिनीम् ॥ ३९ ॥
 इति हिङ्गवाद्या वर्त्तिः ।

मदनं पिप्पलीकुष्ठं वचागौराथ सर्पपाः ।
 गुडक्षीरसमायुक्ता फलवर्त्तिः प्रशस्यते ॥ ४० ॥

इति फलवर्त्तिः ।

आगारधूमसिन्धुतैस्तैलयुक्तास्त्रिमूलकम् ।
 क्षुण्णं निर्गुण्डिपत्रं वा स्निग्धे पायौ क्षिपेद्दुग्धः ॥ ४१ ॥
 खंडं पलं चिह्नतासममुपकुल्या कर्पचूर्णितं सूक्ष्मम् ।
 प्राग्भोजने समधु विडालपटकं निह्नेत्याशः ॥ ४२ ॥
 एतद्वाटपुरोपे पित्तकफार्त्तं च विनियोज्यम् ।
 स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णो नाराचकौ नाम्ना ॥ ४३ ॥
 इति नाराचचूर्णम् ।

सद्योपं पिप्पलीमूलं चिह्नन्तो सचित्रकम् ।

तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत् कल्पमुत्थितः ॥ ४४ ॥

एतद् गुडाष्टकं नाम बलवर्णाग्निवर्धनम् ।

शोथोदावर्तगुल्मघ्नं श्लेष्मपाण्ड्वामयापहम् ॥ ४५ ॥

इति गुडाष्टकम् ।

मूलकं शुष्कमाद्र्द्रं च वर्षाभू पञ्चमूलकम् ।

आरेवतफलञ्चाशु पक्वा तेन घृतं पचेत् ॥

तत्प्रीयमानं शमयेदुदावर्तमसंशयम् ॥ ४६ ॥

इति मूलकार्यं घृतम् ।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः संख्याकपूतीककरंजयोश्च ।

सिद्धः कपाये द्विपलांशिकानां प्रस्थो घृतात् स्यात्प्रतिबद्धवाते ॥ ४७ ॥

इति स्थिराद्यं घृतम् ।

यन्महावज्रकं सर्पिं गुल्मिनां विहितं च यत् ।

उदरिणामशेषेण तदुदावर्त्तिने हितम् ॥ ४८ ॥

उदावर्त्तोदरगदे पक्वं सर्पिर्यदीरितम् ।

एतद् द्विविचतुर्मासान् दद्यादुष्णांबुना भिषक् ॥ ४९ ॥

बाध्यक्षीररसैः सेव्यं यच्च वातानुलोमनम् ।

वातघ्नैर्लवणाद्यैश्च रसाढ्यैरन्नमाचरेत् ॥ ५० ॥

इति वङ्गसेन उदावर्त्तनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३० ॥

—०—

अथानाहनिदानमाह ।

आमं यत्कृद्धानिचितं क्रमेण भूयो विबुधं विगुणानिलेन ।

प्रवर्त्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

तस्मिन् भवत्यामसमुद्भवे च तृष्णाप्रतिश्याय शिरोविंदाहाः ।
 आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भमुद्गारविघातनञ्च ॥ २ ॥
 स्तम्भः कटिष्टष्टपुरीषमुत्रे शूलोऽथ मुच्छ्रां शक्ततथ कर्दिः ।
 स्वासश्च पक्वाशयजे भवन्ति तथालसोक्तानि च लक्षणानि ॥ ३ ॥
 तृष्णादितं परिक्षिन्नं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ।
 शक्तद्वमन्तमतिमानुदावर्त्तिनमुत्सृजेत् ॥ ४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

आमोद्भवे वातमुपक्रमेत संसर्गभक्तक्रमदीपनीयैः ।
 विपुचिकायामभिकीर्त्तितानि द्रव्याणि वैरेचनिकानि चापि ॥ ५ ॥
 विह्वरीतकीश्यामा सुहीक्षीरेण पेपयेत् ।
 वटिकामूत्रपीतास्ता श्रेष्टाद्यानाहमेदिकाः ॥ ६ ॥
 इति विह्वत्ताद्यावटिका ।
 मदनं पिप्पलीकुष्टं वचागौराद्य सर्षपाः ।
 गुडक्षीरसमायुक्ताः फलवर्त्तिः प्रशस्यते ॥ ७ ॥
 आनाहं च गुदे शूलं कुचिशूलकमेव च ।
 तस्य वातमुदावर्त्तं योगेनानेन शाम्यति ॥ ८ ॥
 इति फलवर्त्तिः ।

रामठधूमविडव्योष गुडमूत्रविपाचिता ।
 गुदेऽगुष्ट समा वर्त्तिर्विधेयानाहशूलनुत् ॥ ९ ॥
 इति रामठाद्यावर्त्तिः ।

विह्वत् क्षयाहरीतयो द्विचतुष्पञ्चभागिकाः ।
 गुटिकागुडतुल्यास्तु विड्विधम्वगदापहाः ॥ १० ॥
 इति विह्वदाद्यागुटी ।

वर्त्तिस्त्रिकटुकसैन्धव सर्पपग्रहधूममदनकुष्टफलैः ।

मधुनि गुडे वा पक्वे विदधीतांगुष्टपरिमाणा ॥ ११ ॥

वर्त्तिरियं दृष्टफला शनैः प्रणिहिता गुदे घृताभ्यक्ता ।

; आनाहोदावर्त्तशमनीजठरगुल्मनिवारणी ॥ १२ ॥

इति त्रिकटुकाद्यावर्त्तिः ।

द्विरुत्तराहिङ्गवचा सकुष्टं सुवर्चिका चैव विडङ्गचूर्णम् ।

सुखांबुनानाहविपूचिकात्तिं हृद्रोगगुल्मोर्ध्वसमीरणेषु ॥ १३ ॥

इति द्विरुत्तराहिङ्गवाद्यं चूर्णम् ।

हिङ्गूग्रगन्धाविडशुण्डाजाजी हरीतकीपुष्परमूलकुष्टम् ।

यथोत्तरं भागविह्वमेतत् प्लीहोदरानाहविपूचिकासु ॥ १४ ॥

इति हिङ्गवाद्यं चूर्णम् ।

वचाभयाचित्रकयावसूकान् सपिप्पलीकातिविषान् सकुष्टान् ।

उष्णांबुनानाहविमूढवातान् पीत्वा जयेदाशुरसौदनाग्नी ॥ १५ ॥

इति वचाद्यं चूर्णम् ।

आनाहेऽपि प्रयुञ्जीत उदावर्त्तहरीं क्रियाम् ॥

इति वङ्गसेन आनाहनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३१ ॥

—०—

अथ गुल्मनिदानमाह ।

दुष्टावांतादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ।

कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥ १ ॥

तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृदस्तिनाभयः ॥ २ ॥

हृदस्थोरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारो यदि वाऽचलः ।

वृत्तद्ययोपचयवान् सगुल्म इति कीर्त्तितः ॥ ३ ॥

सव्यस्तैर्जायते दीपैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ।

पुरुषाणां तथा स्त्रीणां त्रयोरक्तेन चापरः ॥ ४ ॥

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धस्तृप्त्यचमत्वान्त्रविकूजनानि ।

आटोपमाधानमपाकशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ५ ॥

अरुचिः कृच्छ्रविष्मूत्रं वातद्यान्त्रविकूजनम् ।

आनाहयोर्ध्वबातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षणम् ॥

रूक्षादपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च ॥ ६ ॥

शोकाभिघातोऽतिमलचयश्च निरव्यता चानिलगुल्महेतुः ।

यत् स्थानसंस्थानरुजाविकल्पं विद्धातसंगं गलवक्त्रशोषम् ॥ ७ ॥

श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरश्च घृतकुक्षिपार्श्वसंश्लिरोरुजश्च ।

करोति जीर्णोऽत्यधिकं प्रकोपं भुङ्क्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च ॥ ८ ॥

वाताक्सगुल्मो नच तत्र रूचं कषायतिक्तं कटु चोपसेवेत् ॥ ९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

प्रागेव वातिके गुल्मे सुस्निग्धं स्वेदितं नरम् ।

रेचितं स्नेहरेकैश्च निरुहैः सानुवासनैः ॥

उपाचरेद्विपक्वप्राप्तो मात्राकालविवेकतः ॥ १० ॥

मातुलुङ्गरसोहिंशु दाडिमं विडमैन्धवम् ।

सुरामण्डेन दातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ ११ ॥

नागरार्द्धपलं पिष्टं द्वे पले चित्रकम्प्य च ।

तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोप्येन पाचयेत् ॥

वातगुल्ममुदावर्त्तं योनिशूलश्च नाशयेत् ॥ १२ ॥

—०—

हिंशुसीवर्चसं गण्डो दाडिमं माघवेतसम् ।

श्वासहृद्रोगशमन मिदं स्याद्विगुपञ्चकम् ॥ १३ ॥

इति विगुपञ्चकम् ।

स्वर्जिकाकुष्ठसहिता चारः केतकिजोऽपि वा ।

पीतस्त्रैलेन शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ १४ ॥

पिवेदैरण्डतैलं वा वास्वणीमण्डमिश्रितम् ।

तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिवेन्नरः ॥ १५ ॥

पञ्चमूलकपाथेण सच्चारिण शिन्नाजतु ।

पिवेत्तस्य प्रयोगेन वातगुल्माद्विमुच्यते ॥ १६ ॥

वातगुल्मप्रतिकारे प्रकुप्यति यदा कफः ।

शस्तमुत्तेखनं तत्र चुर्णाद्याश्च कफापहाः ॥ १७ ॥

यदि कुप्यति वा पित्तं विरेकस्तत्र भेषजम् ।

दोषघ्नैरप्यऽशान्तौ च गुल्मे शोणितमोक्षणम् ॥ १८ ॥

त्रूपणं त्रिफलाधात्री विङ्गचव्यचित्रकैः ।

कल्कै रैतैर्घृतं सिद्धं सचीरं वातगुल्मानुत् ॥ १९ ॥

इति त्रूपणाद्यं घृतम् ।

हृपुषाव्योपपृथ्वीका चव्यचित्रकसैन्धवैः ।

साजाजीपिप्पलीमूल दीप्यकैर्विपचेद् घृतम् ॥ २० ॥

सकोलमूलकरसं सच्चारं दधिदाडिम् ।

तत्परं वाततुल्यघ्नं शूलानाहविमोक्षणम् ॥ २१ ॥

योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान् ।

पार्श्वघ्नस्तिशूलञ्च घृतमेतद्वरपोहति ॥ २२ ॥

पञ्चादीनि च यत्र स्युर्द्रव्याणि स्नेहसम्बिधौ ।

तत्र स्नेह समान्याहु रवाक् स्याच्च चतुर्गुणम् ॥ २३ ॥

इति हृपुषाद्यं घृतम् ।

चित्रकव्योपसिन्धूत्य पृथ्वीकाचव्यदाडिमैः ।

दीप्यकग्रन्थिकाजाजी हवुपाधान्यकैः समैः ॥ २४ ॥

दधारनालबदिर मूलकस्वरसैर्घृतम् ।

तत्पिवेद्वातगुल्माग्नि दौर्बल्याटोपशूलनुत् ॥ २५ ॥

इति चित्रकाद्यं घृतम् ।

हिंगुसीवर्चलव्योष विङ्गदाडिमभापकैः ।

पुष्कराजाजिधान्याम्न वेतसचारचित्रकैः ॥ २६ ॥

शठीवचाजगन्धैला स्वरसैश्च विपाचितम् ।

शूलानाहह्रं सर्पिर्दध्ना चानिलगुल्मिनाम् ॥ २७ ॥

इति हिंग्वाद्यं घृतम् ।

तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुक्कुटांश्चैव वर्तिकान् ।

सर्पिः शालिप्रसन्नांश्च वातगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥

इति वातगुल्म ।

—०—

अथ निदानमाह ।

कटुस्त्वतीक्ष्णोष्णविदाहिरुक्ष क्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ।

आमाभिघातो रुधिरं प्रदुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निदानमुक्तम् ॥ २९ ॥

ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूल महज्जीर्यतिभोजने च ।

स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहं पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ ३० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

• काकोल्यादि महातिक्त वासाद्यैः पित्तगुल्मिणम् ।

ते पित्तं संसदेत् पश्चात् योजयेदम्तिकर्माणा ॥ ३१ ॥

मधुकं चन्दनं द्राक्षा पयसा मधुकं मधु ।

पिवेत्तंडुलतोयेन पित्तगुल्मोपशान्तये ॥ ३३ ॥

—०—

अथ पक्वगुल्मलक्षणमाह ।

गुरुः कठिनसंस्थानो गूढमांसोत्तराश्रयः ।

अबिबर्णः स्थिरश्चैव सपक्वो गुल्म इष्यते ॥ ३४ ॥

दाहशूलादिसंचोभ स्वप्ननाशाऽरुचिज्वरैः ।

विदह्यमानं जानीयाद् गुल्मं तमुपनाहयेत् ॥ ३५ ॥

—०—

पक्वे तु व्रणवत्कार्यं व्यधयोद्भनरोपणम् ।

स्वयमूर्ध्वमधो वापि स चेद्दोषः प्रपद्यते ॥ ३६ ॥

द्वादशाहमुपेक्षेत रचन् वैद्यैरुपद्रवान् ।

परञ्च शोधनं सर्पिःशुद्धे समधुतिक्तकम् ॥ ३७ ॥

—०—

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणाचतुष्पलम् ।

पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्पिकैः ॥ ३८ ॥

रोहिणीकटुंकामुस्त त्रायमाणा दुरालभा ।

द्राक्षातामलकीवीरा जीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ ३९ ॥

रमस्यामलकानाञ्च क्षीरस्य च घृतस्य च ।

एतानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत् ॥ ४० ॥

पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं वीसर्पं पैत्तिकं ज्वरम् ।

हृद्द्वीगं कामलां कुटं हन्यादेतदष्टतोत्तमम् ॥ ४१ ॥

इति त्रायमाणाद्यं घृतम् ।

द्राक्षा मधुकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम् ।

गरुपकाणि त्रिफलां गग्धनेत्पलसंज्ञिताम् ॥ ४२ ॥

जलादृके पादशेषे रसमामलकस्य च ।

घृतमिचुरसं क्षीरमभया कल्कपादिकम् ॥ ४३ ॥

साधयेत्तु घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम् ।

प्रयोगाद्वातगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥ ४४ ॥

इति द्राक्षाद्यं घृतम् ।

शालिगोक्षगदुग्धञ्च पटोलं मिश्रितं घृतम् ।

द्राक्षापरूपकं धात्री खर्जूरं दाडिमं सिता ॥

पथ्यार्थं पैत्तिके गुल्मे बलातैलञ्चयोजयेत् ॥ ४५ ॥

इति पित्तगुल्मः ।

अथ निदानमाह ।

शीतं गुरुस्निग्धमचेष्टनञ्च संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च ।

गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वस्तु दृष्टो निचयात्मकस्य ॥ ४६ ॥

स्तौमित्यशीतज्वरगात्रसादहृत्सासकासाऽरुचिगौरवाणि ।

शैत्यं रुग्णत्वा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य ॥ ४७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्नेहोपनाहनस्वेद तोक्षणसंसनवस्तिभिः ।

योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत् ॥ ४८ ॥

तिलैरण्डातसीबीज सर्पपैः परिलिप्य च ।

श्लेष्मगुल्म मयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्विपक् ॥ ४९ ॥

पञ्चमूलोष्णतं तोयं पुराणं वारुणीरसम् ।

कफगुल्मे पिवेत्काले जीर्णं माध्वीकमेव च ॥ ५० ॥

यवानीचूर्णितं तक्रं विड्गेन लयणीकृतम् ।

पिवेत्सन्दीपनं वात भूववर्चोऽनुलोमनम् ॥ ५१ ॥

—०—

पिप्पली पिप्पलीमूल चव्यचित्रकनागरैः ।

पलिकैः स यवचारै र्द्युतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५२ ॥

घोरप्रस्थेन तत्सर्पि र्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ।

ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं श्लेहकासज्वरापहम् ॥ ५३ ॥

इति घोरप्रदपलं द्युतम् ।

सव्योपचारलवणं दशमूलनृतं द्युतम् ।

कफगुल्मं जयत्याशु सङ्घिगुविड्दाङ्गिमम् ॥ ५४ ॥

इति व्योपाद्यं द्युतम् ।

भस्मातकानां द्विपलं पञ्चमूलपलोन्मितम् ।

साध्यं विटारिगन्धारव्य मापोथ्य सलिलादुक्ते ॥ ५५ ॥

पादावशेषे पूते च पिप्पली नागरं वचा ।

विडङ्गं सैन्धवं द्विगु यावशूकं विडं शठी ॥ ५६ ॥

चित्रकं मधुकं रास्ना पिष्ट्वा कर्पसमान् भिषक् ।

प्रस्थञ्च पयसो दत्त्वा द्युतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५७ ॥

एतद्भस्मातक सर्पिः कफगुल्महरं परम् ।

श्लेहपाण्डुामयश्वास ग्रहणीकासरोगनुत् ॥ ५८ ॥

इति भस्मातकद्युतम् ।

त्रिवृताचिफलादन्तो दशमूलं पलोन्मितम् ।

जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागे स्थिते रसे ॥ ५९ ॥

सर्पिरैरङ्गज तैलं घोरं तत्र प्रयोजयेत् ।

सस्त्रिग्वो मिश्रकः स्नेहः सचोद्रः कफगुल्मनुत् ॥ ६० ॥

कफवातविकारेषु कुष्ठश्लेहोदरेषु च ।

प्रयोज्यो मिश्रकः स्नेहो योनिशूले तथाधिके ॥ ६१ ॥

इति मिश्रकः स्नेहः ।

जलद्रोणे विपक्वव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः ।

दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ ६२ ॥
 अष्टभागावशेषन्तं रसं पृतमधिश्रयेत् ।
 दन्ती समं गुडं पृतं दद्यात्तत्राभयाद्य ताः ॥ ६३ ॥
 तैलार्धकुडवं चैव त्रिवृतायाद्यतुप्पलम् ।
 चूर्णितं चार्द्धपलिकं पिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ ६४ ॥
 तप्साध्यं लेहवच्छीते तस्मिंस्त्रैलसमं मधु ।
 क्षिपेच्चूर्णं पलञ्चैकं त्वगैलापत्रकेसरात् ॥ ६५ ॥
 ततो लेहपलं लिङ्गा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ।
 सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ ६६ ॥
 गुल्मं श्वययुसर्गांसि पांडुरोगमरोचकम् ।
 हृद्रोगग्रहणीदोषान् कामलां विषमज्वरान् ॥ ६७ ॥
 गुल्मं श्लोहानमानाद्य मेतान् हन्त्युपसेविता ॥

इति दन्तीहरीतक्यावलेहः ।

कुलित्यान् जीर्णशर्णीय पट्टिकाश्वज्वाहलान् ।
 मध्यतैलघृतं तक्रं कफगुल्मं प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

इति कफगुल्मः ।

—०—

अथ संसर्गजानाह ।

निमित्तनिद्धानुपलभ्यगुल्मो मंसर्जजे दोषवलावलञ्च ।
 व्यामित्यन्तिद्धानुपलभ्यगुल्मांश्वीनादिशेदोषधकल्पनार्थम् ॥ ६९ ॥

—०—

द्विगुधिकटुकं पाठां हृपुषामभयां शठीम् ।
 अजमोदाजगन्धे च तित्तिडो चाग्नयेतमम् ॥ ७० ॥
 दाडिमं पौष्करं धान्य मजाजीचित्रकं वचाम् ।
 द्वौ चारी पञ्चनयणं चण्डं चैकत्र योजयेत् ॥ ७१ ॥

चूर्णमेतद्वयोक्तव्य मन्त्रपानेनान्वयम् ।
 प्राग्भुक्तमथवा पेय मद्येनोष्णोदकेन च ॥ ७२ ॥
 पार्श्वहृदस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।
 श्रानाहे भूतकृच्छ्रे च शूले च गुदयोनिजे ॥ ७३ ॥
 ग्रहण्यशो विकारेषु प्लीहपाण्ड्वामयेऽरुचौ ।
 उरोविबन्धे हिक्कायां कासे श्वासे गलग्रहे ॥ ७४ ॥
 भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा ।
 बहुशो गुटिका कार्याः कार्पिकाः स्युस्ततोऽधिकम् ॥ ७५ ॥
 इति हिग्वादिचूर्णम् ।

हिङ्गुग्रन्थिकधान्यजीरकवचा चञ्च्याग्निपाठाशठी ।
 वृक्षान्नं लवणत्रयं त्रिकटुकं चारुद्वयं दाडिमम् ॥
 पथ्या पौष्करवेतसान्नहृपुपाजान्यस्तुदेभिः कृतम् ।
 चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः ॥ ७६ ॥
 गुल्माधानगुदाङ्कुरग्रहणिकोदावर्त्तमञ्जान् गदान्
 प्रत्याधानगदौदराश्मरियुतांस्तूनीद्वयारोचकान् ।
 करुस्तम्भमतिभ्रमश्च मनसो वाधिर्यमष्टीलिकाम्
 प्रत्यष्टिलिकया सहापहरते प्राक् पीतमुष्णाम्बुना ॥ ७७ ॥

हृत्कुक्षिवह्णकटीजठरान्तरेषु
 बस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च ।
 शूलानि नाशयति वातबलासजानि
 हिग्वाद्यमाद्यमिदमाश्विनसंहितोक्तम् ॥ ७८ ॥
 इति द्वितीयहिग्वाद्यं चूर्णम् ।

गुल्मवान्मदिरामण्डैः स्तैलमैरण्डजं पिवेत् ।
 बलासे प्रवले वाते पित्ते तु क्षीरसयुतम् ॥ ७९ ॥
 इति संसृष्टगुल्माः ।

अथ निदानम् ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवत्
घनोन्नत शीघ्रविदाहि दारुणम् ।
मनः शरीरान्निबलापहारिणं
त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ ८० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

धीमानुपाचरेद्गुल्मं प्रत्याख्यायत्रिदोषजम् ।
सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ ८१ ॥
धात्रीफलानां स्वरसे षडङ्गं विपचेद्भृतम् ।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्वितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८२ ॥

इति धात्रीफलकं दृतम् । इति त्रिदोषगुल्मः ।
सङ्घनं दीपनं स्निग्धं सुष्णं वातानुलोमनम् ।
हृंहणश्च भवेदन्नं तद्वितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८३ ॥
गुल्मिनामनिलशान्तिरूपायैः सर्वशी विधिवदाचरितव्या ।
मारुते तु विजिते समुदीर्णं दीपमल्पमपि कर्मनिहन्त्यात् ॥ ८४ ॥

सुखोष्णजाङ्गलरसाः सुस्निग्धाव्यक्तसैन्धवाः ।
कटुत्रिकसमायुक्ताः हिताः पानेयु गुल्मिनाम् ॥ ८५ ॥
कुम्भीपक्केष्टकास्वेदान् कारयेत् कुशलो भिषक् ।
उपनादाय कर्तव्याः सुखोष्णाः साखणादयः ॥ ८६ ॥
स्थानायसेको रक्तस्य बाहुमध्ये गिराश्वघः ।
स्वेदानुलोमनश्चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८७ ॥
स्रोतसामार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुख्यणम् ।
भित्वा विषमं गुल्मस्य स्वेदो गुल्ममपीहति ॥ ८८ ॥

बल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकांश्च वैदलम् ।
न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ८८ ॥
ऊर्ध्ववातश्च मनुजं गुल्मिनश्च निरुहयेत् ॥ ८९ ॥

—०—

वचाविडाऽभयाशुण्ठी हिगुक्कणाग्निदीप्यकाः ।
द्वित्रिपट् चतुरेकाष्ट सप्तपञ्चाशिकाः क्रमात् ॥ ९१ ॥
चूर्णं मद्यादिभिः पोतं गुल्मानाहोदरापहम् ।
शूलार्थः श्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ॥ ९२ ॥
इति वचाद्यं चूर्णम् ।

पाठानिकुम्भरजनी त्रिकटुत्रिफलाग्निकम् ।
लवणं वृक्षबीजश्च चूर्णं गोमूत्रसाधितम् ॥ ९३ ॥
घनीभूते तु वटिकां कृत्वा खादेत् गुल्मवान् ।
गुल्मह्नीहाग्निसादांश्च नाशयेयुरशेषतः ॥ ९४ ॥
हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकीम् ।
श्यामां विडं सैन्धवश्च यवचारं महौषधम् ॥ ९५ ॥
यवक्वाथोदकेनैव घृतभ्रष्टन्तु पाययेत् ।
तेनास्य भिद्यते गुल्मः समूलः सपरिग्रहः ॥ ९६ ॥
वचाहरीतकीहिङ्गु सैन्धवं साम्बवेतसम् ।
यवचारं यवानीश्च पिप्पेदुष्णेनं वारिणा ॥ ९७ ॥
एतद्दि गुल्मनिचयं समूलं सपरिग्रहम् ।
भिन्नतिसप्तरात्रेण वङ्गेवृद्धिं करोति च ॥ ९८ ॥
वातवर्चो निरोधे वा मासुद्राद्रार्कसर्पपैः ।
कृत्वा पापो विधातव्या वर्तयो भरिचोत्तरैः ॥ ९९ ॥
खादेद्वायं कुरान् भृष्टा पूतीकण्टपंहचयोः ।

पिवेत्तिहन्नागरंवा सगुडां वा हरोतकीम् ॥ १०० ॥

गुग्गुलुं विहतां दन्तीं द्रवन्तीं सैधवं वचाम् ।

मूत्रमद्यपयो द्राक्षा रसैर्वीक्ष्य यथा बलम् ॥ १०१ ॥

क्षारद्वयानलव्योष नीलीलवणपञ्चकम् ।

चूर्णितं सर्पिषापेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ १०२ ॥

पङ्क्तिभिः पलैर्मगधजाफलमूलचव्य

विश्वीषधज्वलनयावककल्कपक्कम् ।

प्रस्थं घृतस्य दशमूलरूक्कभांगीं

क्वाथेन वा पयसि दध्नि च यट्पलाय्यम् ॥ १०३ ॥

गुल्मोदराकृद्धिभ्रमन्दरकृद्धिसाद-

कासज्वरक्षयशिरोग्रहणीविकारान् ।

सद्यः शमं नयति ये च कफानिलीत्यान्

तानाश नाशयति दुर्जयमग्निमाद्यम् ॥ १०४ ॥

इति भागीपट्पलकं घृतम् ।

दन्त्याः चतुष्पलरसे पिष्टैर्दन्तीशिलाटुभिः ।

पचेत्प्रस्थं घृताहुल्म श्लेष्मपाण्डूतिशूलनुत् ॥ १०५ ॥

—०—

त्रिवृदर्कस्रुक्षीचौर कम्पिलैश्च पन्नांशकैः ।

सैन्धवादिपलोपेतैः द्वयिः कुडबमममि ॥ १०६ ॥

पक्कमष्मात्पिवेत्कर्षं मुष्णवार्यनुपानकम् ।

सर्वगुल्मोदरध्वमि स्रंसनं विन्दुमज्ञकम् ॥ १०७ ॥

इति विन्दुघृतम् ।

विड्ढाडिममिन्धूत्य घृतभुग् व्योषजीरकेः ।

हिद्र सौवर्चनक्षार चुक्रट्छाग्नयेतसैः ॥ १०८ ॥

बीजपूररसोपेतैः सर्पिर्दधिचतुर्गुणम् ।

साधितं दधिकं नाम्ना गुल्मोद्धृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ १०८ ॥

इति दधिकष्टतम् ।

नीलिनीं त्रिफलां रास्त्रां बलां कटुकरोहिणीम् ।

पचेद्विडङ्गं व्याघ्रीञ्च पलिकानि जलादके ॥ ११० ॥

तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

दध्नः प्रस्थेन संयोज्य सुधाक्षीरपलेन च ॥ १११ ॥

ततो घृतपलं दद्याद्यवागूमंडूमिश्रितम् ।

जीर्णं सम्यग्विरिक्तञ्च भोजयेद्रसभोजनम् ॥ ११२ ॥

गुल्मकुष्ठोदरव्यंगशोफपाण्डुमयञ्चरान् ।

श्चित्रं श्लोहानमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ११३ ॥

इति नीलिनीघृतम् ।

वचापुष्करकुष्ठौला मदनामरसिन्धुजैः ।

काकोलीद्वयध्याञ्च मेदायुग्मकुटनटैः ॥ ११४ ॥

पाठाजीरकजीवन्ती भार्गीचन्दनकटुफलेः ।

सरलागुरुविल्वाम्ब्र वाजिगन्धान्निवृद्धिभिः ॥ ११५ ॥

विडङ्गारग्वधश्यामा त्रिवन्मागधिकादिभिः ।

पिष्टैस्त्रैलं पचेत्क्षीरे पञ्चमूलीरसान्विते ॥ ११६ ॥

गुल्मानाहान्निम्बान्धार्षीं ग्रहणीमूत्रमङ्गिनाम् ।

अन्वामनविधौ युक्तं शस्यतेऽनिलरौगिषु ॥ ११७ ॥

इति वचाद्यं तैलम् ।

शठीपुष्करमूलञ्च दन्तीचित्रकमाटकी ।

शृङ्गवेरं वचाश्चैव पलिकानि ममाहरेत् ॥ ११८ ॥

त्रिवृत्तायाः पलं कुर्याच्छीन् कर्पांश्चैव हिङ्गुनः ।

पलं हि लवणानाञ्च यवचारपलं तथा ॥ ११९ ॥

सद्यः पुष्करमूलस्य दन्ती चित्रकयोरपि ।

हे हे पले तथा शुण्ठ्या हे पले चान्द्रवेतसात् ॥ १२० ॥

यवान्यजाजीमरिचं धान्यकं गिरिकर्णिका ।

उपकुञ्चिकाजमोदा च कुर्यादर्धपलोन्मितान् ॥ १२१ ॥

हरीतकीपले हे च विडङ्गं दाडिमं तथा ।

मातुलुङ्गरसेनैव गुड़िकाः कारयेद्विपक् ॥ १२२ ॥

एकान्तासाञ्च हे तिस्त्री गुटिकास्ताः सुखावुना ।

अग्नैर्मद्यैश्च पातव्या घृतेन पयसाऽथवा ॥ १२३ ॥

एताः काङ्गायनेनोक्ताः गुटिका गुल्मभेदिकाः ।

अर्शा हृदयहृणो रोग क्षमिनाञ्च विनाशिकाः ॥ १२४ ॥

गोमूत्रेण निहन्त्युश्च श्लेष्मगुल्मं चिरोत्थितम् ।

क्षीरेण पित्तगुल्मन्तु मद्येन श्लेष्मवातिकम् ॥ १२५ ॥

त्रिफलारसमूचाभ्यां निचयं सान्निपातिकम् ।

रक्तगुल्मञ्च नारीनां पयसाकारभेण तु ॥ १२६ ॥

इति काङ्गायनगुटिका ।

—०—

हिङ्गुविकटुकवचाजमोदा धान्याजगन्धा दाडिमतित्तिङ्गीश
पाठाचित्रकचव्यसैन्यवविडसौवर्चलयवचारस्वर्जिका पिप्पलीमूला
स्त्रवेतसशठीपुष्करहपुषाजाजीपथ्याः । संचूर्णं, मातुलुङ्गासंन
वहुगः परिभाव्य गुटिकाः कारयेत् । ततः प्रातरैकां घातरोमी
च भक्षयेत् । एवं खलु योगो गुल्मश्वामकामारोचकहृद्दोगान्
हरति अथ जन्तून् प्रति प्रयोगघात्यर्थमुपयुज्यत इति । इति
हिङ्वादिबटिकाप्रकारः संस्कृतेनोक्तः ।

अपामार्गपलांगानां तथै वैचुरमस्य च ।

स्रुद्यर्कयोर्मातुलुङ्ग कुटजस्याग्निकस्य च ॥ १२७ ॥

तिलसर्पपमूत्रानि दग्ध्वा भस्मानि कारयेत् ।

गोजाविष्मूत्रसहितं सर्पिस्तैलसम्बन्धितम् ॥ १२८ ॥

व्रूप्रणं पिप्पलोमूलं चित्रकं शुष्कमूलकम् ।

मूर्वामतिविषां पाठां कुटं भस्मातकानि च ॥ १२९ ॥

चथं पूतिकरञ्जश्च विल्वं कटुकरोहिणीम् ।

द्वौ चारौ पञ्चलवणं समभागानि कारयेत् ॥ १३० ॥

सन्नीयचूर्णलवणैः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।

तदग्निचूर्णं निर्धूमं कृत्वा चूर्णं सुशीतलम् ॥ १३१ ॥

अङ्गुलीग्रहमालोढ्य सुरामण्डेन पाययेत् ।

मस्वारणालभूत्रैस्तु युक्तः स्याद्वातगुल्मनुन् ॥ १३२ ॥

शूलवातोदरप्लीहपाण्डुामय किलासकम् ।

हृन्वादारोग्यलवणं प्रशस्तं कफवातनुत् ॥ १३३ ॥

इत्यारोग्यलवणम् ।

नादेयी कुटजार्कशियु वृहंतो ऋग्विल्वभस्मातक ।

व्याघ्रीकिंशुकपारिभद्रकजटाऽपामार्गनीपाऽग्निकान् ॥

वासामुष्ककपाटलां सलवणां दग्ध्वा जले पाचितम् ।

हिंग्वादिप्रतिवापमेतदुदित गुल्मोदराष्टीलियु ॥ १३४ ॥

इति नादेयीचारः ।

कोमो हिंग्वादिर्यस्य प्रतिवापः क्रियते ।

—०—

हिंगूयगन्धाविडशृङ्गाजजी हरीतकीपुष्करमूलकुटम् ।

भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदराजोर्गविपूचिकाम् ॥ १३५ ॥

इति मामान्यविधिः ।

अथ निदानमाह ।

नवप्रसूता हितभोजनाया या चामगर्भं विरुजे दृती वा ।
 वायुर्हि तस्याः परिगृह्यरक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥ १३६ ॥
 पैत्तस्य लिङ्गं न समानलिङ्गं विशेषणञ्चाप्यपरं निबोध ।
 यः स्रन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सगूलः समगर्भलिङ्गः ॥
 सरौधिरः स्त्रीभव एवगुल्मो मासे व्यतीते दशके चिकित्स्यः ॥ १३७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालक्रमेण च ।
 सुस्निग्धस्निग्धकायायै योज्यं स्त्री हविरेचनम् ॥ १३८ ॥
 शताङ्गाचिरविल्वत्वज् दारुभाङ्गीकणाभवः ।
 कल्कः पीतो जयेद्गुल्मं तिलकायेन रक्तजम् ॥ १३९ ॥
 तिलकायो गुडव्योष घृतभाङ्गीयुतो भवेत् ।
 पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योपिताम् ॥ १४० ॥
 पीतः सुरारसो युक्त्या मदिरा काऽऽशु गुल्मनुत् ॥ १४१ ॥
 मुंडिरे चनिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकाञ्चितम् ।
 विदधीतास्रगुल्मिण्यां मलसंरेचनाय च ॥ १४२ ॥
 विशेषमपरञ्चाप्याः शृणुरक्तप्रभेदनम् ।
 पलाशचारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिवेच्च सा ॥ १४३ ॥
 यस्मिन्मदयसरे चारतीयसाध्यघृतादिषु ।
 फेनीहमस्य निष्यत्ति नष्टदुग्धममाकृते ॥ १४४ ॥
 स एव तस्य पाकस्य कान्तो नेतरलक्षणः ॥

• इति पलाशचारघृतम् ।

कङ्कारमुत्पलं पद्मं कुसुमं मधुयटिका ।

पक्वान्मुनाथ तत् काथं जीवनीयोपकल्पितम् ॥ १४५ ॥

घृतं पक्वा नवं पीतं रक्तपित्तास्रगुल्मनुत् ।

दाहदृष्ट्याङ्गरक्ष्दि योनिदोषहरं परम् ॥ १४६ ॥

इति कङ्कारकं घृतम् ।

उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरास्रग्दरो हितः ।

अतिप्रवृतमसन्तु भिन्ने गुल्मे निवारयेत् ॥ १४७ ॥

रक्तपित्तहरैर्योगैर्वातघ्नैश्च मरुद्गदान् ।

गुर्वभिष्यन्दिकुर्याद्वै रक्षन्नग्निबलं सदा ॥ १४८ ॥

गुल्मवत् स्वनपानानि यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ १४९ ॥

इति रक्तगुल्मः ।

—०—

असाध्यलक्षणान्याह ।

मञ्चितः क्रमशो गुल्मो मुहाबास्तुपरिग्रहः ।

स्ततशूलः गिरान्तो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ १५० ॥

टीर्बल्यारुचिहृत्क्षीम कासर्द्यरुचिज्वरैः ।

दृष्ट्यातन्द्रा प्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति ॥ १५१ ॥

गृहीत्वा मरुजं श्वासं छर्द्यतीसारपीडितम् ।

हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्पति गुल्मिनम् ॥ १५२ ॥

श्वासः शूलं पिपासान्न विक्षेपो ग्रन्थिमृदता ।

जायते दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो मरणाय वै ॥ १५३ ॥

इति वङ्गसेने गुल्मनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३२ ॥

—०—

अथ हृद्रोगनिदानमाह ।

अल्पगुर्वस्तु कपायति तत्रमाभिधाताध्यशनप्रगङ्गैः ।

सञ्चितनैवेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

जठरानलदौवल्या दविपक्षस्तु यो रसः ।

स आत्मसंज्ञको देहे सर्वदीपप्रकोपजः ॥ २ ॥

अन्यदोषेभ्य एवादो विहृद्वेभ्योऽन्यमूर्च्छनात् ।

कोद्रवेभ्यो विषस्येव वदन्त्यामस्य सम्भवम् ॥ ३ ॥

द्रूपयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।

हृदि वाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ ४ ॥

आयम्यते मारुतजि हृदयन्तुद्यते तथा ।

निर्मण्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाठ्यतेऽपि च ॥ ५ ॥

— 2 —

अथ चिकित्सामाह ।

वातोपशृष्टे हृदये वामयेत् स्निग्धमातुरम् ।

द्विपञ्चमूलीकाद्येन संस्त्रे ह लयणेन च ॥ ६ ॥

पिप्पल्यैलावचाङ्गिं गु यवचारोऽथ मैन्यधम् ।

सौवर्चलमयो शुण्ढो ह्यजमोदा च चूर्णितम् ॥ ७ ॥

फलधान्यान्नसौलित्य दधिमद्यवसादिभिः ।

पाययेच्छुद्धदेहश्च स्त्रीहेनान्यतमेन च ॥ ८ ॥

मपुष्कराद्यं फलपूगमूलं महौषधं शब्दभया च कृतं ।

चारान्नमर्पिर्नयने विमिश्रः प्युर्वातद्वद्गोमयिकातिकाप्रः ॥८॥

कायः सतः पौष्करमातुनुद्वपनागपृतीकगठीमुराष्टः ।

सनागराज्ञाजिउदायवानी,मधार उग्गी मयलेन पेय ॥१॥

हरोतकीपुष्करनागराद्यैर्वैर्वयस्यामवर्ण्य कर्त्तव्यः ।

मर्हिगुभिः साधितमेभिः सर्पिः द्रितश्च हृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे ॥ ११ ॥

इति हरीतक्याद्यं घृतम् ।

पुनर्नवां दारु सपञ्चमूलं राक्षां यवान् कोलकपित्यविल्वम् ।

पक्वा जले तेन पचेत्तु तैलमभ्यङ्गपानेऽनिलहृद्दघ्नम् ॥ १२ ॥

इति पुनर्नवाद्यं तैलम् ।

वन्यमांमरचक्षीर घृतगान्निश्च भोजयेत् ।

वातघ्नसिद्धं तैलञ्च वस्तिं दद्याद्विचक्षणः ॥ १३ ॥

इति वातद्विद्रोहः ।

—०—

अथ निदानम् ।

वृश्णीपदाहगोपाः श्च्युः पित्तिके हृदयक्लमः ।

धूमायनश्च मूर्च्छा च स्नेहः गोपो मुखम्य च ॥ १४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

श्रीपर्णीमधुकक्षीरं मितागुडजलेर्धमेत् ।

पित्तोपश्लेष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम् ।

घृतं कषायांशोद्विष्टान् पित्तज्वरविनाशनान् ॥ १५ ॥

शीताः प्रदेहाः परिशीधनश्च तथा विरेको हृदिपित्तदुष्टे ।

द्राक्षामिताक्षीरपक्वकैः श्याच्छुहे च पित्तापहमक्षपानम् ॥ १६ ॥

पिष्टा पिबेद्वापि सिता जलेन यद्याद्ययः तिक्तकरोद्विर्णी च ॥ १७ ॥

अर्जुनस्य त्वचा सिंहं क्षीरं योज्यं हृदामये ।

सितया पञ्चमूल्या या बलया मधुकेन वा ॥ १८ ॥

इत्यर्जुनादि क्षीरपाकम् ।

घृतेन दुग्धेन गुडाभ्रसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभस्त्वचो ये ।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ १८ ॥
इति ककुभादिचूर्णम् ।

कसेरुकाशैबलशृङ्गवेरप्रपौण्डरीकं मधुकं विसञ्च ।
ग्रन्थिञ्च सर्पिः पयसापचेत्तैः क्षौद्रान्वितं पित्तगदामयघ्नम् ॥ १९ ॥
इति कसेरुकाद्य घृतम् ।

श्रेयसीशर्कराद्राक्षा जीवकर्पभकोत्पलैः ।
बलाखर्जूरकाकोली मेदायुग्मैश्च साधितम् ॥ २० ॥
सक्षीर माहिषं सर्पिः पित्तहृद्रोगनाशनम् ॥
इति श्रेयस्याद्य घृतम् ।

स्थिरादिकल्कवत्सर्पिः क्षीरेणक्षुरसेन वा ।
द्राक्षारसेन पक्वं वा पित्तरोगविनाशनम् ॥ २१ ॥
इति स्थिरार्द्य घृतम् ।
सक्षौद्रं वितरेद्वस्ति स्तैलं मधुकसंयुतम् ॥ २२ ॥
इति पित्तहृद्रोग ।

—०—

अथ निदानमाह ।

गौरवं कफसंस्त्रावोऽरुचिस्तृणोऽग्निमार्दवम् ।
माधुर्यमपि चास्यस्य बला भावतते हृदि ॥ २३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

हृद्रोगे कफजे स्थिषं वमितं लङ्घितं नरम् ।
कफघ्ने भेषजैर्युञ्ज्यात् ज्ञात्वा दोष बलाशनम् ॥ २४ ॥
वचानिभ्यकपायाभ्यां धाम्यं हृदि कफोत्थिते ।

वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिप्पल्यादि च योजयेत् ॥ २६ ॥
 कुम्भीशठीवल्लाराम्ना शुण्ठी पथ्या स पौष्कराः ।
 चूर्णिता वा सृता सूत्रे पातव्याः कफहृदग्रहे ॥ २७ ॥
 सूक्ष्मैला मागधीमूलं प्रलीढं सर्पिषा सह ।
 नाशयत्याशु हृद्रोगं गुल्मानपि विशेषतः ॥ २८ ॥

—०—

मुस्तैलाचन्दनोशीर जीवनीव्योषधित्रकाः ।
 विल्वत्वक् कटुकाटारु दार्वीत्वक् पर्पटत्वचः ॥ २९ ॥
 पटोलं निम्बपङ्कजान्या ऋद्धिभूनिम्बशिग्रुकाः ।
 चूर्णं चायन्ती सौराष्ट्री केशरातिविषा समाः ॥ ३० ॥
 तिक्तारयं हन्ति हृद्रोगं शूलहृत् सन्निपातजित् ।
 इति तिक्तकं चूर्णम् ।
 फलतैलं विट्पद्माञ्च वस्तौ वस्तिविशारदः ॥ ३१ ॥
 गोलित्यधान्यैश्च रसैर्यवान्नपानानि तोषणानि सशर्कराणि ॥ ३२ ॥
 इति कफहृद्रोगः ।

—०—

अर्थ निदानमाह ।

गद्याक्षिप्योपन्त्वपि सर्वलिङ्गं तोत्रात्तितोदं कृमिजं सकण्डूम् ॥ ३३ ॥
 उल्लेदः शीवनं तोदः शूलं हृत्सासकम्तमः ।
 अरुचिः श्वावनेत्रत्वं शोथश्च कृमिजे भवेत् ॥ ३४ ॥
 क्लोमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयस्तेषामुपद्रवाः ।
 कृमिजे कृमिजातीनां श्लेष्मिकानाञ्च ये मताः ॥ ३५ ॥
 व्रदीपजे लङ्घनमादितः स्यादन्नञ्च सर्वेषु हितं विधेयम् ।
 तेनाधिकं मध्यमवेद्यं चैव कार्यं त्रयाणामपि कर्म शस्तम् ॥ ३६ ॥
 हृद्रोगे कृमिजे पूर्वं कुट्याल्लङ्घनपाचनम् ।

पश्चात् कृमिहरं कर्म कृमिरोगोक्तमाचरेत् ॥ ३७ ॥
 कृमिजे च पिवेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयुतम् ।
 हृदिस्थिताः पतन्त्येव ह्यधस्तात् कृमयो नृणाम् ॥ ३८ ॥
 कृमिहृद्रोगिणां स्निग्धं भोजयेत्पिशितोदनम् ।
 दध्ना च पललोपेतं त्रग्रहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ ३९ ॥
 सुगन्धिभिः सलवणैः योगैः साजाजिशर्करैः ।
 विडङ्गगाढैर्धान्याम्नं पाययेत्सिद्धमुत्तमम् ॥ ४० ॥
 यवात्रं वितरेच्चास्त्रैः सविडङ्गमतः परम् ॥ ४१ ॥

इति त्रिदोषकृमिहृद्रोगी ।

चूर्णं पुष्करजं लिङ्घ्यान् माचिकेण समायुतम् ।
 हृच्छूलश्वासकासघ्नं त्रयहिकानिवारणम् ॥ ४२ ॥
 हिङ्गुसौवर्चलं विश्वं दाडिमं माम्बवेतसम् ।
 चूर्णमुष्णांबुना पेयं श्वासहृद्रोगशान्तये ॥ ४३ ॥
 इति हिङ्गुपञ्चकम् ।

हिङ्गुप्रगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्टाभयाचित्रकयावशूकम् ।
 पिवेत्ससौवर्चलपुष्कराद्यं यवाभसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ ४४ ॥
 दशमूलकपायन्तु लवणचारयोजितम् ।
 कामं श्वासश्च हृद्रोगं गुल्मशूलश्च नाशयेत् ॥ ४५ ॥
 घृतेन दुग्धेन गुडाभसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभस्त्वचोदम् ।
 हृद्भिर्गजोर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्तौ ॥ ४६ ॥
 हरीतकीवचारास्त्रा पिप्पल्यो विश्वभेषजम् ।
 गठोपुष्करमूलश्च चूर्णं हृद्रोगनाशनम् ॥ ४७ ॥
 पुटहृग्धं हरिणशृङ्गं पिष्टं गव्येन सर्पिषा पिबतः ।
 हृत्पुष्टगूलमचिरादुपैति शान्तिं सुकष्टमपि ॥ ४८ ॥
 तैलाज्यगुडविपजं चूर्णं गोधूमपार्थजं वापि ।

पिबति पयसा यः स भवे ज्वितसंकलहृदामयः पुरुषः ॥४८॥

गोधूमककुभक्षूर्णं छागपयो गव्यसर्पिषा पक्वम् ।

मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्दोगमुदतं पुंसाम् ॥ ५० ॥

मुख्यं शतार्धन्तु हरीतकीनां सौवर्चलस्यापि पलद्वयञ्च ।

सिद्धं घृतं वल्लभकं हि नाम्ना हृत्कासगुल्मोदरमारुतघ्नम् ॥५१॥

इति वल्लभघृतम् ।

शतार्धमभयानान्तु सौवर्चलपलद्वयम् ।

पचेत्कल्कैर्घृतप्रस्थं दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ५२ ॥

घृतं वल्लभकं नाम्ना श्रेष्ठं स्यादपतन्त्रके ॥

इति क्षीरवल्लभघृतम् ।

पार्यस्य कल्कं स्वरसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयघ्नम् ॥ ५३ ॥

इत्यर्जुनघृतम् ।

घृतं बलां नागबलार्जुनांबुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।

हृद्दोगशूलं चतुरक्तपित्तकासानिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ॥ ५४ ॥

इति बलाद्य घृतम् ।

इति वङ्गसेने हृद्दोगनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३३ ॥

—०—

अथोरोग्रहनिदानमाह ।

अत्यभिष्यन्दि गुर्वन्नशुष्कपूत्यग्निपाशनात् ।

सास्त्रं सामं यत्कृत्स्नीह सद्यो वृद्धिं यथा गतम् ॥ १ ॥

उरोग्रहं तदा कुक्षौ कुरुतः कफमारुतौ ।

सस्तम्भं सरुजं घोरं रुचं स्पर्शासहं गुरुम् ॥ २ ॥

आधानकुचिद्वच्छेद्य बांतविण्मत्ररोधता ।
तन्द्रारोचकशूलानि तत्र लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अत्राशु स्वेदनं युक्त्या दहनं रक्तमोक्षणम् ।
तीक्ष्णैर्निरुहणं चैकं क्रमात्तत्क्षणमादरात् ॥ ४ ॥
पुत्रजीवकशिग्रूत्याः सूर्यावर्तबलोद्भवाः ।
रसा एकैकशः कोणादिशो वा रामठान्विताः ॥ ५ ॥
सपञ्चलवणाः पेयाः त्रिवृद्गुडसुकल्पिताः ।
त प्रहृतं यथा लाभं मूत्रतैलसुरासवैः ॥ ६ ॥
दध्यान्मवेतसचारान् सरामठान् सचिवकान् ।
पिवेतैलारनालाभ्या सुरोग्रहनिवृत्तये ॥ ७ ॥

यथातुरेणात्र कृतस्य कर्मणो विधेर्विरोधो न भवेन्ननागपि ।
यथा बलं वीक्ष्य च शुद्धविप्रहंतयाविधं पथ्यमिति प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥
इति वङ्गसेन उरोग्रहनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३४ ॥

—०—

अथ मूत्रकुच्छन्निदानमाह ।

व्यायाम तीक्ष्णोपधरुचमद्यप्रसङ्ग नित्यदृतपृष्ठयानात् ।
आनूपमत्स्याध्यगनादजीर्णात् स्युर्मूत्रकृद्वाणि नृणां तयाष्टौ ॥ १ ॥
पृथग्मलाः स्रैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य वस्तौ ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीष्ट कृद्वात् ॥ २ ॥
तोत्रा हि रुग्णवृण्यस्तिमेद्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीष्ट यातात् ।

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ३ ॥
 वस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्व शोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ।
 सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवन्ति तत् कृच्छ्रतमञ्च कृच्छ्रम् ॥ ४ ॥
 मूत्रवाहिषु शल्येन चतेष्वभिहतेषु च ।
 मूत्रकृच्छ्रं तदाघाता ज्ञायते मृशदारुणम् ।
 वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ५ ॥
 शक्ततस्तु प्रतिघाता द्वायुर्विगुणतां गतः ।
 आधानं वातशूलञ्च मूत्रसङ्गं करोति च ॥ ६ ॥
 अश्मरीहेतुतत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ७ ॥
 शक्ने दोषैरुपहते मूत्रमार्गं विधारिते ।
 सगुक्तं मूत्रयेत् कृच्छ्रा द्दस्तिमेहनशूलरान् ॥ ८ ॥
 अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे ।
 विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्तयतो मम ॥ ९ ॥
 पच्यमानाश्मरी पिताच्छोथमाणा च वायुना ।
 विमुक्त कफसन्धाना चरन्ती शर्करा मता ॥ १० ॥
 हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुचावग्निस्तु दुर्बलः ।
 तथा भवति मूच्छा च मूत्रकृच्छ्रश्च दारुणम् ॥ ११ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अभ्यञ्जनञ्चे हनिरूहवस्ति स्वेदीपनाञ्चोत्तरवस्तिसेकान् ।
 स्थिरादिभिर्बातहरैश्च सिद्धान् दद्याद्वर्साद्यानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १२ ॥
 अमृतानागराधात्री वाजिगन्धात्रिकण्टकम् ।
 प्रपिवेद्वातरोगार्तः शूलवान् मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ १३ ॥
 पुनर्नवैरण्डशतावरोभिः पत्तूरहृद्योवर्बलाश्मभिद्धिः ।

द्विपलञ्चमूलेन कुलित्यकेन यवैश्च तोयोत्कथिते कषाये ॥ १४ ॥
 तैलं वराहर्चवसाष्टतञ्च तैरेव कल्कैर्लवणैश्च सिद्धम् ।
 तन्मात्रयात्र प्रतिहन्ति पीतं शूलान्वितं मारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥ १५ ॥

पुनर्नवाद्यो मिश्रकः । इति वातकृच्छ्रम् ।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयोविकाराः ।
 द्राक्षाविदारोक्षुरसैष्टैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कथ्यात् ॥ १६ ॥
 कुशः काशः शरोदर्भः क्षुद्रश्चेति तृणोद्भवम् ।

पित्तकृच्छ्रं हरं पञ्च शूलं वस्तिविशोधनम् ॥ १७ ॥

एतत्सिद्धं पयः पीतं मेद्वगं हन्तिशोणितम् ॥ १८ ॥

शतावरीकासकुशश्चदंष्ट्रा विदारोशालीक्षुकशेरुकाणाम् ।

कायं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिवेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ १९ ॥

एवार्बुजं मधुकं सदावीं पैत्ते पिवेत्तंडुलधावनेन ।

दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकं पित्तकृते च कृच्छ्रे ॥ २० ॥

हरीतकीगोक्षुरराजहृत्पपाणभिहन्वयवासकानाम् ।

कायं पिवेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सर्जने विबन्धे ॥ २१ ॥

—०—

शतावरीकासकुशश्चदंष्ट्रा विदारिकेक्षामलकैश्च सिद्धम् ।

सर्पिः पयो या सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ २२ ॥

इति शतावरीष्टतम् शीतम् ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरु कर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् ।

सर्पिर्गुहार्द्रांशयुतं प्रयोज्यं कृच्छ्राश्मरोमूत्रविघातदोषे ॥ २३ ॥

अयं विशेषेण पुरा विधेयः सर्वाश्मरोषां मधुरः प्रयोगः ।

इति त्रिकण्टकाद्यं घृतम् । इति पित्तकृच्छ्रम् ।

शीरोष्णतीक्ष्णोपधमन्नपानं ह्येदो यवाक्षं वमनं निरुहः ।

तक्रश्च तिक्तोपणसिद्धतैलान्यभ्यंगपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २४ ॥

भूत्रेण सुरया वापि कदलोस्वरसेन वा ।

कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मं पिष्ट्वा त्रुटिं पिवेत् ॥ २५ ॥

तक्त्रेण युक्तशित्तिमारुकस्य बीजं पिवेन्मूत्रविघातहेतोः ।

पिबेत्तथा तंडुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २६ ॥

सर्वे त्रिदोषप्रभवे च कृच्छ्रे स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् ।

त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पथने च वस्तिः ॥ २७ ॥

वृहतीधावनीपाठा ग्रष्टीमधुकलिङ्गकाः ।

पाचनीयो वृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ २८ ॥

गुडेन मिश्रितं क्षीरं कटूणां कामतः पिवेत् ।

मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करा वातरोगनुत् ॥ २९ ॥

इति त्रिदोषकृच्छ्रकम् ।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्र क्रिया मता ।

यच्चवल्कलकृच्छ्रेऽपः कवोष्णोऽत्र प्रशश्यते ॥ ३० ॥

मद्यं पिवेद्वा ससितं ससर्पिः शृतं पयश्चापि मिताज्ययुक्तम् ।

धात्रीरसं चेक्षुरसं पिवेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ ३१ ॥

इत्यभिघातकृच्छ्रम् ।

क्षेद्यं शुक्रविवन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ।

हृष्यैर्वृद्धितधातोय विधेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ ३२ ॥

इति शुक्रजै मूत्रकृच्छ्रम् ॥

एलाहिगुयुतः क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिवेन्नरः ।

मूत्रहृद्रोगशुद्धयर्थं शुक्रदोषहरं परम् ॥ ३३ ॥

सेट्चूर्णक्रियाऽभ्यङ्ग वस्तयः स्युः पुरीषजे ।

कृच्छ्रे तत्र विधिः कार्योऽसर्वशुक्रविवन्धजित् ॥ ३४ ॥

क्वाथो गोक्षुरबीजस्य यवचारयुतः सदा ।

मूत्रकृच्छ्रं शक्नुज्जम् पीतः शीघ्रं नियच्छति ॥ ३५ ॥

इति शक्नुजं कृच्छ्रम् ।

सप्तद्वारग्वधकेतकैलाः निम्बः करञ्जः कुटजो गडूची ।

साध्या जले तेन पचेद्यवागूं सिद्धं कपायं मधुसंयुतं वा ॥ ३६ ॥

एवोरुबीजकल्कश्च शृङ्गं पिष्ट्वाक्षसंमितः ।

धान्यान्तलवणैः पेयो मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ ३७ ॥

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकागदुरालभा पर्वतमेद पथ्याः ।

निघ्नन्ति पीता मधुनांश्मरीन्तु संपाप्त मृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ३८ ॥

निदग्धिकायाः स्वरसं कड़वं मधुसंयुतम् ।

मूत्रदोषहरं पीत्वा नरः सम्पद्यते सुखम् ॥ ३९ ॥

कपायोऽतिबलामूलं साधितोऽग्नेपकृच्छ्रजित् ।

पीतश्च त्रपुसीबीजं सतिलाज्यं पयोन्वितम् ॥ ४० ॥

त्रिफलायाः सुपिष्टायाः कल्कं कोलसमन्वितम् ।

वारिणा लवणिकृत्य पिवेन्मूत्ररुजापहम् ॥ ४१ ॥

यवोरुवृक्षैस्तृणपञ्चमूलपापाणमेदैः सगतावरोभिः ।

कृच्छ्रेषु गुग्गुल्वभया विमिश्रैः कृतः कपायो गुडसंयुक्तः ॥ ४२ ॥

मूलानि कुशकाशेषु शराणां चेतुर्बालिकाः ।

मूत्राघातेऽश्मरीकृच्छ्रे पञ्चमूली दृणात्मिका ॥ ४३ ॥

गुडमामलकं पिष्टं न्यमघ्नं तर्पणं प्रियम् ।

पित्ताग्निदाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ४४ ॥

सितातुष्यो यवधारः सर्वकृच्छ्रप्रणाशनः ।

द्राक्षासितो पलाकल्कं कृच्छ्रघ्नं मम्लुना युतम् ॥ ४५ ॥

त्रिदारीशारियाळाग शङ्गीवल्कादिनी निगा ।

कृच्छ्रं पित्तानिघ्नं हन्ति वसिष्ठं पञ्चमूलकम् ॥ ४६ ॥

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीना-
मेर्वारुवीजलवणोत्तमकुङ्कुमानाम् ।
चूर्णानि तण्डुलजले तुलितानि पोत्वा
प्रत्यप्रमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ ४७ ॥

अयोरजः श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् ।
मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ ४८ ॥
पुनर्नवामूलतुला दर्भमूलं शतावरी ।
बलातुरङ्गगन्धा च दण्णमूलं त्रिकण्टकम् ॥ ४९ ॥
विदारोगन्धानां गाह्व गुडूचतिबला तथा ।
पृथग्दशपलान् भागा नपां द्रोणे विपाचयेत् ॥ ५० ॥
तेन पादावशेषेण घृतं स्याद्वाढकं पचेत् ।
मधुकं शृङ्गवेरञ्च द्राक्षासैन्धवपिप्पली ॥ ५१ ॥
द्विपलानि पृथग्दत्वा यवान्याः कुङ्कुमं तथा ।
त्रिंशद्गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ५२ ॥
एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् ।
राज्ञां राजसमानानां बहुस्त्रीपतयश्च ये ॥ ५३ ॥
मूत्रकृच्छ्रे कटीशूले तथा गादपुरीषिणाम् ।
मेद्रवङ्गणशूले च योनिशूले च शस्यते ॥ ५४ ॥
ययोक्तानाञ्च गुल्मानां घातशोणितजायये ।
बल्यं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम् ॥ ५५ ॥
पुनर्नवाशते द्रोणे देयोऽन्येष्वपि चापरः ।

इति सुकुमारकुमारकः पुनर्नवादिलेहः ।

मूत्राघातविधानमप्यवकार्यम् ।

इति कङ्कसेने मूत्रकृच्छ्रनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३५ ॥

अथ मूत्राघातनिदानमाह ।

जायन्ते कुपितैर्दायै मूत्रघातास्त्रयोदश ।
 प्रायोमूत्रविघाताद्यै र्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥
 रोच्याद्देगाभिघाताद्वा वायुर्वस्ती सवेदनः ।
 मूत्रमाविश्यचरति विगुणः कुण्डलोक्ततः ॥ २ ॥
 मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्त्तते ।
 वातकुण्डलिकान्तान्तु व्याधिं विद्यात् सुदारुणम् ॥ ३ ॥
 आध्यापयन् वस्तिगुदं रुध्वावायुयलोन्नताम् ।
 कुर्यात्तोत्रार्त्तिमष्टीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४ ॥
 वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ।
 निरुणद्धि सुखं तस्य वस्तेर्वस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥
 मूत्रसङ्गो भवे तेन वस्तिकुचिनिपीडितः ।
 बातवस्तिः सविज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥
 चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्त्तते ।
 मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥
 मूत्रस्य वेगेऽभिहिते तदुदावर्त्तहेतुकः ।
 अपानः कुपितो वायु रुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥
 नाभेरधस्तादाधानं जनयेत्तीव्रवेदनम् ।
 तन्मूत्रजठरं विद्या दधौ वस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥
 वस्ती वाप्ययत्रा नाले मणी वा यस्य देहिनः ।
 मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरत्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥
 म्रयेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाप्यनीरुजम् ।
 विगुणाङ्गिनजो व्याधिः ममूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥ ११ ॥
 रुक्षस्य क्लान्तदेहस्य वस्तिस्थो पित्तमारुतो ।

मूत्रक्षयं सरग्दाहं जनयेत्तां तदा ह्ययम् ॥ १२ ॥
 अन्तर्वस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।
 अश्मरीतुल्यरुग् ग्रन्थिः मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥
 मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धृतम् ।
 स्थानाश्रुतं मूत्रयतः प्राक्पद्याद्वा प्रवर्तते ।
 भस्मोदकप्रतिकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १४ ॥
 व्यायामाध्वातपैः पित्तं वस्तिं प्राप्याऽनिलाहतम् ।
 वस्तिं मेढ्रं गुदश्चैव प्रदहेत् स्त्रावयेदधः ॥ १५ ॥
 मूत्रं हारिद्रामथवा सरक्तं रक्तमेव च ।
 कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जतो रुष्णवातं वदति तम् ॥ १६ ॥
 पित्तं कफो वा ह्यौ वापि संहन्येतोऽनिलेन चेत् ।
 कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं खेतं घनं सृजेत् ॥ १७ ॥
 सदाहरोचनाशंख चूर्णवर्णश्च तद्ववेत् ।
 शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १८ ॥
 रुक्षदुर्बलयो वर्ततेनोदावर्तं शकृद्यथा ।
 मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः ॥ १९ ॥
 विड्गन्धं मूत्रयेत् कृच्छ्रा द्विद्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥
 द्रुताध्वलह्वनायासै रभिघातात्प्रपीडितान् ।
 स्वस्थानाद्वस्तिरुहत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २१ ॥
 शूलस्यन्दनदाहार्तो विन्दुं विन्दुं स्रवत्यपि ।
 पीडितस्तु सृजेद्द्वारां संस्तम्भोद्देष्टनार्त्तिमान् ॥ २२ ॥
 वस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् ।
 पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारो ह्यबुद्धिभिः ॥ २३ ॥
 तस्मिन् पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ।
 श्लेष्मणा गौरवं शोथः श्लिग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २४ ॥

श्रेष्मरुडबिलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति ।
 अविभ्रान्तविलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ॥
 स्याद्वस्त्रौ कुण्डलीभूते वृण्मोहः खास एव च ॥ २५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्रेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् ।
 दद्यादुत्तरवस्तिञ्च मूत्राघाते स वेदने ॥ २६ ॥
 नलकुशकाशेषु शिफां कथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम् ।
 पिबतः प्रयाति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच कविः ॥ २७ ॥
 गोधावल्यामूलं कथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् ।
 पोतं निरुद्धमचिराद्भिन्नतिमूत्रसंघातम् ॥ २८ ॥
 पिवेच्छिलाजतुकाथे युक्ते बीरतरादिके ।
 रमं दुरालभाया वा कषायं वासकस्यैव ॥ २९ ॥
 काथं सपत्रमूलस्य गोक्षुरो, सफलस्य च ।
 पिवेन्मधुसितायुक्तं मूत्रकृच्छ्रजापहम् ॥ ३० ॥
 घनसारस्य चूर्णेन वस्त्रवर्त्तिः कृतास्युना ।
 गुण्डयित्वाध्वजे क्षिप्तः मूत्ररोधं जहाति सा ॥ ३१ ॥
 सदा भद्राश्मभिन्मूलं शतावर्याय चित्रकम् ।
 रोहिणीकोकिलाची च क्रीड्य स्थूलविकण्टकम् ॥
 अक्षपिष्टः सुरापीतोमूत्राघातप्रवाधनः ॥ ३२ ॥
 पियेहर्हिगिखामूलं दुग्धमुक्त्वा तण्डुलांबुना ।
 यन्तिमुत्तरवन्ति वा सर्वेषामेव दापयेत् ॥ ३३ ॥

निदग्धिकायाः स्वरसं पिवेद्वा तक्रसंयुतम् ।

जले कुंकुमकल्कं वा सत्तौद्रमुपितं निशि ॥ ३४ ॥

सतैलं पाटलाभक्षं क्षारवद्वा परिश्रुतम् ।

सुरां सौवर्चलवतीं भूत्राघाती पिवेन्नरः ॥ ३५ ॥

त्रिकण्टकैरण्डशतांवरोभिः सिद्धं पयो वा त्रिणपञ्चमूलैः ।

गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ ३६ ॥

शृतशीतपयोऽन्नाग्नी चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।

पिवेत् सशर्करं श्रेष्ठं सुष्णवाते सशोणिते ॥ ३७ ॥

शिलोद्भवैरण्डकुशास्थिरादिपुनर्नवाभीरुरसेषु सिद्धम् ।

तैलं शृतं क्षीरमथानुपानं कालेषु कृच्छ्रादिषु संप्रयोज्यम् ॥ ३८ ॥

इति शिलोद्भिदादितैलम् ।

धान्यगोक्षुरकक्वाथ कल्कसिद्धं घृतं हितम् ।

भूत्राघाते भूचक्षुश्चे शक्रदोषे च दारुणे ॥ ४० ॥

इति धान्यगोक्षुरकं घृतम् ।

अश्वष्टापाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च ।

विदारीकन्दकाशश्च कुशमोरटगोक्षुराः ॥ ४१ ॥

पापाणभेदो बाराही शालिमूलं शरस्तथा ।

भक्षातकं शिरीषस्य मूलमेषामथाहरेत् ॥ ४२ ॥

समभागानि सर्वाणि क्वाथयित्वा विचक्षणः ।

पादशेषे कपाये तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४३ ॥

कल्कं दत्त्वा च मतिमान् गिरिजं मधुकं तथा ।

नीलोत्पलन्तु काकोली बीजं त्रापुसमेव च ॥ ४४ ॥

कूष्माण्डजं तथैर्वारुसम्भवञ्च समं भवेत् ।

उष्णवातं निहत्ये तद् घृतं भद्रावहं स्मृतम् ॥ ४५ ॥

इति भद्रावहं घृतम् ।

विदारोहपको यूथी मातुलुङ्गी च भूढणम् ।

पापाणभेदः कस्तूरी^१ वसुकी^२ वशिरोऽनलः ॥ ४६ ॥

पुनर्नवावचारास्त्रा बला चातिबला तथा ।

कशेरुविमृष्टाट तामलक्यः स्थिरादयः ॥ ४७ ॥

शरैर्बुदर्भमूलश्च कुशः काशस्तथैव च ।

पलहयन्तु सगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४८ ॥

पादशेषे रसे तस्मिन् दृतमस्थं विपाचयेत् ।

शतावर्थास्तथाधानाः स्वरसी दृतसम्मितः ॥ ४९ ॥

षट्पलं शर्करायाश्च कार्पिकाण्यपराणि च ।

यद्याहं पिप्पलीद्राचा काशमर्थं सपरूपकम् ॥ ५० ॥

एलादुरालभाकौन्ती कुङ्कुमं नागकेशरम् ।

जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं पयः ॥ ५१ ॥

एतत्सर्पिर्विपक्त्वैव शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ।

भूत्वाघातेषु सर्वेषु विग्रेषात् पित्तजेषु च ॥ ५२ ॥

काशश्वासचतोरस्क धनुस्त्रीभारकर्षिते ।

कृष्णाह्निर्दिमनःकम्प शोणितच्छर्दिते तथा ॥ ५३ ॥

रक्तोद्यमप्यपश्मारे तथोन्मादशिरीयहे ।

योनिदोषे रजोदोषे शुक्रदोषे स्वरामये ॥ ५४ ॥

एतत्सृष्टिकरं हृष्यं वाजीकरणमुत्तमम् ।

पुत्रदे वलवर्णाद्यं विग्रेषाद्वातनागनम् ॥ ५५ ॥

शनभोजननस्त्रेषु न क्षतिप्रतिबन्धते ।

विदारोदृतमित्युक्तं रसायनमनुत्तमम् ॥ ५६ ॥

इति विदारोदृतम् ।

प्रिद्वाखुमलमुष्णे न चारनालेन पेपयेत् ।

वद्धमूत्रं^१ निहन्त्याशु तथैव करभी भवम् ॥ ५७ ॥

स्त्रीणामतिप्रसङ्गे न शोणितं यस्य रिच्यते ।

मिथुनीपरमद्यास्य हं हणीयो विधिर्हितः ॥ ५८ ॥

ताम्रचूडवसातैलं हितञ्चोत्तरवस्त्रिषु ।

स्वगुप्ताफलसृङ्गीका कृष्णे क्षुरसितारजः ॥ ५९ ॥

समांशमर्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ।

सर्वं सम्यग्विमथ्याऽच्च मात्रं लिढ्वा पयः पिबेत् ॥ ६० ॥

हन्ति शुक्रक्षयोल्यांश्च दोषान् बन्ध्यासुतप्रदम् ॥ ६१ ॥

इति स्वगुप्तादि मन्थः ।

—०—

क्षौद्रार्धभागः कर्तव्यो भागः स्यात् क्षीरसर्पिषोः ।

शर्करायाश्च चूर्णञ्च द्राक्षाचूर्णञ्च तत्समम् ॥ ६२ ॥

स्वयंगुप्ताफलञ्चैव तथा चेक्षुरसस्य च ।

पिप्पलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् ॥ ६३ ॥

तदैकध्यं समानीय खजेनाद्य विमथ्य च ।

तस्य पाणितलं चूर्णं लिहन् क्षीरं ततः पिबेत् ॥ ६४ ॥

एतत्सर्पिः प्रयुञ्जानः शुद्धदेहो नरः सदा ।

शुक्रदोषान् जयेत्सर्वान् ये चापि भृशदुर्जयाः ॥ ६५ ॥

जयेच्छोणितरोगांश्च बन्ध्या गर्भक्षेपे च ।

सर्पिरेतप्रयुञ्जानात् योनिदोषांश्च प्रमुच्यते ॥ ६६ ॥

इति क्षौद्रार्धभागं घृतम् ।

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रेषु भोजनं यत् प्रकीर्तितम् ।
 मूत्राघातेषु तत्कुर्याद्देशकालविधानवित् ॥ ६७ ॥
 इति वङ्गसेने मूत्राघातनिदानचिकित्साधिकाः
 समाप्तः ॥ ३६ ॥

—०—

अथाश्मरीनिदानमाह ।

बातपित्तकफैस्त्रिस्तश्चतुर्थी शक्रजापरा ।
 प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः सूर्यमोपमाः ॥ १ ॥
 विशोपयेद्वस्तिगतं सशक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफ वा ।
 यदा तदाश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥
 नैकदोषाश्रयाः सर्वा अथासां पूर्वलक्षणम् ।
 वस्त्राधानं तदासन्न देशेषु परतोऽतिरुक् ॥
 मूत्रे वस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽचिः ॥ ३ ॥
 मामान्यलिङ्गं रुग्णाभिसेवनीवस्तिमूर्ध्वसु ।
 विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तयामार्गनिरोधने ॥ ४ ॥
 तद्वरपायात् सुखं मेहे दच्छं गोमेदकोपमम् ।
 तत्सहोभात् क्षते मास्र भायासाचाऽतिरुग्मवेत् ॥ ५ ॥
 तत्र बाताद् भृगं चाक्षीं दन्तान् खादति वेपते ।
 गृह्णाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिगं कणन् ॥ ६ ॥
 सानिलं मुञ्चति शक्तत् सुहुर्मंहतिविन्दुशः ।
 श्यावारुचाश्मरी चास्य स्याच्चिताकण्टकीव ॥ ७ ॥

—०—

चारान् यवागूः पेयाश्च कषायांश्च पयांसि च ।
 भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गैरश्मरिनाशनैः ॥ १७ ॥
 वीरहृत्तोऽग्निमन्यश्च काशः वृक्षादनीकुशः ।
 मोरटेन्दीवरोसूर्य भक्ता गोक्षुरदुण्डुकाः ॥ १८ ॥
 वसुकोवशिरो दर्भ शैरीयावश्मभेदकः ।
 गुन्द्रोऽनलः कुरण्डश्च गणो वीरतरादिकः ॥ १९ ॥
 अश्मरीशर्कराकृक् मारुतार्तिहरो गणः ।
 वृहद्वाते वीरतर स्तदभावेमतः शरः ॥ २० ॥

इति वीरतरादिगणः । इति वाताश्मरी ।

—०—

अथ निदानमाह ।

पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोषवान् ।
 भस्मातकार्वास्थिसंस्थाना रक्ता पीताऽसिताऽश्मरी ॥ २१ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

कुशः काशः शरो गुन्द्रः उक्कटो मोरटाश्मभित् ।
 दर्भो विदारीवाराक्षी शालिमूनं त्रिकण्टकः ॥ २२ ॥
 भल्लूकः पाटलापाठा प्रसूरोत्यकुरटिका ॥ २३ ॥
 पुनर्नवाशिरीपथ कथितैस्तु सुसाधितम् ।
 घृतं शिलाघ्नमधुकैर्बोजैरिन्दोवरस्य च ॥ २४ ॥
 वपुर्पैर्वाहकादीनां योजैयाऽवापितं श्मभम् ।
 भिन्नतिपित्तमभूता मश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ २५ ॥
 इति कुशाद्यं घृतम् ।

चारान् यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च ।

अथ निदानमाह ।

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ।
 स्थानाच्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ॥
 शोषयत्युपसंहृत्य शुक्रं तच्छुक्रजाश्मरी ॥ ३५ ॥
 वस्तिरुद्धूत्रकृत्वं मुष्कखययुकारिणी ।
 तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥ ३६ ॥
 पीडिते त्वक्काशेऽस्मि न्नश्मर्येव च शर्करा ।
 अणुशो वायुना भिन्ना सात्तस्मिन्ननुलोमगी ॥ ३७ ॥
 निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते ।
 मूत्रस्त्रोतः प्रविश्यैताः सिक्ताः कुर्युरुपद्रवान् ॥ ३८ ॥

—०—

अथोपद्रवानाह ।

दोर्बल्यं सदनं काश्यं कुचिरोगमथारुचिम् ।
 पांडुत्वमुष्णवातश्च दृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ ३९ ॥
 प्रसूननाभिद्वपणं बद्धमूत्रं रुजातुरम् ।
 अश्मरीक्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विताः ॥ ४० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

शुक्राश्मर्यान्तु सामान्यो विधिरश्मरिनागनम् ।
 यवचारगुडोन्मिश्रं रसं पुष्पफलोद्भवम् ॥
 पिवेन्मूत्रविषेऽनघं शर्कराश्मरीनागनम् ॥ ४१ ॥
 तिनाऽपामार्गकदली पलाशयवविल्वजः ।
 कायः पेयोऽयिमूत्रेण शर्कराऽश्मरिनागनः ॥ ४२ ॥

स्नेहेने भोजने चैव प्रयोज्य सर्पिरुत्तमम् ॥ ५४ ॥

इति दणपञ्चमूलाद्यं घृतम् ।

त्वक् पत्रफलमूलस्य वरुणात् सत्रिकण्टकात् ।

कपायेण पचेत्तैले वस्तिना स्थापनेन च ॥ ५५ ॥

शर्कराश्मरीशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ।

इति वरुणतैलम् ।

कुशाग्निमन्थशैरेय नलदर्भेक्षुगोक्षुराः ।

कपोतवङ्गावसुकबशिरेन्दीवरीशराः ॥ ५६ ॥

धातक्यरलुबन्दाक कर्णिकाराश्मबेदकाः ।

एषां कल्ककपायाभ्यां सिद्धं तैलं प्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥

पानाभ्यञ्जनयोगेन वस्तिनोत्तरवस्तिना ।

शर्कराश्मरिरोगेषु मूत्रकृच्छ्रे च दारुणे ॥ ५८ ॥

प्रदरे योनिशूले च शूक्रदोषे तथैव च ।

बन्ध्यागर्भप्रदं प्रोक्तं तैलमेतत् कुशादिकम् ॥ ५९ ॥

इति कुशाद्यं तैलम् । इति शर्कराश्मरी ।

नागरवरुणगोक्षुरुपापाणभित् कपोतवङ्गजः कायः ।

शुङ्ग्यावशूकविमिश्रः पीतो हन्त्यश्मरोमुग्राम् ॥ ६० ॥

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं मात्त्रिकसंयुतम् ।

अविचोरेण मत्ताह पेयमश्मरिनाशनम् ॥ ६१ ॥

पिवेद्वरुणजं मूलं कायं तत्कल्कसंयुतम् ।

काथय शिपुमुन्नीत्यः कटूपोऽश्मरिनाशनः ॥ ६२ ॥

वृद्धवेरयवक्षार पथ्याकालीयकान्वितः ।

दधिमण्डो भिनत्युग्रा मश्मरीमागः पानतः ॥ ६३ ॥

पापाणभेदवरुणगोक्षुरकपोतवङ्गजः कायः ।

गिरिजतु शुङ्गप्रगाढः कर्कटिकात्रपुमशीजयुतः ॥ ६४ ॥

पेयोऽश्मरीमवश्यं दुर्भेदामपि भिन्नति योगवरः ।
 शिखरिणमिव शतकोटिः शतमन्योर्हस्तनिर्मुक्तः ॥ ६५ ॥
 त्र्योपर्णीफलबीजं मथितेन यः पुमानद्यात् ।
 शाकमशित्वाऽवश्यं तद्धन्ति रोगाऽश्मरीपीडाम् ॥ ६६ ॥
 श्वदंष्ट्रैरण्डबीजानि नागरं वरुणत्वचः ।
 एतत् क्वाथवरं प्रातः पिवेदश्मरिनाशनम् ॥ ६७ ॥

—०—

रक्तोद्भवेत्तूपलनालताल काशेक्षुवालीक्षुकुशोदकानि ।
 पिवेत्सिताक्षौद्रयुतानि खादेद्विदारिमिक्षुत्रपुसानि चैव ॥ ६८ ॥
 पलान्धटौ तु कुर्वीत चाराणां वरुणत्वचः ।
 तद्वर्धं यावशूकात्तु ततोऽप्यर्धं गुडाद् दृतम् ॥ ६९ ॥
 एकोक्त्य विन्द्यैतत् खादेत् कर्पप्रमाणतः ।
 घर्मांबुना सहावश्यं कृच्छ्राश्मरिविनाशनम् ॥ ७० ॥
 इति वरुणादिचूर्णम् ।

वरुणकभस्मपरिच्युत सलिलं तच्चूर्णं यावशूकयुतम् ।
 कथनीयं तत्ताव द्यावच्चूर्णत्वमायाति ॥ ७१ ॥
 तद्गुडयुक्तं हन्या तद्गुदारामश्मरीं घोरात् ।
 वज्रिसदनं सुकटं मश्ममयीमश्मरीं चाशु ॥ ७२ ॥

इति वरुणादिचूर्णस्यैवायमन्यः प्रकारः ।

तो जम्बुं कृमिभिर्धनं सुतरुणं स्निग्धं शचिस्थानजम् ।
 वसे पुण्यनिरीक्षिते वरुणकं छित्वा तुलां ग्राहयेत् ॥
 सगृह्यासु चतुर्गुणासु विप्रचेत्पादावशेषं जलम् ।
 तत्तुल्येन गुडेन वै दृढतरे भाण्डे पचेत्तत् पुनः ॥ ७३ ॥
 ज्ञात्वैवं घनतां गुडे परिणते प्रत्येकमेकां पलम् ।

शृण्वेर्वारकबीजगोक्षुरकणा पापाणभिच्छीतलाः ॥
 कूष्माण्डवपुसाच्चबीजकुनटी बास्तूकसौभाञ्जन ।
 द्राक्षैलागिरिजाभया कृमिहृतां चूर्णी कृतानां क्षिपेत् ॥७४॥
 पथ्याशी प्रतिवासरं गुडममुं योग्यप्रमाणं नरः ।
 खादेत्तस्य समस्तदोष जनिताऽश्मर्यः पतन्ति द्रुतम् ॥ ७५ ॥
 इति वरुणकगुडः ।

कुलित्यमिन्धूत्यविडङ्गसारं सशर्करं शीतलियावशूकम् ।
 बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराभ्यां घृतं पचेत्तद्वरुणस्य तोये ॥७६॥
 दुःसाध्य सर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं मूत्राभिघातञ्च समूत्रबन्धम् ।
 एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं प्ररुद्धहृत्तानिंबवज्रपातः ॥७७॥
 इति कुलित्याद्यं घृतम् ।

शरादिपञ्चमूल्या वा कपायेण पचेद् घृतम् ।

प्रस्थं गोक्षुरकस्केन सिद्धमद्यास्तगर्करम् ।

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रं रेतोमार्गरुजापहम् ॥ ७८ ॥

इति शरादिपञ्चमूलघृतम् ।

वरुणस्य तुलां क्षुणां जलद्रोणे विपाचयेत् ।

पादशेषं परिश्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७९ ॥

वरुणं कदलीविष्यं वृणजं पञ्चमूलकम् ।

अमृता चाश्मभेदञ्च बीजञ्च वपुसस्य च ॥ ८० ॥

शतपर्शतिनचारं पलाशचार एव च ।

यूथिकायाय मूत्रानि कार्पिकानि समाधयेत् ॥ ८१ ॥

पथ्य भावां पिबेज्जन्तु दंशकान्नाद्यपेक्षया ।

जीर्णं चाग्निन् पिबेत्पुवं गुडं जीर्णन्तु मन्तुना ॥ ८२ ॥

पद्मरीं गर्करास्त्रैव मूत्रकृच्छ्रं नागयेत् ॥ ८३ ॥

इति वरुणघृतम् ।

सैन्धवाद्यन्तु यत्तैलमृषिभिः परिकीर्तितम् ।
 तत्तैलं द्विगुणं क्षीरं पचेद्दीरतरादिना ॥ ८४ ॥
 काथेन पूर्वकल्केन साधितन्तु भिषग्वरैः ।
 एतत्तैलवरं श्रेष्ठ मश्मरोणां विनाशनम् ॥ ८५ ॥
 मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे पिच्छिते मथिते तथा ।
 भग्ने यमाभिपत्रे च सर्वथैव प्रशस्यते ॥ ८६ ॥

इति वीरतराद्यं तैलम् ।

क्षीरवृक्षाश्मभेदाग्नि मन्थस्योनाकपाटलाः ।
 वृक्षादनी सहैरण्डाभल्लूकोक्षीरपद्मकम् ॥ ८७ ॥
 कुशकाशशरेच्छूणामास्तीता कोकिलाचयोः ।
 शतावरीश्वदंष्ट्रा च सोत्कटाद्वयवज्जुलाः ॥ ८८ ॥
 कपोतवङ्गाश्रीपर्णी काश्मरीमूलसंयुता ।
 एतैः कंषायैः कल्कैश्च तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ ८९ ॥
 वातपित्तविकारेषु वस्तिं दद्याद्विचक्षणः ।
 शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ ९० ॥

इति द्वितीयं वीरतराद्यं तैलम् ।

पुनर्नवान्मृताभीरु सचारलवणत्रयैः ।
 शठीकुट्टवचा मुस्तुरास्त्राकट्फलपौष्करैः ॥ ९१ ॥
 यवानीहपुषाहिङ्गु शताह्वा साजमोदकैः ।
 विडङ्गातिविषायष्टी पञ्चकोलकसंयुतैः ॥ ९२ ॥
 एतैरजसमैः कल्कैः स्त्रौलप्रस्थं विपाचयेत् ।
 गोमूत्रं द्विगुणं देयं काष्ठीकं तद्वदेव तु ॥ ९३ ॥
 पुनर्नवाद्यमित्येतत्तैलं पानेन वस्तिना ।
 शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रप्रमोचनम् ॥ ९४ ॥

कट्यूरुवस्तिमेद्रस्य कुचिशूलविनाशनम् ।

कफवातामशूलघ्नं मन्त्रवृद्धेश नाशनम् ॥ ८५ ॥

इति पुनर्नवाद्यं तैलम् ।

ब्रन्नाधिकारनिर्दिष्टं सैन्धवाद्यमिहेयते ।

सर्वथैवोपयोष्यस्तु गणो वीरतरादिकः ॥ ८६ ॥

घृतैः क्षीरैः कषायैश्च क्षारैर्योत्तरवस्तिभिः ।

शल्पवतीमशाम्यन्तीं प्रत्याख्याय समुद्धरेत् ॥ ८७ ॥

इति वङ्गसेनेऽश्मरीनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३७ ॥

—०—

अथ प्रमेहनिदानमाह ।

आस्यासुखं सप्रसुखं दधीनि आस्योदकानूपरसाः पयांसि ।

नवावपानं गुडवैकृतञ्च प्रमेहहेतुः कफकृच्छ्र सर्वम् ॥ १ ॥

मेदश्च मांसञ्च शरीरजं च क्लेदं कफो वस्तिगतं प्रदूष्य ।

करोति मेहान् मसुदोर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ।

क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्यधातून् मंदूष्यमेहान् कुरुतेऽनिलयः ॥ २ ॥

साध्याः कफोत्था दग्धपित्तजाः पङ्-

याप्या न माध्याः पयनाच्चतुष्काः ।

समक्रियत्वाद्विपमक्रियत्वान्

महात्ययत्वाच्च यथाक्रमन्ते ॥ ३ ॥

कफः सपित्तः पयनश्च दोषा मेदोश्च शृङ्गावुद्यमानमोहाः ।

मज्जारमोजः पिग्निश्च दूताः प्रमेहिणं विगतिरेव मेहाः ॥ ४ ॥

दस्तादीनां मन्त्राभ्यां प्रायुषं पाणिपादयोः ।

दाहयिकगता देहे तदङ्गाद्यभ्यञ्ज आचरेत् ॥ ५ ॥

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताऽऽविलम्बता ।
दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ ६ ॥
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्पते ॥ ७ ॥

—०—

अथ कफमेहानाह ।

अच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ।
मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाविलपिच्छिलम् ॥ ८ ॥
इक्षोरसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः ।
सान्द्री भवेत्पर्युषितं सार्द्रमेहेन मेहति ॥ ९ ॥
शुरामेही शुरातुल्यमुपर्यच्छमघो घनम् ।
संहृष्टरोमापिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥ १० ॥
शक्राभं शक्रमित्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ।
मूत्राणून् सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ ११ ॥
शीतमेही सुवहुशो मधुरं भृशशीतलम् ।
शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥ १२ ॥
लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ।

—०—

अथ पित्तमेहानाह ।

गन्धवर्णरसस्पर्शः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥ १३ ॥
नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मयीनिभम् ।
हारिद्रमेहीकटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ॥ १४ ॥
विस्त्रं माञ्जिष्टमेहेन मञ्जिष्टासलिलोपमम् ।
विस्त्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहिनः ॥ १५ ॥

—०—

अथ वातमेहानाह ।

वमामेहीवसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ।
 मज्जाभ मज्जामिश्रं वा मज्जामेही मुहुर्मुहुः ॥
 कषायं मधुरं रूक्षं चौद्रमेहं वदेद्बुधः ॥ १६ ॥
 हस्तीमत्त इवाऽजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ।
 मलसीकं विवदञ्च हस्तीमेही प्रमेहति ॥ १७ ॥

—०—

अथोपद्रवानाह ।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दि स्तन्द्राकासः सपीनसः ।
 उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १८ ॥
 वस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः ।
 दाहदृष्णास्त्रिकामूच्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ १९ ॥
 वातजानासुदावर्त्त कम्पहृद्गहलोत्ताः ।
 शूलमुन्निद्रतायोषः श्वासः कामय जायते ॥ २० ॥
 यथोक्तोपद्रवारिष्ट मतिप्रभुतमेव च ।
 पिडिकापोडितं गाढं प्रमेही हन्ति मानवम् ॥ २१ ॥
 मूच्छाछर्दिज्वरश्वास कामवीमर्षगौरवैः ।
 उपद्रवैरुपेतो यः प्रमेही दुष्पूतिक्रियः ॥ २२ ॥

—०—

अथ स्त्रीणां प्रमेहाभावे कारणमाह ।

रजः प्रमेकास्त्रारोणां मासि मासि विशहरति ।
 कृत्स्नं शरीरं दोषांश्च न प्रमेहन्यतः स्त्रियः ॥ २३ ॥
 जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा न साध्यरोगः स हि बीजदोषात् ।
 ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रमेदन्यमाध्यात् ॥ २४ ॥

अथ वातमेहानाह ।

वसामेहीवसामित्रं वसाभं मूत्रवेमुहुः ।
मज्जाभ मज्जामित्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥
कपायं मधुरं रुचं क्षौद्रमेहं वदेहुधः ॥ १६ ॥
हस्तीमत्त इवाऽजस्तं मूत्रं वेगविवर्जितम् ।
सलमीकं विवदञ्च हस्तीमेही प्रमेहति ॥ १७ ॥

—०—

अथोपद्रवानाह ।

अविपाकीऽरुचिर्हृदि स्तन्त्राकासः सपीनसः ।
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १८ ॥
वस्तिमेहनयोस्तीक्ष्णो मुष्कावदरणं ज्वरः ।
दाहदृष्याम्निकामूर्च्छां विड्मेदः पित्तजन्मनाम् ॥ १९ ॥
वातजानामुदावर्तं कम्पद्गद्गलोलताः ।
शूलमुन्निद्रताशोपः श्वासः कासश्च जायते ॥ २० ॥
ययोक्तोपद्रवारिष्टं मतिप्रसृतमेव च ।
पिडिकापोडितं गाढं प्रमेही हन्ति मानवम् ॥ २१ ॥
मूर्च्छाहृदिज्वरश्चास कासवीमर्षगौरवैः ।
उपद्रवैरुपेतो यः प्रमेही दुष्प्रतिक्रियः ॥ २२ ॥

—०—

अथ स्त्रीणां प्रमेहाभावे कारणमाह ।

रजः प्रमेकाद्वारोणां मगसि मामि विगृह्यति ।
क्षतस्रं शरीरं दोषांश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ॥ २३ ॥
जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा न साध्यरोगः स हि बीजदोषात् ।
ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥ २४ ॥

सर्वे एव प्रमेहान्तु कालेनाप्रतिकारिणः ।

मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥ २५ ॥

मधुमेहे मधुसम जायते स किल द्विधा ।

क्रुहे धातुक्षयादायी दोषाहतपत्रेऽथवा ॥ २६ ॥

ग्राह्यतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् ।

क्षणात् क्षीणः क्षणात् पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २७ ॥

मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति ।

सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनो रतः ॥ २८ ॥

शरायिका कच्छपिका जालिनी विनतालजी ।

मसूरिका सर्पपिका पुत्रिणी विदारिका ॥ २९ ॥

विद्रधियापि पिडका प्रमेहोपेक्षया दग ।

मन्थिमर्मसु जायन्ते मांसलेपु च धामसु ॥ ३० ॥

अन्तोष्ठा च तट्टपा निम्नमध्या शरायिका ।

गौरमर्पपसंस्थाना तत्प्रमाणा च मर्पणी ॥ ३१ ॥

मटाङ्गा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ।

जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमाहता ॥ ३२ ॥

अवगाटरुजाक्रेटा पृष्टे वायुदरेऽपि वा ।

महतो पिङ्गकानीला भा बुधैर्यिनता स्मृता ॥ ३३ ॥

महत्त्वम्पचिता ज्ञेया पिडका चापि पुत्रिणी ।

मसूरमस्थानमसा विज्ञेया तु मसूरिका ॥ ३४ ॥

रक्तामिताम्फोटचिता विज्ञेयात्वन्तजी भवेत् ।

विदारिकान्धवहता कठिना च विदारिका ॥ ३५ ॥

विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका च सा ॥ ३६ ॥

ये यन्मयाः स्मृता मेहा स्तेषामेतास्तु तन्मयाः ।

विना प्रमेहमध्येता जायन्ते दुष्टमेढमः ॥

तावच्चेता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥ ३७ ॥
 गुदे हृदि शिरस्थसे पृष्ठे मर्मांसु चोत्थिताः ।
 सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिङ्काः परिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥
 तृट्श्वासमांससंकोच मोहहिकामदज्वराः ।
 विसर्पमर्मांसरोधाः पिङ्कानामुपद्रवाः ॥ ३९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

श्यामाककोद्रवीहाल गोधूमचणकादकी ।
 कुलित्याय हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा ॥ ४० ॥
 मेहिनां तिक्तशकानि जाङ्गला हरिणायुजाः ।
 यवान्न विकृतिर्मुक्ताः शस्यन्ते शालिपट्टिकाः ॥ ४१ ॥
 मौवीरश्च सुरातक्रं तैलं चीरं घृतं गुडम् ।
 अस्त्रेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥ ४२ ॥

—०—

तत्रादित एव प्रमेहिन मुपस्त्रिग्वमन्यतमेन । प्रियम्बादिसिं
 तैलेन वामयेत्प्रगाढं विरेचयेच्च विरेचनादनन्तरं सुरसादिजग-
 येणाऽऽस्थापयेत् । महीपधभद्रदारुमुस्तावापेन मधुमेथ्यगुणै-
 दह्यमानं वा न्यप्रीधादिकपायेण निस्तौलेनेति । वातोक्तटेषु सं-
 पानं विशेषतः ।

—०—

पारिजातजयानिम्ब वज्रिगायत्रिणां पृथक् ।
 पाठायाः सागुरोः पीता इयम्य शारदस्य च ॥ ४३ ॥
 जलेक्षुमद्यमिकताः शनैर्लक्षणपिष्टकान् ।
 सान्द्रमेहान् कफान् घ्नन्ति कायायाटौ समासिजाः ॥ ४४ ॥
 य इरीतकोकटफलमुस्तलोधाः पाठाविङ्गद्वार्जुनघन्यामाः ।

उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं कदम्बशालार्जुनदीप्यकाच ॥ ४५ ॥
 दावीविडङ्गं खटिरो धवथ सुराक्ष कुष्ठागुरुचन्दनानि ।
 दार्व्यग्निमन्थौ विफला च पाठामूर्वाभया चैव तथा खट्वद्रा ॥ ४६ ॥
 यवान्युगीराखभया गुडूची जंबूगिवाचिवकसप्तपर्णाः ।
 पादैः कपायाः कफमेहविज्ञे र्दण्डोपदिष्टा मधुसंप्रयुक्ताः ॥ ४७ ॥
 उगीरलोध्रार्जुनचन्दनानां सुगीरमुस्ता मधुकाभयानाम् ।
 पटोलनिम्बामलकास्तनानां सुस्ताभयासुष्ककह्लकाणाम् ॥ ४८ ॥
 लोधास्त्रकालीयकधातकीनां विज्ञार्जुनानां मिश्रिसीत्पलानाम् ।
 शिरोपधान्यार्जुनकेशराणां प्रियंगुपद्मोत्पलकिंशुकानाम् ॥ ४९ ॥
 अमृत्यपाठामगवेतसानां कटह्लटेर्युत्पलमुस्तकानाम् ।
 पित्तेषु मेहेषु सदोपदिष्टाः कपाययोगा मधुसंप्रयुक्ताः ।
 कफमेहहरत्नाय सिद्धं सर्पिः कफे हितम् ।
 पित्तमेहघ्ननिर्युहं सिद्धं पित्तहरं घृतम् ॥ ५१ ॥
 कम्पिलसप्तच्छदशालजानि वैभीतरौहोतककोटजानि ।
 पटोलकालीयगदागुरुषि चोद्रेण लिङ्गात्कफपित्तमेही ॥ ५२ ॥
 दूर्वाकसेरूपतीक्ष्णं कुम्भीकप्लवगवलम् ।
 जलेन कथितं पीतं गुक्तमेहहरं परम् ॥ ५३ ॥
 विफलारग्यधद्राक्षा कपायो मधुसंयुतः ।
 पीतो निहन्ति फेनाच्च प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥ ५४ ॥
 छिन्नावट्टिरुपायं वा पाठाकुटजरासठम् ।
 तिताकुष्टश्च संपूर्णं सर्पिमैत्री पिवेन्नरः ॥ ५५ ॥
 पाठागिरीपदुम्पश्चनूर्वातिन्दुकर्जिगुजम् ।
 कपित्थानां भिषक् द्वायं हस्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥
 विफलादीरुदार्व्यब्दकायः चोद्रेण मेहहा ।
 कुटजासनदार्व्यब्द फलत्रयभवोऽथवा ॥ ५७ ॥

गुडूच्यास्वरसः पेयो मधुना सह मेहजित् ।

निशाकल्कयुतो धात्री रसो वा माक्षिकान्वितः ॥ ५८ ॥

मधुना त्रिफलाचूर्णं मयवाश्मज्जतूद्भवम् ।

लोहजंवाभयोत्यं वा लिहेन्मेहनिवृत्तये ॥ ५९ ॥

कटंकटेरी मधुकत्रिफलाचिचकैः समैः ।

सिद्धः कषायः पातव्यः प्रमेहानां विनाशनः ॥ ६० ॥

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां सुस्ताञ्च निःकाष्यनिशांशकत्वम् ।

पिवेत्कषायं मधुसंप्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु ॥ ६१ ॥

इति फलत्रिकादिः कायः ।

गोभक्षितान्यवान्मूत्रं भावितान् केवलानपि ।

चित्तकोदञ्चिता खादेन्निम्बमुद्गरसेन वा ।

भक्षयेन्मधुना मासं प्रमेही यवपिष्टकम् ॥ ६२ ॥

मेदोघ्ना वह्ममूत्राय समाः सर्वेषु धातुषु ।

यवास्तस्माद्विशिष्यन्ते प्रमेहेषु विशेषतः ॥ ६३ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्चत्य स्योनाकारग्वधासनम् ।

शाम्भं कपित्थं जंवूयं प्रियालं ककुभं धवम् ॥ ६४ ॥

मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् ।

पटोलं मेपशृङ्गी च दन्तोचित्तकमाढकम् ॥ ६५ ॥

करञ्जत्रिफलाशकं भस्मातकफलानि च ।

एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६६ ॥

न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह योजयेत् ।

फलत्रयश्चातुर्विधेन मूत्रं विशदयति ॥ ६७ ॥

एतेन विंशतिमेहं मूत्रक्षयः प्राणि यानि च ।

प्रयसं यान्ति योगेन पिङ्गका न च लायते ॥ ६८ ॥

इति न्यग्रोधाद्यं चूर्णम् ।

त्रिकटुत्रिफलातुल्यं गुग्गुलुञ्च समांशिकम् ।
 गोक्षुरकाथसंयुक्तां गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ६८ ॥
 देशकालचलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम् ।
 न चात्र परिहारीऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेष्टितम् ॥ ७० ॥
 प्रमेहान् वातरोगांश्च वातशोणितमेव वा ।
 मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरश्चाशु नाशयेत् ॥ ७१ ॥

इति त्रिकट्वाद्या गुटिका ।

दाडिमस्य च घोजानि क्षुमिघ्नस्य च तण्डुलाः ।
 रजनी चवकाऽजाजी नागरं त्रिफला कणा ॥ ७२ ॥
 त्रिकण्टकस्य च फलं यवानी धान्यकं तथा ।
 वृक्षाम्बु चविकाकोल सिन्धूद्भव समाहितैः ॥ ७३ ॥
 कल्के रक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विषाचयेत् ।
 भोज्ये पाने प्रदातव्यं सर्वर्तुषु च मात्रया ॥ ७४ ॥
 प्रमेहान् विंशतिं चैव मूत्राघातं तथाश्मरीम् ।
 कृच्छ्रं सुदारुणञ्चैव हन्त्यादेव नमश्चयः ॥ ७५ ॥
 विबन्धानाह शूलघ्नं कामला ज्वरनाशनम् ।
 दाडिमाद्यं घृतञ्चैतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ ७६ ॥

इति दाडिमाद्यं घृतम् ।

श्वदंष्ट्रा सकणा मुस्ता गुडूची फलगुपल्लवाः ।
 दर्भाद्गुराक्ष गण्डीरी रोहिषस्य च पल्लवाः ॥ ७७ ॥
 काला पुनर्नवा श्यामा शारिवा देवदारु च ।
 पिप्पली शृङ्गवेरश्च विडङ्गं मरिचानि च ॥ ७८ ॥
 पाठा कम्पिलकं भार्गी द्वे हरिद्रे निदग्धिका ।
 एरण्डमूलं दन्ती च चित्रकं कटुरोहिणी ॥ ७९ ॥

एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
 यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विस्तान् स्यादयो रजः ॥ ८० ॥
 ततो विडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा ।
 अलाभे चापि मद्यानां मेहान् जयति विंशतिम् ॥ ८१ ॥
 श्वयथुश्च तथाशांसि पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
 उदराख्यं शूलानि ग्रीहानश्चापि कर्पति ॥ ८२ ॥
 एभिर्गोमूत्रपिष्टैस्तु गुटिकां कारयेद्विपक्व ।
 रोगेष्वेतेषु मुख्याः स्युर्बलमांसविवर्द्धनाः ॥ ८३ ॥

इति गोक्षुरादिचूर्णगुटिकाः ।

कण्टकार्या गुडुच्याश्च संहरेच्च शतं शतम् ।
 सङ्गोलीमुखले विहायतुर्द्विगैश्च सः पचेत् ॥ ८४ ॥
 तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 त्रिकटुविफलारास्त्रा विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ ८५ ॥
 काशमर्थः पञ्चमूलानि पूतिकस्य त्वमेव च ।
 कलिङ्ग इति सर्वाणि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥ ८६ ॥
 अक्षमात्रं पिबेत् प्रातः शालिभिः पयसा हितैः ।

प्रमेहं मधुमेहश्च मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥ ८७ ॥
 आलस्यञ्चान्धवृद्धिश्च कुष्ठरोगविशेषतः ।
 क्षयश्चैव निवर्त्येतन्नास्त्रा सिहान्मृतं घृतम् ॥ ८८ ॥

इति सिहान्मृतं घृतम् ।

दशमूलं करञ्जी द्वौ देवदारु हरीतकी ।
 वर्षाभूर्वरुणो दन्तो चित्रकं सपुनर्नमम् ॥ ८९ ॥
 सुधानीपकदम्बश्च विल्वभक्ष्मातकानि च ।
 गङ्गीपुष्करमूलश्च पिप्पलीभूलमेव च ॥ ९० ॥

पृथग्दशपलान् भागा नेतांस्तोयार्मणे पचेत् ।
यवकीलकुलित्यानां प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८१ ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं पचेद्विपक् ।
निचुलं विफलाभांगीं रोहिणं गजपिप्पली ॥ ८२ ॥
शृङ्गवेरं विडङ्गानि वचा कम्पिस्तकं तथा ।
गर्भनानेन तत्सिद्धं पौययेत्तु यथा बलम् ॥ ८३ ॥
एतद्वान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ।
कुट्टप्रमेहगुल्मांश्च श्लययुं वातशोणितम् ॥ ८४ ॥
प्लीहोदराणि चार्शांसि विद्रधिं पिडकाश्च याः ।
अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरितन्नियच्छति ॥ ८५ ॥
पृथक्तोयार्मणे तत्र पचेद्रव्याच्छतं शतम् ।
शतत्रयाधिके तोय सुत्सर्गक्रमतो भवेत् ॥ ८६ ॥

इति धान्वन्तरं घृतम् ।

अर्जुनपटोलनिम्बैः सवचादीप्यकरसाममस्त्रिष्टैः ।
भक्तातकीगुरुघनैः सगदानलचन्दनोशीरैः ॥ ८७ ॥
गोक्षुरुकमोमवल्कैर्निम्बपटोलैर्हरिद्रयावरया ।
अश्मन्तकार्जुनाभ्यां दीप्यकयुक्तेन चैव शोभ्रेण ॥ ८८ ॥
मस्त्रिष्टातिविपाभ्यां कल्कैर्वा कपायैः पचेत्तैलम् ।
कफवातोत्थे मेहे पित्तकृते साधयेत्सर्पिः ॥ ८९ ॥

इत्यर्जुनाद्यं घृततन्तैलम्बा ।

गोकण्ठकं सदलमूलफलं गृहित्वा
संकुट्टितं पलशतं कथितन्तु तोये ।
पादस्थितेन च जलेन पलानि दत्त्वा
पञ्चाशतश्च विपचेदथ शर्करायाः ॥ ९०० ॥

तस्मिन् घनत्वमुपगच्छति चूर्णितानि
 दद्यात्पलद्वयमितानि सुभेषजानि ।
 शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगैला-
 जातीयकोशककुम्भपुसीफलानि ॥ १०१ ॥
 वांसीपलायकमिहप्रणिधाय नित्यं
 लेह्यं सुमिहममृतं पलसंमितन्तु ।
 हन्त्याशु मूत्रपरिदाहविवन्धशुक्रान्
 कृच्छ्राश्मरोरुधिरमेहमधुप्रमेहान् ॥ १०२ ॥

इति गोक्षुराद्यवलेहः ।

भारवर्गकषाय चतुर्थांशावशिष्टमवतार्य । परिस्त्राव्यपुनरव-
 नीय माधयेत् । सिध्यति चामलकलोध्रप्रियंगुदन्तीकृष्णायस-
 ताम्बचूर्णान्यावपेत् । तदेतदनुपदध् लेहीभूतमवतार्याऽनुगुप्तं
 निदध्यात् ततो यथा योगमुपशुञ्जीत एषः लेहः सर्वमधुमेहान-
 पहन्ति ।

इति सारलेहः ।

अमनश्च प्रियालश्च सालश्च खादिरं तथा ।
 मालवगं तथा ग्राह्यं भवेच्चैतद्विचक्षणैः ॥ १०३ ॥
 मधुमेहत्वमापन्नं मिषगुभिः परिवर्जितम् ।
 योगेनानेन मतिमान् प्रमेहिनमुपाचरेत् ॥ १०४ ॥
 मासिशुक्रे शुचौ वापि शैलाः सूर्यांशु तापिताः ।
 जतुप्रकाशं खरसं शिलाभ्यः प्रस्रवन्ति हि ॥ १०५ ॥
 शिलाजत्विति विख्यातं महाव्याधिनिवारणम् ।
 वम्बादीनाञ्च लोहानां पणामन्यतमञ्च यत् ॥ १०६ ॥
 ज्ञेयं तद्वन्धतथापि षड्योनि प्रथितं क्षितौ ।

लोहाद्भवति यद्यस्माच्छिलाजतु जतुप्रभम् ॥ १०७ ॥
 अस्य लोहस्य तद्दीर्घं रसं वापि विभर्त्ति तत् ।
 त्रपुसीसायसादीनि प्रधानान्युत्तरोत्तरम् ॥ १०८ ॥
 यथा तथा प्रयोगोऽपि श्रेष्ठः श्रेष्ठगुणः स्मृतः ।
 तत्सर्वं तिक्तकटुकं कषायानुरसं सरम् ॥ १०९ ॥
 कटुपाक्युष्णवीर्यञ्च शोषणं छेदनं तथा ।
 तत्र यल्लघुकृष्णाभं सिग्धं निःशर्करञ्च यत् ॥ ११० ॥
 गोमूत्रगन्धिनीलं वा तत्प्रधानं प्रचक्षते ।
 तद्भावितं सारगणैर्हृतदोषं द्रिनादितः ॥ १११ ॥
 पिवेत्सारोदकेनैव श्लक्ष्णपिष्टं यथा बलम् ।
 जाङ्गलेन रसेनाद्या तस्मिन् जीर्णे तु भोजनम् ॥ ११२ ॥
 उपयुज्यतुलामेव मृतस्यैवाश्मजन्मनः ।
 विजित्वा मधुमेहाख्यं मन्तकं रोगशङ्करम् ॥ ११३ ॥
 वपुर्वर्णवलोपितः शतं जीवत्यनामयः ।
 शतं शतं तुलायान्तु सहस्रं दशतौलिकम् ॥ ११४ ॥
 भस्मातकविधानेन परिहारविधिः स्मृतः ।
 मेहं कुष्टमपस्मारं मुन्मादं श्लोषदं तथा ॥ ११५ ॥
 शोषं शोफार्शसी गुल्मं पाण्डुतां विषमज्वरम् ।
 व्यपोहत्यचिरात्कालाच्छिलाजतुनिपेवितम् ॥ ११६ ॥
 न सोस्तिरोगोऽयश्चापि निहन्यात्तच्छिलाजतु ।
 शर्करां चिरसंभूतां भिन्नजि च तथाश्मरीम् ॥ ११७ ॥
 भावनालोडने चास्य कर्त्तव्ये भेषजैर्हितैः ।
 एवं च माक्षिकं धातुं तापीजममृतोपमम् ॥ ११८ ॥
 मधुरं काञ्चनाभासं मन्त्रं वा रजतप्रभम् ।
 व्यपोहतिज्वरान् कुष्टं मेहपाण्डुमथक्षयान् ॥ ११९ ॥

तद्भावितान् कुलित्यांश्च कपोतांश्च विवर्जयेत् ॥ १२० ॥

इति शिलाजतुमाचिक्रयोः प्रयोगः ।

प्रमेहपिटिकानां प्राकार्यं रक्तावसेचनम् ।

पाटनञ्च विषकानां तासां पानं प्रशस्यते ॥ १२१ ॥

कायो वनस्पतेर्वृक्षमूत्रं तीक्ष्णञ्च शोधनम् ।

एलादिकेन कल्केन तैलं व्रणविशोधनम् ॥ १२२ ॥

कायमारग्वधादीनां कुर्यादुद्धर्त्तनानि च ।

मालसारादिनासेकं भोज्यादींश्चणकादिना ॥

प्रमेहिनी यदामूत्रं मनाविलम्बपिच्छलम् ।

विशदं तिक्तकटुकं तदारोग्यं प्रचक्षते ॥ १२३ ॥

इति वङ्गसेने प्रमेहनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३८ ॥

—०—

अथ मेदोनिदानमाह ।

अध्यायामदिवास्वप्न श्लेष्मलाहारसेविनः ।

मधुरान्तरसप्रायः स्नेहान्मेदो विवर्द्धते ॥ १ ॥

मेदसाहत्यमार्गत्वात् पुण्यन्त्यन्त्ये न धातवः ।

मेदस्तु चीयते तस्मा दसक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

क्षुद्रश्चामलपामोहः स्वप्नक्रथनसादनैः ।

युक्तः क्षुत्स्वेददौगन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैद्युनः ॥ ३ ॥

मेदस्तु सर्वभूतानां मुदरे वस्तिषु स्थितम् ।

अतएवोदरे हृदिः प्रायो मेदश्चिनी भवेत् ॥ ४ ॥

मेदसाहत्यमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः ।

धरन् सन्धुक्षयेदग्निं माहारं शोषयत्यपि ॥ ५ ॥
 तस्मात्सशीघ्रं जरय त्याहारश्चापि काङ्क्षते ।
 विकारांश्चाश्रुते घोरान् काञ्चित्कालविपर्ययात् ॥ ६ ॥
 एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ ।
 एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा ॥ ७ ॥
 मेदस्थतीवसंवृद्धे सहसैवानिलादयः ।
 विकारान्दारुणान् कृत्वा नाशयत्याशु जीवितम् ॥ ८ ॥
 मेदोमांसातिवृद्धत्वा च लस्फिगुदरस्तनः ।
 अयथोपचयोक्ताहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥
 स्थूले स्युर्दुस्तराः कुष्टविसर्पाः सभगन्दराः ।
 ज्वरातीसारमेहार्शः श्लेष्मदाऽपचिकामलाः ॥ १० ॥
 मेदसः स्वेददौर्गन्ध्या जायते जन्तवोऽणवः ॥

२

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पुराणाः शालयो मुहाः कुलित्योद्दालकोद्भवाः ।
 लवणावस्तयथैव सेव्या मेदस्तिना सदा ॥ ११ ॥
 अस्त्रप्रक्ष्व व्यायच्च व्यायामश्चिन्तनानि च ।
 स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तं क्रमेणाति विवर्धयेत् ॥ १२ ॥
 अमचिन्ता व्यवयाध्व चौडजागरणप्रियः ।
 हन्त्यऽवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनम् ॥ १३ ॥
 सचव्यजोरकव्योष हिगुसौबर्चलानलाः ।
 मसुना शक्तयः पीता मेदोघ्ना बह्निदीपनाः ॥ १४ ॥
 फलत्रयं त्रिकटुकं सतैललवणान्वितम् ।
 पण्मासानुपयोगेन कफमेदो निनापहम् ॥ १५ ॥

विडङ्गं नागरं चारं काललोहरजो मधु ।

यवामलकचूर्णं तु प्रयोगः श्रेष्ठ उच्यते ॥ १६ ॥

मूत्रं वा त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं मधूदकम् ।

विल्वादि पञ्चमूलस्य प्रयोगः क्षौद्रसयुतः ॥

अतिस्यूल्यहरः प्रोक्तो मण्ड्य सेवितो ध्रुवम् ॥ १७ ॥

कर्कशदलांघ्रिसलिलं शतपुष्पाङ्गिगुंसंयुक्तम् ।

पुटकेन हन्ति नियतं सर्वभवां मेदसां वृद्धिम् ॥ १८ ॥

क्षारं बातारिपत्रस्य हिङ्गुयुक्तं पिवेन्नरः ।

मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमण्डसमन्वितम् ॥ १९ ॥

गवेधुकानां पिष्टानां यवानाञ्चाथ शक्तवः ।

सक्षौद्रत्रिफलाकाथः पीतो मेदोहरो मतः ॥ २० ॥

गुडूक्षौत्रिफलाकाथः स्तथा लोहरजो युतः ।

अश्मजं महिषाक्ष वा तेनैव विधिना पचेत् ॥ २१ ॥

अतिमुक्ताद्बीजमध्यं मधुलीटं हन्युदग्गृद्धिम् ।

मधुना चित्रकमूलं तथैव हितभोजने भुङ्क्ते ॥ २२ ॥

यद्दोरबूकमूलं मधुदिग्धं स्थाप्यते निशां सकलाम् ।

तस्य सलिलस्य पानाज्जठरवृद्धिं शमं नयति ॥ २३ ॥

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्यूल्यनाशनम् ।

उष्णमन्त्रस्य मण्डं वा पिबन् क्षयतनुर्भवेत् ॥ २४ ॥

वदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता ।

स्यूल्यं नश्येदग्निमत्यं रसं वापि शिलाजतु ॥ २५ ॥

शैलेय कुष्टागुरुदेवदारु कौन्तीसमुस्तात्वक् पञ्चपत्रैः ।

श्रीवासपृष्ठाश्वरपुष्पदेव पुष्पं तथा सर्वमिदं प्रपिष्य ॥ २६ ॥

घत्तूरपत्रस्य रसेन गाढं मुहूर्त्तनं स्यूल्यहरं प्रदिष्टम् ॥ २७ ॥

अमृतावुटिविल्ववैलकं कलिङ्गपथ्यामेलैकानि गुग्गुलुः ।

क्रमहृदमिदं मधुप्लुतं पिण्डकास्थौल्यभगन्दरान् जयेत् ॥ २८ ॥

इत्यमृतादिगुग्गुलुः ।

व्योषाग्नित्रिफलासुस्त विडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् ।

खादन् सर्वान् जयेद्दशाधीन्मेदः श्लेष्मामवातजान् ॥ २९ ॥

इति दशाङ्गी गुग्गुलुः ।

गुग्गुलुस्तालमूलीच त्रिफलाखदिरं हर्षम् ।

त्रिवृत्तालम्बुपाशुण्डी निर्गुण्डीचित्रकस्तथा ॥ ३० ॥

एषा दशपलान् भागां स्तोये पञ्चाढके पचेत् ।

पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥ ३१ ॥

पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहं सुचूर्णितम् ।

पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलान्वितम् ॥ ३२ ॥

पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ।

प्रस्थार्धं माचिकं देयं शिलाजतुपलद्वयम् ॥ ३३ ॥

एलात्वचः पलार्धं च विडङ्गानि पलत्रयम् ।

सरिचाजनकृष्णे द्वे द्विपल त्रिफलान्वितम् ॥ ३४ ॥

यत्नद्वयन्तु कासीसं सूक्ष्मचूर्णीकृतं बुधैः ।

चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाडे निधापयेत् ॥ ३५ ॥

ततः सशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रिकम् ।

अनुपानं क्षिपेत् चोदं जाङ्गलानां रसं तथा ॥ ३६ ॥

वातश्लेष्महरेर्यथैष्टं कुष्ठमेदोदरापहम् ।

कामलापाण्डुरोगघ्नं श्वयथु सभगन्दरम् ॥ ३७ ॥

मूर्च्छामोहविषोन्मादं गराणि विषमानि च ।

स्थूलानां कर्पणं यैष्टं मेदुरे परमीपधम् ॥ ३८ ॥

कर्पयेच्चातिमात्रेण कुत्तिं पातालसन्निभम् ।

बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ।

नाग्रीयात्कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् ।

करोरं कारवेल्लञ्च पट्टककाराणि वर्जयेत् ॥ ४० ॥

इति लोहरसायनेम् । न

सालमारादिनिर्यहं चतुर्थांशवशेषितम् ।

परिसृतं ततः शीत मधुना मधुरीकृतम् ॥ ४१ ॥

फाण्तीभाव मापन्नं गुडं शोधितमेव वा ।

श्लक्ष्णपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादेर्गणस्य च ॥ ४२ ॥

एकध्वमावपेत् कुम्भे संस्कृते घृतभाविते ।

पिप्पलीचूर्णमधुभिः प्रलिप्ते चान्तरे शुचौ ॥ ४३ ॥

सूक्ष्मानि तीक्ष्णलोहस्य तनुपत्राणि बुद्धिमान् ।

खादिराङ्गारतप्तानि बहुशः प्रक्षिपेद्बुधः ॥ ४४ ॥

सुपिधानं ततः कृत्वा यवपल्ले निधापयेत् ।

मासांस्त्रींश्चतुरो वापि यावदाऽऽलोहसत्त्वयात् ॥ ४५ ॥

ततो जातरसं जन्तुः प्रातः प्रातर्यथा बलम् ।

उपयुञ्ज्याद्यथा योग माहारं चास्य कल्पयेत् ॥ ४६ ॥

एषस्थूलं कृशेन्नूनं नष्टस्याग्नेः प्रसाधनम् ।

शोयन्नः कुट्मेहघ्नो गुल्मपाण्डुमयापहः ॥ ४७ ॥

प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वरनाशनम् ।

अभिस्यन्दापहरणो लोहारिष्टो महागुणः ॥ ४८ ॥

इति लोहारिष्टः ।

व्योषचित्तकशिग्रूणि, त्रिफलां कटुरोहिणीम् ।

वृहत्त्र्यो द्वे हरिद्वे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ ४९ ॥

हिङ्गुकेम्बुकमूलानि यवानि धान्यचित्रकम् ।
 सौवर्चलमजाजी च हृषुपा चेति चूर्णयेत् ॥ ५० ॥
 चूर्णं तैलघृतचौद्र भागाः स्युर्मानतः समाः ।
 शक्नूनां पोडशगुणो भागः संतर्पणं धिवेत् ॥ ५१ ॥
 प्रयोगात्वस्य शाम्यन्ति रोगाः संतर्पणोत्थिताः ।
 प्रमेहा मूढवाताश्च कुटान्धर्शांसि कामलाः ॥ ५२ ॥
 पाण्डुर्द्वाहामयः शोफो मूत्रकृच्छ्रमरोचकम् ।
 हृद्रोगी राजयक्ष्मा च कासश्वासौ गलग्रहः ॥ ५३ ॥
 कृमयो ग्रहणीदोषः श्वेतं स्थौल्यमतीव च ।
 नराणां दीप्यते वज्रिः स्मृतिर्वृद्धिश्च वर्धते ॥ ५४ ॥

इति व्योपाध्यः शक्नूयोगः ।

त्रिफलातिविषामूर्वा त्रिवृच्चित्रकवासकैः ।
 निम्ब्वारग्वधपङ्गुन्या सप्तपर्णानिशादयैः ॥ ५५ ॥
 गुडूचीन्द्रासुरी कृष्णा कुटसर्पपनागरैः ।
 तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसद्भुतम् ॥ ५६ ॥
 पानाभ्यञ्जनगंडूप नस्यवस्तिषु योजितम् ।
 स्थूलताऽऽलस्य पाण्डादीन् क्षयेत् कफकृतान् गदान् ॥ ५७ ॥

इति त्रिफलाद्यं तैलम् ।

चन्दनं कुङ्कुमोशीर प्रियंगुत्रुटिरोचनाः ।
 तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ ५८ ॥
 जातीकङ्कोलभूगानां लवङ्गस्य फलानि च ।
 नलिकानुलदं कुटं हरेणु तगरं ध्रुवम् ॥ ५९ ॥
 नखं व्याघ्रनखं स्पृष्ट्वा बोलोदमनकं तथा ।
 स्थौणेयकं चोरकञ्च शैलेयं शैलवालुकम् ॥ ६० ॥

सरलं सप्तपर्णञ्च लाक्षातामलकी तथा ।

लामज्जकं पद्मकञ्च धातक्याः कुसुमानि च ॥ ६१ ॥

प्रपौण्डिरीकं कर्पूरं समंशैः शाणमात्रकैः ।

महासुगन्धिमित्येतत्तैलप्रस्थेन साधयेत् ॥ ६२ ॥

प्रस्नेदमलदीर्गन्ध्य कंडूकुष्टहरं परम् ।

अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ॥ ६३ ॥

युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ।

मुभयो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदा शतम् ॥ ६४ ॥

बन्ध्यापि लभते गर्भं पण्डोऽपि पुरुषायते ।

अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ६५ ॥

इति महासुगन्धितैलम् ।

वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः ।

विल्वपत्ररसो वापि गात्रदीर्गन्ध्यनाशनः ॥ ६६ ॥

अलम्बुपाभवं चूर्णं पीतं काञ्चिकसंयुतम् ।

दीर्गन्ध्यं नाशयत्याशु दुष्टं मेदो भवं नृणाम् ॥ ६७ ॥

विल्वशिवा समभागा स्नेपाद्भुजमूलगन्धमपहरति ।

परिणित तित्तिङ्गिकान्वितपूतिकरञ्जोत्पवीजं वा ॥ ६८ ॥

चिन्नापत्रस्वरसं म्रक्षितकक्षादि योजितं जयति ।

दग्धहरिद्रोद्वर्तनमचिराच्चिरदेहदीर्गन्ध्यम् ॥ ६९ ॥

शिरोपलामज्जकहेमलोध्रै स्वन्दोपसंस्नेदहरः प्रकर्षः ।

पत्रांशुलोध्रामयचन्दनानि शरीरदीर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥ ७० ॥

हिलमोचिरसो युक्त यूर्णैरुदधिफेनजैः ।

प्रलेपेन हरत्याशु देहदीर्गन्ध्यमुत्कटम् ॥ ७१ ॥

हरीतकीन्तु सपिथ गात्रमुद्वर्तयेन्नरः ।

पथात् स्नानं प्रकुर्वीत देहप्रस्नेदशान्तये ॥ ७२ ॥

ववूलस्य दलैः सम्यग्वारिणा परिप्रेषितैः ।
 गात्रमुद्धर्तयेत् पश्चाद्हरितक्या सुपिष्टया ॥ ७३ ॥
 भूय उद्धर्तनं कृत्वा पश्चात् स्नानं समाचरेत् ।
 प्रस्वेदान्मुच्यते शीघ्रं तत्तत्स्वेवं समाचरेत् ॥ ७४ ॥
 चन्द्रांशु सलिलं लोघ्नं शिरीषोशीरकैसरैः ।
 उद्धर्तनं भवेद् ग्रोषे स्वेदकर्मनिवारणम् ॥ ७५ ॥
 सुरयासममभयाफल चूर्णं मधुना विलिङ्ग्य प्रत्यूषम् ।
 स्वेदान् हत्वा लभते पुरुषोऽप्यऽत्यन्तसौरभ्यम् ॥ ७६ ॥
 मल्लोक्तुसुमाभयकरि लेपो घर्म्मविनिहन्ति सदाहम् ।
 विचकिलपत्रहरिद्रे कर्कटिपत्रं सद्रूर्वयासञ्जितम् ।
 संपिष्यगात्रलेपाऽर्द्धं विविधं शमंयाति ॥ ७७ ॥
 हस्तपादशुती योन्यं गुग्गुलुपञ्चतिक्तकम् ।
 अशक्ती पञ्चतिक्तं वा पक्वाखादेदत्तन्द्रितः ॥ ७८ ॥

इति वङ्गसेने मेदोनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ३६ ॥

—०—

अथोदररोगनिदानमाह ।

रोगाः सर्वेपि मन्देग्नौ सुतरामुदराणि च ।
 अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात् ॥ १ ॥
 रुध्वास्वेदांबुवाहीनि दोषाः स्त्रोतांसि मञ्जिताः ।
 प्राणान्यपानान् संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ २ ॥
 तत्पूर्वरूपं बलवर्णकाङ्क्षा बलीविनाशो जठरे निरोधः ।
 जीर्णाऽपरिज्ञानविदाहयुक्तो वस्त्वौ रुजः पादगतश्च शोथः ॥ ३ ॥

आधानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाम्बिता
 शोथः सदनमङ्गानां संगोवातपुरीषयोः ।
 दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ॥ ४ ॥
 पृथग्दोषैः समस्तैश्च ग्रीहवद्वक्तोदकैः ।
 सम्भवन्त्युदराखण्डौ तेषां लिङ्गं पृथक् शृणु ॥ ५ ॥
 तत्र वातोदरे शोथः पाणिपान्नाभिकुक्षिपु ।
 कुक्षिपार्श्वोदरकटी पृष्ठरुक् पर्वभेदनम् ॥ ६ ॥
 शुष्ककासाङ्गमर्दश्च गुरुतामलसंग्रहः ।
 श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्दृढिङ्गासवत् ॥ ७ ॥
 सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णाशिराततम् ।
 आधानदृतिवच्छब्दमाहृतं प्रकरोति च ॥ ८ ॥
 वायुश्चात्र सरुक् शब्दो विचरेत् सर्वतो गतिः ।

—०—

जन्मनेर्वोदर सर्वे प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् ।
 बलिनस्तदजाताम्बु यत्रसाध्यं नवोत्थितम् ॥ ९ ॥
 अजातशब्दमरुजं सशब्दनातिभारिकम् ।
 सदा गुडगुडायन्तं शिलाजालगवाक्षितम् ॥ १० ॥
 नाभिं विष्टभ्यपायौ तु वेगं कृत्वा प्रशाम्यति ।
 हृद्बहुणकटिनाभिगुदप्रत्येकशूलिनः ॥ ११ ॥
 कर्कशं सृजतेऽपानं नातिमन्दे च पावके ।
 लोलस्याऽचिरमेवास्ये मूत्रेऽल्पे मंहते वह्निः ।
 अजातोदकमित्येतैर्युक्तं विज्ञायलक्षणैः ॥ १२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

उपक्रमेद्भिगग्दोषबलकालविशेषवित् ।

स्थिरादिसर्पिषः पानं स्नेहस्नेदविरेचनम् ॥ १३ ॥
 वेष्टनं वाससानाभौ साल्वनञ्चोपनाहनम् ।
 चित्रतैल स्थिराद्यन्तु निरुहः सानुवासनः ।
 पयोयूपरसान्नञ्च योज्यं वातोदरे क्रमात् ॥ १४ ॥
 एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा ।
 निहन्ति वातोदरशोथशूलं क्वाथः समूत्रो दशमूलजञ्च ॥ १५ ॥
 कुष्ठं दन्तीयवक्षारं व्योषं चिलवणं वचा ।
 अजाजोदीप्यकं हिगुं स्वर्जिकाचव्यचित्रकम् ॥ १६ ॥
 शुण्ठी चोष्णां बुनापीता वातोदररुजापह्ना ॥ १७ ॥
 दशमूलीकपायेण क्षीरवृत्तिः शिलाजतु ।
 सद्यो वातोदरीक्षीरं मौद्रं वाऽग्रातुं केवलम् ॥ १८ ॥

—०—

सामुद्रसौवर्चलमैन्धवानां क्षारो यवानामजमोदकञ्च ।
 सपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरं हिगुविडञ्चेति समानिकुर्यात् ॥ १९ ॥
 एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि युञ्जीतपूर्वं कवले प्रुगस्तम् ।
 वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं वायुप्रकोपग्रहणीञ्च दुष्टम् ॥ २० ॥
 अर्गासि दुष्टानि च पांडुरोगं भगन्दरञ्चेति निहन्ति मद्यः ॥ २१ ॥

इति सामुद्राद्य चूर्णम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः ।
 सचौद्रेरद्वैपलिकैर्हिप्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥ २२ ॥
 कल्कैर्हिप्रश्चमूलस्य तुलाद्वैस्य रसेन तु ।
 दधिमण्डाढकं दत्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् ॥ २३ ॥
 श्वयथुं वातविष्टम् गुल्मर्गांसि च नाशयेत् ।
 अनयामात्रया वारं द्वयं पाच्यमिदं हविः ॥ २४ ॥

इति दशमूलपट्पल घृतम् ।

दशमूलीकपायेण रास्त्रानागरदारुभिः ।

पुनर्नवाभ्याश्च घृतं सिद्धं वातोदरापहम् ॥ २५ ॥

इति दशमलाद्यं घृतम् ।

लशुनस्य तुलामिकां जलद्रोणे विपाचयेत् ।

चतुर्भागावशेषन्तु कपायमवतारयेत् ॥ २६ ॥

तत्कायश्च परिस्त्राव्य विशाले ताम्रभाजने ।

चित्रतैलाढकं दद्याद् भेषजानि प्रदापयेत् ॥ २७ ॥

त्रिकटुत्रिफलादन्ती हिगुमैन्धवचित्रकम् ।

देवदारुवचाकुष्ठं मधुशिशुपुनर्नवम् ॥ २८ ॥

सौवर्चलविडङ्गानि दोष्यकं हस्तिपिप्पली ।

एतेषा पलिकान् भागां स्त्रिहतार्द्धपलानि च ॥ २९ ॥

पिष्ट्वा कपायेणानेन शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।

तत्पिवेत्प्रातरुत्थाय यथाग्निबलमाचया ॥ ३० ॥

निहन्ति सर्वरोगाणि जठराणि विशेषतः ।

मूत्रकृच्छ्रमुद्रावर्त्तं मन्त्रहृदि गुदकृमीन् ॥ ३१ ॥

पार्श्वकुक्षिभव शूल मामशूलमरोचकम् ।

यक्षदष्टीलिकानाहान् म्लीहानश्चाङ्गवेदनम् ॥ ३२ ॥

माममात्रेण नश्यन्ति चार्शांसि वातजा गदाः ।

इति लशुनतैलम् । इति वातोदरम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

पित्तोदरे ज्वरोमूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्थता ।

भ्रमोऽतीसारः पीतत्वं त्वगादाबुदरं हरित् ॥ ३३ ॥

पीतताम्रशिरानहं सखेदं सोष्मदृष्टते ।

धूमायतिमृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ ३४ ॥

—०—

अथ चिकित्साभाह ।

पित्तोत्तरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् ।
 दुर्बलन्वनुवास्यादौ शोधयेत् क्षीरवस्तिना ॥ ३५ ॥
 सञ्ज्ञातबलकायाग्निं जातस्निग्धं विरेचयेत् ।
 त्रिहृत्कल्केन पयसा रुबुक्कस्य शृतेन वा ।
 शातलावायमाणाभ्यां कृतेनारग्वधेन च ॥ ३६ ॥
 घृतं पित्तोदरे देयं मधुरौषधसाधितम् ।
 स्यात्त्रिहृत्त्रिफलासिद्धं पद्यात्सर्पिर्विशोधनम् ॥ ३७ ॥
 न्यग्रोधादिकपायेण सर्पिः क्षौद्रसितायुतम् ।
 आस्थापनं प्रयोक्तव्यं स्नेहवस्ति समन्वितम् ॥ ३८ ॥
 सान्द्रपायससिद्धेन कर्त्तव्यमुपनाशनम् ।
 स्थिरादिमाधितं तैलं क्षीरञ्च प्राशने हितम् ।
 पञ्चमूलीशृतं क्षीरं पित्तोदरविनाशनम् ॥ ३९ ॥
 पृष्टपर्णीबिलाव्याघ्री लाक्षानागरसाधितम् ।
 क्षीरं पित्तोदरं हन्ति इति पित्तोदरे क्रिया ॥ ४० ॥
 इति पित्तोदरम् ।

—०—

अथ निदानम् ।

श्लेष्मोदरेऽङ्गमदनं स्वापं शययुगौरवम् ।
 निद्रालेशऽचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ ४१ ॥
 उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लरज्जितं महत् ।
 चिराभिर्हृद्विकठिनं शीतस्पर्शं गुरुस्थिरम् ॥ ४२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

श्लेष्मोदरिणन्तु पिप्पल्यादिसिद्धेन सर्पिषाः स्नेहयित्वा
सुहीक्षीरविपक्षेनानुलोम्य च । त्रिकटुकमूत्रतैलप्रगाढेन मुर
कादिकायेनाऽऽस्थापयेदनुयासयेच्च । किट्सर्पपामलकमीजैद्यो
नाहयेत् उदरिणं भोजयेच्चैनं त्रिकटुप्रगाढेन कुलित्यूपेण पयस
स्वेदयेच्चाभीक्ष्णम् ।

व्योपयुक्तं कुलित्यां वु पयो वा भोजने हितम् ।

गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णाऽयस्कृतिभिस्तथा ॥ ४३ ॥

सक्षीरतैलपानैश्च शमयेत्तु कफोदरम् ।

इति कफोदरम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडान्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ।

यस्मै प्रयच्छन्त्यरयोगरांश्च दुष्टां वुदूषीविपक्षेवनाद्वा ॥ ४४ ॥

तेनाशुरक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम् ॥ ४५ ॥

तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च विशिपतः कुप्यति दह्यते च ।

सचातुरो मूर्च्छति हि प्रसक्तं पांडुः क्षयः शयति तृणया च

दूष्योदरं कीर्त्तितमेतदेव श्लीहोदरं कीर्त्तयतो निबोध ॥ ४६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

सन्निपातोदरे कार्यं एष एव क्रियाक्रमः ।

रौहोतकाऽभयाकल्कं गोमूत्रेण विभावितम् ।

पोतं सर्वोदरश्लीह महार्घः क्षमिगुल्मनुन् ॥ ४७ ॥

सप्तलाशङ्घिनीसिद्धं घृतं चात्र विशोधनम् ।
दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं दूष्योदरे पिवेत् ॥ ४८ ॥

—०—

नागरं त्रिफलाप्रस्थं घृततैलं तथादृकम् ।
मस्तुना साधयित्वा तु पिवेत्सर्वोदरापहम् ॥ ४९ ॥
कफमारुतसम्भूते गुल्मे चैव प्रशस्यते ॥ ५० ॥

इति नागराद्यं यमकम् । इति त्रिदोषोदरम् ।

अत उर्ध्वं निगद्यन्ते सामान्यायोगसंमताः ।
दोषैः कुक्षौ हि संपूर्णं वह्निर्मन्दत्वं मिच्छति ॥ ५१ ॥
तस्माद्योज्यानि पेयानि दीपनानि लघूनि च ।
शालिपट्टिकगोधूम यवनीवारभोजनम् ॥ ५२ ॥
विरेकास्थापनं श्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ।
उदकानूपजं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलान् ॥ ५३ ॥
व्यायामाध्वं दिवास्त्रयं यानपानं विवर्जयेत् ।
तथोष्णलवणान्म्लानि विदाहीनि गुरुणि च ॥ ५४ ॥
नाद्यादन्नानि जठरे तोयपानं विवर्जयेत् ।
उदरिणां मलाब्धत्वा दृढशः शोधनं मतम् ॥ ५५ ॥
क्षोरेणैरण्डजं तैलं पिवेन्मूत्रेण वै सक्तम् ।
ज्योतिषत्वा पिवेत्तैलं पयसा वा दिनाष्टकम् ॥ ५६ ॥
कंकुष्टचूर्णं सुस्तांषुपीतं संसेव्य मानवः ।
अष्टाभ्योऽभ्युदरेभ्यश्च द्रुतं कुर्याद्विद्वत्तिकाम् ॥ ५७ ॥
जुहोपयो भावितानां पिप्पलीनां पयोशनः ।
महसमुपयुञ्जीत शक्तितो जठरामयीं ॥ ५८ ॥
वातोदरी पिवेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ॥
शर्करा मरिचोपेतं स्वादुःपित्तोदरी पिवेत् ॥ ५९ ॥

यवानोहपुपाजाजी व्योषयुक्तं कफोदरी ।
 सन्निपातोदरीक्षिप्रं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥ ६० ॥
 बबोदरो च हपुपा दीप्यकाजाजोमेन्धवैः ।
 पिवेच्छिद्रोदरीतक्रं पिप्पलीचोद्रसंयुतम् ॥
 तूपणक्षारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी ॥ ६१ ॥
 शिलाजतूनां मूत्राणां गुग्गुलोस्त्रिफलस्य च ।
 स्रुहीक्षीरप्रयोगश्च शमयत्युदराभयम् ॥ ६२ ॥
 पूतीकरञ्जबीजं मूलकबीजं गवादनीमूलम् ।
 शङ्खभस्म च काञ्जिक पीतं शमयेज्जलोदरमपि ॥ ६३ ॥
 कलिंगबीजशाणश्च शाणः टङ्गुलहिङ्गुनोः ।
 शङ्खशाणसमायुक्तं पट्वा पिप्पलीमाषकाः ॥ ६४ ॥
 गोमूत्रेण तु सपेथपीतं शमयति द्रुतम् ।
 उदराणि च सर्वाणि चिरजातीदकान्यपि ॥ ६५ ॥
 सप्ताहं माहिषं मूत्रं पयसाऽन्नांबुवर्जितम् ।
 पीतमौष्ट्रमजामूत्रं शययूदरनाशनम् ॥ ६६ ॥
 यः पिवेत्पातरुत्याय चव्यचित्रकमिश्रितम् ।
 क्षिप्रं तस्य जयेदौष्ट्रममाध्यमपि चोदरम् ॥ ६७ ॥
 बिंशाला शङ्खिनीदन्ती विवृन्नीलीफलवयम् ।
 निशाविडङ्गकंपिल्लं मूत्रेणोदरवान् पिवेन् ॥ ६८ ॥
 पेयं वा चव्यदन्यग्निविडङ्गं व्यापकल्कितम् ।
 पेयो वा शृङ्गवेराम्बु कपायो दारुवज्जिजः ॥
 चव्यविश्वसमुत्थो वा पेयो जठरशान्तये ॥ ६९ ॥
 क्षारद्वयानलव्योषं नीलीलवणपञ्चकम् ।
 चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मीदरापहम् ॥ ७० ॥
 विडङ्गं चित्रकं दन्ती चव्यं व्योषञ्च तत् पयः ।

कल्कैः कोलसमैः पीत्वा प्रहृदमुदरं जयेत् ॥ ७१ ॥

गवाक्षीशङ्खिनीदन्ती नीलिनीकल्कमंयुतम् ।

सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रपानमाचरेत् ॥ ७२ ॥

देवद्रुमं शियु च पूरकञ्च गोमूत्रपिटामथवाग्वगन्धाम् ।

पीत्वाश्च हन्याज्जठरं प्रहृदं कृमीन् सशोथानुदरञ्च दूष्यम् ॥ ७३ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानं वा कल्पोद्दिष्टं प्रयोजयेत् ।

जठराणां विनाशाय नास्ति तेन समं भुवि ॥ ७४ ॥

स्रुक् पयसा परिभावित तंडुलचूर्णैर्निर्मितः पूपः ।

उदरमुदरं हन्या योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥ ७५ ॥

वंबूलस्य त्वचं त्र्येष्टां काथयेत्सलिलेन तु ।

पुनः पचेत्कषायन्तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ ७६ ॥

तत्पिवेत्तक्रसंयुक्तं तक्रभोजी मितशयनः ।

निहन्याश्च योगोऽयं जलोदरमपि ध्रुवम् ॥ ७७ ॥

मूत्राण्यटावुदरिणां सेके पाने चं योजयेत् ।

पिप्पलीवर्द्धमानं वा पयसैव प्रयोजयेत् ॥ ७८ ॥

देवटारुपलाशार्कं हस्तिपिप्पलिशियुभिः ।

साग्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं शनैः ॥ ७९ ॥



पटोलपत्रं रंजनी विडङ्गं त्रिफलात्वचम् ।

कम्पिज्जकं नीलिनी च विहतं चेति चूर्णयेत् ॥ ८० ॥

पडारुणम् क्षारपिष्ठागन्धः स्त्रीश्च द्विविचतुर्गुणान् ।

कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण वा पिवेत् ॥ ८१ ॥

विरिक्तो जाङ्गलरसै रोदनं शृदुभोजयेत् ।

मण्डं पेयाञ्च पीत्वा वा सव्योषं पडहं पयः ॥ ८२ ॥

शृतं पिवेत्ततश्चूर्णं पिवेदेवं ततः पुनः ।

हन्ति सर्चोदराण्येतच्चूर्णं जातीदकानि च ॥ ८३ ॥
कामंलां पांडुरोगञ्च श्वयथुं वापि कर्षति ॥ ८४ ॥

—०—

अत्र पटोलादीनां भागा कार्षिका अन्येषां द्वित्रिचतुर्गुणा
भागा ग्राहणीयाः । इति पटोलाद्यं चूर्णम् ।

—०—

यवानीहपुषाधान्यं चिफला सोपकुञ्चिका ।
कारवीपिप्पलीमूल मजगन्धा शठीवचा ॥ ८५ ॥
शताह्वाजीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रकम् ।
द्वौ चारी पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ ८६ ॥
विडङ्गञ्च समांशानि दन्तिभागत्रय भवेत् ।
त्रिहृदिशाले द्विगुणे शतला स्याच्चतुर्गुणा ॥ ८७ ॥
एष नारायणो नाम्ना चूर्णी रोगगणपहः ।
एनं प्राप्य निवर्तन्ते रोगाविष्णुमिवासुराः ॥ ८८ ॥
तक्लेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्वदरांबुना ।
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ ८९ ॥
दधिमण्डेन विड्भेदे दाडिमांबुभिरर्गसि ।
परिकर्त्तिषु वृक्षास्त्रैरुष्णाबुभिरजीर्णके ॥ ९० ॥
भगन्दरे पांडुरोगे कामे श्वासे गलग्रहे ।
हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे ॥ ९१ ॥
दङ्गाविपे मूलविपे सगरे कृत्विमे विपे ।
यथाहं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ९२ ॥

इति नारायणचूर्णम् ।

तिलसर्पपनालानि यवनालं सुधामपि ।
दशमूलमपामार्गं दन्तीं चित्रकमादकीम् ॥ ९३ ॥

मधुकमैन्द्रीं त्रिफलां त्रिवृतां करवीरकम् ।
 पुनर्नवां हृषिकालीमर्ककम्पिस्तनिम्बकम् ॥ ८४ ॥
 एतान् दशपलान् भागान् युक्त्या दग्ध्वा समावपेत् ।
 गोमूत्रेद्रोणसंयुक्ते सप्तकृत्वस्तु पाचयेत् ॥ ८५ ॥
 वचामतिविपां पाठां हे हरिद्रे महीपधम् ।
 त्रिवृत्कम्पिस्तकं चारं तथैव लवणानि च ॥ ८६ ॥
 महीपधं शिशुफलं कुष्ठं भस्मातकाणि च ।
 पिप्पलीं च विडङ्गानि त्रिफलां देवदारु च ॥ ८७ ॥
 कटुकां रोलिणीं सुस्तं दन्तीं हिङ्ग्वस्त्रवेतम् ।
 दधिगुक्तारनालाना माढकाढकमाचरेत् ॥ ८८ ॥
 समांशकेन भागेन सर्पिस्तैलं विपाचयेत् ।
 विगतार्चिर्यथाशान्तं मथैतदवतारयेत् ॥ ८९ ॥
 ततो त्रिङ्गुलपदकं पिवेदुष्णेन वारिणा ।
 रुचैरस्त्रैश्च पानैश्च क्षौरैर्मूत्रेण वा पुनः ॥ ९० ॥
 महाक्षार इति ख्यातो जठराणां विनाशनः ।
 घ्नोहान्यर्शांसि गुल्मानि सगूलं हृदयग्रहम् ॥ ९१ ॥
 यक्ष्माणश्च प्रमेहश्च पाण्डुरोगं भगन्दरम् ।
 सक्कमीग्रहणीदोषान् व्रणोदावर्त्तकुण्डलम् ॥
 मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं चारोऽयं विनिवर्त्तते ॥ ९२ ॥

इति महाक्षारः ।

स्त्रुक्क्षीरदन्ती त्रिफला विडङ्गसिङ्गी त्रिवृद्धिवर्कपर्ककम् ।
 घृतं विपक्वं कुड्मप्रमाणं तोयेन तस्याऽक्षसमानकर्पम् ॥ ९३ ॥
 पोत्वोष्णमम्भोनुपिवेदिरिक्ते पेयां रसं वा प्रचरेद्विधिज्ञः ।
 नाराचमेतज्जठरामयाणां युक्त्योपजुष्टं समनुप्रदिष्टम् ॥ ९४ ॥
 इति नाराचघृतम् ।

- त्रिफलाचित्रको दन्ती वृहतीकण्टकारिका ।
 स्रुहीसार्कविडङ्गानि घृतस्य कुडवं पचेत् ॥ १०५ ॥
 तस्य मृद्वग्निसिद्धस्य कर्पाक्षं पाययेन्नरः ।
 शीथगुल्मीदरानाह म्लीहीदर कफीदरान् ॥ १०६ ॥
 नाशयत्युल्वणानेतान् सर्पिर्नाराचसञ्ज्ञितम् ॥ १०७ ॥
 इति नाराचघृतम् ।

पयस्यष्टगुणे सर्पिः प्रस्थं स्रुक् पयसः फलम् ।
 त्रिवृतापलपट्केन सिद्धं जठरगुल्मनुत् ॥ १०८ ॥
 इति त्रिवृताद्यं घृतम् ।

अर्कचीर पले द्वे तु स्रुहीचीरपलानि षट् ।
 पथ्या कम्पिलकं श्यामा शब्ध्याकगिरिकर्णिका ॥ १०९ ॥
 नीलिनीत्रिवृतादन्तीं शङ्खिनीचित्रकं तथा ।
 एतेषां पलिकैर्भागै घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ११० ॥
 अथास्य मलिन कोष्ठे त्रिन्दुमात्रं प्रदापयेत् ।
 यावत्तस्य पित्रेद्विन्दुं स्तावदेगाद्विरिच्यते ॥ १११ ॥
 कुष्ठं गुल्ममुदावर्त्तं श्वयथुं सभगन्दरम् ।
 शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राग्ननिर्यथा ॥ ११२ ॥
 एतद्विन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तौ विरिच्यते ।
 इति विन्दुघृतम् ।

शालिपर्णी विदारी च सहदेवा सगोक्षुरा ।
 उमे स्थिरे शारिखे च जीवकर्पभकाबुभौ ॥ ११३ ॥
 पर्णिन्यौ च विशाला च रुबूको वृद्धिरेव च ।
 कण्डूरा त्वक् पञ्ची च फलत्रयमथापि वा ॥ ११४ ॥
 एषां चतुर्दशपलं मानतः सर्वसंयुताम् ।
 पुनर्नवैरण्डयोश्च पलमेकं पृथक् पृथक् ॥ ११५ ॥

पोडशांशसमाख्यातं दशमूल्या विंशतिं तथा ।

संकुप्य कथिते दोषे जले पादावशेषिके ॥ ११६ ॥

दधिकाञ्चिकमूत्राणां प्रस्थं प्रस्थं चतुश्चतुः ।

तैलमैरंडजं चैव प्रस्थमेकं समाचरेत् ॥ ११७ ॥

सार्धकर्पप्रमाणां तां मात्रां वैद्यस्तु दापयेत् ॥ ११८ ॥

पलाशपुष्पीधवचित्रकानां सुहीदुमत्वद्भदनारग्वधानाम् ।

फलत्रिकस्यापि तथैव दद्यात् चारस्य लोध्रस्य पलं तथैव ॥ ११९ ॥

पयः सुहायाश्च पलञ्चतुष्कं श्रेयां च कल्केन पचेद्विधिज्ञः ।

क्षीरेण तद्वै पिबतश्च जन्तोः सर्वादरं तैलवरं निहन्ति ॥ १२० ॥

इति शालीपणीतैलम् । सामान्यविधिः ।

—०—

अथ निदानमाह ।

विदाह्यभियन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ।

प्लीहाभिद्विष्टं कुरुतः ग्रहद्वौ प्लीहोत्थमेतज्जठरं यदन्ति ॥ १२१ ॥

तद्धामपार्श्वं परिद्विष्टमेतिविशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥ १२२ ॥

प्लीहानिर्वेदनः श्वेतः कठिनः स्थूल एव च ।

महापरिग्रहः शान्तः श्लेष्मसम्भव उच्यते ॥ १२३ ॥

सत्त्वरः सपिपासश्च स्वेदनस्तोत्रवेदनः ।

पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा प्रैत्तिक उच्यते ॥ १२४ ॥

नित्यमावहकोष्टश्च दिल्यादावर्त्तंपोडितः ।

वेदनाभिः परीतश्च प्लीहावातिक उच्यते ॥ १२५ ॥

क्षमोविदाहः संमोहो वैवर्ण्यं गात्रगौरवम् ।

ऊतुक्तेदभ्रडमूर्च्छाभिर्ज्ञेयं रक्तस्य लक्षणम् ॥ १२६ ॥

त्रयाणांमपि रूपाणि प्लीहासाध्ये भवन्ति हि ॥ १२७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्नेहस्नेदविरेकोदि विधेयं ग्रीहरोगिणे ॥ १२८ ॥

दध्ना भुक्तवतो वाम बाहुमध्ये शिरां भिषक् ।

विध्येत् ग्रीहविनाशाय यक्ष्मन्नाशाय दक्षिणे ॥

ग्रीहानं मर्दयेद्वाद्दं दुष्टरक्तप्रशान्तये ॥ १२९ ॥

मणिवन्धे समुत्पन्नं वाममंगुष्ठमीरितम् ।

दहेच्छिरां शरेणाशु वैद्यः ग्रीहप्रशान्तये ॥ १३० ॥

विडङ्गाव्यान् संसिन्धूत्यान् शक्तून् कृत्वा वचान्वितान् ।

पिवेत् क्षीरेण मंचूर्णं ग्रीहगुल्मोदरापहम् ॥ १३१ ॥

सिन्धुमगधाग्निचूर्णं शिशुशिवाऽऽमलकोरसनिर्पीतञ्च ।

प्रवलमपि योगराजः ग्रीहानं नाशयत्याशु ॥ १३२ ॥

तिलैरण्डद्रवस्तस्य चारो भक्ष्यातकं कथा ।

एषां भागं समं कृत्वा तत्तुल्यन्तु गुडं मतम् ॥ १३३ ॥

खादेदग्निबलं मत्वा पावकस्य विवृद्धये ।

जयेत् ग्रीहानमत्युग्रं यक्ष्महुल्मं तथैव च ॥ १३४ ॥

अम्लवेतसमंयुक्तः शिशुक्वाधः समैन्धवः ।

पीतः ग्रीहोदरं हन्ति पिप्पलीमरिचान्वितः ॥ १३५ ॥

कुष्ठं वचाशृङ्गवेरं चित्रकं कौटजं फलम् ।

पाठा चैवाजमोदा च पिप्पल्यः समचूर्णिताः ॥ १३६ ॥

ततो विडालपदकं पिवेदुष्णेन वारिणा ।

ग्रीहोदरमुदावर्त्तं सर्वमेतेन शाम्यति ॥ १३७ ॥

पातव्यो युक्तितः चारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः ।

पयसा च प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः ग्रीहशान्तये ॥ १३८ ॥

अर्कपत्रं सलवणं पुटदम्भं सुचूर्णितम् ।

निहन्ति मस्तुना पीतं प्लीहानमतिदारुणम् ॥ १३८ ॥
 वायुः प्लीहानमुद्धम्य कुपितो यस्य तिष्ठति ।
 शूलैः परितुदन्त्यार्धं प्लीहातस्य विवर्द्धते ॥ १४० ॥
 हिङ्गुत्रिकटुकं कुष्टं यवचारोऽय सैन्यवम् ।
 मातुलुङ्गरसोपेतं प्लीहशूलहरो रजः ॥ १४१ ॥
 पलाशचारतोयेन पिप्पलीपरिभाविता ।
 गुल्मप्लीहार्तिशमनी बद्धिदीप्तिकरोमता ॥ १४२ ॥
 रसेन जम्बीरफलस्य शङ्ख नाभीरजः पीतमवश्यमेव ।
 कर्पप्रमाणं शमयेदशेषं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ १४३ ॥
 शरपुङ्गमूलकल्कः पीतस्तक्रेण नाशयत्यचिरात् ।
 चिरतरकालसमुत्थं प्लीहानं रुद्धमवगाढम् ॥ १४४ ॥

—०—

चारं वा विडङ्गणाभ्यां पूतीकस्यांबुनिःशृतम् ।
 यक्षत्प्लीहप्रशान्त्यर्थं पिवेत्पातर्यथाबलम् ॥ १४५ ॥
 इति चारयोगः ।
 सुस्विन्नं शास्त्रालीपुष्पं निशापर्युषितं नरः ।
 राजिकाचूर्णसंयुक्तं मद्यात्प्लीहोपशान्तये ॥ १४६ ॥
 यवानिकाचित्रकयावशूक पङ्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्धवानाम् ।
 प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्णमुष्णांबुनामस्तु सुरामवैर्वा ॥ १४७ ॥
 इति यवान्यादिचूर्णम् ।

चिडङ्गानि यवानी च चित्रकं चेति तत्समम् ।
 द्विगुणं देवदारु च नागरं सपुनर्नवम् ॥ १४८ ॥
 अथ चैतानि चूर्णानि गवां मूत्रेण पाययेत् ।
 उदरीभूतमप्येषं प्लीहानं संप्रणाशयेत् ॥ १४९ ॥
 इति विडङ्गादिचूर्णम् ।

भस्मातकाऽभयाजाजी गुडेन सह मोदकः ।

सप्तरात्रिहन्त्याश ग्रीहानमतिदारुणम् ॥ १५० ॥

इति भस्मातको मोदकः ।

अभयाफलत्रयाणां पलत्रयं त्रिकटुकात्पलमेकञ्च ।

दीप्यकचव्यकचित्रक विडङ्गवृक्षान्मसिभुवचार्धपलैः ॥ १५१ ॥

त्वक्पत्रैर्लाकर्प्यै स्त्रिभि र्युक्तं सुचूर्णितं सूक्ष्मम् ।

त्रिगदगुडपलसहिताः कर्तव्यास्तदक्षसंमितावटकाः ॥ १५२ ॥

अभयावटकानाम्ना ग्रीहाशो गुल्मजठरापहराः ।

पाण्डुभयकामलिनां मन्दाग्नीनां सर्वदाशस्ताः ।

इत्यभयावटकाः ।

चित्तकं त्रिवृता दन्ती त्रिफलापुष्करैः समैः ।

यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु सैन्धवम् ॥ १५४ ॥

भावयेत्तु, सुहीचीरे तत्काण्डे प्रक्षिपेदुधः ।

मृत्तिकेनानुलिप्तस्य प्रक्षिपेज्जातवेदसि ॥ १५५ ॥

सुदग्धन्तु ततो ज्ञात्वा उदरेत्तु, शनैर्भिषक् ।

यत्कतुग्रीहोदरानाहं गुल्मपाण्डुमयादिहृत् ॥ १५६ ॥

सेविनोऽग्निबलं मत्वा अशोऽभ्यः प्रतिमीक्षयेत् ।

लवणोऽग्निमुखो नाम्ना वङ्गे दीप्तिकरः परः ॥ १५७ ॥

इत्यग्निमुखलवणम् ।

पिप्पलिपिप्पलीमूल चव्यचित्रकसुनागराणाम् ।

ससैन्धवानापलिका भागाष्टतप्रस्थं तदेकध्यम् ॥ १५८ ॥

तुल्यचीरं विपचेत्सर्पिः स्यात् खलु षट्पलकं नाम्ना ।

ग्रीहाग्निसादगुल्मोदावर्त्तश्चयथुपाण्डुगदान् ॥ १५९ ॥

श्वासकासंसपीनस मर्द्वाङ्गवातविषमज्वरानपहरति ॥ १६० ॥

इति षट्पलकं घृतम् ।

चिरविल्वत्वचः काय मार्द्रकस्वरसं घृतम् ।
 मस्तुभक्षातककायं शुक्तश्चैवान्नकाञ्जिकम् ॥ १६१ ॥
 एतैस्तुत्यैर्घृतं घृत्वा कल्कै रैतैस्तु पादिकैः ।
 ग्रन्थिकव्योपहृषुपा हिंश्वजाजीद्वयं तथा ॥ १६२ ॥
 चव्याजमोदे सच्चारे तथा लवणपञ्चकम् ।
 श्रेयसी चेति मृदुना तत्साध्यमनलेन वा ॥ १६३ ॥
 वज्रिपट्प्रस्थमेतत्तु जठरानलदीपनम् ।
 प्लोहोदराध्मानहरं वातोदरदकोदरम् ॥ १६४ ॥
 कफबातकृते चैव शूलोन्तीव प्रशस्यते ।
 अशीसि नाशयत्याश कृमीश्चैव विशेषतः ॥ १६५ ॥
 सपांडुराणि कुष्ठानि दद्रुकुष्ठानि यानि च ।
 अन्यान्यपि च कुष्ठानि तानि हन्यादिदं घृतम् ॥ १६६ ॥
 इति वज्रिपट्प्रस्थं घृतम् ।

चित्रकस्य तुलाकाये घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 आरनालन्तु द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १६७ ॥
 पञ्चकोलकतालीस चारैर्लवणसंयुतैः ।
 द्विजीरकनिशायुग्मै र्मरिचन्वत्र दापयेत् ॥ १६८ ॥
 प्लोहगुल्मोदरोन्माद पांडुरोगारुचिज्वरान् ।
 वस्तिहृत्पाख्यकव्यूहं शूलोदावर्तपीनसान् ॥ १६९ ॥
 हन्यात्पीतं तदर्शोन्नं शोथघ्नं दीपनं परम् ।
 बलवर्णकरञ्चापि भक्षकञ्च नियच्छति ॥ १७० ॥

इति चित्रकघृतम् ।

चित्रकस्य तुलाकाये घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 दध्यारनालद्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १७१ ॥

पञ्चकीलकतालीशं ह्यौ चारी लवणानि च ।
 यवानिके द्वे जरणे भरिचान्यत्र दापयेत् ॥ १७२ ॥
 ग्रीहाशोथोदराशौघं विशेषाद्वह्निदीपनम् ।
 बलवर्णकरं वापि भस्मकञ्च नियच्छति ॥ १७३ ॥

इति चित्रकाव्यं द्रुतम् ।

शिलाह्वयं नागरकालशाकं काकादनीमूलनिदग्धिका च ।
 पञ्चैव दद्यात्तलवणानि हिङ्गु कृष्णा च तैरक्षसमैः पृथक् पृथक् ॥
 प्रस्यं द्रुतं स्याच्च पचेच्छनैः शनैः चतुर्गुणं मूत्रमतः प्रदीयते ।
 पयश्च दद्याद्विगुणं विपक्वं तद्वह्निजुष्टं प्रवदन्ति सर्पिः ।
 ग्रीहीदरं दूष्यमथोदरञ्च आयम्पमानं जठरं निहन्ति ॥ १७५ ॥

इति ब्रह्मद्रुतम् ।

स्वर्जिका च यवचारः कासीसं टङ्गणं तथा ।
 सौराह्नं सैधवञ्चैव नवसारं स्फटिकानि च ॥ १७६ ॥
 सर्वमेकवक्तृस्थं सूक्ष्मचूर्णन्तु कारयेत् ।
 कूपमध्ये क्षिपेत्तन्तु द्रावयेद् द्रावयन्त्वके ॥ १७७ ॥
 गुल्मं ग्रीहान्तयानाहं सर्वोदरांस्तथैव च ।
 अर्शामि ग्रहणोदोषं भगन्दरवणानि च ॥ १७८ ॥
 नाशयेन्नात्र संदेहो नान्यथा शंकरोऽब्रवीत् ।

इति शंखद्रावः ।

रोहीतकत्वचः त्र्येष्टाः पलानां पञ्चविंशतिः ।
 कोलद्विप्रस्थमयुक्तं कपायमुपकल्पयेत् ॥ १७९ ॥
 पलिकैः पञ्चकीलैस्तु तत्तुल्यैश्चापि मात्रया ।
 रोहीतकत्वचापिटै र्द्वैतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १८० ॥
 ग्रीहाभिद्विंशं यमर्चं देतदागु प्रयोजितम् ।

तथा गुल्मज्वरश्वास कृमिपाण्डुत्वकामलाः ॥ १८१ ॥
अत्राष्टगुणे जले निष्कृष्यचतुर्भागावशेषः कर्तव्यः ।

इति रोहीतकघृतम् ।

रोहीतकात्पलशतं संक्राथ्यवदिराढकम् ।
साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १८२ ॥
घृतप्रस्थं समावाप्य छागचोरं चतुर्गुणम् ।
तस्मिन्द्रव्याणि सर्वाणि प्रदद्यात्कार्पिकाणि च ॥ १८३ ॥
व्योषं फलत्रिकं हिङ्गु यवानि तुम्बुरु विडम् ।
अजाजोक्तण्डुलवणं दाडिमं देवदारु च ॥ १८४ ॥
पुनर्नवाविशान्ता च यवचारं सपौष्करम् ।
विडङ्गं चित्रकञ्चैव हपुषाकारवी तथा ॥ १८५ ॥
एतैर्घृतं विपक्वन्तु विदध्याञ्जाजने नवे ।
पाथयेत्त्रिपलां मात्रां व्याधेर्बलमवेक्ष्य च ॥ १८६ ॥
रसकेनाथ यूषेण पयसां वा घृतं पिबेत् ।
प्रयुक्तान्तु घृतं तेषां व्याधीन् हन्यादिमान्वहन् ॥ १८७ ॥
यक्तुर्ग्रीहोदरञ्चैव ग्रीहशूलं तथैव च ।
हृच्छूलं कुक्षिशूलञ्च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ १८८ ॥
विबन्धशूलं शमयेत् पाण्डुरोगं सकामलम् ।
क्षयतीसारशूलघ्नं तन्द्राज्वरनिवारणम् ॥ १८९ ॥
रोहीतकघृतं ह्येतत् ग्रीहानां दृष्टमौषधम् ॥ १९० ॥

इति महारोहितकं घृतम् ।

कदलीतिलनालानां चारेण क्षुरकस्य च ।
पीतं तैलं जयेद्वृणां ग्रीहानां कफवातजम् ॥ १९१ ॥

इति कदलीचारतैलम् ।

माणसुग्राऽमृतावासा स्थिराचित्रकसैन्यवम् ।

नागरं तालमूलञ्च प्रत्येकन्तु त्रिकार्पिकम् ॥ १८२ ॥

विडं सौवर्चलं चारौ पिप्पल्यश्चापि कार्पिकाः ।

एतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूत्रस्यादकं पचेत् ॥ १८३ ॥

सान्द्रोभूते गुटीं क्वाथ्या इत्वा त्रिपलमाचिकम् ।

यक्तुं ग्रीहोदरहरो गुल्माग्नौ ग्रहणीहरः ॥ १८४ ॥

योगः परिकरो नाम्ना वज्रिसन्दीपनः परः ।

इति माणादिगुटिका ।

चित्रकस्य शतं दद्यात्तत्तुल्यं ग्रन्थिकस्य च ।

पञ्चाशदशमूलस्य शेषान् पञ्च पलान् पृथक् ॥ १८५ ॥

बलाभांगीशठीपाठा पौष्करं मूलमेव च ।

चतुर्द्रोणैश्च सः पक्त्वा पादशेषावतारिते ॥ १८६ ॥

पचेद्गुडयुतं दत्वा तैलवत् साधुसाधयेत् ।

चतुष्पलन्तु पिप्पल्या मृगाचीर्याश्चतुष्पलम् ॥ १८७ ॥

त्रिजातकपलैकं मरिचस्य पलं तथा ।

सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा दत्वा सम्यग्विघट्टयेत् ॥ १८८ ॥

पलमात्रं ततः खादेत् ग्रीहगुल्मोदराणि च ।

हन्ति यक्ष्माणमत्युषं पित्तार्तिं चाम्बपित्तिनाम् ॥ १८९ ॥

भारद्वाजेन कथितो लेहचित्रकसंज्ञकः ॥ २०० ॥

इति चित्रकलेहः ।

चंपलायाः पलं पञ्चययायं तावदेव तु ।

मामुद्वनपणानाञ्च तावन्मात्रं प्रदापयेत् ॥ २०१ ॥

वेणुमाक्षोटकश्चैव गिर्यार्यद्रांस्तथैव च ।

गिरीयो लोभ्रहृच्चय विरागामाणकन्दकम् ॥ २०२ ॥

सुधा च सुरपुष्पञ्च शम्याकदलसञ्चयम् ।

वरुणं शिग्रुमूलञ्च बाव्यालं चित्रकं तथा ॥ २०३ ॥

एषां पञ्चपलान् भागान् पलांशान् पञ्चविंशतिम् ।

चारं दत्त्वा तु सर्वेषां पचेत्तत्र जलाढके ॥ २०४ ॥

गोमूत्रं तावदेवान्न साधयेच्च यथा विधिः ।

भक्षयेद् घृतमगुक्तां यवत् प्लीहहृरां पराम् ॥ २०५ ॥

वातमटीलकाञ्चैव गुल्मं हन्ति त्रिदोषजम् ॥

इति चारपिप्पली ।

प्रशस्तोऽहनि नक्षत्रे वृक्षकं लोभ्रचित्रकम् ।

वरुणं शिग्रुमूलञ्च बाव्यालं चाथ पुष्करम् ॥ २०६ ॥

कन्दोविशाखापुष्पी च तथा ब्राह्मणयष्टिका ।

पृथक् पञ्चपलान्येषां पलाशात् पञ्चविंशतिः ॥ २०७ ॥

चारं कृत्वा पचेद्धारि गोमूत्राढकयोस्तथा ।

सर्वं विपाथ्य सक्षारा समुस्ताऽनलपिप्पली ॥ २०८ ॥

पृथक् पञ्चपलैर्भागैः पिप्पलीघृतमर्दिता ।

यकृत् प्लीहहृरा श्लेष्ठा वाताटीलामगुल्मानुत् ॥ २०९ ॥

इति वृहत् चारपिप्पली ।

पारिभद्रपलाशार्कं स्रुञ्चपामार्गचित्रकाः ।

वरुणोऽग्निमन्यं वसुक्तं श्वदद्वावृहतीद्वयम् ॥ २१० ॥

पूतीकास्फोटकुटज कीशातक्यः पुनर्नवा ।

समूलपत्रशाखायाः चोदयित्वा उलूखले ॥ २११ ॥

तिलनालप्रदीप्ताग्निं सुदग्धं भस्मशीतलम् ।

चारप्रस्थं गृह्णित्वा तु न्यसेत्पात्रे हृढे नवे ॥ २१२ ॥

जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशीपितम् ।

पूर्ववत् चारकल्केन साधयेच्च विचक्षणः ॥ २१३ ॥

प्रस्थमेकञ्च लवणं तदर्द्धाञ्च हरीतकीम् ।
 तुल्याम्बुभागगोमूत्रं साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ २१४ ॥
 किञ्चित्सवाप्ये चार्धं च सम्यक् सिद्धेऽवतारिते ।
 अजाजीवूत्रपण्डिगुयवानी पुष्करं शठी ॥ २१५ ॥
 एतैथार्धपलिकैद्यूर्णं कृत्वा प्रदापयेत् ।
 लवणञ्चाभयानाम भक्षयेच्च यथा वन्तम् ॥ २१६ ॥
 व्याधिञ्चावेक्ष्यमतिमाननुपान यथा हितम् ।
 ये च कोष्ठगता रोगास्तान्निहन्ति न सशयः ॥ २१७ ॥
 यकृत् ग्रीहोदरानाह गुल्मष्टीलाऽग्निसादनत् ।
 प्रतितून्यर्तिहृद्भोग शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ २१८ ॥
 इत्यभयालवणम् । इति ग्रीहोदरम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गै रुपद्रुतः चीणवलोतिपांडुः ।
 मब्धान्यपाख्यं यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृदात्पुदरं तथैव ॥ २१९ ॥
 उदावर्त्तरुजानाहै मीहलट्टदहनज्वरैः ।
 गौरवाऽरुचिकाठिन्यै विद्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥ २२० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

ग्रीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृतः मंप्रकल्पयेत् ।
 कार्यञ्च दक्षिणे वाहौ तत्र गोणितमोक्षणम् ॥ २२१ ॥
 पिप्पलीचित्रिकान् मूलं पिप्पा मर्षिर्विपाचयेत् ।
 घृतं चतुर्गुणं क्षीरं यकृत् ग्रीहोदरापहम् ॥ २२२ ॥
 इति चित्रकघृतम् ।

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरं चतुर्गुणम् ।

पिवेत् प्लोहाग्निसादाग्नि यक्तद्रोगहरं परम् ॥ २२३ ॥

इति पिप्पलीघृतम् । इति यक्तदाल्पुदरम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

यस्यान्त्रमन्त्रैरुपलेपिभिर्वा बालाश्लभिर्वापिहितं यथावत् ।
सञ्चोयते यस्य मलः सदोषः शनैः शनैः शर्करावच्च नाद्याम् ॥ २२४ ॥
निरुद्धते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्राटपि चाल्पमल्पम् ।
हृन्नाभिमध्ये परिहृदिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २२५ ॥
शल्पं तथान्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा ।
तस्मात्क्षतान्त्रात्सलिलप्रकाशः स्त्रावः स्त्रवेद्वे गुदजस्तु भूयः ॥ २२६ ॥
नाभेरध्वोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् ।
एतत्परिस्त्राव्युदरं प्रदिष्टन्दकोदरं कीर्त्तयतो निबोध ॥ २२७ ॥
यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वांतो विरिक्तोऽप्यथवा निरुद्धः ।
पिवेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्त्रोसांसि दुष्यन्ति हि तद्वहानि ॥ २२८ ॥
स्नेहोपिलिप्तेष्वथवापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ।
स्निग्धं महत्तत्परिहृत्तनाभिसमात्ततं पूर्णमिवांवुना वा ॥ २२९ ॥
यथादृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥ २३० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्निग्धे बद्धोदरे योज्यो मूत्रैस्तीक्ष्णैर्यथान्वितैः ।

सतैललवणयात्र निरुद्धथानुवासनम् ॥ २३१ ॥

चारं वनेकरोपाणां स्निग्धं वस्त्रेण गालयेत् ।

कार्पिकं पिप्पलीमूलं यच्चैव लवणानि च ॥ २३२ ॥

पिप्पलीचित्रकं शुण्ठी त्रिवृतात्रिफलावचा ।

द्वौ चारो सातलादन्तो स्वर्णक्षीरोविपाणिका ॥ २३३ ॥

कोलप्रमाणां वटिकां पिवेक्षीवीरसंयुताम् ।

श्वयथावय वक्त्रस्य ग्रहहे च दक्षीदरे ॥ २३४ ॥

इति चारगुटिका ।

छिद्रान्त्रवदसंज्ञेषु जठरेषु प्रयोगवित् ।

लब्धानुज्ञो भिषक्कुर्व्यात् पाटनं व्यधनक्रियाम् ॥ २३५ ॥

तथा जातोदकं सर्वं सुदरं व्यधयेद्विषक् ।

ज्ञातींश्च सुहृदो दारान् ब्राह्मणान् नृपतिं गुरुम् ॥ २३६ ॥

अनुज्ञाप्यभिषेकं विदध्यात् संशयावहम् ।

सुवेष्टितमधो नाभे वीमतश्चतुरंगुलात् ॥ २३७ ॥

अंगुल्योदरमावन्तु त्रीहिवक्त्रेण भेदयेत् ।

नाडीमुभयतो दारां संयोज्यापहरेज्जलम् ॥ २३८ ॥

नचैकस्मिन्दिने सर्वं दीपन्त्वपहरेत्तथा ।

कासश्वासज्वरास्तृष्णा गात्रभङ्गश्च वेपथुः ॥ २३९ ॥

अतिमारुतश्च सुतरां पूर्यते जठरं तथा ।

तृतीयपञ्चमाद्येषु दिवसेष्वल्पशः पुनः ॥ २४० ॥

स्त्राययेदुदकं तैलं नवणाभ्यां दृढं घणम् ।

बध्नीयाद्विमुक्ते दोषे जठरं परिगृह्य वा ॥ २४१ ॥

सवेष्टयेद्गाढतरं कीशियाऽऽविकचर्माभिः ।

निःसृते नक्षितः पेया मर्छा हलवणां पिबेत् ॥ २४२ ॥

अतः परन्तु पण्मासान् क्षीरहृत्तिर्भवेत्परः ।

शोणामान् पयसा पेयां पिवेक्षीयापि भोजयेत् ॥ २४३ ॥

सकोरदूपं शामाकं पयसा नवणं नृप ।

नरः सम्बत्सरैव जयेत्प्राप्तजलोदरम् ।

इतिबद्धचतदकोदरम् ।

स्रुह्यर्कदन्तीधवबद्धिफञ्जी शोफारिपांशी सलकच्च कन्दः ।

माणत्रियामाग्निकवाणरगडातालं तथा मञ्जरिपारभट्टौ ॥२४४॥

प्रत्येकशः चारचतुःपलाशं तथा पलाशस्य समैः समः स्यात् ।

चतुर्गुणे क्वाथजलाष्टशेषे पचेद्विधित्रो विधिशुद्धलोहम् ॥ २४५ ॥

चूर्णीकृतं तत्पुटित पुटेन तन्तुष्युतं षोडशिकं पलानाम् ।

वर्षाभुभक्षातकवह्निदन्तीत्रिष्टद्वन्तीरविबद्धमूलम् ॥ २४६ ॥

कञ्चुकीतालमूली च पोवरोगिरिकर्णिका ।

नोलिनीवृहतीपत्रं शम्याक विजयाममम् ॥ २४७ ॥

चतुष्पलाशं कथिताष्टशेषं स्रुह्यर्कदुग्धेन पलाष्टकेन ।

दत्त्वा पचेत्ताम्रमये सुपात्रे पलैर्द्विरष्टैर्हविषस्तथैव ॥ २४८ ॥

अमूनि चूर्णानि च सिद्धशीते क्षिपेत्तथा लोहरजः समानि ॥२४९॥

मिलितानीति सम्बन्धः ।

लवणानि च सर्वाणि चारः पञ्चोपणस्तथा ।

भरिच चाजमोदा च द्विगुभक्षातकानि च ॥ २५० ॥

चित्रकं तालमूलञ्च गवाक्षीत्रिवृतामृतम् ।

वर्षाभूः सूरणो भानो विडङ्गं दन्तीग्रन्यिकम् ॥ २५१ ॥

पलं माक्षिकचूर्णस्य कंकुष्टकशिलाजतोः ।

गुग्गुलीर्गन्धकस्यापि पारदस्य पलं पृथक् ॥ २५२ ॥

शीते पलाष्टकं क्षौद्रं दत्त्वा मधुघृतान्वितम् ।

लोहदण्डेन सष्टय लोहपात्रे चिरं भिषक् ॥ २५३ ॥

विधित्रोक्तेन विधिना हिताहारविहारवान् ।

अन्नपानं यथा सात्त्वरं कुर्वन्नित्यं निरामयः ॥ २५४ ॥

उदरेषु च सर्वेषु शोथेषु विविधेषु च ।

अर्थःसु च विशेषेण पांडुरोगे सकामले ॥ २५५ ॥

विधिनोक्तेन कुर्वाणो नरोरोगान्न विन्दति ।

इत्युदरारिलोहम् ।

—०—

अथ निदानम् ।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं स्मृतम् ।

बलिनस्तदजाताम्बु यत्नात्साध्यं नवोत्थितम् ॥ २५६ ॥

पक्षाद्बहुदं तूर्ध्वं सर्वजातोदकं तथा ।

प्रायो भवत्यभावाय क्षिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥ २५७ ॥

शूनाच्च कुटलोपस्थं सुपक्विन्नं तनुत्वचम् ।

बलशोणितमांसाग्निं परिचीणन्तु वर्जयेत् ॥ २५८ ॥

पार्श्वभङ्गान्न विद्धेयं शोथातिसारपोडितम् ।

विरक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ २५९ ॥

—०—

अथ चिकित्सांमाह ।

हरीतकीनागरदेवदारु पुनर्नवाक्षिन्नरुहाकपायः ।

सगुग्गुलुर्मूत्रयुतः सपेयः शोफोदराणां प्रवरः प्रयोगः ॥ २६० ॥

पुनर्नवानिम्यपटोलगुण्ठी तिक्तानृतादार्व्यभयाकपायः ।

सर्वाङ्गशोघोदरफामशूलं ग्वासान्वितं पांडुगदं निहन्ति ॥ २६१ ॥

पुनर्नवां टार्व्यभयां गुडूचीं पिबेत्समूत्रां महिपाग्न्ययुक्ताम् ।

त्वग्दोषशोफोदरपांडुरोगस्थोत्प्रेषकोर्ध्वकफामयेषु ॥ २६२ ॥

पुराणशरुणोवज्जि वृषपणं लवणानि च ।

चयिकाचिरजित्वच्च भग्मं चैषां सुमंस्कृतम् ॥ २६३ ॥

गव्येन मस्तुना माध्यं भोजयेत् भिषग्वरः ।

श्वयथूदरगुल्फेषु वस्त्रिसादे च दुस्तरे ॥ २६४ ॥

पुराणं मानक पिष्टा द्विगुणीकृततंडुलम् ।

साधितं तीयक्षोराभ्या मभ्यासे पायसन्तु तम् ॥ २६५ ॥

हन्ति बातोदरं शीथं ग्रहणीपांडुतामपि ॥ २६६ ॥

नवष्टतमार्द्रककल्क स्वरसाभ्यां परिसाधितं च विधिना ।

श्वयथूदराग्निसादैरभिभूतः पिवेद्भवत्यरोगः ॥ २६७ ॥

इत्यार्द्रकष्टतम् ।

विल्वान्नचव्यार्द्रक शृङ्गवेरकाथेन कल्केन च सिद्धमोज्यम् ।

मच्छागदुग्धं ग्रहणीगदोले शोथान्निसादारुचिषु प्रदिष्टम् ॥ २६८ ॥

इति विल्वादिष्टतम् ।

इति वङ्गसेन उदरनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ४० ॥

—०—

अथ शोधनिदानमाह ।

रक्तपित्तकफान् वायुर्दुष्टो दुष्टा वह्निःशिराः ।

नित्वारुहगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वद्भांससंश्रयम् ॥

उत्सेधं संहन्तं शीथं तमाहुर्निचयात्मकम् ॥ १ ॥

सर्वं हेतुविशिष्येऽस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ।

दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वं रभिघाताद्विपादपि ॥ २ ॥

तत्पूर्वरूपं दबधु. शिरायामोङ्गगोरवम् ॥ ३ ॥

शुद्धामयाऽभक्तकशावलानां चारास्त्रतीक्ष्णगुरुरूपसेवा ।

दध्यामसृच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणञ्च ॥ ४ ॥

अर्शांश्च चेष्टा न च देहं शब्दिर्मर्मापघातो विषमाप्रसूतिः ।

मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणाश्च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोक्तेधमूसाय शिरातनुत्वम् ।
सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वययोः प्रदिष्टम् ॥

चलस्तनुत्वक् परुषोऽरुणोसितः
सुसुप्तिहर्षार्त्तियुतो निमित्ततः ।
प्रगाम्यतिप्रोन्नमति प्रपीडितो
दिवावली च श्वययुः समीरणात् ॥ ७ ॥
मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान्
म्रमज्वरस्वेदतृपामदान्वितः ।
य उच्यते स्पष्टरुगक्षिरागक्तत्
सपित्तयोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ८ ॥

गुरुस्थिरः पांडुररोचकान्वितप्रसेकनिद्रावमिबङ्गिमान्यक्तत् ।
मृक्छजन्मप्रशमो निपीडितो नचोऽन्नमेद्रादिवलीकपात्मकः ॥

क्षिदानाकृतिमंसर्गा च्छययुः स्याद्विदोषजः ।
सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥
अभिघातेन शस्त्रादि छेदभेदक्षतादिभिः ।
हिमानिलो दध्यनिलैर्भक्ष्णातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥
रमैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छययुः स्याद्विमर्षवान् ।
भृगोष्णालोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥
विषजः सविषप्राणि परिमर्षणमूत्रणात् ।
दंष्ट्रादन्तनङ्गाघाता दविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥
विषमूत्रशुक्रोपहतमलयद्वस्तमंकरात् ।
विषहृक्षाऽनिलम्वर्गा हरयोगावचूर्णणात् ॥ १४ ॥
मृदुघस्रोऽवलम्ब्यो च शीघ्रदाहरुजाकरः ॥ १५ ॥
दोषाः श्वययुर्मुखं हि कुर्यन्त्यामाशयस्थिताः ।
पक्षागयस्या मध्ये तु वर्चस्यानगतास्त्वधः ।

कृत्स्नं देहमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वसरं तथा ॥ १६ ॥
 यो मध्यदेशे श्वययुः सकष्टः सर्वगश्च यः ।
 अधोऽङ्गेऽरिष्टभूतः स्या द्यद्योज्ज्वं परिसर्पति ॥ १७ ॥
 श्वासः पिपासाच्छर्दिश्च दोर्वल्यं ज्वर एव च ।
 यस्य चान्नेऽरुचिर्नास्ति श्वययुः तं विवर्जयेत् ॥ १८ ॥
 अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः ।
 पुरुषं हन्ति नारीञ्च सुखजो गुदजो द्वयम् ॥ १९ ॥
 ऊर्ध्वगामीनरं पद्भ्या मधोगामीमुखात् स्त्रियम् ।
 उभय वस्तिमंजातः शोथो हन्ति न संशयः ॥ २० ॥
 नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥ २१ ॥
 क्षुन्नाशो हृदयाऽशुद्धिस्तन्द्राजठरगौरवैः ।
 दोषप्रवृत्तिर्नो यत्र व्याधिमामान्वितं वदेत् ॥ २२ ॥

—०— :

अथ चिकित्सामाह ।

उक्तञ्च तन्त्रान्तरे ।—

पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलांबुमाधितम् ।
 अल्पमल्पं पटुस्नेहं भोजनं श्वयथौ हितम् ॥ २३ ॥
 मप्ताह माहिषं मूत्रं पयसाऽन्नांबुवर्जितम् ।
 पीत्वा चौद्रमजामूत्रं श्वययूदरनाशनम् ॥ २४ ॥
 शिशुत्वङ्गुलमालार्कं दाव्यारिग्वधमूलकैः ।
 गोमूत्रपिष्टैः श्वययुः प्रलितव्यः कफात्मकः ॥ २५ ॥

स्त्रोक्तिञ्चाह ।

निदानदोषैस्तु विपर्ययक्रमै रूपाचरेत्तु बलकालदोषवित् ।
 यथाऽऽमजं लङ्घनपाचनक्रमै विशोधनैरुल्लङ्घनदोषमादितः ॥ २६ ॥

शिरोगतं शीर्षविरेचनैश्च

संशोधनैः शोधमधस्तथोर्ध्वम् ।

उपाचरेत् स्नेहभव हि रूक्षणैः

प्रकल्पयेत् स्नेहगणैः तु रूक्षजम् ॥ २० ॥

वित्रहविट्केऽनिलजे निरुहणं दृढं तु पित्तानिलजे सतिक्तकम् ।

पयश्च मूर्च्छावतिदाहतर्पिते विशोधनीये तु समूत्रमिष्यते ।

कफोत्थितं चारकटूष्णसयुतैः समूत्रदुग्धासवयुक्तिभिर्हरेत् ॥ २१ ॥

शोथे वातोत्थिते पूर्वं मासार्धं त्रिवृतं पिबेत् ।

तैलमैरण्डजं वापि मलबन्धे तदेव तु ॥ २२ ॥

शाल्यन्नं पयसायुक्तं रसैर्वापि प्रयोजयेत् ।

स्नेदाभ्यङ्गांश्च वातघ्नान् सकलेषांश्च कल्पितान् ॥ २३ ॥

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डं पञ्चमूलशृतं जलम् ।

वातके शयथो शस्तु पानाहारपरिग्रहे ॥ २४ ॥

न्यग्रोधादिगणे मिह सर्पिः स्यात्पित्तशोधने ।

दण्डमोहदाहपादस्थे हिमलेपादिवाचरेत् ॥ २५ ॥

क्षीराग्नः पित्तकृते तु शोथे पिवेद्भुङ्क्षोत्रिफलाकषायम् ।

पिवेद्भुङ्क्षोत्रिफलाचूर्णमथाक्षमात्रम् ॥ २६ ॥

पटोत्रिफलारिष्टं दार्यैकाय. मगुगुलुः ।

हन्ति पित्तकृतं शोथं दण्डाल्वरममन्वितम् ॥ २७ ॥

कफोद्भवे पित्तजनं मिहमारग्वधादिना ।

मन्दार्गनां स्तिमिते कोटे स्रोतोरोधे रुजावति ॥ २८ ॥

चारमृचामवारिष्टं चूर्णतक्राणि योजयेत् ॥ २९ ॥

कफे तु कृष्णामिकतापुराणं पिष्ट्वाकगिधुत्वगुमाप्रलेपः ।

कुनित्यशुण्डिजनमूत्रनैकं यडागुरुभ्यामनुलेपनञ्च ॥ ३० ॥

यर्द्धानुरूपः स्वरसः सर्पपतनैर्न मिश्रितः पीतः ।

पङ्कजपत्रसमुत्थः शोधानां नाशनः परमः ॥ ३८ ॥

पुनर्नवाविश्वचिह्नदुग्धूची शम्भ्याकपथ्यासुदारकल्कम् ।

शोथे कफोत्थेऽक्षसं समूत्रं काथं पिवेद्वाप्यथ चैव तेषाम् ॥ ३९ ॥

व्योषं त्रिवृत्तिक्तकरोहिणी च सायोरजः सत्रिफलारसेन ।

पीताः कफोत्थं शमयन्ति शोथं गव्येन मूत्रेण हरीतकी वा ॥ ४० ॥

विडङ्गातिविपादारु नागरेन्द्रयवावचा ।

उष्णांशुनाऽपिवेच्छेयी ह्यक्षमात्रं सहोपणम् ॥ ४१ ॥

सुगन्धारभाविताः कृष्णाः पथ्यामूत्रेण वा युताः ।

योजिताः शमयन्त्याशु शोथं श्लेष्मभवं नृणाम् ॥ ४२ ॥

—०—

पुनर्नवाऽनृतादारु दशमूलरसादके ।

आर्द्रकस्वरसे प्रस्थे गुडस्य च तुलां पचेत् ॥ ४३ ॥

तत्क्षिप्तं व्योषचव्यैला त्वक्पत्रैः कार्पिकैः पृथक् ।

चूर्णीकृतैर्लिङ्गेच्छेते मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥ ४४ ॥

लेहः पीनर्नवो नाम्ना श्लेष्मशोथनिसूदनः ।

श्वासकासारुचिहरी बलपुष्ट्यग्निवर्धनः ॥ ४५ ॥

इति पुनर्नवादिलेहः ।

मित्रे मिथक्रमं कुर्यात् सर्वजे सर्वमेव तु ॥ ४६ ॥

पिप्पल्यजाजीगजंपिप्पली च

निदग्धिका नागरचिचके च ।

रजन्यथो पिप्पलीमूलपाठा

सुस्तञ्च चूर्णं सुखतोयपीतम् ॥ ४७ ॥

हन्यात्तिदोषं चिरञ्च शोथं

कल्कोऽथ भूनिस्त्रमहोपधाभ्याम् ।

रसस्तथैवाऽऽर्द्रकनागरस्य

पयोऽथ जीर्णं पयसाऽन्नमद्यात् ॥ ४८ ॥

शिलाह्वयञ्च त्रिफलारसेन हन्यान्क्षिदोषं श्वयथुं प्रसह्य ।

तक्रं पिबेद्वा गुरुभिन्नवर्चाः सञ्चोपसौवर्चलमाक्षिकञ्च ।

विद्धातसङ्गे पयसा रसैर्वा प्रागुष्णमद्यादुरुचूकतैलम् ॥ ४९ ॥

विल्वपत्ररसं पूतं शोषणं श्वयथौ त्रिजे ।

विड्भङ्गे चैव दुर्नान्नि विदध्यात् कामलासु च ॥ ५० ॥

शोथे वाऽऽगन्तुजे कुर्यात् सेकलेपादिशीतलम् ॥ ५१ ॥

भस्मातक्याजयेच्छोथं सतिलाकृष्णमृत्तिका ।

माहिषो नवनीतं वा लेपादुदुग्धं तिलान्वितम् ॥ ५२ ॥

यष्टीदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः ।

शोथमारुष्करं हन्ति चूर्णं सालदलस्य च ॥ ५३ ॥

महिषोचीरसपिष्टैर्नवनीतसमन्वितैः ।

भस्मातककृतः शोथं स्तिलनित्यं शाम्यति ॥ ५४ ॥

संरुचकप्रलेपस्तु तिलहृत्चोद्भवानृदा ।

भस्मातकोत्थं श्वयथुं हन्ति सर्वरुजां ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

—०—

विषनिमित्तोत्थेषु शोथेषु विप्रोक्तः प्रतीकारः कर्त्तव्यः ।

—०—

पथ्यामृताभार्गिपुनर्नवाग्नि दार्वीनिशादारुमहीषधानाम् ।

काथः प्रसङ्घोदरपाणिपादवक्रस्थितं हन्यचिरेण शोथम् ॥ ५६ ॥

पुनर्नवामूलकविश्वदारुक्षिन्नोद्भवाचित्रकमूलमिहाः ।

रसायकाम्बुध पयानि चूषाः शोथे प्रदेवादगमूलगर्भाः ॥ ५७ ॥

हृयोव देवदृमनागरैर्वा दन्तीत्रिह्वद्रूपणचित्तकैश्च ।

पयः सुमिहं विधिना तिपीतं गीतं परं शोथहरं भिषग्भिः ॥ ५८ ॥

क्षीरं शोथहरं दारु वर्षाभूनागरैः शृतम् ।

पेथं वा चित्रकव्योष त्रिवृद्दारुप्रसाधितम् ॥ ५८ ॥

विल्वमूलं त्रिकटुकं श्यामाचित्रकमेव च ।

क्षीरमेतैः शृतं पेथं श्वयथोः विनिवारणम् ॥ ६० ॥

यूपो मूलकशृण्डीनां शार्कं वङ्गिपुनर्नवा ।

माणकन्दकृता हन्ति यवागूः शोथमुदतम् ॥ ६१ ॥

सेकस्तथार्कवर्षाभू निम्बकाद्येन शोफजित् ।

गोमूर्त्रेणापि कुर्वीत सुखोष्णं नावसेचनम् ॥ ६२ ॥

उरुवृककरञ्जार्कं वर्षाभूनिम्बकैः शृतम् ।

कोष्णं सेकं प्रशंसन्ति शोफे सर्वाङ्गं नृणाम् ॥ ६३ ॥

पुनर्नवादारुशृण्डी सिद्धार्थशिशुमेव च ।

पिष्टा चैवारनालेन प्रलेपः सर्वशोथनुत् ॥ ६४ ॥

विभीतकानां फलमध्यलेपः सर्वेषु दाहार्तिहरः प्रदिष्टः ।

यक्ष्माह्वसुस्तैः सकपिल्यपत्रैः सचन्दनैस्तत्पिडिकासुलेपः ॥ ६५ ॥

रास्त्राह्वपार्कं त्रिफलाविडङ्गं शिशुत्वचो भूषिककर्णिका च ।

निम्बार्कजो व्याघ्रनखः समूर्वा सुवर्चिकातिक्तकरोहिणी च ॥ ६६ ॥

सकाकमाचीवृहती सङ्गण्यापुनर्नवानागरचित्रकैश्च ।

उद्वर्त्तनं शोथेषु मूत्रपिष्टं शस्तं तथा गोसलिलेन सेकः ॥ ६७ ॥

त्रूपणायो रजः क्षारः शोथनुत्तिफलारजः ।

कटुकायो रजो व्योष त्रिवृद्विर्वा समन्वितम् ॥ ६८ ॥

पुरी मूर्त्रेण सेव्यश्च पिप्पल्लो वा पयोन्वितः ।

गुडेन वाऽभयातुल्या विश्वा वा शोथरोगिभिः ॥ ६९ ॥

—०—

दारुगुंगुलुशृण्डीनां कल्को मूर्त्रेण शोथजित् ।

वर्षाभूशृङ्गवेराभ्यां कल्को वा सर्वशोथजित् ॥ ७० ॥

गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथुनाशनः ।

कल्की वा गिरिकर्खाद्य पीतः शोथविनाशनः ॥ ७१ ॥

पिवेदुष्णांबुना दारु पथ्याशुण्ठीपुनर्नवाः ।

विडङ्गातिविषावासा विश्वदारुकणान्विताः ॥ ७२ ॥

इति दार्वादिचूर्णम् ।

विडङ्गदन्तीकटुका त्रिवृच्चित्रकदारुणाः ।

व्योप्रेभक्तृणात्रिफलाः समादेया ह्ययोरजः ।

द्विगुणन्तु पिवेच्चूर्णं पयसा शोथशान्तये ॥ ७३ ॥

इति विडङ्गादिलोहम् ।

सितपुनर्नवामूलं पीतञ्च गोमल्लिलेन निहन्ति ।

शोथं सर्वसमुत्थ सुदराणि च दुस्तराण्यञ्चिरात् ॥ ७४ ॥

पुराणं मानकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततंडुलम् ।

साधितं चौरसीयाभ्या मभ्यसेत्पायसन्तु तत् ॥ ७५ ॥

इति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पांडुतामपि ।

सिंहो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः ॥ ७६ ॥

इति मानमण्डः ।

सुसाध्यं वज्रकन्देन पायसं योतिमानवः ।

युक्तं कोशाम्बृतैलेन तेनाभ्यङ्गं प्रकुर्वतः ।

शोथः प्रशान्तिमायाति बहुदुष्टं निरन्तरम् ॥ ७७ ॥

आर्द्रकं मगुडं खादेत् प्रकुञ्चाईविवर्धितम् ।

यावत्पञ्चपलं मुहू यूपचौररमाग्निः ॥ ७८ ॥

श्वयथुं गुल्मासुदरं कासं श्वाममरोचकम् ।

पीनमं पांडुदुर्नाम हृद्रोगश्च विनाशयेत् ॥ ७९ ॥

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडभयां वा गुडपिप्पलीं वा ।

कर्पाभिदृष्टातिपलप्रमाणं खादेन्नरः पक्ष्मथापि मामम् ॥ ८० ॥

शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान्
सश्वासकासाऽरुचिपीनसादीन् ।
जीर्णज्वरार्शो ग्रहणोविकारान्
हन्यात्तथान्यान् कफवातरोगान् ॥ ८१ ॥

आर्द्रकस्य रमः पीतः पुराणगुडमिश्रितः ।
अजाक्षीराशिनां शोघ्रं सर्वशोथहरो भवेत् ॥ ८२ ॥
भूनिम्बविश्वकल्कं भुक्त्वा पेयः पुनर्नवाक्काथः ।
अपह्नरतिनियतमाशु श्वयथुं सर्वाङ्गजं नृणाम् ॥ ८३ ॥
विष्वं गुडेन तुल्यं हृद्यीव रसानुपानमभ्यस्तम् ।
विनिहन्ति सर्वशोथं घनहृन्दं चण्डवायुरिव ॥ ८४ ॥
गुडपिप्पलीशण्डीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् ।
अमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ ८५ ॥
इति गुडचूर्णम् ।

गुडात्पलत्रयं ग्राह्यं शृङ्गवेरपलत्रयम् ।
शृङ्गवेरसमाकृणां लोहविट् भस्मनः पलम् ॥
एतच्चूर्णं समुद्दिष्टं सर्वश्वयथुनाशनम् ॥ ८६ ॥
इति द्वितीयगुडाद्यं चूर्णम् ।

पुनर्नवादार्यगृता पाठाविष्वं श्वैदंष्ट्रिका ।
रजन्यो ह्यौ वृहत्पौ च पिप्पल्यश्चित्रकं विपम् ॥ ८७ ॥
समभागानि संचूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत् ।
बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रप्रसारिणम् ।
हन्ति चैवोदरास्थटीं त्रणांचैवोदतानपि ॥ ८८ ॥
इति पुनर्नवाद्यं चूर्णम् ।

सिंहास्यामृतभाण्डाकी काथं कृत्वा समाचिकम् ।
पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः श्वासं कासं ज्वरं वमिम् ॥ ८९ ॥

गोमूत्रसिद्धं मंडूरं सुरभोरसभावितम् ।
 माणकाद्र्ककन्दानां रसेष्वपि च भावयेत् ॥ ८० ॥
 त्रिफलाव्योपचव्यानां चूर्णं पाणितलद्वयम् ।
 क्षिपेत् सुसिद्धे पाके च मधुनश्च पलद्वयम् ॥ ८१ ॥
 निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गञ्च विशेषतः ॥ ८२ ॥
 अत्र गोमूत्रसिद्धं लोहमलं चूर्णं माणकाद्र्ककरसैरातपे परि-
 भाव्य । त्रिफलादिचूर्णं द्विगुणमूत्रे पक्तव्यम् ।

इति गोमूत्रमण्डूरम् ।

पुनर्नवापत्तरमालमूलं संक्षुद्यतीयार्भणशेषसिद्धम् ।
 चतुर्थभार्गव घृतं विप्रक्कं प्रस्थं तु तत्कल्कपलाष्टकेन ॥ ८१ ॥
 संसेवितं वातबलासरोगान् सर्वाश्च शोथानपि दुस्तरांश्च ।
 गुल्मोदग्ग्लीहगुदोज्ज्वांश्च निहन्ति यद्भिः कुरुते हि पुंसाम् ॥ ८४ ॥
 इति पुनर्नवाद्य घृतम् ॥

पुनर्नवाचित्रकदेवदारु वचोपण्णचारहरोतकीनाम् ।
 कल्केन पक्कं दंशमूलतोये घृतोत्तमं शोथनिपूदन स्यात् ॥ ८५ ॥
 इति द्वितीयपुनर्नवाद्य घृतम् ।

सचित्रकाधान्ययवानिपाठा मदीप्यकाख्यपूणवेतसाम्नाः ।
 विश्वोत्पलं दाडिमयावशूकं अपिप्लीमूलमथापि चक्षुम् ॥ ८६ ॥
 पिष्ट्वाच्चमात्राणि जलादुक्तेन
 पक्त्वा घृतप्रस्थमथोपयुञ्जात् ।
 अर्गसि गुल्मं श्वययुश्च कृत्स्नं
 निहन्ति यद्भिः कुरुते च दीप्तम् ॥ ८७ ॥

इति चित्रकाद्य घृतम् ।

क्षीरं घटे चित्रककल्कलिप्ते दध्यागतं माधुविमण्डितम् ।
 तज्जं घृतं चित्रकमूलगर्भं तंक्ते ण सिद्धं श्वययुश्चमुग्रम् ।

पर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहां स्तब्धन्ति सम्बर्धयते च वज्रिम् ॥८८॥

इति द्वितीयचित्रकाद्यं दृतम् ।

माणककायकल्काभ्यां दृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रैदोषञ्च व्यपोहति ॥ ८९ ॥

इति माणकं दृतम् ।

स्थलपद्मपलान्यष्टौ तूरपणस्य चतुष्पलम् ।

दृतप्रस्थं पचेदेतै र्दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥

पञ्चकासाङ्गरेच्छीघ्रं शोथञ्चैतत् सुदुस्तरम् ॥ ९० ॥

इति स्थलपद्मकाद्यं दृतम् ।

रसेन विपचेत्सर्पिः पञ्चकोलकुलित्ययोः ।

पुनर्नवायाः कल्केन तत्परं शोथनाशनम् ॥ ९०१ ॥

इति पञ्चकोलकदृतम् ।

शुष्कमूलकवर्षाभू दारुरास्त्रामहोपधैः ।

पक्वमभ्यञ्जनं तैलं समूलं शोथनाशनम् ॥ ९०२ ॥

इति शुष्कमूलकाद्यं तैलम् ।

सवेतसाः क्षीरवतां द्रुमाणां त्वचः समञ्जिष्टलतामृणालाः ।

सचन्दनं पद्मकवालकौ च पैत्ते प्रदेहस्तु सतैलपाकः ॥ ९०३ ॥

इति वेतसाद्यः प्रदेहः ।

यवान् कुलित्यान् कोलाद्य दशमूलञ्च साधयेत् ।

एतत्कषाये विपचे तैलं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ ९०४ ॥

शतावरीजीवनीयैः पिष्टैः समर्धुशिशुभिः ।

पानाभ्यङ्गाज्जयत्याशु भवत्यु माकृतोत्खण्डम् ॥ ९०५ ॥

इति यवाद्यं तैलम् ।

शैलेयकुष्ठाऽगुरुदारुकीन्ती त्यक् पद्मकोलांबुशठी समुस्तैः ।

प्रियंगुस्योण्येयकहेममांसी तालीशपंताऽपरपत्रधान्यैः ॥ ९०६ ॥

श्रीवैष्टकं ध्यामकपिण्णलीभिः पृक्कानखैथैव यथोपलाभम् ।
वातोत्थितेऽभ्यङ्गमुशन्तितैलं सिद्धं सुपिट्टैरपि च प्रदेहम् ॥१०७॥

इति शैलाद्यं तैलम् ।

पञ्चमूलं सलवणं सरलं देवदारु च ।

हस्तिकर्णपलाशस्य फलानि निचुलस्य च ॥ १०८ ॥

पलाशं काकनामा च गुडूचीदेवपुष्पकम् ।

अहिंसायै यमोहिंसा वत्सगन्धापुनर्नवा ॥ १०९ ॥

कायस्था च वयस्था च दारुको जटिलाजटा ।

अलंबुपोरुवृकश्च प्रपुन्नाटं सनागरम् ॥ ११० ॥

शिपुगोधावतीभांगीं तर्कारीपौष्करीजटा ।

एतेः सिद्धं यथा लाभं तैलमभ्यञ्जनैस्त्रिभिः ॥ १११ ॥

निहन्त्युदीर्णं श्वयथुं जन्तोर्वातकफात्मकम् ॥ ११२ ॥

इति पञ्चमूलाद्यं तैलम् ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कपाये कंसेऽभयानाञ्च शतं गुडाञ्च ।

लिहेत्सुमिहं च विनीयचूर्णं व्योषं त्रिमोग्ध्यमुपस्थिते च ॥११३॥

प्रस्थाह्यमात्रं मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादपि यावशूकात् ।

एकाभयां प्राशयततश्च लेह्याच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रहृदम् ॥११४॥

श्वामज्वरारोचकमेहगुल्मप्लीहांस्त्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ।

कार्श्यामवातावसृगगपित्तं वैषर्षमूत्रानिलगुरुदोषान् ॥ ११५ ॥

किञ्चिच्च कर्पपर्यायः शक्तिरर्हपलं मतम् ।

निदध्यान्मधुनो मानं व्योषाद्यैर्मिश्रितस्य च ॥ ११६ ॥

दशमूत्राहरीतक्या तुभ्यं कंसहरीतकी ।

मानं तनाञ्च तत्रत्यं चरके प्राहजैज्जटः ॥ ११७ ॥

इति कंसहरीतकी ।

दशमूलीकपायस्य कंसे पथ्याशतं गुडात् ।
 तुलां पचेद् घने दद्यात् व्योषचारचतुष्पलम् ॥ ११८ ॥
 त्रिजातकं सूचूर्णांशं प्रस्थार्धं मधुना लिहेत् ।
 दशमूलीहरीतक्यः शोथं घ्नन्ति सुदुस्तरम् ॥ ११९ ॥
 ज्वरारोचकगुल्मार्शो मेहपांडूदरामयान् ।
 खासकार्श्यामवाताऽक्ष पित्तं वक्त्रे च मन्दताम् ॥ १२० ॥

इति दशमूलहरीतकी ।

यथा दोषश्च तीक्ष्णानि वमनानि विरेचनानुपासनान्यऽजस्र-
 सुपसेवेतशिराभिर्याभीक्ष्णं शोणितमवसेचयेदन्यत्र पांडुशया-
 दिभिरिति ।

पुराणयवशाल्यत्रं दशमूलोपमाधितम् ।
 अल्पमल्पं कटुस्नेह भोजनं शोथिने हितम् ॥ १२१ ॥
 पिष्टान्नमक्षं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमञ्जाङ्गलञ्च ।
 पयो गुडं तैलमथो गुरुणि शोथं जिघांसुः परिवर्जयेत्तु ॥ १२२ ॥

—०—

त्रिकटुचूषणं दन्ती विडङ्गं त्रिफला तथा ।
 चित्रकी देवदारुश्च त्रिवृच्च गजपिप्पली ॥ १२३ ॥
 चूर्णान्येतानि तुल्यानि द्विगुणं स्यादयो रजः ।
 क्षीरेण पीतमेतत्तु त्र्येष्टं श्वयथुनाशनम् ॥ १२४ ॥

इति त्रिकटुकाद्यं लोहम् ।

पुनर्नवाश्रयतावक्त्रि गवाक्षीमारुशिश्रुकाः ।
 सूर्यावर्तकमूलञ्च पृथगष्टपलं जले ॥ १२५ ॥
 पादशेषे शृते द्रोणे सुपूते वस्त्रगालिते ।
 विधिवत्पाचितं पूतं योज्यञ्च पुटनक्रमैः ॥ १२६ ॥

लोहचूर्णाष्टपलकं पचेत्ताम्रादिपात्रके ।

अर्कस्य द्विपलं क्षीरं स्रुहीक्षीरं चतुष्पलम् ॥ १२७ ॥

पलद्वयं कौशिकस्य गन्धकस्य पलं तथा ।

पलार्धं पारदं तत्र विधिवच्छोधितं क्षिपेत् ॥ १२८ ॥

सिद्धेऽवत्तारिते चूर्णे वक्ष्यमाणं निधापयेत् ।

कंकुटवह्निकं दन्ती गवाक्ष्याखण्डकर्णजम् ॥ १२९ ॥

पलाशस्य च बीनानि कञ्चुकीतालमूलिका ।

त्रिफला वा कृमिरिपु त्रिवृद्धन्तीभवं तथा ॥ १३० ॥

सूर्यावर्तगवाक्षस्य वर्षाभूवज्जबल्लिजम् ।

एषां लोहसमाभावा भाण्डे स्निग्धे सुगोपिते ॥ १३१ ॥

संस्थापिते ततः शुद्धौ सुयोगादस्य सर्वशः ।

उदराणि पाण्डुरोगाश्च कामला महलीमका ॥ १३२ ॥

अर्शोभगन्दरं कुष्ठं कृमिः शूल तथैव च ।

ये चान्ये विविधारोगाश्चिरकालानुबन्धिनः ॥ १३३ ॥

ते सर्वे नाशमायान्ति प्रयोगादस्य सर्वशः ।

नात.परतर किञ्चिच्छोयोदरविनाशनम् ॥ १३४ ॥

इति शोयोदरहरं लोहम् ।

इति वङ्गसेने शोयोदरनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ४१ ॥

अथान्तवृद्धिनिदानमाह ।

क्रुद्धो नूर्ध्वगतिर्वायुः शोफशूलकरयरन् ।

कुक्षौ बद्धशतः प्राप्य फलकोपाभिवाहिनीः ।

प्रपीड्यधमनीः वृद्धिं करोति फलकोपयोः ॥ १ ॥

दोषास्त्रमेदो मूत्रान्त्रैः सवृद्धिः सप्तधा गदः ।

मूत्रान्त्रजावप्यनिला हेतुभेदस्तु केवलम् ॥ २ ॥

वातपूर्ण इति स्पर्शा रुच्यो वातादहेतुरुक् ।

पक्कोदुस्वरसंकाशः पित्ताद्वाहोष्मपाकवान् ॥ ३ ॥

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कंडूमान् कठिनोऽल्परुक् ॥ ४ ॥

क्षणस्फोटावतः पित्त वृद्धिलिङ्गस्तु रक्तजः ।

कफवान्मेदसावृद्धि मृदुस्तालफलोपमः ॥ ५ ॥

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः ।

अम्भोभिः पूर्णवृतिवत् क्षीभं याति सरुङ्मृदुः ।

मूत्रक्षुद्रमधस्ताच्च चलयन् कफकोपयोः ॥ ६ ॥

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ।

धारणे रुग्णभाराध्व विषमाङ्गप्रवर्त्तनैः ॥ ७ ॥

क्षीभनैः क्षुभितोऽग्नैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा ।

पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥ ८ ॥

कुर्याद्वृद्धणसन्धिस्यो ग्रन्थिग्रामं श्वयथुं तदा ॥ ९ ॥

उपेक्ष्यमाणस्य च मुष्कवृद्धि माथ्यानरुक् संभवतीं सवायुः ।

प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति प्रक्षाययन्तेति पुनश्चमुक्तः ॥ १० ॥

क्षुद्रान्त्रावयवाक्षेपो मुष्कयोर्वातसञ्चयात् ।

अन्ववृद्धिरसाध्येयं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ ११ ॥

वेगाघातं पृष्टयानं व्यायीमं मैथुनं तथा ।

अत्यशनमथाध्वान सुपवासं परित्यजेत् ॥ १२ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

वातवृद्धो पिवेत् स्निग्धं यथान्याय विरेचनम् ।
 मक्षीरञ्च पिवेत्तैल मासमेरण्डसम्भवम् ॥ १३ ॥
 गुग्गुल्वेरण्डज तैल गोमूत्रेण पिवेन्नर ।
 वातवृद्धिं जयत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १४ ॥
 अन्वहृदिमदीप्ताग्ने वस्तिभिः समुपाचरेत् ।
 तैल नारायणं योज्यं पानाभ्यञ्जनवस्तिभिः ॥ १५ ॥
 जलौकाभिर्हरेद्रक्तं वृद्धो पित्तभवे तथा ।
 पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्तवृद्धिमुपाचरेत् ॥ १६ ॥
 चन्दनं मधुकं पद्मं चोशीरं नीलमुत्पलम् ।
 क्षीरपिष्टं प्रदेह स्याद्वाहशोथरुजापह ॥ १७ ॥
 पञ्चवल्कलकल्केन सष्टतेन प्रलेपनम् ।
 एषामेव कपायेण शीतेन परिपेचनम् ॥ १८ ॥
 न्ययोधोदुम्बराश्वत्था सपिप्पलकपीतना ।
 क्षीरवृक्षास्तु पञ्चैषा वल्कलं पञ्चवल्कलम् ॥ १९ ॥
 क्वचिक्कपीतनस्थाने शिरीषो वेतसः क्वचित् ॥ २० ॥

इति पञ्चवल्कलम् ।

कफवृद्धौ मूत्रसपिष्टं रुणवीर्यं प्रलेपनम् ।
 पातय्यो मूत्रसंयुक्तं कपाय पीतदारुणं ॥ २१ ॥
 निकटुविफलाक्ताय सघारल्लवणं पिवेत् ।
 कफवातप्रकोपेऽपि विरेकं कफवृद्धिनुत् ॥ २२ ॥
 विफलाक्ताद्यगोमूत्रं पिवेत्प्रातरतन्द्रितम् ।
 कफवातोद्भव इन्ति ग्वययु हृषणोद्भवम् ॥ २३ ॥
 सैपजं कटुतीक्ष्णोष्णं स्वेदनं रुचमव च ।

परिपेकोपनाहौ च सर्वमुष्णमिहेष्यते ॥ २४ ॥
 वचासर्पपक्त्वेन प्रलेपः शोथनाशनः ।
 शिशुत्वक् सर्पिषैः पिष्टैः शोथः क्षेप्तानिलापहः ॥ २५ ॥
 सरलाऽगुरुकुटानि देवदारुमहीषधम् ।
 मूत्रारनालसंपिष्टं शोथघ्नं कफवातजित् ॥ २६ ॥
 हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैललवणान्विताम् ।
 प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् ॥ २७ ॥
 अविदाहि च कर्तव्यं भेषजं रक्तपैत्तिके ।
 सर्वं पित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ २८ ॥
 शीतमालेपनं कार्यं पाको रक्षः प्रयत्नतः ।
 सुष्टुर्मुहुर्जलोकाभिः शोणितं रक्तजे हरेत् ॥ २९ ॥
 पिवेद्विरेचनं वापि शर्करा चौद्रसंयुतम् ।
 पित्तग्रन्थिक्रमं कुर्यां दामे पक्वे च रक्तजे ॥ ३० ॥
 खिन्नं मेदः समुत्थन्तु लेपयेत् सुरसादीना ।
 शिरोविरेचनद्रव्यैः सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ ३१ ॥
 संस्नेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन वेष्टितम् ।
 सेवन्याः सर्वतो धस्ताद्विधेद्विह्वलि मुखेन वै ॥ ३२ ॥
 सुष्ककोशमगच्छन्त्यामन्तवह्नी विचक्षणः ।
 वातवह्निक्रमं कुर्याद्वाहस्तवाग्निना हितः ॥ ३३ ॥
 शङ्खोपरिकर्णान्ते त्यक्त्वा सेवनीमादरात् ।
 व्यत्यासाद्वा शिरसि विधेदन्तवह्निरिहृत्तये ॥ ३४ ॥
 तैलमैरण्डजं पीत्वा वलासिहं पयोन्वितम् ।
 आश्वानशूलोपचितामन्तवह्निं जयेन्नरः ॥ ३५ ॥
 राम्ना यद्यमृतैरण्ड वलागोक्षुरसाधितः ।
 कायोऽन्तवह्निं हत्वाशु रघुतैलेन मिश्रितम् ॥ ३६ ॥

विदग्धाशु च सर्वासु योज्य कर्म व्रणायहम् ।
 अगुष्ठमध्ये त्वक् छित्वा दहेद्वायुं विवर्जयेत् ॥
 अनेनैव विधानेन कुर्याद्वातकफात्मजे ॥ ३६ ॥
 तूपपणं पिप्पलीमूलं देवदारुफलत्रिकम् ।
 कपायं पाचयेत्तेपां सत्चारलवणत्रयम् ॥ ३७ ॥
 त्रिभिर्मासैः प्रशाम्येत वृद्धिर्वातकफात्मजा ॥ ३८ ॥
 रास्नायश्चमृतैरण्ड पटोलारेणुका बला ।
 वृषथ क्वधितो वृद्धिं निहन्याच्चित्रतैलवान् ॥ ३९ ॥
 गन्धर्वतैलसंमिश्रं विशालामूलजं रजः ।
 क्षीरेण पीतं सप्ताहवृद्धिं हन्ति न संशयः ॥ ४० ॥

—०—

अथ कुरण्डलक्षणमाह ।

अत्यभिष्यन्दि गुर्वस्त्रसेवनान्निचयं गतः ।
 करोति ग्रन्थिवच्छोफं दोषो बङ्गणसन्धिषु ॥ ४१ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

यथांबुना तु संपिष्टं मूलं भांग्याः प्रलेपनात् ।
 कुरण्डं गण्डमालाञ्च हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ४२ ॥
 शम्बूकोदरनिहितं गव्यं सप्ताहमात्तपे सर्पिः ।
 स्थितमपहरति कुरण्डं मैन्धवचूर्णान्वितं लेपात् ॥ ४३ ॥
 मसैन्धव घृताभ्यक्तं ताम्रभाजनमात्तपे ।
 प्रतप्तं चूर्णनिर्घृष्टं तन्मलं समुपाहरेत् ॥ ४४ ॥
 स्रक्षयेत्तेन कौरण्डमनुद्दिग्नी दिवानिशम् ।

प्रवृद्धं तेन कौरण्डं नश्यत्वाह पुनर्न सुः ॥ ४५ ॥

लज्जालुमूलगुग्गुलुस्य विट्प्रलेपः प्रयोजितः ।

कुरण्डं योनिरोगञ्च नाशयेदविकल्पतः ॥ ४६ ॥

सतैललवणं भस्मपारदं लेपमावृतः ।

अपि तालफलाकारां वृद्धिं जयति वेगतः ॥ ४७ ॥

—०—

शतपुष्पाष्टादारुचन्दनं रजनीद्वयम् ।

जीरके द्वे वचानागं त्रिफला गुग्गुलुत्वचम् ॥ ४८ ॥

मांसीकुष्ठं पत्रकौला रास्त्रागृही च चित्रकम् ।

कृमिघ्नमश्वगन्धा च शैलेयं कटुरोहिणी ॥ ४९ ॥

सैन्धवं तगरञ्चैव कुष्ठजातिविषैः समैः ।

एतैश्च कार्पिकैः कल्कैः घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५० ॥

द्वपसुण्डितिकैरण्डनिम्बपत्रभवो रसः ।

काण्डकार्थ्यास्तथा चीरं प्रस्थं प्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥ ५१ ॥

सिद्धमेतदघृतं पीतमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ।

वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिं मथापि वा ॥ ५२ ॥

मूत्रवृद्धिं श्लोपदञ्च यक्तृप्लीहानमेव च ।

शतपुष्पाघृतं चैतद् धन्यादेतन्नसंशयः ॥ ५३ ॥

शतपुष्पाद्यं घृतम् ।

शतमैरण्डमूलस्य पलं शण्डप्रायवाढकम् ।

जलद्रोणे विषक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ५४ ॥

तेन पादावशेषेण पयसा तक्षमेन च ।

प्रस्थमैरंडतैलस्य तन्मूलाञ्च चतुष्पलम् ॥ ५५ ॥

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य गर्भं दत्त्वा विपाचयेत् ।

तत्पिबेन्नियतः शुद्धो नरः क्षीरान्नमुक् सदा ॥ ५६ ॥

अन्तर्वृद्धिं जयत्याशु तैलं गन्धर्वहस्तकम् ॥ ५७ ॥

इति गन्धर्वहस्ततैलम् ।

तैलं नारायणं योज्यं घानाभ्यञ्जनवस्तिषु ।

घृतं सौरेश्वरश्चैव ह्यन्तर्वृद्धिनिवृत्तये ॥

आर्द्रकं षट्पलं वापि चव्याद्यं च प्रयोजयेत् ॥ ५८ ॥

इति वङ्गसेनेऽन्तर्वृद्धिनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ४२ ॥

—०—

अथ ब्रध्मनिदानमाह ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वस्त्रं सेवनान्निचयं गतः ।

करोति वृद्धिं शोफञ्च दोषो ब्रध्मणमन्धिषु ॥

ज्वरशूलाङ्गसादाव्य तं ब्रध्ममिति निर्दिशेत् ॥ १ ॥

निर्व्ययं च कुरङ्गं स्यात् ब्रध्मं भवति सव्ययम् ।

अयमेवानयोर्मदः अन्यत्सर्वसर्म तथा ॥ २ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

भट्टखैरङ्गतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ।

क्षणासैन्धवसयुक्तो ब्रध्मरोगहरः परः ॥ ३ ॥

आविक्षीरेण गोधूमचूर्णं कुन्दुरुकस्य च ।

प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद्ब्रध्मरोगहरं परम् ॥ ४ ॥

सृतभात्रे च वै काके विशाले तु प्रवेशयेत् ।

ब्रध्मं मुहूर्त्तं मेधावी तत्क्षणादरुजं भवेत् ॥ ५ ॥

अजालीहृषुपाकुटं गोधूमं वदरान्वितम् ।

काञ्चिकेन तु संपिष्टं कुर्याद्ब्रध्मप्रलेपनम् ॥ ६ ॥
 श्वदंष्ट्रासिन्धुविश्वान्द दारुकमिहराश्वभित् ।
 लोभचूर्णं घृतेनाद्याद्वातब्रध्महरं परम् ॥ ७ ॥
 पुष्पोद्भूतं हरेदाशु विष्णुत नृपवारिणा ।
 भार्गीमूलमखडन्तु पानादङ्गणवातजित् ॥ ८ ॥

—०—

मूलं विल्वकपित्थयो ररलुकस्याग्ने वृहत्सोर्दयोः ।
 श्यामापूतिकरञ्जशियुकतरो विश्वौषधारुष्करम् ॥
 कृष्णाग्रन्यिकं च व्यपञ्चलवणं चाराजमोदान्वितम् ।
 पीतं काञ्चिककोष्णतोयमथितै शूर्णीकृतं ब्रध्मजित् ॥ ९ ॥
 इति विल्वाद्य चूर्णम् ।

सैन्धवं मदतं कुष्टं शताङ्गा निचुलं बचा ।
 क्लीवेरं मधुकं भार्गी देवदारुसनागरम् ॥ १० ॥
 कट्फलं पोष्करं मेदे चविकाचिचकं शठी ।
 विडङ्गातिविपाश्यामा हरेणु नलिनी स्थिरा ॥ ११ ॥
 विश्वजामोदे कृष्णा च दन्तीराम्ना च तैः समैः ।
 साध्यमैरंडजं तैलमभ्यङ्गात्कफवातजित् ॥ १२ ॥
 ब्रध्मोदावर्त्तगुल्मार्शः प्लीहमहाब्धमारुतान् ।
 पानाहमश्मरीक्षैव हन्त्यात्तदनुवासनात् ॥ १३ ॥

इति वृहत्सैन्धवाद्य तैलम् ।

इति ब्रह्मसेने ब्रध्मनिदानचिकित्साधिकारः
 समाप्तः ॥ ४३ ॥

—०—

अथ गलगण्डनिदानमाह ।

निबद्धः श्वययुर्यस्य मुष्कवल्ग्वस्यते गले ।

महान्वा यदि वा क्लृप्सो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्ये समाश्रित्य तथैव मेदः ।

कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः खलिद्भिः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥ २ ॥

तोदान्वितः क्षणशिरावनहः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु ।

पारुष्ययुक्तश्चिरहृदिपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥ ३ ॥

वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तो भवेत्तथा तालुगलप्रशीपः ।

स्थिरः सवर्णो गुरुरप्रकण्डूः शीतो महान्धैप कफात्मकस्तु ॥ ४ ॥

चिराभिहृदि भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ।

माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तो भवेत्तथा तालुगलप्रलीपः ॥ ५ ॥

स्निग्धोऽगुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोयुतः कण्डूयुतो रुजश्च ।

प्रलम्बतेऽलावुवदल्पमूलो विवर्धते क्रीयति चात्र देहे ॥ ६ ॥

स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥ ७ ॥

कृच्छोच्छसन्तं मृदुसर्वगात्रं सम्बत्सरातीतमरोचकार्त्तम् ।

चीरश्च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरश्चापि विवर्जयेत्तम् ॥ ८ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्वेदोऽनिलोत्थे गलगण्डकादौ नाड्यानिलक्ष्मीपधपत्रभंगैः ॥ ९ ॥

निचुलं शिश्रुबीजानि दशमूलमथापि वा ।

आलेपनं वातगण्डे सुखीष्णं संप्रशस्यते ॥ १० ॥

स्वेदोपनाहैः कफसम्भवे तु

सरोद्यविस्त्रावणमेव कुर्यात् ॥ ११ ॥

देवदारुविशाला च कफगण्डे प्रलेपनम् ।

कूर्हन् शीर्षरेकथ सर्वोरेचनिको हितः ॥ १२ ॥

मैदः समुत्थे तु यथोपदिष्टं विध्येच्छिरां स्निग्धतनोर्नरस्य ।

श्यामासुधालोहपुरीषदन्ती रसाञ्जनैद्यापि हितः प्रलेपः ॥ १३ ॥

मूत्रेण वा लोद्यहिताय कल्कं प्रातः पिवेत्सारमहीरुहाणाम् ॥ १४ ॥

सर्षपान् शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् ।

मूलकस्य च बीजानि तक्रेषास्त्रेण पेपयेत् ॥ १५ ॥

गण्डानि ग्रन्थयच्चैव गण्डमालासुदारुणा ।

आलेपादेवनश्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात् ॥ १६ ॥

रक्षोघ्नतैलयुक्तेन जलकुम्भिकभस्मना ।

लेपनं गलगण्डस्य चिरोत्थस्यापि शस्यते ॥ १७ ॥

दग्धं वराहपुच्छाय कटुतैलसमन्वितम् ।

नस्येन हति तरुणं गलगण्डमसंशयम् ॥ १८ ॥

तंडुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपतः ।

हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ १९ ॥

खेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिवेन्नरः ।

सर्पिषानियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥ २० ॥

तिक्तालावुफले पक्के सप्ताहमुपितं जलम् ।

मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात्पथ्यान्न सेविनः ॥ २१ ॥

कर्णयुग्मवहिः सन्धि रत्नाभ्यासे स्थितश्च यत् ।

उपर्युपरि तच्छिन्द्याद्गलगण्डे शिरात्रयम् ॥ २२ ॥

—०—

हिम्रावचागुडूची त्रिफलाऽनलदारुपिप्पलीकल्कैः ।

भृङ्गस्वरसैः सिद्धं तैलं गलगण्डजिह्मधुना ॥ २३ ॥

इति सिंहाय तैलम् ।

तैलं पिबेद्वा मृतबल्लिनिम्ब हिंस्ताद्वया वृक्षकपिप्पलीभिः
सिद्धं बलाभ्याञ्च सदेवदाहं हितायनित्यं गलगण्डरोगी ॥२॥

इत्यमृतार्थं तैलम् ।

प्रियंगुयष्टीमधुकं सकुष्ठं सपिप्पलीचन्दनमुस्तनिम्बम् ।
कल्कं विनिक्षिप्य विपाच्यतैलं चतुर्गुणे नस्यविधिप्रयुक्तम् ।
शाखोटवल्कस्वरसे च सिद्धं हन्यात्प्रवृद्धं गलगण्डरोगम् ॥ २५ ॥
इति शाखोटाद्यष्टतम् ।

त्रिफलायास्त्रयोभागा व्योषस्तद्विगुणो मतः । .

तस्माच्च द्विगुणं देयं काञ्चनारस्य वल्कलम् ॥ २६ ॥

एकोक्तते तु चूर्णेऽस्मि समो देयोऽथ गुग्गुलुः ।

क्षौद्रस्य तु ततो दद्याद्दशभागान्विचक्षणः ॥ २७ ॥

नाडीव्रणेषु सर्वेषु गलगण्डे तथैव च ।

सर्वासु गडमास्तासु गुटिकेयं प्रशस्यते ॥ २८ ॥

इति काञ्चनारगुग्गुलुगुटिका ।

यवमुद्गपटोलादि कटुरूक्षञ्च भोजनम् ।

हृदिश्च रक्तमुक्तिश्च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ २९ ॥

इति वङ्गसेने गलगण्डनिदानचिकित्साधिकारः
समाप्तः ॥ ४४ ॥

—०—

अथ गण्डमालानिदानमाह ।

कर्कशुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवङ्गणेषु ।

मेदः कफाभ्या चिरमन्दपाकैः स्याद्गडमालाबहुभिस्तु गण्डैः ॥१॥

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाका स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ।

कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचोति प्रवदन्ति केचित् ॥ २ ॥
साध्याः स्मृताः पीनसपार्श्वशूलकासञ्जरश्चर्दियुतास्त्वऽसाध्या ॥ ३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

सर्पपारिष्टपत्राणि दग्ध्वाभस्मातकैः सह ।
ह्लागमन्त्रेण संपिष्ट मपचीघ्न प्रलेपनम् ॥ ४ ॥
पश्वत्यकाष्टं निचुलं गवां दन्तञ्च दाहयेत् ।
वाराहमज्जसंयुक्तं भस्महन्त्वपचीघ्नणान् ॥ ५ ॥
वनकपीसजं मूलं तंडुलैः सह योजितम् ।
पक्वाज्ये पोलिकां खादे दपचीनाशनाय च ॥ ६ ॥
अलम्बुपादलोद्भूतं स्वरसं द्विपलं पिबेत् ।
अपच्य गण्डमायायाः कामलायाश्च नाशनम् ॥ ७ ॥
मणिवन्धोपरिष्ठाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक् ।
अङ्गुलान्तरितं सम्यगऽपचीनां निवृत्तये ॥ ८ ॥
चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणो ।
एतैस्तैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ ९ ॥

इति चन्दनाद्यं तैलम् ।

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च ।
एभिस्तैलं शृतं नस्यात् कृच्छ्रामित्यपचीं जयेत् ॥ १० ॥
इति व्योषाद्यं तैलम् ।

काकादनोशिफा कल्कैर्निर्गुंध्याः स्वरसैः शृतम् ।
आरनालैश्च कटुकं तैलं स्यादपचीहरम् ॥ ११ ॥

इति काकादन्यादि तैलम् ।

अजमोदाससिदूरं श्रीवांसं रजनीद्वयम् ।

चारद्वयमपामार्गं हरितालं मन शिला ॥ १२ ॥
 आर्द्रकाङ्गुलं वा शुण्ठी जालिनी सेन्द्रवारुणी ।
 सर्वे द्रव्या समाना स्युर्भागाद्यार्द्धपलोन्मिता ॥ १३ ॥
 छागेनाष्टगुणेनैव मूत्रेण मृदुवह्निना ।
 कटुतैलं पचेदेभिः स्रुह्यार्कपयसा सह ॥ १४ ॥
 उत्पाद्यमानामपची नस्याद्विपर्ययेनृणाम् ।
 उत्पन्नमामपक्वाच्च नस्याभ्यङ्गेन नाशयेत् ॥ १५ ॥
 विशीर्णकुथितात्वऽर्थं निर्गन्धा पूयवाहिनी ।
 चिरजाऽसाध्यकल्पापि तैलेनानेन साध्यते ॥ १६ ॥
 युक्ताहारविहारेण नस्यदानेन चैव हि ।
 रोहिता क्षिप्रमेव हि सप्तरात्रान् न शयय ॥ १८ ॥

इति महाऽजमोदाद्य तैलम् । इत्थपची

माक्षिकाण्यं सकृत् पीतं क्वाथो वरुणमूलजः ।
 गडमाला हरत्वाशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १९ ॥
 पिष्ट्वा ज्येष्ठस्मुना पेया काञ्चनारत्वच शुभा ।
 विश्वभेषजसंयुक्ता गडमालाहरा परा ॥ २० ॥
 पलमर्द्धपलं वापि पिष्ट्वा तडुलवारिणा ।
 काञ्चनारत्वचं पीत्वा मुच्यते गडमालया ॥ २१ ॥
 जिह्वाधः पार्श्वयोः मूलाच्छिरा द्वादशकीर्तिता ।
 तासां स्थूलशिरे द्वे तु क्षिद्यते च शनैः शनैः ॥ २२ ॥
 बडिशेनैव सगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् ।
 भुते रक्ते व्रणे तस्मिन् दद्यात् सगुडमार्द्रकम् ॥ २३ ॥
 भोजनं चानभिष्यन्दि यूषं कीलित्यभिष्यते ।
 नस्य वैरेचनं योज्यं वमनञ्च प्रयोजयेत् ।
 गडमालाप्रशान्त्यर्थं यवमुद्गादिभोजनम् ॥ २४ ॥

वचाशठीहरिद्रे द्वे देवदारुमहीषधम् ।

हरीतकी चातिविषा सुस्तकेन्द्रयवाः समाः ॥ २५ ॥

एतान् दशपलान् भागांश्चतुर्दोणेऽभ्यसः पचेत् ।

पादशेषे जले तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २६ ॥

कल्कं दत्वा पलोन्मानैः क्वाथ्यद्रव्यैः सुपेपितैः ।

प्रक्षिप्य त्रिगुणं चौद्रं व्योषचूर्णात् पलानि षट् ॥ २७ ॥

यथाकालं पिवेन्मात्रां यथेष्टाहारमेव च ।

गंडमालां निहन्त्याशु बहुवर्षसमुद्भवाम् ॥ २८ ॥

कासं श्वासं प्रतिश्यायं गलगंडं सुखामयम् ॥

इति वचाद्यं घृतम् ।

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत् ।

केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना ॥ २९ ॥

पक्वाशेषे विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् ।

एतत्तैलं निहन्त्याशु गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ३० ॥

चक्रमर्दादिसिन्दूरतैलम् ।

निर्गुंडीस्वरसे तैलं लाङ्गलीमूलकक्लितम् ।

तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ३१ ॥

इति निर्गुंडीतैलम् ।

गुञ्जामूलफलैस्तैलं तोये द्विगुणिते पचेत् ।

नस्याभ्यङ्गेन यमये गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ३२ ॥

इति गुञ्जातैलम् ।

विडङ्गानलसिन्धूत्य राम्नोया चारदारुभिः ।

तैलं चतुर्गुणं सिद्धं कटुतुम्बीजलेन वा ॥

गंडमालापङ्कं श्रेष्ठं गलगंडहरं परम् ॥ ३३ ॥

इति तुम्बीतैलम् ।

गंडमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा ।

विस्वाऽश्वमार निर्गुंडी साधितं चापि नाशनम् ॥ ३४ ॥

इति शाखोटकविस्वाद्य तैलम् ।

कुकुन्दर्या विपक्वन्तु चणान्तैलवरं ध्रुवम् ।

अभ्यङ्गान्नाशयेद्वृणां गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ३५ ॥

इति कुकुन्दरीतैलम् ।

त्रिफला त्रिवृता दन्ती नीलिनी चतुरंगुलैः ।

पञ्चविंशतिसत्याकैः प्रत्येकं पलमात्रया ॥ ३६ ॥

कथितैः कुट्टितैरेभिश्चतुर्दशैः प्रमाणतः ।

पचेत्तु सलिले तावद्यावद्गोणश्च शेषितम् ॥ ३७ ॥

पञ्चाशत्तत्र निक्षिप्य गुग्गुलोऽस्तु पलान्यपि ।

क्वाथयेत् सघनं यावत् पुनस्तत्पूर्यवत् पचेत् ॥ ३८ ॥

ततस्तस्मिन् घनीभूते त्वगैलानागकेसरम् ।

त्रिकटुत्रिफलापर्णी यवानी जीरकानि च ॥ ३९ ॥

पिप्पलीमूलदहनं हृषुपाकृष्णजीरकम् ।

वाय्विका चाजमोदा च तित्तिडीचाम्बवेतसम् ॥ ४० ॥

सोवर्चलयुतं कृत्वा श्लक्ष्णचूर्णं विनिक्षिपेत् ।

प्रत्येकमर्धपलिकैर्भागैः सम्यग्विचक्षणः ॥ ४१ ॥

ततोऽक्षमात्रां गुटिका भक्षयेच्च दिने दिने ।

गंडमालार्घ्यदपन्थि जङ्घास्तम्भोदरादितः ॥ ४२ ॥

अनेनैव विधानेन गिरिजम्बा प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥

इति त्रिफलाद्यो गुग्गुलुः ।

इति वङ्गसेने गरुडमात्राऽधिकारः

समाप्तः ॥ ४५ ॥

अथ ग्रन्थिनिदानमाह ।

वातादयो मांसमसृग्प्रदुष्टाः सद्रूपं मेदय तथा शिराश्च ।
 वृत्तोन्नतं विग्रन्यितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥
 आयस्यते हृथप्रति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च ।
 कृष्णो मृदुर्वस्त्रिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥
 दन्द्दह्यते शुष्यति चुष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ।
 रक्तः सपीतोऽप्यथवापि पित्ता द्विन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥ २ ॥
 शीतोविवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पापाणवत्संहननोपपन्नः ।
 चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्विन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ३ ॥
 शरीरवृद्धिश्चयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान् कण्डुयुतोऽरुजश्च ।
 मेदः कृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिष्ट्याकसर्पिः प्रतिमन्तु मेदः ॥ ४ ॥
 व्यायामजातैरबलस्य तैस्तै राक्षिष्य वायुश्च शिराप्रतानम् ।
 सङ्कोचर्मपीड्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ ५ ॥
 ग्रन्थिः शिरानः स तु कच्छसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजयलयः ।
 अरुक्त्वा एवाप्यचलो महांश्च समील्यतथापि विवर्जनीयः ॥ ६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

ग्रन्थिष्वधामेषु भिषग्विदध्याच्छोथक्रियां विस्तरतो विधिज्ञः ।
 रक्षेत्तलं चास्य नरस्य नित्यं तद्रक्षितं व्याधिवलं निहन्ति ॥ ७ ॥
 हिंसासरोहिण्यमृताऽथ भांगीं सोनाकबिल्वगुरुकृष्णगन्धाः ।
 गोपित्तपिष्टाः सह तालपत्राश्च ग्रन्थैर्विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ ८ ॥
 कुर्यात् स्वेदोपनाहंश्च तथान्यान् मिहलेपनान् ॥ ९ ॥

१ तालपत्री तालमूली ।

विदार्य वा पक्व मपोद्घ पूयं प्रचात्य बिल्वार्कनरेन्द्रतोयैः ।
 तिलैश्च पञ्चाङ्गुलपत्रमिश्रैः संस्वेदयेत् सैन्धवसंप्रयुक्तैः ॥ ११ ॥
 शङ्खं ब्रणश्चाप्युपरोहयेत्तु तैलेन रास्त्रा सरलान्वितेन ।
 विडङ्गयष्टीमधुकामृताभिः सिद्धेन वा चीरसमन्वितेन ॥ १२ ॥
 जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु चीरोदकाभ्यां परिपेचनञ्च ।
 काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि पित्ते कषायाणि सशर्कराणि ॥ १३ ॥
 द्राक्षारसेनेक्षुरसेन चापि चूर्णं पिवेद्वापि हरीतकीनाम् ॥ १४ ॥
 मधूकजम्बार्जुनवेतसानां त्वग्निः प्रदेहानऽवधारयेच्च ।
 सशर्करैर्वा तृणमूलकल्कैर्दिघ्यादभीक्ष्णं मुचुकन्दजैर्वा ॥ १५ ॥
 विदार्य चाऽऽपक्वमपोद्घ पूयं धीतं कषायेण वनस्पतीनाम् ।
 तैलेः सयष्टोमधुकैर्विशोध्य सर्पिः प्रयोज्यं मधुकैर्विपक्वम् ॥ १६ ॥
 हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्या ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुत्थिते च ।
 स्निग्धस्य विप्लापनमेव कुर्यात् दंगुष्टलोहोपलवेषुदण्डैः ॥ १७ ॥
 विकटतारग्वध काकणन्ती काकादनीतापसहस्रमूलैः ।
 अलिपयेदेनमलावुभाङ्गीकरञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥ १८ ॥
 मेदः समुत्थितं ग्रन्थिं तिलकल्कैः प्रदिह्य च ।
 सङ्घात्य वस्त्रपट्टेन स्वेदयेत्तप्तलोहकैः ॥
 पाटयित्वा तु शस्त्रेण हृत्वा मेदोऽग्निना दहेत् ॥ १९ ॥
 ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपक्वानुद्धृत्य चाग्निं विदधीतवैद्यः ।
 क्षारिण चैतान् प्रतिसारयेच्च सलिख्य संलिख्य यथोपदेशम् ॥ २० ॥
 श्लेपनं शङ्खचूर्णेण सह मूलस्य भस्मना ।
 कफार्बुदापहं कुर्याद् ग्रन्थ्यादिषु विशेषतः ॥ २१ ॥
 ग्रन्थीनुद्धृत्य वा पक्वं बज्जिकर्मप्रयोजयेत् ।
 पथात् क्षारिण संशोध्य ब्रणवत् समुपाचरेत् ॥ २२ ॥
 शिराग्रन्थिं परित्यज्य शेषं यत्नेन साधयेत् ॥ २३ ॥

दन्तीचित्रकमूलत्वक् सुधार्कपयसीगुडः ।

भक्तातकास्थि काशीसं लेपो भिन्द्याच्छिलामपि ॥ २४ ॥

स्वर्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमन्वितः ।

प्रलेपे विहितः शूलो हन्ति ग्रन्थर्वुदादिकान् ॥ २५ ॥

यानि प्रतिद्वादश चांगुलानि मेद्वञ्च वस्तिं परिवर्त्य सम्यक् ।

विदार्यमत्स्याण्डनिभानि वेद्यो विक्लथजालं पललं विदध्यात् ॥ २६ ॥

इति वङ्गसेने ग्रन्थिनिदानाधिकारः

समाप्तः ॥ ४६ ॥

—०—

अथार्बुदनिदानमाह ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्क्षितामांसमसृक्प्रदूष्य ।

वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तं मनल्पमूलं चिरवृद्धिपाकम् ॥

कुर्वन्तिमांसोच्छ्रयमत्यगाधं तद्वर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ १ ॥

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसापि ।

यज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥ २ ॥

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिरासु सङ्गोच्य संपीड्य ततस्त्वपाकम् ।

सास्त्रावमुच्यतिमांसपिण्डं मांसाङ्कुरैराचितमाशुवृद्धिम् ॥ ३ ॥

करोत्यञ्जस्त्वं रुधिरं सदुष्टमसाध्यमेकं रुधिरात्मकन्तु ।

रक्तचयोपद्रवपीडितत्वात् पाण्डुर्भवेत्सोऽर्बुदपीडितस्तु ॥ ४ ॥

सुष्टिप्रहारादिभिरदतिऽङ्गे मांसं प्रदुष्टञ्जनयेच्च शोथम् ।

अवेदनं क्षिण्णमनन्यवर्णं मपाकमश्नोऽपममप्रचात्यम् ॥ ५ ॥

प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेद्यांसपरायणस्य ।

मांसार्बुदन्त्वेतदऽसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत्तु ॥ ६ ॥

संप्रसृतं मर्मणि यच्च जातं स्त्रोतःसु वा यच्च भवेदऽचात्यम् ।
 यज्जायतेऽन्यत् खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्तुदमर्वुदघ्नैः ॥ ७ ॥
 यद्वन्द्वजातं युगपत् क्रमाद्वा द्विर्वुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ ८ ॥
 न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान् मेदो बहुत्वाच्च विशेषतस्तु ।
 दोषस्थिरत्वादग्रथनाच्च तेषां सर्वावुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ ९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

जयेद्विद्रधिवत् पूर्वं मर्वुदं प्रच्छनादिभिः ।

क्षाराग्निभ्यां दहेच्चापि प्रदेहैर्विविधैर्जयेत् ॥ १० ॥

कर्कारुकैर्वाकनारिकेल प्रियालपञ्चांगुलबीजपूरैः ।

वातावुदं क्षीरघृताम्बुसिद्धैरुष्णैः सतेलैरुपनाहयेत् ॥ ११ ॥

स्वेदं विदध्यात् कुशलस्तु नैद्या शृङ्गेण रक्तं बहुशो हस्ते च ।

वातघ्ननिर्यूहपयोऽम्बुभागैः सिद्धां शताङ्गां त्रिवृत्तां पिवेद्वा ॥ १२ ॥

स्वेदोपनाह्वा शृङ्गवस्तु प्रप्याः पित्तावुदे कायविरेचनञ्च ।

विष्टय चोदुम्बरशाकगोजीपत्रै र्भृशं क्षीद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ १३ ॥

सूक्ष्मीकृतैः सर्जरसप्रियंगु पतङ्गलोभार्जुनयष्टिकाङ्गैः ॥ १४ ॥

शुद्धस्य जन्तोः कफजेष्वुदे तु रक्ते च सिक्ते च ततोऽवुदं तत् ।

कपोतपारावतविड्ढिमिश्रैः सकांस्थनीली शुक्लाङ्गुलाख्यैः ॥ १५ ॥

सूक्ष्मैस्तु काकादनमूलमिश्रैः चारप्रदिग्धै रथवा प्रदिह्येत् ॥ १६ ॥

निष्यावपिष्ट्याककुलत्यक्ल्वै र्मांसप्रगाढैर्दधिर्मर्दितैश्च ।

लेपं विदध्यात् क्षमयो यथात्र सुञ्चन्यपत्यान्ययमक्षिका वा ।

अल्पावशिष्टं कृमिभिः प्रजग्धं लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात् ॥ १७ ॥

अशेषदोषाणि हि नावुदानि करोति तस्याश्च पुनर्भवन्ति ।

नरानशेषाणि ससुदरेत्तु हन्युः सशेषाणि यथाविपाग्नी ॥ १८ ॥

हरिद्रा लोघ्रपतङ्गद्वन्द्वधूममनःशिला ।

मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥

एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ १८ ॥

यदल्पमूलं त्रपुसैः सताम्रैस्तद्वेष्ट्यपत्रैरथवाऽऽयसैर्वा ।

चाराग्निशस्त्राण्यवचारयेच्च मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्ष्यमाणः ॥

यदृच्छया चोपगतानि पाकं पाकक्रमेणोपचरेद्विधिज्ञः ॥ २० ॥

आस्फोतगोजीकरवीरपत्रैः कपायमिष्टं ब्रणशोधनार्थम् ।

शुद्धञ्च तैलं विदधीत भार्गीविडङ्गपाठात्रिफला सुसिद्धम् ॥ २१ ॥

स्रुहीगण्डीरिकास्वेदो नांशयेद्वुदानि च ।

लवणेनाऽथवा स्वेदः सीसकेन तथैव च ॥ २२ ॥

निवृत्यजिह्वां दग्धनैर्विदंश्चत्रिधा शिराशब्दमपि प्रकृत्या ।

निंशावमाने त्रिदिनान्यवश्यम्पीडां हरेद्वुदजां सुघोराम् ॥ २३ ॥

मूलकस्य कृतः चारो हरिद्रायास्तथैव च ।

शङ्खचूर्णेन सयुक्तो लेपः सिद्धोऽर्बुदापहः ॥ २४ ॥

उपोदिकरसाभ्यक्ता स्तत्पत्रपरिवेष्टिता ।

प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पिडिका ह्यर्बुदादयः ॥ २५ ॥

उपोदिका काञ्जिक तक्र पिष्टा तथोपनाहं लवणेन सार्धम् ।

दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैचिद्दिने दिने वा त्रिपु मर्मजानाम् ॥ २६ ॥

वटदुग्धकुटरोमक लिप्तं वह्ने वटस्य कल्केन ।

अध्यस्थि सप्तरात्रान् महदपि शमयेत् सिद्धमिदम् ॥ २७ ॥

गन्धशिलाविश्वीषधं विडङ्गयवभक्षजं समञ्चूर्णम् ।

ककलाशरक्तयुक्तं निपात् सर्वावुर्दध्वंसि ॥ २८ ॥

सितमारशिग्रुसर्पप यवमूलकबीजमरत्नेन ।

लेपस्तत्र कृतोऽयं ग्रन्थवुदगण्डमालघ्नः ॥ २९ ॥

शि मूलकयोर्वीजं रक्षोघ्नं सरसं यवम् ।

अश्वमारश्च संपिप्य तक्रलेपोऽर्बुदादिजित् ॥ ३० ॥

इति वङ्गसेनेऽर्बुदनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ४६ ॥

—०—

अथ श्लीपदनिदानमाह ।

यः सञ्चरो वङ्गणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण ।
तच्छ्लीपदं स्यात् करकर्णनेत्रशिग्रौष्टनासाप्यपि केचिदाहः ॥ १ ॥

वातजं कृष्णरूक्षञ्च स्फुटितं तीव्रवेदनम् ।

अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ २ ॥

पित्तजं पीतसङ्काशं दाहज्वरयुतं मृदु ।

श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णञ्च श्वेतं पाण्डु गुरुस्थिरम् ॥ ३ ॥

वल्मीकमिवसंजातं कण्टकैरुपधीयते ।

अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥

व्रीक्ष्यमेतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ।

गुरुत्वञ्च महत्वञ्च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ५ ॥

यत् श्लेष्मलाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्यापि कफात्मकस्य ।

साम्नावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकडुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ६ ॥

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वतुष्टु च शीतलाः ।

ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

शाम्यति पिच्छलगुटिका सर्पपकल्कोपनाहतः सपदि ।

सैलबलाभ्यां लेपः करचरणशोथतामपि च ॥ ८ ॥

लङ्घनालेपनस्वेद रत्नै रक्तमोक्षणैः ।

प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लोपदं समुपाचरेत् ॥ ८ ॥

मासमैरंडजं तैलं पिवेन्मूत्रेण मानवः ।

कासमर्दशिफा कल्कं गव्येनान्येन यः पिवेत् ।

श्लोपदं वातजं तस्य नाशमायाति सत्वरम् ॥ १० ॥

महौषधविपक्वेन पयसा चान्नमादिशेत् ॥ ११ ॥

गुल्फस्याधःशिरां विध्ये श्लोपदे पित्तसम्भवे ।

पित्तघ्नीञ्च क्रियां कुर्यात् पित्तार्बुदविसर्पवान् ॥ १२ ॥

मञ्जिष्टामधुकं रास्त्रा सहिंसा सपुनर्नवा ।

पिष्टारणालैर्लेपोऽयं पित्तश्लोपदशान्तये ॥ १३ ॥

शिरां सुविदितां विध्ये दंगुष्टे श्लेष्मश्लोपदे ।

पिवेद्वाप्यभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन वै ॥ १४ ॥

पिवेदेव गुडूचीं वा नागरं भद्रदारु च ।

पिवेत्सर्पपतैलेन श्लोपदानां निवृत्तये ॥ १५ ॥

हितं वा लेपने नित्यं चित्रकं देवदारु च ।

सिद्धार्थशिशुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेपितः ॥ १६ ॥

सिद्धार्थ सौभाग्यनदेवदारु विश्वौषधैर्मूत्रयुतैः प्रलेपः ।

पुनर्नवानागरसर्पपानां कल्केन वा काञ्जिकमिश्रितेन ॥ १७ ॥

धत्तूरैरंडनिगुण्डी वर्षाभूशिशुसर्पपैः ।

प्रलेपः श्लोपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ १८ ॥

असाध्यमपि यात्यस्तं श्लोपदं चिरकालजम् ।

मूलेन सहदेवायास्तालमिश्रेण लेपितम् ॥ १९ ॥

निष्पिष्टमारणालेन रूपिकामूलवल्कलम् ।

प्रलेपात् श्लोपदं हन्ति वृद्धे मूलमपि स्थिरम् ॥ २० ॥

शाखोटवल्कलमित्रं तोयं गोमूत्रसंयुतं पीत्वा ।

हन्याच्छ्लोपदमुग्रं श्लेष्मभवं श्लोपदं पुंसाम् ॥ २१ ॥
 पिंडारकतरुसम्भव वन्दाकशिकाजयति सर्पिषा पोता ।
 श्लोपदमुग्रं नियतं बद्धा सूत्रेण जंघायाम् ॥ २२ ॥
 धतूरकस्य बीजानि पिप्पलीवर्द्धमानवत् ।
 शीतोदकेन पीतानि श्लोपदं घ्नन्ति दारुणम् ॥ २३ ॥
 पिवेत्सर्पपतैलेन श्लोपदानां निवृत्तये ।
 पूतीकरञ्जद्वजं रसं वापि यथा बलम् ॥ २४ ॥
 अनेनैव विधानेन पुत्रजीवकजं रसम् ।
 प्रयुञ्जीत भिषक् प्राज्ञः कालसाम्यविभागवित् ॥ २५ ॥
 सप्तताम्बूलपत्राणां कल्कं तप्तेन वारिणा ।
 ससृष्टलवणोपेतं श्लोपदं हन्ति सेवितम् ॥ २६ ॥
 रजनीगुडसंयुक्तं गोमूत्रेण पिवेन्नरः ।
 वर्षात्थं श्लोपदं हन्ति कंडू' कुष्ठ' विशेषतः ॥ २७ ॥
 वर्षाभूत्रिफलाचूर्णं पिप्पल्या सह योजितम् ।
 सक्षौद्रं विलिहेत्तेहं चिरोत्थं श्लोपदं जयेत् ॥ २८ ॥
 वृद्धदारुकचूर्णन्तु भूतसौवीरकादिभिः ।
 शीलितं श्लोपदं हन्ति कृच्छ्रं संवत्सरोत्थितम् ॥ २९ ॥
 क्षीरेण प्रातरुत्थाय पिवेद्यस्तु बलाहयम् ।
 सक्षीर श्लोपदाज्जन्तु रसाध्यादपिमुच्यते ॥ ३० ॥
 धान्याम्बूल तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम् ।
 दीपनं चामदोषघ्नं मेतच्छ्लोपदनाशदम् ॥ ३१ ॥
 उपोष्य पिष्ट्वा क्षीरेण पिवेदक्ष समं शुचिः ।
 कोचकस्य च बीजस्य सप्तपर्णात्वचस्तथा ॥ ३२ ॥
 नाडी च बीजकस्यापि वातज्वरप्रशान्तये ।
 पीत्वा च मासमेकं हि श्लोपदं नाशयेद्भुवम् ॥ ३३ ॥

जिह्विष्णास्तु दलैः सम्यक् तृषांबुपरिपेपितैः ।
स्वेदः श्रीपदनाशाय कर्त्तव्यः संप्रजानता ॥ ३४ ॥

—०—

गन्धर्वतैलसिद्धां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति ।
श्रीपदवन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ ३५ ॥
इति गोमूत्रहरीतकी ।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्क्षपलं पलम् ।
विंशतिस्तु हरीतक्यो गुडस्य तु पलद्वयम् ॥ ३६ ॥
मधुना सह संयुक्तं श्रीपदं हन्ति दारुणम् ।
इति कृष्णाद्यो मोदकः ।

पिप्पलीत्रिफलादारु नागरं सपुनर्नवम् ।
भागेद्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारुकम् ॥ ३७ ॥
काञ्चिकेन हि तच्चूर्णं पिवेत्कर्षप्रमाणतः ।
जीर्णे वा परिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ॥ ३८ ॥
श्रीपदं वातरोगांश्च हन्यात् श्रीहानमेव च ।
अग्निश्च कुरुते घोरं भस्मकश्च प्रयच्छति ॥ ३९ ॥
इति पिप्पल्याद्यं चूर्णम् ।

त्रिकटुत्रिफलाचव्यं दार्वीवरुणगोक्षुरम् ।
अलम्बुपागुडूचो च समभागानि चूर्णयेत् ॥ ४० ॥
सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारुकतत्समम् ।
काञ्चिकेन च तत्प्रेय मक्षमात्रं प्रमाणतः ॥ ४१ ॥
जीर्णं चाऽपरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ।
नाशयेत् श्रीपदं स्त्रीत्य मामवातश्च दारुणम् ॥ ४२ ॥
गुल्मकुटारुचिहरं वातश्लेष्मरुजापहम् ।
इति वृद्धदारुकचूर्णम् ।

निर्गुणोत्तिष्ठिका शिखिमन्यदलं पुनर्नवामूलम् ।
 भेत्तापापाणानां गोक्षुरकः पारिभद्रकत्वक् ॥ ४३ ॥
 एतैः पलाशैर्यो राशि स्तुतः स्याद्विगुणः खलिः ।
 तैलेन सर्पपानान्तु तदेकीकृत्यबुद्धिमान् ॥ ४४ ॥
 शालैर्मंडेन संदध्यात् सप्तरात्रं नये घटे ।
 ततः सर्पपतैलेन पिबेत्कर्पप्रमाणतः ॥ ४५ ॥
 जीर्णं भुञ्जीतशाल्यन्नं सुद्राणां पक्षिणां रसैः ।
 पञ्चाशद्वर्षं जातञ्च जातांकुरमपिधुवम् ।
 त्रिसप्ताहाज्जयत्येष श्लेषदं नात्रसंशयः ॥ ४६ ॥

इति निर्गुणोत्तिष्ठिका मण्डः ।

पिप्पलीत्रिफलादारु नागरं सपुनर्नवम् ।
 प्रत्येकं षोडशपलं गृहीत्वा चात्र चूर्णयेत् ॥ ४७ ॥
 वृद्धदारुकचूर्णेन समभागेन मिश्रयेत् ।
 अतश्चूर्णं पिबेत्कर्पं मानवः काञ्चिकादिभिः ॥ ४८ ॥
 जीर्णं त्वपरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ।
 नाशयेच्छ्लेषदं गुल्मं शूलं प्रीहानमेव च ॥ ४९ ॥
 अग्निञ्च कुरुते दीप्तिं सेव्यमानन्तु भस्मकम् ।
 उदावर्त्तमजीर्णञ्च हन्यामानिलपांडुताम् ।
 पिप्पल्यादिरयं ख्यातो विशेषाच्छ्लेषदे हितः ॥ ५० ॥

इति पाठान्तरभेदेन पिप्पल्याद्यं चूर्णम्

काकादनी काकजङ्घा वृहती कण्टकारिका ।
 कदम्बपुष्पी मन्दारी लवा शकनसी तथा ॥ ५१ ॥
 दग्ध्वा मूत्रेण तद्भस्म स्रावयेत् चारकल्पवत् ।
 तत्र दद्यात् प्रतीवापं काकोदुम्बरिकारसम् ॥ ५२ ॥

मदनानां पञ्चकायं शृङ्गाख्याया रसस्तथा ।

एषः चारस्तु पानीयः श्लोपदं हन्ति सेवितः ॥ ५३ ॥

अपचीं गंडमालाञ्च ग्रहणीदोषमेव च ।

अभक्ते रोचनञ्चैव हन्यात् सर्वविपाणि च ॥ ५४ ॥

एष्वेव तैलं संसिद्धं यस्याभ्यङ्गे पु योजितम् ।

एतत्तानाऽऽमयान् हन्ति ये च दुष्टव्रणा नृणाम् ॥ ५५ ॥

इति काकादन्यादिचारम् ।

सुरसा देवकाष्ठञ्च त्रिफला त्रिकटु गजा ।

लवणानि च सर्वाणि विडङ्गग्रंथिचित्रकम् ॥ ५६ ॥

चविका पिप्पलोमूलं गुग्गुलुर्हृषुपा वचा ।

यवाग्रजञ्च पाठा च शल्ये ले हृददारुकम् ॥ ५७ ॥

कल्कैश्च कार्पिकैरेतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

दशमूली कपायेण धान्ययूपद्रवेण च ॥ ५८ ॥

दधिमण्डसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक् ।

पक्वं तदुद्धृतं कल्कात् पिबेत् कर्पत्रयं हविः ॥ ५९ ॥

श्लोपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितञ्च यत् ।

भेदोत्थिताभिघातोत्थं हन्यादेव नसंगयः ॥ ६० ॥

अपचीं गंडमालाञ्च अन्तर्हृदि तथार्बुदम् ।

नाशयेद् ग्रहणीदोषं श्लेष्मयुं गुदजान्यपि ॥ ६१ ॥

परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठकृमिविनाशनम् ॥ ६२ ॥

हृतं सौरश्वरं नाम श्लोपदं हन्ति दाहकम् ।

जीवकेन कृतं ह्ये तद्रोगानीकविनाशनम् ॥ ६३ ॥

इति सौरश्वरं हृतम्

दन्तीमूलपलं दद्याच्चित्तमृणमन् तथा ।

त्रिफलातिविपाचित्रविडङ्गाश्रंपञ्चोन्मिश्रितम् ॥ ६४ ॥

सुहीचारममायुक्तं घृतस्य कुडवं पचेत् ।
विन्दुमात्रोपयोगेन वेगः समुपजायते ॥ ६५ ॥
दुर्वारं श्लोपदं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥

इति दन्तीघृतम् ।

घृतप्रस्यं विपक्तव्यं सव्योषैर्हृद्ददारकैः ।
कल्कैः सौवीरसिद्धं स्याच्छ्लोपदानां निवृत्तये ॥ ६६ ॥
अग्निञ्च कुरुते नृणामामवाते च शस्यते ।
एभिः कटु पचेत्तैलं पानाच्छ्लोपदनाशनम् ॥ ६७ ॥

इति वृद्धदारुकं घृततैलञ्च ।

विडङ्गमरिचार्कैषु नागरं चित्रकं तथा ।
भद्रदार्वेकवाख्ये च सर्वेषु लवणेषु च ॥ ६८ ॥
तैलं पक्वं पिवेद्वापि श्लोपदानां निवृत्तये ॥
इति विडङ्गाद्यं तैलम् ।

यवान्नं कटुतैलेन कूर्ममासञ्च योजयेत् ।
श्लोपदानां प्रशान्त्यर्थं मशान्ती दाहमग्निना ॥ ६९ ॥

इति श्रीवङ्गसेने श्लोपदनिदानचिकित्साधिकारः
समाप्तः ॥ ४८ ॥

अथ विद्रधिनिदानमाह ।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्याऽस्थिसमाश्रिताः ।
दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छिता भूयम् ॥ १ ॥

महामूलं रुजावन्तं वृत्तं वाप्यथवाऽऽयतम् ।
स विद्रधिरिति ख्यातो विक्षेपः षड्विधश्च सः ॥ २ ॥
पृथग्दोषैः समस्यैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ॥
पक्षामपि हि तेषां तु लक्षणं सम्प्रचक्षते ॥ ३ ॥
कृष्णोऽरुणो वा विषमो मृगमत्सर्यवेदनः ।
चित्रीत्यानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः ॥ ४ ॥
पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान् ।
क्षिप्रोत्यानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसम्भवः ॥ ५ ॥
शरावसदृशः पांडुः श्लेेतः स्निग्धोऽल्पवेदनः ।
चिरोत्यानप्रपाकश्च विद्रधिकफसम्भवः ॥ ६ ॥
तनुपीतसिताद्यैषा मास्त्रावाः क्रमशः स्मृताः ॥ ७ ॥
नानावर्णं रुजास्त्रावो घण्टालो विषमो महान् ।
विषमं पच्यते वापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥ ८ ॥
तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वा पथ्यकारिणः ।
क्षतोष्मावायुविस्तृतः सरक्तं पित्तमोरयेत् ॥ ९ ॥
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः ।
आगन्तुर्विद्रधिर्ज्ञेयः पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ १० ॥
कृष्णस्फोटोदृतः श्याव स्तीव्रदाहरुजाकरः ।
पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ ११ ॥
उक्ताविद्रधयो ह्येते तैश्चसाध्यस्त्रिदोषजः ।
आभ्यन्तरानतथोर्ध्वं विद्रधीन् परिचक्ष्महे ॥ १२ ॥
पृथक् संभूय वा द्रोषाः कुपितागुल्मरूपिणम् ।
यल्मीकवत्समुन्नद्ध मन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् ॥ १३ ॥
गुदे वस्तिं सुखेनाभ्यां कुक्षौ बद्धणयोस्तथा ।

हृकयोः प्रोङ्गियकति हृदये क्लोन्नि चाप्यथ ॥ १४ ॥

तेषामुक्तानि लिङ्गानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ।

अधिष्ठानविशेषैः लक्षणानि निबोध मे ॥ १५ ॥

गुदे वातनिरोधस्तु वस्ती रुच्छात्पमूत्रता ।

नाभ्यां हिक्का तथाटोपः कुक्षौ मारुतवेदना ॥ १६ ॥

कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो लङ्घणोत्थे तु विद्रधो ।

हृकयोः पार्श्वसंकोचः प्रोङ्गुच्छासावरोधनम् ॥ १७ ॥

सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदिकासथ जायते ।

खासो यकति हिक्का च पिपासाक्लोमज्ज्वलिका ॥ १८ ॥

नाभेरुपरिजा पक्वा यान्त्यूर्ध्वमितरेत्वधः ।

अधः सुतेषु जीवेषु सुतेपूर्ध्वं न जीवति ॥ १९ ॥

हृद्राभिवस्तिवर्ज्याये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः ।

जीवेत्कदाचित् पुरुषो नेतरेषु कथञ्चन ॥ २० ॥

साध्याविद्रधयः पञ्च विवर्ज्यं साङ्घ्रिपातिकः ।

आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥ २१ ॥

आभानं वदनिःस्पन्दं कर्दिर्हिक्काटपान्वितम् ।

रुजाश्वाससर्मायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २२ ॥

आमो वा यदि वा पक्वो महान्वा यदि चेतरेः ।

सर्वो भर्मात्यतश्चात्र विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥ २३ ॥

हृद्राभिवस्तिजः पक्वो वर्ज्यायश्च विदोपजः ।

मुष्टिप्रमाणो रक्तस्तु विद्रधिस्तु ततः परः ॥ २४ ॥

गुल्मस्तिष्ठति दोषेषु विद्रधिर्मांसशोणिते ।

विद्रधिः पच्यते तस्मात् गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ २५ ॥

पवनेन स्तनशिरा विक्षताः प्राप्य योपिताम् ।

सूतानां गर्भिणीनाञ्च सम्भवे श्वयथुर्धनः ॥ २६ ॥

स्तने सदुग्धे वा बाह्यो विद्रधेर्लक्षणांश्चितः ।

नाडीनां सूक्ष्मवक्रत्वात् कन्यानां न तु जायते ॥ २७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

जलौकायातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ ।

मृदुर्विरेको लघुव्रं स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २८ ॥

अपक्वो विद्रधौ युष्मा इणशोथवदौषधम् ।

वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतप्लुतैः ॥ २९ ॥

सुरोष्णो बहुशो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ।

स्वेदोपनाहः कर्तव्यः शिशुमूलसमन्वितः ॥ ३० ॥

यवगोधूममुद्गैश्च सर्पिः पिष्टैः प्रलेपयेत् ।

विलोयते चणैर्नैव सविदग्धस्तु विद्रधिः ॥ ३१ ॥

पुनर्नवादारुविल्व दशमूलभवांश्चसा ।

गुग्गुल्वेरण्डतैलं वा पिवेन्मासतविद्रधौ ॥ ३२ ॥

दशमूलोद्धिरुहा पथ्यादारुपुनर्नवाः ।

ज्वरविद्रधिगोफेषु शिशु विश्वयुता हिताः ॥ ३३ ॥

पैत्तिकं सारिवालाजा मधुकैः शर्करायुतैः ।

प्रदिग्धात् चीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ॥ ३४ ॥

त्रिहृदरोतकीनाश्च चूर्णं मधुयुतं पिवेत् ।

पिवेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिहृत्कल्काक्षसंयुतम् ॥ ३५ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ।

सर्पिपाशतपूतेन नवनोतिन वा गवाम् ॥ ३६ ॥

इष्टकासिकतालोह गोशक्तुपपांशुभिः ।

मूत्रैरुष्णैश्च सततं स्वेदयेत् श्लेष्मविद्रधिम् ॥ ३७ ॥

दशमूलीकपायै ष सस्त्रे ह्येन रसेन वा ।

शोथं त्रणं वा कोष्ठेन समूलं परिपेचयेत् ॥ ३८ ॥

त्रिफलाशिशुवरुणं दशमूलाम्भसापिबेत् ।

गुग्गुलं मूचयुक्तं वा विद्रधौ कफसम्भवे ॥ ३९ ॥

शिरां यथोक्तां विध्येच्च कफजे विद्रधौ भिषक् ।

रक्तपित्तानिलोत्प्रेषु केचिद्वाहा भवन्ति हि ॥ ४० ॥

पित्तविद्रधिवत्सर्वा क्रियानिरवशेषतः ।

विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्द्रक्ताङ्गन्तु निमित्तयोः ॥ ४१ ॥

पिबेद्वाभ्यन्तरे पथ्यां स च सौभाग्यनाद्रसम् ।

नाराचमथवा सर्पिस्तैलं वाऽद्याद्वबुक्कजम् ॥ ४२ ॥

क्षणाञ्जलीविशाला च ह्यपामार्गफलं तथा ।

पीतं ह्येतन्निह्न्याशु विद्रधिं कोष्ठसम्भवम् ॥ ४३ ॥

शिशुमूलं जले धौतं दर्शपटं प्रगालयेत् ।

तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ ४४ ॥

श्वेतवर्षाभुवोमूलं मूलं वरुणकस्य च ।

जलेन क्लथितं पीत मपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥ ४५ ॥

सौभाग्यनकनिर्यूहो हिंगुसैन्धवसंयुतः ।

अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निपेक्षितः ॥ ४६ ॥

शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुतं तंडुलांबुना पीतम् ।

अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ ४७ ॥

कासीससैन्धवशिलाजतु हिंगुचूर्ण-

मिथीकृता वरुणवल्कलजः कपायः ।

अभ्यन्तरोत्थितमपक्वमतिप्रमाणं

नृणामयं जयति विद्रधिसुप्रवीर्यम् ॥ ४८ ॥

दन्तीचित्रकगीदन्त चिरविल्वाखमारकान् ।

आन्तरे वितरेदिद्वानऽपक्वे शोयविद्रधी ॥ ४८ ॥

वरुणादिगणकाय मपक्वेऽभ्यन्तरोत्थिते ।

उपकादिप्रतीवापं पिबेत्संशमनाय वै ॥ ५० ॥

अपक्वे त्वेतदुद्दिष्टं पक्वे तु व्रणवत् क्रिया ॥ ५१ ॥

मृतेऽप्यूर्ध्वमधद्यापि मैरेयास्तसुरासवैः ।

पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिशुरसोऽथवा ॥ ५२ ॥

मधुशिशुस्तु मूलेन यवागूं साधुसाधिताम् ।

यवंकोलकुलित्यानां सर्वैर्भुञ्जीतमानवः ॥ ५३ ॥

भूनिम्बार्धपलं निशापलयुतं दाव्यापले द्वे तथा ।

मूर्वाधि^१न पुनर्नवां कुरुसमां दाव्याः समः प्रग्रहः ।

वासादर्धयुतं पलन्तु कटुकायोज्यातदर्धेन वै ।

अश्वाह्वं निशयासमानममृताकर्पास्तु पञ्चैव तु ॥ ५४ ॥

सर्वे वत्सक सप्तकर्पसहितं सुहृत्पचूर्णीकृतम् ।

वासायाः स्वरसेन भावितमिदं त्रीन्पञ्च वै वासरान् ॥ ५५ ॥

भूयस्तदगुडवारिणा प्रलिदिनं पीतं पुरस्खेरी ।

पुंसां विद्रधिनाशनञ्च कथितं तथ्यं स्वयं ब्रह्मणा ॥ ५६ ॥

इति भूनिम्बाद्यं चूर्णम् ।

सिद्धं वरुणादिगणे विधिना तत्कायकल्पितं सर्पिः ।

शुद्धतमोस्तत्पीतं भियजा सद्योऽग्निजं प्रथितम् ॥ ५७ ॥

शिरसां शूलमशेष विद्रधिमन्तःस्वमुग्रमपहरति ।

पञ्चविधं गुल्मगदं शमयति वारिवहुभुक्त्वाऽन्नम् ॥ ५८ ॥

इति वरुणकाद्यं द्रवम् ।

नैक्तमालस्य पत्राणि वरुणादिफलानि च ।

सुमनायाश्च पत्राणि पटोलारिष्टयोस्तथा ॥ ५९ ॥

हे हरिद्रे मधूच्छिष्टं मधुकं तिक्तरोहिणी ।

प्रियंगुकुशमूलञ्च निचुलस्य त्वगेव च ॥ ६० ॥

एतेषां कार्पिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

दुष्टव्रणप्रशमनं तथा नाडीविशोधनम् ॥ ६१ ॥

सद्यः क्षिद्रं व्रणानाञ्च करञ्चाद्यमिदं शुभम् ॥ ६१ ॥

इति करञ्चघृतम् ।

तिक्तकटुफलकं सर्पिर्महातिक्तमथापि वा ।

घान्त्वन्तरं वा नैस्वं वा विद्रधी योजयेत्सदा ॥ ६२ ॥

प्रियंगुधातकीलोध्नं कटुफलं द्विनिशान्वितम् ।

एतत्तैलं विपक्तव्यं विद्रधी व्रणरोपणम् ॥ ६३ ॥

इति प्रियम्बाद्यं तैलम् ।

द्विपञ्चमूलोत्रिफला कुलित्यविष्टच्छनैः मूलकशिग्रुयुक्तैः ।

तैलं तिलैरण्डजमेतदेभिः सिद्धं हितं विद्रधिगुल्मशूले ॥ ६४ ॥

इति वङ्गसेने विद्रधिनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ४६ ॥

—०—

अथ व्रणशोधनिदानमाह ।

एकदेशोल्लिखतः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ।

यद्विधः स्यात् पृथक् सर्वं रक्तागन्तुसमुद्भवः ॥ ११ ॥

शोथाः पडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोथलक्षणैः ।

विशेषः कथ्यते तेषां पक्काऽपक्कादिनिश्चये ॥ २ ॥

विषमं पचते वातात् पित्तोत्थयाचिरं चिरम् ।

कफजः पित्तवच्छोयो रक्ताङ्गन्तु समुद्भवः ॥ ३ ॥

मन्दोष्णताल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक् सवर्णता ।

मन्दवेदनता चैव शोथानामामलक्षणम् ॥ ४ ॥

दह्यते दहने नैव चारिणैव च पचते ।

पिप्पलिकागणेनैव दृश्यते छिद्यते तथा ॥ ५ ॥

भिद्यते चैव शस्त्रेण दग्धेनैव च ताड्यते ।

पीड्यते पाणिनेवान्तःसूचिभिरिव तुद्यते ॥ ६ ॥

सोपचोपौ भिवर्णः स्यादगुल्मैवावघट्यते ।

आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत् ॥ ७ ॥

न गच्छेदाततः शोथो भवेदाधानवस्तिवत् ।

ज्वरस्तृष्णारुचिस्वेतत् पचमानस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः ।

प्रादुर्भावो बलीनाञ्च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥

उपद्रवाणां प्रशमो निम्नतास्फुटनं त्वचः ।

वस्ताविवांतुसञ्चारः शोथेऽगुलिनिपीडिते ॥ १० ॥

पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते ।

भक्तकाङ्क्षा भवेच्चैव शोथानां पक्वलक्षणम् ॥ ११ ॥

कफजेषु तु शोथेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृग् ।

पक्वं लिङ्गञ्च तत् स्पष्टं यत्र स्याच्छान्तिशोफता ॥ १२ ॥

त्वक् स्यावा च रुजोऽल्पत्वं यन्नस्पृशत्वमश्मवत् ।

रक्तपाकमिति ब्रूयात्तत् प्राञ्चो मुक्तमशयः ॥ १३ ॥

नर्तेऽनिलाद्रुग्ण विना च पित्त पाकः कफाद्यापि विना न पूयः ।

तस्माद्भि सर्वेऽपरिपाककाले पचन्ति शोथास्त्रिभिरेव दीपैः ॥ १४ ॥

कालान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसृज्य ।

यच्चत्यतः शोणितमेपपाकी मतः परेषां विदुषां द्वितीयः ॥ १५ ॥
 कचं समासाद्य यथैव बद्धिर्वायोरितः सन्दहति प्रसङ्गः ।
 तथैव पूयो ह्यविनिःसृतो हि मांसं शिराः स्रायु च खादतीह ॥ १६ ॥
 भ्रामं विदध्यमानं हि सम्यक् पक्वञ्च यो भिषक् ।
 जानीयात्स भवेद्द्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १७ ॥
 इति व्रणशोधनिदानम् ।

—०—

अथ व्रणरोगनिदानमाह ।

द्विधाव्रणः सविज्ञेयः शरीरागन्तुभेदतः ।
 दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिचतसम्भवः ॥ १८ ॥
 स्वाव्यः कठिनसंस्पर्शा मन्दस्त्रावो महारुजः ।
 तुद्यते स्फुरति श्वावो व्रणो मारुतसम्भवः ॥ १९ ॥
 दृष्ट्यामोहज्वरक्लेद दाहपाकावदारणैः ।
 व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धैः स्वावैश्च पृतिकैः ॥ २० ॥
 बहुपिच्छो गुरुस्निग्धः स्मितो मन्दवेदनः ।
 पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेद शिरपाकी कफव्रणः ॥ २१ ॥
 रक्तो रक्तसुतीरक्ता द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयैः ॥ २२ ॥
 त्वक्मांसजः सुखे देशे तरुणस्याऽनुपद्रवः ।
 घौमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखं व्रणः ॥ २३ ॥
 गुणैरन्यतमैर्हीनैस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः ।
 सर्वैर्विहीनो विज्ञेय स्वसाध्यो निरुपक्रमः ॥ २४ ॥
 पूतिपूयातिदुष्टासृक् स्वाव्युत्सङ्गी चिरस्थितिः ।
 दुष्टव्रणोऽतिगन्धाद्यः शुक्लिद्वविपर्ययः ॥ २५ ॥
 जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः ।

सुव्यवस्थो निरास्तावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः ॥ २६ ॥
 व्रणः शुध्यतिगन्धेन मृदुत्वञ्चोपगच्छति ।
 रोहत्वं परिनिःसङ्गस्तस्माद्गन्धः प्रशस्यते ॥ २७ ॥
 कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्तः क्लेदवर्जिताः ।
 स्थिराश्च पिटिकावर्त्ती रोहतीति तमादिशेत् ॥ २८ ॥
 दोषप्रकोपाद्व्यायामा दभिघातादजोर्णतः ।
 हर्षात् क्रोधाद्भयाच्चैव व्रणो रूढोऽपि दीर्यते ॥ २९ ॥
 कुष्ठिनां विपजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।
 व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः ॥ ३० ॥
 वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गञ्च यः सवेत् ।
 आगन्तुजो व्रणः सिध्येन्नसिध्येद्दोषसम्भवः ॥ ३१ ॥
 मद्यागुर्वाज्यं सुमनः पद्मचन्दनचम्पकैः ।
 सुगन्धादिव्यगन्धाश्च सुमुपूर्णां व्रणाः स्मृताः ॥ ३२ ॥
 ये च मर्मसुसंभूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः ।
 दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं वह्निः शोताश्च ये व्रणाः ॥ ३३ ॥
 दह्यन्ते वह्निरत्यर्थं भवन्त्यन्तश्च शीतलाः ।
 प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ॥ ३४ ॥
 प्रहृष्टपूयरुधिरा व्रणा येषाञ्च मर्मसु ।
 क्रियाभिः सम्यगारब्धानसिध्यन्ति च ये व्रणाः ॥ ३५ ॥
 बर्जयेदपितान् वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः ।

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

आदौ विप्लापनं कुर्याद्वितीयमवसेचनम् ।
 तृतीयमुपनाहन्तु चतुर्थीं पाटनक्रियाम् ॥ ३६ ॥

पञ्चमं शोधनं कुर्यात् पष्ठं रोपणमिष्यते ।
 एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमं च कृतापहम् ॥ ३८ ॥
 मातुलिङ्गाग्निमन्थो च सुरदारुमहौषधम् ।
 अहिस्त्रा चैव रास्त्रा च प्रलेपो वातशोथनुत् ॥ ३९ ॥
 कल्कः काश्चिकसंपिष्टः स्निग्धः शाखोटकत्वचः ।
 सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥ ४० ॥
 शिरोपोक्तबीजानि हिंस्त्राकाला सुदर्शनः ।
 तडुलीयकमूलञ्च प्रलेपः शोथनाशनः ॥ ४१ ॥
 दूर्वा च नलमूलञ्च मधुकं चन्दनं तथा ।
 शोतलाद्य गणाः सर्वे प्रलेपः पित्तशोथहा ॥ ४२ ॥

—०—

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ प्लवतसशेलुभिः ।
 चन्दनद्वयमञ्जिष्ठा यष्टीसूरणगैरकैः ॥ ४३ ॥
 शतधौतघृतोन्मिश्रै र्लेपो रक्तप्रसादनः ।
 दाहपाकरुजास्त्राव शोफनिर्वापणः परः ॥ ४४ ॥
 इति वृद्धशोधोधादिलेपः ।

विधिर्विषघ्नो विषजे पित्तघ्नो पिहितो विधिः ॥ ४५ ॥
 अजगन्धालम्बुङ्गीञ्च काला सरलमेव च ।
 एकांशिकाश्वगन्धा चै प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ ४६ ॥
 पुनर्नवादारुशिशु दशमूलमहौषधैः ।
 कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधीयते ॥ ४७ ॥
 पिण्डोतकावयं लोभ्रं पूर्वजैश्च प्रकीर्त्तिताः ।
 वर्गास्त्रयः प्रलेपेन शोथे सर्वकृते हितः ॥ ४८ ॥
 स्निग्धान्बलघणैर्वर्ति स्निग्धः शीतः पयोन्वितः ।

पित्ते कोणः कफे चार मूत्राव्यस्तत् प्रशान्तये ॥ ४८ ॥
 नरात्रौ लेपनं कुर्याद्दत्तञ्च पतितं तथा ।
 न च पर्युषितं चैव शृण्वमाणं न धारयेत् ॥ ५० ॥
 न प्रशाम्यति यः शोथः प्रलेपादिविधानतः ।
 द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहने ॥ ५१ ॥
 शोथयो रूपनाहन्तु कुर्यादामविदग्धयोः ।
 प्रशाम्यत्य विदग्धस्तु विदग्धः पाकमिति च ॥ ५२ ॥
 कटुतैलान्वितैर्लपात् सर्पनिर्मोकभस्त्रभिः ।
 चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
 दण्डोत्पलकामूलेन पिटिका संप्रलेपिता ।
 तंडुलोदकपिष्टेन नाशमायात्यसंशयम् ॥ ५४ ॥
 सतिला सातसीबीजा दध्यस्त्रा सक्तुपिण्डिका ।
 सकिण्ठकुष्ठलवणा शस्ता स्यादुपनाहने ॥ ५५ ॥
 शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्पपाः ।
 सक्तवः किण्ठमतसी प्रदेहः पाचनः स्मृतः ॥ ५६ ॥
 संपूरणैः स्नेहपानैः संदिग्धैश्चोपनाहनैः ।
 प्रदेहपरिषेकैश्च वातव्रणमुपाचरेत् ॥ ५७ ॥
 शीतलैर्मधुरस्निग्धैः प्रदेहपरिषेचनैः ।
 भक्षपानाशनैः सर्वैः पित्तव्रणमुपाचरेत् ॥ ५८ ॥
 रुचैः कटुभिरुष्णैश्च प्रदेहपरिषेचनैः ।
 कफव्रणं प्रशमयेत्तथा लङ्घनपाचनैः ॥ ५९ ॥
 रुजावतां दारुणानां कठिनानां तथैव च ।
 शोथानां स्वेदनं कार्यं ये चाप्येवंविधा व्रणाः ॥ ६० ॥
 वेदनीपशमाद्वापि तथा पाकभयादपि ।
 सुचिरोत्पत्ति ते शोथे कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥ ६१ ॥

सशोथे कठिने श्यामे सरक्ते वेदनावति ।
 संरक्ते विपमे वापि व्रणे विस्त्रावणं हितम् ॥ ६२ ॥
 वातपित्तप्रदुष्टेषु दीर्घकालानुबन्धियु ।
 विरेचनं प्रसंशन्ति व्रणेषु व्रणकीविदैः ॥ ६३ ॥
 अन्तः पूयिष्ठ बक्त्रेषु सदैवोत्सर्गवत्स्वपि ।
 गतिमत्सुचरोरुषु भेदनं प्राप्तमुच्यते ॥ ६४ ॥
 बालवृद्धासहस्रोण भोरूणां योपितामपि ।
 मर्मोपरि च जातेषु पक्वदोषेषु दारणम् ॥ ६५ ॥
 चिरविल्वग्निर्को दन्तो चित्रको हयमारकः ।
 कपोतकाकगृध्राणां पुरीषाणि च दारणम् ॥ ६६ ॥
 अत्यथंकठिना यान्ति शोथाः पाचनभेदनम् ।
 द्रव्याणां पिच्छलानां त्वक्षूलेन परिपीडिताः ॥ ६७ ॥
 यवगोधूममापाणां चूर्णानि च समासतः ।
 शुथमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ॥
 न चापि सुखमालिष्ये तथा दोषः प्रसिच्यति ॥ ६८ ॥
 ततः प्रक्षालनः कायः पटोलनिम्बपत्रजः ।
 अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादित्वगुग्गवः ॥ ६९ ॥
 पञ्चमूलीहयं वाते न्यग्रोधादिद्य पैत्तिके ।
 आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥ ७० ॥
 त्रिफला खदिरो दावी न्यग्रोधादि बलाकुशाः ।
 निम्बकोलकपत्राणि कपायाः शोधने हिताः ॥ ७१ ॥
 गृहधमः सलवणः सकृष्टतिलचित्रकः ।
 मेदो दुष्टव्रणान्याश्च शोपयेन्मधुमिश्रितः ॥ ७२ ॥
 तिलसैन्धवयद्ग्राह निम्बपत्रनिशायुगैः ।
 चिह्नदृष्टयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः

एकं वा शारिवामूलं सर्वं व्रणविशोधनम् ॥ ७४ ॥
 निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना क्षतशोधनः ।
 रोपणं सर्पिषायुक्तो यवकल्केऽप्ययं विधिः ॥ ७५ ॥
 व्रणान् विशोधयेदर्थ्या सूक्ष्मांश्च संधिवर्त्मजान् ।
 अभयाच्चिह्नतादन्ती लाङ्गलीमधुमैन्धवैः ॥ ७६ ॥
 अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानमरोहताम् ।
 कल्कस्तु रोपणो देयः स्तिलजो मधुसंयुतः ॥ ७७ ॥
 निम्बपत्रमधुभ्यान्तु युक्तः संशोधनः परः ।
 पूर्वाभ्यां सर्पिषा वापि युक्तः संरोपणः परः ॥ ७८ ॥
 निम्बपत्रघृतघ्नीद्र दार्वीमधुकसंयुता ।
 वर्त्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्गोपयेद्व्रणान् ॥ ७९ ॥
 अश्वगन्धारुहालोध्र कट्फलं मधुयष्टिका ।
 समङ्गरधातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम् ॥ ८० ॥
 प्रपौण्डरीकं जीवन्ती गोजिह्वाधातकीबला ।
 रोपणं सतिलं दद्यात् प्रलेपं सघृतं व्रणे ॥ ८१ ॥
 यष्टीतिलाः सुपिष्टा वा सघृताव्रणरोपणे ।
 धातकीचन्दनबला समङ्गामधुकोत्पलैः ।
 दार्वीमेदातिलैर्लेपः ससर्पिर्व्रणरोपणः ॥ ८२ ॥
 निम्बपत्रतिलादन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् ।
 दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेशरी ॥ ८३ ॥
 अस्फुक्तार्जुः कथिक्रान्ता मांसोलोन्ननिशायुगेः ।
 तिलवर्हिगिम्हारिष्टैर्लेपो दुष्टव्रणापहः ॥ ८४ ॥
 कट्फलदाडिमरजनी प्रियंगुफलताम्रपुष्पिकापुष्पैः ।
 धात्रीरससपिष्टैर्दुष्टव्रणरोपणः कल्कः ॥ ८५ ॥
 सर्पपतैलविमिश्रो रविकरसंगोषितस्तु सप्ताहम् ।

विपनिशयोः समभागो दुष्टव्रणनाशनः कथितः ॥ ८६ ॥

गम्भीरे शुष्कमांसे च व्रणे चोच्छादनं मतम् ।

अपामार्गीऽश्वगन्धा च तालपत्री तथैव च ।

उच्छादने प्रशस्यन्ते काकोल्यादिद्ययो गणः ॥ ८७ ॥

सुपवीपत्रधत्तूर कर्णमोटकुठेरकाः ।

मृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोयणाः ॥ ८८ ॥

ककुभोदुम्बराश्वत्थ जंवूकफललोघ्रजैः ।

त्वक्चूर्णैश्चूर्णिताः क्षिप्रं संरोहन्ति व्रणाः ध्रुवम् ॥ ८९ ॥

सदाहावेदनावन्तो ये व्रणामारुतोत्तराः ।

तेषां तिलानुमांश्चैव भृष्टान् पयसि निर्वृतान् ।

तेनैव पयसा पिष्ट्वा दद्यादालेपनं भिषक् ॥ ९० ॥

द्विपञ्चमूलकल्केन कथितेनाम्भसापि वा ।

सर्पिषासहतैलेन कोष्णेन परिपेचयेत् ॥ ९१ ॥

यवचूर्णं समधुक् सह तैलेन सर्पिषा ।

दद्यादालेपनं कोष्णं दाहशूलोपशान्तये ॥ ९२ ॥

उच्छूनमधुमांसानां व्रणानामवसादनम् ।

जातीपुष्पं मनोह्रा च सृङ्गीकासचित्रकैः ॥ ९३ ॥

मासोत्थितांश्चिरोत्थांश्च दुःशोथकठिनान् व्रणान् ।

दण्डोद्भूतसमायुक्ताब्बोधयेत् चारकमीणा ॥ ९४ ॥

वातादिभूतान् सस्त्रावा भूपयेदुग्रवेदनान् ।

यवाज्यभूर्जमदन श्रीवेष्टकसुराह्वयैः ॥ ९५ ॥

श्रीवासगुग्गुल्वगुरु सालनिर्यासधूपिताः ।

कठिनत्वं व्रणायान्ति नश्यन्त्यास्त्राववेदनाः ॥ ९६ ॥

रक्तपित्तविपागन्तु गम्भीरान् सोष्णान् व्रणान् ।

क्षीररोपणभैषज्य शृतेनाज्येन रोपयेत् ॥ ९७ ॥

निर्वापनघृतं चोद्रे तैलं मधुकचन्दनम् ।

लेपनं शीथरुग्दाह रक्तं निर्वापयेद्ब्रणार्ते ॥ ८८ ॥

करञ्चारिष्टनिर्गुण्डी रसो हन्याद्ब्रणकमीन् ।

कलायविदलीपत्रं कोशाम्नास्थि च पूरणात् ।

सुरसादिरसैः सेको लेपनं लग्नेन वा ॥ ८९ ॥

निम्बपत्रवचाहिंगु सर्पिलवणसर्षपैः ।

धूपनं स्याद्द्वये देयं कृमिकण्डूलापहम् ॥ ९० ॥

रोमाकीर्णं ब्रणे यस्तु न सम्यगुपरोहति ।

क्षुरकर्त्तरिसदंशै स्तस्य रोमाणि निर्हरेत् ॥ ९१ ॥

रोमस्थाने यदा रोम ब्रणशान्ते च नो भवेत् ।

तत्र वैद्येन कर्त्तव्यो रोमसञ्चयनो विधिः ॥ ९२ ॥

कपोतवङ्गालशुनं सशीर्षं ससैन्धवं चित्रकमूलमित्रम् ।

तदश्वत्थेन्द्रस्य रसेन पिष्टं ब्रणे प्रलेपो भवने हि रोम्नाम् ॥ ९३ ॥

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो ब्रणाधिरोत्याः सर्जः सशोथाः ।

प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलारसेन ॥ ९४ ॥

पटोलनिम्बासनसारधात्री पथ्याक्षनिर्यूहमहर्षु खेपु ।

नरः पिवेद्गुग्गुलुना विसर्पविस्फोटदुष्टब्रणशान्तिमिच्छन् ॥ ९५ ॥

मनःशिला समञ्चिष्टा सलाक्षारजनीद्वयम् ।

प्रलेपाक्षघृतः चोद्रे स्वग्विशुद्धिकरः परः ॥ ९६ ॥

पूतिगन्धिविवर्णाश्च महाम्रावान् महारुजः ।

ब्रणानशुद्धान् विज्ञाय शोधनैस्समुपाचरेत् ॥ ९७ ॥

जीर्णशाल्योदनं क्षिण्व मल्पमुष्यं द्रवोत्तरम् ।

भुञ्जानो जाड्रलैर्मांसैः शीघ्रं ब्रणमपोहति ॥ ९८ ॥

तडुलीयकजीवन्ती मुनिपञ्चकवास्तुकीः ।

कालमूलकपात्तार्त्तु पटोलैः कारवेक्षकैः ॥ ९९ ॥

सदाङ्गिमैः सामलकैः घृतभ्रष्टैः ससैन्धवैः ।

अन्यैरेवं गुणैर्वापि मुद्गादीनां रसेन वा ॥ ११० ॥

अस्त्रं दधि च शाकश्च मांसमानुषमौदकम् ।

क्षीरं गुरुणि चाम्बानि ब्रणे च परिवर्जयेत् ॥ १११ ॥

दिवानिद्राविहीनय निर्वीतगृहसेवकः ।

ब्रणवैद्यवशे तिष्ठन् शीघ्रं ब्रणमपोहति ॥ ११२ ॥

ब्रणे श्वयथुरायासात् स च रागश्च जागरात् ।

तौ च रुक् च दिवास्वापा ते च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ११३ ॥

यच्छिनत्वा ममज्ञाना द्यद्य पक्वमुपेक्षते ।

श्रपचाविवमन्तव्यौ तावन्निश्चितकारिणौ ॥ ११४ ॥

इति वङ्गसेने ब्रणशोथशरीरब्रणोपक्रमनिदान-
चिकित्साधिकारः समाप्तः ॥ ५० ॥

—*—

अथागन्तुब्रणनिदानमाह ।

नानाधारामुखैः शस्त्रैः नानास्थाननिपातितैः ।

भवन्ति नानाकृतयो ब्रणास्तास्तां निबोध मे ॥ १ ॥

क्षिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्छितमेव च ।

घृष्टमाहुस्तथा पष्टं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

तिथ्यक् क्षिन्नं ऋजुर्वापि ब्रणोयस्त्वायतो भवेत् ।

गात्रस्य पाटनं तद्धि क्षिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

शक्तिकुन्तेषु खड्गाग्र विषाणैराशयो हतः ।

यत्किञ्चित् प्रसवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ।

हृदुन्दुकः फुफ्फुसश्च कोट इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

तस्मिन् भिन्ने रक्तपूर्णं ज्वरोदाहयं जायते ।

मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥

मूर्च्छाश्वासदृषाधतन मभक्तच्छन्द एव च ।

विण्मूत्रवातमद्भय स्वेदास्त्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥

लोहगन्धित्वमाम्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च ।

हृच्छूलं पार्श्वयोद्यापि विग्रेषं चात्र मे शृणु ॥ ८ ॥

आमाशयस्य रुधिरे रुधिरं हृदयत्वपि ।

आधानमतिमात्रञ्च शूलञ्च भृशदारुणम् ॥ ९ ॥

पक्वाशयगते चापि रुजागौरवमेव च ।

अधःकाये विग्रेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

सूक्ष्माप्यगत्याभिहतं यदङ्गन्तु शरैः प्लुतम् ।

उत्तुङ्गितं निर्गतं वा तद्विद्वमिति निर्दिशेत् ॥ ११ ॥

नातिक्लिन्नं नातिभिन्नं सुभयोर्लक्षणाश्रितम् ।

विषमं व्रणमङ्गेषु तत्क्षतं तु विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

प्रहारपीडनाभ्याञ्च यदङ्गं पृथुतां गतम् ।

मास्थितत्पिच्छितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥ १३ ॥

घर्षणादभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचः ।

ऊपास्त्रावान्वितन्तु पृष्टमिति विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

ग्र्यायं सगोष्पं पिटिकाचितं च सुष्टुर्मुहुः शोणितवाहिनश्च ।

शृङ्खलं बुधुदतुल्यमांसं व्रणं सगल्पं सरजं वदन्ति ॥ १५ ॥

त्वचोत्तोत्यगिरादीनि भित्वा वा परिहृत्य वा ।

कोटे प्रतिष्ठितं गल्पं कुर्याद्वक्तानुपद्रयान् ॥ १६ ॥

तत्रान्तर्लोहितं पांडुं शीतपादकराननम् ।

शीतोच्छ्रामं रक्तनेत्रं मानदञ्च विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

भ्रमः प्रलापः प्रतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च ।
 स्रस्ताङ्गतामूर्च्छनमूर्ध्वाती स्त्रीवाराजो वातकृताश्च तास्ताः ॥१८॥
 मांसोदकामं रुधिरञ्च गच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थं परमस्तथैव ।
 दशार्धसंख्येष्वथवा चतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥१९॥
 सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवे तत्क्षतजघ वायुः ।
 करोति रोगान् विविधान्यथोक्ताब्धिरासु विद्यास्तथैवा क्षतासु ॥२०॥
 कौञ्जं शरीरावयवावसादः क्रियास्वऽशक्तिस्तुमुलारुजय ।
 चिराद्भणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥२१॥
 शोथाभिहृदिस्तुमुलारुजय बलक्षयः सर्वत एव शोथः ।
 चतुषु सन्धिवचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मापरमथ लिङ्गम् ॥ २२ ॥
 घोराजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्वस्थासुचनैति शान्तिम् ।
 भिषग्विपंश्चिद्दिदितार्थसूत्रं तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥२३॥
 यथा स्वमेतानि विभावयेच्च लिङ्गानि मर्मस्वभिताडितेषु ।
 पांडुर्विवर्णः सृशितं नवेत्ति यो मांसमर्माण्यभिताडितः स्यात् ॥२४॥
 मर्माश्रितं व्रणं प्राप्य वायुर्हि सर्वदेहगः ।
 वेगैरायामयेद्देहं व्रणायामस्तु तत्क्षयजित् ॥ २५ ॥
 विसर्पः पक्षघातश्च शिरःस्तभोऽपतानकः ।
 मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णाहनुग्रह ॥ २६ ॥
 कासः छर्दिरतीसारो ह्रिक्काश्वासः सवेपथुः ।
 षोडशोपद्रवाः प्रोक्ताः व्रणानां व्रणचिन्तकैः ॥ २७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

बुद्धागन्तुव्रणं वैद्यो घृतक्षौद्रसमन्विता ।

शीताक्रियाप्रयोक्तव्या रक्तपित्तोष्मनाशिनी ॥ २८ ॥

क्रुद्धे सद्योव्रणे युञ्ज्या दूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।

लङ्घनश्च बलं ज्ञात्वा भोजनं चास्त्रमोक्षणम् ॥ २८ ॥

दृष्टे विदालिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ।

यतोद्घातं स्रवत्यस्त्रं पाकस्तेनाश्रु जायते ॥ २९ ॥

छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते वासृगऽति स्रवेत् ।

रक्तचयात्तत्र रुजः करोति पवनो भृशम् ॥ ३० ॥

स्नेहपानपरीपेकं लेपस्वेदोपनाहनम् ।

कुर्वीतस्नेहवस्त्रिष्व मासुतघ्नौपधैः शृतैः ॥ ३१ ॥

छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते सद्यो भिषग्वरः ।

पटसूत्रेण संवेष्ट्य व्रणं व्रणविशारदः ॥ ३२ ॥

सुहृर्मुहुः तथा दुःखं न प्राप्नोति भिषग्वरः ।

तथा कर्म्मप्रकुर्वीत सर्वतश्च सुखप्रदम् ॥ ३३ ॥

अथवा दीप्यलवणं पोटल्यास्त्रेदयेन्मुहुः ।

संतप्तयातसलोहं पात्रसंयोगतः क्रमात् ।

दुष्टं रक्तं स्थितं चापि शृङ्गालाब्वादिभिर्हरेत् ॥ ३४ ॥

सद्यःक्षते व्रणे वैद्यः सशूले परिपेचयेत् ।

यष्टीमधुकमिश्रेण नातिगीतेन सर्पिषा ॥ ३५ ॥

कपायमधुराः शीताः क्रियाः सर्वास्तु योजयेत् ॥ ३६ ॥

आमाशयस्य रुधिरे विदध्याहमनं नरः ।

तस्मिन् पक्वाशयस्य तु प्रकुर्वीत विरेचनम् ॥ ३७ ॥

क्वाथो वंशत्वगेरण्डश्च दंष्ट्राऽश्मभिदाकृतः ।

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तः कोष्टस्थं स्रावयेदसृक् ॥ ३८ ॥

खड्गादिछिन्नगात्रस्य तत्काले पूरितो व्रणः ।

गात्रेरुक्तेमूलरसैः सद्यः स्यात्तत्वेदनः ॥ ३९ ॥

यवकोसकुलित्यानां निःस्नेहेन रसेन च ।

भुञ्जीतान्नं यवागू' वा पिवेत्सैन्धवसंयुताम् ॥ ४१ ॥

अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्प्रेन रसेन वा ।

सद्यो ब्रणेषु रक्तान्तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ ४२ ॥

कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं सम्प्ररोहति ।

सद्यः शस्त्रक्षतं तत्तु व्यथापाकमिवर्जितः ॥ ४३ ॥

शुनोजिह्वाकृतधूर्णः सद्यश्चतविरोहणः ।

• चुक्रतैलं चते विद्धे रोपणं परमं मतम् ॥ ४४ ॥

मानुषशिरः कपालं तदस्थि लेपनं मूत्रेण ।

रोपणमिदं क्षतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥ ४५ ॥

स्नेहपानं परिसेकं स्नेहलेपोपनाहनम् ।

स्नेहवस्त्रिं च कुर्वीत बातघ्नौषधसाधिताम् ॥ ४६ ॥

इति समाह्विकः प्रोक्तः सद्यो ब्रणहितो विधिः ।

समाहात्यरतो कुर्याच्छारीरब्रणवत् क्रियाम् ॥ ४७ ॥

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः ।

निर्यन्वणो विवंधघ्नो ब्रणशोधनरोपणः ॥ ४८ ॥

इति गुग्गुलुवटिका ।

अमृतापटोलमूल त्रिफलात्रिकटुकमिध्नानाम् ।

समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भागः ॥ ४९ ॥

प्रतिवासरमेकैकां खादेदक्षप्रमाणां गुटिकाम् ।

जेतुं ब्रणान्वातासृग्गुल्मोदरश्चयथुरोगादीन् ॥ ५० ॥

इत्यमृतागुग्गुलुः ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुका दावीनिशासारिवा ।

मञ्जिष्ठाऽभयसिक्यतुत्यमधुकैर्नक्ताह्नवीजैः समैः ॥

सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्वाविथो ।

गम्भोराः सरुजो ब्रणाः सगतिकाः शुद्धान्तिरोहन्ति च ॥ ५१ ॥

वृद्धवैद्योपदेशेन पारम्पर्यापदेशतः ।

जातोद्यते तु संसिद्धे चेतव्यं सिद्ध्यकं बुधैः ॥ ५२ ॥

इति जात्यादिद्युतम् ।

तिक्तासिक्थनिगायट्टी नक्ताद्वाफनपल्लवैः ।

पटोलमालतीनिम्ब पत्रैर्व्रण्यं शृतं द्युतम् ॥ ५३ ॥

इति तिक्ताद्यं द्युतम् ।

जातिनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पद्मवाः ।

सिक्थं समधुकं कुट्टं हे निशे कटुरोहिणी ॥ ५४ ॥

मञ्जिष्टापद्मकं लोध्रं मभयानोलमुत्पलम् ।

तुत्यकं शारिवाबीजं नक्तमालस्य दापयेत् ॥ ५५ ॥

एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।

विपत्रणे समुत्पत्रे स्फोटिके कटुरोगके ॥

दद्रुविसर्परोगेषु कीटदुष्टेषु सर्वथा ।

मद्यः शस्त्रप्रहारिषु दग्धविहेषु चैव हि ॥ ५७ ॥

नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणे ।

प्रोक्षणीयमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ॥ ५८ ॥

इति जातिकाद्यं तैलम् ।

शरपुङ्खालाङ्गली चित्रकरामठरसोनसिन्धुवरैः ।

मविषामयैः समांशैः कटुतैलसाधितं विधिना ॥ ५९ ॥

विपरीतमल्लसंज्ञं तैलं दुष्टव्रणं तथा नाडीम् ।

बहुभेषजैरसाध्या मप्यभोक्तुं नस्तुदति ॥ ६० ॥

इति विपरीतमल्लतैलम् ।

कुठारकांत्यलशतं काथयेदुत्खलेऽभ्रसि ।

तेन पादावशेषेण तैलप्रस्य विपाचयेत् ॥ ६१ ॥

१ २

कल्कैः कुठाराऽपामार्गं प्रोष्टिका मक्षिकासु च १

एतत्तैलं कुठारस्य शोधनं ब्रणरोपणम् ॥ ६२ ॥

नाडीषु परमाभ्यङ्गो निजास्वागन्तुकेषु च ॥

इति कुठारतैलम् ।

दूर्वास्त्ररसमंसिद्धं तैलं कम्पिल्लकेन वा ।

दावीत्वचस्य कल्केन प्रधानं ब्रणरोपणम् ॥ ६३ ॥

इति दूर्वाद्य तैलम् ।

बलाशिखरिकामूलं पिष्टातैलं विपाचयेत् ।

नूलतैलमिति ख्यातं मभ्यङ्गान्नूलकान्वितः ॥ ६४ ॥

ये ब्रणास्त्रिवृत्ता केचिच्छरीरागन्तवः सदा ।

रोपणार्थं भिषक्तेषां मिष्टं तैलं प्रयोजयेत् ॥ ६५ ॥

इति नूलतैलम् ।

अमृतागुग्गुलुं श्रेष्ठो हित तैलञ्च बज्जकम् ॥ ६६ ॥

विडङ्गत्रिफलाव्योषं चूर्णं गुग्गुलुना समम् ।

सर्पिषावटकी कृत्वा खादेद्वा हितभोजनम् ॥ ६७ ॥

दुष्टव्रणापचोमेह कुष्ठनाडीविशोधनः ।

इति व्रणेषु वटिकागुग्गुलुरोपः ।

त्रिकटुत्रिफलासुस्तं विडङ्गामृतचिषकम् ।

पटोलपिप्पलीमूलं हृषुपासुरदारु च ॥ ६८ ॥

तुम्बुरुपुष्करं चथं विशाला रजनीद्वयम् ।

विडं मौवर्चलं चारं सैन्धवं गजपिप्पली ॥ ६९ ॥

यावन्मैतानि सर्वाणि तावद्दिगुणगुग्गुलुः ।

कोलप्रमाणां गुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ ७० ॥

कासं श्वासं तथा शोथं मर्शांसि च भगन्दरम् ।

हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुचिवस्तिगुदे रुजम् ॥ ७१ ॥

अश्मरोमूत्रकृच्छ्रञ्च ह्यन्तर्हृदि तथा कृमीन् ॥ ७२ ॥

धिरज्वरोपष्टणानां क्षयोपहतर्चेतसाम् ।

आनाहञ्च तथोन्मादं कुष्ठान्यष्टोदराणि च ॥ ७३ ॥

नाडीदुष्टव्रणान् सर्वान् प्रमेहाच्छ्लीपदं तथा ।

सप्तविंशतिको नाम्ना गुग्गुलुः प्रथितो महान् ।

धान्वन्तरिकृतो ह्येषः सर्वरोगनिपूदनः ॥ ७४ ॥

इति सप्तविंशतिको गुग्गुलुः । इति सद्योव्रणाः ।

—०—

तत्र स्निग्धं रूचं वायित्वद्रव्यमग्निर्दहति । अग्निसन्तप्तो हि स्नेहः सूक्ष्ममार्गानुसारित्वात् त्वगादींस्तु प्रविश्याशु दहति । तस्मात् स्नेहदग्धेऽधिका रुजो भवन्ति । तत्र पुष्टं दुर्दग्धं सम्यग्दग्धमतिदग्धमिति चतुर्विधं भवत्यग्निदग्धम् । तत्र विवर्णमात्रं पुष्यते तत्पुष्टं यत्रोत्तिष्ठन्ति स्फोटोत्तीव्रदाहवेदनाधिरादेवोपशाम्यन्ति तद्दुर्दग्धम् । सम्यग्दग्धमवगाढं तालवर्णं सुस्थितं पूर्वलक्षणमयुक्तं च । अतिदग्धे त्वद्वांसावलम्बनं गात्रविश्लेषणं शिरास्त्रायुसम्यस्थि व्यापादनमतिमात्रवेदना ज्वरदाहपिपासा मूर्च्छा-ज्ञासोपद्रवा भवन्ति । व्रणाद्यास्यचिरेणोपरोहन्ति उपरूढा विवर्णा भवन्ति । इति व्रणः पुष्टादिभेदेन बह्विदग्धयतुर्विधो भवति ।

—०—

• अथ तस्य चिकित्सामाह ।

पुष्टस्याग्निप्रतपनं कुर्यादुष्णं तथौषधम् ।

शीतामुष्णाच्च दुर्दग्धे क्रियां कुर्यात्ततः पुनः ॥ ७५ ॥

घृतलेपनसेकांस्तु शीतानेवास्य कारयेत् ॥ ७६ ॥

अतिदग्धे तु शीर्णानि मांसानुद्धृत्य शीतलाम् ।

क्रियां कुर्याच्च तां काले शालितंडुलचन्दनैः ।

तिन्दुक्या त्वक् कपायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ ७७ ॥

सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरी प्लवचन्दनगैरिकैः ।

सामृतैः सर्पिपायुक्तै रालेपं कारयेद्विप्रक् ॥ ७८ ॥

पथ्या कर्दमजीरक मधुसिक्थकसर्जमिश्रितं लेपात् ।

गव्यं घृतमपहरति पावकजनितं ब्रणं सद्यः ॥ ७९ ॥

अन्तरधूमकुठारको दहनजं लेपान्निहन्ति ब्रणम् ।

अखत्यस्य च शुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुण्डनात् ॥

अभ्यङ्गादिनिहन्ति तैलमखिल गण्डूपदैः साधितम् ।

पिप्प्ला शाल्मलितूलकैर्जलगता लेपात्तथा बालुका ॥ ८० ॥

अस्मिन्त्वारी योगाः कथिताः ।

दग्धयवभस्मचूर्णं तिलतैलाक्तंप्रलेपनादचिरात् ।

हरति शिखिदाहदग्ध भूयोऽभ्यङ्गाद्वणश्चाशु ॥ ८१ ॥

पित्तविद्रधिबीसर्प शमनं लेपनादिकम् ।

अग्निदग्धे ब्रणे सम्यक् प्रयुञ्जीतविचक्षणः ॥ ८२ ॥

शुभ्रा पुराननीदध्ना बारिणा परिपेषिता ।

लेपनं तैलदग्धस्य विस्फोटव्याधिनाशनम् ॥ ८३ ॥

अक्षिजेपु तु कर्तव्यमिदमाद्यातनं हितम् ।

शिलुत्वक् त्रिफलादार्वा क्वाथो रोचनर्यायुतः ॥

स्रुह्यर्कक्षीरसिक्तेऽक्षिण गव्य सर्पिर्निषेचयेत् ॥ ८४ ॥

मधुच्छिष्टं समधुकं लोध्रं सर्जरसं तथा ।
मञ्जिष्टं चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा सर्पिर्विषाचयेत् ॥ ८५ ॥
सर्वेषामग्निदग्धानां व्रणरोपणमुत्तमम् ।

इति मधूच्छिष्टाद्यं धृतम् ।

उभे हरिद्रे मञ्जिष्टा मधुकं लोध्रकट्फलम् ।
कम्पिलकमुभे मेदे लाङ्गलीमूलमेव च ॥ ८६ ॥
पिप्पलीत्रिफला चैव निम्बपत्रञ्च कार्ष्णिकम् ।
कपिलायाद्युतप्रस्थं पचेत्तद्विगुणं पयः ॥ ८७ ॥
पलद्वयञ्च सिक्त्यस्य सिद्धपूते च दापयेत् ।
लाङ्गलीकं घृतं नाम व्रणानां रोपणं परम् ॥ ८८ ॥
अग्निदग्धे विमर्षं च कीटलूता व्रणेषु च ।
चिरोत्थेषु च दुष्टेषु नाडीमर्माश्रितेषु च ॥ ८९ ॥

इति लाङ्गलीघृतम् ।

निधं कपायकल्काभ्यां पटोल्याः कटुतैलकम् ।
दग्धव्रणरुजाम्नाव दाहविस्फोटनाशनम् ॥ ९० ॥

इति पटोलीतैलम् ।

चन्दनं वटशृङ्गाद्य मञ्जिष्टा मधुकं तथा ।
प्रपीण्डरीकं मूर्वा च पतंगं धातकी तथा ॥ ९१ ॥
एतैश्चैतानां विपक्तव्यं सर्पिः क्षीरसमायुतम् ।
अग्निदग्धे व्रणे श्रेष्ठं तत्क्षणाद्रोपणं परम् ॥ ९२ ॥

इति चन्दनाद्यं तैलम् ।

अस्त्रं दधिञ्च ग्राकञ्च मांसमानूपवारिजम् ।
क्षीरं गुरुणि चाक्षानि व्रणिनः परिवर्जयेत् ॥ ९३ ॥

वातास्रमसृतं दुष्टं सशोथं ग्रथितं व्रणम् ।

कुर्यात्सदाहं कङ्डाढ्यं व्रणग्रन्थिरिति स्मृतः ॥ ८४ ॥

क्षारसूत्रं प्रयुज्येत दुष्टव्रणहरं विधिम् ।

—०—

कम्पिक्तकं विडङ्गानि त्वचं दर्प्यास्तथैव च ॥

पिष्टातैलं विपक्त्तव्यं व्रणग्रन्थिहरं परम् ॥ ८५ ॥

इति कम्पिक्तकतैलम् ।

इति वङ्गसेने सदोव्रणाग्निदग्धव्रणनिदान

चिकित्साधिकारः समाप्तः ॥ ५१ ॥

—०—

अथ भग्ननिदानमाह ।

पतनपीडनव्यालविषदग्धप्रभृतिभि रभिघातविशेषै रनेकविधि-
भिस्संध्यस्थां भङ्गमुपदिशन्तीत्यत आह ।

भग्नं समासाद्विविधं हुताशकाण्डे च सन्धाविह तत्र सन्धौ ।

उत्पिष्टविशिष्टविवर्तितञ्च तिर्य्यगतं क्षिप्तमधश्च षट्कम् ॥ १ ॥

प्रसारणाकुञ्चनवर्त्तनोया रक् स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ।

मामान्यतः सन्धिगतस्य लिङ्गमुत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात् ।

विशेषतो रात्रिभवारुजा च विश्लिष्टजेती च रुजा च नित्यम् ॥ २ ॥

विवर्त्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्य्यगते तीव्ररुजो भवन्ति ।

क्षिप्तेति शूलं विपमारुगस्थोः क्षिप्ते त्वधोरुग्विघटश्च सन्धेः ॥ ३ ॥

काण्डे त्वतः कर्कटकाऽथ कर्णविचूर्णित पिच्छितमस्थिक्लृप्तिका ।

काण्डे च भग्नं ह्यतिपातितं च मज्जागतञ्च स्फुटितञ्च वक्रम् ॥ ४ ॥

छिन्नं द्विधा द्वादशधा च काण्डे स्वस्तांगता शोफरुजातिवृद्धिः ।

सम्पीड्यमानो भवतीह शब्दः स्पर्शसहः स्पर्शनतोदशूलाः ॥ ५ ॥

सर्वास्त्रवस्थासु नशर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ।

भग्नन्तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम् ॥ ६ ॥

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च ।

उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ७ ॥

भिन्नं कपालं कथ्यान्तु सन्धिसुक्तं तथा च्युतम् ।

जघनं प्रतिपिष्टञ्च वर्जयेत्तु विचक्षणः ॥ ८ ॥

असंश्लिष्टं कपालञ्च ललाटे चूर्णितञ्च यत् ।

भग्नं स्तनान्तरे शङ्खे पृष्टे मूर्ध्नि तु वर्जयेत् ॥ ९ ॥

सम्यक् संहितमप्यस्थि दुर्निक्षेपनिबन्धनात् ।

संचोभाद्वापि यद्वच्छेदिक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ १० ॥

तरुणास्थीनि नश्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि च ।

कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥ ११ ॥

—०—

अथ भग्नचिकित्सामाह ।

आदो भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलांबुना ।

पङ्केनालेपनं कार्यं बन्धनं च कुशान्वितम् ॥ १२ ॥

अवनामितमुन्नम्येदुन्नतं चावपीडयेत् ।

आच्छेदतिक्षिप्तमधीगतञ्चोपरिवर्जयेत् ॥ १३ ॥

पलाशोदुम्बराश्वत्थ कदम्बनिचुलत्वचः ।

वशसर्जार्जुनानाञ्च कुशार्थमुपसंहरत् ॥

पटस्योपरिवधीया व्रगादं शिथिलं न वा ॥ १४ ॥

सप्तसप्तदिनाच्छीते घर्मे मुचेत्पृष्ठात् व्रहात् ।

समाने पञ्चपञ्चाहा इग्नं दोषवशेन च ॥ १५ ॥

आलेपनार्थं मज्जिष्ठा मधुकं चाम्बुपेपितम् ।

शतघातघृतोन्मिथं शालिपिष्टञ्च लेपनम् ॥ १६ ॥

सद्योऽभिघातजनिता रागरुजः श्वयधवः प्रशाम्यन्ति ।

पिष्टकलवणालेपादम्ब्रीकाफलरसाभ्यां वा ॥ १७ ॥

न्यग्रोधादिकपायतु सुशीतं परिधेचने ।

पञ्चमूलोविपक्कन्तु क्षीर दद्यात्कवेदने ॥ १८ ॥

सुखोष्णमवचार्यं वा तत्र तैल विजानता ।

अविदाहिभिरन्नैश्च पौष्टिकैः समुपाचरेत् ॥ १९ ॥

ग्लानिर्हि न हिता तस्य सन्धिविक्षेपकारिका ॥ २० ॥

भासं भांसरसक्षीर सर्पिर्यूप. सतीनज. ।

हृंहण चान्नपानञ्च श्रेयं भग्नाय जानता ॥ २१ ॥

शृष्टिक्षीरं मसर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ।

शीतलं लाक्षयायुक्तं प्रातर्भग्नः पिवेन्नरः ॥ २२ ॥

सष्टतेनास्थिसहारं लाक्षागोधूममर्जुनम् ।

सन्धिसुक्तेऽस्थिमंभग्ने पिवेत् क्षीरेण वा पुनः ॥ २३ ॥

चूर्णं पुरेण सयोज्य घृतेनार्जुनलाक्षयो. ।

भग्नं सन्धानमायाति लोढ्वा क्षीरघृताशनः ॥ २४ ॥

मूलं शृङ्गालविघ्राया पीत्वा भांसरसेन तु ।

चूर्णीकृत्य त्रिसप्ताहा दस्थिभग्नमपोहति ॥ २५ ॥

आभाचूर्णं मधुयुतं मस्थिभग्ने त्रग्रहं पिवेत् ।

पित्वाप्यस्थिभवेत् सम्यग् बज्रसारनिभं दृढम् ॥ २६ ॥

अम्ब्रीकाफलकल्कं सौवीरस्तैलविमिश्रितः स्वेदाद् ।

भग्नाभिहत रुजाघ्नै रथवीपधसाधितं श्वयथौ ॥ २७ ॥

—०—

आभाफलत्रिकथोपैः सर्वैरेतैः समांशकैः ।

तुल्यगुगुलुना योज्यं भग्नसन्धिप्रसाधनम् ॥ २८ ॥

इत्याभागुगुलुः ।

लाक्षास्थिसंज्ञत् ककुभोऽङ्गगन्धाचूर्णीकृतो नागबला मुरख ।
सभग्नमुक्तास्थिरुजं निहन्त्या दङ्गानि कुर्यात् कुलिशोपमानि ॥ २९ ॥

इति लाक्षादिगुगुलुः ।

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले ।
दिवा दिवा शोषयित्वा गवां क्षीरेण भावयेत् ॥ ३० ॥
तृतीयं सप्तरात्रन्तु भावयेन्मधुरांबुना ।
ततः क्षीरं पुनः पीतान् शुष्कान् सूक्ष्मान्विचूर्णयेत् ॥ ३१ ॥
काकोल्यादिं खट्वं मञ्जिष्टां शारिवां तथा ।
कुष्टं सर्जरसं मांसीं सुरादारु सचन्दम् ॥ ३२ ॥
शतपुष्पाञ्च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् ।
पीडनार्थं तु कर्तव्यं सर्वगन्धै शृतं पर्यः ॥ ३३ ॥
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत् पुनः ।
एलामंशुमतीपत्रं जीवन्ती तगरं तथा ॥ ३४ ॥
लोध्रं प्रपोण्डरीकञ्च तथा कालानुशारिवाम् ।
शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ ३५ ॥
पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च ।
एभिर्वा विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना ॥ ३६ ॥
एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ।
आचेपके पक्षघाते तालुशोषे तथार्दिते ॥ ३७ ॥
मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णरोगे हनुग्रहे ।
वाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥ ३८ ॥
पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने ।
श्रीवास्तम्भोरसां वृद्धिरितेनैव प्रजायते ॥ ३९ ॥

सुखञ्च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम् ।

गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ ४० ॥

राजाहमेतत्कर्त्तव्यं राज्ञामेव चिकित्सकैः ।

तिलचूर्णसमं तत्र मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ ४१ ॥

इति गन्धतैलम् ।

पूर्वं वयसि जातं हि भग्नं सुकरमादिशेत् ।

अल्पदोषस्य जन्तोश्च काले तु समशीतले ॥ ४२ ॥

प्रथमे वयमित्वेव मासाव्धन्विस्थिरो भवेत् ।

मध्यमे द्विगुणान् कालादन्तमे त्रिगुणाक्षया ॥ ४३ ॥

नैति पाकं यथा भग्नं तथा यत्नेन रचयेत् ।

पक्वं हि स्याच्छिरास्त्रायुं तद्धि कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ४४ ॥

पतनादभिधानाद्वा शून्यमङ्गं यदक्षतम् ।

शीतान् सेकान् प्रदेहाश्च भिषक् तस्यावधारयेत् ॥ ४५ ॥

सन्नणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः ।

प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ ४६ ॥

वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहास्तत्रापि योजयेत् ।

लवणं कटुकं चारं मज्जमातपमैथुनम् ।

व्यायामं न च सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ४७ ॥

भग्नसन्धिमनाविद्धं महीनाङ्गमनुत्थणम् ।

सुखचेष्टाप्रचारञ्च सम्यक् सन्धितमादिशेत् ॥ ४८ ॥

इति वङ्गसेने भग्ननिदानचिकित्साधिकारः

अंशास्तः ॥ ५२ ॥

अथ व्रणनाडीनिदानमाह ।

यः शोफमाममिति पक्षमुपेक्षतेऽज्ञो
यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः ।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य
स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः ॥ १ ॥
तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु
नाडीवयद्वहति तेन मतातु नाडो ॥ २ ॥
दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशय
संमूर्च्छितैरपि च शल्पनिमित्ततोऽन्या ॥ ३ ॥
तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुष्णी सशूला
फेनानुविहमधिकं स्रवति क्षयासु ।
पित्ताच्च छट्ज्वरकरो परिदाहयुक्ता
पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहस्स चापि ॥ ४ ॥
त्रेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छिलासा
स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनोमृद्वहा ।
दोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन
तिस्रो गति व्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात् ॥ ५ ॥
दाहज्वरश्चसनमूर्च्छन वक्त्रशोषा
यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि ।
तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्
घोरामसुक्षयकरोमिव कालरात्रिम् ॥ ६ ॥
नष्टं कथञ्चिदनुमार्गमुदोरितेषु
स्थानेषु शल्पमरिचेण गतिं करोति ।
सा फेनिल मयितमुष्णमष्टग्विमित्रं
स्राव करोति सहसा सरुजश्च नित्यम् ॥ ७ ॥

नाडीविदोषप्रभवा न सिध्येच्छोषाद्यतस्तः खलु यत्रसाध्याः ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

तत्रानिलोत्थामुपनाद्यपूर्वमशेषतः पूयगतिं विदार्थ्य ।

फलैरपामार्गभवैः सुपिष्टैः ससैधवैः संपरिपूर्य्य बन्धेत् ।

प्रचालने वापि यदा व्रणस्य योज्यं महद्यत् खलु पञ्चमूलम् ॥

हिंसां हरिद्रां कटुकीं बचाञ्च गोजिह्विकाञ्चापि सपञ्चमूलम्

संघृत्यतैलं विपचेद्ब्रणस्य संशोधनं पूरणरोपणञ्च ॥ १० ॥

इति हिंसार्थं तैलम् ।

पित्तात्मिकां प्राशुपनाद्य धीमा नुत्कारिकाभिः सपयो घृताभिः

निपात्य शस्त्रं तिलनागदन्ती मञ्जिष्टकल्कैः परिपूरयेच्च ॥

प्रचालने वापि हरिद्रसोमनिम्बाः प्रयोज्याः कुशलेन नित्यम् ॥ ११ ॥

श्यामात्रिभण्डीविफलासु सिद्धं हरिद्रयातिल्वकहचकेण ।

घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्याद्व्रतिं कीदृगतापि या स्यात् ॥ १२ ॥

इति श्यामाघृतम् ।

नाडीकफोत्थामुपनाद्य पूर्वं कुलित्यसिद्ध्यर्थकशर्तुविल्वैः ।

मृदीकृतामेकगतिं विदित्वा निपातयेच्छस्त्रमशेषकारि ॥ १३ ॥

दद्याद्ब्रणे निम्बतिलाग्नि दन्तीसुराष्टजाः सैधवसंप्रयुक्ताः ।

प्रचालने वापि करञ्जनिम्बजात्यार्कपीलुः खरसाः प्रयोज्याः ॥ १४ ॥

स्वर्जिकासिन्धुदन्यग्नि रूपिका जलनीलिका ।

खरमञ्जरिबीजेषु तैल गोमूत्रसाधितम् ॥

दुष्टव्रणप्रशमन कफनाडीव्रणापहम् ॥ १५ ॥

इति स्वर्जिकार्थं तैलम् ।

सैधवाक्षमरिचज्वलनाख्यैः कारवेक्षरजनीहयसिद्धम् ।

तैलमेतदचिरेण निहन्त्याद् दूरगामपि कफानिलनाडीम् ॥ १६ ॥

इति सैधवाद्यं तैलम् ।

नाडीन्तु शल्यप्रभवां विदार्य निर्व्यात्यशल्यं प्रविशोध्यमार्गम् ।

बन्धेद्वण चौद्रष्टतप्रमादाहत्वा तिलाच्छोध्यचरोपयेच्च ॥ १७ ॥

कुम्भीकखर्जूरकपित्यविल्ववनस्पतोनाच्च शलाटुवर्गं ।

कृत्वा कषाय विपचेत्तु तैलमवाप्य सुस्तं सरलं प्रियंगुम् ॥ १८ ॥

सोगन्धिक मोचरसाऽहिपुष्पलोध्राणि दत्वा खलु धातकी वा ।

एतेन शल्यप्रभवा ईह नाडी रोहिद्वणी वा सुखमाशु चैव ॥ १९ ॥

इति कुम्भीकाद्य तैलम् ।

ः सुहृत्कर्कदुग्धदावीणां वर्त्तिं कृत्वा प्रपूरयेत् ।

एष सर्वशरीरस्यां नाडीं हन्त्यात्रयोगराट् ॥ २० ॥

आरग्वधनिशाकालं चूर्णयेत् चौद्रसयुतम् ।

मूत्रे वर्त्तिव्रणे योज्या शोधिनी गतिनाशिनी ॥ २१ ॥

वर्त्तिकृतं माक्षिकसप्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा ।

दुष्टव्रणे यद्विहितं तु तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥ २२ ॥

जात्यर्कं शम्याककरञ्जदन्तो सिन्धूत्य सौवर्चलयावसूकैः ।

वर्त्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं शुक्लीरपिष्टा सह चित्रकेण ।

विभीतकाम्नास्थिबटप्रवालहरेणुका शङ्खिनीबीजमित्रा ॥

बराहविट् सूक्ष्ममपीप्रदेया नाडीस्तु तैलेन विमिश्रयित्वा ॥ २३ ॥

मैपरोममपीतस्यां कटुतैलविषाचिताम् ।

नाडीव्रण चिरोद्भूत जयेत्तूलकसगमात् ॥ २४ ॥

इति मैपरोममपी ।

कर्पूरस्य रसेनैव कटुतैलं विषाचयेत् ।

सिन्दूरकल्कितं नाडिं दुष्टव्रणविसर्पनुत् ॥ २५ ॥

इति कर्पूराद्यं तैलम् ।

स्वर्जिकासैधवं दन्ती नीलीमूलं फलं तथा ।

मूत्रे चतुर्गुणे सिद्धं तैलं नाडीव्रणापहम् ॥ २६ ॥

इति स्वर्जिकाद्यं तैलम् ।

सर्वे व्रणक्रमः कार्यो शोधनारोपणादिकः ।

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितैः ॥

अक्षप्रमाणां गुटिकां खादेदेकामतन्द्रितः ॥ २७ ॥

नाडीं दुष्टव्रणं शूलं सुदावर्त्तं भगन्दरम् ।

गुल्मश्च गुदजान् हन्यात् पक्षिराट् पन्नगानिव ॥ २८ ॥

इति समाङ्गगुग्गुलुः ।

याद्विव्रणीये विहितास्तु बर्त्यस्ताः सर्वनाडीषु भिषग्विदध्यात् ॥ २९ ॥

कृशदुर्बलभीरुरां नाडीं मर्माश्रितामपि ।

चारसूत्रेण तां छिन्द्या व्रणस्त्रेण कदाचन ॥ ३० ॥

एषस्यागतिमन्विश्य चारसूत्रानुसारिणीम् ।

सूचीविदध्या ब्राह्मन्ते प्रोन्नाम्याशु विनिर्हरेत् ॥ ३१ ॥

सूत्रस्थान्तं समानीय गाढं बन्धं समाचरेत् ।

ततः चारबलं बोध्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत् ॥ ३२ ॥

क्षाराक्त मतिमान् वैद्यो यावन्न छिद्यते गतिः ।

भगन्दरेष्येय विधिः कार्यो वैद्येन जानता ॥ ३३ ॥

अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत् ।

सूचिभिर्यववक्त्राभि राचितं वा समन्ततः ॥

मूले सूत्रेण बध्नीया च्छिन्ने चोपचरेद्गणम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीवङ्गसेने नाडीव्रणनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ५३ ॥

अथ भगन्दरनिदानमाह ।

गुदस्य द्व्यंगुले चेत्रे पार्श्वतः पिटिकातिष्ठत् ।

भिन्ना भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधोमतः ॥ १ ॥

कटीकपालनिस्तोद दाहकण्डूरुजादयः ।

भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥ २ ॥

कपायरूचैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिटिकां करोति याम् ।

उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नारुणफेन वाहिनी ॥ ३ ॥

तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां ब्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥ ४ ॥

प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिटिकां गुदश्रिताम् ।

तदाशु पाकां हिमपूयवाहिनीं भगन्दरं चोद्गशिरोधरं वदेत् ॥ ५ ॥

कडूयनो घनस्त्रावी कठिनो मन्दवेदनः ।

श्वेतावभासः कफजः परिस्त्रावी भगन्दरः ॥ ६ ॥

बहुवर्णरुजास्त्रावः पिटिका गोस्तनीपमाः ।

शम्बूकावर्तबन्नाडी शम्बूकावर्तको मतः ॥ ७ ॥

चताहतिः पायुगता विवर्द्धते ह्युपेक्षणात्पाकमिभिर्विदार्यते ।

प्रकुर्वते मार्गमनेकधामुखैर्ब्रणैस्तुन्मार्गिभगन्दरं वदेत् ॥ ८ ॥

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगन्दराः ।

तेष्वऽसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ ९ ॥

बातमूत्रपुरीषाणि क्लमयः शुक्रमेव च ।

भगन्दरात् स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥ १० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अथास्य पिटिकामेव तथा यन्नादुपाचरेत् ।

शुद्धासृतिसेकाद्यै र्यथा पाकं न गच्छति ॥ ११ ॥

वटपत्रे ऽष्टकाशुगुठी गुडूची सपुनर्नवाः ।

सुपिष्टः पिटिकाऽवस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ १२ ॥

पिटिकानामपाकानां मघतर्पणपूर्वकम् ।

कर्मकुर्व्याहिरैकांतं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ १३ ॥

एषणीपाटनचार बज्जिदाहादिकं क्रमम् ।

विधाय व्रणवत्कार्यं यथा दीपं यथा क्रमम् ॥ १४ ॥

पयः पिष्टैर्मिलैराज्य मधुकैश्च सुशीतलैः ।

भगन्दरे प्रशस्तोऽयं सरक्ते वेदनावति ॥ १५ ॥

सुमना वटपत्राणि गुडूचीविश्वमेपजम् ।

सैन्धवं तक्रपिष्टञ्च लेपाहन्ति भगन्दरम् ॥ १६ ॥

त्रिवृत्तिलानलादन्ती मञ्जिष्टा सह सर्पिषा ।

उत्सादनं भवेदेत स्तैधवचौद्रसंयुतम् ॥ १७ ॥

खदिराम्बुरतो भूत्वा कपायं त्रेफलं पिबेत् ।

महिषाक्षविडङ्गानां भगन्दरविनाशनम् ॥ १८ ॥

जंबूकमांसमग्रीयात् प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः ।

अजोर्णवर्जिमासेन मुच्यते सभगन्दरात् ॥ १९ ॥

न्यग्रोधादिगणो यथ हित शोधनरोपणः ।

तैलं घृतं वा तत्पक्वं भगन्दरविनाशनम् ॥ २० ॥

तिलाज्योतिषतीकुष्टं लाङ्गलिगिरिकर्णिका ।

शताह्वात्रिहतादन्यः शोधनाय भगन्दरे ॥ २१ ॥

तिलाभयाकुष्टमग्नपत्रं निशे वला लोध्रमगारधूमम् ।

भगन्दरे चाप्युपदशजे च दुष्टव्रणे शोधनरोपणाय ॥ २२ ॥

स्रुह्यार्कदुग्धदार्वाभिर्वर्त्तिं कृत्वा विचक्षणः ।

भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्ता प्रयत्नतः ॥

एषा सर्वशरीररक्षां नाङ्गी हन्ति न सशयः ॥ २३ ॥

त्रिफलारससंयुक्तं त्रिङ्गलास्थिमलेपनम् ।
 भगन्दरं निहन्त्याश्च दुष्टव्रणहरं परम् ॥ २४ ॥
 कुष्ठं त्रिवृत्तिलादन्ती मागध्यः सैधवं मधु ।
 रजनीत्रिफलातुल्यं हितं स्याद्व्रणशोधनम् ॥ २५ ॥
 रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्टानिम्बपल्लवाः ।
 त्रिवृत्तेजोवती दन्ती कल्को नाडीव्रणापहः ॥ २६ ॥
 ज्योतिष्मती लाङ्गली च श्यामादन्तीत्रिवृत्तिला ।
 कुष्ठं यताङ्गागोलोमी मूर्वाशोधनमिष्यते ॥ २७ ॥
 मधुतैलयुता विडङ्ग त्रिफलामागधिकाकणाश्च लीङ्गाः ।
 कुष्ठभगन्दरक्षत नाडीव्रणरोपणा भवन्ति ॥ २८ ॥
 चित्रकाकीं त्रिवृत्पाठे मलयूह्यमारकीं ।
 सुधां वचां लाङ्गलीं हरितालं सुवर्चलम् ॥ २९ ॥
 ज्योतिष्मतीञ्च संहृत्यतैलं धीरो विपाचयेत् ।
 एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ।
 शोधनं रोपणञ्चैव सलवर्णकरणं तथा ॥ ३० ॥

इति विष्यन्दनतैलम् ।

निशार्कचीरसिन्धूत्य पुराऽश्वहरवत्सकैः ।
 सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं भगन्दरहरं परम् ॥ ३१ ॥

इति निशाद्यं तैलम् ।

करवीरनिशादन्ती लाङ्गलीलवणाग्निभिः ।
 मातुलुङ्गकवत्साक्षैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ ३२ ॥

इति करवीराद्यं तैलम् ।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकाग्रयोजिता ।

गुटिकाशोथगुल्मार्शो भगन्दरवतां हिता ॥ ३३ ॥

इति नवकार्षिको गुग्गुलुः ।

नाद्यन्तरे व्रणः कुर्याद्भिषक् तु शतपोनके ।

ततस्तेष्ववरुद्धेषु शेषानाङ्गीरपाचरेत् ॥ ३४ ॥

व्याधौ तत्र बहुक्षिद्रे भिषजा तु विजानता ।

अर्धलाङ्गलिकः क्षेदः कार्यो लाङ्गलिकोऽपि च ॥ ३५ ॥

सर्वतो भद्रको वापि कार्यो गोतीर्थकोऽपि वा ।

हाम्यां समाभ्यां पार्श्वाम्भ्यां क्षेदो लाङ्गलिको मतः ॥ ३६ ॥

ऋस्वमेकतरं यत्तु सोऽर्धलाङ्गलिकः स्मृतः ।

सेवनीं वर्जयित्वा तु चतुर्धादारिते गुदे ॥ ३७ ॥

सर्वतो भद्रकं क्षेद माहुः क्षेदविदो जनाः ।

पार्श्वदागतशस्त्रेण क्षेदो गोतीर्थको मतः ॥ ३८ ॥

सर्वानास्त्रावमार्गांस्तु दहेद्द्वयस्तथाग्निना ।

अथोद्वेग्रीवमपिण्या कृत्वा चारं निपातयेत् ॥

पूतिमांसव्यपोहार्थं मग्निरत्र न पूजितः ॥ ३९ ॥

उत्कृत्वाऽऽस्त्रावमार्गान्तु परिस्त्रारिणि बुद्धिमान् ।

क्षीरेणऽऽस्त्रावितगतिं दहेद्भुतवह्निना वा ॥ ४० ॥

गतिमन्विष्यशस्त्रेण क्लिन्ध्यात् खर्जूरपञ्चकम् ।

चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्रञ्च सूचीमुखमवाङ्मुखम् ॥

कृत्वाग्निना दहेत्सम्यगेवं क्षारिण वा पुनः ॥ ४१ ॥

वेपान्तु शस्त्रपतना द्वेदना ह्यतिजायते ।

तत्राशु तैलेनीर्णेन परिपेकः प्रशस्यते ॥ ४२ ॥

आगन्तुजे भिषङ्गाङ्गीं शस्त्रेणोत्कृत्य यत्नतः ।

यवोष्टेनाग्निवर्णेन तप्तया वा शलाकया ॥ ४३ ॥

दहेद्यथोक्तं मतिमांस्तं व्रणं सुममाहितः ॥ ४४ ॥

व्यायामं मैथुनं युद्धं घृष्टयानं गुरुणि च ।

संवत्सरं परिहरे दुपरुद्वण्णो नरः ॥ ४५ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भगन्दरनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ५४ ॥

—०—

अथोपदंशनिदानमाह ।

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनाद्रत्युपसेवनाच्च ।

योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिथ्यो पञ्चोपदंशा विविधोपचारैः ॥ १ ॥

सतोदभेदस्फुरणैः सक्तर्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ।

पीतैर्वहुक्तैर्दयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तात्पिशितावभासैः ॥ २ ॥

सकंडरैः शोथयुतैर्महद्भिः युक्तैर्वनैः स्नावयुतैः कफेन ।

नानाविधस्त्रावरुजोपपन्न मसाध्यमाहुस्त्रिमलीपदंशम् ॥ ३ ॥

प्रशीर्णमास कृमिभिः प्रजग्ध सुष्कावशेषं परिवर्जयेच्च ॥ ४ ॥

संजातमात्रेण करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ।

कालेन शोथः कृमिदाहपाकैः प्रशीणशिथ्योन्नियते सतेन ॥ ५ ॥

—०—

अथ लिङ्गार्शमाह ।

अकुरेरिवसद्भातै रूपर्युपरिसंस्थितैः ।

क्रमेण जायते वर्त्ति स्तान्त्रचूडशिखोपमाः ॥ ६ ॥

कोपस्थाभ्यन्तरे सन्धौ पर्वसन्धिगतापि वा ।

लिङ्गवर्त्तिरितिख्याता लिङ्गार्श इति चापरे ।

सवेदनरपिच्छला च दुष्टिकित्स्यान्निदोषजा ॥ ७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

उपदंशेषु साध्वेषु स्निग्धस्निग्धस्य देहिनः ।

मेढ्रमध्ये गिरां विध्ये त्पातयेद्वा जलौकसः ॥ ८ ॥

हरेदुभयतथापि दोषानत्यर्थमूर्च्छितान् ।

सद्योनिर्हृतदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः ॥ ९ ॥

यदि वा दुर्वलो जन्तुर्न च प्रामविरेचनः ।

निरुहेण हरेत्तस्य दोषानत्यर्थमूर्च्छितान् ।

पाकोरक्ष्यः प्रयत्नेन शिग्रचयकरो हि सः ॥ १० ॥

प्रपौण्डरीकयद्याह सरलागुरुदारुभिः ।

सरास्त्राकुटपृथ्वीकैर्वातिकैर्लेपसेचने ॥ १२ ॥

निचुलैरण्डबीजानि यवगोधूमशक्तवः ।

एतैश्च वातजं मिग्धैः सुखोष्णं संप्रलेपयेत् ॥ १२ ॥

पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जार्जुनवेतसैः ।

सर्पिः स्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ १३ ॥

सेचयेच्च घृतक्षीर शर्करैश्च मधूदकैः ।

अथवापि सुशीतेन कषायेन वटादिना ॥ १४ ॥

^१शालाजक^२कर्णश्लेष्मक^३र्ण धवस्वग्भिः कफोत्थितम् ।

सुरापिष्टाभिरुण्याभिस्तैलाभिः प्रलेपयेत् ॥ १५ ॥

आरम्बधादिक्वाथेन परिपेकञ्च दापयेत् ॥ १६ ॥

निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशाला जम्बूवटोदुम्बरवेतसैश्च ।

प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्याच्चूर्णं च पित्तास्रभवोपदंशे ॥ १७ ॥

त्वचोदारुहरिद्रायाः शङ्खनाभिरसाञ्जनम् ।

लाचागोमयनिर्ध्यासं तैलं चौद्रं हृतं पयः ॥ १८ ॥

एभिस्तु पिष्टैस्तुल्यांश्चैव रूपदंशं प्रलेपयेत् ।

व्रणाश्च तेन शास्यन्ति श्वयधुर्दाह एव च ॥ १९ ॥

उपदंशद्वयेऽप्येतां प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् ।

तयोरेव च या योग्या वीक्ष्यदोषवलाबलम् ॥ २० ॥

शस्त्रेणोपचरेच्चापि पाकमागतमाशु च ।

तमपोद्घमयो सर्पिः, चौद्रयुक्तैः प्रलेपयेत् ॥ २१ ॥

वटप्ररोहार्जुनजंबु पथ्यालीघ्नं हरिद्रा च हितः प्रलेपः ।

सर्वोपदंशेष्ववरोहणार्थं चूर्णञ्च कार्यं विमलाञ्जनेन ॥ २२ ॥

त्रिफलायाः कपायेण भृङ्गराजरमेन च ।

व्रणप्रक्षालणं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ २३ ॥

पटोलनिम्बत्रिफलाकिरातकायं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् ।

सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः-प्रयोगः ॥ २४ ॥

नीलोत्पलानि कुमुदं पद्मसौगन्धिकानि च ।

उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेह्येयं प्रशस्यते ॥ २५ ॥

बन्धूकदलचूर्णेन दाडिमत्वग्रजोऽथवा ।

गुण्डनं तद्गते शस्तं लेपः पूगफलेन वा ॥ २६ ॥

सीराक्षीगैरिकं तुल्यं पुष्पं काशीश सैन्धवम् ।

लोघ्नं रसाञ्जनं वापि हरितालं मनःशिलाम् ॥ २७ ॥

हरेणुकैले च तथा समांशान्यपि चूर्णयेत् ।

तच्चूर्णं चौद्रसंयुक्तं सुपदंशेषु योजितम् ॥ २८ ॥

गुन्द्रां दग्ध्वाकृतं भस्म हरितालं मनःशिला ।

उपदंशविसर्पाणां मितद्वानिकरं परम् ॥ २९ ॥

दहेत्कटाहे त्रिफलां तां मर्पीं मधुसैन्धवम् ।

उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्योरोपयतिव्रणम् ॥ ३० ॥

तिरीटाञ्चनवज्जाच्च कीविदारैभकेशरैः ।

लेपनं पुरुषव्याधौ जलपिष्टैः प्रशस्यते ॥ ३१ ॥

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् ।

सचौद्रं लेपनं जोज्यं सर्वानङ्गगदापहम् ॥ ३२ ॥

भाङ्गीसम्भवशिखरिज मूलं भद्रश्रियं च सपिष्टम् ।

मनःशिलाञ्च मधुना शमयत्युपदंशमचिरेण ॥ ३३ ॥

जलधौतं प्रयत्ने न निङ्गोत्यमवचूर्णयेत् ।

रोगं कासीसचूर्णेन पुरुषः सुखवाञ्छया ॥ ३४ ॥

करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा ।

असाध्यापि ब्रजत्यस्तं लिङ्गोत्थारुक् प्रलेपनात् ॥ ३५ ॥

करञ्जनिम्बासनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककपायसिद्धम् ।

सर्पिर्निहन्त्यादुपदशदोषं सदाहपाकमुतिपाकयुक्तम् ॥ ३६ ॥

इति करञ्जाद्यं घृतम् ।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जधात्रीखदिरासनानाम् ।

सतीयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदशापहर प्रदिष्टम् ॥ ३७ ॥

इति भूनिम्बाद्यं घृतम् ।

घृतानि यानि वक्ष्यामि कुष्टे नाडौ ब्रणे ब्रणे ।

उपदशे प्रयोज्यानि सेकाभ्यञ्जनभोजनैः ॥ ३८ ॥

आगारधूमोरजनी सुराकिट्टञ्च तैस्त्रिभिः ।

यथोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥ ३९ ॥

शोधनं रोपणञ्चैव उपदशहर परम् ॥ ४० ॥

इत्यागारधूमाद्यं तैलम् ।

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च संयुतम् ।

एतत्सर्वोपदशेषु त्र्यष्टं रोपणमिष्यते ॥ ४१ ॥

इति गोजीतैलम् ।

जंबूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च ।
 नक्तमालस्य पत्राणि तद्वत्पद्मोत्पलानि च ॥ ४२ ॥
 बला चातिबलाम्बास्थि मधुकञ्च प्रियङ्गवः ।
 लाक्षाकालीयकं लोध्रं चन्दनं त्रिवृताद्वया ॥ ४३ ॥
 एतान्ये कीकृतान्येव वक्षस्मूत्रेण पेपयेत् ।
 अक्षमात्रयुतैर्द्रव्यै स्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४४ ॥
 सर्वव्रणहरं तैल मेतत्सिद्धं प्रयोजितम् ।
 उपदंशहरं त्र्यष्टं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ४५ ॥
 इति जम्बूवाद्यं तैलम् ।

यस्य लिङ्गस्य मांसन्तु शीर्यते मुष्कशेषतः ।
 तिक्तकोशातकीलम्बा बीजनागरसाधितम् ॥ ४६ ॥
 तैलं हन्यचिराद् घोरं व्रणदुष्टमनेकधा ।
 इति कोशातकीतैलम् ।

सेवेन्नित्यं यवान्नञ्च पानीयं कौपमेव च ।
 अर्गसां क्षिन्नदग्धानां क्रियाकार्योपदशवत् ॥ ४८ ॥

—०—

अथ लिङ्गार्शचिकित्सामाह ।

स्वर्जिकातुल्यगैलेयं सरलं सरसाञ्जनम् ।
 मनःशिलाले च समे चूर्णोमांसाङ्कुरापहः ॥ ४९ ॥
 इति वङ्गसेन उपदंशनिदानचिकित्साधिकारः
 समाप्तः ॥ ५५ ॥

—०—

अथ शूकदोषनिदानमाह ।
 अक्रमाच्छेफसोर्द्विं योऽभिवाञ्छतिमूढधीः ।

व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥
 गौरसर्पपसंस्थाना शूकदुर्भुग्नहेतुका ।
 पिटिकाश्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्पंपिका बुधैः ॥ २ ॥
 कठिनाविषमैर्भुग्नै र्वायुनाष्टोलिका भवेत् ।
 शूकैर्यत्पूरितं शश्वद् ग्रन्थितं नामतत्कफात् ॥ ४ ॥
 कुम्भिकारक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिभाशुभा ।
 अलजोलचणैर्युक्ता मलजीं प्रवितर्कयेत् ॥ ५ ॥
 मृदितं पीडितं यत्तु संख्यं वायुकोपतः ।
 पाणिभ्यां भृशसंमूढं संमूढपिटिका भवेत् ॥ ६ ॥
 दीर्घावह्वयश्च पिटिका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः ।
 सोऽवमन्यः कफासृग्भ्रां वेदनारोमहर्षकत् ॥ ७ ॥
 पिटिकाभिधिताया तु पित्तशोणितसम्भवा ।
 पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका तु सा ॥ ८ ॥
 स्पर्शहानिन्तु जनये च्छोणितं शूकदूषितम् ॥ ९ ॥
 सुहृमायोपमारक्ता रक्तपित्तोद्भवात्तु या ।
 व्याधिर्योत्तमानास शूकाजीर्णनिमित्तजा ॥ १० ॥
 छिद्रैरण्मुखैर्निङ्ग' चितं यस्य समंततः ।
 वातशोणितजो व्याधिः सज्जेयः शतपोनकः ॥ ११ ॥
 वातपित्तकृतो ज्ञेय स्वक्पाको ज्वरदाहकत् ॥ १२ ॥
 कण्ठैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिटिकाभिर्निपीडितम् ।
 यस्य वम्भिरुज्ज्वोरा ज्ञेयं तच्छोणितार्तुदम् ॥ १३ ॥
 मांसदोषेण जानीया दर्बुदं मांससम्भवम् ।
 शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ।
 विद्यात्तं मांसपाकन्तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १४ ॥
 विन्धिं सन्निपाते' यद्योक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १५ ॥

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि वा ।
 पाचितानि पचन्त्याशु मेद्रं निरवशेषतः ॥ १६ ॥
 कालानि भूत्वामांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः ।
 सन्निपातसमुत्थांस्तु तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १७ ॥
 तत्रमांसार्बुदं यच्च मांसपाकथयः स्मृतः ।
 विद्रधिद्य न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १८ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

शूकदोषेषु सर्वेषु विषघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ।
 विरेचनं प्रयुज्जीत शोणितस्य च मोक्षणम् ॥ १९ ॥
 जलौकाभिहरेद्रक्तं मेद्रे वा व्यधयेच्छिरांम् ।
 गुग्गुलुं पाययेच्चापि त्रिफलाक्वाथसंयुतम् ।
 ज्वीरेण लेपसेकांश्च शीतानिव च कारयेत् ॥ २० ॥
 मर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कपायैरवचूर्णयेत् ।
 तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद्भणरोपणम् ॥ २१ ॥
 क्रियेयमवमन्येऽपि रक्तं स्त्राव्यं तथोभयोः ।
 अष्टौलायां सृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥ २२ ॥
 कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ।
 तिन्दुकत्रिफलालोघ्र लेपस्तैलञ्च रोपणम् ॥ २३ ॥
 अलज्यां हृतरक्ताया मयमेव क्रियाक्रमः ॥ २४ ॥
 स्वेदयेद् ग्रन्थितं शश्च वाङ्गोस्वेदेन बुद्धिमान् ।
 सुखोष्णैरुपनाहैश्च सुस्निग्धैरुपनाहयेत् ॥ २५ ॥
 उत्तमाख्यान्तु पिटिकां संछिद्य वडिशोद्धृताम् ।
 कल्केयूर्णं कपायाणां चौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ॥ २६ ॥

क्रमः पित्तविसर्पोंक्तः पुष्करोमूढयोर्हितः ॥ २० ॥
 त्वक्पाके स्पर्शहान्याञ्च सेचयेन्मृदितं पुनः ।
 वलातैलेन कोष्णेन मधुरैद्योपनाहयेत् ॥ २८ ॥
 रसक्रियाविधातव्या लिखिताशतपीनके ।
 पृथक्पृथ्वादिसिद्धञ्च तैलं देयमनन्तरम् ॥ २९ ॥
 रक्तविद्रधिवच्चापि क्रियाशोणितजेऽर्बुदे ।
 कपायकल्कसर्पीषि तैलं चूर्णं रसक्रियाम् ।
 शोधने रोपणे चैव वीक्ष्यवीक्ष्यावचारयेत् ॥ ३० ॥
 क्षीरेण लेपसेकांश्च शीतेनैव च कारयेत् ।
 पूयते च यथा चाशु नैतिपाकं यथा ध्वजम् ॥ ३१ ॥
 अर्बुदे मांसपाके च विद्रधी तिलकालके ।
 प्रत्याख्यायप्रकुर्वीत भिषक्तेषां प्रतिक्रियाम् ॥ ३२ ॥

—०—

०

. . दावींसुरसयध्याह्वैः गर्हधूमनिशायुतैः ।
 तैलमभ्यञ्जने पाने मेद्रे रोगं विनाशयेत् ॥ ३३ ॥
 इति दावींतैलम् ।

गुञ्जाभस्ममपीवाथ हरितालं मनःशिला ।
 दावींहरिद्रामधुकं घृतक्षौद्रसमायुतम् ।
 प्रलेपार्थं प्रयुञ्जीत विशुद्धघ्नणरोपणम् ॥ ३४ ॥
 रसाञ्जनं साहचर्यमेतदेव प्रलेपमात्रेण नयेत्प्रशान्तिम् ।
 संपूतिपूयघ्नणशोधकण्डूशूलान्वितं सर्वमनङ्गरोगम् ॥ ३५ ॥

इति वङ्गसेने शूकदोषनिदानचिकित्साधिकारः
 समाप्तः ॥ ५६ ॥

—०—

अथ कुष्टनिदानमाह ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च ।
 भजतामागतां हृदि वेगांथान्यान् प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥
 व्यायाममतिसन्ताप मतिभुक्त्वानिपेविणाम् ।
 शीतोष्णलङ्घनाहारान् भजतामक्रमेण तु ॥ २ ॥
 घर्म्मश्चमभयार्त्तानां द्रुतं शीतांबुसेविनाम् ।
 अजीर्णाध्यसनानाञ्च पञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥
 नवान्नदधिमत्स्यादि लवणाम्लनिपेविणाम् ।
 मापमूलकपिष्टान्न तिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥
 व्यवायं चाप्यजीर्णंऽन्ने निद्रां वा भजतां दिवा ।
 विप्रान् गुरुन्धर्षयतां पापकर्म च कुर्वताम् ॥ ५ ॥
 वातादयस्त्रयो दुष्टा स्वग्रक्तं मांसमम्बु च ।
 दूषयन्ति सकुष्टानां ममको द्रव्यसंयहः ॥ ६ ॥
 अतः कुष्टानि जायन्ते सप्त चैकादशैव तु ॥ ७ ॥
 तिलतैलकुलित्यांश्च बल्मीकलिङ्गमेव च ।
 माद्विषं दधिवृन्ताकं सप्तैते कुष्टहेतवः ॥ ८ ॥
 कुष्टानि सप्तधादोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः ।
 सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदोयोऽधिकत्वतः ॥ ९ ॥
 अतिश्लक्ष्णखरस्पर्श स्वेदास्वेदविवर्णता ।
 दाहः कंडूस्वचिस्त्राप स्तोदः कीठोन्नतिः श्मः ॥ १० ॥
 ग्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ।
 रुढानामपिरुक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् ।
 रोमहर्षोऽसृजः काष्ण्यं कुष्टलक्षणमग्रजम् ॥ ११ ॥
 कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ।

कपालं तोदबहुलं तत्कुष्टं विषमं स्मृतम् ॥ १२ ॥

रुग्दाहरागकंडूभिः परीतं रोमपिच्छरम् ।

उदुम्बरफलाभासं कुष्टमौदुम्बरं वदेत् ॥ १३ ॥

श्वेतं रक्तं स्थिरं स्थानं स्निग्धमुत्तन्नमण्डलम् ।

कच्छमन्योऽन्यसंयुक्तं कुष्टं मण्डलमुच्यते ॥ १४ ॥

कर्काशं रक्तपर्यन्तं मन्तःश्यावं सवेदनम् ।

यदक्षजिह्वासंकाशं मृक्षजिह्वं तदुच्यते ॥ १५ ॥

सखेतरक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ।

सोत्सेधञ्च सरागञ्च पुण्डरीकं प्रचक्षते ॥ १६ ॥

श्वेतं ताम्रञ्च तनुयं द्रजोष्टं विमुञ्चति ।

प्रायश्चौरसि तंक्लिष्णं मलावुकुसुमोपमम् ॥ १७ ॥

यत्काकणन्तिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् ।

त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्टं काकणं नैवमिध्यति ॥ १८ ॥

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ।

तदेव कुष्टं चर्माख्यं बहुलं हस्तिचर्मावत् ॥ १९ ॥

श्यावङ्गिणं खरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ।

वैपादिकं पाणिपादं स्फुटनं तीव्रवेदनम् ॥ २० ॥

कडूमज्जिः सरागैश्च गण्डैरलसकञ्चितम् ।

सकंडूरागपिडकं दद्रुमण्डलमुद्गतम् ॥ २१ ॥

रक्तं मशूलं कंडूमत् सस्फोटं दलयत्यपि ।

तच्चर्मादलमाख्यातं संस्पर्शाऽसहं मुच्यते ॥ २२ ॥

सूक्ष्माबद्धाः पिटिकाः स्राववत्यः

पामेत्युक्ताः कंडूमत्यः सदाहाः ।

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता

ज्ञेया पाण्योः कच्छुदुग्नास्फिजोश्च ॥ २३ ॥

स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः सुस्तनुत्वचः ।
 रक्तं श्यावं सदाहार्तिः शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ २४ ॥
 सकंडूपिटिकाश्यावा बहुस्रावाविचर्चिका ॥ २५ ॥
 खरं श्यावारुणं रुचं वातकुटं सवेदनम् ।
 पित्तात् प्रकुपितं दाह रागस्रावान्वितं मतम् ॥ २६ ॥
 कफात् क्लेदिघनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम् ।
 हिलिङ्गं दन्धजं कुटं त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ २७ ॥

—•—

अथ धातुगतकुटलक्षणान्याह ।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुटे रौच्यञ्च जायते ।
 त्वक्पाको रोमहर्षश्च स्वेदम्यातिप्रवर्त्तनम् ॥ २८ ॥
 कंडूर्निपूयकश्चैव कुटे शोणितसंश्रिते ॥ २९ ॥
 दीर्गम्यं सर्वदेहेऽस्मिन् पृयोऽतिक्रमयस्तथा ।
 गात्राणां भेदनं वापि कुटे मांससमाश्रिते ॥ ३० ॥
 कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम् ।
 भेदः स्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ३१ ॥
 नासाभङ्गोऽक्षिरागंश्च क्षतेषु कृमिसम्भवः ।
 खरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३२ ॥
 दम्पत्योः कुट्वाहुल्याद् दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
 यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तच्चापि कुट्टितम् ॥ ३३ ॥
 सार्धं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकञ्च यत् ।
 भेदसिद्धान्तं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ ३४ ॥
 कृमिच्छेदाहमन्दाग्नि संयुक्तं यत्त्रिदोषजम् ।
 प्रभिवं प्रसृताङ्गञ्च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥

पञ्चकर्मागुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ३५ ॥
 वातेन कुष्ठं कोपालं पित्तेनोदुम्बरं कफात् ।
 मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋक्षाख्यं वातपित्ततः ॥ ३६ ॥
 चर्मैककुष्ठं किटभं सिन्धाऽलसविपादिकाः ।
 वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्द्रुशतारुपी ॥ ३७ ॥
 पुण्डरीकं सविस्फोटं पामाचर्मदलं तथा ।
 सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रुसकाकणम् ॥
 पुण्डरीकर्चजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ ३८ ॥

—०—

अथ श्वित्वलक्षणमाह ।

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्वं किलासं दारुणं भवेत् ।
 निर्दिष्टमपरिस्त्रावं त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३९ ॥
 वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् ।
 सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छेतं घनं गुरु ॥ ४० ॥
 सकांडूरं क्रमाद्रक्तमांसमेदस्सु चादिशेत् ।
 वर्णैर्नैवेदगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४१ ॥
 अशुक्लरोमा बहुलमसंश्लिष्टमथो नवम् ।
 अग्निदग्धजं साध्यं श्वित्वं वर्ज्यमतोन्यथा ॥ ४२ ॥
 गुह्यपाणितलौष्टेषु जातमय्यऽचिरन्तनम् ।
 वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धमिच्छता ॥ ४३ ॥
 प्रसङ्गाद्वातसंस्पर्शा त्रिश्वासात्सह भोजनात् ।
 एकंशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाख्यानुलेपनात् ॥ ४४ ॥
 कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिर्यन्द एव ।
 औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नराक्षरम् ॥ ४५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

बातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुटेषु ।

पित्तोत्तरेषु मोक्षी रक्तस्य विरेचनं चाग्रम् ॥ ४६ ॥

घृतं महानीलमुशन्ति बाते पित्ते महातिक्तकमेव तदुन्नाः ।

तैलन्तु शैरोपमुशन्ति कुटे श्लेष्मात्मकोऽभ्यञ्जनपानयोगे ॥ ४७ ॥

प्रच्छनैर्वा जलोकाभिः गृह्यलावुशिराव्यधैः ।

स्निग्धस्य मोक्षयेत् कुटे दुष्टरक्तं पुनः पुनः ॥ ४८ ॥

सुतरक्ते हृते दोषे स्नेहैः संशमितेऽनिले ।

रसायनानि प्राश्याथ प्रशास्ताः कुष्टिनामस्तः ॥ ४९ ॥

बचाबासापटोलानि निम्बस्य फलिनीत्वचः ।

कपायो मधुना पीतः वान्तकृन्मदनान्वितः ॥ ५० ॥

इति पञ्चकपायः ।

विरेचनं प्रयोक्तव्यं त्रिवृहन्तीफलत्रिकैः ॥ ५१ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां प्रयुज्यन्ते निर्गतास्त्रदोषाणाम् ।

संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम् ॥ ५२ ॥

पथ्या करञ्जसिद्धार्थं निशाबलगु ससैन्धवैः ।

विडङ्गसहितैः पिष्टैः लेपो मूत्रेण कुष्टजित् ॥ ५३ ॥

एलाकुष्टविडङ्गानि शताह्वा चित्रको वचा ।

दन्तीरसाञ्जनञ्चैर्भिलेपः कुष्टविनाशनः ॥ ५४ ॥

मन्थिलाले भरिचानि तैल मार्कं पयः कुष्टहरः प्रदेहः ।

करञ्जबीजैडगजः सकुष्टो गोमूत्रपिष्टश्च वरः प्रदेहः ॥ ५५ ॥

धात्रीस्रुहीसर्जरसचक्रमर्दतुषोदकैः ।

कच्छुदद्वेहरो लेपः कंडूत्वग्देपनाशनः ॥ ५६ ॥

शृङ्गाटककर्कटीमूलं हविषा ब्रह्मचारिणा ।

निपीतं शमयत्यांश दद्रुरोगमसंशयम् ॥ ५७ ॥

पर्णानि पिष्ट्वा चतुरंगुलस्य तक्त्रेण पर्णान्यथ काकमाद्याः ।

तैलैस्तमात्रस्य नरस्य कुष्ठान्युद्धर्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥ ५८ ॥

एङ्गजकुष्ठसैन्धव सौवीरसर्पपैः क्षमिघ्नैश्च ।

क्षमिसिद्धदद्रुमण्डल कुष्ठानां नाशनी लेपः ॥ ५९ ॥

त्रिफलामुस्तकं पिण्डी दार्वीशम्याकबक्षकाः ।

सिद्धार्थं कुष्ठतुच्चैभिः स्नानपानप्रलेपनम् ॥ ६० ॥

कासमर्दकमूलानि सौवीरेण तु पेपयेत् ।

किटिभसिद्धदद्रूणि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ ६१ ॥

बीजानि वा मूलकसर्पपाणां लाक्षारजन्यौ प्रपुनाटबीजम् ।

श्रीवैष्टक्योपविङ्गकुष्ठं पिष्ट्वा च मूत्रेण सुलेपनं स्यात् ॥

दद्रूणि सिद्धान् किटिभानि पामां कपालकुष्ठं विषमं च हन्यात् ॥ ६२ ॥

अरग्वधस्य चाणि चारणालेन लेपयेत् ।

दद्रुकिटिभकुष्ठानि हन्ति सिद्धानमेव च ॥ ६३ ॥

प्रपुनाटस्य बीजानि धात्री सर्जरसञ्जुहो ।

सौवीरपिष्टं दद्रूणामेतदुद्धर्तनं परम् ॥ ६४ ॥

स्रुद्धा रसः सालतरोस्तुपेण सचक्रमर्दोऽप्यभयाविमिश्रः ।

पानीयभक्तेन तदम्बुपिष्टो लेपः क्षतोदद्रुमृगेन्द्रसिंहः ॥ ६५ ॥

चक्रमर्दकबीजञ्च मूलकांबुप्रपेषितम् ।

दद्रुघ्नं लेपनं कुर्यात् छिद्यमूलत्वचोऽथ वा ॥ ६६ ॥

चक्रमर्दकबीजानि जीरकञ्च समांसकम् ।

स्तोत्रं सुदर्शनमूलं दद्रुकुष्ठविनाशनम् ॥ ६७ ॥

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दं कुठेरकाः काञ्चिकतक्रपिष्टाः ।

त्रिभिः प्रलेपैरपि बडमूलं दद्रुञ्च कंडूञ्च विनाशयन्ति ॥ ६८ ॥

वृषकपत्रमपि दारुणं दद्रुरोगञ्च प्रघर्षयोगेन ।

प्रशमयति तान्विचित्रं प्रागैन्द्री भवं यदि गृहितम् ॥ ६८ ॥

समूलपत्रस्तम्भस्य दृणकस्य तु घर्षणात् ।

भक्षणाद्वापि शाम्यन्ति दद्रुसिध्वविष्वर्चिकाः ॥ ७० ॥

शिखिरिरसेन तु पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध् ।

क्षारेण वा फदल्या रजनीं मित्रेण नाशयति ॥ ७१ ॥

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्पपाः सदुरालभाः ।

एतत् केशरपट्कं निहन्ति चिरकालजं सिध् ॥ ७२ ॥

इति केशरपट्कम् ।

गन्धपापाणमित्रेण यवक्षारेण लेपितम् ।

सिध्वनाशमुपैत्याशु कटुतैलयुतेन च ॥ ७३ ॥

फासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च ।

गन्धपापाणमित्राणि सिध्वानां परमौषधम् ॥ ७४ ॥

बीजं मूलकजं निम्ब पत्राणि सितसर्पपाः ।

गृहधूमश्च सपेय जलेनाङ्गं प्रलेपयेत् ॥ ७५ ॥

उद्धृत्य नवनीतेन क्षालयेदुष्णवारिणा ।

त्र्यहादनेन सिध्वानि शाम्यन्त्याशु शरीरिणाम् ॥ ७६ ॥

लाक्षाग्र्योवेष्टकं कुष्ठं हरिद्रे गौरसर्पपाः ।

व्योषं मूलकबीजानि प्रपुन्नाटफलानि ॥ ७७ ॥

एतान्यस्त्रप्रपिष्टानि कुष्ठेपूद्वर्त्तनं परम् ।

सिध्वानां किटिभानाञ्च दद्रूणाञ्च विषेपतः ॥ ७८ ॥

मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिस्रुते ।

सिद्धं ज्योतिषतोतैल मभ्यङ्गात्सिध्वनाशनम् ॥ ७९ ॥

प्रपुन्नाटार्कदुग्धाग्नि दन्तीजन्तुघ्नसैन्धवैः ।

गृहधूमनिशायुग्म सिंहोफलयुतैः समैः ॥

लेपः समस्तकुष्ठघ्नः सुप्तिवैवर्ण्यनाशनः ॥ ८० ॥

प्रलेपोद्वर्त्तनस्नान पानभोजनकर्मसु ।
 शीलितं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोषनाशनम् ॥ ८१ ॥
 दह्यमानाच्चुप्तं कुम्भे समूलखदिराद्रसम् ।
 साज्यधात्रीरसचौद्रं हन्यात् कुष्ठं रसायनम् ॥ ८२ ॥
 निम्बपत्रशतं पिष्ट्वा निम्बामलकमेव च ॥ ८३ ॥
 खेतकरवीरमूलं कुटजकरञ्जौ त्वचो दार्ढ्याः ।
 सुमनः प्रबालयुक्तो लोपः कुष्ठापहः सिद्धः ॥ ८४ ॥
 गुडूचीत्रिफलादार्वी क्वाथो मूत्रोष्णवारिभिः ।
 त्वग्दोषत्रणशोथघ्नः पीतो मासञ्च गुग्गुलुः ॥ ८५ ॥

—०—

खदिरविफलानिम्ब पटोलामृतवासकैः ।
 अष्टकोऽयं जयेत् कुष्ठं कण्डूविस्फोटकानि च ॥ ८६ ॥
 विसर्पपामाकिटिभ शीतपित्तमसूरिकाः ॥

इति खदिराष्टकम् ।

त्रिफलानिम्बपटोलं मञ्जिष्टारोहिणीबचारजनी ।
 एष कपायोऽभ्यस्तो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥ ८७ ॥

इति नवकपायः ।

निम्बैरण्डदुरालभाऽर्भकञ्चामूर्वाहरिद्रादयः ।
 चायन्तीत्रिफला पटोलदहनद्रे कामृता भार्गभिः ॥
 काकोदुम्बरिकाकरञ्जखदिरैः शाखोटसप्तच्छदैः ।
 व्याघ्रीसिंहिशिरीष वेतसकणाभूनिम्बशक्राद्वयैः ॥ ८८ ॥
 प्राप्नुवाटकवाकुची कुशजटामातङ्गकण्ठानलैः ।
 पाठापर्पटकेन्द्रवारुणी वृषादन्ती त्रिवृच्चन्दनैः ॥

मञ्जिष्टाऽऽमययासबासकटुकाराजद्रुमग्रन्थिकैः ।

तुल्यांशैः सुरभीजलेन पिबतां सिद्धं कषायं नृणाम् ॥ ८८ ॥

कडूदुस्वरपुण्डरीकलसकाः कुष्ठामयाः पापजाः ।

नश्यन्ति द्रुतमेव दारुणतराः प्रोद्धूयमानाऽनल ॥

ज्वालादग्धप्रतप्तकाञ्चनसमान्यङ्गानि राजन्ति च ।

काथोऽयं सुनिभिर्दया सुनिपुणैरुक्तो नृणां हेतवे ॥ ८९ ॥

इति निम्बादि महाकषायः ।

मञ्जिष्टारिष्टबासात्रिफलदहनकं द्वे हरिद्रे गुडूची ।

भूनिम्बो रक्तसारं खदिरकटुकावाकुची व्याधिघातः ॥

मूर्वादन्तीविशालाक्षमिरिपुजटिलात्रायमाणाः सपाठाः ।

श्यामाऽनन्ता पटोलाः समरिचमगधाः साधितोऽयं कषायः ॥ ९१ ॥

पीतो हन्याक्समस्तान् सकलतनुगतान् रक्तजान्वैविकारान् ।

कण्डूविस्फोटकादीनलसकिटभक खिन्नपामादिदोषान् ॥ ९२ ॥

इति मञ्जिष्टादि महाकषायः ।

श्यामानृता खदिरसारशिरीषशिशु

शैलेय सर्जसुरसासुरसिन्धुवारैः ।

श्यानाकरञ्जकरिकर्ण वचाविशाला

भस्मातवेतसबराहपसप्तपर्णैः ॥ ९३ ॥

काकादनीफलककेरुककण्टकारी

कण्डूकरीकुटजकेशरकर्णिकारैः ।

कर्कोटकार्ककरमर्दकदम्बनिम्ब

जवूनिशातिनिसकेशरशारिवाभिः ॥ ९४ ॥

गोधोपलानलशिलाजतुकुन्दराजी

राजीवकेशरशठीप्रपुन्नाटचूर्णम् ।

षट्पावशेषितजलं सुरभीजलेन
 काथं विधायपिवतः व्ययितेन्द्रियस्य ॥ ८५ ॥
 सर्वाङ्गसादपरिपोटनतोदभेद
 दाहव्रणस्फुटनसुप्तिं विदीर्णभावैः ।
 वैषादिकाबुदविवर्णविशीर्णकर्ण
 घ्राणांघ्रिपाणिधनधर्वरघोरनादैः ॥ ८६ ॥
 गम्भीरपाककुथितं कृमिजातपूति
 पूयास्त्रविस्तृतनुगन्धिविसन्धिदग्धम् ।
 दुर्वारदारुणमुदुम्बरकुष्ठशीथ-
 मल्पैर्दिनैः प्रशममेति महान्तमुग्रम् ॥ ८७ ॥

इत्युदयमार्त्तण्ड महाकषायः ।

पटोलखदिरारिष्टं त्रिफलाकृष्णवेचकम् ।
 तिक्ताशनः पिवन् काथं कुटीं कुष्ठाहरपोहति ॥ ८८ ॥
 काकोदुम्बरिकारिष्टं विडङ्गव्योपवासकम् ।
 कल्कं पीत्वा जयेत् कुष्ठं कुष्ठजत्वक् सितांबुना ॥ ८९ ॥
 विडङ्गं बाकुचीकृष्णा पथ्या वाराह लाङ्गलो ।
 त्रिफला सगुडा चैषां मोदकाः कुष्ठनाशकाः ॥ ९० ॥
 भवत्गुजाद्बीजकर्पं पिवेदुष्णेन वारिणा ।
 भोजनं क्षीरसर्पिभ्यां सर्वकुष्ठहरं परम् ॥ ९१ ॥
 तिलाज्यत्रिफलाक्षीद्रं व्योषभस्मातशर्कराः ।
 हृष्याः सप्तसमा मेध्याः कुष्ठहाः कामचारिणः ॥ ९२ ॥
 निबस्य स्वरसं वापि संव्यमानो यथा बलम् ।
 जीर्णं घृतान्नं भुञ्जीत स्वल्पयूपोदकेन च ॥
 अपि क्षीणशरीरोऽपि दिव्यरूपी भवेन्नरः ॥ ९३ ॥
 इन्द्राशनस्य पत्रं मधुना सितया च सर्पिषा युक्तम् ।

खादेदशेषकुटनाशकरमस्मात्परं नास्ति ॥ १०४ ॥
 अमृता बाऽभयाव्योष बन्धरुष्करवाकुची ।
 केशराजाः क्रमाहवाः कुटघ्नास्तैलपिण्डिकाः ॥ १०५ ॥
 पञ्चाह्वयां समाचीकां सस्नेहं वापि चूर्णिताम् ।
 तैलयुक्तां लिहेत् कुट मारोग्यमचिराद्भवेत् ॥ १०६ ॥

—०—

अथ कुटलेपानाह ।

विषवरुणहरिद्रा चित्रकागारधूम
 मदनमरिचमूर्वाचीरमर्कश्चुहीभ्याम् ।
 दहति पतितमात्रात् कुटजातोरशेषाः
 कुलिशमिव सरोपाच्छक्रहस्तादिमुक्तम् ॥ १०७ ॥
 चक्राङ्गधीजं स्रुक्क्षीर भावितं मूत्रसंयुतम् ।
 रवितप्तं हि किञ्चित्तु लेपनं किटिभाषणम् ॥ १०८ ॥
 पिप्पलीपूतिकायस्या कुटगोपित्तचित्रकैः ।
 लेपं मस्यक् प्रशंसन्ति किटिभग्नं चिकित्सकाः ॥ १०९ ॥
 गोमूत्रवारिमपिटैः शिलाकाशीश तुत्यकैः ।
 लेपः किटिभवीसर्प कुटनाशाय पूजितः ॥ ११० ॥
 राजिकागुडयुक्तेन सैन्धवेन प्रयोजितम् ।
 बिडालचर्मणाबद्धं नाशं चर्मदलं व्रजेत् ॥ १११ ॥
 वचयाश्चेतयानाशं याति चर्मदलं द्रुतम् ।
 लेपादिन्द्रियवैर्वापि गोमूत्रपरिपेषितैः ॥ ११२ ॥
 सलिले चाम्बपेशी तु किञ्चित्तिभ्युसमन्विता ।
 ताम्रपात्रे विनिर्घृष्टा लेपचर्मदलापहा ॥ ११३ ॥
 गैलेयकम्पिक्तकयटिकाद्वा
 सौराद्रिकासर्जरसोत्पलानि ।

शिला च चूर्णी नवनीतयुक्तः

कुष्ठे स्रवत्यऽभ्यधिकः प्रदिष्टः ॥ ११४ ॥

स्रक्काण्डे सर्षपात् कल्कः कुकूकानलपाचितः ।

लेपादिचर्चिकां हन्ति राग वेग इव त्रयाम् ॥ ११५ ॥

स्रक्काण्डे शुपिरं दध्वा गृहधूमं ससैन्धवम् ।

अन्तर्धूमं तैलयुक्तं लेपाद्वन्ति विचर्चिकाम् ॥ ११६ ॥

मधुसिक्थकसैन्धव घृतगुडमहिषाक्षसालनिर्यासम् ।

गैरिकमेतत्पक्वं पादस्फुटनापहं सिद्धम् ॥ ११७ ॥

पिष्टा जातीफलं लेपा द्विनिहन्ति विपादिकाम् ।

तद्वत्सर्जरसं शीघ्रं तिलतैलसमन्वितः ॥ ११८ ॥

नारिकेलोदके न्यस्ता स्रङ्खलाः पूतितां गताः ।

लेपादिपादिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ११९ ॥

धत्तूरबीजकल्केन माणकक्षारवारिणा ।

काटुतैलं विपक्वान्तु द्रुतं हन्यादिपादिकाम् ॥ १२० ॥

इति धत्तूरकतैलम् ।

अवलाजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुतम् ।

मणिमन्थेन तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ॥ १२१ ॥

कच्छुं कंडूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ १२२ ॥

कोमलं सिंहास्यदलं सनिशं सुरभीजलेन संपिष्टम् ।

दिवसत्रयेण नियतं शमयतिकच्छुं विलेपनतः ॥ १२३ ॥

हरिद्राकल्कसयुक्तं गोमूत्रस्य पलद्वयम् ।

पिबेन्नरः कामचारी कच्छुपामाविनाशनम् ॥ १२४ ॥

शिवाहरिद्रागुडहृद्दनानां तुल्यं विभागं मसृणं प्रपिष्व ।

संप्राश्यतोयं तदनुप्रपीयजयेद्विषणानां प्रभवं सनातनम् ॥ १२५ ॥

श्रीवासकं सर्जूरसं लोध्रं कम्पिन्नकं तथा ।

मनःशिलायवानी च गन्धपाप्राणमेव च ॥ १२६ ॥

पलिकैशूर्णितैरेतैर्दृतप्रस्थं प्रयोजयेत् ।

सूर्यांशपक्वमभ्यङ्गा क्षीरां कच्छुं व्यपीडयति ॥ १२७ ॥

इति श्रीवासष्टतम् ।

सिन्दूरगुगुलुरसाञ्जनसिक्थतुल्यैः

कल्कोक्तैश्च कटुतैलमिदं विपक्वम् ।

कच्छूं स्रवत्पिटिकिकामथवाविशुष्का-

मभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ॥ १२८ ॥

इति सिन्दूराद्यं तैलम् ।

सिन्दूरं चन्दनं मांसी विडङ्गं रजनीद्वयम् ।

प्रियंगुपद्मकं कुष्ठं मञ्जिष्ठाखदिरं वचा ॥ १२९ ॥

जात्यर्कं त्रिवृतानिम्बं करञ्जं विपमेव च ।

क्षणाचित्रकलोध्रञ्च प्रपुन्नाटं च संहरेत् ॥ ३० ॥

श्लक्ष्णपिष्टाणि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्तया ।

अभ्यङ्गेन प्रयोज्यं तत् वर्णकृत् कुष्ठनाशनम् ॥ १३१ ॥

पामां विचर्चिकां कच्छूं विषपं विपमेव च ।

रक्तपित्तोत्थितान् हन्ति रोगानेवं विधान् बहून् ।

सिन्दूराद्यमिदं तैलमग्निभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ३२ ॥

इति बृहत्सिन्दूराद्यं तैलम् ।

निशासुधारग्वधकाकमाचीपत्रैः सदावीं प्रपुन्नाटबीजैः ।

तक्त्रेण पिष्टैः कटुतैलमिश्रैः पामादिपूद्वर्त्तनमेतदिष्टम् ॥ ३३ ॥

गोशकृत् सिन्धुसयुक्तं रजनीमाचिकेण तु ।

घृष्टा प्रलेपने योज्यं पामाकच्छूविनाशनम् ॥ १३४ ॥

सैन्धवं चक्रमर्दन्तु सर्पं पिप्पलीं तथा ।
 पेपयेदारनालेन पामार्कडूविनाशनम् ॥ १३५ ॥
 मांसीचन्दनशम्याक करञ्जारिष्टसर्पपम् ।
 यष्टीकुटजदार्यब्दे हन्ति कण्डूभयं गणः ॥ १३६ ॥
 जीरकस्य पलं पिष्ट्वा सिन्दूराद्विपलं तथा ।
 कटुतैलं पचेदाभ्यां सद्यः पामाहरं परम् ।
 हृदयैद्योपदेशेन पाच्यं तैलं पलाष्टकम् ॥ १३७ ॥

—०—

अर्कपत्ररसैः पक्वां रजनीकल्कसंयुतम् ।
 कटुतैलं हरेत्तूष्णं पामाकच्छूविचर्चिकाम् ॥ १३८ ॥
 इत्यर्कतैलम् ।

त्रिफलारूपकरलोहैः सवल्लुजभृङ्गलांगलीव्योषैः ।
 सगुडैः वराहकन्दैः पलिकैरेकत्रसंमिश्रैः ॥ १३९ ॥
 गुटिकां प्रकल्पखादे देकैकामक्षसमितां प्रातः ।
 कुष्ठं दद्रुकिलासं जित्वा वर्षेण निर्वलीपलितः ॥ १४० ॥
 जीवतिवर्षशतं वै दीप्तहुताशो युवेव सोत्साहः ।

इति त्रिफलाद्यागुटिका ।

शशाङ्गलेखा सविडङ्गसारा सपिप्पलीका सहतासमूला ।
 सायोमला सामलका सतैला सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लोढा ॥ १४१ ॥
 इति शशाङ्गलेखादिलेहः ।

त्रैफलस्य तु चूर्णस्य पलानि दशपञ्चकम् ।
 सप्तचैव विडङ्गानां लोहचूर्णं पलद्वयम् ॥ १४२ ॥
 शतं भक्षातकानाञ्च पलानि दश वाकुची ।
 गिलाजतुपलाद्विं तु द्वे पले गुग्गुलोस्तथा ॥ १४३ ॥

पलं पुष्करमूलस्य पलाद्वैपलसैन्यवम् ।
 सचित्रकं समरिच पिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ १४४ ॥
 त्वक्पत्रं कुंकुमं सुस्तं कार्पिकानुपकल्पयेत् ।
 यावन्त्येतानि चूर्णानि तावत् खण्डं प्रदापयेत् ॥ १४५ ॥
 पलिकान् मोदकान् कृत्वा प्रातरुत्थाय नित्यशः ।
 एकैकं भक्षयेत् प्राज्ञो यथेष्टं चात्र भोजनम् ॥ १४६ ॥
 कुष्ठान्यष्टादशानोद्ध ह्रीहगुल्मभगन्दरान् ।
 अशोतिं वातजान् रोगां शत्वारिंश्च पौत्तिकान् ॥ १४७ ॥
 विंशतिं श्लेष्मिकांश्चैव संसृष्टान् सान्निपातिकान् ।
 शालाक्यगतरोगांश्च शिरोक्षि भ्रूगतांस्तथा ॥ १४८ ॥
 कण्ठतालुगतांश्चैव जिह्वायामुपजिह्वकाम् ।
 ऊर्ध्वजंतुगते रोगे भुक्तस्योपरिदापयेत् ॥ १४९ ॥
 शरीरे द्वापयेत् पूर्वं मौदरे मध्यभोजने ।
 निर्दिष्टरोगाच्छमयेत् क्रियमाणं रसायनम् ॥ १५० ॥

इति त्रिफलाद्यो मोदकः ।

निम्बगोपाकृष्णाकट्वी चायन्ती त्रिफला घनम् ।
 पटोलावलगुजानन्ता बचाखदिरचन्दनम् ॥ १५१ ॥
 पाठाशृण्णोशठीभांगी वासाभूनिम्बवत्सकम् ।
 श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वा विडङ्गातिविपाऽनलम् ॥ १५२ ॥
 हस्तिकर्णाश्रुताद्रेका पटोलं रजनीद्वयम् ।
 कृष्णारग्वधसप्ताह्वं शिरीषं चोच्चटाफलम् ॥ १५३ ॥
 मञ्जिष्ठांलांगुलोरास्त्रा नक्तमालं पुनर्नवा
 दन्तीबीजकसारश्च भृङ्गराजं कुटन्नटम् ॥ १५४ ॥
 अचोटकश्च शाखोटं द्विपलांशं पृथक् पृथक् ।
 गृह्णीयात्तानि सर्वाणि जलद्रोणे पचेच्छनैः ॥ १५५ ॥

अष्टभागावशेषन्तु कपायमवतारयेत् ।
 विधायवाससापूतं स्थापयेद्भाजने दृढे ॥ १५६ ॥
 भस्मातकसहस्राणि कृत्वा त्रीण्यर्मणेऽभस्मि ।
 पचेदष्टावशेषन्तु कपायमवतारयेत् ॥ १५७ ॥
 तच्च वस्त्रेण संशोध्य द्वौ कपायौ विमिश्रयेत् ।
 गुडस्य तु तुलां दत्त्वा लेहवत्तत्पचेच्छनैः ॥ १५८ ॥
 भस्मातकसहस्रस्य मज्जानं तच्च निक्षिपेत् ।
 चिकटुचिफलासुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ॥ १५९ ॥
 मैन्धवं चन्दनं कुष्ठं दीप्यकञ्च पृथक् पलम् ।
 मौगन्ध्याथं क्षिपेत्तत्र चागुर्जातं पलं पलम् ॥ १६० ॥
 महाभस्मातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ।
 प्राणिनान्तु हितार्थाय नाशयेच्छीघ्रमेव तु ॥ १६१ ॥
 श्वित्रमौदुम्बरं दद्रु मृत्तजिह्वञ्च काकणम् ।
 पुण्डरीकं स चर्मास्थं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥ १६२ ॥
 कण्डू कापालकुटञ्च पामानञ्च विपादिकाम् ।
 वातरक्तमुदावर्त्तं पाण्डुरोगं व्रणान् कृमीन् ॥ १६३ ॥
 अर्शासि पट्प्रकाराणि कामश्वासौ भगन्दरम् ।
 समाभ्यासेन पलितं मामवातं सुदुर्जयम् ॥ १६४ ॥
 निर्यन्त्रणस्तु कथितः सर्वर्तुषु च शस्यते ।
 कुरुते परमां कान्तिं प्रदोषं जठरानलम् ॥ १६५ ॥
 अनुपानं प्रयोक्तव्यं क्षिन्नात्तोयं पयोऽथवा ।
 भोजनञ्च तथा त्वाज्यं सुण्यं चास्त्रं विशेषतः ॥ १६६ ॥

इति महाभस्मातकम् ।

पिचुमन्दफलं पुष्पं त्वक् पत्रं मूलमेव च ।
 पञ्चैतानि सुसृक्ष्माणि समचूर्णानि कारयेत् ॥ १६७ ॥

अष्टभागावशेषेण खदिरासनवारिणा ।

भावयित्वा तु संयोज्य द्रव्याण्येतानि दापयेत् ॥ १६८ ॥

चित्रकोऽथ विडङ्गानि व्याधिघातकशर्कराः ।

भक्तातकहरीतक्यौ शुण्ठ्यामलकगोक्षुराः ॥ १६९ ॥

चक्रमर्दकवाकूची पिप्पलीमरिचं निशा ।

लोहचूर्णसमायुक्तं समभागं प्रमाणतः ॥ १७० ॥

भावयेद्भद्रराजेन पुनः शुष्काणि कारयेत् ।

निम्बार्धं सर्वमेतेषा मेकीकृत्य निधापयेत् ॥ १७१ ॥

बिडालपदमात्रन्तु सर्पिषा पयसाऽपि वा ।

प्रातः प्रातर्निषेवेत खदिरासनवारिणा ॥ १७२ ॥

परिहारो नचात्रास्ति पञ्चनिम्बेऽवतिष्ठति ।

मासमात्र प्रयोगेन कुष्ठं हन्ति रसायनम् ॥ १७३ ॥

त्वग्दोषं नीलिकाव्यङ्गं तथैव तिलकालकान् ।

अष्टादशविधं कुष्ठं सप्त चैव मन्त्राक्षयान् ॥

सर्वव्याधिनिर्मुक्तो जीवेद्दृश्यतं सुखी ॥ १७४ ॥

इति पञ्चनिम्बादिचूर्णम् ।

त्रिफलातिविषाकटुका निम्बकलिङ्गवचापटोलमागधिकाः ।

रजनोदयपद्ममूर्वा विशालामूनिम्बानि पलांशानि ॥ १७५ ॥

दद्याच्छिहतं त्रिगुणं चूर्णमिदं कुष्ठसुप्तिहरम् ॥

इति त्रिफलाद्यं चूर्णम् ।

पथ्यां सेन्द्रयवांसकिंशुकफलांसारकां तथाऽऽवर्त्तिनीम्

व्याधिघ्ने न च योजितां हृतभुजा सारुष्करां बाकुचीम् ।

तद्वच्च कृमिशत्रुना व्युपगतामेकैकहृदामिमां

गोमूत्रेण विमृश्य तां च सकलां कृत्वा बटीं भक्षयेत् ॥ १७६ ॥

निहन्ति हतनाशिका करजकर्णपादांगुलीः ।

धरदुधिरपूतिपूय परिजन्तु जग्धव्रणान् ।

प्रभिन्नचिरलक्षित स्वरकमाशु कुष्टं महेन्

निहन्ति कुरुते वपुस्तरुणभास्करार्चिः समम् ॥ १७७ ॥

इति पथ्याद्यो बटकः ।

निम्बं पटोलं दावीं दुरालभां तिक्तकरोहिणीं विफलाम् ।

कुर्यादईपलांशान् पर्पटकं व्यायमाणां च ॥ १७८ ॥

सलिलादकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते क्षिपित् पूते ।

चन्दनकिराततिक्तक मागधिकास्त्रायमाणा वा ॥ १७९ ॥

सुस्तं बत्सकबीजं कल्कीकृत्यार्धकार्षिकान् भागान् ।

नवसर्पिपथ पट्पलमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥ १८० ॥

कुष्टं ज्वरमेहार्शो ग्रहणीपाण्डूामयम्बयथून् हन्ति ।

पामाविसर्पिपिटिका कंडूगण्डव्रणान् सद्यः ॥ १८१ ॥

इति तिक्तपट्कं घृतम् ।

निम्बं पटोलं व्याघ्री च गुडूचीवासकं तथा ।

कुर्याद्विषपलान् भागा नैकैकस्य तु कुट्टितान् ॥ १८२ ॥

जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ।

घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ १८३ ॥

पञ्चतिक्तमिति ख्यात सर्वकुष्टविनाशनम् ।

अशीतिं वातजान् रोगां शत्वार्शश्च पैत्तिकान् ॥ १८४ ॥

विंशतिं श्लेष्मिकांश्चापि पानादेवापकर्षति ।

दुष्टव्रणक्तमीनर्शः पञ्चकासांश्च नाशयेत् ॥ १८५ ॥

इति पञ्चतिक्तकं घृतम् ।

निंबामृताह्वयपटोलनिदग्धिकानां

पक्वं घृतं क्षयितकल्कयुतं यथावत् ।

ख्यातं यथोक्तममृतं भुवि पञ्चतिक्तं

हन्यादिसर्पं विषमञ्जरपाण्डुकुष्ठान् ॥ १८६ ॥

इति द्वितीयं पञ्चतिक्तकं घृतम् ।

पटोलवत्सकातिक्तं नक्तमालसहामृताः ।

निःकाथ्य सलिलद्रोणे पलैर्विंशतिभागिकैः ॥ १८७ ॥

पादशेषे, रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

कल्कैरक्षसमैर्दारु त्रिफलाद्रूपणाग्निभिः ॥ १८८ ॥

पृथ्वीप्रतिविषापाठा चत्वेन्द्रयवदीप्यकैः ।

मूर्वाचारद्वयाजाजी बचाकृमिहरैर्युतैः ॥ १८९ ॥

कटुकासप्तपर्णाभ्यां पुरस्याष्टपलेन च ।

कुष्ठानि रक्तपित्तञ्च बीसर्पपूतिकुष्ठताम् ॥ १९० ॥

पानाग्नशमयेदेतद् गुग्गुलुः पञ्चतिक्तकः ।

सिद्धमेतेन विधिना सर्पिः प्रस्थं सगुग्गुलुम् ॥ १९१ ॥

पानाभ्यञ्जननस्येषु तच्चोक्तानाम्प्रयाहुणान् ।

इति गुग्गुलुपञ्चतिक्तकं घृतम् ।

निम्बामृतापटोलानां कण्टकार्या वृषस्य च ।

पृथग्दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १९२ ॥

त्रूपणं स्वर्जिकाचारं शतमुष्या च कार्पिका ।

गर्भं समावाप्य पचेद्गुग्गुलोः पञ्चविंशतिः ॥ १९३ ॥

पलञ्च खादयेदेतद्गुग्गुलुः पञ्चतिक्तकम् ।

विधिना हन्तिनचिरा त्वग्दोषानतिविस्तरान् ॥ १९४ ॥

विवर्णस्त्रापसंकोचं क्लेदवतीः शिरांस्तथा ।

गण्डमालार्पुदव्यङ्ग नाडीकुष्ठमगन्दरान् ॥ १९५ ॥

विषमञ्जरहृद्रोग गरदोषविषकृमीन् ।

प्रमेहासृग्दरोन्माद शोथगुल्मोदराणि च ॥

कामलापाण्डुरोगाश्च क्षिप्रमेव व्यपोहति ॥ १८६ ॥

इति गुग्गुलुपञ्चतित्तकम् ।

सप्तछदं प्रतिविषां शय्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम् ।

सुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमन्दपर्पटकान् ॥ १८७ ॥

धन्वयवासं चन्दन सुपकुल्यां पद्मकं रजन्यौ च ।

पङ्कज्यां सविशालां शतावरीं शारिवे चोमे ॥ १८८ ॥

वत्सकबीजं वासां भूर्वामभृतां किराततित्तञ्च ।

कल्कान् कुर्यान्मतिमान्यध्वाह्वं त्रायमाणाञ्च ॥ १८९ ॥

कल्कस्य चतुर्भागं जलमष्टगुणं रसोऽभृतफलानाम् ।

द्विगुणं घृतं प्रदेयं तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥ २०० ॥

कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रवालान्यर्शांसि रक्तवाहीनि ।

विसर्पमन्त्रपित्तं वातासृक् पाण्डुरोगञ्च ॥ २०१ ॥

विस्फोटकान् सपामानुन्मादान् कामलां ज्वरान् पाण्डून् ।

हृद्रोगगुल्मपिटकामसृग्दरं गण्डमालां च ॥ २०२ ॥

हृन्वादेतत्सद्यः पीतं काले यथा बलं सर्पिः ।

योगशतैरप्यजितान्महाविकारान् जयेन्महातित्तम् ॥ २०३ ॥

इति महातित्तकं घृतम् ।

वासागुडूचीत्रिफलापटोल करञ्जनिंवासनकुष्टवेतम् ।

तत्क्वाथकल्केन घृतं विपक्वं तद्वज्रकं कुष्टहरं प्रदिष्टम् ॥ २०४ ॥

विशीर्णकर्णागुलिहस्तपादः कम्पादितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यः ।

पौराणिकीं कान्तिमवाप्य जीवेदश्याधिको वर्षशतं च कुष्टी ॥ २०५ ॥

इति बज्रकं घृतम् ।

वासागुडूचीत्रिफलापटोल निदग्धिकानिबकरञ्जतोये ।

वासादिकल्केन तु सिद्धमेतदू घृतं महाबज्रकमादिशन्ति ॥ २०६ ॥

तन्मासमात्रञ्च निषेव्यमाणो हिताशनो नातिचिरेण कुष्टी ।
 विशोर्णकर्णागुलिनासिकोऽपि भवेत्संपूर्णतनुः शरीरो ॥ २०७ ॥
 उदीर्णवेगानपि च प्रमेहांश्चिरप्रवृत्तान्विषमज्वरांश्च ।
 तदेव सर्पिः भुजनैः प्रयुक्तं विजित्य कुष्टं बलमादधाति ॥ २०८ ॥
 इति महावच्यकं दृष्टम् ।

खदिरारग्वधव्योष त्रिवृद्धन्तो सचित्रकम् ।
 पटेलत्रिफलारिष्ट हरिद्रावाकुचीफलम् ॥ २०९ ॥
 कटुकातिविपापाठा त्रायन्ती धन्वयासकम् ।
 कुष्टं करञ्जबीजानि शारिवे द्वे सवत्सके ॥ २१० ॥
 भस्मातकविडङ्गानि गुग्गुलीः कल्कसंयुतम् ।
 पञ्चतिक्तकपायेण सर्पिः सिद्धं पिबेन्नरः ॥ २११ ॥
 विषविसर्पविस्फोट कंडूकुष्टव्रणानि च ।
 दद्रूकिटिभकुष्ठानि गलगण्डविचर्चिकाः ॥ २१२ ॥
 पानतः शमयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥

इति खदिराद्यं दृष्टम् ।

खदिरस्य तु तुलाः पञ्चशिशिपासनयोस्तुले ।
 तुलाद्वं सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः ॥ २१३ ॥
 पर्पटं कुटजं चैव हृषः कूर्मिहरस्तथा ।
 हरिद्रे कृतमालञ्च गुडूचीत्रिफलात्रिवृत् ॥ २१४ ॥
 सप्तपर्णे च सकुट्य चतुर्द्रोणेन वारिणा ।
 पक्वा कषायं संगृह्य चतुर्भागावशेषितम् ॥ २१५ ॥
 तेन क्वाथेन कुशलो दृष्टस्यार्द्धादृक् पचेत् ।
 कल्कैः कृतैर्महातिकैर्द्रव्यैरर्द्धपलोमितैः ॥ २१६ ॥
 महाखदिरमेतद्धि कुष्ठिनामुत्तमं दृष्टम् ।

अष्टादशविधं कुष्ठं पानादेव व्यपोहति ॥ २१७ ॥

इति महाखदिरवृत्तम् ।

मेपशृङ्गीश्वदंष्ट्रा शार्ङ्ग^१ष्टागुडूचोसिद्धं कृतम् ।

तैलमिदं कुष्ठिनां पानाभ्यङ्गयोर्विदधीत ॥ २१८ ॥

इति मेपशृङ्गाद्यं तैलम् ।

सप्तपर्णकरञ्जार्कं मालतीकरवीरजम् ।

मूलं स्रुहीशिरोपाभ्यां चित्रकास्फोटयोरपि ॥ २१९ ॥

करञ्जबीजं त्रिफला त्रिकटुरजनोदयम् ।

सिद्धार्थकं विडङ्गानि प्रपुत्राटच्च संहरेत् ॥ २२० ॥

मूत्रपिष्टेः पचेत्तैल मेभिः कुष्ठविनाशनम् ।

अभ्यङ्गादञ्जकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ २२१ ॥

इति बञ्जकं तैलम् ।

एरण्डतार्क्ष्यवननीपकदंवभार्गी

कम्पिलवेष्टफलिनी सुरवारुणोभिः ।

निर्गुण्डीपुष्करसुगन्धयस्वर्णदुग्धी

श्रीवेष्टगुग्गु, लुशिलाहरितालमिश्रैः ॥ २२२ ॥

तुल्यैस्त्वर्गकदुग्धैः सिद्धं तैलं महाबञ्जम् ।

अतिशयितबञ्जकगुणं श्लिचार्शी ग्रन्थिमालाघ्नम् ॥ २२३ ॥

इति महाबञ्जकं तैलम् ।

चतुर्गुणे वृणरसे कटुतैलं विपाचयेत् ।

मञ्जिष्टारुद्रिशा चक्रमर्दारम्बधपल्लवैः ॥ २२४ ॥

एतत्किदाग्निना साध्यं वर्णदं कान्तिदायकम् ।

अष्टादशसु कुष्ठेषु शस्यते गात्रम्वक्षणात् ॥

दद्रुं विचर्चिकां पामां हन्ति सिध्दं विशेषतः ॥ २२५ ॥

इति वृणतैलम् ।

दावीविड्गं हयमारमूलं श्यामा च मूलं कृतमालकस्य ।

कुसुम्भहेमोत्पलकासमर्दशिरोपयष्टोद्वयगन्धसिद्धाः ॥ २२६ ॥

निवं वचाचन्दनपद्मकं च कुष्ठं निशामैन्धवचक्रमर्दाः ।

मञ्जिष्टामांसो सुरदारुलाक्षामिद्वार्यकं वाकुचिवीजमूर्वे ॥ २२७ ॥

गायत्रिमारं सुरसापटोलं यवानिकावीजकरञ्जवीजम् ।

द्रव्यैः समस्तैर्विधिना विपक्वं कर्षप्रमाणैः परिकीर्तितैश्च ॥ २२८ ॥

प्रस्थं च तैलं सितसर्पपानां दत्त्वा रसं षड्गुणकं वृणस्य ।

शनैः पचेत्ताम्रमये कटाहे उद्धृत्यतैलं परिपाच्यमानम् ॥ २२९ ॥

पीत्वाथवा नस्य विधौ प्रयोज्यं मिध्दं महादद्रुकिलासकुष्ठम् ।

विचर्चिकाव्यगविसर्पपामाः निहन्ति नूनं कुथितं समस्तम् ॥ २३० ॥

विभर्त्तिरूपं कमनीयमन्यै र्घणं तथा कान्तिकरं मनुष्यम् ॥

इति वृहत्तृणतैलम् ।

मरिचालशिलाह्वार्कं पयोऽश्वारिजटात्रिवृत् ।

शक्रद्रसविशालारुड्निशायुगदारुचन्दनैः ॥ २३१ ॥

कटुतैलं पचेत्प्रस्थं क्षत्रैर्विपपलान्वितैः ।

सगोमूत्रैस्तदभ्यङ्गा इष्टकुष्ठैर्विनाशनम् ।

सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतद्व्यशस्यते ॥ २३२ ॥

इति मरिचाद्यं तैलम् ।

मरिचं त्रिवृतादन्तो क्षीरमार्कं शक्रद्रमः ।

देवदारुहरिद्रे द्वे मांसीकुष्ठं सचन्दनम् ॥ २३३ ॥

विशालाकरवीरश्च हरितालं मनःशिला ।

चित्रको लाङ्गलीलाक्षा विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ २३४ ॥

शिरीषं कुटजो निम्बं सप्तपर्णञ्चुहामृता ।

शम्याको नक्तमालोऽब्द खदिरो बाकुचीवचा ॥ २३५ ॥

ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपल भवेत् ।

आढक कटुतैलस्य गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥ २३६ ॥

मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृदग्निना पचेत् ।

हन्यात्तैलवरं ह्येतत्प्रलेपात् कौष्ठिकान् व्रणान् ॥ २३७ ॥

पामाविचर्चिकाकडू दद्रुविस्फोटकानि च ।

बलयः पलितः छाया नीलोव्यगः तथैव च ॥ २३८ ॥

अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यञ्च जायते ।

प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्य प्रदीयते ।

जरामप्यजरा प्राप्य न स्तनायान्ति नम्रताम् ॥ २३९ ॥

इति वृहन्मरिचाद्य तैलम् ।

मरिचः पिप्पलीकुष्ठं मर्कट्क्षीरं शकट्रम ।

देवदारुहरिद्रे द्वे मासीलोहितचन्दनम् ॥ २४० ॥

विशालाकरवीरञ्च हरितालं मनःशिला ।

एतैरर्द्धपलैर्भागैः गृहीतैः श्लक्ष्णपिष्टितैः ॥ २४१ ॥

कटुतैलस्य च प्रस्य गोमूत्रं स्याच्चतुर्गुणम् ।

मृद्भाण्डे लोहभाण्डे वा शनैर्मृदग्निना पचेत् ॥ २४२ ॥

तत्तैलं मधुपर्णीभ्यां निषण्णमवतारयेत् ।

एतेनैवोपशम्यन्ति कीमला त्वक् प्रजायते ॥ २४३ ॥

प्रस्थितानि च श्लिवाणि तैलेनानेन स्रक्ष्येत ।

अपि त्रिवापिकं श्लिखं शमः नयति तत्तत्क्षणात् ॥ २४४ ॥

बलोवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वा व्याधिपीडितः ।

त्रिभिर्वस्तिभिरत्यर्थं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ २४५ ॥

यासाञ्च दीयते नस्य स्त्रीणां प्रथमयौवने ।

जरासमयमासाद्य स्ननानो यान्ति विक्रयम् ॥ २४६ ॥

पुरुषस्यापि यस्येद दीयते नस्यकर्म्मणि ।

योजनानि ब्रजत्यष्टौ यमं नाप्नोत्यसौ पथि ॥ २४७ ॥

अष्टादशानां कुष्ठानां तैलमेतद्विनाशनम् ।

इति मरिचाद्यं तैलम् ।

गुडूचीदारुकुष्ठञ्च शृङ्गवेरं पुनर्नवा ।

रास्त्रावलामातुलुङ्गं त्रिफलांश्च पृथक् पृथक् ॥ १४८ ॥

जलद्रोणे समावाप्य पादशेष ममुद्धरेत् ।

विपाच्य तद्रसं गृह्य कल्कानेतान् प्रदापयेत् ॥ २४९ ॥

मरिचं त्रिफलां दन्ती मर्कचीरं शृङ्गद्रसः ।

दारुकुष्ठं हरिद्रे द्वे लोममीरुक्तचन्दनम् ॥ २५० ॥

एतेषां पलिकान् भागान् विपस्याद्वैपलं भवेत् ।

गोमूत्रे पेपित सर्वं सुसूक्ष्मन्तु समाचरेत् ॥ २५१ ॥

कटुतैलपलं त्रिंशच्छनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।

एतन्नस्यं प्रदातव्यं सर्वरोगापह शुभम् ॥ २५२ ॥

दन्तरोगेषु सर्वेषु शिरोरोगे गलगर्हे ।

पूतिनाशे पूतिमुखे तथैवाक्षावभेदके ॥

गलगण्डे मुखश्चङ्गे तथैव कर्कशत्वचि ॥ २५३ ॥

प्रथमे बयसि स्त्रीणां नस्यं देयं यथा विधिः ।

न पतन्ति स्तनास्तासां सौकुमार्यञ्च जायते ॥ २५४ ॥

पुरुषस्याथवा नस्यं दीयते यस्य कस्य चित् ।

स याति योजनान्यष्टौ न यमं मन्यते क्वचित् ॥ २५५ ॥

दद्रुषिदिभकुष्ठानि मण्डलानि विचर्चिकाः ।

स्वचणादेव शाम्यन्ति ये च शाखाययोगदाः ॥ २५६ ॥

वातभग्नस्तुरङ्गे वा हृषो वा वायुपीडितः ।

बातामयाभिभूतो यः पुरुषो मन्दगोपि वा ॥
 बलवेगो भवेत्तेषां वस्त्रिभिर्य त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २५७ ॥
 शीर्णकर्णांगुलीघ्राणः पिवेदग्निबलेन यः ।
 न विकारं तथा तस्य भवेद्देहः पुनर्नवः ॥ २५८ ॥

इति महामरिचाद्य तैलम् ।

नक्तमालं हरिद्रे द्वे चार्कं तगरमेव च ।
 करवीरं वचाकुष्ठ मास्फोट रक्तचन्दनम् ॥ २५९ ॥
 मालती सप्तपर्णञ्च मञ्जिष्ठासिन्दुवारकम् ।
 एषामर्धपलान् भागान् विषस्यापि पलं भवेत् ॥ २६० ॥
 चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २६१ ॥
 श्वित्रविस्फोटकिटिभ कीटलूताविचर्चिकाः ।
 कण्डूकच्छूविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः ॥ २६२ ॥
 विषतैलमिदं नाम सर्वव्रणविशोधनम् ॥

इति विषतैलम् ।

सोमराजिहरिद्रे द्वे सर्पपारम्बधं गदम् ।
 करञ्जैडगजाबीजं गर्भं दत्त्वा विपाचयेत् ॥ २६३ ॥
 तैलं सर्पपसंभूतं नाडीदुष्टव्रणपहम् ।
 अनेनाशु प्रशाम्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥ २६४ ॥
 नीलिकापिडिकाव्यगं गम्भीरं वातशोणितम् ।
 कण्डून्धच्छप्रशमनं कच्छूपामाविनाशनम् ॥ २६५ ॥

इति सोमराजीतैलम् ।

श्वेतकरवीरमूलं विपांशुसाधितं गवां मूत्रे ।
 चर्मदलसिद्धपामाविस्फोट किटिभजितैलम् ॥ २६६ ॥
 इति श्वेतकरवीराद्य तैलम् ।

गण्डीरिकाचित्रकामार्कवार्ककुष्ठद्वमत्वक्लवणैः समूत्रैः ।

तैलं पचेन्मण्डलदट्टकुष्ठदुष्टत्रणारुकिटिभापहारि ॥ २६७ ॥

इति गण्डीराद्यं तैलम् ।

स्रुहोक्षीरं विडंगानि अर्कक्षीरं च लांगली ।

बलापलाशबीजानि कोशातक्योऽथ पिप्पली ॥ २६८ ॥

सिद्धं तैलन्तु गोमूत्रं कुष्ठानां नाशन परम् ।

घामापहरणं प्रोक्तं पूयघ्नं व्रणरोपणम् ॥ २६९ ॥

स्रुहाद्यं तैलम् ।

खदिरकपायद्रोणं कुम्भे घृतभाविते समावाप्य ।

प्रचेष्ट्याः पृथक् पलिकाः सर्वास्तु घूर्णितास्तस्मिन् ॥ २७० ॥

त्रिफलात्रिकटुकरजनी सुस्तारुष्करविडङ्गवाकुचिकाः ।

सुवर्णत्वक् क्षिप्ररुहा धातकी मधुशतपलं मासम् ॥ २७१ ॥

विदधीतधान्यमध्ये प्रातः प्रातः पिवेत्ततो युक्त्या ।

मासेन महाकुष्ठं हन्यनल्पञ्च पचेणार्शः ॥ २७२ ॥

श्वासभगन्दरकासकिलासप्रमेहशोफांश्च ।

स भवति कनकवर्णः पीत्वारिष्टं कनकविन्दुञ्च ॥ २७३ ॥

इति कनकविन्दुनामारिष्टः ।

पचात्पचाच्छर्दनान्यभ्युपेया न्मासान्मासाच्छोधनं चाप्यधस्तात् ।

व्रहाक्षयहानस्यनिष्टीवनञ्च मासेष्वष्टशोचयेत् षट्सु षट्सु ॥ २७४ ॥

शालिपट्टिकगोधूमं यवमुद्गादयो हिताः ।

पुराणाः कुष्ठिना तित्थं शकं जङ्गलसंयुतम् ॥ २७५ ॥

नीचरोमनखो यस्तु नित्यमीषधतत्परः ।

योपिन्मांससुरावर्जी कुंटीकुष्ठादपोहति ॥ ७६ ॥

इति कुष्ठनिदानचिकित्सा ।

अथ श्वित्रचिकित्साभाह ।

श्वित्रिणो हृतदोषस्य हृतरक्तस्य वाऽसक्तत् ।

खदिरांबुयवान्नानां वृक्षस्य मलयूरसः ।

सगुडः शस्यते पाने यवागूमण्डभोजिनः ॥ २७७ ॥

अशुद्धे तत्र ये स्फोटा जायन्ते तांश्च कण्टकैः ।

भित्वा लैपैः प्रदेहैस्तान् चाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ॥ २७८ ॥

खदिरामलककपायं वाकुचीबीजान्वितं पिवेन्नित्यम् ।

शङ्खेन्दुकुन्दधवलं श्वित्रं हन्तीह तच्छीघ्रम् ॥ २७९ ॥

कुड्मवमवल्गुजबीजं हरितालचतुर्थभागसंमिश्रम् ।

मनःशिलातोतनकार्क्षं गुञ्जाफलमग्निमूलञ्च ॥

गोमूत्रेण च पिष्टं सवर्णकरणं परं श्वित्रे ॥ २८० ॥

दग्ध्वा च गोः शक्यत् चारं तन्मूत्रेणैव गालितम् ।

प्रक्षितं बर्हिं पित्ताक्षं सद्यः सावर्ण्यमाप्नुयात् ॥ २८१ ॥

श्वेतकुष्ठं ब्रजत्यस्तं पक्षार्धेनाधिकेन वा ।

गिरिकर्णास्तु कृष्णायाः मूलेन परिलेपितम् ॥ २८२ ॥

कुनटीशिखिपित्तेन भस्मवातालकोद्भवम् ।

गजदर्पेण मालत्याः चारो वा श्वित्रनाशनः ॥ २८३ ॥

शुगर्कजातीपूतीकसुवर्णहरिपल्लवाः ।

मूत्रपिष्टाः प्रलेपेन श्वित्रदद्गुणहृदिदः ॥ २८४ ॥

शुनोस्थिकदलीभस्म काकस्य विड्प्रलेपतः ।

श्वित्रमुग्रं निहन्त्येतत् चत्वारिंशद्दिनैश्चिकित्स ॥ २८५ ॥

समनःशिलाविड्ङ्गं कासीसरोचना फनकपुष्पी च ।

श्वित्राणां प्रशमार्थं ससैन्धवं लेपनं दद्यात् ॥ २८६ ॥

अथोरजः कृष्णतिलाञ्जनानि सावल्गुजान्यामलकानि दग्ध्वा ।

पिष्टानि मृद्वस्य सकृद्रसेन हन्यात्किलासं परिष्टयलेपात् ॥ १८७ ॥

दीप्तीकुरण्टस्य सितस्य पुष्पमादित्यवह्नाञ्जनवह्निनीली ।

पुष्पानि तेषां खरसं प्रपीड्य तक्षोहचूर्णाञ्जनसंप्रयुक्तम् ॥ १८८ ॥

विष्टयपूर्वं सकलान् व्रणान्सु

ततः प्रयोगेन पुनः प्रलिम्पेत् ।

सितानि रोमाणि निहन्ति शीघ्रं

क्षणानि कुर्यादपि योगकोऽयम् ॥ १८९ ॥

कपोतवंकालशुनस्य शीघ्रं ससैन्यवं चित्रकमूलमिश्रम् ।

ततश्च तेषां खरसेन मिश्रं व्रणप्रलेपाञ्जननं हि रोम्नाम् ॥ १९० ॥

कटुकालाबुमव्योप हिंस्रार्कहयमारकाः ।

कुष्ठं बल्लुजभक्षात स्रुहीमूलानि सर्षपाः ॥ १९१ ॥

विल्वकारिष्टपीलूनां पत्राण्यारग्वधस्य च ।

त्रिफलासुस्तजीमूत विशालामूत्रपेपितः ॥ १९२ ॥

गोगजाश्वजमूत्राणां मादकं त्वादकं पचेत् ।

स्रुश्चार्कचारकुडवं तैलं युक्त्या प्रदापयेत् ॥ १९३ ॥

पचेद्दार्वीप्रलेपन्तु घृष्टा कुष्टानि लेपयेत् ।

स्त्रिवाणि द्विप्रलिप्तानि यान्ति नाशमशेषतः ॥ १९४ ॥

इति कटुकादिप्रलेपः ।

खदिरस्य पलान्यष्टौ सोमराण्याः पलद्वयम् ।

जलादकद्वये सार्धं यावत्पादावशेषितम् ॥ १९५ ॥

काप्यमानश्च मृद्वग्नौ घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

चतुष्पलं सोमराण्याः खदिरस्य पलं भिषक् ॥ १९६ ॥

पटोलमूलं त्रिफलां चायमाणां दुरालभाम् ।

कल्कार्यं योजयेदेतान् कार्पिकान् श्लक्ष्णपेपितान् ॥ १९७ ॥

पलद्वयं कौशिकस्य शुद्धस्याच प्रदापयेत् ।

सिद्धं सर्पिरिदं नश्येत् श्वित्रमन्त्र इवानलम् ॥ २९८ ॥

अष्टादशानां कुष्ठानां परमं भेषजं मतम् ।

आमवातापतन्वाणां पांडुप्रदरशोपिणाम् ॥ २९९ ॥

किलासघ्नं च कंडूघ्नं दीपनं पाचनं तथा ।

सोमराजीघृतं नाम निर्मितं ब्रह्मणा पुरा ॥ ३०० ॥

इति सोमराजीघृतम् ।

त्रिफलादृकं तथा प्रस्था वऽयसो रजसो मती ।

वायसीकाकमाचीभ्यां द्वे तुले शङ्खिनीतुला ॥ ३०१ ॥

द्विद्रोणेऽपां पचेदेतत् पादभागावशिषितम् ।

घृतप्रस्थं तु विपचेद् गर्भं चैतत्ससाचरेत् ॥ ३०२ ॥

वरुणं वत्सकफलं व्रूषणं देवदारु च ।

निदग्धिकां भृङ्गराजं पारावतपदीमपि ॥ ३०३ ॥

नीलकं नाम विख्यातं घृतं कुष्टविनाशनम् ।

श्वित्राणि रक्षयेच्चैतत् पानाभ्यञ्जनयोजितम् ॥ ३०४ ॥

पामाविचर्चिकासिध्नाः किटभानि च नाशयेत् ॥

इति नीलीघृतम् ।

आरग्वधं वायसी च सुरसा मदयन्तिकी ।

एकैकस्य तुलादेया त्रैफलं चादृकद्वयम् ॥ ३०५ ॥

दन्तीदारुहरिद्रा च कुडवं वरुणत्वचम् ।

चित्रकं चार्कमूलञ्च काकमाचीनिदग्धिका ॥ ३०६ ॥

एषां दशपलान् भागां चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।

अष्टभागावशिष्टन्तु पूतं पुनरधिश्येत् ॥ ३०७ ॥

दधिसर्पिश्च दुग्धं च गोमूत्रं च शक्नुद्रसम् ।

आदृकादृकमेतेषां गर्भं चैनं समावपेत् ॥ ३०८ ॥

अवलगुजं सकटुकं नक्तमालफलानि च ।
 त्रिफलाचित्रको दन्ती सुस्तं कटुकरोहिणी ॥ ३०८ ॥
 पिचुमन्दस्य शिग्रोश्च मंगुदस्य फलानि च ।
 किराततिक्तकं श्यामा नीलिनीनीलमुत्पलम् ॥ ३१० ॥
 एतैः सिद्धं घृतं स्राव्यं पाययेत् श्वित्ररोगिणाम् ।
 महानीलमिति ख्यातं मेतश्चित्रहरं परम् ॥ ३११ ॥
 भगन्दरं तथार्शांसि क्षुमिनपि विनाशयेत् ।
 अष्टादशानां कुष्ठानां सर्पिरेतच्चिकित्सितम् ॥ ३१२ ॥
 अथर्वविहिते दीप्ते ब्रह्मदण्ड इवाशनिः ।
 विशेषतश्च श्वित्राणि रञ्जयेच्च भिन्नतिष्ठ ।
 प्रयोगतः सेव्यमानं पानेनाभ्यञ्जनेन च ॥ ३१३ ॥

इति महानीलीघृतम् ।

मयूरकचारजले मसकत्वः परिश्रुते ।
 सिद्धं ज्योतिषतीतैल मभ्यङ्गाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ३१४ ॥
 इति ज्योतिषतीतैलम् ।

कुष्ठाधिकारनिर्दिष्टं विषतैलमिहोच्यते ॥

इति वङ्गसेने कुष्ठश्चित्रनिदानचिकित्साधिकारः
 समाप्तः ॥ ५७ ॥

—०—

अथोद्दंशीतपित्तकोठनिदानमाह ।

शीतमारुतमंस्पर्शात् प्रदुष्टौ कफमारुतो ।
 पित्तेन सह संभूय वह्निरन्तर्धिसर्पतः ॥ १ ॥
 पिपासरुचिह्नसास देहसादाङ्गगौरवम् ।

रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥
 वरटीदृष्टसंस्थानः शोफः सञ्जायते बहिः ।
 सकण्डूतोदवहुल छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥
 उदरदमिति तं विद्या च्छीतपित्तमथापरे ।
 वाताधिकं शीतपित्तमुदरदस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥
 सोत्संगैश्च सरोगैश्च कण्डूमङ्गिश्च मण्डलैः ।
 शैशिरः कफजो व्याधिरुदरदः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥
 असम्यग्बमनोदीर्णं पित्तश्लेष्मान्नविग्रहैः ।
 मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ॥
 उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अत्राशु वमनं कार्यं पटोलारिष्टवासकैः ।
 त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते ॥ ७ ॥
 त्रिफलाक्षौद्रसंयुक्तां पिवेद्वा नवकार्षिकम् ।
 विसर्पौक्तममृतादिभिपगत्वापि योजयेत् ॥ ८ ॥
 सितां त्रिकटुसंयुक्तां गुड़मामलकैः सह ।
 यवानीं पाययेत्त्रापि सव्योषचारसंयुताम् ॥ ९ ॥
 रास्त्रादेवाह्वत्रिफलां साश्वगन्धां शतावरीम् ।
 यवानीं हिङ्गुसंयुक्तां मुदरदविनिवृत्तये ॥ १० ॥
 प्रियालं तिल्वकं कोलं खदिरः खदिरासनः ।
 संसर्पार्थं रिमेदा च गणोऽयं स्यादुदरदहा ॥ ११ ॥
 सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्करः ।
 तस्य नश्यति समाहा दुदरदः सर्वदेहजः ॥ १२ ॥

सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुन्नाटतिलैः सदा ।

कटुतैलेन संमिश्र मृतदुद्धर्त्तनं परम् ॥ १३ ॥

इति सिद्धार्थकाद्युर्त्तनम् ।

आर्द्रकस्वरसः पेयः पुराणगुडसंयुतः ।

शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वक्त्रिमान्धविनाशनः ॥ १४ ॥

क्षीरस्विन्नानि काश्मर्याः फलान्यश्नज्जिताशनः ।

क्वमिदद्रुहराण्येव शीतपित्ते प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥

घृतं पीत्वा महातिक्तं शोणितं मोक्षयेत्तथा ।

सिग्धस्विन्नस्य संशुद्धि मादौ कोठे समाचरेत् ॥ १६ ॥

मर्वतः शुद्धदेहस्य कुष्टघ्नीं कारयेत् क्रियाम् ।

कुष्टोक्ताश्च क्रियां कुर्यात् टम्बपित्तघ्नमेव च ॥

उदरार्त्तां क्रियां वापि कोठरोगे समासतः ॥ १७ ॥

निम्बम्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रोविमियाण्यथवोपयुक्तमात् ।

विस्फोटकण्डूक्वमिश्रीतपित्तमुदरदकोठी च कफश्च हन्यात् ॥ १८ ॥

कुष्टं हरिद्रासुरसापटोलं निम्बाश्वगन्धासुरदारुशिशु ।

ससर्पपं तुम्बुरुधान्यचव्यमिमानी चूर्णानि समानि कुर्यात् ॥ १९ ॥

तत्तक्रपिष्टं प्रथमं शरीरं तैलाक्तमुद्धर्त्तयुतं यतेत ।

ततोऽप्यं कंडूपिटिका सगोपकुष्टानि शोथाश्च शमं व्रजन्ति ॥ २० ॥

तैलप्योद्धर्त्तने योगे योज्योराज्यादिको गणः ॥ २१ ॥

इति वङ्गसेन उदरार्थशीतपित्तकोठनिदानचिकित्सा-

धिकारः समाप्तः ॥ ५८ ॥

—०—

अधाम्लपित्तनिदानमाह ।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ।

पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदस्त्वपित्तं प्रदन्ति सन्त ॥ १ ॥

अविपाककृमोऽक्षेति तित्ताम्नोद्गारगौरवै ।

हृत्कण्ठदाहारुचिभि चास्त्वपित्तं वदेद्बुध ॥ २ ॥

तड्दाहमूर्च्छा भ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ।

हृत्तासकोष्ठानलसादहर्षस्वेदाद्गपीतत्वकर कदाचित् ॥ ३ ॥

बात हरित्पीतकनीलकण्ठं मारुतारक्ताभमतीव चास्त्वम् ।

मासोदकाभ त्वतिपिच्छलाभ श्लेष्मानुजात विविध रसेन ॥ ४ ॥

भुक्ते विदग्धेऽप्ययवाप्य भुक्ते करोति तित्ताम्नवमि कदाचित् ।

उद्गारमेवविधमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाह शिरोरुजश्च ॥ ५ ॥

करचरणदाहमौण्य महतीमरुची ज्वरश्च कफपित्तम् ।

जनयतिकंडूमण्डलपिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥

रोगोऽयमस्त्वपित्ताख्यो यत्नात् ससाध्यते नव ।

चिरोत्थितो भवेद्याप्य कच्छसाध्य सकस्यचित् ॥ ७ ॥

सानिल सानिलकफ सकफं तच्चलचयेत् ।

दोषलिङ्गेन मतिमान् भिषग्मोहकर हि तत् ॥ ८ ॥

कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि ।

तमसो दर्शनविभ्रम हर्षणमोहाश्च बातयुते ॥ ९ ॥

कफनिष्टीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपा ।

दहनत्रलसाटकडूनिद्राचिह्न कफानुगते ॥ १० ॥

उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यन्त्रे ॥ ११ ॥

तित्ताम्नकटुकोद्गारवमिहृत्कण्ठदाहकृत् ।

तमो मूर्च्छारुचिच्छर्दिरालस्यश्च शिरोरुजा ॥

प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ।
 कारयेन्मदनचौद्र सिन्धुयुक्तं ततो भिषक् ॥ १३ ॥
 विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ॥ १४ ॥
 सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्थानुवासनम् ।
 आस्थापन चिरोद्भूते देय दोषान्वपेक्षया ॥ १५ ॥
 तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं वापि प्रयोजयेत् ।
 यवगोधूमविकृतौ तीक्ष्णसस्कारवर्जिताः ।
 यथास्वं लाजशक्तून्वा सितामधुयुतान् पिवेत् ॥ १६ ॥
 पूतीकरञ्जशुद्धानि घृतभृष्टानि रोगिणे ।
 निवेद्य भोजने कार्यं वमन कोष्णवारिणा ॥ १७ ॥
 थलम मूर्च्छितं तस्य सुखं निर्द्ध्यते यतः ।
 अरोचकस्य वैरस्य व्रणकण्ठोपलेपनात् ॥ १८ ॥
 ह्यहादवैव वमनं प्रकुर्याद्योगविद्वरः ।
 धारयेत् कवलानिष्टान् पित्तहानतिरोचकान् ।
 भ्रष्टान् कलायानथवा मसुरान् वा प्रकल्पयेत् ॥ १९ ॥
 ऊर्ध्वगं वमनैर्धोमात्रधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ २० ॥
 वमने शोधने जाते यदि दोषो न शाम्यति ।
 तदा वै शिशिरा लेपा अमृक्स्त्रावद्य युक्तितः ॥ २१ ॥
 कम्पप्रलापमूर्च्छाङ्ग दाहदृष्ट्यामपित्तिनः ।
 वातप्रकोप दृष्ट्याश्च रक्तन् शोधनमाचरेत् ॥ २२ ॥
 चित्रकैरण्डमूलानि यवाद्य सयवासकाः ।
 जलेन कथितं शीतं कोष्ठदाहरुजापहम् ॥ २३ ॥
 अभयापिप्पलीद्राक्षा सिताधन्वयवासकम् ।

मधुना कण्ठदाहघ्न मन्त्रपित्तहरं परम् ॥ २४ ॥

निस्तूपयवधात्री च त्रिगन्धं कथितं पिवेत् ।

चौद्रयुक्तं निहन्त्याशु हृदिं पित्ताम्लसम्भवाम् ॥ २५ ॥

क्षित्रोद्भवा निम्बपटोलपत्रं फलत्रिकं सुकथितं सुशीतम् ।

चौद्रान्वितं पित्तमनेकरूपं सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तम् ॥ २६ ॥

अमृतानागरसुस्त किरातसमभागसाधितं यत्तोयम् ।

दारुणं तदम्लपित्तं जयत्यवश्यं नृणां सद्यः ॥ २७ ॥

पटोलगुण्ठीयवपिप्पलीनां काथं पिवेन्माक्षिकसंप्रयुक्तम् ।

तदम्लपित्तं विनिहन्ति शूलमग्नेयं हृदिं भुजयोर्वलञ्च ॥ २८ ॥

वामामृतापर्पटकं निम्बभूनिम्बमार्कपैः ।

त्रिफला कुलकैः काथः सचौद्रयाम्लपित्तहा ॥ २९ ॥

इति दशाङ्गकायः ।

हिङ्गु च कनकफलानि चिञ्चात्वचो घृतश्च पुटदग्धम् ।

शमयति तदम्लपित्तं मन्त्रभुजो यथोत्तरं द्विगुणम् ॥ ३० ॥

एलापटोलघनचन्दनधान्यधात्री

वांशीवराङ्गदलनागकणाभयाभिः ।

सेहः सितान्यमधुभिः सितया च पिण्डी

मम्यक् कृता शुभदिनेन सुमन्त्रपूता ॥ ३१ ॥

हन्त्यम्लपित्तबमनारुचिदाहमोह

खालित्यमेहतिमिरप्रतशुक्रदोषान् ।

भुक्ता नरः सततमामलकीरसेन

वृद्धोऽप्यनेन सुभवेत्तरुणोरिरं सु^१ ॥ ३२ ॥

यवकण्टपटोलानां काथं चौद्रयुतं पिवेत् ।

नामयेदम्लपित्तश्च ह्यरुचिश्च वमिन्तथा ॥ ३३ ॥

वासानिम्बपटोलत्रिफलासनयासयोजितो जयति ।

अधककफमम्लपित्तं प्रयोजितो गुग्गुलुः क्रमशः ॥ ३४ ॥

इति वासादिगुग्गुलुः ।

त्रिकटुकसुकण्टकारोपपटकारिष्टकुटजबीजानाम् ।

सौराद्रिकापटोलत्रायन्तीदारुमूर्वाणाम् ॥ ३५ ॥

तिक्तामृणालमलयज कलिङ्गकैलाकिराततिक्तानाम् ।

सवचातिविपाकेशरदीप्यकमधुशिशुबीजानाम् ॥ ३६ ॥

चूर्णं षटष्टमिदं पीतं शिशिरेण वारिणा प्रातः ।

लोढं चौद्रेण चाम्लपित्तं प्रायेणाधोगतं हन्ति ॥ ३७ ॥

अधोगतेऽम्लपित्ते तु पैत्तिकीं ग्रहणीविधिम् ।

पाचनीं दीपनीञ्चैव बीच्याबीच्यावचारयेत् ॥ ३८ ॥

ज्वलन्तमिवमात्मानं मन्यन्ते योऽम्लपित्तवान् ।

तस्य संशोधनं पथ्यं न शान्तिः शोधनं विना ॥ ३९ ॥

अचिरोत्थे चिरोत्थेव बमनं तत्र कारयेत् ।

सवाते सविबन्धेऽग्निं हिता कंसहरोतकी ॥ ४० ॥

चीरं तथा गुडयैव सर्पिलहोऽथवा पुनः ।

अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः ॥ ४१ ॥

गुडकूष्माण्डक चैव तथा खण्डामलक्यपि ।

गुडचीरकणा सिद्धं सर्पिरत्रापि योजयेत् ॥ ४२ ॥

रक्तपित्तेऽपि यच्चोक्तं यच्चूले चापि पैत्तिके ।

सत्सर्वे कारयेद्दीमान् अम्लपित्ते विशेषतः ॥ ४३ ॥

पिप्पलीकायकल्कानां घृतं सिद्धं मधुमुतम् ।

पिवेत्प्रातः सुसुत्यायो ह्यम्लपित्तनिवृत्तये ॥ ४४ ॥

इति पिप्पलीघृतम् ।

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयः समम् ।
 पचेन्मृदग्निना सम्यक् क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ४५ ॥
 नाशयेदम्बपित्तञ्च बातपित्तोत्थितं ध्रुवम् ।
 रक्तपित्तं कृपां मूर्च्छां खासं सन्तापमेव च ॥ ४६ ॥

इति शतावरीघृतम् ।

तिक्तकं पट्पलं सर्पिः पञ्चतिक्तमथापि वा ॥
 गुग्गुलुतिक्तकं वापि क्षाम्बपित्ते प्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥

—०—

घात्रीशतावरीक्षौद्रं तुल्यं शर्करया समम् ।
 लिह्येदत्तनुपानेन पयसाथ घृतेन च ॥ ४८ ॥
 अम्बपित्तं निहन्त्याश्च बलिपलितनाशनम् ।
 चतुर्थमायुष्यतमं चतुःसममुदाहृतम् ॥ ४९ ॥
 इति चतुःसमचूर्णम् ।

त्रिकटुविफलासुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ।
 एषां संचूर्णितानान्तु प्रत्येकान्तु फलं भवेत् ॥ ५० ॥
 कर्पहृद्यं गन्धकस्य तदर्धं पारदस्य च ।
 विडालपदमावन्तु लिह्यात्तन्मधुसर्पिषा ॥ ५१ ॥
 शीतोदकं चानुपिवेत् क्रमाद्द्वयं पयस्तथा ।
 अम्बपित्तमग्निमान्द्यं परिणामरुजं तथा ॥ ५२ ॥
 कामलां पांडुरोगञ्च हन्यादेतद्रसामृतम् ।

इति रसामृतं चूर्णम् ।

कुडवं नारिकेरस्य जले मृदग्निना पचेत् ।
 नारिकेरजनाभावे गव्ये पयसि तत्पिवेत् ॥ ५३ ॥

१ ययोऽत्र शतावरीमूल रसः क्षीरस्योक्तत्वात् ।

धान्यकं पिप्पलीमुस्तं चातुर्जातं विचूर्णितम् ।
 प्रत्येकं दृढमावन्तु शीते तस्मिन्विनिःक्षिपेत् ॥ ५४ ॥
 पलमावस्तद्वर्षाणि भक्षितः प्रत्यहं नरैः ।
 नारिकेरकखण्डोऽयं पुंस्त्वनिद्रा बलप्रदः ॥ ५५ ॥
 अम्बपित्तं रक्तपित्तं शूलञ्च परिणामजम् ।
 क्षयं क्षपयतिक्षिप्रं शुष्कं दावानलो यथा ॥ ५६ ॥

इति नारिकेरखण्डः ।

प्रस्थन्तु नारिकेरस्य सूक्ष्मं दृषदिपेपितम् ।
 निष्कुलीकृतकूष्माण्ड खण्डानामर्द्धमादकम् ॥ ५७ ॥
 तद्वयं भर्जयेद्भव्ये हृते तु कुड्योन्मिते ।
 ततस्तत्र क्षिपेच्छुद्धं गोदुग्धं चादकोन्मितम् ॥ ५८ ॥
 तत्रैव निक्षिपेद्भव्यां सितां प्रस्थद्वयोन्मिताम् ।
 पचेत्सर्वाणि चैकत्र सृदुना बद्धिना भिषक् ॥ ५९ ॥
 सुपक्वे शीतले तत्र चूर्णीकृत्यविनिक्षिपेत् ।
 सूक्ष्मैला धान्यकं धात्रो पर्यटं जलदं जलम् ॥ ६० ॥
 चशीरं चन्दनं द्राक्षां शृङ्गाटं च कसेरुकम् ।
 त्वक् पत्रकसुकर्पूरं कर्पयुग्मं शृङ्गं शृङ्गम् ॥ ६१ ॥
 सर्वं संमिश्रयेद्रवे ज्ञाजने सृन्मये नवे ।
 पलमावमिदं प्रातर्भक्षयेद्वा यथाननम् ॥ ६२ ॥
 एतन्निषेवितं हन्ति रोगानेतात्र मृगयः ।
 अम्बपित्तं ज्वरं पित्तं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ६३ ॥
 बातरक्तं दृषां दाहं पांडुरोगं च कामन्ताम् ।
 क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शुष्कं परिणामजम् ॥ ६४ ॥
 नारिकेरस्य खण्डोऽयं मन्त्रिभ्यां भाषितः पुनः

वर्णदो हं हणो ह्यः पुं स्वनिद्रा बलप्रदः ॥ ६५ ॥

इति बृहन्नारिकैरखण्डः ।

नारिकैरफलप्रस्थं पिष्टं घृतविभर्जितम् ।

प्रस्थं प्रस्थं समादाय शुण्ठ्याचूर्णस्य तद् युतम् ॥ ६६ ॥

द्विपात्रं नारिकैरासु तत्समं क्षीरमेव च ।

घात्रगाद्यं स्वरसप्रस्थं खंडस्यापि तुलां न्यसेत् ॥ ६७ ॥

एकोक्त्य पचेत्सर्वं शनैर्मृदग्निना भिषक् ।

सिद्धशीते प्रदातव्यं चूर्णं तत्र सुकण्डितम् ॥ ६८ ॥

त्रिकटुः सचतुर्जातः प्रत्येकं तु पलोन्मितम् ।

धात्रीजीरकयुग्मञ्च धान्यकं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ ६९ ॥

तुगापयोदचूर्णानि त्रिकर्षञ्च पृथक् पृथक् ।

मधुनः पलानि चत्वारि त्रिंशे भाण्डे निधाययेत् ॥ ७० ॥

कर्पप्रमाणं कर्तव्यं रसं यूयं विवेदनु ।

अस्त्रपित्तं निहन्त्याशु शूलं चैव सुदुस्तरम् ॥ ७१ ॥

परिणामभवं शूलं घृष्टशूलं च नाशयेत् ।

अत्रोपरि भवं शूलं हृच्छूलं च सुदुस्तरम् ॥ ७२ ॥

सर्वशूलहरं श्रेष्ठं वायोर्वेगं यथागिरिः ।

कण्ठदाहं च हृद्दाहं हृदि दण्डां सुदारुणम् ॥ ७३ ॥

कासं पञ्चविधं चैव रक्तपित्तं सुदारुणम् ।

पीनसञ्च प्रतिश्यायं यक्ष्माणं विनिहन्ति च ॥ ७४ ॥

परं वाजीकरं श्रेष्ठं बलपुष्टिविबर्धनम् ।

अग्निमन्दीपनकरं रसायनमिदं शुभम् ॥ ७५ ॥

मूत्ररोगेषु सर्वेषु वातरोगेषु शम्यते ।

शुद्धानि च सर्वाणि तांस्तान् रोगान्विहन्ति च ॥ ७६ ॥

रोगानीकविनाशाय लोकानुपग्रहेतुना ।

अग्निभ्यां निर्मितं त्र्यष्टममृताख्यं रसायनम् ॥ ७७ ॥

इति नारिकेरामृतम् ।

विकटुत्रिफलामुस्त बीजं चैव विडङ्गजम् ।

एलापत्रं च सर्वाणि समभागानि कारयेत् ॥ ७८ ॥

यावन्त्येतानि सर्वाणि लवङ्गं तत्समं भवेत् ।

सर्वचूर्णाद् द्विगुणितं त्रिविचूर्णं कारयेत् ॥ ७९ ॥

यावन्त्येतानि सर्वाणि तावती शर्करा भवेत् ।

सर्वमेकीकृतं पात्रे स्निग्धे चैव निधापयेत् ॥ ८० ॥

भोजनादौ ततो भवे न्माषाष्टकमिदं शुभम् ।

शीततोयानुपानञ्च नारिकेरोदकं तथा ॥ ८१ ॥

ततो यथेष्टमाहारं कुर्यात् क्षीरोदनञ्च वै ।

अम्लपित्तं हरत्याशु शूलदुर्नामनाशनम् ॥ ८२ ॥

ग्रमेहं विंशतिञ्चैव मूत्राघातं तथाश्मरीम् ।

अविपत्यकरं चूर्णं मगस्तिमुनिभापितम् ॥ ८३ ॥

इत्यविपत्यकरं चूर्णम् ।

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवं द्वयम् ।

पलं षोडशकं खण्डाच्छतावर्थाः पलाष्टकम् ॥ ८४ ॥

शिवायाः स्वरस्यापि पलं षोडशकं मतम् ।

क्षीरप्रस्थद्वये साध्ये लेहीभूतेऽत्र निक्षिपेत् ॥ ८५ ॥

विंजातकाभयाजाजी धान्यमुस्तशिवातुगाः ।

एतेषां कार्ष्णिकं चूर्णं कर्पाक्षं कृष्णजीरकम् ॥ ८६ ॥

नागरं नागकं जाती फलं समरिचं हिमम् ।

दत्त्वा पन्नवयं चौटं स्निग्धभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ८७ ॥

प्रातर्थयावत्तुं लिङ्गा दम्लपित्तप्रशान्तये ।

ज्वलासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनम् ॥ ८८ ॥

इति पिप्पल्याद्यवलेहः ।

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम् ।

रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ ८९ ॥

सघ्नग्निना पचेत्ताव द्यावद्भवति पिण्डितम् ।

धात्रोतुल्यासितायोज्या पलार्धं लेहयेदनु ॥ ९० ॥

खड्गकूष्माण्डकं ख्यात मन्त्रपित्त नियच्छति ।

इति खण्डकूष्माण्डकम् ।

द्राक्षासृताशक्रपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीघनचन्दनैश्च ।

त्रायन्तिका पद्मकिरातधान्यैः कल्कैः पचेत्कर्पिरूपेतमेभिः ॥ ९१ ॥

युष्णीतमात्रां सहभोजनेन सर्वर्तुपानेऽपि भिषग्विदध्यात् ।

बलामपित्त यक्षणीं ग्रहणां कासाग्निसाद ज्वरमन्त्रपित्तम्

सर्वं निहन्त्याद् दृतमेतदाद्य सम्यक् प्रयुक्तं ह्यसृतीपमञ्च ॥ ९२ ॥

इति द्राक्षाद्य दृतम् ।

द्राक्षापप्ये समे कृत्वा तयोस्तुल्यां मितां क्षिपेत् ।

मंजुव्याघ्रद्वयमितं पिण्डिकां कारयेद्विषक् ॥ ९३ ॥

तां खादेदन्त्रपित्ताग्नीं हृत्कण्ठदहनापहाम् ।

वृद्धमूर्च्छाभ्रममन्दाग्नि नाशिनीं चामवातहाम् ॥ ९४ ॥

अथ विसर्पनिदानमाह ।

लवणाम्लकटूणादि संसेवाद्दीपकोपतः ।

विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

पृथक् त्रयस्त्रिभिश्चैको विसर्पाद्वन्दजास्त्रयः ।

वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः ॥

चत्वार एते वीसर्पा बध्यन्ते द्वन्दजास्त्रयः ॥ २ ॥

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थिग्रस्थः कफवातजः ।

यस्तु कर्दमको घोरः सपित्तकफसम्भवः ॥ ३ ॥

रक्तं लसीकात्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ।

विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्तधातवः ॥ ४ ॥

तत्र वातात्सर्वीसर्पो वातज्वरसमव्ययः ॥

शोफस्फुरणनिस्तोद मेदायासार्त्तिं हर्षवान् ॥ ५ ॥

पित्ताद्विद्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ।

कफात् कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ६ ॥

सन्निपातसमुत्पद्य सर्वरूपसमन्वितः ॥ ७ ॥

वातपित्तज्वरहृदि मूर्च्छातिसारवृद्धभ्रमैः ।

अस्थिभेदाग्निसदनं तमकारोचकैर्युतः ॥ ८ ॥

करोति सर्वदेहश्च दोषाङ्गारावकीर्णवत् ।

यं यं देशं विसर्पय विसर्पति भवेत्तु सः ॥ ९ ॥

शान्ताङ्गारासितोऽनीलो रक्तो वाऽऽश्वत्थपचीयते ।

अग्निदग्ध इव स्फोटः शीघ्रं गत्वा द्रुतं स च ॥ १० ॥

मर्मानुसारो वीसर्पः स्यात्ततोऽतिबलस्ततः ।

व्यथेतांगं हरेत्संज्ञां निद्राञ्च श्वासमीरयेत् ॥ ११ ॥

द्विधाश्च स गतोऽवस्था मीदृशीं लभते नरः ।

हृत्तासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनम् ॥ ८८ ॥

इति पिप्पल्याद्यवलीहः ।

कृष्णण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम् ।

रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ ८९ ॥

सधूमिना पचेत्ताव द्यावद्भवति पिण्डितम् ।

धात्रीतुल्यासितायोज्या पलाईं लेहयेदनु ॥ ९० ॥

खडकूष्माडकं स्यात् मन्त्रपित्त नियच्छति ।

इति खण्डकूष्माण्डकम् ।

द्राक्षाभृताशकपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीघनचन्दनैश्च ।

चायन्तिका पद्मकिरातधान्यैः कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतमेभिः ॥ ९१ ॥

युञ्जीतमात्रां सहभोजनेन सर्वर्तुपानेऽपि भिषग्विदध्यात् ।

बलासपित्त ग्रहणीं प्रवृद्धां कासाम्निषाद ज्वरमन्त्रपित्तम्

सर्वं निहन्त्याद् दृतमेतदाशु सम्यक् प्रयुक्तं ह्यभृतोपमञ्च ॥ ९२ ॥

इति द्राक्षाद्यं दृतम् ।

द्राक्षापथे समे कृत्वा तयोस्तुल्यां मितां क्षिपेत् ।

संकुव्याघ्रद्वयमितं पिण्डिकां कारयेद्विपक् ॥ ९३ ॥

तां खादेदन्त्रपित्तार्त्तं हृत्कण्ठदहनापहाम् ।

वृद्धमूर्च्छाभ्रममन्दाग्नि नाशिनीं चामवातहाम् ॥ ९४ ॥

इति द्राक्षादिगुटिका ।

इति वज्रसेनेऽन्त्रपित्तनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ५६ ॥

क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्याशनादिषु ॥ १२ ॥
 चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहसमुद्भवः ।
 दुष्प्रबोधोऽश्रुते निद्रां सोऽग्निसर्प उच्यते ॥ १३ ॥
 कफेन रुद्धः पवनो भित्वा तं बहुधा कफम् ।
 रक्तं वा हृद्भरक्तस्य त्वक्छिरास्त्रायुमांसगम् ॥ १४ ॥
 दूषयित्वा तु दीर्घाणु वृत्तस्थूलखरात्मनाम् ।
 ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुक् ज्वरम् ॥ १५ ॥
 श्वासकासातिसारास्य शोषहिष्वावमिभ्रमैः ।
 मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्ग भङ्गाग्निसदनैर्युतः ॥
 इत्यथ ग्रन्थीविसर्पः कफमारुतकोपजः ॥ १६ ॥
 कफपित्ताज्ज्वरस्तम्भो निद्रातन्द्रा शिरोरुजा ।
 अङ्गावसादविक्षेप प्रलापारोचकभ्रमाः ॥ १७ ॥
 मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽसूत्रां पिपासेन्द्रियगौरवम् ।
 आमोपवेशनं लेपः स्त्रोतसां सविसर्पति ॥ १८ ॥
 प्रायेणामाशय गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ।
 पिङ्गकैरवकीर्णोऽति पीतलोहितपाण्डुरैः ॥ १९ ॥
 क्लिप्तो सितो मेघकाभो मलिनः शोफवान् गुरुः ।
 गम्भीरपाकः प्रायोष्मास्पृष्टः क्लिप्तोवदीर्यते ॥ २० ॥
 पङ्कवच्छीर्णमांसस्य स्पष्टस्त्रायुशिरागणः ।
 शवगन्धश्च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥ २१ ॥
 बाह्यहेतोः क्षतात् क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ।
 वीसर्पं मारुतः कुर्यात् कुलित्यमदृगैश्चितम् ॥
 स्फोटैः शोथज्वररुजा दाहद्वयं श्यावशोणितम् ॥ २२ ॥
 ज्वरातिसारी वमयुस्त्वक्क्षामदरणं क्षमः ।
 अरोचकाविपाकी च विमर्षाणामुपद्रवाः ॥ २३ ॥

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृताविसर्पाः
सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ।
पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः
प्रायेण मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥ २४ ॥

तथाच अन्यान्तरात् ।

दृष्ट्वा समांससंकोच दाहद्विक्रामदञ्जराः ।
विसर्पा मर्मसंरोधा स्तेपां प्रोक्ता ह्युपद्रवाः ॥ २५ ॥

—०—

अथ चिकित्साभारह ।

सर्वेष्वेव विसर्पेषु कुर्यात्तद्वनरूक्षणम् ।
विरेकवमनालेप सेचनाऽसृग्विमोचणैः ॥
उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ २६ ॥
पटोलपिचुमन्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन वा ।
विसर्पे वमनं शस्तं तथा चेन्द्रयवैः सह ॥ २७ ॥
त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृत्तया सह ।
प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं वीसर्पज्वरशान्तये ॥ २८ ॥
रास्त्रानीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला ।
दृष्टचौरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ २९ ॥
शङ्खद्रुसं पयो मूत्रं पञ्चमूलं च तत्समम् ।
एतत्सुखोष्णकं कार्यं विसर्पेऽनिलसम्भवे ॥ ३० ॥
दणवर्ज्यं विधातव्यं पञ्चमूल चतुष्टयम् ।
प्रदेहसेकौ सर्पिर्भिः विसर्पे वातसम्भवे ॥ ३१ ॥

कुष्टं शताह्वा सुरदारुमुस्तावाराहिकुस्तुम्बुरुक्षखगन्धाः ।
वातेऽर्कवशात्तंगलाश्च योज्याः सेके प्रलेपेषु तथा दृतेषु ॥ ३२ ॥

द्राक्षारम्बधकाश्मथै द्विफलैरण्डपोलुभिः ।

त्रिवृद्धरीतकीभिश्च विसर्पे शोधने हितम् ॥ ३३ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्चत्थ प्लववेतसपोलुभिः ।

चन्दनद्वयमञ्जिष्ठा पद्मकोशीरगैरिकैः ॥ ३४ ॥

शतधौतघृतोन्मिश्रैर्लेपो रक्तप्रसादनः ।

दाहपाकरुजास्त्राव शोथनिर्वापणः परः ॥ ३५ ॥

शिरीषयष्टी नतचन्दनैला मांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः ।

लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठज्वरशोथहारो ॥ ३६ ॥

इति दशाङ्गलेपः ।

प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा पद्मकोशीरचन्दनैः ।

सयष्टोन्दीवरैः पैत्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेपनम् ॥ ३७ ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्रा सशैवलाः सौत्पलकर्दमाश्च ।

वस्त्रान्तराः पित्तक्षते विसर्पे लेपो विधेयः सघृतः सुशीतः ॥ ३८ ॥

मृणालचन्दनं लोध्रमुशीरं कमलोत्पलम् ।

शारिवा शल्लकीपथ्या प्रदेहाः पित्तमुदराः ॥ ३९ ॥

प्रदेहाः परिपेकाश्च शस्यन्ते पञ्चबल्कलैः ।

पद्मकोशीरमधुक चन्दनैर्वा प्रशस्यते ॥ ४० ॥

न्यग्रोधपादागुन्द्रा च कदलीगर्भ एव च ।

विपग्रन्थिकलेपः स्याच्छतधौतघृतप्लुतः ॥ ४१ ॥

मांसीसर्जरसं रोध्रं मधुकं सह रेणुभिः ।

हरेण्वो मसूराश्च सुहायैव सशालयः ॥

पृथक् लेपाः विसर्पघ्नाः सर्वे वा सर्पिषा सह ॥ ४२ ॥

शैष्णिके बभनं पूर्वं रेचनं च कफापहम् ॥ ४३ ॥

मदन मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च ।

बभनश्च विधातव्यं विसर्पं कफसम्भवे ॥ ४४ ॥

गायत्रीसप्तपर्णाद् वासारग्वधदारुभिः ।

कुटस्रटेर्भवेत्तेपो विसर्पे श्लेष्मसम्भवे ॥ ४५ ॥

अजाग्नगन्धा सरलाथ कालसैकेशिवा चाप्यथवाजमृद्धी ।

गोमूत्रपिष्टैर्विहितः प्रदेहो हन्याद्विसर्पं कफजं सुशीघ्रम् ॥ ४६ ॥

त्रिफलापद्मकोशीर समङ्गाकरवोरकम् ।

नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ ४७ ॥

काकजङ्घाशिरीषस्य पुष्पं श्लेष्मातकत्वचम् ।

कृतमालकपत्राणि चाग्नगन्धा प्रियङ्गवः ॥

प्रदेहः कफबोसर्पे कटूणाः सुप्रयोजितः ॥ ४८ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मातकोद्धवाः ।

शिरीषपुष्पसहिता हिता लेपावचूर्णनैः ॥ ४९ ॥

सुस्तारिष्टपटोलानां काथः सर्वविसर्पनुत् ।

धात्रीपटोलमुद्गाना मथवा घृतसयुतः ॥ ५० ॥

अमृतधनपटोलं निम्बकल्कैरुपेतम् ।

त्रिफलखदिरसारं ध्याधिघातश्च तुल्यम् ॥

क्वथितमिदमशेषं गुग्गुलोः पादयुक्तम् ।

हरति विषविसर्पान् कुटस्रद्वातमाश ॥ ५१ ॥

भूनिम्बवामाकटुकापटोलं फलत्रिकं चन्दननिम्बसिद्धः ।

विसर्पदाहज्वरशोषकङ्कडूविस्फोटवृष्णावमिनुत्कपायः ॥ ५२ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च दार्वी कटुकरोहिणीम् ।

यज्ज्वाहं त्रायमाणश्च दद्याद्वोसर्पशान्तये ॥ ५३ ॥

त्रायन्तीनिम्बदारु कुण्डलीधात्रीपटोलकटुकाभिः ।

काथो हन्ति विसर्पान्मकरन्दयुतो हृद्ददारान् ॥ ५४ ॥

त्रिदोषजं क्रियां कुर्याद्द्विसर्पे हन्तसम्भवे ।

सकफे रक्तपित्ते च त्रिफलां योजयेत् पुरैः ॥ ५५ ॥

दुरालभां पर्पटकं पटोलं कटुकां तथा ।
 कोष्णं गुग्गुलुसंमिश्रं पिवेद्वा खदिराष्टकम् ॥ ५६ ॥
 वातपित्तप्रशमनं मग्निवोसर्परोहणम् ।
 कफपित्तप्रशमनं प्रायः कर्दममञ्जुके ॥ ५७ ॥
 वातपित्तहरं कर्म ग्रन्थिवोसर्पिणे हितः ।
 मसूरिस्फोटकुष्ठघ्नी क्रियायोज्या विसर्पिणाम् ॥ ५८ ॥
 कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्तं चिकित्स्याप्याशु हरेद्विसर्पान् ।
 सर्वास्तु पक्वान् परिशोध्यधीमान् व्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ५९ ॥
 यच्च सर्पिर्महातिक्तं पित्तकुष्टनिवर्हणम् ।
 निर्दिष्टं तदपि प्राज्ञो दद्याद्द्वीमर्पशान्तये ॥ ६० ॥
 वृषखदिग्पटोलनिस्वपत्रं त्वग्मृतसुशिवाकपायकल्कैः ।
 घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं जयति खलु विसर्पकुष्टगुल्मान् ॥ ६१ ॥

इति वृषाद्यष्टतमम् ।

द्वे हरिद्रे स्थिरा नूवां शारिवाचन्दनद्वयम् ।
 मधुकं मधुपर्णी च पद्मकं पद्मकेसरम् ॥ ६२ ॥
 उशीरमुत्पलं मेदा त्रिफलापञ्चवल्कलम् ।
 कल्कैरक्षममैरेभिर्घृतपस्थं विपाचयेत् ॥ ६३ ॥
 विषयीमर्पविस्फोटकोटलूताव्रणापहम् ।
 गौरवाद्यमिति व्यातसर्पिः श्रेष्ठमनुत्तमम् ॥ ६४ ॥

गौरवाद्यष्टतमम् ।

कुट्टेषु यानि सर्पाणि विवर्णेषु विविधेषु च ।
 विमर्षेषु प्रयोज्यानि मेकान्तेपनभोजनैः ॥ ६५ ॥
 फरञ्जमतच्छदं नाद्वलीकसुहृदुग्धाननभृद्वराजैः ।

तैल निशामूत्रविपैर्विपक्वं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥ ६६ ॥
इति करञ्जतैलम् ।

इति वङ्गसेने विसर्पनिदानचिकित्साधिकारः
समाप्तः ॥ ५१ ॥

—०—

अथ विस्फोटनिदानमाह ।

कटुम्लतोक्षोष्णविदाहिरूचचारैरजीर्णाध्यशनातपैद्य ।
तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दीपाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥
त्वचमाश्रित्यते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य च ।
घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वान् ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥
अग्निदग्धनिभास्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः ।
कचित् सर्वत्र वा देहे विस्फोटक इति स्मृतः ॥ ३ ॥
शिरोरुक् शूलभूयिष्ठं ज्वरस्तृट् पर्वभेदनम् ।
सक्लृणवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥
ज्वरदाहरजास्राव पाकलक्षणाभिरन्वितम् ।
पीतलोहितवर्णञ्च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥
हृद्यरोचकजाद्यानि कण्डूकाठिन्य पाण्डुता ।
अवेदनश्चिरात्पाकी सविस्फोटः कफात्मकः ॥ ६ ॥
कण्डूदाहोऽरुचिः कर्दि रेतैस्तु कफपैत्तिकः ।
वातपित्तात्मको यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥
कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात् कफवातिकम् ॥ ७ ॥
मध्ये निम्नीव्रतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान् ।
दाहरागलपामोह च्छर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः ।

प्रलापो वैपद्यु स्तन्द्रा सोऽसाध्यः स्याच्चिदोपजः ॥ ८ ॥
 रक्तांरक्तममुत्याना गुञ्जाफलनिभास्तथा ।
 वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥
 न ते सिद्धं समायान्ति सर्वैर्गोववरैरपि ॥ ९ ॥
 एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ।
 सर्वरूपान्वितो घोर स्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १० ॥
 द्विकाम्नासोऽरुचिस्तृणा चाङ्गमर्दो हृदिव्यथा ।
 विसर्पन्वरहृत्तासा विस्फोटानामुपद्रवाः ॥ ११ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

तत्रादौ लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम् ।
 यथायुक्तं वनं बोध्य युक्तमुक्तं विरेचनम् ॥ १२ ॥
 पटोन्लेन्द्रयवारिष्ट वचामदनमाधितम् ।
 वमनं तत्प्रदातव्यं विस्फोटे कफपैत्तिके ॥ १३ ॥
 शुधिते लङ्घिते बान्ते जीर्णशालिययादिभिः ।
 सुहादृकोमसूराणां रसैर्वा विश्वमयुतैः ॥ १४ ॥
 सुनिपण्यकवेवाग्रतडूनीयककेतकैः ।
 कुलकाभीरुकैरेभिः सपर्पटसतीनकैः ॥ १५ ॥
 कर्कोटकारयेकै य कुसुमैर्निम्बविल्वजैः ।
 तिक्तद्रव्यसमायुक्तं भोजनं संप्रयोजयेत् ॥ १६ ॥
 द्विपञ्चमूलं रास्त्रा च दार्व्युगीरं दुरान्मभाम् ।
 अमृताधान्याकं सुमं लयेऽतममुद्गयान् ॥ १७ ॥
 द्राक्षाकागम्येवर्जूर पटोन्वारिष्टवामकै ।
 कटुकाक्षान्जदुःस्पर्गैः सितायुक्तं तु पैत्तिके ॥ १८ ॥

भूनिम्बनिम्बवासा च त्रिफलेन्द्रियवासकैः ।

पिचुमन्दं पटोलञ्च सचौद्रं कफजे हितम् ॥ १८ ॥

किराततिक्तकारिष्ट यक्ष्माह्वाम्बुदवासकम् ।

पटोलपर्पटोशीरत्रिफलाकौटजान्वितम् ॥

द्वादशाङ्गं तथैवैतत्सर्वविस्फोटनाशनम् ॥ २० ॥

पटोलामृतभूनिम्ब बासकारिष्टपर्पटैः ।

खदिराष्टयुतैः काथो विस्फोटज्वरशान्तये ॥ २१ ॥

कुण्डलीपिचुमन्दांबु खदिरेन्द्रियवाम्बुना ।

विस्फोटं नाशयत्याशु वायुर्जलधरानिव ॥ २२ ॥

अमृतवृषपटोलं सुस्तकं सप्तपर्णं

खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे ।

विविधविषविसर्पं कुष्टविस्फोटकण्डू-

रपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरञ्च ॥ २३ ॥

पटोलत्रिफलारिष्ट गुडूचीमुस्तचन्दनैः ।

समूर्वारोहिणीपाठा रजनी सदुरालभा ॥ २४ ॥

कपायं योजयेदेतत् पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।

कण्डूत्वग्दोषविस्फोट विषवीसर्पनाशनम् ॥ २५ ॥

शिरीषयष्टी नतचन्दनैलामांसी हरिद्राद्वयकुष्टवालैः ।

लेपोदशाङ्गः सष्टतः प्रयोज्यो विसर्पविस्फोटककण्डूहारी ॥ २६ ॥

इति दशाङ्गलेपः ।

चन्दनं नागपुष्पञ्च तंडुलीयकशारिवा ।

शिरीषवल्कलं पत्रं लेपः स्याद्वाहनाशनः ॥ २७ ॥

विस्फोटव्याधिनाशाय तंडुलांबुप्रपेपितैः ।

बीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः कायैः विजानताः ॥ २८ ॥

उत्पलं चन्दनं लोभ्रं मुशीरं शारिवाद्वयम् ।

जलेन पिष्टा लिम्पेत स्फोटदाहार्तिनाशनम् ॥ २८ ॥
 शिरोपोशीरनामाह्व हिस्त्राभिलेपनाद् द्रुतम् ।
 विसर्पविषविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न सशयः ॥ २९ ॥
 शिरोपचन्दनानङ्गा तित्तिडीबल्कपूरकोः ।
 प्रलेप सष्टतः कार्यो विस्फोटश्लेष्मनाशनः ॥ ३० ॥
 शिरोधोदुम्बरौ जम्बु सेकालेपनयोर्हिताः ।
 श्लेष्मातकत्वचो वापि प्रलेपाश्चोतने हिताः ॥ ३१ ॥
 शिरोपपूगमञ्जिष्ठा चव्यामलकयष्टिकाः ।
 सजातिपल्लवचौद्रा विस्फोटे कवलयहाः ॥ ३२ ॥
 पद्मकं मधुकं लोध्रं नागपुष्पञ्च केशरम् ।
 हे हरिद्रे विडङ्गानि सूक्ष्मैला तगर तथा ॥ ३३ ॥
 कुष्ठं लाक्षापत्रकञ्च सिन्धूयं तुल्यमेव च ।
 तोयेनालोड्य तत्सर्वं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३४ ॥
 याश्च रोगान्निहन्त्येतत् तान्निबोधमहामुने ।
 सर्पकीटादिदष्टेषु लूता मूत्रकृतेषु च ॥ ३५ ॥
 विविधेषु च स्फोटेषु तथा कुष्ठविसर्पिषु ।
 नाडोषु गण्डमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः ॥ ३६ ॥
 अगस्तिविहितं धन्यं पद्मकं तु महाघृतम् ॥ ३७ ॥

इति पद्मकं घृतम् ।

पटोलमसच्छदनिम्बवासा फलत्रिकच्छिन्नरुद्धाविषकम् ।
 तत्पञ्चतित्तं घृतमाशु हन्तित्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥ ३८ ॥

इति पञ्चतित्तं घृतम् ।

कम्पिप्लवकं विडङ्गानि वत्सकं त्रिफलां यस्ताम् ।
 पटोलं पितुमन्दश्च लोध्रं सुस्तप्रियङ्गुकम् ॥ ४० ॥

धातकीखदिरं सर्जमेला चागुरुचन्दनम् ।

पिष्ट्वा तैलं भवेत्साध्यं तत्तैलं व्रणरोपणम् ॥ ४१ ॥

इति कम्पिष्ठकाद्यं तैलम् ।

पीत्वा घृतं महातिक्तं कौशिकेन च साधितम् ।

कदाचिद्रक्तमोक्षय ज्ञात्वा दोषं प्रयोजयेत् ॥ ४२ ॥

इति वङ्गसेने विस्फोटनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ६० ॥

—०—

अथ स्नायुनिदानमाह ।

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् ।

भित्तैव तं क्षते तत्र सोष्णामांसं विशोष्य च ॥ १ ॥

कुर्व्यात्तन्तुनिभं सूत्रं घृतं सितद्युतिं बहिः ।

शनैः शनैः क्षतादिति छेदात्तत्कोपमावहेत् ॥ २ ॥

तत्पात्ताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत् ।

सन्नायुकः परिख्यातः क्रियोक्तात्र विसर्पवत् ॥ ३ ॥

बाह्योर्यदि प्रमादेन द्रुव्यते जङ्घयोरपि ।

सङ्घोचं खञ्जतां चापि छिन्नो नूनं करोत्यसौ ॥ ४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्मकुर्व्याद्यथेक्षितम् ।

रामठं शीततोयेन पीतं तन्तुकरोगनुत् ॥ ५ ॥

मञ्जिष्टयष्टीमधुकं पयस्या प्रपीण्डरीकं सह पद्मकेन ।

सौगन्धिकं चेति मुखं प्रलेपः शस्तो विसर्पे त्वय तन्तुरोगे ॥६॥

इति मञ्जिष्टादिलेपः ।

खेदात् स्नायुकमत्युग्रं मेकः काञ्चिकसाधितः ।

तद्वद्वमूलजं बीजं पिष्टं हन्ति प्रलेपनात् ॥ ७ ॥

गव्यं सर्पिस्त्यहं पीत्वा निर्गूण्डस्वरसं चरहम् ।

पिवेत् स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ८ ॥

मूलं सुखव्या हिमवारिपिष्टं पानादिकं तन्तुरोगमुग्रम् ।

शान्तिं नयेत्सत्रणमाशु पुंसां गन्धर्वगन्धेन घृतेन पीतम् ॥ ९ ॥

अतिविषमुस्तकभांगीं विश्वीषधपिप्पलीविभीतकीनाम् ।

चूर्णमिदं तन्तुघ्नं पुंसामुष्णेन वारिणा पीतम् ॥ १० ॥

शिशूमूलदलैः पिष्टैः काञ्चिकेन ससैन्धवैः ।

लेपनं स्नायुकव्याधेः शमनं परमुच्यते ॥ ११ ॥

इति वङ्गसेने स्नायुकरोगनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ६१ ॥

—०—

अथ मसूरिकानिदानमाह ।

कट्फलवणचार विरुद्धाध्यशनाशनैः ।

दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोटकैः ॥ १ ॥

कुण्डपहे क्षणाच्चापि देहे दोषाः समुद्भवाः ।

जनयन्ति शरीरेऽस्मिन् दुष्टरक्तेन सङ्गताः ॥

मसूराकृतिसंस्थानाः पिडकाः स्युर्मसूरिकाः ॥ २ ॥

तामां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रमद्भोरतिभ्रमः ।

त्वचिशोथः सर्वैषण्यो नेत्ररागस्तथैव च ॥ ३ ॥
 स्फोटारुक्षारुणाः कृष्णास्तीव्रवेदनयान्विताः ।
 कठिनाधिरपाकाश्च भवन्त्यऽनिलसम्भवाः ॥ ४ ॥
 सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिः क्षमः ।
 शोथस्ताल्वोष्ट्रजिह्वानां वृष्णा चारुचिसंयुताः ॥ ५ ॥
 रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाह्वास्तीव्रवेदनाः ।
 भवन्त्यधिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ॥ ६ ॥
 विड्भेदद्याद्भ्रमर्दश्च वृष्णाऽरत्यरुची तथा ।
 मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्र सुदारुणः ॥
 रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पिचलक्षणाः ॥ ७ ॥
 कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग् गात्रगौरवम् ।
 हृल्लासारुचितन्द्रार्त्तिर्निद्रालस्य समन्विताः ॥ ८ ॥
 श्वेताः सिग्धामृशं स्थूलाः कंडूरामन्दवेदनाः ।
 मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥
 नीलाधिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजाः ।
 चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥ १० ॥
 कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्रा प्रलापारतिसङ्गताः ।
 दुश्चिकित्स्या समुद्दिष्टाः पिङ्गकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ ११ ॥
 रोमकूपोन्नतिसमा लोहिताः कफवातजाः ।
 कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः ॥ १२ ॥
 तोयबुद्बुदसकाशा स्वगताश्च मसूरिकाः ।
 खल्वदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥ १३ ॥
 रक्तस्या लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।
 साध्यानात्पर्यदुष्टाश्च भिन्नारत्नां स्रवन्ति च ॥ १४ ॥
 मांसस्याः कठिनाः स्निग्धाः चिरपाका घनत्वचः ।

गात्रशूलारतिकण्डू दृष्ट्यारुचिसमन्विताः ॥ १५ ॥
 मेदोजामण्डलाकारी मृदवः किञ्चिदुन्नताः ।
 घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ॥
 सम्मोहारतिसन्तापाः कथिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ १७ ॥
 चुद्रागात्रसमारूक्षा क्षिपिटा किञ्चिदुन्नताः ।
 मज्जीत्या मृगसंमोह वेदनाऽरतिसंयुताः ॥ १८ ॥
 क्षिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाश हरन्ति च ।
 भ्रमरेणैव विद्वानि कुर्वन्त्यस्यीनि सर्वतः ॥ १९ ॥
 पक्वाभाः पिङ्गकाः स्निग्धाः सूक्ष्माद्यात्यर्थवेदनाः ।
 स्तैमित्याऽरतिसंमोह दाहोन्मादसमन्विताः ॥ २० ॥
 शक्रजायां मसूर्यगन्तु लक्षणानि भवन्ति च ।
 निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न हि जीवितम् ॥ २१ ॥
 दोषमित्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्याः दोषलक्षणैः ॥ २२ ॥
 त्वग्गतारक्तजायैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा ।
 एता विनापि क्रियया प्रणाम्यन्ति शरीरिणाम् ॥ २३ ॥
 वातजा वातपित्तोत्था श्लेष्मवातकृताश्च याः ।
 कृच्छ्रसाध्यमतास्तस्माद्यन्नादेता उपाचरेत् ॥ २४ ॥
 असाध्याः सन्निपातोत्था स्तासां यस्यामि लक्षणम् ।
 प्रयाससदृगाः कायित् कायिज्जंबूफलोपमाः ॥ २५ ॥
 लोहजानसमाः कायि दलभीफलसदिभाः ।
 आसां बहुविधा यस्यां जायन्ते दोषमेदतः ॥ २६ ॥
 कासो छिक्काप्रमोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ।
 प्रलापयारतिमूर्च्छा दृष्ट्यादाहो विधूर्णता ॥ २७ ॥
 मुखेन प्रसवेद्रजं तथा प्राप्तेन चक्षुषा ।
 कण्ठेर्धुर्धुरकं कृत्वा शसित्वत्यर्थदारुणम् ॥ २८ ॥

मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरः ।

लक्षणानीह दृश्यन्ते न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ २८ ॥

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत् ।

सध्रुवं त्यजति प्राणां स्तृपात्तां वायुदूषितः ॥ २९ ॥

मसूरिकान्ते शीथः स्यात् कूपरे मणिवन्धके ।

तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ ३१ ॥

अथान्यग्रन्यान्तरात् ।

द्वित्रिलक्षणसंयुक्तो हन्धोपद्रवसंयुतः ।

हन्धजास्तु त्रयो ज्ञेया मनुष्याणां मसूरिकाः ॥ ३२ ॥

कफवातादिसंभूतः कोद्रवो नाम संज्ञितः ।

लोके वदन्ति कक्षाकः सपाकं न च गच्छति ॥ ३३ ॥

यवशूकवदङ्गेषु विध्यति च विशेषतः ।

सप्ताष्टाष्टादशाष्टाष्टा स्वस्थो भवति मानवः ॥ ३४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

मसूरिकायां कुटोक्ता प्रलेपादिक्रिया हिता ।

पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया चात्र प्रशस्यते ॥ ३५ ॥

वेणुत्वक् सुरसालाक्षा कर्पासास्थि मसूरिकाः ।

यवपिष्टं विषं सर्पिं वंचान्नाह्वीसुवर्चला ।

धूपनार्थं यथालाभ धूममेतत्प्रयोजयेत् ॥ ३६ ॥

आदावेतत्प्रयोक्तव्यं नश्यत्याशु मसूरिकाः ।

न गृह्णन्ति विषं केचि यथालाभश्रुतेरिह ॥ ३७ ॥

इति धूपः ।

श्वेतचन्दनकल्को न हिलमोचाभवं रसम् ।
 पिवेन्मसूरिकारम्भे नैम्बं वा केवलं रसम् ॥ ३८ ॥
 विल्वपत्ररसेनैव मूर्च्छितः पारदो रसः ।
 हिलमोचरसं पीतं हन्ति माचिकसंयुतम् ॥ ३९ ॥
 भसूरीं सर्वजां शीघ्रं भस्त्रिजां सर्वदेहजाम् ।
 वमने मरणं प्रोक्तं स्तम्भने जीवनं मतम् ॥ ४० ॥
 सर्वासां वमनं पूर्वं पटोलारिष्टवासकैः ।
 कपायैश्च वचावत्स यष्ट्याञ्चफलकल्कितैः ॥ ४१ ॥
 सक्षौद्रं पाययेद्वाङ्मया रसं वा हिलमोचकम् ।
 वान्तस्य रेचनं देयं शमनं वाऽवले नरे ॥ ४२ ॥
 उभाभ्यां हृतदोषस्य विशुध्यन्ति भसूरिकाः ।
 निर्विकाराश्चाल्पपूयाः पच्यन्ते चाल्पवेदनाः ॥ ४३ ॥
 बाणोरविल्वजनितं काथं पर्युपितमुत्तमे दिवसे ।
 चैत्रस्य पापरोगं पिवत्तां न भवे द्रुतं चैतत् ॥ ४४ ॥
 नारीणां वामपादस्थं नराणामपसव्यगम् ।
 पापरोगं त्यजेद्दूरा च्छिरास्थिविनिवारणम् ॥ ४५ ॥
 चैत्रमितभूतदिने रक्तपताका स्रुहीभवने ।
 धवलितकलसे न्यस्ता पापरुजो दूरतोधत्ते ॥ ४६ ॥
 पटोलसारिवासुस्तं पाठाकटुकरोहिणी ।
 खदिरः पिचुमन्दश्च बलाधात्रीविकटतम् ।
 एषां कपायपानन्तु हन्ति वातमसूरिकाम् ॥ ४७ ॥
 द्विपञ्चमूलं रास्त्रा च धातुरशीरं दुरालभा ।
 सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातमसूरिकाम् ॥ ४८ ॥
 न्यपोधघ्नघ्नमश्लिष्टा शिरीषोदुम्बरत्वचाम् ।
 ससर्पिष्कं मसूर्यान्तु वातजायां प्रलेपनम् ॥ ४९ ॥

गुडूचीं मधुकं रास्त्रां पञ्चमूलं कनिष्ठकम् ।
 चन्दनं काश्मर्यफलं बलामूलं विकङ्कतम् ।
 पाककाले मसूर्यान्तु वातजायां प्रयोजयेत् ॥ ५० ॥
 गुडूचीमधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः सह ।
 पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥ ५१ ॥
 तेन पाकं ब्रजत्याशु न च वायुः प्रकुप्यति ॥ ५२ ॥
 लिङ्घाद्वदरचूर्णन्तु पाचनार्थञ्च गुडेन तु ।
 कफवातकृतास्त्रेण पच्यन्ते च मसूरिकाः ॥ ५३ ॥
 शोधनं पित्तजायान्तु कार्यं वैद्येन जानता ।
 तत्रादौ तर्पणं कार्यं लाजचूर्णैः सशर्करैः ॥ ५४ ॥
 भोजनं तिक्तयूपैश्च प्रतुदानां रसेन वा ।
 भोजनं चाथवा कार्यं दुष्टव्रणविसर्पिणा ॥ ५५ ॥
 श्रांदावैष मसूर्यान्तु पित्तजायां प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥
 निम्बपर्पटकं पाठा पटोलं चन्दनद्वयम् ।
 वासादुरालभाधात्री व्योषं कटुकरोहिणी ॥ ५७ ॥
 एतत्पलं शृतं शीतं मधुशर्करयान्वितम् ।
 मसूर्यान्तु प्रयोक्तव्यं पित्तजायां विजानता ।
 दाहे च्वरे विसर्पे तु व्रणे पित्ताधिके तथा ॥ ५८ ॥
 द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूर पटोलारिष्टवासकैः ।
 लाजामलकदुःसर्षः सितायुक्तान्तु पैत्तिके ॥ ५९ ॥
 शिरीषोदुम्बराश्वत्थ पोलुन्ध्रोधवल्कलैः ।
 प्रलेपः सद्यतः शीघ्रं व्रणविसर्पदाहहा ॥ ६० ॥
 श्यामापर्पटकारिष्ट चन्दनद्वयमूलकैः ।
 धात्रीतिक्तहृषोशीर यासैश्च कथितं जलम् ।
 पीतं मसूरिकां हन्ति पित्तजां दाहसंयुताम् ॥ ६० ॥

मोरटं काश्मर्यफलं शृतशीतं सशर्करम् ।
 लाजाचूर्णयुतं दद्यात्पित्तजायान्तु पाचनम् ॥ ६१ ॥
 दुरालभापर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी ।
 शैषिक्यां पित्तजायाच्च पाने निष्कृष्यदापयेत् ॥ ६२ ॥
 भूनिम्बमुस्तकं वासा विफलेन्द्रयवासकम् ।
 पिचुमन्दं पटोलञ्च सक्षौद्रं योजितं हितम् ॥ ६३ ॥
 खदिरारिष्टपत्रैश्च शिरोषोदुम्बरत्वचा ।
 कुर्यान्नेपं कफोत्थायां पित्तजायामथापि वा ॥ ६४ ॥
 हृष्यस्व स्वरमं दद्यात् चौद्रयुक्तं कफात्सके ॥ ६५ ॥
 कफजायां मसूर्यान्तु कठिनायां विग्रेपतः ।
 पाचनाय प्रदातव्यं लेपनं टधिमक्षुभिः ॥ ६६ ॥
 पटोलं कुण्डलीमुस्त हृषधान्ययवामकैः ।
 भूनिम्बनिम्बकटुका पर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ ६७ ॥
 मसूरीं गमयेदामां पक्तां चैव विगोधयेत् ।
 नातः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वरगान्तये ॥ ६८ ॥

इति पटोलादिकायः ।

पटोलमुस्ताऽरुणतडनीयकं पचेद्दरिद्रामलकल्कमयुतम् ।
 मसूरिविस्फोटविमर्षगान्तयेत्तदेव रोमान्तिवमिज्वरापहम् ॥ ६९ ॥
 निम्बपर्पटकं द्राक्षा पटोल कटुरोहिणी ।
 वामादुरालभाधात्री चोगोरं चन्दनद्वयम् ॥ ७० ॥
 एष निम्बादिकः कायः पीतः शर्करयान्वितः ।
 मसूरीं मर्षजां हन्ति ज्वरविसर्पसम्भवाम् ।
 उत्थिताप्रविगीद्यातु पुनस्तां वाह्यतो नयेत् ॥ ७१ ॥

इति निम्बादिकायः ।

काञ्चनारत्वचः काथ स्ताप्यचूर्णवचूर्णितः ।

निर्यन्वग्रान्तः प्रविष्टान्तु मसूरीवाञ्छतो नयेत् ॥ ७२ ॥

पटोलमूलारुणतंडुलीयकं तथैव धात्रोखदिरेण संयुतम् ।

पिवेज्जलेन कथितं सुशीतलं मसूरिकारोगविनाशनं परम् ॥ ७३ ॥

सुपत्रीपत्रनिर्यामं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ।

रोमन्ती ज्वरवोमर्षं मसूरीशान्तये विवेत् ॥ ७४ ॥

दुरालभापर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी ।

श्लेष्मपित्तममूर्थान्तु काथमेपां प्रयोजयेत् ॥ ७५ ॥

रमं पूतिकरञ्जम्य चामलक्यारमं तथा ।

पिवेत्सर्गर्कराक्षोदं शोफनुत्कफपैत्तिके ॥ ७६ ॥

अमृतादिकपायन्तु जयेत्पित्तकफात्मिकीम् ।

तथा गोणितसंमृष्टं जवेच्छोणितमोक्षणैः ॥ ७७ ॥

कायिहिना पयद्वेन सिद्धन्त्याशु मसूरिकाः ।

कृच्छ्रात् कृच्छतराः कायित् कायित्स्थिध्यन्ति वा नवा ।

कायित्रैव प्रमिध्यन्ति साध्यमानाः प्रयत्नतः ॥ ७८ ॥

मौवीरेण तु संपिष्टं मातुलुङ्गम्य केशरम् ।

प्रलेपात्पाचयत्याशु दाहं वापि नियच्छति ॥ ७९ ॥

पाटदाहन्तु कुरुते पिटिका पादजाभृगम् ।

तत्र मेकं प्रकुर्वीत बहुगस्तंडुलांबुना ॥ ८० ॥

पाककाले तु मर्यास्ता विशीषयति मारुतः ।

तस्मात्संमृष्टं कार्यं नतु पथ्यं विशेषणम् ॥ ८१ ॥

निश्चाश्रयादरं धूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु ।

अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मकाः ॥ ८२ ॥

शूलाधानपरीतम्य कम्पमानम्य वायुना ।

धन्वमांभरमाः शस्ता ईषत्सैन्धवसंयुताः ॥ ८३ ॥

दाडिमाम्तरसैर्युक्ता यूपाः स्युस्त्वरुचौ हिताः ॥ ८४ ॥

पिवेदम्भस्तप्तशोतं भावितं खदिरासनैः ॥ ८५ ॥

शौचे वारिप्रयुञ्जीत गायत्रिबहुवारजम् ॥ ८६ ॥

जातीपत्रसमञ्जिष्टा दार्वीपूगफलं शमो ।

धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् ॥

मुखत्रणे कण्ठरोगे गंडूगार्थं प्रशस्यते ॥ ८७ ॥

अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकांबुना ॥ ८८ ॥

मधुकं त्रिफलामूर्वा दार्वीत्वङ्गीलमुत्पलम् ।

उशीरलोभ्रमञ्जिष्टा लेपाद्याच्योतने हिताः ॥ ८९ ॥

नश्यन्त्यनेन दृग्जाता भसूर्यो न भवन्ति च ।

प्रलेपमञ्जन दद्याद्बहुवारस्य बल्कलैः ॥ ९० ॥

पञ्चबल्कलचूर्णेन क्लिन्ना स्त्राववतो तथा ।

दशाङ्गलेपचूर्णेण चूर्णिता शान्तिमेति च ॥ ९१ ॥

कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत्सरलाटिभिः ।

वेदनादाहशान्त्यर्थं सुतानां च विशुद्ध्यै ॥ ९२ ॥

तथाष्टाङ्गावलेहोऽत्र कबलचार्द्रकादिभिः ॥ ९३ ॥

निशाहयोशीरशिरीष मुस्तकैः सलोभ्रभद्रश्रियनागकेशरैः ।

सस्त्रेदविस्फोटविसर्प कुष्टदौर्गन्ध्यरोमान्तिहरः प्रदेहः ॥ ९४ ॥

पञ्चतिलं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनभोजनैः ।

कुर्याद्घ्नविधानञ्च तैलादीन् वर्जयेच्चिरम् ॥ ९५ ॥

निम्बवम्बूरकाशोक विम्बीवेतसबल्कलम् ।

शृतंशोतं प्रयोक्तव्यं स्त्रावप्रक्षासने सदा ॥ ९६ ॥

जपहीमोपचारैश्च दानस्वस्त्ययनादिभिः ।

घण्टाकर्णं द्विजान् गाय शिवं गोरोक्षं पूजयेत् ॥ ९७ ॥

अगदानिविषघ्नानि रत्नानि च भिषग्वरः ।

धारयेद्वाचयेच्चापि वैनतेयस्य संहिताम् ॥ ८८ ॥

—०—

कृत्वा दार्वीकपायञ्च कल्केरेभिः पचेद् दृढम् ।

दशमूलीबलापथ्या कुष्टराम्नाविभीतकैः ॥ ८९ ॥

दार्वीत्वग्मक्तमालैश्च समञ्जिष्टैः सुपेषितैः ।

अपक्वाः पाचयत्याशु पक्वाश्चैव विशोधयेत् ॥

क्षुद्रास्तु शमयत्येतत् सेकादपि मसूरिकाः ॥ १०० ॥

इति दार्वीदृढम् ।

मसूरीषु प्रयुञ्जीत गौराद्यं पञ्चकं तथा ।

नैवं शैरोपिकं यापि भिषक् सर्वेषु कर्मसु ॥ १०१ ॥

कूर्परादि भवे शोथे यद्वाक्लिङ्घिः प्रजायते ।

ब्रणशोथहरैर्योगे वातयोगहरैस्तथा ॥ १०२ ॥

दुष्टव्रणेषु तेष्वेव जलौकाभिर्हरिदसृक् ॥ १०३ ॥

इति वङ्गसेने मसूरिकानिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ६२ ॥

—०—

अथ क्षुद्ररोगनिदानमाह ।

स्निग्धाः सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभाः ।

कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिकाः ॥ १ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् ।

शुक्तिसौराद्रिकाचार कल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥ २ ॥

कठिनां चारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् ।
 श्यामालाङ्गलिकामूर्वा कल्कैर्वापि विलेपयेत् ॥
 पक्तां ब्रणविधानेन यद्योक्तेन प्रसाधयेत् ॥ ३ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

विवृतास्यां महादाहं पक्कोदुस्वरसन्निभाम् ।
 प्रमण्डलां पित्तक्षतां विवृतां नाम तां विदुः ॥ ४ ॥
 पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडिकाभिः समाचिताम् ।
 इन्द्रवद्वान्तु तां विद्या द्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ५ ॥
 मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरत्तं पिडिकान्वितम् ।
 रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ६ ॥
 बातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्निजः ।
 स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पापाणगर्दभः ॥ ७ ॥
 कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडिकामुग्रवेदनाम् ।
 स्थिरां पनासिकां तान्तु विद्यादन्तः प्रपाकिनीम् ॥ ८ ॥
 बिसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् ।
 दाहज्वरकरः पित्तात् सन्नेयो जालगर्दभः ॥ ९ ॥
 पिडिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाकरीम् ।
 सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिग्वेष्टिकाम् ॥ १० ॥
 बाहुपाश्र्वांमकक्षेषु क्षणस्फोटं सवेदनाम् ।
 पित्तप्रकोपसंभूतां कक्षामित्यभिनिर्देशेत् ॥ ११ ॥
 एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिटिकां स्फोटसन्निभाम् ।
 त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते ॥ १२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

विड्वतामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम् ।
 हरिवेत्नीं गन्धनामां कक्षा विस्फोटकांस्तथा ॥
 पित्तजस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्भिषक् ॥ १३ ॥
 रोपयेत्सर्पिषापक्कान् सिद्धेन मधुरीषधैः ॥ १४ ॥
 सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्नेदयित्वा प्रलेपयेत् ।
 कफमारुतशोथघ्नो लेपः पापाणगर्दभे ॥
 परिपाकगतं भित्वा व्रणवत् समुपाचरेत् ॥ १५ ॥
 नीलीपटोलयोर्मूलं जलपिष्टं घृतमृतम् ।
 निहन्ति लेपनाव्रूनं जालगर्दभजां रुजाम् ॥ १६ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

घनामवक्त्रां पिटिकासुव्रतां परिमण्डलाम् ।
 अन्तालजीमत्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ १७ ॥
 यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ।
 पिटिकाश्चेफवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ १८ ॥
 ग्रथिताः पञ्च वा षड्वा दारुणाः कच्छपीव्रताः ।
 कफानिलाभ्यां पिटिका ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ १९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अलजीं यवप्रख्याञ्च पनसीं कच्छपीं तथा ।
 पापाणगर्दभञ्चैव पूर्वं स्नेदेरुपाचरेत् ॥ २० ॥

मनःशिला देवदारु कुष्ठकल्कैः प्रलीपयेत् ।
पक्वान् ब्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ २१ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

गन्धौरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरिस्थिताम् ।
पादस्थानुशयीतान्तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥ २२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

श्लेष्मविद्रधिकल्केन जयेदनुशयीं भिषक् ॥ २३ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

विदारिकान्दवहतां कक्षाबद्धाणसन्धिषु ।
विदारिकामिति वदेत् सरुजां सर्वलक्षणाम् ॥ २४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

रक्तावसेकैर्वहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः ।
जयेद्विदारिकां लेपैः शिशुदेवद्रुमोद्भवैः ॥
नगहृत्तिकवर्षाभू विल्यमूलैरथापि वा ॥ २५ ॥
पक्वा विदार्थ्यशस्त्रेण पटोलपिचुम्बन्दयोः ।
कल्केन तिलयुक्तेन सर्पिर्मिश्रेण लेपयेत् ॥ २६ ॥
बद्धा च क्षीरहृत्तस्य कषायैः खदिरस्य च ।

ब्रणं प्रक्षालयेच्छुद्धां ततस्तां रोपयेत्पुनः ॥
 रोपणार्थं हितं तैलं कषायमधुरैः शृतम् ॥ २७ ॥
 कच्छपिकां पनसिका मनेन विधिना भिषक् ।
 साधयेत्कठिनानन्या च्छोथान् दोषसमुद्भवान् ॥ २८ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

प्राप्यमांसं शिरां स्नायुं श्लेष्ममेदस्तथाऽनिलः ।
 ग्रन्थिं करोत्यसौ भिक्षो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २९ ॥
 स्रवत्याऽऽस्त्रावमनिल स्तत्र वृद्धिं गतः पुनः ।
 मांसं विशेष्य ग्रथितां शर्कराञ्जनयत्यतः ॥ ३० ॥
 दुर्गन्धिं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः ।
 स्रवन्ति रक्तां सङ्घसा तं विन्द्याच्छर्करावुदम् ॥ ३१ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

मेदोऽवुदविधानेन साधयेच्छर्करावुदम् ॥ ३२ ॥
 कच्छाविचर्चिकापामा लसकाः कुष्टलिङ्गकाः ।
 कुष्टरोगोक्तविधिना एतांस्तद्वदुपाचरेत् ॥ ३३ ॥
 लेपय शस्यते सिकथ शताङ्गागोरसर्पपैः ।
 बचाटार्वीसर्पपैर्वा तैलं वा नक्तमालजम् ॥
 सारतैलमथाभ्यङ्गं कुर्वीतकटुकैः शृतम् ॥ ३४ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

सममुत्सन्नमंरुजं मण्डनं कफरक्तजम् ।

सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जन्तुमणिस्तु सः ॥ ३५ ॥
 अवेदनं स्थिरश्चैव यस्मिन् गात्रे महश्यते ।
 मापवत् क्षणमुत्सन्न मनिलान्मापमादिशेत् ॥ ३६ ॥
 क्षणानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि वा ।
 वातपित्तकफोद्रेके तान्विन्द्यातिलकालकान् ॥ ३७ ॥

—०—

अथ चिकित्सांमाह ।

चर्मकीलं जन्तुमणिं मापकांस्तिलकालकान् ।
 उत्कृष्टशस्त्रेण दहेत् क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ ३८ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतशोणितैः ।
 जायन्ते पिटकायूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥ ३९ ॥
 महद्वा यदि वाल्यं स्याच्छ्रावं वा यदि वा सितम् ।
 नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ४० ॥
 क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः ।
 मुखमागम्य सहसा मण्डलं विमृजत्यतः ॥
 नीरुजं तनुकं श्वावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत् ॥ ४१ ॥
 क्षणमेव गुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥ ४२ ॥

—०—

अथ चिकित्सांमाह ।

युवानपिटकान्यच्छ नीलिकां व्यङ्गशर्कराः ।
 शिराव्यधैः प्रलेपेच्च जवेदभ्यञ्जनैस्तथा ॥ ४३ ॥

अंगुलस्य चतुर्भांगो मुखलेपो विधीयते ।

मध्यमस्तु त्रिभागः स्यादुत्तमोर्धांगुलो भवेत् ॥

स्थितिकालञ्च शुष्कत्वं शुष्को दूषयति त्वचम् ॥ ४४ ॥

इति मुखलेपमात्रा ।

रोध्रधान्यवचालेपः तारुण्यपिटकापहः ।

तद्वह्नीरोचनायुक्तं भरिचं मुखलेपनात् ॥ ४५ ॥

सिद्धार्यकवचालोध्र सैन्यवैद्य प्रलेपनम् ।

वमनं च निहन्त्याशु पिटिकां यौवनोद्भवाम् ॥ ४६ ॥

व्यङ्गे पु चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्टा वा समाक्षिका ।

लेपः स्रनवनीतो वा खेताख्खुरजामपो ॥ ४७ ॥

रक्तचन्दनमञ्जिष्टा कुटरोध्र प्रियङ्गवः ।

वटाङ्कुरमसूराद्य व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ॥ ४८ ॥

व्यङ्गानां लेपनं हस्तं रुधिरेण शशस्य च ।

व्यङ्गो मञ्जिष्टया कुर्यात् लेपनं मधुसंयुतम् ॥ ४९ ॥

तिलतैलं प्रतिमर्षां क्षिप्तसाक्षात् कृताभवम् ।

नश्यन्ति चण्डपिटिकाः पयोल्या इव घर्मतः ॥ ५० ॥

मातुलुङ्गजटासर्पिः शिलागोगक्षतो रसः ।

मुखकान्तिकरो लेपः पिटिका व्यङ्गकालजित् ॥ ५१ ॥

परिणतदधिशरपुद्गैः कुवलयदलकुटचन्दनोशीरैः ।

मुखकमलकान्तिकारी पिटिकातिलकालकान् जयति ॥ ५२ ॥

त्रिभुवनविजयापत्रं भूलं स्वविरस्य शिंगपा चैभिः ।

कल्पितमुदत्तनखैर्न्यच्छव्यगापहं सिद्धम् ॥ ५३ ॥

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा प्रलेपनात् ।

मुखकाण्ठं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥ ५४ ॥

गोमयस्य रसः सर्पिः मातुलुङ्गं मनःशिला ।

मुखस्य वर्णकरणं तिलकालकनाशनम् ॥ ५५ ॥
 वटस्य पांडुपत्राणि मालतीरक्तचन्दनम् ।
 कुष्ठं कालीयकं लोध्रं मेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥
 युवानपिटिकानां तु व्यङ्गानां च विनाशनम् ।
 मुखं पद्मनिभं कुर्यान्नोलिकादिविवर्जितः ॥ ५७ ॥
 यवान् सर्जरसं लोध्रं मुशीरं चन्दनं मधु ।
 घृतं गुडञ्च गोमूत्रं पचेदादर्विलेपनम् ॥ ५८ ॥
 तदभ्यङ्गान्निहन्त्याशु नोलिकां व्यङ्गदूषिकाम् ।
 मुखं करोति पद्माभं पादौ पद्मदलोपमौ ॥ ५९ ॥

कालीयकोत्पलाऽऽमय दधिसर वरास्त्रिमध्य फलिनीभिः ।

लिप्तं भवति हि वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥ ६० ॥
 रक्षोघ्नशर्वरीद्वयं मञ्जिष्ठागैरिकाह्वस्तपयः ।
 सिद्धेन लिप्तमाननं मुद्यच्छरदिन्दुबिम्बवज्जिभाति ॥ ६१ ॥
 प्रियङ्गुचन्दनं लोध्रं कुष्ठं पांडुवटच्छदम् ।
 कालीयकान्वितं लेपात् कुर्याच्चन्द्रनिभं मुखम् ॥ ६२ ॥
 हरिद्राद्वययथाह्वं कालीयककुचन्दनैः ।
 प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठा पद्मकं कुष्ठकुङ्कुमम् ॥ ६३ ॥
 कपित्थतिन्दुकप्लव्णं वटपत्रैः पयोन्वितैः ।
 पाचयेत् कल्कितैरेतैः स्तैलं वाभ्यञ्जने चरेत् ॥ ६४ ॥
 विप्लवं नोलिकाव्यङ्गं तिलकान्मुखदूषिकान् ।
 नित्यसेवीजयेत् क्षिप्रं मुखं कुर्यान्मनोहरम् ॥ ६५ ॥

इति हरिद्राद्यं तैलम् ।

मञ्जिष्ठाकेशरं लाक्षा सर्पपालोध्रचन्दनम् ।
 प्रपौण्डरीकं मधुकं पतङ्गं गैरिकं वचा ॥ ६६ ॥
 कर्पासास्थिशिलामञ्ज कर्पूः कल्कैर्द्वयोन्वितैः ।

पचेत्तैलस्य कुडव मज्जाक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ६७ ॥

सिद्धेऽवतारिते दद्यान्मधूच्छिष्टं द्विरंशकम् ।

स्रक्षयेन्मुखमेतेन सप्तरात्रमतन्द्रितः ॥ ६८ ॥

पिटकास्तेन शाम्यन्ति तिलकाव्यङ्गकालिकाः ।

मुखकाण्णार्जन्तुमणि पद्मिनीकण्टकास्तथा ।

मञ्जिष्ठाद्यमिदं तैलं मुखवर्णप्रसादनम् ॥ ६९ ॥

इति मञ्जिष्ठाद्यं तैलम् ।

मधूकस्य कपायेण तैलस्य कुडवं पचेत् ।

कल्कैः प्रियंगुमञ्जिष्ठा चन्दनोत्पलकेशरैः ॥ ७० ॥

कनक नाम तत्तैलं मुखकान्तिकरं परम् ।

अभोरुनीलिकाव्यग शोधनं परमर्चितम् ॥ ७१ ॥

इति कनकतैलम् ।

कुङ्कुमं चन्दनं पत्र मुशीरं चन्दनोत्पलम् ।

गोरोचनाहरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठामधुयष्टिका ॥ ७२ ॥

पतङ्गं शारिवालोध्रं कुष्टं गैरिककेशरम् ।

स्वर्णमाक्षीप्रियगुथ कालीर्यं रक्तचन्दनम् ॥ ७३ ॥

एतै रक्षसमैर्भागै स्तैलप्रस्थं विपापयेत् ।

अभ्यङ्गो राजपत्नीभ्यां ये चान्ये धनिनो नराः ॥ ७४ ॥

तिलकापिटकाव्यङ्ग नीलिकामुखदूषिकाः ।

शर्कराश्च शरीरस्य दुग्धायाश्च विसर्पणम् ॥ ७५ ॥

नाशयत्याशुजनये द्रूपं चापि मनोरमम् ।

पद्मकेशरवर्णाभं मुखं भवति कान्तिमत् ॥ ७६ ॥

इति कुङ्कुमाद्यं तैलम् ।

अथ निदानमाह ।

कण्टकैराचितं वृत्तं मण्डलं पांडुकंडूरम् ।
पद्मिनीकण्टकप्रख्यै स्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ७७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पद्मिनीकण्टके रोगे हृदयेन्निम्बवारिणा ।
तेनेव मिदं सचौद्रं सर्पिष्पातुं प्रदापयेत् ॥ ७८ ॥
निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुर्द्वर्तनं हितम् ॥ ७९ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरुक्षयोः ।
पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ ८० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पाददार्थां शिरां प्राञ्चो मोचयेत्तलगोधिनीम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः ।
मधूच्छिष्टवसामज्जो घृतैः चारविमिश्रितैः ॥ ८१ ॥
मर्ज्जाहमिन्भूद्वयो रूर्णं मधुघृताप्लुतम् ।
निम्बप्यकटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जनम् ॥ ८२ ॥
मधुसिक्थकसैन्धव घृतगुडमक्षिपाग्यमालनिष्यामि ।
गैरिकमहितैलेपः पादस्फुटनापहः मिदः ॥ ८३ ॥
श्यामसजालीमुस्तक हविषामंनिष्यचरणमतिवदुगः ।

संमृद्यनयतिनाशं पादस्फुटनाद्वयं रोगम् ॥ ८४ ॥

उपोदिकासर्पपनिवमोच कर्कारुकैर्धारुकभस्मतोयैः ।

तलं विपक्वं लवणांशयुक्तं तत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात् ॥ ८५ ॥

इत्युपोदिकाद्यं तैलम् ।

उन्मत्तकस्य नीरेण माणकचारवारिणा ।

कटुतैलं विपक्वन्तु शीघ्रं हन्याद्विपादिकाम् ॥ ८६ ॥

इत्युन्मत्ततैलम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः ।

ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरन्तु तत् ॥ ८७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

देहिक्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ८८ ॥

—

अथ निदानमाह ।

नखमांसमधिष्ठाय वायुः पित्तञ्च देहिनाम् ।

कुरुते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥ ८९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

चिप्यं शोणितमोज्जेण शोधनैश्चाप्युपाचरेत् ।

गतोष्माणं तथा चैनं सुष्णांशुपरिपिचितम् ॥ ९० ॥

शस्त्रेणापि यथा योग मुक्तृत्य सावयेद्वणम् ।
 व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तं विचक्षणः ॥ ८१ ॥
 शिलातेजोवती चैव रोचनाचरसाञ्जनम् ।
 कल्कैरेतैरंबुपिष्टैः शोधयित्वा व्रणञ्च तत् ॥ ८२ ॥
 हरिद्रागुल्मकालीय कल्कोश्च सरसाञ्जनैः ।
 सिद्धेन तिलतैलेन तत्तस्तु रोपयेद्वणम् ॥ ८३ ॥
 दाडिमजकुसुमधन्व यासाभयाश्चक्षुचूर्णिताक्षिता ।
 नखकोटिपूतिभागं शमयति च शूलं तत्क्षणतः ॥ ८४ ॥
 अन्तर्धूमनिदग्धस्य हरितालान्वितस्य च ।
 तंडुलीयकमूलस्य चूर्णं पूतिनखापहम् ॥ ८५ ॥
 उद्धृत्यकोणाक्षमुपास्यकल्कं सिक्तं नखं पूयत्वगस्थिमज्जः ।
 तैलप्रदानात्कृतं नखाश्च रोहन्ति शुद्धा विगतामयाश्च ॥ ८६ ॥
 स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वायसेभयाम् ।
 पिष्ट्वा तप्तेन कल्केन लिम्पे च्छिद्यं पुनः पुनः ॥ ८७ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

तदेवाल्पतर्देयैः कुनखं परुषं भवेत् ॥ ८८ ॥
 तन्मान्तरे च ।
 अभिद्याताप्रदृष्टोयो नखोरुचो सितः खरः ।
 भवेत्तं कुनखं विद्यात् कुलिरमिति संज्ञितम् ॥ ८९ ॥

—०—

अथ चिकित्सा माह ।

श्लेष्मविद्रधिकल्केन कुनखं समुपाचरेत् ॥ १०० ॥

नखकोटिप्रविष्टेन टङ्गणेन न शाम्यति ।

कुनखयेत्तदाभ्रान्तः शैलोऽपि प्रवते जले ॥ १०१ ॥

काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितैः ।

चंगुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशुप्रशाम्यति ॥ १०२ ॥

इति कुनखोपक्रमः ।

—०—

अथ निदानमाह ।

क्लिबांगुल्यन्तरो पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ ।

दुष्टकर्दमसंस्पर्शा दलसन्तं विभावयेत् ॥ १०३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पादौ सिक्कारणालेन लेपनं त्वलसे हितम् ।

कल्कैः कृतैर्निम्बतिल शिलाकासीसरोचनैः ॥ १०४ ॥

लाक्षाऽभयारसालेपं कार्यं वा रक्तमोचणम् ॥ १०५ ॥

वृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ।

शिलारोचनकाशीस चूर्णैर्वा प्रतिसारयेत् ॥ १०६ ॥

करञ्जबीजं रजनी काशीसं पद्मकं मधु ।

रोचनाहरितालञ्च लेपीयमलसे हितः ॥ १०७ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

अरुं पिवद्भुवक्लाणि बहुक्तेदीनिमूर्च्छिनि ।

कफासृक् क्षमिकोपेन नृणां विद्यादरूपिकाम् ॥ १०८ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अरुं पिकां जलीकाभि र्पाहयेद्दुशो भिषक् ।

प्रक्षालयेन्मुहुस्तत्र सैन्धवकाथवारिभिः ॥ १०८ ॥

अरुं पिकायां रुधिरैऽवसिते शिराव्यधेनाथ जलीकासा वा ।

निम्बांबुसिते शिरसि प्रलेपो देयोऽश्वत्थैर् रससैन्धवाभ्याम् ॥ ११० ॥

सुहुर्मुहुस्ततो लिम्पेत् पटोलारिष्टवासकैः ।

खदिरारिष्टजंबूनां त्वग्निर्वा मूत्रसंयुतैः ॥ १११ ॥

कुटजत्वक् च लवणं संप्रपिष्टं प्रलेपयेत् ।

गोशक्तद्रसपिष्टं वा तालमूलं प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

निम्बोदकेन लवणैः प्रलेपोऽश्वत्थक्तद्रसैः ॥ १२३ ॥

पुराणमथपिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च ।

मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुं पिकाम् ॥ ११४ ॥

कपालभ्रष्टकुटं वा चूर्णितं तैलसंयुतम् ।

अरुं प्यां लेपनं क्लेद दाहास्त्रज्वरनाशनम् ॥ ११५ ॥

सुहृत्कर्कदुग्धधतूर पत्रं मूत्रविमिश्रितम् ।

लेपनं तैलसंयुतं हितं कंडूशिरोव्रणे ॥ ११६ ॥

सुण्डयित्वा शिरः पूर्वं क्रियामेतां प्रयोजयेत् ॥ ११७ ॥

हरिद्राद्वयभुनिम्य त्रिफलारिष्टचन्दनैः ।

एतत्तैलमरुं पोषां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ ११८ ॥

इति हरिद्राद्यं तैलम् ।

सुहो सुपरशुहिन्ना शालिपर्णजन्तुतिका ।

एतेषां पनिकान् भागान् कर्पं स्यात् केयमधतः ॥ ११९ ॥

शर्फरीं विंशतिन्द्या क्षायन्तीं माचिकाः क्षिपेत् ।

अरुं पिकां नाशयति जयेदुष्टव्रणानपि ॥ १२० ॥

नखदन्तचतोत्पन्नान् विच्छिन्नांश्च विसर्पिणः ।

पत्यन्तपूयबहुला असावा; कुपिताखये ॥ १२१ ॥

अचणाच्छोपयेद्ग्रीष्मं पञ्चवाभोरुहान्यथा ।

शोधयेद्ग्रीष्मं यथाभिहितभोजिनः ॥ १२२ ॥

इति सूहाद्यं तैलम् ।

मांसीस्वरससंसिद्धं कटुतैलं चतुष्पलम् ।

सनःशिला तथा मांसं राजीवजश्च गन्धकम् ॥ १२३ ॥

शाणमात्रैस्तदभ्यङ्गा हन्त्यवश्यमरूपिकाम् ।

पामां विचर्चिकाञ्चैव तथान्यान्धिरसो वृणान् ॥ १२४ ॥

इति मांसीतैलम् ।

इन्द्रलुप्तोक्त विधिना तैलेनानेन वा जयेत् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

दारुणाकंदूरारुक्षा केशभूमिश्च जायते ।

कफमारुतकोपेन विद्याहारुणकं भिषक् ॥ १२५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

दारुणे तु शिरां बिध्येत् स्निग्धां खिन्नां ललाटजाम् ।

अवपीडयिरोक्सीते नभ्यंगाश्चावचारयेत् ॥ १२६ ॥

कोद्रवाणां टण्णचार पानीयं परिधावने ॥ १२७ ॥

कार्योदारुणकेमूर्द्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ।

प्रियालबीजसमृक् कुट्मापैः ससैन्धवैः ॥ १२८ ॥

नीलोत्पलस्य किञ्चल्कं धात्रीफलसमन्वितम् ।

यष्टीमधुकसंगुल्लं प्रलेपाद्वारुणं जयेत् ॥ १२८ ॥

गुञ्जाफलैः शृतं तैलं भृङ्गराजरसेन वा ।

कण्डूदारुणद्वत्कुष्ठ कपालव्याधिनाशनम् ॥ १२० ॥

इति गुञ्जातैलम् ।

कीचकानां एलैः पिष्टैः कटुतैलं विपाचयेत् ।

सर्गोमूत्रं तदभ्यङ्गात् कपालव्याधिनाशनम् ॥ १३१ ॥

इति कीचकाद्यं तैलम् ।

चित्रकं दन्तीमूलञ्च कीशातकीसमन्वितम् ।

कल्कं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशदद्गुविनाशनम् ॥ १३२ ॥

इति चित्रकाद्यं तैलम् ।

भृङ्गराजत्रिफलोत्पलशारि लोहपुरीषसमन्वितकारि ।

तैलमिदं पचदारुणहारि कुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ॥ १३३ ॥

इति भृङ्गराजतैलम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् ।

प्रस्थावयतिरोमाणि ततः श्रेष्ठा मशोणितः ॥ १३४ ॥

रुणहिरोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः ।

तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुद्धेति च विभावयेत् ॥ १३५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

इन्द्रसुते गिरां मूर्द्धिं घृग्धृषिघ्नस्य मोक्षयेत् ।

फलैः समरिचैर्दिद्या ष्विलाकाशीसतुत्यकैः ॥ १४६ ॥

कुट्टवटादारुकल्क लेपनं वा प्रशस्यते ॥ १३७ ॥
 तिक्तापटोलोपत्र स्वरसे वृष्टा शर्म याति ।
 चिरकालजापिरुह्या नियतं दिनत्रयादेव ॥ १३८ ॥
 अवगाढपदं वापि म्रचयित्वा पुनः पुनः ।
 गुन्नाफलैश्चिरं लिम्पेत् केशभूमिं समन्ततः ॥ १४९ ॥
 इन्द्रजुसापहोलेपा आधुना वृहत्तोरसः ।
 गुन्नामूलफलं वापि भक्तातकरसोऽपि वा ॥ १४० ॥
 गुन्नापत्रं विषं तैलं तिलामधुककान्जिकम् ।
 पतन्यनेन नो केशा लेपाद्वोहन्ति चाद्भुतम् ॥ १४१ ॥
 गोक्षुरं तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुमर्पिणी ।
 शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ १४२ ॥
 हस्तिमन्तमपीं कृत्वा आजं क्षीरं रसाञ्जनम् ।
 लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि ॥ १४३ ॥
 मधुकेन्दोवरं मृही तैलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन ।
 अचिराद्भवन्ति केशा दृढमूलायता ऋजवः ॥ १४४ ॥
 चतुष्पदानां त्वग्रोम नखशृङ्गाग्निभस्मभिः ।
 तैलाक्ताकेशभूमिद्या ऽऽवृत्ताकेशयुता भवेत् ॥ १४५ ॥
 शीर्ष्यत्सु वापि केशेषु बहुशो व्यधयेच्छिराम् ।
 मूर्द्धितैलं प्रकुर्वीत नस्यकर्मविरचनैः ॥ १४६ ॥
 मालतीकरवीरान्नि नक्तमालैर्विपाचितम् ।
 तैलमभ्यञ्जने शस्त मिन्द्रजुसहरं परम् ॥ १४७ ॥

—०—

सुहीपयः पयोऽर्कस्य लाङ्गलीमार्कवो विषम् ।
 आजमूत्रं सगोमूत्रं रत्निकासेन्द्रवारुणी ॥ १४८ ॥
 सिद्धार्थकं तीक्ष्णगन्धा गर्भं दत्वा विपाचितम् ।

वज्जिना मृदुना पक्वं तैलं खालित्यनाशनम् ॥ १४८ ॥

कूर्मपिष्टसमानापि रुक्षायारोमतस्करो ।

दिग्धा सानेन जायेत ऋचशरीरलोमशा ॥ १५० ॥

इति सुहृदादिखालित्यहरं तैलम् ।

तैलं सयष्टीमधुकैः चीरे च त्रैफलैः शृतम् ।

नस्ये दत्तं जनयति केशान् श्लथूणि चाप्यथ ॥ १५१ ॥

इति यष्टीमधुकाद्यं तैलम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

क्रोधशोकत्रयमकृतः शरीरोष्माशिरोगतः ।

पित्तञ्च केशान् पचति पलित तेन जायते ॥ १५२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

धात्रीफलं द्वय पथ्ये हे तथैकं विभीतकीम् ।

लोहचर्णस्य कर्पन्तु दशार्धं चूतमज्जतः ॥ १५३ ॥

पिष्ट्वा लोहमये पात्रे स्वापयेदुषितं निगाम् ।

नेपोऽयं हन्ति न चिरा दशानपलितं महत् ॥ १५४ ॥

पयोऽरजो भृङ्गराज स्निग्धलाक्ष्णशुक्तिः ।

म्यितमिचुरमे मामं समुमं पलितं जयेत् ॥ १५५ ॥

लोहमन्मामलकस्कैः सजयाकुसुमैर्नरः मदास्रायी ।

पलितानोह न यज्यति गङ्गास्रायीव नरकानि ॥ १५६ ॥

क्षिप्त्वा नीलिकापत्रं लोहभृङ्गरजः समम् ।

षाविमूत्रे ण संयुक्तां क्षणोत्तराणुत्तमम् ॥ १५७ ॥

निम्बस्य बीजानि हि भावितानि भृङ्गस्य तोयेन तथाऽग्नस्य ।
तैलञ्च तेषां विनिवृन्ति नस्यादुग्धान्नभोक्तुः परितं समूलम् ॥ १५८ ॥
इति निम्बबीजतैलम् ।

केतकं भृङ्गनीलोका पार्थपुष्पं सवीजकम् ।
सहचरं तिलाक्षणा पिण्डीतकमयो रजः ॥ १५९ ॥
अमृता चोत्पलं श्यामा त्रिफलापद्मकर्दमैः ।
कल्कैरेभिः पचेत्तैलं त्रिफलाक्तायमार्कवैः ॥ १६० ॥
अकालपलितं हन्ति नाशयेदुपजिह्विकाम् ।
केशाद्य तेन जायन्ते स्निग्धाद्याञ्जनसन्निभाः ॥ १६१ ॥
इति केतकादितैलम् ।

अञ्जनं मधुकं श्यामा तार्क्ष्यजं शारिवोत्पलम् ।
त्रिफलानोलिकापत्रं काशीसं सुस्तकं तिलाः ॥ १६२ ॥
आम्रास्थितालपत्रञ्च फलं विभीतकस्य च ।
जम्बाम्राजुनपुष्पाणि कूर्मपित्तं सतुल्यकम् ॥ १६३ ॥
शिशिपाभूतकेशी च मार्कवश्च त्रिकण्टकम् ।
पृथक्कर्पममान् भागान् तथा लोहरजसमम् ॥ १६४ ॥
तैलप्रस्थमजाक्षीरं धात्रीभृङ्गरसाढकम् ।
अक्षकस्य रसस्यापि लोहपात्रे विपाचयेत् ॥ १६५ ॥
पक्वं तन्नोष्ठभागद्वयं शिरसोऽभ्यञ्जनस्ययोः ।
यत्रेन योजयेत्तैलं वराङ्गे विनिपातयेत् ॥ १६६ ॥
पतन्ति बिन्दवो यत्र क्षणं तदुपजायते ।
भवन्ति कुटिलाः शोघ्रं कचाः पट्पदकोपमाः ॥ १६७ ॥
खालित्थं पलितञ्चैव इन्द्रलुप्तञ्च नाशयेत् ।
मध्यं चक्षुष्यमायुथं बलवर्णकरं परम् ।

नीलविन्दितिविख्यातं विश्वामित्रेण पूजितम् ॥ १६८ ॥

इति नीलविन्दुतैलम् ।

काश्मर्यार्जुनजबू सहचरकुसुमानि चूतफलमध्यम् ।

पिण्डीतकफलत्रिफलातैलस्य फलाष्टकं विपाचयेत् ॥ १६९ ॥

दत्त्वा प्रयत्नतुर्गुणं मधुभृङ्गस्य मधुकफलरसमिश्रम् ।

सिद्धेन तेन दिग्धा भवन्ति धवलाप्यलिकुलनिभाः ॥ १७० ॥

कुन्देन्दुशङ्खधवलैश्चितमपि केशैः शीर्षं मासेन

भञ्जनभृङ्गश्यामं भवति सदा नस्यतोद्दयतम् ॥ १७१ ॥

इति काश्मर्याद्यं तैलम् ।

काश्मर्यामूलमादी सहचरकुसुमं केतकीनाञ्च मूलं

सायधूर्णं सभृङ्गं त्रिफलजलयुत तैलमेभिः पचेद्यः ।

कृत्वा लोहस्य भाण्डे क्षितितिलनिहितं स्थापयेन्नासमेकम् ।

केशाः काशप्रकाशाभ्रमरकुलनिभास्त्र्यक्षणादेवमुक्ताः ॥ १७२ ॥

इति केशरञ्जनतैलम् ।

केतकीत्रिफलादावीं तत्फलं मदनत्वचः ।

पान्त्रास्थिमज्जकुटञ्च तिलाभृङ्गरसोञ्जनम् ॥ १७३ ॥

पिण्डीतकमयधूर्णं नीलोपङ्कजं पद्मजम् ।

कन्कैरैः पचेत्तैलं वचाभृङ्गरसेन तु ॥ १७४ ॥

शिरोऽभ्यगात्प्रणश्यन्ति दारुणं चेन्द्रलुप्तकम् ।

प्रकालपलित कण्डू लूतिकां दद्रुमेव च ॥ १७५ ॥

करोति कुञ्चितान् केशान् भ्रमरोदरसन्निभान् ।

केतकाद्यमिदं नाम्ना विदेहादिप्रकीर्तितम् ॥ १७६ ॥

इति केतकाद्यं तैलम् ।

शिखिपित्तविशास्त्रास्थि मदयन्त्यञ्जनोत्पलैः ।

सनीलभृङ्गकाशीसै स्तक्रे तैलं विपाचयेत् ॥ १७७ ॥

लोहमाण्डे स्थितं मास भकालं पलितं जयेत् ॥ १७८ ॥

इति मयूरपित्ताद्यं तैलम् ।

क्षीरात्समार्कवरसा द्विप्रस्थं मधुके पले ।

विपचेत्तैलकुडवं तन्नस्थं पलितापहम् ॥ १७९ ॥

इति मधुकतैलम् ।

प्रपौण्डरीकमधुक पिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।

मिहं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन वा ।

सर्वान् मूर्द्धगतान् हन्ति पलितानि च शीलितम् ॥ १८० ॥

इति प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

कक्षाभागीषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारणाः ।

अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ १८१ ॥

सप्ताह्वाद्वादशाह्वाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्तिमानवम् ।

तामग्निरोहिणीं विद्या दसाध्यां सन्निपातिकीम् ॥ १८२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पित्तबोमर्षविधिना साधयेदग्निरोहिणीम् ।

रोहिण्यां लङ्घनं कुर्याद्द्रक्तमोक्षं विरुक्षणम् ।

शरीरस्य च संशुद्धिं स्नां त्यजेद्द्विधां पुनः ॥ १८३ ॥

—

अथ निदानमाह ।

घोवां सकक्षां करपाददेशे सन्धौ गले वा त्रिभिरेवदोषैः ।

ग्रन्थिः सवल्लीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥ १८४ ॥

मुखैरनेकैः स्तुततोदवद्विर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ।

बल्लीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्पृत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ १८५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

शस्त्रे नोक्तृत्यबल्लोकां चाराग्नीभ्यां प्रसाधयेत् ।

विधानेनावुर्दीप्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥ १८६ ॥

बल्लोकान्तु भवेद्यस्य नातिहृदस्य मर्मजम् ।

तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं भोजयेद्विषक् ॥ १८७ ॥

कुलितिकायामूलैश्च गुडूच्यालवणेन वा ।

घारग्वधस्य मूलैश्च दन्तीमूलैस्तथैव च ॥ १८८ ॥

श्यामामूलैः सपल्लैः सक्तुमिथैः प्रलेपयेत् ।

सुस्त्रिधैश्च मुखोष्णैर्वा भिषक्तमुपनाहयेत् ॥ १८९ ॥

पक्कं बातं विजानीयाद् गताः सर्वा यथाक्रमम् ।

अभिज्ञायततश्छित्वा प्रदहेन्मतिमान् भिषक् ॥ १९० ॥

संशोध्यदुष्टमांसानि क्षारेण प्रतिसारयेत् ।

व्रणं विशुद्धं विज्ञाय रोपयेन्मतिमान् भिषक् ॥ १९१ ॥

—०—

मनःशिलालभसात सूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ।

जातिपक्षवतकैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ १९२ ॥

बल्लोकां नाशयेत्तद्वि बहुद्धिद्रं बहुम्रणम् ।

पाणिपादोपरिष्ठात्तु क्षिद्रैर्बहुभिराहतम् ।
बल्मीकं येत्सेशोफं स्याद्वर्ज्यं तत्तु विजानता ॥ १८३ ॥
इति मनःशिलाद्यं तैलम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

प्रवाहनातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदो बहिः ।
रूक्षदुर्वलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥ १८४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

गुदभ्रंशे गुदं खिन्नं स्नेहेनाक्तं प्रवेशयेत् ।
प्रविष्टं रोहयेद्यत्नाद् गव्यसक्षिद्रचर्मणा ॥ १८५ ॥
पद्मिनीकोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् ।
एतन्निश्चित्यनिर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ १८६ ॥
गुदञ्च गव्यवसया स्रक्तयेदसक्तवरः ।
दुष्पूवेशो गुदभ्रंशो विशल्याशं न मथयः ॥ १८७ ॥
मूपकानां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपनम् ।
सुखिन्नमूपिकामांसे नाघवास्वेदद्गुदेदम् ॥ १८८ ॥
घृष्णाम्लानलचांगिरी विल्वं पाठायवाग्रजम् ।
तक्त्रेण शीलयेत्पायु भ्रंशार्त्तोऽनलदीपनम् ॥ १८९ ॥

—०—

मूपिकाकुडवं मांसं चित्रकस्य पलं तथा ।
दशमूलपलानाञ्च पलं भस्मातकस्य च ॥ २०० ॥
त्रिफलायाः पञ्चैषां कल्कं दत्वा चतुर्गुणे ।
क्षीरे तैलं पचेत्प्रस्थ मभ्यङ्गाच्च प्रशाम्यति ॥ २०१ ॥

गुदनिस्स्वरणं शूलं दुष्टव्रणविशोधनम् ।

मूपकाद्यमिदं तैलं क्षणात्रेयेण पूजितम् ॥ २०२ ॥

इति मूपकाद्यं तैलम् ।

मूपिकामांसकुडवं दशमूलं पलोन्मितम् ।

चित्रस्य द्वे पले वापि निष्कात्थाष्टगुणेऽभ्रसि ॥ २०३ ॥

पादशेषेण तेनैव तैलप्रस्थं पयः समम् ।

जीवनीयप्रतिवापं पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ २०४ ॥

अभ्यङ्गान्नाशयत्याशु गुदभ्रंशं सुदारुणम् ।

भगन्दरं गुदे शूलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ २०५ ॥

इति द्वितीयमूपकाद्यं तैलम् ।

निरन्त्रं मूपिकं पक्त्वा पञ्चमूलपयोर्युतम् ।

तैलं वातहरैः सिद्धं गुदभ्रंशहरं परम् ॥ २०६ ॥

तुल्यमंशं समादाय पञ्चमूलांशुमांसयोः ।

क्षीरपाकविधानेन विपाच्यैतत्समाहितः ।

पद्याद्वातहरैः कल्कैः पक्त्वमूपकादिकम् ॥ २०७ ॥

इति तृतीयमूपकाद्यं तैलम् ।

मूपिकानां पलशतं जलद्वीणे विपाचयेत् ।

पादशेषे पचेत्तैलं दुग्धं तैलचतुर्गुणम् ॥ २०८ ॥

मूपिकानां गिरः कल्कं वस्त्रावभ्यक्षने हितम् ।

गुदनिस्स्वरणे शूले रक्तस्रावे च तद्वितम् ॥ २०९ ॥

इति चतुर्थमूपकाद्यं तैलम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

सदाहो रक्तपथ्यस्तस्वल्पाकीर्तितयेदनः ।

कंडूमान् ज्वरकारी च सस्याच्छूकरदंष्ट्रकः ॥ २१० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

सर्पपरजनोक्कश्च स्नालमूलीसंयुतो लेपात् ।

शमयति शूकरदंष्ट्रं पिडिकादाहान्वितं पुंसाम् ॥ २११ ॥

भृङ्गराजस्य मूलस्य रजन्धा सहितस्य च ।

चूर्णञ्च सहसालेपा इराहद्विजनाशनम् ॥ २१२ ॥

रजनीमार्कवमूत्रं पिष्टं श्रोतेन वारिषा तुष्यम् ।

हन्ति विसर्पं लेपाइराहदशनाह्वयं घोरम् ॥ २१३ ॥

सूर्यावर्त्तजटां सूर्ये वारेणोत्पाद्यबुद्धिमान् ।

पिष्टा भृङ्गांनुनालेपा इराहद्विजनाशनम् ॥ २१४ ॥

विसर्पाह्नः प्रतीकारः कार्यः शूकरदंष्ट्रयोः ॥ २१५ ॥

मूलकबीजमुष्ट्य चोन्मत्तकदलानि तु ।

सूर्यावर्त्तशकाख्याञ्च मेध्यावीरसपाचितम् ॥ २१६ ॥

तैलं मेध्याविकं नाम बराहद्विजनाशनम् ।

कण्डूकुलप्रशमनं कृच्छ्रं दद्रुविनाशनम् ॥

बलवर्णकरश्चैव कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ २१७ ॥

इति मेध्याविकतैलम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः ।

मेद्वर्चसो यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् ॥ २१८ ॥

१ मेध्यावी ब्राह्मी ।

तदा वातोपसृष्टत्वा चर्मतत्परिवर्तते ।
 अवेदनं सदाहस्य पाकं वर्धति चाशुक्रत् ॥ २१८ ॥
 मणेरधस्तात् कोपथ ग्रन्थिरूपेण लम्बते ।
 परिवर्त्तिकेति तां विद्यात् सर्ज्जां चार्त्तिसम्भवाम् ॥
 सकण्डूकठिना वापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥ २२० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

परिवर्ती घृताभ्यक्तां सुस्विन्नासुपनाहयेत् ।
 विरात्रं पञ्चरात्रं वा वातघ्नैः सात्त्वनादिभिः ॥ २२१ ॥
 ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्मं वेशयेत्पीडयेन्मणिम् ।
 प्रविष्टे च मर्मणिमणौ स्वेदयेद्दुपनाह्नैः ॥ २२२ ॥
 दद्याद्वातहरान् वस्तीन् स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत् ॥ २२३ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

अल्पीयःखां यदा हर्षा इलाहृष्टेति स्त्रियं नरः ।
 हस्ताभिधातादयवा चर्मण्युद्धर्तते बलात् ॥
 यस्यावपाद्यते चर्मं तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ २२४ ॥
 वातात्परुषरूचाभा सूक्ष्माक्षण्यारुगन्विता ।
 पित्ताक्षपीतारक्ताभा दाहवृण्णासमन्विता ।
 श्लेष्मिकोकठिनास्निग्धा कण्डूमत्यन्तवेदना ॥ २२५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

चेद्वस्त्रेदैस्तथैवैनां चिकित्सेदवपाटिकाम् ॥ २२६ ॥

—०—

अथ निदानेमाह ।

वातोपसृष्टे मेद्रे च चर्मसंश्रयते मणिम् ।
मणियर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥ २२० ॥
निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम् ।
मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विप्र्रियते न च ॥
निरुद्ध प्रकशं विद्यात्सरुर्जं वातसंभवम् ॥ २२८ ॥

—•—

अथ चिकित्सामाह ।

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीसुभयतो सुखीम् ।
दारवीं वा जंतुकृतां सष्टतां वा प्रवेशयेत् ॥ २२९ ॥
परिषिञ्चेद्दसां मज्जां शिशुमारवराहयोः ।
चुक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ २३० ॥
व्रज्यात् स्थूलपरां सम्यङ् नाडीं मार्गं प्रवेशयेत् ।
स्रोतः प्रवर्धयेदेवं स्निग्धमवचं भोजयेत् ॥
भित्वा वा सेवनीं सुक्ता सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ २३१ ॥

—•—

अथ निदानमाह ।

वेगसन्धारणाद्वायुर्विहितो गुदसंश्रितः ।
निरुणद्धि मूहत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ २३२ ॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कृच्छ्रेण पुरीयं तस्य गच्छति ।
सन्निरुद्धगुदं व्याधि मेनं विन्द्यात् सुदुस्तरत् ॥ २३३ ॥

—•—

अथ चिकित्सांमाह ।

सखिरुक्षगुदे तैलेः सेको यातह्रैः हितः ।

तथा निरुक्षप्रकाश क्रमः कार्यो विज्ञानता ॥ २३४ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

शक्तमूत्र समायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ।

खिन्ने वाऽस्त्राप्यमाने वा कंडूरक्तकफोद्भवा ॥ २३५ ॥

कंडूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्त्रावश्च जायते ।

एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ २३६ ॥

—

अथ चिकित्सांमाह ।

ततः संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत् ॥ २३७ ॥

त्रिफलाखदिरकाथैर्ब्रणानां धावनं सदा ।

शङ्खसीवीरयष्ट्याश्चैर्लेपः कार्योऽतिपूतने ॥ २३८ ॥

कंडूरक्तोत्कटे कुर्याद्द्रक्तस्त्रावं जलीकसा ।

करञ्जविफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम् ॥ २३९ ॥

कासीसरोचना तुल्य हरितालरसांजनैः ।

अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं व्रणकंडू हि पूतने ॥ २४० ॥

पटोलपत्रत्रिफला रसाप्लवनविपाचितम् ।

पीतं घृतं नागयति कच्छमप्य हि पूतनम् ॥ २४१ ॥

इति पटीषष्टतम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

ज्ञानोक्तादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः ।
यदा प्रक्षिद्यते स्वेदा कंडूञ्जनयते तदा ॥ २४२ ॥
कंडूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ।
प्राहुर्वृषणककुं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ २४३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

भिषक् वृषणकच्छुं तु चिकित्सेत्पामरोगवत् ।
अहिपूतननिर्दिष्टं क्रिययापि च तां हरेत् ॥ २४४ ॥
सर्जाह्वकुटसैन्यव सितसिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः ।
उद्धर्त्तनेन नियतं शमयति वृषणकण्डूतिम् ॥ २४५ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

समुत्थाननिदानाभ्यां चर्मकीलं प्रकीर्तितम् ॥ २४६ ॥

—०—

कट्टीकापालिकामूलं पूतीकं सैन्यवं तदा ।
शम्बूकेन श्लक्ष्णपिटं चर्मकीलकनाशनम् ॥ २४७ ॥
प्रायेण क्षुद्ररोगेषु शस्त्रचारानलक्रिया ।
लेपनं शोणितस्त्राव मिति सामान्यमंग्रहः ॥ २४८ ॥

इति वङ्गसेने क्षुद्ररोगनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ६३ ॥

—०—

अथ मुखरोगनिदानमाह ।

मुखरोगा. पञ्चपष्टिः सप्तस्त्रायतनेषु च ।
 तत्र चायतनान्योष्टौ दन्तादन्ताशनं तथा ॥ १ ॥
 तालुकण्ठश्च जिह्वा च मुख सर्वञ्च सप्तमम् ॥ २ ॥
 आनूपपिशितक्षीर दधिमापादिसेवनाव् ॥
 मुखमध्ये गदान् कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥ ३ ॥
 कर्कशौ घर्षणौ स्तब्धौ संप्राप्तानिलवेदनौ ।
 दाह्येते परिपाथ्येते चोष्टौ मारुतकोपतः ॥ ४ ॥
 चीयते पिटिकाभिश्च सरुजाभिः समन्ततः ।
 सदाहपाकपिडिकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥ ५ ॥
 सवर्णाभिस्तु चीयेते पिटिकाभिरवेदनी ।
 भवतस्तु कफादोष्टौ पिच्छिचौ शीतलौ गुरु ॥ ६ ॥
 मज्जत् क्षणौ सकृत्पीतो सकृच्छेतो तथैव च ।
 सन्निपातेन विज्ञेयावनेक पिटिकान्वितौ ॥ ७ ॥
 खर्जूरफलवर्णाभि पिटिकाभिर्निपीडितौ ।
 रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ८ ॥
 मांसदुष्टौ गुरुस्त्रूलौ मांसपिण्डवदुन्नतौ ।
 क्षमयद्यात्र सूच्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥ ९ ॥
 सर्पिर्मण्डप्रतिकाशी मेदसाकंडूरी गुरु ।
 स्रच्छं स्फटिकमकाश मास्रावं स्रवतो भृगम् ॥

१, दन्तेष्वष्टौ ८ दोष्टयोश्च ८ मूलेषु दशपञ्च च १५ ।

नव ८ तालुनि जिह्वायां पञ्च ५ सप्तदशमयाः १७ ।

कण्ठे त्रयः सर्वसरा एकपष्टिचतुःपरः ॥ ६५ ॥

तयोर्ब्रणं न संरोहेऽमृदुत्वं न च गच्छति ॥ १० ॥

श्रोष्टौ पर्यवदीर्यन्ते पाद्येते चाभिधानतः ।

ग्रथितौ च तंथास्याता मोष्टौ कंडूसमन्वितौ ॥ ११ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

सुखदन्तमूलदशनच्छेदेषु रोगाः कफास्त्रभूयिष्ठाः ।

तस्मात्तेषामसकृद्बुधिरं विस्रावयेद् दुष्टम् ॥ १२ ॥

स्नेहास्तथोष्णान् परिपेकलेपान् घृतस्य पान रसभोजनञ्च ।

अभ्यञ्जनस्वेदनलेपनानि चौष्टे विदध्यात्पवनाभिभूते ॥ १३ ॥

चतुर्विधेन स्नेहेन मधूच्छिद्युतेन च ।

वातजेऽभ्यञ्जनं कुर्याद्वाडीस्वेदञ्च बुद्धिमान् ॥ १४ ॥

मस्तिष्कं चैव नस्ये च तैल वातहर हितम् ।

स्वेदोऽभ्यङ्गः स्नेहपान रसायनमिहेष्यते ॥ १५ ॥

तैलं घृतं सर्जरसं ससिक्थं राम्नागुडं सैन्धवगैरिकञ्च ।

पक्वं समास दशनच्छेदानां त्वग्भेदहृत् प्रवदन्ति लेपम् ॥ १६ ॥

श्रीवेष्टकं सर्जरसं गुग्गुलं सुरदारु च ।

यष्टीमधुकचूर्णञ्च विदध्यात्पतिसारणम् ॥ १७ ॥

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पान रसभोजनञ्च ।

शीतान् प्रदेहान् परिपेचनञ्च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ १८ ॥

रक्तपित्तोपधातोष्ये जलौकाभिरुपाचरेत् ।

पित्तविद्राधिवञ्चापि क्रिया कुर्यादशेषतः ॥ १९ ॥

शिरोविरेचनं धूम स्वेदः कवल एव च ।

हृते रक्ते प्रयोक्तव्य मोष्ठपाके कफात्मके ॥ २० ॥

त्रिकटुस्वर्जिकाचारः क्षारश्च यवशूकजः ।

क्षौद्रयुक्तं विधातथ्य मेतच्च प्रतिसारणम् ॥ २१ ॥

शूलं विवर्यं सलसीकमोष्ठं सकंडूरं तीव्ररुजं प्रबातम् ।

लिखेच्च फेनद्विपलासबालैर्निष्पीड्य वातक्षतसारयेद्वा ॥ २२ ॥

जीवन्तिकल्कं पयसा समांशं तैलं विपक्वा मधुना विमिश्रम् ।

ओष्टास्ययोः सर्जरसाष्टभागं व्रणं निहन्यात् सकृदेव लेपात् ॥ २३ ॥

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनी हितः ।

प्रियंगुत्रिफलालोघ्रं सक्षौद्रं लेपने हितम् ॥ २४ ॥

हितञ्च त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं प्रलेपनम् ।

एतद्दोषप्रकोपानां साध्यानां कर्मकीर्तितम् ॥ २५ ॥

स्निग्धं क्षतोष्टमुल्लिख्य पीडयेत् सुसमाहितः ।

शतधौतष्टताभ्यक्तं दद्यात्कवलिकां कृते ॥ २६ ॥

क्षिन्नव्रणे च तत्सर्वं त्यक्त्वा व्रणवदाचरेत् ॥

इत्योष्ठगतदोषोपक्रमः ।

—०—

अथ सामान्यमुखरोगलक्षणमाह ।

मुखामये मारुतजेतु शोष कार्कश्यरौक्ष्याणि चलारुजय ।

कृष्णारुणं निष्पृतनं मशैत्यं प्रस्यन्दनं संसनतोददाह्राः ॥ २७ ॥

लण्णान्वरस्फोटकदाहपाका धूमायनं चास्य विदीर्णता च ।

पित्तात्ममूर्च्छाविविधारुजय मुखं च पीतारुणवर्णयुक्तम् ॥ २८ ॥

कंडूगुरुत्वं मितवज्जनत्वं स्नेहोऽरुचिर्जाद्यकफप्रसेके ।

उत्क्षेपनं दालनभावतंद्रारुजय मन्दाकफवृक्षरोगे ॥ २९ ॥

द्विदोषं लिङ्गानि भवन्ति यत्र द्विदोषजो वृक्षगदः सवेद्यः ।

लिङ्गानि सर्वाणि मुखे च यस्य भवन्ति तस्यैव तु सन्निपातात् ॥ ३० ॥

इति तन्त्रान्तराक्षामान्यलक्षणमुक्तम् ।

—०—

अथ दन्तवेष्टरोगनिदानमाह ।

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याऽकर्माववर्त्तते ।

दुर्गन्धोनि सक्तणानि प्रक्तेदीनि मृदुनि च ॥ ३१ ॥

दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् ।

शीतादो नामसव्याधिः कफशोणितसम्भवम् ॥ ३२ ॥

दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य जायते श्रयथुर्महान् ।

दन्तपुष्पुटकोनाम सव्याधिः कफरक्तजः ॥ ३३ ॥

स्रवन्ति पूयरुधिरं चलादन्ता भवन्ति च ।

दन्तवेष्टः सविज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः ॥ ३४ ॥

श्रयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान् कफरक्तजः ।

लालास्रावि सविज्ञेयः शैषिरोनामनामतः ॥ ३५ ॥

दन्ताद्यलन्ति वेष्टेभ्य स्तालु चाप्य यदीर्यते ।

यस्मिन् ससर्वजो व्याधिर्महाशैपिरसंज्ञितः ॥ ३६ ॥

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन् टीवति चाप्यसृक् ।

पित्तासृक्कफजोव्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ ३७ ॥

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताद्यलन्ति च ।

अत्यर्दिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनाः ॥ ३८ ॥

आध्मायन्ते मृते रक्ते मुखं पूति च जायते ।

यस्मिन् सोपकुशोनाम पित्तरक्तकृतो गदः ॥ ३९ ॥

दृष्टेषु दन्तमांसेषु संरन्ध्रो जायते महान् ।

भवन्ति चक्षुलादन्ताः सवेदर्भाभिघातजः ॥ ४० ॥

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तोववेदनः ।

खल्लिवर्धनसंज्ञोऽसौ संजाते रुक् च शाम्यति ॥ ४१ ॥

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः ।

करालान् विकटान् दन्तान् करालो न च सिध्यति ॥ ४२ ॥

हानये प्रथमे दन्ते महाच्छोयो महारुजः ।

लालास्रावोक्तकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ ४३ ॥

दन्तमूलगतानाद्यः पञ्चमे यायथेरिताः ॥ ४४ ॥

—०— १ २ ३ ४ ५

अथ दन्तरोगनिदानमाह ।

दीर्घमाणेष्विवरुजा भृशं दन्तेषु जायते ।

दालनोनाम सध्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ ४५ ॥

कृष्णच्छिद्रयलस्रावी ससरम्भो महारुजः ।

अनिमित्तरुजो वातात् सञ्जेयः क्षमिदन्तकः ॥ ४६ ॥

वक्त्रं वक्त्रं भवेद्यस्य दन्तभङ्गश्च जायते ।

कफवातकृतो व्याधिः सभञ्जनकमंशितः ॥ ४७ ॥

शीतरूचप्रवाताम्न स्पर्शानामसहादिजाः ।

पित्तमारुतकोपेन दन्तद्वर्षः सनामतः ॥ ४८ ॥

दन्तमांसमलैः मास्त्रै र्वाह्यतः खययर्महान् ।

मदाक्षरकुक्षवेद्भिः पूयास्त्रं दन्तविद्रधिः ॥ ४९ ॥

मलोदन्तगतो यस्तु कफमारुतशोपितः ।

शर्करैव खरस्पर्शा साञ्जेयादन्तशर्करा ॥ ५० ॥

कपालेष्विवदीर्घ्यस्तु दन्तानां मैव शर्करा ।

कपालिकेति साञ्जेया मदा दन्तविनाशिनो ॥ ५१ ॥

योऽसृक्षियेण पित्तेन दग्धोदन्तस्त्वग्रेपतः ।

श्यावतां नीलतां वापि गतः मय्यावदन्तकः ॥ ५२ ॥

हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरदितलक्षणः ॥ ५३ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

सामान्येन निदानेन ये निर्दिष्टासुखामयाः ।

तान्विदित्वा त्विदं कुर्यादथार्थं भेषजक्रियाम् ॥ ५४ ॥

तेजोह्वामागधीमूलं समझाकटुकाघनम् ।

पाठाज्योतिष्मतीलोध्रं दार्वीकुण्डलं चूर्णयेत् ॥ ५५ ॥

दन्तानां घर्षणं कण्डू रक्तस्त्रावरुजापहम् ॥ ५६ ॥

शीतादेहतरुते तु तीर्थं नागरसर्पपान् ।

निष्काप्यत्रिफलाञ्चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम् ।

प्रियङ्गवश्च सुस्ता च त्रिफला च प्रलेपनम् ॥ ५७ ॥

काशीसलोध्रकृष्णा मनःशिला सप्रियंतु तेजोह्वा ।

एषां चूर्णं मधुयुक् शीतादे पूतिमांसहरम् ॥ ५८ ॥

प्रपौण्डरीकमधुक त्रिफलोत्पलसाधितम् ।

तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादे संप्रशस्यते ॥ ५९ ॥

कुण्डं दार्वीलोध्रमण्डं समझा पाठातिक्तातेजनीपीतिका च ।

चूर्णं शस्तं घर्षणं तद्विजानां रक्तस्त्रावं हन्ति कण्डू रुजाश्च ॥ ६० ॥

पाठालोध्रसमझा पर्यटगदतेजनीनिशायुगलैः ।

कण्डू रक्तस्त्रावयुतं चूर्णीकृतैर्विघर्षयेच्छूल्यैः ॥ ६१ ॥

दन्तपुष्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ।

शिरोविरेकश्च हितो नस्यं स्निग्धश्च भक्षणम् ॥ ६२ ॥

तिलभषबीजपावक सिततर सिद्धार्थकल्पितः कवलः ।

अर्ण्यपुसंप्रयुक्तो द्विजतलसंजातशोथहरः ॥ ६३ ॥

विस्त्राविते दन्तविष्टे-व्रणस्तु प्रतिसारयेत् ।

लोध्रं पतङ्गमधुक लाक्षाचूर्णैः मधूस्तरैः ॥ ६४ ॥

गण्डूये घीरिणी योज्याः सघ्नीद्रुतशर्कराः ॥ ६५ ॥

चक्षुदन्तस्थिरकरं कार्यं वकुलचर्वणम् ॥ ६६ ॥

भद्रमुस्ताभयाव्योष विडङ्गारिष्टपल्लवैः ।

गोमूत्रपिष्टैर्वटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ ६७ ॥

तां निधाय सुखे सुप्या च्चलदन्तात्तुरो नरः ।

नातःपरतरं किञ्चि च्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ ६८ ॥

इति भद्रमुस्तादिवटिका ।

दशमूलोकपायेण तैलं वा घृतमेव च ।

विपक्वं कवले शस्तं सचौद्रं दन्तधावने ॥ ६९ ॥

दन्तचाले दन्तहर्षे मुखरोगे च वातिके ।

सुखोष्णमथवा शीतं तैलकल्कोदकं हितम् ॥ ७० ॥

शौयिरे हृतरक्ते तु लोघ्रमुस्तारसाञ्जनैः ।

सचौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे चीरिणो हिताः ॥ ७१ ॥

माचिकं पिप्पलीसर्पिः मिश्रितं धारयेन्मुखे ।

दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमीषधम् ॥ ७२ ॥

हिङ्गुकट्फलकाशीसं सर्जिकाकुष्ठवल्कजम् ।

रदरुजं जयत्याशं वक्तस्थं दग्धने घृतम् ॥ ७३ ॥

शारिवीत्पलपट्याह शारिवागुरुचन्दनैः ।

चीरे दग्धगुणे सिद्धं सर्पिनस्ये च पूजितम् ॥ ७४ ॥

क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादीक्षां विचक्षणः ।

संशोध्योभयतः कार्यं शिरोघोषकुशे तथा ॥ ७५ ॥

काकोदुम्बरिकापत्रैर्घ्रणं विस्त्रावयेद्विषक् ।

लवणैः चौद्रयुक्तैश्च सव्योपैः प्रतिसारयेत् ॥ ७६ ॥

पिप्पलीसर्पपाः श्वेता नागरं नैचुलं फलम् ।

सुखोदकेन संस्पृष्टं कवलञ्चापि धारयेत् ॥ ७७ ॥

घृतं मधुरकैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ।

चौद्रहितीयाः पिप्पल्याः कवलयात्र कीर्तितः ॥ ७८ ॥

पटोलनिम्बत्रिफला कपायद्यात्र धावने ।
 शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनद्ययः ॥ ७८ ॥
 माडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत् ।
 यद्दन्तमध्ये जायेत नाडी त दन्तमुद्धरेत् ॥ ८० ॥
 हित्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत् ।
 शोषयित्वा दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ ८१ ॥
 भिन्नत्युपेक्षिते दन्ते हनुकास्थिगतिध्रुवम् ।
 समूलं दशनं तस्मा दुद्धरेद्भग्नमस्थि च ॥ ८२ ॥
 उद्धृते तूतरे दन्ते शोणितं संप्रसिच्यते ।
 रक्तातियोगात् पूर्वाक्ता घोरारोगा भवति च ॥ ८३ ॥
 काणः सञ्जायते जन्तु रदितं चास्य जायते ।
 चलमप्युत्तरं दन्त मतो नापहरेद्विषक् ॥ ८४ ॥
 धावने जातिमदन स्वादुकण्टकखादिरम् ॥ ८५ ॥

—०—

कपायं जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः ।
 लोधग्वदिरमञ्जिष्टायुष्याह्वैश्चापि तत्कृतम् ।
 तैलं संशोधनं तद्धि हन्यादन्तगतां गतिम् ॥ ८६ ॥
 कपाय परतः कृत्वा पिष्ट्वा लोघादिकल्कितम् ।
 कण्टकीमदनो योज्यः स्वादुकण्टो विकटतः ॥ ८७ ॥

—०—

एभिः कृतं कपायमपि नाडीधावनार्थं योज्यम् ।
 इति जाल्यादितैलम् । इति दन्तवैद्योपक्रमः ।

—०—

अथ दन्तोपक्रममाह ।

सुखोष्णाः स्नेहकवलाः सर्पिपस्त्रिहतस्य च ।
 निर्युहयानिलन्नानां दन्तहर्षप्रसर्दनाः ॥ ८८ ॥
 स्नेहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नेहिकमेव च ।
 रसोरमयवाग्वय चीरं सन्तानिका घृतम् ॥
 शिरोबस्ति हितयापि क्रमो यथानिलापहः ॥ ८९ ॥
 दन्तानां तोदहर्षौ तु जायेते वाततस्तयोः ।
 उष्णतैलाज्यवातघ्न निर्युहाः कबलग्रहाः ॥ ९० ॥
 अहिंसन्दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्विपक् ।
 लाक्षाचूर्णेर्मधुयुतै स्ततस्त्रां प्रतिसारयेत् ॥ ९१ ॥
 दन्तहर्षक्रियां चापि कुर्याच्चिरवशेषतः ।
 कपालिका कृच्छ्रतमा तत्राप्येषा क्रिया हिताः ॥ ९२ ॥
 कृमिदन्तकमादौ तु सक्तमिं गुडपूरणम् ।
 दहेच्छलाकयाचीरः शर्करां कृमिनाशनम् ॥ ९३ ॥
 जयेद्विस्त्रावणैः स्निग्ध मचलं कृमिदन्तकम् ।
 तथावपोडैर्वातघ्नैः स्नेहगंडूषधारणैः ॥ ९४ ॥
 भद्रदार्वादिपर्णान्भु लेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ।
 कृमिदन्तापहं कोष्णं द्विगुदन्तान्तरे स्थितम् ॥ ९५ ॥
 बृंहतो भूमिकादम्बी पञ्चांगुलकण्टकारिकाकाथः ।
 गंडूषस्तैलयुतः कृमिदन्तकवेदनागमनः ॥ ९६ ॥
 नीलोवायमजडासृक् दुग्धीनान्तु मूलमेकैकम् ।
 मध्वर्यदशनविघृतं दशनकृमिपातनं प्राहुः ॥ ९७ ॥
 बीजपूरकमूलम्य वाक्चीनां तथैव च ।
 भागाभ्यां तु समं कृत्वा पिष्ट्वावर्त्तिन्तु कारयेत् ॥ ९८ ॥

एषारदस्यवर्त्तिस्तु दन्तैर्दन्तैर्निपीडयेत् ।

सद्योऽवस्थितमात्रा तु कृमिदन्तरुजापहा ॥ ८८ ॥

दन्तीमुवर्णदुग्धा कासीसविडङ्गवत्सकफलानाम् ।

चूर्णैरर्कस्रुह्योः पयोभिर्वा पूरणं श्रेष्ठम् ॥ १०० ॥

चलमुवृत्य च स्थानं विदहेच्छुपिरस्य च ।

ततो विदारीयद्याह्न शृङ्गाटककमेरुभिः ॥

तैल दशगुणे क्षीरे सिद्धं नस्ये हितं भवेत् ॥ १०१ ॥

इति विदार्यादितैलम् ।

हनुमोक्षे समुद्दिष्टां कुर्याददितवत् क्रियाम् ॥ १०२ ॥

बकुलस्य फल लोध्रं वज्रवल्लीकुरण्टकम् ।

चतुरगुलबब्बोल बाजिकर्णारिमाशनम् ॥ १०३ ॥

तेषां तु क्वाथकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे घृतम् ।

स्थैर्यं करोति दन्तानां चलतां पवनेन च ॥ १०४ ॥

इति बकुलाद्यं तैलम् ।

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽश्वसः सत्रययेद्यथावत् ।

पूते चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्धपलप्रयुक्तैः ॥ १०५ ॥

कल्कैरनन्ता खदिरारिमेदा जम्बाम्रयटीमधुकोत्पलानाम् ।

तत्तैलमाश्वेव धृत मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ १०६ ॥

इति सहचराद्यं तैलम् ।

उभे हरिद्रे पिप्पल्यः सैन्धवं देवदारु च ।

विडङ्ग चित्तकं विल्वं रोहिण्यस्य च पल्लवाः ॥ १०७ ॥

गन्धं सौवर्चलं द्राक्षा मञ्जिष्ठा मधुकं बला ।

वेतसस्य च मूलानि पद्मकोशीरचन्दनैः ॥ १०८ ॥

विल्वप्रमाणैः कल्कैस्तु तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।

द्विगुणं च पयो दद्यात् तस्मिन् नश्यतां नयेत् ॥ १०८ ॥

श्लेष्मजं सन्निपातोत्थं शिरोरोगं नियच्छति ।

उपजिह्वां च भालाञ्च कण्ठशालूकमर्बूदम् ॥ ११० ॥

विदारिकां मांसपाकं मुखशोकं गलग्रहम् ।

दन्तचालं हनुस्तम्भं तैलमेतन्नियच्छति ॥ १११ ॥

इति हरिद्राद्यं तैलम् ।

तैलं लाक्षासं क्षीरं पृथक् प्रस्थं समं पचेत् ।

चतुर्गुणमितैः काथैर्द्रव्यैश्च पलसंलितैः ॥ ११२ ॥

लोध्रकट्फलमञ्जिष्टा पद्मकेशरपद्मकैः ।

चन्दनोत्पलयथ्याक्षैः तैलं गंडूपधारणम् ॥ ११३ ॥

दालन दन्तचालञ्च दन्तमोचं कपालिकाम् ।

शोतादं पूतिवक्त्रञ्च ह्यरुचिं विरसास्यताम् ॥ ११४ ॥

हृन्वादाश्च गदानेतान् कुर्यादन्तानपि स्थिरान् ।

लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥ ११५ ॥

इति लाक्षाद्यं तैलम् ।

इरिमेदत्वक् पलशतं मभिनवमापीथ्यखण्डशः कृत्वा ।

तोयाढकेद्यतुर्भिः निःकाप्यद्यतुर्थशेषेण ॥ ११६ ॥

काथेन तेन मतिर्मां शूलम्यार्धादृकं पचेच्छनकैः ।

कल्कैरक्षसमांसैर्मञ्जिष्टा लोध्रमधुकानाम् ॥ ११७ ॥

इरिमेदखदिरकट्फलं लाचान्यग्रोधमुस्तसूक्ष्मैः ।

कर्पूरागुरुपद्मकलवङ्गकङ्गोलजातीनाम् ॥ ११८ ॥

फलपतङ्गैरिकवरांगगजकुसुमधातकीनाञ्च ।

मिदं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु ॥ ११९ ॥

परिशोणदन्तविद्रधिं ग्रीपिरग्रीताददन्तहर्षेषु ।

क्षमिदन्तदरगचलितं प्रदुष्टमांसावग्रीर्णेषु ॥ १२० ॥

मुखदौर्गन्ध्येषु च कार्यं प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलमिदम् ।

इतीरिमेदाद्यं तैलम् ।

खदिरस्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत् ।

शेषेऽष्टभागे तत्रैव प्रतिवाप प्रदापयेत् ॥ १२१ ॥

जातिकर्पूरपूगानि कङ्कोलकफलानि च ।

इत्येषा गुटिका कार्या मुखसौभाग्यवर्धिनी ॥

दन्तौष्ठगन्धरोगेषु जिह्वा ताल्वामयेषु च ॥ १२२ ॥

इति स्वल्पखदिरवटिका ।

गायत्रिसारतुलयारिमबल्कलानां

सार्वं तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भिः ।

निःकाथ्यपादमवशेषं सुवस्त्रपूतं

भूयः पचेदथ शनैर्मृदुपावकेन ॥ १२३ ॥

सस्मिन् घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेपां

श्लक्ष्णं क्षिपेच्च कबलग्रहभागिकानाम् ।

एलासृणालसितचन्दनचन्दनानां

श्यामातमालविकसानललोह्यष्टी ॥ १२४ ॥

लज्जाफलवयरसाञ्जनधातकीनां

थीपुष्पगैरिककटाह्वयकट्फलानाम् ।

पद्माह्वलोध्रवटरोह्यवासकानां

मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम् ॥ १२५ ॥

ककोलजातिफलकोशलवङ्गकानां

चूर्णीकृतानि विदधीतपलांशकानाम् ।

शीतेऽवतार्य घनसारचतुष्पलञ्च

क्षिप्वा कलायसदृशीं गुटिकां प्रकुर्यात् ॥ १२६ ॥

शुष्कामुखे विनिहिता विनिवारयन्ति
 रोगान् गलोष्टरसनाधरतौलुजातान् ।
 कुर्यान्मुखे सुरभितां पटुतां रुचिञ्च
 स्त्रैर्यान्वितञ्च दशनं रसनालघुत्वम् ॥ १२७ ॥

इति महाखदिरवटिका ।

फलान्यम्बानि शीताम्बु रुचान्नं दन्तधावनम् ।
 तथातिकठिनान् भक्ष्यान् दन्तरोगी विपर्जयेत् ॥ १२८ ॥

इति दन्तरोगोपक्रमः ।

—०—

अथ जिह्वारोगनिदानमाह ।

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ।
 पित्तेन दह्यत्युपचीयते च दोर्ध्वं सरक्तैरपि कण्ठकैश्च ॥ १२९ ॥

कफेन गुर्वा बहुला चित्ता च

मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्ठकाभैः ॥ १३० ॥

जिह्वातले यः श्वययुः प्रगाढः मोक्षामसंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ।

जिह्वां मनु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ १३१ ॥

जिह्वाग्ररूपः श्वययुर्हि जिह्वा मुत्रम्यजातः कफरक्तमूलः ।

लालाकरः कंडूयुतः सचोषः सातूपजिह्वा कथिता भिषग्भिः ॥ १३२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

जिह्वागतविकाराणां शम्यं शोणितमोक्षणम् ।

गुडूचीपिप्पलीनिम्य कवलः कटुभिर्युतः ॥ १३३ ॥

पटोलकटुकव्योष पाठासैन्धवगर्भिभिः ।
 चूर्णैर्मधुयुतैर्लेपः कबलो मधुतैलिकः ॥ १३४ ॥
 विडङ्गपिप्पलीभ्यां तु धावनं सरसाञ्जनम् ॥ १३५ ॥
 ओष्टप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् ।
 कण्टकेष्वनिलोत्पेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ १३६ ॥
 पित्तजेषु विष्टेषु निःसृते दुष्टशोणिते ।
 प्रतिसारणगंडूपं नस्यच्च मधुरं हितम् ॥ १३७ ॥
 कण्टकेषु कफीत्येषु लिखितेष्वमृतजः चये ।
 पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यस्तु प्रतिसारणे ॥ १३८ ॥
 गृह्णीयात् कबलांश्चापि गौरसर्पपसेन्धवैः ।
 पटोन्ननिम्बवार्त्ताकु चारयूपैश्च भोजयेत् ॥ १३९ ॥
 उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् ।
 शिरोविरेकगंडूप धूमैश्चैनामुपाचयेत् ॥ १४० ॥
 व्योषक्षाराभयावज्जि चूर्णमेतत्प्रघर्षणम् ।
 उपजिह्वा प्रशान्त्यर्थं मेभिस्तैलं विपाचयेत् ॥ १४१ ॥
 वासाक्वाथो माक्षिक सैन्धवगृहधूममालतीयुक्तः ।
 कुलित्यक्तेन निह्न्यादुपजिह्विकां कण्ठघर्षणतः ॥ १४२ ॥
 इति जिह्वारोगः ।

—०—

अथ तालुरोगनिदानमाह ।

येष्वास्रग्भरां तालुमूलात् ग्रहवो दीर्घः शोथो धातवस्तिप्रकाशः ।
 णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वदः कण्ठशुण्डीति नाम्ना १४३ ॥
 शोथः स्थूलस्तोददाह प्रपाको
 प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु ।

शोथो मन्दो लोहितः शोणितोऽथो

ज्ञेयोऽभ्रूपः सञ्चरस्तीव्ररुक् च ॥ १४४ ॥

कूर्मोत्सन्नो वेदनो शीघ्र जन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा वा ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्वुदं प्रोक्तलिङ्गम् ॥ १४५ ॥

दुष्टं मांस नीरुजं तालुमध्ये श्लेष्मावदं मांससंघातमाहुः ।

नीरुक् स्थायीकोलमात्रः कफेन मेदोयुक्तः पुष्पुटस्तालुदेशे ॥ १४६ ॥

शोथोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालु श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलाच्च ।

पित्तं कुर्यात् पाकमत्यर्थघोर तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति ॥ १४७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

युञ्ज्यात् कफहरं शुण्ठ्या रसं गंडूपधारणे ॥ १४८ ॥

कुटोपणा वचासिन्धु कणापाठाप्लवैः सहः ।

सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्डीप्रघर्षणम् ॥ १४९ ॥

अङ्गुष्ठांगुलोसन्दर्शे नाक्कथ्यगलशुण्डिकाम् ।

छेदयेन्मण्डलायेण जिह्वोपरि तु संस्थिताम् ॥ १५० ॥

नोत्कृष्टैव हीनञ्च त्रिभागं छेदयेद्विपक् ॥ १५१ ॥

पत्यादानात् सवेद्रक्तं तन्निमित्तं म्रियेत च ।

हीनच्छेदाङ्गवेच्छेयो नालास्त्रावो भ्रमस्तथा ॥ १५२ ॥

तस्मादैवः प्रयत्नेन दृष्टकर्मा विगारदः ।

गलशुण्डीं छेदयित्वा कुर्यात्प्राप्तमिमं क्रमम् ॥ १५३ ॥

नातिमूलेन धाप्यग्रे सम्यक् छेदं ममाचरेत् ।

छित्वा तां व्योममिन्धुग्रामक्षौद्रैः प्रतिमारयेत् ॥ १५४ ॥

गलशुण्डीममं याति यज्जोचीरेण लेपनात् ॥ १५५ ॥

वचामतिविषां पाठां रास्त्रां कटुकरोहिणीम् ।

निःक्वाथ पिचुमन्दच्च कबलं तत्र योजयेत् ॥ १५६ ॥

चारमिहेषु मुहेषु यूपाथाप्यशने हिताः ॥ १५७ ॥

इङ्गुदीकिण्हीदन्ती सरलं देवदारु च ।

पञ्चाङ्गां कारयेद्वर्त्ति मेतां गन्धोत्तरां भिषक् ॥

तस्या धूमं पिवेज्जन्तु हिरङ्गः कफनाशनम् ॥ १५८ ॥

तुण्डिकेर्यभ्रुषे कूर्भं संघाते तालुपुष्पटे ।

एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्माणि ॥ १५९ ॥

तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ।

स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ १६० ॥

इति तालुरोगोपक्रमः ।

—०—

अथ गलरोगनिदानमाह ।

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ

प्रदूष्यमांसं च तथैव शोणितम् ।

गलोपसंरोधकरैस्तथाङ्कुरै-

र्निहन्यसून् व्याधिरयं हि रोहिणी ॥ १६१ ॥

जिह्वासमन्ताङ्गुशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः ।

मारोहिणोवातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥ १६२ ॥

क्षिप्रोद्गमाक्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरापित्तनिमित्तजातु ।

स्त्रोतोनिरोधन्यचलोन्नता च स्थिराङ्कुराया कफसम्भवा सा ॥ १६३ ॥

गम्भीरपाक्विन्यनिवार्यधीर्या त्रिदोषलिङ्गाक्षितयोल्लिता तु ॥ १६४ ॥

स्फोटैश्वितापित्तममानलिङ्गा माध्या प्रदिष्टारुधिरात्मका तु ॥ १६५ ॥

सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति व्रज्याच्छ्लेष्मसमुद्भवा ।

पञ्चाहात्पित्तसंभूता सप्ताहात्पवनान्विता ॥ १६६ ॥

कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्ठकशूकभूतः ।
 स्वरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥ १६० ॥
 जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफाच्च जिह्वापरिष्ठादपि रक्तमित्र्यात् ।
 ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेतन् ॥ १६१ ॥
 बलास एवायतमुन्नतञ्च ग्रन्थिं करोत्यन्नगतिं निवार्य्य ।
 तं सर्वथैवाऽप्रतिवार्य्यवीर्यं विवर्जनीयं बलयं वदन्ति ॥ १६२ ॥
 गलोपरोधं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ।
 मर्मच्छिदं दुस्तरमेतदाहुर्वलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ १७० ॥
 वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः सकंडूरोऽपाक्थऽन्तदुर्गुरुश्च ।
 नाम्नेकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्वलासश्चतजप्रसूतः ॥ १७१ ॥
 समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति ।
 तच्चापि पित्तक्षतजप्रकोपात् ज्ञेयं सतोदं पवनात्मकन्तु ॥ १७२ ॥
 वर्तिर्वनाकण्ठनिरोधिनी तु चित्तातिमात्रं पिशितप्ररोहैः ।
 अनेकरुक् प्राणहरो त्रिदोषात् ज्ञेया शतघ्नो तु शतघ्निरूपा ॥ १७३ ॥
 ग्रन्थिर्गलेत्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक् यः कफरक्तमूर्तिः ।
 मलक्षते सक्तमिवाशनञ्च मशस्त्रसाध्यस्तु गिलायुमंज्ञः ॥ १७४ ॥
 सर्वं गलं प्राप्यसमुत्थितो यः शोथो रुजः संति च यत्र मर्वाः ।
 ससर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ १७५ ॥
 शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ।
 कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गन्धोघः परिकीर्तितोऽसौ ॥ १७६ ॥

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं

भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः ।

कफोपदिग्धेष्वनिनायनेषु

ज्ञेयः सतोदः श्वसनात् स्वरघ्नः ॥ १७७ ॥

प्रतानवान्यः श्वयथुः सकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ।

समांसतानः कथितोऽवलम्बो प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ १७८ ॥
सदाहतोदं श्वयथुं सुताम्बमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ।
पित्तेन विद्याहृदने विदारिणं पार्श्वविशेषात् त्वं येन श्यते ॥ १७९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

साध्यानां रोहिणीनाञ्च हितं शोणितमोक्षणम् ।
छर्दनं धूमपानञ्च गंडूपो नस्यकर्म च ॥ १८० ॥
तथान्तर्वाह्यतः स्वित्रां वारतरोहिणिकां लिपेत् ।
अंगुलीशस्त्रकेनाशु खटुचुक्रेण स्वेनवा ॥ १८१ ॥
वातकी तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् ।
सुखोष्णान् स्नेहकवलान् धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ १८२ ॥
विश्राव्यपित्तसंभूतां सिताक्षौद्रप्रियंगुभिः ।
घर्षयेत् क्षौद्रपतङ्गैः शर्कराभिस्तथायुतैः ॥ १८३ ॥
द्राक्षापरुपककाथो हितश्च कवलग्रहे ।
उपाचरेदेवमेतां सुवैद्यः पित्तसंभवाम् ॥ १८४ ॥
आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ॥ १८५ ॥
श्वेताविडङ्गदन्तोभिस्तैलं सिद्धं ससैन्धवम् ।
नस्यकर्मणि दातव्यं कवलञ्च कफोष्णये ॥ १८६ ॥
रोहिणीकण्ठशालूक तुण्डिकेरी गलायुपु ।
विद्रघी वृन्दके श्रेष्ठं रोचना तार्क्ष्यगैरिकाः ॥ १८७ ॥
सलोभ्रमधुपतङ्गक्षौद्रैर्गण्डूपधारणम् ॥ १८८ ॥
विस्त्राव्यकण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ।
एककालं यत्रान्नञ्च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ १८९ ॥
उपजिह्वकवचापि साधयेदधिजिह्विकाम् ।

उन्नाम्यजिह्वामाकृत्य वङ्गिणेनाधिजिह्विकाम् ॥
 हृदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णौर्ध्वपर्णादिभिः ॥ १८८ ॥
 एकहृन्दं तु विस्त्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ।
 गिलायुद्यापि यो व्याधि स्तंच शस्त्रेण साधयेत् ॥ १८९ ॥
 अमर्मास्थन्तु सम्पक्कं हृदयेद्गलविद्रधिम् ।
 कण्ठरोगेष्वसृद्धोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्म च ॥ १९० ॥
 काथं पिवेच्च दार्वी त्वक् निम्बतार्क्ष्यकलिङ्गजम् ।
 हरोतकीकपायो वा हितो माचिकसंयुजः ॥ १९१ ॥
 कटुकातिविपादारु पाठामुस्तकलिङ्गजः ।
 गोष्मूत्रकथितः पीतः कण्ठरोगविनाशनः ॥ १९२ ॥
 मृद्धोकाकटुकाव्योषं दार्वी त्वक् त्रिफलाघनम् ।
 पाठारसाञ्जनमूर्वा तेजोहृति सुचूर्णितम् ॥ १९३ ॥
 चौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे भिषक्तम् ।
 योगाद्येते त्रयः प्रोक्ता वातरक्तकफापहाः ॥ १९४ ॥
 सितातमालपत्राभ्यां मरिचं द्विगुणं न्यसेत् ।
 तेन सर्पिर्विषकन्तु नस्यादन्याद्गलग्रहान् ॥ १९५ ॥

इति सितादिष्टतनस्यम् ।

शङ्खधूमो यवचारः पाठाव्योषं रसाञ्जनम् ।
 तेजोह्वात्रिफलालोघं चित्रकयेति चूर्णितम् ॥ १९६ ॥
 सचीद्रं धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् ।
 कालकं नाम तश्चूर्णं दन्तास्थगलरोगनुत् ॥ १९७ ॥

इति कालकं चूर्णम् ।

मनःशिलायवचारो हरितानं समैश्वर्यम् ।
 दार्वीत्वक् चेति तश्चूर्णं माचिकेण समायुतम् ॥ १९८ ॥

मूर्च्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।

मुखरोगेषु च येष्टं पीतकं नाम कीर्त्तिम् ॥ २०० ॥

इति पीतकं नामचूर्णम् ।

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशाञ्च कण्ठाम् ।

चौद्रे ष कुर्याद्गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ २०१ ॥

इति यवचारादिगुटिः ।

पञ्चकोलकतालीश पत्रैलामरिचत्वचः ।

पलाशमुष्ककचार यवचाराश्च चूर्णिताः ॥ २०२ ॥

गुडे पुराणे द्विगुणे कथिते गुटिकाः कृताः ।

कर्कभुमात्राः सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि ॥ २०३ ॥

कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्यास्युरमृतोपमाः ।

इति चारगुटिका । इति कण्ठरोगः ।

—०—

अथ सर्वमुखगतरोगनिदानमाह ।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याऽऽचितं सर्वसरः सपातात् ।

रक्तैः सदाहैस्तनुभिः सपीतैर्यस्याचितञ्चापि सपित्तकोपात् ॥ २०५ ॥

अवेदनेः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याचितञ्चापि सवै कफेन ॥ २०६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

वाताक्षर्वसरं चूर्णं लंबणैः प्रतिसारयेत् ।

तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कबलनस्ययोः ॥ २०७ ॥

ततोऽस्मै स्त्रैहिकं धूममिमं दद्याद्विचक्षणः ।

शालराजादनैरण्ड सारैर्गुदिमधूकजाः ॥ २०८ ॥

मज्जानो गुग्गुलुध्याम मांसीकालानुशरिवा ।

श्रीसर्जरसशैलेय मधूच्छिष्टानि वा हरिन् ॥ २०८ ॥

तत्सर्वं सुक्षतं चूर्णं स्त्रैहेनालोड्ययुक्तितः ।

टुण्डूकवृन्तं सचीद्रं मतिमांस्तेन लेपयेत् ॥ २१० ॥

एष सर्वसरे धूमः प्रशस्तः स्त्रैहिको मतः ।

कफघ्नो मारुतघ्नश्च मुखरोगविनाशनः ॥ २११ ॥

इति स्त्रैहिको धूमः ।

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ।

सर्वपित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ २१२ ॥

प्रतिसारणगडूष धूमसंशोधनानि च ।

कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात् कफापहम् ॥ २१३ ॥

इति सर्वसरोपक्रमः ।

मुखपाके शिराविधः शिरः कायविरचनम् ।

मधुसूत्रघृतक्षीरेः शीतैश्च कवलयहः ॥ २१४ ॥

जातीपत्रामृता द्राक्षा यासदावीफलविकैः ।

कायः क्षौद्रयुतः शीतो गंडूषो मुखपाकनुत् ॥ २१५ ॥

कार्यश्च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ।

कृष्णजीरककुटेन्द्र यवचर्वणतस्यहात् ।

मुखपाकव्रणक्ते द दीर्गन्धमुपगम्यति ॥ २१६ ॥

पटोलनिश्चजं ब्वास्त्र मालतीनवपक्षवैः ।

पञ्चपक्षवजः श्रेष्ठः कपायो मुखधावने ॥ २१७ ॥

स्वरसः कथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया ।

मक्षीद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीघणापहा ॥ २१८ ॥

माच्छदोगीरपटोलमुस्ताहरोतकी तिक्तकरोहिणीभिः ।

यद्याह्वराजट्टमचन्दनैश्च कायं पियेत्पाकहरं मुखस्य ॥ २१९ ॥

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशाला

चायन्तितिक्तादिनिशामृतानाम् ।

पीतः कषायो मधुना निहन्ति

मुखे स्थितयास्यगदानशेषान् ॥ २२० ॥

तिलानीलोत्पलं सर्पिः शर्कराचीरमेव च ।

शौद्राख्यो दग्धबक्कस्य गंडूपो मुखपाकनुत् ॥ २२१ ॥

भास्त्रादिता च सकृदपि सुखगन्धं सकलमपनयति ।

त्वग्बीजपूरफलजा पवनमुपश्लं च नाशयति ॥ २२२ ॥

जातोफलजातिपत्री फणिल्लवाङ्गीककुटसञ्चरिता ।

अपहरतिपूतिगन्धं सुखविवरे सस्थिता गुटिकाः ॥ २२३ ॥

कुष्ठैलवालुकैला सुस्ताधान्यकयष्टीमधुकबलाः ।

हरति मुखपूतिगन्धं रसोनमदिरादिगन्धञ्च ॥ २२४ ॥

हरिद्रानिम्बपत्राणि मधुकं नीलमुत्पलम् ।

तैलमेभिः विपक्तव्यं मुखपाकहर परम् ॥ २२५ ॥

—०—

यष्टीमधुपलमेकं त्रिंशदानीलोत्पलस्य तैलस्य ।

प्रस्यञ्च द्विगुणं पयो विधिना पक्वन्तु नस्येन ॥ २२६ ॥

निशिवदनस्य स्त्राव क्षपयति गात्रस्य दोषसंचातम् ।

वपुः स्वर्णत्वमवयवं क्रमशोऽभ्यङ्गेन जन्तूनाम् ॥ २२७ ॥

इति यष्टीतैलम् ।

—०—

अथ मुखरोगेष्वसाध्यनाह ।

ओष्टप्रकोपे वर्ज्याः स्युः मींसरक्तविदोषजाः ।

दन्तमुलेषु वर्ज्याः च त्रिलिङ्गगतिशोपिरौ ॥ २२८ ॥

दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदानलभञ्जनाः ।

जिह्वागतेष्वलासस्तु तालुजेष्वर्बुदं तथा ॥ २२८ ॥

स्वरघ्नो बलयो हृन्दो बलासः सविदारिकः ।

गलौघो मांसतानद्य शतघ्नोरोहिणीगले ॥ २२९ ॥

असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगानवदशैव तु ।

तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ २३० ॥

इति वङ्गसेने मुखरोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

समाप्तः ॥ ६४ ॥

—०—

अथ कर्णरोगनिदानमाह ।

समीरणश्चोत्तगतोऽन्यथाचरन् समन्ततः शूलमतोवकर्णयोः ।

करोति दोषैश्च यथा स्वमावृतः सकर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥ १ ॥

कर्णस्रोतः स्थिते वाते शृणोति विविधान् स्वरान् ।

मेरीमृदङ्गशङ्खानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥

यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आहत्य तिष्ठति ।

शुद्धः श्रेष्थान्वितो वापि बाधिर्यन्तेन जायते ॥ ३ ॥

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपमं स्वनम् ।

करोति कर्णयोः घ्येड कर्णघ्येडः सकीर्तितः ॥ ४ ॥

शिरोभिघातादयथा निमज्जनाज्जले प्रपाकाद्यवापि विद्रव्यैः ।

सर्वे हि पूय ग्रवणोऽनिलादितः सकर्णसंस्त्राय इति प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकडूं करोति च ।

पित्तोष्णगोपितः श्रेष्ठा जायते कर्णगूयकः ॥ ६ ॥

सकर्णगूयो द्रवतां यदागतो विलायितो ध्राणमुखं प्रपद्यते ।

तदा सकर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्धभेदकृत् ॥७॥
यदा तु मूर्च्छन्त्यथवापि जन्तवः सृजन्यपत्न्यान्त्यथवापि मक्षिकाः ।
तदञ्जनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥८॥

पतङ्गाः शतपद्यथ कर्णश्रोतः प्रविश्य हि ।

अरतिं व्याकुलत्वञ्च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ ९ ॥

कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा फुरफुरायते ।

कीटे चरति रक्तोत्रा निस्पन्दे मर्मवेदना ॥ १० ॥

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधि र्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः ।

सपीतनीलारुणमस्त्रमास्रवेद्यतोदधूमायनदाह चीपवान् ॥ ११ ॥

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ।

कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् ॥ १२ ॥

पूयं स्रवति वा पूति सन्नेयः पूतिकर्णकः ।

कर्णशोफार्बुदांशांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १३ ॥

नादोतिरुक्कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्रावणञ्च वातात् ।

शोथः सरागोदरणं विदाहः सपीतपूतिस्त्रवणञ्च पित्तात् ॥ १४ ॥

वैद्युत्यकण्डूस्त्रिशोथयुक्ता स्निग्धास्रुतिः श्लेष्मभवेऽल्परुक् च ।

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात् स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १५ ॥

सौकुमार्याच्चिरोऽभृष्टे सहसैवातिवर्द्धिते ।

कर्णे शोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान् ॥

क्षणाक्षुण्णिभः स्तब्धः सवातात्परिपोटकः ॥ १६ ॥

गुर्वाभरणसंयोगा द्वाडनात् घर्षणादपि ।

शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजाम्वितः ॥

रक्तो वा रक्तपित्ताभ्या मुत्पातः सगदो मतः ॥ १७ ॥

कर्णं बलाद्वर्द्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ।

कफं संगृह्ण कुरुते शोफं स्तब्धमवेदनम् ॥

उन्मन्यकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ १८ ॥

संवर्द्धमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहुरुजान्वितः ।

शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः ॥ १९ ॥

कफासृक् क्रिमयः क्रुद्धाः सर्पपाभा विसर्पिणः ।

कुर्वन्ति पिटकाः पाल्यां कण्डूदाह समन्विताः ॥ २० ॥

कफासृक् क्षमिसंभूतः सबिसर्पक्षितस्ततः ।

लिहेच्च सकलां पालीं परिलेहीति सधृतः ॥ २१ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

कर्णशूलेप्रणादे च वाधिर्यं ह्येङ् एव च ।

चतुर्णामपि रोगाणां सामान्यं भेषजं विदुः ॥ २२ ॥

स्निग्धं वातहरैः स्नेहैः नरं वापि विरेचयेत् ।

भुक्तोपरिहितं सर्पि र्वंस्तिकर्म्म च पूजितम् ॥ २३ ॥

कोष्णं पयोनुपानञ्च त्रिरात्रं पाययेद् दृढतम् ॥ २४ ॥

अखत्यपच खल्लं वा विधाय बहुपत्रकम् ।

तैलाक्तमङ्गारपूर्णं निदध्याच्छ्रवणोपरि ॥ २५ ॥

यत्तैलं श्यवते तस्मात् खल्लादङ्गारतापितात् ।

तत्प्राप्तं श्ववणस्त्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ २६ ॥

शृङ्गवेरञ्च मधुकं सैन्धवं तैलमेव च ।

कटूष्णं कर्णयोर्द्वयं मेतद्वा वेदनापहम् ॥ २७ ॥

कपित्थमातुलुङ्गाम्बु शृङ्गवेररमेः शुभैः ।

सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ २८ ॥

लग्नार्द्रकगिष्णूणां सुरक्षामूलकस्य च ।

कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कटूष्णं कर्णपूरणे ॥ २९ ॥

कर्णं कोष्णेन शक्तेन पूरयेत्कर्णशूलिनः ।
 समुद्रफेनचूर्णेन शक्त्यावाप्यवचूर्णयेत् ॥ ३० ॥
 भर्कांकुरानम्लपिष्टां स्त्रैलाक्तैस्त्वणान्वितान् ।
 सन्निसध्यात् स्रुहोकाण्डे कौरिते तच्छदाहते ॥ ३१ ॥
 पुटपाकक्रमात् खिन्नं पीडयेदारसागमात् ।
 सुखोष्णं तद्रसं कर्णं दापयेच्छूलशान्तये ॥ ३२ ॥

—०—

महतः पञ्चमूलस्य काष्ठान्यष्टांगुलानि च ।
 क्षौमिनावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ ३३ ॥
 यत्तैल च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तत्रदापयेत् ।
 ज्ञेयं तद्दीपिकातैल सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ३४ ॥
 एव कुर्याद्भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले ।
 मतिमान् दीपिकातैल कर्णशूलनिवारणम् ॥ ३५ ॥

इति दीपिकातैलम् ।

अर्कस्य पत्रं परिणामपीत माज्येन क्षितं शिखिनावतप्तम् ।
 आपीड्यतीयं श्रवणे निपिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनञ्च ॥ ३६ ॥
 तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लोदवाहिनि ।
 छागमूत्रं प्रशंसन्ति कोष्णं सैन्धवसंयुतम् ॥ ३७ ॥
 एरण्डपत्रं पुटपाकविपाचिताम्बु
 तुल्यार्द्रकस्य सलिलं मधुकेन मिश्रम् ।
 परका च तैललवणेन युतं सुखोष्णं
 कर्णे रुजं हरति तत्क्षणमेव दत्तम् ॥ ३८ ॥
 विस्वैरण्डार्कवर्षाभू दधित्योन्मत्तशिपुभिः ।
 वत्सगन्धाश्वगन्धाभ्यां तर्कारीयवरेणुभिः ॥ ३९ ॥

आरनालशृतैरेभिर्नाडोस्त्रेदः प्रयोजितः ।

कफवातसमुत्थानं कर्णशूलं निवारयेत् ॥ ४० ॥

रास्त्रासृतैरण्डसुराह्वविश्वं तुल्यं पुरेणापि विमृद्य खादेत् ।

मातामयो कर्णशिरोगदो च नाडीव्रणो चैव भगन्दरो च ॥ ४१ ॥

इति रास्त्रागुग्गुलुः ।

यथावलेखसंयुक्ते मूत्रे वाऽऽजाविके भिषक् ।

तैलं पचेत्तेन कर्णं पूरयेत्कर्णशूलिनः ॥ ४२ ॥

धारयेत् पूरणं कर्णं कर्णशूलं विमर्दयेत् ।

रुजः स्यान्मार्दवं यावन्मात्राशतमवेदनम् ॥ ४३ ॥

यावत्पर्येति हस्तायं दक्षिणं जानुमण्डलम् ।

निमेषोन्मेषकालेन समं मात्रा तु सा स्मृता ॥ ४४ ॥

तैलं श्योनाकमूलेन मन्दाग्नौ परिसाधितम् ।

हरेदाश्वं त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ ४५ ॥

इति श्योनाकतैलम् ।

हिंगुतुम्बुरुशृण्णिभिः साध्यं तैलं सप्तार्पणम् ।

कर्णशूले प्रधानं तत् पूरणं हितमुच्यते ॥ ४६ ॥

इति हिंग्वाद्य तैलम् ।

देवदारुवचाशृण्णि शताङ्गाकुटसेन्ययैः ।

तैलं सिद्धं हि गोमूत्रे कर्णशूलनिवारणम् ॥ ४७ ॥

इति देवदारुवदितैलम् ।

पिप्पल्या विस्वमूलञ्च कुटं मधुकमेव च ।

सूक्ष्मेनादेवदारुणि मांसीध्याघ्नीनखौ गुरु ॥ ४८ ॥

गर्भणानेन तैलस्य प्रस्यं भृङ्गनिना पचेत् ।

केयूरमूलकरमी दद्यात् स्त्रे ह्येन ननुतो ॥ ४९ ॥

तेन कर्णं पितुं दद्याद्द्वस्तिकर्म च कारयेत् ।

तेनोपशाम्यते क्षिप्रं कर्णशूलं सुदारुणम् ॥ ५० ॥

इति पिप्पल्याद्यं तैलम् ।

वातरोगे च निर्दिष्टा क्रिया चात्र प्रयोजयेत् ।

ज्ञान शीतांबुमंपानं मैयुनञ्च विवर्जयेत् ॥ ५१ ॥

पित्तजे शर्करायुक्तं घृतस्निग्धं विरेचनम् ।

द्राक्षाद्यष्टीशृतं क्षीरं शस्यते कर्णपूरणम् ॥ ५२ ॥

पित्तवद्रक्तजे कुर्याच्चिराया रक्तमोक्षणम् ।

कफजे भागधोसिद्धं हविः दुग्धं प्रवाप्य च ॥

कुर्याद्गण्डूपसंस्लेदं धूपनं कफनाशनम् ॥ ५३ ॥

कर्णक्षेडे कर्णनादे कटुतैलेन पूरयेत् ।

नादवाधिर्ययोः कुर्यात् कर्णशूलोक्तमौषधम् ॥ ५४ ॥

कफजे चाचरेत् पूर्वं वमनादौः क्रियाक्रमम् ।

वातजे कुट्टजं वापि लाङ्गलीक्षोरमिश्रितम् ॥ ५५ ॥

दलेनाश्वत्थहृच्चस्य वेष्टितं सुविपाचितम् ।

सतैललयणं कोष्णं वाधिर्यं कर्णपूरणम् ॥ ५६ ॥

एरण्डशिग्रुवरुण मूलिकापत्रजे रमे ।

चतुर्गुणे पचेत्तैलं क्षीरे चाष्टगुणान्विते ॥ ५७ ॥

यद्याह्वाक्षीरकाकोली कल्कयुक्तं निहन्ति तत् ।

नादवाधिर्यशूलानि नावनाभ्यङ्गपूरणैः ॥ ५८ ॥

इत्येरण्डादितैलं कर्णपूरणे ।

कल्ककायैश्च यद्याह्वाकाकोलीद्वयमापकैः ।

सूकरश्च वसा पक्वा कर्णनादातिनाशिनी ॥ ५९ ॥

इति सूकरवसा ।

स्वर्जिकामूलकं शुष्कं हिगु कृष्णामहीवधम् ।
 शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्लं चतुर्गुणे ॥ ६० ॥
 मृणादशूलवाधिर्यं स्वावं चाशु व्यपोहति ॥ ६१ ॥

इति स्वर्जिकातैलम् ।

मयूरनानगोमांसं लशुनं शुष्कमूलकम् ।
 सशुक्लं साधितं तैलं कर्णनादार्तिनाशनम् ॥ ६२ ॥

इति मयूरनालाद्यं तैलम् ।

गवा मूत्रेण विल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।
 सजलञ्च सदुग्धञ्च वाधिर्यं कर्णपूरणम् ॥ ६३ ॥

इति विष्वतैलम् ।

अपामार्गचारजले तत् कृतकल्केन साधितं तैलम् ।
 अपहरति कर्णनादं वाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ ६४ ॥

इत्यपामार्गतैलम् ।

बालमूलकशुण्ठीनां चारो हिगुसनागरम् ।
 शतपुष्पावचाकुष्टं दारुगिगुरसास्त्रनम् ॥ ६५ ॥
 सौवर्चलं यवचारः स्वर्जिकोद्भिदसैन्यवम् ।
 भूर्जग्रन्थिविडं मुस्तं मधुशुक्तं चतुर्गुणम् ॥ ६६ ॥
 मातुलुङ्गरमथैव कदल्यारम एव च ।

तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥ ६७ ॥
 वाधिर्यं कर्णनादञ्च घृयस्त्रावस्य दारुणः ।

पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णमाश्रिताः ॥ ६८ ॥
 क्षिप्रं विनागमायान्ति कृष्णात्रे यस्य शसनात् ।
 चारतैलमिदं श्रेष्ठं सुखं कर्णमयापहम् ॥ ६९ ॥

इति चारतैलम् ।

कम्बूराणां फलरसः प्रस्थैकः कुडयोन्मितम् ।
 माचिकं तत्र दातव्यं पिप्पली चपलोन्मिता ॥ ७० ॥
 छतभांडे विनिःक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् ।
 मासेन तज्जातरसं मधुशक्तमुदाहृतम् ॥ ७१ ॥
 एष एव विधिः कार्यः प्रणादे नस्यपूर्वकः ।
 गुड़नागरतोयेन नस्यं स्यादुभयोरपि ॥ ७२ ॥
 कर्णस्त्रावे पूतिकर्णं तथैव क्लमिकर्णके ।
 सामान्यं कर्मकुर्वीत योगान्वेशेपकानपि ॥ ७३ ॥
 शिरोविरेचनं चैव धूपनं पूरणं तथा ।
 प्रमार्जनं धावनञ्च वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ ७४ ॥
 राजहृत्तादितोयेन सुरसादिजलेन च ।
 कर्णप्रक्षालनं कार्यं चूर्णैरेतैस्तु पूरणम् ॥ ७५ ॥
 चूर्णं पञ्चकपायाणां कपित्थरससंयुतम् ।
 कर्णस्त्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ ७६ ॥
 तिन्दुकान्यभयालोभं समद्वा चामलक्यपि ।
 पञ्चकपायशब्देन ग्राह्यमेतद्धि बोधितम् ॥ ७७ ॥

इति पञ्चकपायः ।

सर्जत्वक् चूर्णसंयुतं बोजपूररसं क्षिपेत् ।
 कर्णस्त्रावे रुजः दाहाः प्रणश्यन्ति न शंशयः ॥ ७८ ॥
 सर्जत्वक् चूर्णसंयुतः कार्पासीफलजो रसः ।
 योजितो मधुना वापि कर्णस्त्रावे प्रशस्यते ॥ ७९ ॥
 पुटपाकक्रमस्त्रिभो हस्तिविड्जातकृत्रजः ।

रसः सतैलसिन्धूत्यः कर्णस्त्रावहरः परः ॥ ८० ॥

जम्बाम्बपत्रं क्षरणं समांशं कपित्थकर्पासफलञ्च सान्द्रम् ।
 चुक्षारसं तन्मधुना विमिश्रं स्त्रावापहन्तं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

एतैः शृतं निम्बकारञ्जतैलं सप्तार्घ्यं स्नावहरं प्रदिष्टम् ॥ ८१ ॥
इति जम्बादं तैलम् ।

अर्कस्य पत्रस्वरसं निर्गुण्डीस्वरसं तथा ।
राजवृक्षादितोयेन सूर्यावर्त्तरसं तथा ॥ ८२ ॥
चित्रकोङ्कवसमिश्रं वज्जीक्षीरं तथैव च ।
तथा हुलहुलतोयेन प्रस्थैकेन क्रमेण तु ॥ ८३ ॥
तेलप्रस्थं पचेत्तस्मिन् हरितालपलद्वयम् ।
सैन्धवञ्च पलं योज्यं विषं पादांशकं तथा ॥ ८४ ॥
एतत्तैलं हरेत् क्षिप्रं कर्णशूलञ्च दुस्तरम् ॥
इति विषगर्भतैलम् ।

मुसलीबाकुचीचूर्णं खादेद्वाधिर्यशान्तये ॥ ८५ ॥
इति ग्रन्थान्तरादवोक्तम् ।

विश्वोदुम्बरजबूदधित्यचूतानां वल्कलैः सिद्धम् ।
शुतिरोधञ्च निहन्ति तैलं प्रपाकपूतिश्रुतं जयति ॥ ८६ ॥
इति पञ्चवल्कलतैलम् ।

ग्राम्भजंघूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च ।
एभिः सुसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशान्तये ॥ ८७ ॥
इति चतुष्पण्यतैलम् ।

वरुणाङ्कपित्याम्भं जंबूपक्षवसाधितम् ।
पूतिकर्णोपहं तैलं जातीपत्ररसोऽथवा ॥ ८८ ॥
इति चतुष्पक्षवतैलम् ।

निर्गुण्डीस्वरसे तैलं सिन्धुधूमरजो गुडः ।
पुरणात् पूतिकर्णस्य शमनो मधुमयुतः ॥ ८९ ॥
जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ॥ ९० ॥

घृष्टं रसाङ्गनं नार्थ्याः क्षीरेण मधुसंयुतम् ।
प्रयस्यते चिरोत्थेषु सप्तावे पूतिकर्णके ॥ ८१ ॥

—०—

कुष्ठं हिंशुषवादारु शताह्वाविश्वसैन्धवैः ।
पूतिकर्णापहं तैलं वत्समूत्रेण साधितम् ॥ ८२ ॥

इति कुष्ठाद्यं तैलम् ।

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् ।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडीप्रशम्यति ॥ ८३ ॥

इति शम्बूकतैलम् ।

चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभवेन
मुष्ट्यं शकेन कटुतैलपलाष्टकञ्च ।

धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं
नाडीं जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥ ८४ ॥

गन्धकादीनामत्र मिलित्वा पलं ग्राह्यम् ।

इति गन्धकाद्यं तैलम् । इति कर्णनाडीचिकित्सा ।

कृमिकर्णविनाशाय कृमिघ्नां कारयेन्नियाम् ।

वार्ताकुधूमश्च हितः सर्पपञ्चेह एव च ॥ ८५ ॥

पूरणं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च ।

धूपने कर्णदीर्गन्ध्यं गुम्फुलुः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ८६ ॥

सूर्यावर्तस्य स्वरसं सिन्धुवाररसं तथा ।

लाङ्गुलीमूलजरसं व्रूयणं चूर्णितं तथा ॥ ८७ ॥

पूरयेत् कृमिकर्णान्तु जन्तूनां नाशनं परम् ।

इति योगचतुष्टयम् ।

हलिरविभक्तिव्योपानेकीकृत्यप्रगालयेद्बद्धा ।

वसनेन तस्य रसेन श्रवणे परिपूरयेत्सुतराम् ॥ ८८ ॥

कर्णजलोकानियतं कृमिकोटिपिपीलिकास्तथान्येऽपि ।

निपतन्तिनिरवश्रेयाः कारण्डाद्यापि मुण्डस्याः ॥ ८९ ॥

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।

ततो विरक्ताशिरसः क्रियां प्राक्तां समाचरेत् ॥ ९० ॥

विद्रव्यौ चापि कुर्वीत विद्रव्युक्तं चिकित्सितम् ।

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात् चतविसर्पवत् ॥ ९१ ॥

प्रक्लेद्यधीमांस्तेलेन प्रविलाय्य च शोधयेत् ।

कर्णगूढन्तु मतिमान् भिषक् सम्यक् शलाकया ॥ ९२ ॥

स्नेदस्वेदौ च वसनं धूमो मूर्ध्नि विरेचनम् ।

विधिश्च कफहृत्स्वः कर्णकंडूमपोहति ॥ ९३ ॥

वाधिर्यं बालहृदोत्थं चिरोत्थञ्च विवर्जयेत् ॥ ९४ ॥

इति कर्णरोगचिकित्सा ।

—०—

अथ पर्णपालीचिकित्सा माह ।

पान्तीसंशोषणे कुर्याद् द्वातकर्णरुजः क्रियाम् ।

स्नेदयेद्यत्रतस्ताश्च स्विन्नां सर्वर्षयेत्तिलैः ॥ ९५ ॥

भाद्रिपनजनीतयुतं मत्ताहं धान्यं राशिपर्युषितम् ।

नवमूर्मलिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालिनाम् ॥ ९६ ॥

गतावरीवाजिगन्धा पयस्यैरण्डबीजकैः ।

तैलं विपक्तं सघोरं पालोनां पुटीकृत्यरम् ॥ ९७ ॥

इति गतावरी तैलम् ।

कश्चेन जीवनीयेन तैलं पयसि पाचितम् ।

आनूपमांसकायेन पालीशोपणवर्धनम् ॥ १०८ ॥

एतेनैव हि तैलेन चिकित्सेद्विपजां वरः ।

हृतासं परिपोटश्च चट्टिकाश्च प्रयत्नतः ॥ १०९ ॥

इति जीवनीयतैलम् ।

शीतैर्लेपैर्जलौकाभि रुत्पातं समुपाचरेत् ॥ ११० ॥

गोपनीयावलायष्टी जम्बुाम्बपक्षवोत्पलैः ।

सधान्यास्रैः समञ्चिष्टैः सिद्धैर्लोभ्रान्वितैः समैः ।

तैलमभ्यङ्गतः सिद्धं कर्णोत्पातहरं परम् ॥ १११ ॥

त्रायन्त्यश्वगन्धार्कं वाकुचीबीजसिन्धुजैः ।

फलिनीसुरसाभ्याश्च गोधाकद्ववसान्वितैः ॥

तैलमभ्यङ्गतः पक्वमुत्पातं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ११२ ॥

दुःखवर्धनकं सिक्त्वा जम्बुाम्बुशतपत्रजैः ।

क्वाथैस्तैलेन सुस्निग्धं तच्चूर्णैश्चूर्णयेत् ॥ ११३ ॥

बहुशो गोमयपिण्डैः स्वेदितं परिलेहिकम् ।

मेघसारैः समालिम्पे हृदिमूत्रेण कल्कितैः ॥ ११४ ॥

इति बह्व्रसेने कर्णरोगकर्णपालीरोगनिदान-

चिकित्साधिकारः समाप्तः ॥ ६५ ॥

—०—

अथ नासारोगनिदानमाह ।

आनद्यते यस्य विशण्यते च प्रक्षिद्यते धूम्यति चैव नासा ।

नवेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्तमपीनसेन ॥

तच्चानिलश्लेष्मभयं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्याय समानलिङ्गम् ॥ १ ॥

दोषैर्विदग्धैर्गलसतालुमूले संमूर्च्छितो यस्य समीरणस्तु ।
 निरेति पूतिमुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम् ॥ २ ॥
 घ्राणायितं पित्तमरूपि कुर्याद्यस्मिन् विकारे बलवांश्च पाकः ।
 तं नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोऽथावयवापि यत्र ॥ ३ ॥
 दोषैर्विदग्धैरथवापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ।
 नासास्त्रवेत् पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ४ ॥
 घ्राणायितो मर्मणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति ।
 कफानुयातो बहुशोऽतिशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥ ५ ॥
 तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान् कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ।
 सूत्रादिभिर्वातरुणास्थिमर्माण्युद्धाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ॥ ६ ॥
 प्रभ्रश्यते नामिकयैव यस्य सान्द्रां विदग्धो लवणः कफस्तु ।
 प्राक् मक्षितो मूर्धनि सूर्यतप्तस्तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥
 घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिघरेद्भूम इवोर्ध्ववायुः ।
 नासाप्रदीप्तैव च यस्य जन्तोर्व्याधितु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ ८ ॥
 उच्छ्वासमार्गन्तु कफः सवातो रुम्याप्रतिनाह मुदाहरेत्तम् ।
 घ्राणादधनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः सवेत् स्त्रावमुदाहरेत्तम् ॥ ९ ॥
 घ्राणात् सपिच्छिलः श्लेष्मा अवलोद्वव उपपन्ना ।
 अजरः स्यन्दते घ्राणात्तमासात्तवं तमादिशेत् ॥ १० ॥
 घ्राणायिते श्रोतसि मार्कतेन पित्तेन गाढं परिशीयिते च ।
 लक्ष्णाच्छसीदूर्ध्वमधश्च जन्तु र्यस्मिन् मनामापरिशोष उक्तः ॥ ११ ॥
 दोषैस्त्रिभिर्वा पृथगेकगय व्रूयात्तथागमि तथैव गोपान् ।
 शालाकमिहन्तमधेय्य द्वापि मर्शत्कं सर्वगमर्दुदं म्यात् ॥ १२ ॥
 शिरोगुहत्वमरुचिर्नामासावस्तनुम्पर ।
 क्षामः क्षीयत्यथा भोक्ष्य मामपोनमनक्षणम् ॥ १३ ॥
 क्षामनिद्रान्वितः श्लेष्मा धनः श्लेपु निमज्जति ।

स्वरवर्णविशुद्धिश्च परिपक्वस्य लक्षणम् ॥ १४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

सर्वेषु पीनसेष्वादी निवातागारगो भवेत् ।

शिरसोऽभ्यङ्गनैः स्वेदैर्नस्यैः कटुम्लभोजनैः ॥

वमनैर्घृतपानैश्च नासारोगानुपाचरेत् ॥ १५ ॥

पञ्चमूलीशृतं घोरं चित्रकञ्च हरोतकी ।

सर्पिर्गुडः पङ्कजश्च यूपः पीनसशान्तये ॥ १६ ॥

सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमात्रेषु ।

मरिचं गुडेन दध्ना भुञ्जीतनरः सुखं लभते ॥ १७ ॥

कटुत्रिकं चित्रकतित्तिडिकं तालीशपत्रं चविकाम्लसंश्रम् ।

विचूर्णितं जीरकचूर्णयुक्तमेलाल्पचा तत्सुरभीकृतं च ॥

मिश्रं पुराणेन गुडेन दद्यात्तत्पीनसानां परिपाचनार्थम् ॥ १८ ॥

इति कटुत्रिकादिचूर्णं गुटिका च ।

कटुफलं शृङ्गवेरच पिप्पलीमरिचानि च ।

शठीपुष्करमूलञ्च भांगीमधुरसावरा ॥ १९ ॥

अभयाक्षुण्णलवण शृङ्गीकर्कटकस्य च ।

एतच्चूर्णवरं प्रोक्तं कायो वा मूत्रमूर्च्छितः ॥ २० ॥

पीनसे स्वरभेदे च तमके सहलीमके ।

सन्निपातेऽनिलकफे कासे श्वासे च शस्यते ॥ २१ ॥

इति कटुफलादिचूर्णम् ।

पूर्वोद्दिष्टे पूतिनस्ये च कुर्यात् स्नेहस्वेदौ छर्दनं स्नानं वा ।

युक्तं भुक्तं तीक्ष्णमर्षं लघुस्वादुष्यं तीक्ष्णं धूमपानञ्च कार्यम् ॥ २२ ॥

स्निग्धस्य कृदनैर्दोषान्निर्हरेद्वातपीनसे ।

पित्ते सर्पि पिवेत्सिद्ध शृङ्गवेरेण वा पय ॥ २३ ॥

देयं कफघ्नमुष्णञ्च भोजनं रुक्षणं हितम् ।

विरेक वमन ह्यादौ लङ्घनं कफपीनसे ॥ २४ ॥

स्नेहसेकश्च वा कार्थ्यो लिप्ते शिरसि सर्पयै ।

लशुन मुहचूर्णैश्च व्योषच्चारयुतैर्हित ॥ २५ ॥

सकासे पीनसे पृति घ्राणे स्त्रावे सकटुरे ।

धूम शस्त्रोऽवपीतश्च कटुभि कफपीनसे ॥ २६ ॥

कफघ्नमन्नं वार्त्ताक कुलित्याढकिमुद्गजा ।

यूषा प्रशस्ता मव्योषा स्तव्या तोयोष्णसेवनम् ॥ २७ ॥

कनिङ्गहिगुमरिच लाचासुरमकट्फलै ।

कुट्टोद्याशिषुजन्तुघ्नै रवपीड प्रशस्यते ॥ २८ ॥

तैरेव मूत्रमयुक्तै कटुतैल विपाचयेत् ।

अपीनसे पूतीनस्यै शमन कीर्तितं परम् ॥ २९ ॥

व्यापचित्रकतालोश तित्तिडिकास्त्रवेतमम ।

मचव्याजालोतुल्याश मैलात्वक् पत्रपादिकाम् ॥ ३० ॥

व्योषादिकमिदं चूर्णं पुराणगुडसंयुतम् ।

पीनसम्बासकामघ्न रुचिस्त्ररकरं परम् ॥ ३१ ॥

इति व्योषाद्य चूर्णम् ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिषु सुरमाव्योपमिभुजै ।

पाचितं नायन तैल पृतिनामागदायहम् ॥ ३२ ॥

इति व्याघ्रीतैलम् ।

त्रिकटुकविडङ्गमैत्र्यव हृहतीफलशिपुसुरमदन्तीभि ।

तैलं गोजनमिदं नम्यं म्यात् पूतिनम्यम् ॥ ३३ ॥

इति त्रिकटुकाद्य तैलम् ।

शिग्रुसिंहिनिकुम्भानां बीजैः सव्योपसैन्धवैः ।

बिल्वपत्ररसे तैलं नावनं पूतिनस्यजित् ॥ ३४ ॥

इति शिग्रुतैलम् ।

चित्रककपायपलशत ममृताजातीरसञ्च तुल्यांशम् ।

प्रक्षिप्यगुडशतञ्च द्विपञ्चमूलीकपायेण ॥ ३५ ॥

तत्तुल्येन च हरितक्यादकमेकं विपाच्यगुडपाकम् ।

अर्द्धप्रस्थं मधुनस्तस्मिन् दद्यात्ततो वैद्यः ॥ ३६ ॥

हे.हे पले निदद्यादेलात्वक् पत्रविकटुकानाम् ।

यवक्षारादर्धपलं प्रयोजयेदग्निबर्धनं पुंसाम् ॥ ३७ ॥

एतद्रसायनोत्तममस्त्रिभ्यां निर्मितं सुविख्यातम् ।

उपयुक्तवतां पुंसां चकणकाष्टान्यपि च जीर्यति ॥ ३८ ॥

अजितमपि भेषजशतैः पीनसरोगं च ग्रहाज्जयति ।

नृपतिरसायनमेत दाहारयन्त्रणारहितञ्च ॥ ३९ ॥

इति राजरसायनम् ।

नासापाके पित्तहृत्स्वविधानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरञ्च ।

हृत्वा रक्तं क्षीरहृत्स्वचक्षु योज्याः सेकाः सष्टताश्च प्रदेहाः ॥ ४० ॥

सर्जार्जुनोदुम्बरवत्सकानां त्वचा कपायैः परिधावनीयः ।

कपायकल्कैरपि चैभिरेव सिद्धं घृतं घ्राणविपक्वानुत्परम् ॥ ४१ ॥

पूयास्त्रे रक्तपित्तघ्नाः कपाया नावनानि च ।

पाकदाहादिरोगेषु शीतलेपादिकाः क्रियाः ॥ ४२ ॥

यान्ते सम्यक् चावपीडं विदध्यात्तीव्रं धूमं शोधनं चात्र नस्यम् ।

क्षेप्यं नस्यं मूर्ध्वैरेचनीयैर्नाद्या चूर्णं क्षुद्रदे भ्रंशथी वा ॥ ४३ ॥

घृतगुगुलुमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः ।

धूमः चवथुरोगघ्नो भ्रंशयुघ्नश्च निर्दिशेत् ॥ ४४ ॥

सपिप्पलीकुष्ठमहौषधानां विडङ्गमृद्धीककपायकल्कैः ।

तैलं विपक्वं चवथौ च नस्यं वसां पचेत्तैलमघो घृतञ्च ॥ ४५ ॥

इति पिप्पलीतैलम् ।

द्रव्याणि यानि चवथौ प्रदिष्टान्येतानि सर्वाणि सकट्फलानि ।

चूर्णानि कृत्वा प्रधमेत नस्ये शस्तञ्च दत्तं भ्रंशयुं निहन्त्यात् ॥ ४६ ॥

शुण्ठिकुष्ठकणाविल्व द्राक्षाकल्ककपायवत् ।

साधितं तैलमाज्यञ्च नस्यात् चवथुरुग्जयेत् ॥ ४७ ॥

इति शुण्ठीतैलं घृतं च ।

दोषे रोगे पित्तद्वत् संविधानं कार्यं सर्वं माधुरं शीतलञ्च ॥ ४८ ॥

नस्यं हितं निम्बरसाञ्जनाभ्यां दोषे शिरः खेदनमल्पशस्तु ।

नस्ये कृते घोरजलावसेक्तान् शंसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूपैः ॥ ४९ ॥

नासानाहे स्नेहपानं प्रधानं त्रिग्व्हा धूमा मूर्ध्ववस्त्रिय नित्यम् ।

वसातैलं सर्वथैवापि युञ्ज्याद्वातव्याधावन्यदुक्तं च यदात् ॥ ५० ॥

नासास्त्रावे घ्राणतद्यूर्णमुक्तं

नाद्या देयं येऽवपीडाय पथ्याः ।

तीक्ष्णान् धूमान् देवदार्यग्निकाभ्यां

मांसं त्वजं पथ्यमत्रादिशन्ति ॥ ५१ ॥

नाशाशोषे घोरसर्पिः प्रधानं मिहं तैलं घ्राणकल्पेन नस्ये ।

सर्पिः पीतं भोजनं जाडलैश्च स्नेहस्वेदो स्नेहिकयापि धूमः ॥ ५२ ॥

इति पीनसोपक्रमः ।

अथ निदानमाह ।

सन्धारणाजोर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्य शिरोऽभितापैः ।
 प्रजागरार्त्तिस्वपनावुशीतै रवश्यया मैथुनवाप्यशोकैः ॥
 संस्थानदोषे शिरसि प्रहृष्टो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ ५३ ॥
 चयङ्गतामूर्धनि मारुतादयः पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ।
 प्रकुप्यमाना विविधैः प्रकोपनै र्नृणां प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ॥ ५४ ॥
 क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपृग्गतास्संभोऽङ्गमर्दः परिदृष्टरोमता ।
 उपद्रवाद्याम्यपरि पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥ ५५ ॥
 श्वानद्वा पिहितानासा तनुस्त्रावप्रसंक्ता ।
 गलतास्त्वोष्ठशीपथ निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ।
 भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्कके ॥ ५६ ॥
 उष्णः सपीतकः स्त्रावो घ्राणात् स्रवन्ति पैत्तिके ।
 कृशोऽतिपांडुः सन्तप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः ॥
 सधूममग्निं सहसा वमतीव च नासया ॥ ५७ ॥
 घ्राणात्कफः कफकृते खेतः पांडुः सवेद्वहः ।
 शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः ।
 कण्ठतास्त्वोष्ठशिरसां कण्ठुभिरतिपीडितः ॥ ५८ ॥
 भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्माद्विनिवर्त्तते ।
 संपक्वो वाप्य पक्वो वा ससर्वप्रभवः स्मृतः ॥ ५९ ॥
 प्रक्षिप्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ।
 पुनरानक्षते वापि पुनर्विन्नियते तथा ॥ ६० ॥
 निःश्वासे वातिदौर्गन्ध्यं नरो गन्धान्न येति च ।
 एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात् कष्टसाधनम् ॥ ६१ ॥
 रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्त्रावः प्रवर्त्तते ।

ताम्नाच्चस्तु भवेज्जन्तु रुरोधातप्रपीडितः ॥
 दुर्गन्धोच्छ्वासवदनो गन्धानपि नवेति स' ॥ ६२ ॥
 सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ।
 दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽमाध्या भवन्ति च ॥ ६३ ॥
 मूर्च्छन्ति चात्र क्लयम' खेताः स्निग्धाः स्तथाणवः ।
 छमिजो यः शिरोरोग स्तुल्यन्तेनास्यलक्षणम् ॥ ६४ ॥
 बाधिर्यमाभ्यमघ्नत्वं घोरान्ध नयनामयान् ।
 शोथग्निसादकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ ६५ ॥
 अर्बुदं सप्तधा शोथ सत्वरोऽर्शश्चतुर्विधम् ।
 चतुर्विधं रक्तपित्त मुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ ६६ ॥
 शिरोललाटतालूनां गौरव दुःखनिद्रता ।
 अर्शसामर्बुदानाञ्च दोषकोपाकृतिः समा ॥ ६७ ॥
 अर्शांसि गोस्तनाकाराण्यर्बुदं कीलसन्निभम् ॥ ६८ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृह्यं वातविवर्जितम् ।
 वस्त्रे न गुरुणोष्णेन शिरसो वेष्टनं हितम् ॥ ६९ ॥
 विडङ्गं सैन्धवं द्विगु गुग्गुलुः समन.शिलाः ।
 प्रतिश्यायो वचायुक्तं चूर्णमाघ्राय नश्यति ॥ ७० ॥
 अथवा सष्टताब्जकून् कृत्वामलकसंपुटे ।
 सर्वप्रतिश्यायवतां धूमो वैद्यः प्रयोजयेत् ॥ ७१ ॥
 घृततैलेन संयुक्तं शक्तुधूमं पिवेन्नरः ।
 प्रतिश्यायहरं प्रोक्तं कासद्विकानिवारणम् ॥ ७२ ॥
 प्रतिश्याये पियेदूमं सर्वगन्धसमायुतम् ।

चातुर्जातकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजीरकम् ॥ ७३ ॥
 पुटपाकं जयापत्रं सिन्धुतैलसमन्वितम् ।
 प्रतिश्लायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ ७४ ॥
 भक्षयति भुक्तमात्रे सलवणं सुस्निग्धमापमत्युष्णम् ।
 शमयति सर्वसमुत्थं चिरजातं च प्रतिश्लायम् ॥ ७५ ॥
 शठीतामलकीव्योष चूर्णं सर्पिर्गुडान्वितम् ।
 हन्तिघोरं प्रतिश्लायं पार्श्वहृद्दस्तिशूलनुत् ॥ ७६ ॥
 कुलित्ययवधान्यान्मूत्रयूषं तित्तिडिपञ्चजम् ।
 स्वेदोष्णञ्च हिमं भोज्यं पाचनाय प्रशस्यते ॥ ७७ ॥
 गुडान्वितं चार्द्रमथादिशन्ति शुक्तोपितं तत्परिपाचनाय ॥ ७८ ॥
 द्रूपपणं गुडसंयुक्तं स्निग्धं दुग्धाम्लभोजनम् ।
 प्रतिश्लायहरं प्रोक्तं विशिषात्कफनाशनम् ॥ ७९ ॥
 ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरिचनैः ।
 पिप्पल्यः शिबुबोजानि विडङ्गं मरिचानि च ॥
 अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्लायनिवारणः ॥ ८० ॥
 शिरसोऽभ्यञ्जनं स्वेदं नस्यं कटुम्लभोजनैः ।
 बमनैः कृतपानैश्च नान्यथा समुपाचरेत् ॥ ८१ ॥
 बातके तु प्रतिश्लाये पिवेत्सर्पिर्यथाबलम् ।
 पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च ॥ ८२ ॥
 नस्यादिषु विधिं कृत्स्नं सवेचेतार्दितेरितम् ॥ ८३ ॥
 रक्तपित्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ।
 परिपेकान् प्रदेह्याश्च कुर्यादपि च शीतलान् ॥ ८४ ॥
 युष्मज्जते कबलांश्चात्र विरेको मधुरैरपि ॥ ८५ ॥
 हितं पित्तप्रतिश्लाये पाचनार्थं शृतं पयः ।
 शृङ्गवेरेण पयसा शृङ्गवैरमथापि वा ॥ ८६ ॥

धवत्वक् त्रिफलाश्यामा तिल्वकैर्मधुकेन च ।

शोषणीरजनीमिश्रैः क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥

तैलं कालोपयुक्तं तु नस्यं स्यादनयोर्हितम् ॥ ८७ ॥

इति धवाद्यं तैलम् ।

कफजे सर्पिषास्त्रिग्वं तिलमापविपक्वया ।

यवाग्वा वामयित्वा च श्लेष्मघ्नं क्रममाचरेत् ॥ ८८ ॥

उभे बले वृद्धयो च विडङ्गं सविकङ्कतम् ।

श्वेतामूलं मद्दामद्रां वर्पाभूँ चापि संहरेत् ॥ ८९ ॥

तैलमेभिर्विपक्वन्तु नस्य मस्योपकल्पयेत् ॥

इति बलाह्वयाद्यं तैलम् ।

दार्वीगुदिनिकुश्वैश्च किण्विद्या सरलेन च ।

वर्तयोऽथ कृता योज्या धूमपाने यथा विधिः ॥ ९० ॥

सर्पिपिकटुसिद्धानि तोक्ष्णधूमाः कटूनि च ।

भेषजान्युपयुक्तानि हन्युः सर्वप्रकोपजम् ॥ ९१ ॥

रसाञ्जने सातिविषे मुस्तायां देवदारुणि ।

तैलं विपक्वं नस्यार्घ्यं विदध्याञ्चान्न बुद्धिमान् ॥ ९२ ॥

रसाञ्जनाद्यं तैलम् ।

मुस्ता तेजोवतीपाठा कटफलं कटुकावचा ।

सर्पपापिण्णलीमूलं पिप्पलीसैन्धवाग्निकी ॥ ९३ ॥

तुल्यं करञ्जबीजश्च लवणं भद्रदारु च ।

एतैः कृतं कपायश्च कवले तच्च धारयेत् ॥ ९४ ॥

द्वितं शिरोयिकारे च तैलमेभिर्विषाचयेत् ।

इति मुस्तकादितैलम् ।

क्षीरमर्जलं काय्यं जाङ्गलैर्मृगपक्षिभिः ।

पुष्पैर्विमिश्रं जलजैर्वातघ्नै रौपधैरपि ॥ ९५ ॥

हिमे क्षीरावशिष्टेऽस्त्रिन् दृतमुत्पाद्य यत्नतः ।
 सर्वगन्धामितानन्ता मधुकं चन्दन तथा ॥ ८७ ॥
 अवाप्य विपचेद्भूयो दशक्षीरञ्च तददृतम् ।
 नस्यप्रयुक्तमुद्रिक्तान् प्रतिश्यायान् व्यपोहति ॥ ८८ ॥
 गोमूत्रपिष्टाद्योद्दिष्टा क्रियाः कृमिषु योजयेत् ।
 धावनानि कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ ८९ ॥
 शेषाणान्तु विकाराणां स्वयं कुर्याच्चिकित्सितम् ।
 घ्राणार्बुदेऽधिमांसे च क्रियां शेषेषु बीज्य च ॥ १०० ॥
 गृहधूमकणादार्क् चारनक्ताह्नसैन्धवैः ।
 सिद्धं शिखरिवीजैश्च तैलं नासार्गसां हितम् ॥ १०१ ॥

इति गृहधूमतैलम् ।

शिशुकान्ताबचाव्योष द्राक्षासुरससैन्धवैः ।
 नस्य दानाज्जयेत्सिद्धं तैलं नासागदे नृणाम् ॥ १०२ ॥
 इति शिशुतैलम् ।

रक्तकरवीरपुष्पं जात्यशनमल्लिकायाश्च ।
 एतैः समन्तु तैलं नासार्गो नाशन त्र्यष्टम् ॥ १०३ ॥
 इति करवीराद्यं तैलम् ।

व्योष्यं धान्यककुसुमं गण्डीरकमवलगुजं बीजम् ।
 एभिस्तैलं यत्नं नासार्गो नाशन सिद्धम् ॥ १०४ ॥
 इति व्योषाद्य तैलम् ।

इति वङ्गसेने नासारोगनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ६६ ॥

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागोद्रेकसमन्वितम् ।

घर्षनिस्तोदशूलान्यु युक्तमामान्वितं विदुः ॥ १२ ॥

मन्दवेदनताकंडूः भ्रग्भान्युप्रशान्तता ।

प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोः संपक्वं दीपमादिशेत् ॥ १३ ॥

कंडूपदेहान्युयुतः पक्वोदुम्बरसन्निभः ।

संरम्भीपच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशोथजः ॥ १४ ॥

शोथहोनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथजे ॥ १५ ॥

उपेक्षणादक्षि यदाधिमन्यो वातात्मकः सादयति प्रसह्य ।

रुजाभिरुयाभिरसाध्य एष हताधिमन्यः खलु नामरोगः ॥ १६ ॥

वारंवारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः ।

रुजश्च विविधिस्तीव्राः सञ्ज्ञेयो वातपर्ययः ॥ १७ ॥

यत् कृणितं दारुणरूक्षवर्त्म संदह्यते चाविलदर्शनञ्च ।

सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं वदन्ति ॥ १८ ॥

यस्याऽवटूः कर्णशिरो हनुस्यो मन्यागतो वांध्यनिलोऽन्यतो वा ।

कुर्व्याद्भुजं वै भ्रुविलोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १९ ॥

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षिप्रपच्यते ।

सदाहशोथं सास्त्रावमन्त्राध्युपितमस्त्रतः ॥ २० ॥

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्बाः ।

मुहुर्विरज्यन्ति च याः स तादृश्वराधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ २१ ॥

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेतरोगः सगिराप्रहर्षः ।

ताम्बानुमच्छं स्रजति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुञ्च ॥ २२ ॥

—०—

अथ चिकित्सासाह ।

अक्षिबुद्धिभवा रोगाः प्रतिश्याय व्रणज्वराः ।

पश्चैते पञ्चरात्रेण रोगाः शाम्यन्ति लङ्घनैः ॥ २३ ॥

लङ्घनालेपनस्वेद शिराव्यधविरेचनैः ।

उपाचरेदभित्यन्दा नञ्जनाद्यग्रीतनादिभिः ॥ २४ ॥

स्वेदः प्रलेपस्तिक्तान्नं सेको दिनचतुष्टयम् ।

लङ्घनं चाक्षिरीगाणा मामानां पाचनानि षट् ॥ २५ ॥

मारुतजनशनाऽस्वप्नक्रोधशोकसमुद्भवान् ।

न लङ्घयेदभित्यन्दान् वातव्याधि नराश्च ये ॥ २६ ॥

अभित्यन्देऽधिमन्ये च वातोत्थे वातपर्य्यये ।

शुष्कपाकेन्यतो वाते सामान्यो वक्ष्यते विधिः ॥ २७ ॥

स्नेहस्वेदविधिः कृत्स्नो ग्राम्यानुपौदकामिषम् ।

नस्य क्षीरघृताभ्याञ्च शिरावेधश्च शस्यते ॥ २८ ॥

अथवा वेदनार्तस्य न शिराव्यधनक्रमः ॥ २९ ॥

तत उपाचरेद्देह्यः सामान्यविधिना नरम् ।

पुराणसर्पिषा चैवं सम्यक् स्नेहविरेचनैः ॥ ३० ॥

तर्पणैः पुटपाकैश्च धूमैराद्यग्रीतनैस्तथा ।

नस्यैः स्नेहपरिपेकैः शिरोबस्तिभिरेव च ॥ ३१ ॥

कुरण्टपुष्पयष्ट्याञ्च सिताविश्वैः समस्तुभिः ।

गुण्ठीसैन्धवयष्ट्याञ्च लोभ्रभृष्टैर्हृत्तरपि ॥ ३२ ॥

थीवासद्विनिशालोष्ठैश्चूर्णितैरल्पसैन्धवैः ।

अव्यक्तेऽक्षिगते कार्यं प्रीतस्यैर्गुण्डनं वक्षिः ॥ ३३ ॥

धात्रीफलनिर्घ्यामो नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः ।

एरण्डपत्रमसक रसोऽयवा सैन्धवसंयुक्तः ॥ ३४ ॥

नवदृक्कोपशमनः क्षौद्रयुतः शिग्रुमूलरमसेकः ।

नगप्रत्यग्रयमथवा काञ्चिकपुनर्नवामैन्धवैर्विहितैः ॥ ३५ ॥

वातपित्तकफसन्निपातजां नैवयोर्वहुविधामपि व्ययाम् ।

शीघ्रमेव विनिवृन्ति योजितः शिशुपक्षवरसः समाक्षिकः ॥ ३६ ॥

गोमूत्रे छगलरमेऽम्लकाञ्जिके च
स्त्रीस्तन्ये हविषिविषे च माक्षिके च ।

यत्तुल्यं ज्वलितमनेकशो निषिक्तं
तत्कुर्व्याद्गण्डसमं नरस्य चक्षुः ॥ ३७ ॥

सूर्योपरागानलविद्युदादि विलोकनेनोपहृतेक्षणस्य ।

संतर्पणं क्षिग्धहिमादियोज्यं तथाञ्जनं माक्षिकहेमघृष्टम् ॥ ३८ ॥

करवीरतरुणकिसलयं क्षिन्नोद्भवरसातिसपूर्णम् ।

नयनयुगं भवति दृढं सहमेव तत्क्षणात् कुपितम् ॥ ३९ ॥

सैन्धवदारुहरिद्रागैरिकपथ्या रसाञ्जनैः पिष्टैः ।

दत्तो बहिः प्रलेपो भवत्यशेषाक्षिरोगहरः ॥ ४० ॥

बहिरवलितं लोचनं मभिकुपितमपि प्रसिदति क्षिप्रम् ।

लोध्ररसाञ्जनचन्दनगन्धशिला कुष्ठपथ्याभिः ॥ ४१ ॥

भूम्यामलकीपिष्टासैन्धवघृष्टहवारियोजिता ताम्ब्रे ।

जाता घनत्वमक्षोर्जयति बहिल्लेपतः पीडाम् ॥ ४२ ॥

आर्कश्च मूलमापोत्थामुहर्तं वारिणि न्यसेत् ।

एतदाश्चरोतनं दृष्ट्यं नयनामयनाशनम् ॥ ४३ ॥

निम्बस्य चोदुम्बरवल्कलस्य एरण्डयष्टीमधुचन्दनस्य ।

पिण्डीविधेया नयने प्रकोपिते कफेन पित्तेन समीरणेन ॥ ४४ ॥

यद्यक्षिशूलं भन्यं तं सखजं व्यक्तलक्षणम् ।

वेदनानिग्रहार्थं च कुर्यादाश्चरोतनं तदा ॥ ४५ ॥

आश्चरोतनमभिष्यन्दौ युञ्जीतावाक् दिनत्रयम् ।

अञ्जनं पक्वदोषस्य नेत्ररोगेऽनिलात्मके ॥ ४६ ॥

शोथश्च दाहरोगश्च क्लृप्तकण्डूतथारुणम् ।

अक्षौ रक्तप्रसेकश्च क्षिप्रमाश्चरोतनं हरेत् ॥ ४७ ॥

ग्रीष्मे वर्षाशरत्काले ह्यस्रपित्तामयेषु च ।

सुद्धुर्मुहुः स्वादुशीतं क्रमादाद्यशोतनं तथा ॥ ४८ ॥

वातश्लेष्मणि हिमन्ते वसन्ते शिशिरेषु च ।

तीक्ष्णोष्णमस्त्रशब्दैव कार्य्यमाद्यशोतनं बुधैः ॥ ४९ ॥

पक्के च श्लेष्मिके व्याधौ पाणिः शुक्तिश्च वातिके ।

आद्यशोतने प्रमाणं स्याद्दे शक्तौ चाशु पैत्तिके ॥ ५० ॥

अष्टौदशद्वादशविंदवस्तु संलेखनस्त्रेहनरोपणेषु ।

आद्यशोतने च क्रमशो विधेया मात्रास्तु तिस्रो नयनामयेषु ॥ ५१ ॥

इत्याद्यशोतनमात्राविधिः ।

आद्यशोतने मारुतजे क्वाथो विल्वादिभिर्हितः ।

कोष्णः सैरण्डवृहती तर्कारीमधुशिग्रुभिः ॥ ५२ ॥

शूलघ्नं वारुणोदीच्य यष्टीसैन्धवसाधितम् ।

क्रीवैरचक्रमश्चिष्टो दुम्बरत्वक्षुसाधितम् ॥

साम्भ्रसापयसा तेन शूले चाद्यशोतन परम् ॥ ५३ ॥

सर्पिषाद्यशोतनं त्रैष्टं सर्पिषा चोपनाहनम् ।

परिपेकः सुखीशेन मूर्ध्नितैलविधारणम् ॥ ५४ ॥

पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरस्त्राप्यथ भोजनम् ।

जात्यापुष्पं घृतभट्टं चक्षुष्यमुपनाहनम् ॥ ५५ ॥

तथा श्रावरकं लोघ्नं घृतभट्टं विडालकः ।

कार्यो हरीतकी तद्वद् घृतयुक्ता रुजापहा ॥ ५६ ॥

सुखाम्बुपिटैः संयुक्तं शर्करालोघ्नसैन्धवैः ।

दग्ध्वा समैन्धवं लोघ्नं मधूच्छिष्टयुते घृते ॥

पिटमञ्जनलेपाभ्यां मयो नेत्ररुजापहम् ॥ ५७ ॥

ततः संपक्वदोषस्य ग्राहमञ्जनमाचरेत् ॥ ५८ ॥

हिमन्ते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽप्लवमिष्यते ।

पूर्वाङ्गे चापराङ्गे च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ ५८ ॥
 वर्षास्वनभ्रेनालुण्णे वसन्ते च सदैव हि ।
 प्रातः सायं च तत् कुर्यान्न च कुर्यात्सदैव हि ॥ ६० ॥
 हरिणुमात्रां कुर्वीत वर्तिस्तीक्ष्णाञ्जने भिषक् ।
 प्रमाणं मध्येमे सार्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ ६१ ॥
 विडङ्गमात्रं त्वधमं मध्यं द्विद्योतमन्त्रयम् ।
 रसक्रियाणां वर्तिनां प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥ ६२ ॥
 वैरेचनिकचूर्णन्तु द्विशलाकाविधीयते ।
 मृदौ तुत्रिशलाका स्याच्चतस्रः स्नेहिकेऽञ्जने ॥ ६३ ॥
 सुवर्णरूप्यताम्रायः कांस्याश्मास्थिमयाः शुभाः ।
 शलाकाश्चाञ्जने कार्या अष्टांगुलमिता तुधैः ॥ ६४ ॥
 वृद्धत्यैरण्डमूलत्वक् शिग्रुमूल ससैन्धवम् ।
 अजाक्षीरेण पिष्टं स्याद्वर्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥ ६५ ॥
 हरिद्रां मधुकं पथ्यां देवदारु च पेपयेत् ।
 धाजेन पयसा श्रेष्ठं सभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ ६६ ॥
 सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो वृतम् ।
 स्तन्योदकाधं कर्त्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम् ॥ ६७ ॥
 शुष्काक्षिपाके हविषः पानं मन्त्रेणैव तर्पणम् ।
 घृतेन जीवनीयेन नस्य तैलेन चाम्बुना ॥ ६८ ॥
 यावन्मज्जति पक्ष्माग्रं भ्रुवोरन्तरनेत्रयोः ।
 तावच्च पूरयेन्नेत्रे तत उन्मीनयेच्छनैः ॥ ६९ ॥
 मारुते दशधार्वाणि पित्तेऽष्टौ वा शतानि ।
 निर्दिष्टानि कफे पट्ठा व्याधौ व्याधिवशीन वा ॥ ७० ॥
 इति तर्पणमात्रा ।
 परिपेके हितं चात्र पयः कोणं ससैन्धवम् ।

रजनीदारुसिद्ध वा सेन्धवेन समायुतम् ॥ ७१ ॥

सर्पिर्युक्त स्तन्यघृष्टमञ्जन च महोपधम् ।

वाताभिष्यन्दशमन हित मारुतपर्यये ॥ ७२ ॥

वाताभिष्यन्दवच्चात्र वाते मारुतपर्यये ।

पूर्वं तत्र हित सर्पिं क्षीर वाप्यथ भोजनम् ॥ ७३ ॥

हृत्चादन्याह्वया चैव पञ्चमूली महत्यपि ।

सक्षीर कर्कटरसे सिद्ध वापि पिबेद् घृतम् ॥ ७४ ॥

इति हृत्चादन्याद्य तैलम् । इति वाताभिष्यन्द ।

अनेनैव विधानेन भिषक् तमपि साधयेत् ।

अभिष्यन्दमधिमन्य गन्धानपि च पित्तजान् ॥ ७५ ॥

व्याधीनुपाचरेद्दीप्ता स्तीक्ष्णै सुस्निग्धशीतलैः ।

आय्योतनैः परिपेकैः पुटपाकैः सतर्पणैः ॥ ७६ ॥

स्नेहैर्विरेचनैर्लपैरक्तास्य च विमोक्षणैः ।

प्रपुण्डरीकयव्याह्र निगमलकपद्मके ॥

सितामधुसमायुक्ते सकपित्यैश्च रोगनुत् ॥ ७७ ॥

निस्पृश्य पत्रैः परिलिप्य लोभ्रं स्वेदाग्निना चूर्णमथापि कल्कम् ।

आय्योतन मानुषदुग्धमिथ पित्तास्त्रवातापहमग्रमुक्तम् ॥ ७८ ॥

द्राक्षाभधुकमञ्चिष्टा जीवनीयैः शृत पथ ।

प्रातराय्योतन पथ्य शोथशूलाक्षिरोगनुत् ॥ ७९ ॥

चन्दनारिष्टपत्राणि यटी टाढी ससैन्धवम् ।

पिष्टाभ्रसा भवेत्लेक पित्तक्षौद्रममन्वित ॥ ८० ॥

पैत्तिके चन्दनानन्ता मञ्जिष्ठाभिर्पिङ्गागक ।

कार्थ्यं सपद्मयष्टाह्र मामीकालीयकैस्तथा ॥ ८१ ॥

‘धावीलोभ्रं’ घृते भ्रष्टं शिनायुक्तं सुवर्तितम् ।

प्रमृज्येद् गुटिका कृत्वा कुपितं लोचने वद्धि ॥ ८२ ॥

उदुम्बरफलं लोभ्रं घृष्टा चात्यन्तधूपितम् ।

साङ्ग्यं समाक्षिकं दारु शूलरोगाशुजिह्ववेत् ॥ ८३ ॥

चन्दनं मधुकं लोभ्रं जातिपत्राणि गैरिकम् ।

प्रलेपो दाहरोगघ्न स्तोदाभिष्यन्दनाशनः ॥ ८४ ॥

भृष्टाष्टतेन नागरतिरीटधात्रीजनःशिलागुटिका ।

उपर्युपरिमार्जनेन चपयति शूलं क्षणेनाक्षोः ॥ ८५ ॥

गुन्द्रां शालिं सैन्धवं शैलभेदं दर्भामिक्षुं लोभ्रकं वेतसञ्च ।

दावीं द्राक्षांचन्दनं चोत्पलं वा स्त्रीणां स्तन्यं शर्करां चौद्रकञ्च ८६

पद्मात्पत्रं यष्टिकाञ्च हरिद्रा तालानन्ते चापि सङ्घृत्यमर्वाण् ।

सिद्धं सर्पिः तर्पणे नावने च शस्तं क्षीरंश्रोतने चैव सेके ॥ ८७ ॥

क्रियाः सर्वाः पित्तहर्त्र्यः प्रशस्तास्त्यहादूर्ध्वं क्षीरसर्पिष्य नस्यम् ।

पालाशं स्याच्छोणितं चाप्लनार्थं शङ्खक्या वा शर्कराक्षौद्रयुक्तम् ८८

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् ।

अम्लाध्युपितशान्त्यर्थं कुर्यात्क्षेपान् सुशीर्षलान् ॥ ८९ ॥

तैल्वकं त्रैफलं सर्पिर्जीर्णं वा केवलं पिवेत् ।

शिराव्यधं विना कार्य्यः पित्तप्यन्दहरो विधिः ॥ ९० ॥

कोण्यस्य सर्पिषः पानं विरेकासेकलेपनैः ।

स्वादुशीतैः प्रशमयेच्छुक्तिकमञ्चनैस्ततः ॥ ९१ ॥

प्रवालमुक्तावैडूर्यं शङ्खस्फटिकचन्दनम् ।

सुवर्णरजतचौद्र मञ्जनं शुक्तिकापहम् ॥ ९२ ॥

धूमदर्शी पिवेत्सर्पिः सर्वपित्तामयं जयेत् ॥ ९३ ॥

इति पित्ताभिष्यन्दः ।

अभिष्यन्दमधिमन्यं रक्तोत्थमथयार्जुनम् ।

शिरोत्पातं शिराहर्षं मन्यान् वातोद्भवान् गदान् ॥

स्निग्धस्य कोष्णे नाज्येन शिरावेधैः शम नयेत् ॥ ८४ ॥
तिरीटत्रिफलायष्टो शर्कराभद्रमुस्तकैः ।

पिटैः शीतांबुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥ ८५ ॥

लोधचूर्णं घृते भृष्टं रुजमाद्यरोतनं हरेत् ।

शर्करात्रिफलाचूर्णं मिदमाद्यरोतनं परम् ॥ ८६ ॥

लाक्षामधुकमञ्जिष्टा लोभ्रं कालानुशरिवा ।

प्रपुण्डरीकसंयुक्तः सेको रोगहरो हितः ॥ ८७ ॥

कशेरुमधुकानाञ्च चूर्णमम्बरसंभृतम् ।

न्यस्तमप्स्रन्तरिच्या सुहितमाद्यरोतनं भवेत् ॥ ८८ ॥

नीलोत्पलोशीरकटंकटेरीकालोययष्टीमधुसुस्तलोभ्रैः ।

रूपद्रवैर्धातघृतप्रदिग्धैस्त्रिभ्यः प्रसेकाः प्रहिता प्रयुक्तान् ॥ ८९ ॥

रुजायां चातिलीत्रायां खेदाद्य मृदवो हिताः ।

अक्षोः समन्ततः कार्यं पातनञ्च जल्लोकसाम् ॥ ९० ॥

घृतस्य महतीमात्रां पीत्वा चार्तिं नियच्छति ।

पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिद्याप्यपपादितः ॥ ९०१ ॥

कशेरुमधुकानाञ्च चूर्णमम्बरसंभृतम् ।

छागीचोरे घृते सेकः पित्तरक्ताभिधातजिम् ॥ ९०२ ॥

थोपणीपाटलाधात्री धातकीतिल्वकार्जुनात् ।

पुष्पाण्यथ हृहत्याथ विवीनोभ्रञ्च तुल्यगः ॥ ९०३ ॥

समञ्जिष्टानि मधुना पिष्टानीक्षुरसेन वा ।

रौधिरस्यन्दशान्त्यर्थं मेतदञ्जनमिष्यते ॥ ९०४ ॥

मृणालचन्दनोशोर पद्मकोत्पलपट्टिभिः ।

परिपेक प्रकुर्वीत रक्तजेष्यतदेव तु ॥ ९०५ ॥

सुमनःचारकं शङ्खं त्रिफलां मधुकं वलाम् ।

पित्तरक्तापहावर्तिः पिष्ट्वा दिव्येन वारिणा ॥ ९०६ ॥

दार्वीपटोलं मधुकं सनिम्बं पद्मकोत्पलम् ।
 प्रपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ १०७ ॥
 विपाच्य पादशेषन्तु तत्पुनः कुडवं पचेत् ।
 शीते तस्मिन्मधुसिते दद्यात्पादांशिके ततः ।
 रसक्रियैषा दाहाऽऽशुरोगरक्तवृजापहा ॥ १०८ ॥
 सर्पिः क्षौद्राञ्जनञ्च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् ।
 तद्वत्सैन्यवकासीसं स्तन्यपिष्टञ्च पूजितम् ॥ १०९ ॥
 शीराहर्षेऽञ्जनं कार्यं फाणितं मधुसयुतम् ।
 मधुना तार्क्ष्यशैलं वा कासीसं वा समाक्षिकम् ॥
 वेतसाम्बं स्तन्ययुक्तं फाणितं तु मसैन्यवम् ॥ ११० ॥

इति रक्ताभिष्यन्दः ।

कफजे लङ्घनं खेदो नस्यं तिक्तादिभोजनम् ।
 तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैरेवोपनाहनम् ॥ १११ ॥
 उष्णैस्तथाश्मश्रुतनसंविधानैस्तथैव तीक्ष्णैः पुटपाकयोगैः ॥ ११२ ॥
 अभिष्यन्देऽधिमन्ये च सञ्जाते स्नेहसम्भवे ।
 स्निग्धस्निग्धोत्तमाङ्गस्य स्निग्धतीक्ष्णैर्विरेचयेत् ॥ ११३ ॥
 स्वावै. प्रपीडै. प्रधमैर्धूमैश्च विविधैर्मुहुः ।
 रुक्षैस्तोक्ष्णविरेकैश्च मलं सम्यग्विनिर्हरेत् ॥ ११४ ॥
 रसाञ्जनेन वा लेपः पथ्याविश्वदलेरपि ।
 वचाहरिद्राविश्वाभिस्तथानागरगैरिकैः ॥ ११५ ॥
 शिलाह्ताश्वेतमरिचलोध्रञ्च परिपूरितम् ।
 सितवस्त्रेण मन्वदं शस्तमद्वयोः प्रघर्षणात् ॥ ११६ ॥
 निम्बपत्रैः क्षतचूर्णं लोध्रचूर्णसमन्वितम् ।
 वस्त्रमन्वदं जले क्षिप्तं पूरणं नेत्ररोगनुत् ॥ ११७ ॥

फणिज्जकास्फोटकपित्तं विस्वधत्तूरपोलुसुरसार्जभृङ्गैः ।

खेदं विदध्यादयवा प्रलेपं वर्हिष्टशृणोसुरदारुकुट्टैः ॥ ११८ ॥

शृणोनिम्बदलैः पिण्डः सुखोष्णः स्वल्पसैन्धवः ।

घार्थ्यचक्षुषिसंक्षेपा च्छोयकडूव्यथापहः ॥ ११९ ॥

ससैन्धवं लोभ्रमथाव्यभ्रष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रवक्षम् ।

घाद्यरोसनं तन्नयनस्य कुर्यात्सर्वाच्चिरोगप्रशमार्थमेतत् ॥ १२० ॥

हौ हौ भागौ रजन्योय भागिकौ धूमसर्पपौ ।

कफाभिष्यन्दजिद् भृष्टं पिष्टमाद्यरोतमन्त्रसा ॥ १२१ ॥

लोभ्रं सपेथसपक्वं खदिराजाजिसर्पपैः ।

नागरारिष्टसिन्धूयै र्युक्तं दृपदिचूर्णितम् ॥ १२२ ॥

सिते वाससितद्वहं न्यसेत् स्वच्छाम्बकाञ्चिके ।

तदक्ष्णोः पूरणं कार्यं चक्षुसवर्त्मरोगजित् ॥ १२३ ॥

बस्कलं पारिजातस्य तैलसैन्धवकाञ्चिकम् ।

कफवाताक्षिशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा ॥ १२४ ॥

सौवीरं सैन्धवं तैलं मूर्वामूलं तथैव च ।

कांस्यपात्रे विष्टुष्टं स्या दक्ष्णोः शूलनिवारणम् ॥ १२५ ॥

सैन्धवं त्रिफलाव्योषं शठनाभिममुद्रजः ।

फेनोघ्रलेपकः सर्जो वर्तिः क्षेप्ताच्चिरोगनुत् ॥ १२६ ॥

निम्बार्कपत्रसंपक्वं लोभ्रं भागचतुष्टयम् ।

धूमसर्पपयोभांगैः कफसेकः सुष्मांशुना ॥ १२७ ॥

नागरं त्रिफलानिम्ब वासानिम्बरमः कफे ।

साज्यं विस्वद्वहं दृष्टं पात्रे ताम्रमये दृढे ॥

शोथद्वद्विनाधूमं द्यागक्षीरपरिप्लुतम् ॥ १२८ ॥

विष्यपञ्चरसः पूतः साज्यः सिन्धुभयान्वितः ।

शुल्ये पराटिकां दृष्ट्वा धूपितो गोमयान्निना ॥ १२९ ॥

पयसालोडितद्याक्षीः पूरणाच्छोथशूलजित् ।

अभिष्यन्देऽधिमन्ये च रक्तस्त्रावे च शस्यते ॥ १३० ॥

इति विस्वाञ्जनम् ।

सलवण कटुतैलं काञ्चिकं कांस्यपात्रे

घनितमुपलष्टं धूपितं गोमयाग्नौ ।

सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं

जयति नयनशूलं स्त्रावशोथं सरागम् ॥ १३१ ॥

इति कफाभिष्यन्दः ।

कोणमाद्यरोतनं मिश्रं भेषजैः सान्निपातिके ।

यष्टीं गुडूचीं त्रिफलां सदावीं मक्ष्यामये सर्वगते पिवेद्वा ।

आद्यरोतनं सर्वरसेन दाढ्याः शस्तं सदा चौद्रयुतं नराणाम् ॥ १३२ ॥

गुडूचीत्रिफलाक्वाथो मधुना सह योजयेत् ।

पीतः सर्वाक्षिरोगघ्नः कृष्णाचूर्णावचूर्णितः ॥ १३३ ॥

प्रपोण्डरीकयद्याह दावीलोघ्नैः सचन्दनैः ।

ऐरण्डाम्बुयुतैः सेकः सर्वनेत्ररुजापहः ॥ १३४ ॥

खेतलोघ्नं घृते भ्रष्टं चूर्णितं ताप्यतुल्यकम् ।

उष्णांबुना विन्ददितं सेकः शूलहरः परः ॥ १३५ ॥

पिष्टैनिम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैः जातिसिन्धुत्यमित्रा ।

अन्तर्गर्भं दधाना पटुतरगुटिका पिष्टरीध्रे ण भृष्टा ॥

तूलैः सौवीरकाट्टैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्तात् ।

चक्षुः कोपोपशान्तिं चिरमुपरि दृशो भ्राम्यमाणा करोति ॥ १३६ ॥

यष्टीगैरिकसिन्धुत्य दावीतार्क्ष्यैः समांसकैः ।

जलपिष्टैर्वह्निर्लेपः सर्वनेत्ररुजापहः ॥ १३७ ॥

शिशुपङ्गवनिर्यासः सुपिष्टस्ताम्रसंपुटे ।

घृतेन सिधुना पीतो हन्ति शोथाम्बुवेदनाः ॥ १३८ ॥

षोडशभि सलिलपलै स्तयैव कण्टकार्या पय सिद्धाम् ।
शिला चिर विमृद्य तद्रस सर्व नेत्ररोगहर ॥ १३८ ॥

एरण्डपत्रवेष्टित विल्वच्छदकल्कनिक्षिप्त शोध्रः ।

कुकूनपक्व पिष्ट सुसिन्धूद्वयेन मयुक्त ॥ १४० ॥

घनतरवस्त्रपरिस्नुतदारुहरिद्रा कपायमध्यगत ।

आश्वरोतनेन हन्यात्सर्वान्येवाक्षिशूलानि ॥ १४१ ॥

अयमे विधि सर्वो मन्यादिवपि शस्यते ।

अधिमन्येषु सवेषु ललाटे व्यधयेच्छिराम् ॥

अशान्तौ सर्वथा मन्ये भ्रुवोरुपरिदाहयेत् ॥ १४२ ॥

इति सर्वाभिप्यन्द ।

जलोकापातन शस्त नेत्रपाके विरेचनम् ।

शिराव्यध वा कुर्वीत सेको लेपस्तु शुक्रनुत् ॥ १४३ ॥

विभीतकशिवाधात्री पटोलारिष्टवासकै ।

कायो गुग्गुलुना पेय शोथाक्षिपाकरोगनुत् ॥ १४४ ॥

पिप्पलञ्च मव्रण शुक्ररागादींश्च विनाशयेत् ।

एतैश्चापि घृत पक्व रोगास्ताश्च व्यपोहति ॥ १४५ ॥

इति षडङ्गगुग्गुलु काथ घृतञ्च ।

आटरूपाभयानिम्ब धात्रीमुस्तकवल्कलै ।

रक्तसाव कफ हन्ति चक्षुष्य वामकादिकम् ॥ १४६ ॥

इति वामकादि काथ ।

वासाघन निम्बपटोलपत्रतिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक् ।

क्लिङ्गभ्यचीदृक्षन् च शण्डो भृत्किम्भयत्येत्युक्तमितीतम् ॥ १४७ ॥

पोत ममाग्रे कथितै कपायो नृभिस्तु मुख्यानखिलाक्षिरोगान् ।

तैर्मिथ्यकडूपटत्तार्पुदक्ष शुक्र तथा सव्रणमव्रण च ॥ १४८ ॥

सदाहरागं सरुजं सपिक्कं हन्यात्समस्तानपि नेत्ररोगान् ।

वातामयान् पित्तकफामयांश्च वासादिकोऽयं सुनिभिः प्रदिष्टः ॥ १४८ ॥

पथ्यास्तिस्त्रो विभीतकः पट्धात्रो ह्यादशैव तु ।

प्रस्थार्धं सलिलं काप्यमष्टभागावशेषितम् ॥ १५० ॥

पित्ताभिथन्दमास्त्रावं रोगं वा तिमिरं जयेत् ।

सरभदाहशूलासृङ् नाशनं दृक् प्रमादनम् ॥ १५१ ॥

इति नेत्रपाकः । इति सर्वनेत्ररोगाः ।

—०—

अथ कृष्णगतरोगनिदानमाह ।

निमग्नरूपन्तु भवेद्दि कृष्णे सूच्येव विडं प्रतिभाति यद्य ।

स्त्राव स्रवेदुष्टमतीव यद्य तत्सत्रण शुक्रमुदाहरन्ति ॥ १५२ ॥

दृष्टे समोपेन भवे तु यच्च नचावगाढं नच संस्रवेच्च ।

अवेदनं वा नच युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कंटाचिदेव ॥ १५३ ॥

स्थन्दात्मकं कृष्णगतं सचोषं शङ्खेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ।

वैज्ञायसाभ्रप्रतनुप्रकाय मथाऽन्नं साध्यतमं वदन्ति ॥ १५४ ॥

गंभीरजातं बहुलञ्च शुक्रं चिरोत्थितञ्चापि वदन्ति कृष्णम् ॥ १५५ ॥

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिञ्च ।

द्वित्वगतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥ १५६ ॥

उष्णानुपातः पिडिका च नेत्रे यस्मिन् भवेन्मुहनिभञ्च शुक्रम् ।

तदप्यमार्थं प्रवदन्ति केचिदन्ये तु यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ १५७ ॥

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्याऽसितमण्डलन्तु ।

तमक्षिपाकात्ययमक्षिरोगं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ १५८ ॥

मिथ्योपचाराद्भोगाणां दोषादाघाततोऽपि च ।

अजका जायते नेत्रे कृष्णादृष्टिसमाऽसृजा ॥ १५९ ॥

अजापुरीपप्रतिमो रुजावान् सलोहितो लोहितपिच्छलाशु ।
विगृह्यकृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तस्माज्जाजरातमिति व्यवस्येत् ॥ १६० ॥

अजापुरीपसङ्घाशा मृदोकाफलसन्निभा ।

वातरक्तसमुत्पाना प्रायशस्त्वजका हि सा ॥ १६१ ॥

मूर्धाचिकर्णभ्रूगण्ड शङ्खचर्माश्रिताजका ।

जायते व्यथते नेत्रं मथ्यमानामिवान्तरा ॥ १६२ ॥

उष्णमसृक् स्ववत्त्वक्षि दूयते क्षियते भृशम् ।

अमाध्यरोगसंभूतां दृष्टिजाश्च विवर्जयेत् ॥

स्वप्रभिन्नां च कठिनां चिरकालोत्थितामपि ॥ १६३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

साध्यरोगसमुत्पन्नां कृष्णजान्त्वजकां जयेत् ॥ १६४ ॥

साध्यान्यवेक्ष्य शुक्राणि स्निग्धस्याऽसृग्निमोक्षणैः ।

आयरोतनमुखालेप घर्षणाञ्जनवस्त्रिभिः ॥

पुटपाकैश्च नश्येद्य सामान्यं शुक्रमेयजम् ॥ १६५ ॥

धात्रीफलं निम्बकपित्तपत्रं यष्ट्याह्नलोध्रं श्वदिरं तिनाय ।

काथः सगीतो नयने निपिक्तः सर्वप्रकारं विनिहन्वि शुक्रम् ॥ १६६ ॥

फणिष्ठाकरमे खीजं पलाशस्य विभावितम् ।

गोपयित्वा सुपिष्टं तत् चाञ्चनाच्छुक्रद्वत्परम् ॥ १६७ ॥

जात्याप्रवालं मधुकं मर्मपि भृष्टं सुखोष्णांस्तु सुगीतरग्निः ।

आयरोतनं शुक्रहरं प्रदिष्टं शुक्रापहं श्लोषयसा महाहर्षम् ॥ १६८ ॥

मैथ्वं दृढतोमूलं ताम्रचूर्णं मनागरम् ।

धात्रीरमेन पिष्टा च ताम्रपात्रं प्रलेपयेत् ।

तत्पूते धूमयेच्चैनं शुक्रशुक्रं व्यपीडति ॥ १६९ ॥

शुद्धशुक्ले निशायष्टी शारिवाशावराभसा ।
 सेचयेनेत्रे त्रयोर्दृष्टीं कृष्णांभोमग्नजां तथा ॥ १७० ॥
 क्षुब्धपुत्रागमर्णेन परिभावितवारिणा ।
 श्यामाक्ताथाम्बुना वायु सेवनं शुक्लनाशनम् ॥ १७१ ॥
 सैन्धवं त्रिफलाक्षणा कटुकाशंखनाभयः ।
 सताम्बरजमो वर्त्तिः शुद्धशुक्लविनाशिनी ॥ ७२ ॥
 स्थिरशुक्ले घने चैव बहुशोषहरेदसृक् ।
 शिरः कायविरेकांश्च पुटपाकांश्च कारयेत् ॥ १७३ ॥
 समुद्रफेनसिन्धुत्थं शङ्खदृक्काण्डवल्कलैः ।
 शिशुबीजयुतैर्वर्त्तिः शुक्रादीञ्छस्त्रवत्त्रिखेत् ॥ १७४ ॥
 वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णकर्पूरज रजः ।
 क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रं वापि घनोन्नतम् ॥ १७५ ॥
 शिरीषबीजनिवैद्य पिप्पलीसैन्धवैरपि ।
 शुक्ले प्रघर्षणं कार्यं मथवा सैन्धवेन च ॥ १७६ ॥
 वज्रजारुष्करो तालं नारिकेलञ्च तद्दृष्टेत् ।
 विस्त्राव्य चारवच्चूर्णं भावयेत्करभास्थिजम् ।
 बहुशोऽञ्जनमेतत्स्याच्छुक्रवेवर्णनाशनम् ॥ १७७ ॥
 बहुशः पलाशकुसुमस्त्रसैः परिभाविताजयत्यचिरात् ।
 नक्ताह्नबीजवर्त्तिः कुसुमचय दृक्षुचिरजमपि ॥ १७८ ॥
 श्यटिकोपणयव्याहृ गृहगोदन्तसैन्धवैः ।
 पिष्टैः सञ्चन्दनैर्वर्त्तिः शुक्लघ्नोऽग्नियुवारिणा ॥ १७९ ॥
 मंष्टृथपिप्पलीचूर्णं सफेनं कांस्यभाजने ।
 सक्षौद्रं सैन्धवीपेत मञ्जनं शुक्लनाशनम् ॥ ८० ॥
 समुद्रफेनमभयां क्षीधेर सकुटन्त्रटम् ।
 पिष्ट्वा धात्रीफलकाथे वर्त्तिः श्याच्छुक्लनाशिनी ॥ १८१ ॥

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम् ।
 मधुनाञ्जनयोगाः स्युः श्वत्वारः शुक्रनाशनाः ॥ १८२ ॥
 त्रिफलाचन्दनं व्योषं मञ्जिष्टानागरं निशा ।
 प्रियंगुशारिवानन्ता यक्षदाजञ्च चूर्णितम् ॥ १८३ ॥
 क्षौद्रसैन्धसर्पिर्भिः संयोज्य विधिवत्पचेत् ।
 पुटपाकः प्रशस्तोऽयं शुक्राणां लेखनः परः ॥ १८४ ॥

इति त्रिफलादिपुटपाकाञ्जनम् ।

लामञ्जकोत्पलसिता चन्दनद्वयकार्पिकान् ।
 क्षिप्ता च शारिवाप्रस्थं काथयेत्सलिलाढकम् ॥ १८५ ॥
 पादशेषं परिस्त्राव्य पचेदादर्विलेपनात् ।
 भाजने लोहशैले वा तन्नातः सायमञ्जनम् ॥ १८६ ॥
 प्रधानमेतच्छुक्रघ्नं व्रणशुक्रं शमयेत् ॥ १८७ ॥

इति लामञ्जकाद्यमञ्जनम् ।

व्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं पडङ्गं गुग्गुलुं पिवेत् ।
 शिरसो वा हर्द्रेक्षं जलोकाभिर्य लोचनात् ॥ १८८ ॥
 मसैन्धवत्रिवृत्काथे घ्नीन्वारान् पाचितं घृतम् ।
 पोत्वा सर्वेषु शुक्रेषु शीघ्रं कुर्व्याच्छिराव्यधम् ॥ १८९ ॥
 यष्टराक्षदार्धुत्पलपद्मलाक्षा प्रपौण्डरीकं नलदं लता च ।
 आश्रोतनं स्तोपयसाविपक्वं निहन्ति तत्सर्वव्रणदाहशुक्रम् ॥ १९० ॥
 श्यामामूलं कपायं वा मधुना व्रणशुक्निगाम् ।
 रत्नानिदन्ताः शृङ्गाणि धातवश्च फलतुटिः ।
 करञ्जबीजं लशुनो व्रणघ्नादि च भेषजम् ॥ १९१ ॥
 मद्रपाव्रणगन्धीर त्वक् शुक्रघ्नमयाञ्जनम् ।
 हितान्येतानि सर्वाणि नराणां व्रणशुक्निगाम् ॥ १९२ ॥

कतकस्य फलं शङ्खं तिन्दुकं रूप्यमेव च ।

कांस्ये निष्ठयस्तन्येन चतशुकार्त्तिरोगजित् ॥ १८३ ॥

चन्दनं गैरिकं लाक्षा मालतीकलिकाः समाः ।

व्रणशुकहरोवर्त्तिः शोणितस्य प्राणशनी ॥ १८४ ॥

इति चन्दनादिवर्त्तिः ।

दन्तेर्दन्तिवराहोद्व गजाश्वजखरोद्वयैः ।

सशङ्खमौक्तिकाभोऽधि फेनैर्मरिचपादिकैः ॥ १८५ ॥

जलपिष्टैः कृतासर्वेर्दन्तवर्त्तिरिति स्मृता ।

तिमिरार्बुदकाचार्म्म व्रणशुकविनाशिनो ॥ १८६ ॥

इति दन्तवर्त्तिः ।

ताम्रं च मस्तुनोददृष्टं तुल्यकं श्यावतां गतम् ।

सर्वाभिष्यन्दशुक्लार्म्म शिराशूलजिदञ्जनात् ॥ १८७ ॥

दद्याच्छूलकं शिलाशङ्ख रक्तचन्दनसैधवैः ।

तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पाभ्यादिविलेखनः ॥ ८८ ॥

गोशकृत्कमयः सप्त पीताभाः क्षौद्रमयुताः ।

दृष्टाशुकहरोदृष्टाः चतस्रस्य विशेषतः ॥ १८८ ॥

एकं वा पुण्डरीकञ्च गवां क्षीरावशेषितम् ।

रागाऽसृग्वेदनां हन्यात् चतपाकाजकास्तथा ॥ २०० ॥

सौवीरमञ्जनं तुल्यं ताप्यं धात्री मनःशिला ।

चतुर्हरेणुमधुकं लोहं शुकृघ्नमञ्जनम् ॥ २०१ ॥

इति पेषणमञ्जनम् ।

कुकुटाण्डकपानानि शङ्खकाचोपि चन्दनम् ।

सैन्धवाक्षांससयुक्त मञ्जनं शुकलेखनम् ॥ २०२ ॥

शङ्खस्रोतोऽञ्जनं लाक्षा, मरिचं समनःशिलम् ।

यवान्युदधिजं फेन ताम्रचूर्णं समाक्षिकम् ॥

श्यामावर्तिर्लिखत्येव शुक्रकाचार्मपिष्टकम् ॥ २०३ ॥

रमाञ्जनं सशैलेय कुंकुमं सुमनःशिला ।

शङ्खश्च ज्वेतमरिचं शर्करा चेति सप्तमम् ॥ २०४ ॥

एषा चन्द्रोदया नाम्ना वृत्तिर्विद्येन निर्मिता ।

हन्यान् पित्तञ्च कण्डूञ्च शुक्रं सतिमिरार्बुदम् ॥ २०५ ॥

अथ सयष्टिर्विफला कणाना चूर्णानि तुल्यानि पुरेण नित्यम् ।

सर्पिर्मधुभ्या सह भक्षितानि सर्वाणि शुक्राणि निहन्ति शीघ्रम् ॥ २०६ ॥

शङ्खस्य भागायत्वार स्ततोऽर्धेन मनःशिला ।

मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्धेन सैन्धवम् ॥ २०७ ॥

एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेषु च ।

पिचटे मधुना योज्य मर्बुदे मस्तुना तथा ॥ २०८ ॥

इति चूर्णाञ्जनम् ।

स्नेहनस्याञ्जनैः शुक्रं निम्बमाशु समुद्धरेत् ।

शुक्रं करोति निर्मूल पुटपाकैः सलेखनैः ॥ २०९ ॥

पटोलं कटुकां दावीं निम्बं वामां फलक्षिकम् ।

दुरानभां पर्पटकं त्रायन्तीञ्च पलोम्बिताम् ॥ २१० ॥

प्रस्यमामलकानान्तु काययेद्वत्खणेऽश्वसि ।

तेन पादावगेषेण घृतप्रस्यं विपाचयेत् ॥ २११ ॥

कल्के भूनिम्बकुटज मुन्दायद्याश्च चन्दनैः ।

भपिप्पलीकैस्तस्मिन् चघुथं शुक्रयोर्हितम् ॥ २१२ ॥

घ्राणकर्णाक्षियत्नं त्वङ् मुग्धरोगग्रणापहम् ।

कामलाज्वरयोमर्षं गण्डमालापहं परम् ॥ २१३ ॥

इति पटोलायं घृतम् ।

द्राक्षाचन्दनमञ्जिष्ठा काकोलीद्वयजीरकैः ।

सिताशतावरीमेदा पुण्ड्रमधुकोत्पलैः ॥ २१४ ॥

पचेज्जीर्णं घृतप्रस्थं समक्षीरं विचूर्णितैः ।

हन्ति तच्छुक्रतिमिरं रक्तराजीं शिरोरुजम् ॥ २१५ ॥

इति द्राक्षाद्यं तैलम् ।

कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजम्

विश्वीयधैः पयसिसिद्धमिदं कृगल्याः ।

तैलं नृणां तिमिरशुक्रशिरोऽक्षिशूल

पाकात्पयान् जयति नस्यविधौ सुयुक्तम् ॥ २१६ ॥

इति कृष्णाद्यं तैलम् ।

न विना शोणितं शुक्रचतपाकात्ययोजकाः ।

भवन्ति रुधिरं तेन जलोकाभिरतो हरेत् ॥ २१७ ॥

इति व्रणशुक्रम् ।

अजकायां शिरां मुक्ता बिम्बचूर्णैर्विरेचयेत् ।

घृतवातहरैः सिद्ध मजकायां प्रयोजयेत् ॥

संके पाने तथाऽभ्यङ्गे भोज्ये दृष्टिविदांवरः ॥ २१८ ॥

पक्ववटपत्रपुटके विधायमांसं बल्लूरकर्कट्यः ।

पुटवद्धिदध्याह्नहा तद्रससेको जयेदजकाम् ॥ २१९ ॥

गवामस्थित्वचं कांस्ये विनिर्घृष्ट्यसुखांबुना ।

पूरयेदक्षि तेनाशु प्रशाम्यत्यजकामयः ॥ २२० ॥

मैन्धवं वाजिपादस्य गोरोचनसमायुतम् ।

शैलत्वग्रससंयुक्तं पूरणं वाजकापहम् ॥ २२१ ॥

—०—

शशकस्य कपायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

कल्कं दद्यात्तु सक्षीरं यथोक्तान् कर्पसग्नितान् ॥ २२२ ॥

शारिवामधुकं लाक्षा चन्दनं नीलमुत्पलम् ।

बलाचातिबलाचैव मृणालं पत्रकं तथा ॥ २२३ ॥

कार्पिकं सविपालोद्भवं जीवनीयं गणान्वितम् ।

घृतमेतत्प्रयोक्तव्यं पाने नस्ये च पूरणे ॥ २२४ ॥

अजकामर्जुनं काचं पटलं शुक्रमैव च ।

तथाक्षिरीगान् सकलान् वातपित्तोत्तरं जयेत् ॥ २२५ ॥

इति वृहच्छशकाद्यं घृतम् । इति कृष्णगतरोगाः ।

—०—

अथ दृष्टिगतरोगनिदानमाह ।

प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्ट्यां व्यवस्थितः ।

अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ २२६ ॥

दृष्टिर्भृङ्गं बिह्वलति द्वितीय पटलङ्गते ।

मत्तिकान् मपकान् केशान् जालकानि च पश्यति ॥ २२७ ॥

मण्डलानि पताकाश्च मरीचीन् कुण्डलानि च ।

परिप्लवांश्च विविधान् वर्षमभ्रतमांसि च ॥ २२८ ॥

दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते समीपतः ।

समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ २२९ ॥

यद्यत्रानपि चाल्यर्थं सूचीपाशं च पश्यति ॥ २३० ॥

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ।

महान्त्यपि च रूपाणि छादितानीध चाम्बरैः ॥ २३१ ॥

कर्णनामाक्षिहीनानि बिह्वतानीध पश्यति ।

यथा दोषश्च रज्येत दृष्टिर्दोषे बन्नीयमि ॥ २३२ ॥

अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ।

पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थान्नेव पश्यति ॥ २३३ ॥

समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति ।

दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ब्रुस्वञ्च पश्यति ॥ २३४ ॥

दोषे दृष्ट्या स्थिते तिर्य्य गेकं वै मन्यते द्विधा ।

द्विधास्थिते द्विधापश्ये द्दुल्लङ्घ्याऽनवस्थिते ॥ २३५ ॥

तिमिराख्यः स वै दोषश्चतुर्थं पटलं गतः ।

रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनासमतःपरम् ॥ २३६ ॥

अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ।

चन्द्रादित्यौ सनत्तत्रा वन्तरिक्षे च विद्युतः ॥ २३७ ॥

निर्मलानि च रूपाणि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ।

स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥ २३८ ॥

वातेन चात्र रूपाणि भ्रमन्तीव च पश्यति ।

आविलान्यरूपाभानि व्याविहानीव मानवः ॥ २३९ ॥

पित्तेनादित्य खद्योत शक्रचापतड्दिगुणान् ।

नृत्यंतद्यापि शिखिनः सर्वं नीलञ्च पश्यति ॥ २४० ॥

कफेन यथेद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ।

मलिलप्लावितानीव जालकानीव मानवः ॥ २४१ ॥

पथेद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ।

हरितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ २४२ ॥

सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानीव पश्यति ।

वहुधा च द्विधा वापि सर्वाख्येव समन्ततः ॥

हीनाधिकाङ्गान्यथवा ज्योतीष्यपि च भूयसा ॥ २४३ ॥

पित्तं कुर्यात्परिप्लायि मूर्च्छितं रक्तेजसा ।

पीतादिशस्त्रयोद्यन्तमादित्यमिव पश्यति ॥

विकीर्य्यमाणा खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च ॥ २४४ ॥

यद्यासि पङ्क्तिं रागैर्लिङ्गनाशमतःपरम् ॥ २४५ ॥

रामोरुणो मारुतजः प्रदिष्टोक्तायीचनीलश्च तथैव पित्तात् ।
कफाक्षितः शोणितजश्च रक्तः समस्तदोषप्रभवे विचि चः ॥२४६॥

अरुणं मण्डलं दृष्ट्वां स्थूलकाचारुणप्रभम् ।

परिम्लायिनि रोगे स्यात् म्लायिनीलञ्च मण्डलम् ॥

दोषक्षयात् क्षयं चात्र कदाचित् स्यात्सुदर्शनम् ॥ २४७ ॥

अरुणं मंडलं वाता चक्षलं परुषं तथा ।

पित्ततो मंडलं नीलं कांस्थामं पीतमेव च ॥ २४८ ॥

श्लेष्मणा बहुलं स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् ।

चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लोविन्दुरिवाम्भसः ॥ २४९ ॥

मृद्यमाने तु नयने मंडलं तद्विसर्पति ।

प्रबालपद्मपत्राभं मंडलं शोणितात्मकम् ॥ २५० ॥

दृष्टिरोगो भवेच्चित्तो लिङ्गनाशे त्रिदोषजे ।

यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ २५१ ॥

यथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन चान्यस्त्विह धूमदर्शी ।

यो ह्रस्वनात्यो नकुलान्वता च गम्भीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः ॥२५२॥

पङ्गुलिङ्गनाशाः पङ्क्तिं च रोगाः

दृष्ट्वाययाः पट् च पडेव च स्युः ॥ २५३ ॥

पित्तेन दुष्टेन यदा च दृष्टिः पीता भवेद्यस्य नरस्य किञ्चित् ।

पीतानि रूपाणि च मन्यते यः स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥२५४॥

प्राप्ते तृतीयं पटलं च दोषे दिवानपश्ये त्रिंशि धोष्यते सः ।

राक्षो च शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्तग्न्यभावादिपित्तानि पश्येत् २५५

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव गुक्तानि च मन्यते तु ॥ २५६ ॥

त्रिषु स्थितोऽप्यः पटलेषु दोषोक्तान्धमापादयति प्रमद्य ।

दिवा मसृज्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत् रूपाणि कफात्पभावात् ॥२५७॥

शोकज्वरायासगिरोभितापेरव्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ।

सधूमकान् पश्यति सर्वभावान् सधूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥२५८॥
 यो ह्रस्वजात्यो दिवसेऽतिकृच्छ्राद्भ्रूयानि रूपाणि च तेन पश्येत् ।
 रात्रौ पुनर्यः प्रकृतानि पश्येत्स ह्रस्वजात्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥२५९॥
 विद्योत्तरे यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ।
 चित्राणि रूपाणि दिवा सपश्येत्स वै विकारो नकुलान्धसंज्ञः २६०
 दृष्टिर्विरूपाश्चसनोपसृष्टा सङ्कोच्यतेऽभ्यन्तरतस्तु याति ।
 रजावगाढं च तमचिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥२६१॥
 वाह्यौ पुनर्दो विह संप्रदिष्टौ निमित्ततद्याप्यनिमित्ततश्च ।
 निमित्ततस्तत्र शिरोभितापाद् ज्ञेयस्त्वभिप्यन्दनिदर्शनः सः ॥२६२॥
 सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य ।
 हन्येत्तदृष्टिर्मनुजस्य यस्य सलिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥ २६३ ॥
 तन्नाच्चिविष्यष्टमियावभाति वैडूर्ययर्णा विमला च दृष्टिः ।
 विभिद्यते शीदति क्षीयते च कृणामभीघातहता च दृष्टिः ॥२६४॥
 इति षादशदृष्टयः ।

—०—

अथासाध्यानाह ।

वर्जयेदुपसर्गोत्थं गम्भीरं ह्रस्वसंज्ञितम् ।
 काचांस्तु याप्यते सर्वा नकुलान्धं तथैव च ॥ २६५ ॥
 तिमिरं नेत्ररोगेषु कष्टं तद्यद्वतो हरेत् ॥

—०—

अथ चिकित्साभाह ।

मूलं दृष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहृतम् ।

१ निमित्तोत्थम् ।

ऋपिभिस्तूदितं तस्मात्तस्य कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ २६६ ॥
 द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे शिरे गते ते बहुधा च नेत्रे ।
 तन्मूत्रणाच्छादनलेपनादीन् पादप्रयुक्तान्नयनं नयन्ति ॥ २६७ ॥
 मलोष्णसंघट्टनलेपनाद्यै स्तादूपयन्ते नयनानि दुष्टाः ।
 भजेन्नरो दृष्टि हितानि तस्मादुपानदभ्यञ्जनधावनानि ॥ २६८ ॥
 त्रिफलाघृतमधुयवाः पादाभ्यङ्गः शतावरीसुहाः ।
 चक्षुष्यः संचेपाद् वर्गः कथितो भिषग्भिरयम् ॥ २६९ ॥
 जीवन्ति शाकं मुनिपणकञ्च सतंडुलीयम्बरवास्तुकञ्च ।
 चिल्ली तथा मूलकपोतिका च दृष्टेर्हितं शाकुनजाङ्गलञ्च ॥ २७० ॥
 पटोलककोटककारवेक्ष वातार्कतकार्करीरजानि ।
 शाकानि शिग्वार्त्तंगलानि चैव हितानि दृष्टेर्हृतसाधितानि ॥ २७१ ॥
 कटुस्त्वगुरुतीक्ष्णोष्ण मगपनिष्यावमैथुनम् ।
 मद्यं बलूरपिप्लाकं भक्ष्यं शाकं विरुद्धकम् ॥
 विदाहोन्मत्तपानानि नेत्ररोगीविवर्जयेत् ॥ २७२ ॥
 स्निग्धानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकाः पुटानामथ तर्पणञ्च ।
 घृतस्य पानान्यय बस्तिर्कर्म कूर्यादभीक्ष्णं तिमिरैर्निलोत्थे ॥ २७३ ॥
 रास्त्राफलद्वयक्वाथे दशमूलरसे शृतम् ।
 कल्केन जीवनीयानां घृतं तिमिरनाशनम् ॥ २७४ ॥
 वातिके तिमिरे पक्वं दशमूलरसे घृतम् ।
 चिह्नचूर्णसमायुक्तं वैरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥ २७५ ॥
 विफलादशमूलानां निर्युहं दुग्धमिश्रितम् ।
 गन्धर्वतैलसंयुक्तं प्रयुञ्जीतविरेचनम् ॥ २७६ ॥

इति वाततिमिरम् ।

शीताञ्जनायशोतनतर्पणाय नस्यैर्विरेकैर्मृदुभिर्हृतैः ।
 तिक्तप्रधानैस्तिमिरं निहन्त्यात्पित्तात्मकं शोणितमोक्षयेत् ॥ २७७ ॥

पित्तजे तिमिरे सर्पिं जीवनीयवरा शृतम् ।

पाययित्वा शिरां विधे त्रितैलाकुम्भसम्भवैः ॥ २७८ ॥

चूर्णैर्मार्चिकसयुक्तैरेचनं कारयेत्तराम् ।

शीतलां लेपसेकांश्च शिरोवदनचक्षुषु ॥ २७९ ॥

बलाशतावरीवोरा सितासैरेयकैः पचेत् ।

त्रिफलासहितं सर्पिं स्तिमिरघ्नमनुत्तमम् ॥ २८० ॥

शारिवाशावरोशीर मुक्तापद्मकचन्दनम् ।

पिष्टं वर्त्तिक्षतं हन्ति पित्तोत्थं तिमिरं नृणाम् ॥ २८१ ॥

इति पित्ततिमिरम् ।

तीक्ष्णानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकाः पुटानामथ तर्पणानि ।

घृतानि बासात्रिफलापटोलसंज्ञानि कुर्यात्तिमिरे कफोत्थे ॥ २८२ ॥

कफोद्भवे वराचव्या मृताक्काय शृतं हविः ।

पाययित्वा शिरां विधे द्वेचनं तिमिरे भिषक् ॥ २८३ ॥

यूथीपथ्या कणाशुण्ठी कुसुम्भस्याम्बुनिर्भरः ।

गोमूत्रक्षयिताशुण्ठी विष्टस्त्रिद्वं विरेचयेत् ॥

नस्यं मरिचयष्ट्याह्व विडङ्गामरदारुभिः ।

नैपालत्रिफलाशङ्ख कान्ताव्योपञ्च पेपिताः ॥

वर्त्तीं कुत्वा वलासोत्थ मञ्जनं तिमिरं हरेत् ॥ २८५ ॥

ससर्गं सन्निपाते च यथा दोषोदयक्रिया ।

धात्रीरसाञ्जनं चौद्रं सर्पिर्भिस्तु रसक्रिया ॥

पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा ॥ २८६ ॥

दध्यान्मसूरनिर्यूहं चूर्णितं कणसैन्धवम् ।

तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत् चौद्रं घने ततः ॥

शीते चास्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरे हितम् ॥ २८७ ॥

मधुकामलकस्नानं पित्तघ्नं तिमिरापहम् ।

वचाद्यैः स्नानमिच्छन्ति श्लेष्मघ्नं तिमिरापहम् ॥ २८८ ॥

स्नानं कृण्वतिलैश्चापि चक्षुष्यं तिमिरापहम् ।

आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलावहम् ॥ २८९ ॥

चित्रकमूलत्रिफला पटोलयवसाधितं पिवेदग्ध्रः ।

सष्टतं निशिवक्षुष्यं तिमिराणि विशेषतो हन्ति ॥ २९० ॥

कक्कः काथोऽयवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् ।

मधुना हविषा वापि समस्ततिमिरान्तकृत् ॥ २९१ ॥

त्रिफलालोहचूर्णं वा माचिकं मधुयष्टिका ।

साय मध्वान्वितं भुक्तं सद्यस्तिमिरनाशनम् ॥ २९२ ॥

इति समाश्रुतागुटिका ।

कुष्ठमुत्पलयष्टी च पिप्पलीरक्तचन्दनम् ।

अञ्जनचन्दनञ्चैव सद्यस्तिमिरनाशनम् ॥ २९३ ॥

धात्रीसैन्धवकृष्णाभि स्तुल्याभिर्भरिचं समम् ।

घौद्रयुक्तं निहन्त्यांशु पटलञ्च रसक्रिया ॥ २९४ ॥

लिङ्ग्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां

घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे ।

समोरणे तैलयुतां कफात्मके

मधुप्रगाढां विदधीतयुक्तिः ॥ २९५ ॥

सष्टतं वा वराकायं शोलयेत्तिमिरामये ।

पायसं वा वरीयुक्तं शीतं समधुशर्करम् ॥ २९६ ॥

शतावरीपायस एव केवल स्तथा कृतो यामलकेषु पायसः ।

प्रभूतसर्पिस्त्रिफलोदकीक्षरो यवोदनो वा तिमिरं व्यपोहति ॥ २९७ ॥

त्रिफलायाकपायस्तु धावनाग्ने वरोगजित् ।

कवलोन्मुखरोगघ्नः पानतः कामलापहः ॥ २९८ ॥

शैत्यस्यं त्रिफलाकायं सर्पिपासहयोजितम् ।

भुक्तोपरिपिवेत्सायं मासेनान्धोऽपि पश्यति ॥ २८८ ॥
पुराणासर्पिस्तिमिरेषु सर्वतो हितं भवेदायसभाजनस्थितम् ।
हितञ्च विद्याक्षिफलाघृतं सदा कृतञ्च यन्मपविपाणनामभिः ॥ ३०० ॥
त्रिफलायाः कपायेण प्रातर्नयनधावनात् ।
जातारोगाविनश्यन्ति न भवन्ति कदाचनः ॥ ३०१ ॥
जलगंडूषैः प्रातर्भूयोऽम्भोभिः प्रपूर्यमुखरन्ध्रम् ।
निर्दयमुच्चद्वक्षि चपयति तिमिराणि ना सदाः ॥ ३०२ ॥
भुक्तापाणि तलं घृष्टा चक्षुषोर्यदिदीयते ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ३०३ ॥
त्रिफलाक्वाथयुक्तेन क्षौद्रमिश्रेण गुग्गुलुम् ।
युक्तागन्धर्वतैलेन रेचनं तिमिरापहम् ॥ ३०४ ॥
अञ्जनं गैरिकं पत्रं कर्पूरं नीलमुत्पलम् ।
सनागपुष्पं मधुक मञ्जनं तिमिरापहम् ॥ ३०५ ॥
कंतकस्थ फलं घृष्टं मधुना सह योजयेत् ।
प्रभूततिमिरस्त्रावे धूपितञ्च प्रशाम्यति ॥ ३०६ ॥
त्रिफलापाथसं चूर्णं क्वाथयित्वा विचक्षणः ।
घृतत्रिभागसयुक्त ममयाकर्षमेव च ॥ ३०७ ॥
भक्तम्योपरिषानं स्याद्दक्षोमांसेन भोजनम् ।
पटलं तिमिरं काच मर्वुटं कंडुवेदनम् ॥
सप्तरात्रोपयोगेन अन्योऽपि तेन पश्यति ॥ ३०८ ॥
क्षणापथ्ये क्रमाद्दृढे भृङ्गराजरसप्लुते ।
कायाशुष्के हतः सद्य स्तिमिरं वापि योजिते ॥ ३०९ ॥

—०—

त्रिंशद्भागान्ता नागस्य गन्धपाषाणपञ्चकम् ।
शुल्वातान्नकयो द्वौ द्वौ वङ्गस्थौकोऽञ्जनययम् ॥ ३१० ॥

अधमूपागतं धातं पक्वं विमलमञ्जनम् ।

तिमिरान्तककुल्लोके द्वितोयो भास्करो यथा ॥ ३११ ॥

इति भास्करवर्त्तिः ।

सलिलमकरन्दसर्पिस्त्रैलैः प्रत्येकमस्तु सप्ताहम् ।

विनिहन्ति तिमिरमचिरादंजनतथ्यन्दनं रक्तम् ॥ ३१२ ॥

क्षणासर्पे सृतं न्यस्य चतुरथापि वृश्चिकान् ।

घोरकुम्भे त्रिसप्ताहं क्लेदयित्वा प्रमन्ययेत् ॥ ३१३ ॥

तत्र यन्नवनोतं स्यात्पुष्णीयात्तेन कुकुटम् ।

अन्धस्तस्य पुरीषेण पश्यति ध्रुवमञ्जनात् ॥ ३१४ ॥

इत्यन्धसुदर्शकमञ्जनम् ।

कैतकस्य फलं शङ्खं द्रुपणं सैन्धवसिता ।

फेनोरसाञ्जनं चोद्रे विडङ्गानि मनःशिला ॥ ३१५ ॥

कुक्कुटाण्डकपालानि वर्त्तिरेपाव्यपोहति ।

तिमिरपटलं काचमग्नेशुक्रं सुखावती ॥ ३१६ ॥

इति सुखावतीवर्त्तिः ।

शाणार्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः ।

शाणार्धं सैन्धवाच्छोणात् सोवीरस्य जलेन च ॥ ३१७ ॥

पिष्ठं ससूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम् ।

काचकडूकफात्तानां भलानाञ्च विशोधनम् ॥ ३१८ ॥

क्ष्वाससर्पवसाघ्नीद्रं रसोधाचरारमक्रिया ।

शस्तासर्वाचिरोगेषु वैदेहपतिनिर्मिता ॥ ३१९ ॥

—०—

मुक्ताकर्पूरकाचा गुरुमरिचकणा सैन्धवेलाप्रधाना ।

‘शुण्ठीकडोलकांस्य ऋषु रजनि शिला शङ्खनाभ्यभ्रतुत्यम् ॥

१

दचाण्डत्वक् च साचचतजयुतशिवाक्तीतकं राजवर्त्तम् ।

जातीपुष्पं तुलस्याकुसुममभिन्व बीजमस्यास्तथैव ॥ ३२० ॥

पूतीकनिम्बाञ्जनभद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् ।

प्रत्येकमेषां खलु मापकैर्क पापाणपिष्टं मधुना च सूक्ष्मम् ॥ ३२१ ॥

भवन्ति रोगानयनाश्रिताये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् ।

विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्तादिनानेन महाञ्जनेन ॥ ३२२ ॥

इति मुक्तादिमहाञ्जनम् ।

हरीतकीवचाकुष्ठं पिप्पलीमरिचानि च ।

विभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ ३२३ ॥

सर्वमेतत्समं कृत्वा त्वजाक्षरेण पेपयेत् ।

नाशयेत्तिमिरं कण्डूपटलान्यर्बुदानि च ॥ ३२४ ॥

अधिकानि च मांसानि यद्य रात्रौ न पश्यति ।

अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन शास्यति ॥ ३२५ ॥

वर्त्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिविशोधिनी ॥

इति चन्द्रोदयावर्त्तिः ।

हरीतकीहरिद्रा च पिप्पलीलवणानि च ।

कण्डूतिमिरजिद्वर्त्तिर्न क्वचिन्नतिहिन्यते ॥ ३२६ ॥

इति हरीतक्यादिवर्त्तिः ।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक् काशीशमयसोरजः ।

नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनद्य सरितां पतेः ॥ ३२७ ॥

आज्येन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने ।

सप्तरात्रं स्थितं भूयः पिष्ट्वा क्षीरेण वर्त्तयेत् ॥ ३२८ ॥

१ चतजमव कुसुमम् ।

एषा दृष्टिप्रदावर्त्ति रन्ध्रस्याऽभिन्नचक्षुषः ॥

इति त्रिफलाद्या वर्त्तिः ।

शङ्खस्य भागाद्यत्वार स्ततोर्ध्वेन मनःशिला ।

मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्धेन सैन्धवम् ॥ ३२८ ॥

वारिणा तिमिरं हन्ति चार्बुदं हन्ति मस्तुना ।

पिच्टं मधुना हन्ति स्त्रीचीरेण तथार्चुनम् ॥ ३२९ ॥

इति शङ्खादिवटी ।

कतकं चन्दनं लाक्षां मधुकं मरिचोत्पलम् ।

तुल्याक्षामलकाबीजं मनोद्वासुमनासिता ॥ ३३० ॥

विङ्गोदधिफेनैला शङ्खनाभिरसाञ्जनम् ।

एषा दृष्टिप्रदा नाम्ना वर्त्तिर्विद्येन निर्मिता ॥ ३३१ ॥

नित्योपयोगात्पटलं तिमिरं शुक्रराजिकाम् ।

शुक्रं शुक्राचिरोगञ्च विहृदं वाऽर्म एव च ॥

निहन्ति महमा रोगान् त्रिदोषानपि दुस्तरान् ॥ ३३२ ॥

अशोतिस्तिलपुष्पाणि पट्टिर्मागधितण्डुलाः ।

जातोकुसुमपञ्चाश अरिचानि च पोडण ॥ ३३३ ॥

एषा कुसुमिकावर्त्तिं गतं चक्षुर्निवर्त्तयेत् ॥

इति कुसुमिकावर्त्तिः ।

चन्दनत्रिफलापूग पलाशतरुशोणितैः ।

जलपिटैरियं वर्त्ति रशेषतिमिरापहा ॥ ३३४ ॥

इति चन्दनाद्यावर्त्तिः ।

व्योषोत्पलाभया कुटतार्घ्यैर्वर्त्तिः कृता हरेत् ।

अर्बुद पटले काचं तिमिराग्नाशुनिचुतिम् ॥ ३३५ ॥

इति व्योषाद्यावर्त्तिः ।

त्रिफलाव्योषसिभूत्य यष्टीतुत्यरसाञ्जनम् ।
 प्रपीण्डरीकं जन्तुघ्नं लोध्रं ताम्रं चतुर्दश ॥ ३३७ ॥
 द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वर्त्तिः कार्य्यानभोग्मुना ।
 नागार्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपूत्रके ॥ ३३८ ॥
 नाशनी तिमिराणाञ्च पटलानां तथैव च ।
 सद्यः कोपञ्च स्तन्येन स्त्रियां विजयते ध्रुवम् ॥ ३३९ ॥
 किशुकस्वरसेनाथ पितुपुष्पकरक्तता ।
 अञ्जनाक्षोभ्रतोयेन आसन्नतिमिरं जयेत् ॥ ३४० ॥
 चिरसङ्गादिते नेत्रे वस्तूमूत्रेण संयुता ।
 उन्मूलयत्य कृच्छ्रेण प्रसादं वाधिगच्छति ॥ ३४१ ॥

इति नागार्जुनाञ्जनम् ।

वर्त्यार्कतूलैः कृतया शशचर्मगर्भया ।
 प्रदीप्तयामपी ग्राह्या सर्वनेत्रामयांतको ॥ ३४२ ॥
 इति शशचर्मगर्भामपी ।

त्रपुगैरिककर्पूर यष्टीनीलोत्पलाञ्जनम् ।
 नागकेसरसंयुक्त मशेषतिमिरान्त कृत् ॥ ३४३ ॥

शतावरीसूर्यसमा प्रदेया एला तथा वारणमूर्द्धतुल्या ।
 देय विडङ्गं वसुभिः समानमृतोः समं चामलकास्थिबीजम् ॥ ३४४ ॥
 विष्णोर्भुजैस्तुल्यगुणं मरीच तद्विक्रमैर्मागधिका प्रदेया ।
 चूर्णं समध्वाञ्जनकर्पमर्द्धमचामयानां विनिवारणार्थम् ॥ ३४५ ॥

१ सूर्याः १२ । २ वारणमूर्द्धानि २१ । ३ वसवः ८ ।

४ ऋतवः ६ । ५ विष्णुभुजाः ४ । ६ विष्णुविक्रमाः १ ।

कंडू सधूमं तिमिरं सुधोर मर्माणि कार्च पटलं त्रिदोषम् ।
ये चापरे रक्तभवा विकारास्तांश्यामयांश्चूर्णवरो निहन्ता ॥ ३४६ ॥

इति शतावर्थादिचूर्णाञ्जनम् ।

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां तुल्यमथाञ्जनम् ।

ईषत्कर्पूरसंयुक्त मञ्जनं नयनामृतम् ॥ ३४७ ॥

इति नयनामृताञ्जनम् ।

मनोह्रातुल्यकस्तूरी मांसीमलयनागरम् ।

समाश शङ्खकर्पूर मशीतिगुणमञ्जनम् ॥

एतच्चूर्णीकृतं सर्वं पङ्क्तिं तिमिरे हितम् ॥ ३४८ ॥

कृष्णमर्पवदने सहविष्कं दग्धमञ्जनमनिर्गतधूमम् ।

चूर्णित नलदपत्रविमिश्रं भिन्नसारमपि रक्षति चक्षुः ॥ ३४९ ॥

व्रूषण त्रिफलाचक्र सैन्धवालमनःशिला ।

क्लेदोष्णदाहकण्डूघ्ना वर्त्तिः शस्ताकफापहा ॥ ३५० ॥

सौवीरमञ्जन नित्य पथ्यमक्षोस्ततो भजेत् ।

पञ्चरात्राष्टरात्र वा श्रावणार्थं रसाञ्जनम् ॥

चक्षुस्तजोमय तेन भवेन्न श्लेष्मतो भयम् ॥ ३५१ ॥

सूतकं गन्धकोपेतं चाङ्गैरीरसमूर्च्छितम् ।

अजनं दृष्टिद नृणां नेत्रामयविनाशनम् ॥ ३५२ ॥

त्रिफलाभृङ्गमहीपथ सर्पिर्गामूत्रमध्वजाचीरे ।

नागं समनिपिक्त करोति गरुडोपमं चक्षुः ॥ ३५३ ॥

—०—

त्रिफलाश्रसिभृङ्गरसे च हविषिमधुन्यजादुग्धे च पक्वेन सम
कृत्यः शीसेनोत्पादितयांजनं कार्यं प्रत्यहमंजनतश्चक्षुमा जिता
मैपरोगेन वर्षायामपि पश्येत्पिपीलिका दृष्टमयनमिति ।

त्रिफलसलिलयोगे भृङ्गराजद्रवे च ।
हविषि च विषकल्के चीरे अजे मधूये ॥
प्रतिपदमभितप्तसप्तधा शीसमेकम् ।
प्रणिहितगति पद्यात्कारयेत्तच्छलाकाम् ॥ ३५४ ॥
तिमिरपटलकण्डूस्त्रावरक्तप्रकोपा-
नुपचितबहुरोगान् सन्धिवर्त्ताभिजातान् ।
सवितुरुदयकाले सांजना व्यंजना वा
हरति नयनरोगाब्धोध्यमाना शलाका ॥ ३५५ ॥

इति शीसकशलाका ।

शृङ्गवेरं भृङ्गराजं यष्टीतैलेन मिश्रितम् ।
नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ ३५६ ॥
पिण्डोत्ततकमूलन्तु चौद्रेण सह योजयेत् ।
अपक्वं पटलं हन्यात् पक्वं च परिशोधयेत् ॥ ३५७ ॥
दिवा तु न प्रयोक्तव्यं नेत्रयोस्तीक्ष्णमञ्जनम् ।
विरेकदुर्बलादृष्टि रादित्यं प्राप्यसीदति ॥ ३५८ ॥
तस्मात्साध्यं निशायान्तु ध्रुवमञ्जनमिष्यते ।
रात्रप्रन्धगुणितं चापि पुष्यत्यञ्जनकार्पितम् ॥ ३५९ ॥
दोषप्रतिनिवृत्तस्तु हन्यादृष्टिबलं तथा ।
अधावनादृष्टिस्तिष्ठन् भूयः सञ्जनयेद्भयम् ॥ ३६० ॥
यान्ते भीते प्ररुदिते मद्यपीते नवज्वरे ।
उष्णे वेगविघाते च अञ्जनं न प्रशस्यते ॥ ३६१ ॥
वैमल्यार्थं यथा दर्शं सतैलमवधारणम् ।
तद्वदञ्जनसंयोगा दक्षोर्मलनिवर्द्धणम् ॥ ३६२ ॥
प्रसन्नविमलाशुक्ला स्थिरादृष्टिर्भवेदतः ।
प्रातःकुठ्यात्सदैवैत दञ्जनं व्याधिनाशनम् ॥ ३६३ ॥

अथ नेत्रनिर्माणाप्रकारमाह ।

पुत्रिणीलिङ्गिनो लिङ्गं तद्वाशो लिङ्गनाशनः ।

सर्वेषु लिङ्गनाशेषु वैध्य एकः कफात्मकः ॥ ३६४ ॥

नोनविशतिवर्षस्य नाशोत्यभ्यधिकस्य च ।

नाशुपूर्णस्य नोष्णं च लिङ्गनाशन्तु वेधयेत् ॥ ३६५ ॥

कासश्वासक्षतक्षीण कर्णशूनाच्चिरोगिणाम् ।

गर्भिणीक्षामभोरूपां दृष्ट्याभुक्तवतोऽन्यथा ॥ ३६६ ॥

मद्यतैलज्वराजीर्णं चयशुक्रविकारिणाम् ।

पटोलाद्येन संचिह्नं त्रिफलाद्येन सर्पिषा ॥ ३६७ ॥

लिङ्गनाशे समुद्भूते यथावद्विधिपूर्वकम् ।

विद्वादैवकृते छिद्रे नेत्रं स्नानेन सेचयेत् ॥ ३६८ ॥

ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकापट्टेच्छनैः ।

नेत्रनं सर्पिषाभ्यर्ज्य वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ ३६९ ॥

ततो गृहे निरावाधे शयीतोत्तानमेव च ॥ ३७० ॥

चद्धारकामं चवयुः शीवनं कम्पनानि च ।

तत्कालं नाचरेद्दूर्ध्वं यन्त्रणास्ते हपीतवत् ॥ ३७१ ॥

वस्त्रास्त्रहास्य धावेत कपायैरनिलापहैः ।

वायोर्भयाच्चक्षुःशार्दूलं स्वेदयेदक्षिपूर्ववत् ॥ ३७२ ॥

दशरात्रस्थितं सम्यग् घृतं दृष्टिप्रसाधनम् ।

प्यात्मर्मां च ममेव्यं लघुवर्णं चापि न स्त्रियः ॥ ३७३ ॥

रागः शोथोऽर्ददक्षोयं दुदुदं केकराक्षिता ।

अधिमन्यादयद्यान्ये रोगाः स्युर्दृष्टवेधजाः ॥ ३७४ ॥

अहिताचारतो वापि यथास्वन्तानुपाचरेत् ।

रुजायामक्षिरोने वा भूयो योगादिमोघ मे ॥ ३७५ ॥

सदुग्धा सष्टता दूर्वा यवगैरिकशारिदाः ।
 सुखालेपः प्रयोक्तव्यो रुजारागोपयान्तये ॥ ३७६ ॥
 पयस्याशारिवापचैर्मस्त्रिष्टामधुकैरपि ।
 अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते ॥ ३७७ ॥
 लोघ्नसैन्धवमृद्दीका मधुकैः छागलं पयः ।
 शृतमाश्चरोतने पथ्यं रुजारोगविनाशनम् ॥ ३७८ ॥
 बातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे ।
 काकोल्यादिप्रतिबापं प्रयुञ्ज्यात् सर्वकर्मसु ॥ ३७९ ॥
 शाम्यत्येवं नचेच्छूलं सिन्धुस्त्रिदलं मोक्षयेत् ।
 ततः शिरां दहेद्वापि मतिमान् कीर्तित यथा ॥ ३८० ॥
 दृष्टेरतः प्रसादार्थं मंजनं शृणु मे शुभम् ।
 मेघमृद्गस्य पुष्पाणि शिरीषधवयोरपि ।
 मालत्याद्यैव तुल्यानि मुक्ता वैदूर्यमेव च ॥ ३८१ ॥
 अजाक्षीरेण संपिथ्य तान्त्रे सप्ताहमावपेत् ।
 प्रणिधाय च तद्वर्ती योजयेदंजने भिषक् ॥ ३८२ ॥
 स्त्रोतोर्जं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिला ।
 मरिचानि च तावन्ति कारयेद्वापि पूर्ववत् ॥ ३८३ ॥
 मासेकेन समालिप्य पटलं गृध्रदृष्टिहृत् ।
 शम्बूकमांससंजातो रसः पीतोऽनुवाशनम् ॥ ३८४ ॥
 आदकोमूलमरिच हरितालरसांजनैः ।
 विद्धेऽष्टिं सगुडावर्ति र्योज्यादिव्यांशुपेयिता ॥ ३८५ ॥
 त्रिफलाव्योषसिन्धूयै र्धृतं सिद्धं पिबेन्नरः ।
 चक्षुर्थं भेदनं हृद्यं दीपनं कफनाशनम् ॥ ३८६ ॥

इति त्रिफलाद्यं धृतम् ।

फलत्रिकाभीरुकषायमिह दुग्धेन यष्टीमधुकल्कयुक्तम् ।

सर्पिः समं चौद्रचतुर्थभागं हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं सुदारुणम् ॥ ३८६ ॥

इति फलविकायं घृतम् ।

त्रिफलाद्रूपणं द्राक्षा मधुक कटुरोहिणी ।

प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेसरम् ॥ ३८८ ॥

नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् ।

कार्पिकैः पयसातुल्यैः त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥ ३८९ ॥

घृतप्रस्थं पचेदेतत् सर्वनेचरुजापहम् ।

तिमिरं दोषमास्त्राहं कामलां काचमर्बुदम् ॥ ३९० ॥

विसर्पं पटलं कण्डूं तोदनं श्वयथुं तथा ।

खालित्वं पलितश्चैव केशानां पतनं तथा ॥ ३९१ ॥

अन्ये च बहवो रोगा नैवजावर्त्मजाय ये ।

तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३९२ ॥

न चैवाऽस्मात्परं किञ्चिद्वेपजं काशश्लेष्मादिभिः ।

दृष्टिप्रसादनं दृष्टं यथा स्याच्चिफलाघृतम् ॥ ३९३ ॥

मध्यमत्रिफलायं घृतम् ।

त्रिफलायारसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।

हयस्य च रसप्रस्थं शतावर्याय तप्तमम् ॥ ३९४ ॥

अनाधीरं गुडूच्याय क्षामलक्षारसं तथा ।

प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ ३९५ ॥

कस्कैः कणासिताद्राक्षा त्रिफलानीलमुत्पलम् ।

मधुकं धीरकाकोली मधुपर्णी निदग्धिका ३९६ ॥

तप्ताधुमिदं विज्ञाय शुभे भास्ते निधापयेत् ।

ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानञ्च शक्यते ॥ ३९७ ॥

•यावन्तो नैव रोगास्तान् पानादेवापि कर्षयेत् ।

सरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते चातिस्रुतेऽपि च ॥ ३८८ ॥

नक्तांधे तिमिरे काचे नीलिका षट्लार्वुदे ।

अभियन्देऽधिमन्ये च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ ३८९ ॥

नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ।

अदृष्टिं मन्ददृष्टिञ्च कफवातग्रदूषिताम् ॥ ४०० ॥

स्त्रक्तो वातपित्ताभ्यां सकण्डासन्नदूर कृत् ।

गृभ्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥

सर्वनेत्रामयं हन्या त्रिफलाद्यं महाघृतम् ॥ ४०१ ॥

इति महात्रिफलाद्यं घृतम् ।

शतमेकं हरितक्या त्रिगुणञ्च विभीतकम् ।

धाढफलानां चत्वारि वृषमार्कवयोः समम् ॥ ४०२ ॥

चतुर्गुणोदकं दत्त्वा शनैर्मृदग्निना पचेत् ।

चतुर्भागुस्थितं ज्ञात्वा तदेवमवतारयेत् ॥ ४०३ ॥

शर्करामधुकं द्राक्षा मधुयष्टीनिदग्धिकां ।

काकोलीचीरकाकोली त्रिफलानागकेसरम् ॥ ४०४ ॥

पिप्पलीचन्दनं सुस्तं त्रायमाणा तथोत्पलम् ।

घृतप्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैर्विपाचयेत् ॥ ४०५ ॥

हन्यात्स्त्रिमिरं काचं नक्ताभ्यं शुक्रमेव च ।

तथा स्त्रावञ्च कण्डूञ्च शयथुञ्च कषायताम् ॥ ४०६ ॥

कलुपत्वञ्च नेत्रस्य विन्दर्मपटलापहम् ।

बहुनात्र किमुक्तेन सर्वान्नेत्रामयान् हरेत् ॥ ४०७ ॥

यस्य चोपहता दृष्टिः सूर्याग्निभ्यां प्रशस्यते ।

तस्मै तद्भेषजं प्रोक्तं सूर्ध्वजलुगदापहम् ॥ ४०८ ॥

यथादर्शो मले नीते निर्मलत्वं नियच्छति ।

तद्वदेतेन घृतेन दृष्टिर्निर्मलतां व्रजेत् ॥ ४०९ ॥

वारिद्रोणद्वयश्चैव वृषभृङ्गकयोस्तुले ॥ ४१० ॥

इति द्वितीयं महात्रिंशत्फलार्थं द्रुतम् ।

कण्ठा सशर्करा द्राक्षा चतुर्भुजकयष्टिका ।

एकद्वित्रिचतुर्थांश भागाः सर्वेषु कल्पिताः ॥ ४११ ॥

मृदग्निना पचेद्दीमान् बहुदर्थ्या विघट्टयन् ।

भास्कराख्यमिदं सर्पिर्ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ ४१२ ॥

तिमिरं शुक्तिकं हन्ति पिक्वं वाऽध्युपितानि च ।

अदृष्टिं मन्ददृष्टिञ्च दिवा नक्तान्यमेव च ॥ ४१३ ॥

अस्थोपयोगादत्यन्तं संहारादतिवर्त्तयेत् ।

वयस्तम्भनमायुष्यं बलीपलितनाशनम् ॥

प्रदरश्च क्षयं श्वासं शुक्रमूत्रमलार्तिनुत् ॥ ४१४ ॥

इति भास्करार्थं द्रुतम् ।

पटोलं कटुकं दार्वी निम्बवासाफलत्रिकम् ।

दुरालभापर्पटकं त्रायन्तीघनचन्दनम् ॥ ४१५ ॥

किराततिक्तयक्ष्माघ्ने पिप्पलीकौटजं फलम् ।

सामञ्जकं मृणालञ्च तत्फलं च समं भवेत् ॥ ४१६ ॥

एतैस्तु कार्पिकैः कल्कैर्विपचेत्सर्पिरुक्तमम् ।

ग्रामलक्ष्यारसं देयं शतावर्थाः समन्वितम् ॥ ४१७ ॥

सुरदारुकपायश्च शृङ्गराजरसं तथा ।

प्रस्यं प्रस्यञ्च गृह्णीयाद्दिप्रस्यं सर्पिषः पचेत् ॥ ४१८ ॥

पाने च भोजने दद्यात् सर्वभूषांस्तथापहम् ।

विशेषादक्षिरोगघ्नं तिमिरं च त्रिदोषजम् ॥ ४१९ ॥

पटलं रक्तराजिञ्च व्रणशुक्रहरं तथा ।

काचान्मं नातथमान्यश्च कण्डूपित्तामयान्दरेत् ॥ ४२० ॥

वर्त्म गोयहरं चैव दृष्टिरोगकुलापहम् ।

आसन्नतिमिराणाञ्च यच्च दूरान्न पश्यति ॥

अदृष्टिं मन्ददृष्टिञ्च सर्वनेत्रामयापहम् ॥ ४२१ ॥

बलवर्णकरं धन्यं दृष्टिर्पुष्टिविवर्धनम् ।

महापटोलाद्यमिदं ख्यातं वैदेहनिर्मितम् ॥ ४२२ ॥

इति महापटोलाद्यं घृतम् ।

रास्त्राफलत्रयक्वाथे दशमूले च तत्कृते ।

कल्के च जीवनीयानां घृतं तिमिरनाशनम् ॥ ४२३ ॥

इति रास्त्राद्यं घृतम् ।

बिभीतकशिवाधात्री पटोलारिष्टवासकैः ।

आढ़कीरससंसिद्धं तैलं तिमिरनुत्परम् ॥ ४२४ ॥

इति बिभीतकाद्यं तैलम् ।

संपिथ्य त्रिफलालोघ्र सुशीराणि प्रियंगुकम् ।

तैलमेतैर्विपक्वं स्याच्छ्लेष्मिके नस्यमुत्तमम् ॥ ४२५ ॥

इति त्रिफलाद्यं तैलम् ।

गवां शकृत् क्वाथविपक्वं मुत्तमं हितञ्च तैलं तिमिरे च नस्यतः ।

घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके तथाऽणुतैलं पवनान्शुगुत्ययोः ॥ ४२६ ॥

इति गोमयतैलम् ।

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च ।

तैलस्य कुडवं पक्वं सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत् ॥

नस्यादलीपलितघ्नं भासेनैतन्न संशयः ॥ ४२७ ॥

इति भृङ्गराजतैलम् ।

भृङ्गप्रस्थ तैलात् कुडवं तथा पलञ्च मधुकस्यापि ।

चीरप्रस्थविपक्वं गतमपि चक्षुर्विनिवर्त्तयेत् ॥ ४२८ ॥

इति द्वितीयभृङ्गराजतैलम् ।

तैलस्य पचेत् कुङ्कुमं मधुकस्य पलेन कल्कपिष्टेन ।

आमलकरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थेन संयुतं कृत्वा ॥ ४२६ ॥

अजितं नाम्ना तैलं तिमिरं हन्यान्निमिप्रोक्तम् ।

विमलां कुरुते दृष्टिं नष्टामप्यानयेन्नयने ॥ ४२७ ॥

इत्यजितं तैलम् ।

नीलोत्पलं मधुकनागरपुण्डरीक

द्राक्षासुयष्टीमधुकांशुमतोकणाश्च ।

कण्टारिकामलकशावर चोधगन्धाः

कासोसशर्करबलोद्वपभाय रास्त्रा ॥ ४२१ ॥

मञ्जिष्टया सह समैरपि सूक्ष्मपिष्टै-

स्तैलं पचेत्तु पयसा च चतुर्गुणेन ।

नस्यं नृणां तिमिरकाचनिशान्मथ्युक्तान्

पाकात्पयान् सपटनार्जुननोलिकांश्च ॥ ४२२ ॥

पित्तार्बुदार्मरुधिरसुतिवर्त्मकडून्

स्मन्दं जयेद्विहितभोजनभङ्गुराणाम् ।

वाधिर्यमर्दितहनुप्रहदन्तचालं

नासास्यपूयगलगण्डकृकाटिकार्त्तान् ॥ ४२३ ॥

कर्णाक्षिशूलदशनामयशोर्परोगां

जिह्वामयान् जयति कण्ठगतांश्च सर्वांश्च ।

अभ्यङ्गनेन नियतं शिरसि प्रयत्नात्

सर्वाविहन्ति वदनाक्षिशिरोविकारान् ॥ ४२४ ॥

इति नीलोत्पलाद्यं तैलम् ।

क्षीरकर्मभक्ती मेदा द्राक्षांशुमतो निदग्धिकादृष्टयो ।

मधुकं यनाविड्मं मञ्जिष्टा शर्करारास्त्रा ॥ ४२५ ॥

नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवालवणम् ।
 पिप्पल्यः सर्वपां भागैरक्षांशिकैः पिष्टैः ॥ ४३६ ॥
 तैलं वा यदि सर्पिर्दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणं पक्कम् ।
 घ्रात्रेय निर्मितमिदं तैलं नृपवल्लभं नाम्ना ॥ ४३७ ॥
 तिमिरं पटलं काचं नक्ताभ्यमर्बुदं तथान्यच्च ।
 श्वेतञ्च लिङ्गनाशं नाशयति नीलकाव्यङ्गम् ॥ ४३८ ॥
 मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितञ्च कालजं हनुस्तम्भम् ।
 श्वासं कासञ्च हिक्कां शोषं स्तम्भं तथान्याद्य ॥ ४३९ ॥
 मुखजान्ध्यमर्धभेदं रोगं बाहुग्रहं शिरः स्तम्भम् ।
 रोगानथोर्ध्वजत्रोः सर्वानचिरेण नाशयति ॥ ४४० ॥
 इति नृपवल्लभं तैलम् ।

पिप्पलीमधुकं द्राक्षा शुभ्राजीवककर्पभौ ।
 सोत्पलं पुण्डरीकञ्च मधुपर्णीफलत्रयम् ॥ ४४१ ॥
 धावनीक्षीरकाकोली मञ्जिष्ठाहहतीबला ।
 पुनर्नवाशताह्वा च विडङ्गं गोक्षुरस्थिरा ॥ ४४२ ॥
 एतान्यर्धपलानोह श्लक्ष्णपिष्टानि पाचयेत् ।
 त्रिफलाभृङ्गवासानां प्रपीड्यप्रस्थसम्मितान् ॥ ४४३ ॥
 बीजसारोवरस्तस्य प्रस्थमेकं तु दापयेत् ।
 गृष्टीक्षीरस्य प्रस्थौ च द्वौ द्वौ तस्य प्रदापयेत् ॥ ४४४ ॥
 रुद्धग्निना पचेत्पात्रे शनैः सम्यक् पचेद्भिषक् ।
 त्रिफलाद्येन पयसा सम्यग् दृष्टन्तु मानवम् ॥ ४४५ ॥
 मोदकेनाभयाद्येन कृत्वा संशोधनं ततः ।
 यथोक्तेन विधानेन भिषग्वक्ष्यं प्रदापयेत् ॥ ४४६ ॥
 तिमिरि च रानक्ताभ्ये शुक्ले काचे चतुर्विधे ।
 आसन्नं यो न पश्येत्तद्वद् दूरान्न पश्यति ॥ ४४७ ॥

प्रकाशमायतं वा यो नष्टदृष्टिश्च मानवः ।
 मन्ददृष्टिः स्तब्धदृष्टि रधोदृष्टिश्च योजयेत् ॥ ४४८ ॥
 अतिरिक्ते प्रदिष्टे च रक्ते वाताश्रिते तथा ।
 वातपित्तप्रदुष्टे क्षिण पित्तश्लेष्मप्रदूषिते ॥ ४४९ ॥
 कडूयते च स्रवति पित्तेनात्याकुलाक्षता ॥ ४५० ॥
 विद्युत् खद्योतवत्प्रश्येत् सूर्यचन्द्रसमप्रभाम् ।
 सर्वदा चक्रता दृष्टिः सर्वनेत्रविकारनुत् ॥ ४५१ ॥
 इति महापिप्पल्याद्य तैलम् । इति तिमिरोपक्रमः ।

—०—

अथ कृष्णो काचचिकित्सामाह ।

काचे रक्तं जलौकाभिः हृत्वा पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ४५२ ॥
 शाणार्धं मरिच द्वौ च पिप्पल्यार्णवफेनयोः ।
 शाणार्धं सैन्धवाच्छाण नवसीवीरकाञ्चनात् ॥ ४५३ ॥
 पिष्टं सूक्ष्मं शिलायाञ्च चूर्णाञ्जनमिदं शुभम् ।
 कण्डूकाचकफार्तानां मलानाञ्च विशोधनम् ॥ ४५४ ॥

इति मरिचादिचूर्णाञ्जनम् ।

समेपशृङ्गाञ्जनभागसंमितः शङ्खाञ्जनः काचमलं व्यपोहति ॥ ४५५ ॥

इति मेपशृङ्गाद्यञ्जनम् ।

शिलासैन्धवकासोम शस्त्रव्योपरसांजनैः ।

संचौद्रे. काचशुक्रार्म तिमिरघ्नोरमक्रिया ॥ ४५६ ॥

दोषाधिप्तिमिराम्ये च तिमिरोक्तं क्रम हितम् ॥ ४५७ ॥

वचाक्षिहृच्चन्दनकुण्डली च भूनिम्बनिम्बे रजनी सवामा ।

मर्त्यं जलस्य क्षयिताष्टभागं पिवेत्सुजीर्णं नकुलान्धरोगे ॥ ४५८ ॥

काचं निशाम्य' तिमिरं तथाऽन्यान्ने चामयांस्तस्य च वर्त्मसंधौ ।
चिरप्रवृत्तानचिरेण हन्ति वज्रो यथाद्रोन् सुराजमुक्तः ॥ ४५८ ॥

—०—

अथ नक्ताम्यचिकित्सामाह ।

करञ्जपद्मकिञ्चल्क' चन्दनोत्पलगैरिकैः ।

गोशङ्कुद्रससंपिष्टैः नक्ताम्येऽञ्जनमिष्यते ॥ ४६० ॥

रसाञ्जनं निशादार्क जातिपत्ररसो मधु ।

नक्ताम्यतांजयेदेत दञ्जनं साधुयोजितम् ॥ ४६१ ॥

रसांजनं हरिद्रे द्वे मालतीमधुपल्लवाः ।

गोशङ्कुद्रससंयुक्ता वर्त्तिरात्रप्रन्थनाग्निनी ॥ ४६२ ॥

जातीपत्ररसचौद्र निशाह्वयरसांजनैः ।

नक्ताम्यमञ्जनं हन्यात् कृष्णायागोमयान्वितम् ॥ ४६३ ॥

दध्नाविष्टं मरिचं रात्रप्रन्थ्याञ्जनमिष्यते ।

पिप्पल्योऽपि हितास्तद्व गोशङ्कुद्रसभाविताः ॥ ४६४ ॥

कणाक्षागयकृन्मध्ये पक्ता तत्राणुपेषिता ।

अचिरादन्ति नक्ताम्य' तद्वत्सचौद्रमूषणम् ॥ ४६५ ॥

पचेच्च गोधायकदर्वपाटितं सुपूरितं मागधिकाभिकाभिरग्निना ।

निषेवितं तद्यकृदजनेन निहन्ति नक्ताम्यमसंशयं खलु ॥ ४६६ ॥

इति रात्रप्रन्थोपक्रमः ।

—०—

अथ दृष्टिरोगचिकित्सामाह ।

नेलोत्पन्नस्य किञ्चल्क' गैरिकश्च शङ्कुद्रसम् ।

गुटिकाञ्जनमेतत्स्या दिनरात्रप्रन्थयोर्हितम् ॥ ४६७ ॥

नदीजशंखत्रिकटून्यऽथाञ्जनं

मनःशिलाद्वै च निशे गवां शङ्कत् ।

सचन्दनेयं गुटिकाय चाञ्जने

प्रशस्यते रात्रिदिनेष्वपश्यताम् ॥ ४६८ ॥

सूर्यदर्शनदग्धायां क्रियां भीतां प्रयोजयेत् ।

हिमं घृष्टं घृतोपेत मञ्जनस्योपशस्यते ॥ ४६९ ॥

रसाञ्जनं घृतं चौद्रं तालीसं स्वर्णगैरिकम् ।

गोशङ्कद्रससयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ ४७० ॥

काश्मरीपुष्पमधुक दावीलोध्ररसाञ्जनैः ।

सचौद्रमञ्जनं कुर्यात् पित्तव्याधिप्रशान्तये ॥ ४७१ ॥

इति दृष्टिगतरोगोपक्रमः ।

—०—

अथ शुक्लगतरोगनिदानमाह ।

प्रस्तार्थ्यमृतनुस्तीर्णं श्यावं रक्तं निभं सिते ।

सखेत मृदुशुक्लार्मं शुक्ले तद्वर्धते चिरात् ॥ ४७२ ॥

पद्माभ मृदुरक्तार्मं यन्मांसञ्जीयते सिते ।

पृथुमृद्वधिमाम्सां बहुलञ्च यत्तन्निभम् ॥ ४७३ ॥

स्थिरं प्रस्तारिमांसाव्यं शुष्कं स्नायूर्मपञ्चमम् ॥ ४७४ ॥

श्यावाः स्युः पिशितनिभास्तु बिन्दवो ये ।

शुक्लाभाः सितनियताः सशक्तिसन्नाः ।

एकोऽयः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः

शुक्लस्यो भवति तदर्जुनं वदन्ति ॥ ४७५ ॥

श्लेष्मामातृकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् ।

पिष्टवत् पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्थसन्निभम् ॥ ४७६ ॥

जालाभः कठिनशिरो मृद्धान् सरक्तः
 सन्तानः स्मृत इह जालसञ्चितस्तु ।
 शुक्लस्याः सितपिङ्गिकाः शिराहस्ताया
 स्ताम्रयादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ४७७ ॥
 कांस्याभोऽमृदुरथ वारिविन्दुकल्पो
 विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ॥ ४७८ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

प्रस्तार्थर्म च स्रायुर्म तथैवार्माधिसंज्ञकम् ।
 लोहितार्म च शुक्लार्म कृष्णं प्राप्तानि हृदयेत् ॥ ४७९ ॥
 अर्मवात्यं दधिनिभं नीलं रक्तमथापि वा ।
 धूसरं तनुयच्चापि शुक्लवत्सुर्पाचरेत् ॥ ४८० ॥
 कृष्णलोहरजस्ताम्रं शंखविद्रुमसिन्धुजैः ।
 ममुद्रफेनकाशीश स्त्रोतोऽञ्जनसुमस्तुभिः ।
 लेपनं वा कृतं नम्यं परमुत्तममर्माणि ॥ ४८१ ॥
 पिप्पलीत्रिफलालाक्षा लोहचूर्णे ससैन्धवम् ।
 भृङ्गराजरसे पिष्टं गुटिकांजनमिष्यते ॥ ४८२ ॥
 अर्मं सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तथार्जुनम् ।
 अजकां नेत्ररोगांश्च हन्याद्विरवशेषतः ॥ ४८३ ॥
 मंचूर्णमरिचाऽचे च रजन्यारसमर्दिते ।
 लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट् ॥ ४८४ ॥

पुण्याक्षतार्च्यं जसितोदधिफेनशङ्ख
 सिन्धूल्यगैरिकशिलाभरिचैः समांशैः ।

पिष्टैस्तु माचिकरसेन रसक्रियेयं

हन्यर्मकाचतिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥ ४८५ ॥

क्रियां शुक्त्यामये कुर्यात्पित्ताभिष्यन्दजिच्छुभाम् ॥ ४८६ ॥

बलासाह्वयपिष्टे तु कार्थ्यं शोणितमोक्षणम् ।

कफाभिष्यन्दवत्सर्वं क्रम कुर्याद्विचक्षणः ॥

अञ्जनं कट्फलं व्योषं बीजपूररसाञ्जनैः ॥ ४८७ ॥

अर्जुने शर्करा मस्तु चोद्रे राश्रोतनं हितम् ।

शङ्खं चोद्रेण सयुक्तः कतकः सैन्धवेन वा ॥

सितयाऽर्णवफेनो वा पृथगंजनमर्जुने ॥ ४८८ ॥

इति शुक्लजाः ।

—०—

अथ सन्धिजानां निदानमाह ।

पक्वं शीथं सन्धिजी य सतोदः पूयस्त्रावी सोऽत्र पूयालसास्य ।

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टि सन्धावपाकी कङ्कूपायो नोरुजस्तूपनाह ॥ ४८९ ॥

गत्वा सन्धीनशुमार्गेण दोषाः कुर्युस्त्रावाञ्जक्षणैः स्त्रैरुपेतान् ।

त द्वि स्त्रावनेत्रनाडीति चैके तस्या लिङ्गं कीर्त्तयिष्ये चतुर्धा ॥ ४९० ॥

पाकात्सन्धौ सस्रवेद्यस्तु पूयं पूयस्त्रावोऽसौ गदः सर्वजस्तु ।

श्वेत सार्द्रं पिच्छलं य स्रवेत्तु श्लेष्मास्त्रावः सविकारो मतस्तु ॥ ४९१ ॥

रक्तास्त्रावः शोणितोत्थो विकारः रक्त चोष्णं सस्रवेत्तन्नभूतम् ।

हारिद्राभ पीतमुष्णं जलाभ पित्तात् स्त्रावः सस्रवेत्सन्धिमध्यात् ॥ ४९२ ॥

ताम्रा तन्वीदाहशूलोपपन्ना रक्तात् ज्ञेया पर्वणीवतशोथा ।

जाता सन्धौ क्षणशुक्लोऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव श्यापिता पूर्वलिङ्गैः ॥ ४९३ ॥

क्षमिग्रन्थिर्वत्सनः पक्ष्मण्य कङ्कू कुर्युः क्षमयः संधिजाताः ।

नानारूपावर्त्मशुक्लान्तसन्धौ चरत्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः ॥ ४९४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पूयालसे शिरां भित्वा तत्तुस्तमुपनाह्वा ।

नेत्रपाकविधिं कुर्यात् परं सुक्ताजनं हितम् ॥ ४८५ ॥

भित्त्वोपनाहं कफज पिप्पलीमधुसैधवैः ।

विलिखेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः ॥ ४८६ ॥

त्रिफलामृतकासीस सैन्धवैः सरसांजनैः ।

रसक्रिया कृमिग्रन्थो भिन्ने स्याद्यतिसारणम् ॥ ४८७ ॥

पर्वणी पिटिकां सन्धिभागे छिन्द्यादसंशयम् ।

हितं चाभ्यधिकं छिन्ने च्योतनं मधुसैन्धवैः ॥ ४८८ ॥

स्त्रावेपु त्रिफलाकार्यं यथा दोष प्रयोजयेत् ।

चौद्रेणान्येन पिप्पल्या मियं विध्येच्छिरां तथा ॥ ४८९ ॥

पण्याक्षधात्रीफलमध्यबीजं स्निग्धं कभागैर्विदधीतवर्तिम् ।

तयाऽजघेदशुमतिप्रवृद्ध मक्षोर्हरेत्कष्टमपि प्रकोपम् ॥ ५०० ॥

सप्ताह्नाशारिवानन्ता कालीयागरुचन्दनैः ।

यतपुष्पाश्वगन्धानां चूर्णैस्तैल विपाचयेत् ॥ ५०१ ॥

पयस्यष्टगुणे नस्य मेतदशुहरं पम् ॥ ५०२ ॥

चक्षुः स्त्रावप्रशान्त्यर्थं कार्यमेतन्महीपधम् ।

द्विज्जलस्य फलं दृष्ट्वा पानीये नित्यमंजनम् ॥ ५०३ ॥

कर्पासीफलजंज्वाम्रं जलैर्दृष्टं रसांजनम् ।

मधुयुतं चिरोत्पन्नं चक्षुः स्त्रावमपोहति ॥ ५०४ ॥

इति संधिगतरोगोपक्रमः ।

—०—

अथ वर्त्मजानां निदानमाह ।

अभ्यन्तरमुखीताम्रा वाह्यतो वर्त्मनश्च या ।

सोत्सङ्गोत्सङ्गपिटिका रक्तजा स्थूलकण्डूरा ॥ ५०५ ॥

वर्त्मन्ते पिटिकाधाता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च ।

भिषग्भिराद्यैस्ताः प्रोक्ताः कुम्भिकाः सन्निपातजाः ॥ ५०६ ॥

साविण्यः कण्डूरा गुर्व्यो रक्तसर्पपसन्निभाः ।

रुजावन्यश्च पिङ्गिकाः पोथक्य इति कीर्त्तिताः ॥ ५०७ ॥

पिटिका या स्थिरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंहता ।

वर्त्मस्था शर्करा नाम सरोगो वर्त्मद्रूपकः ॥ ५०८ ॥

एवार्बुबीजप्रतिमाः पिटिका मन्दवेदनाः ।

श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शिवर्त्मकोत्थ्यते ॥ ५०९ ॥

दीर्घाङ्कुरः खरस्पर्शो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः ।

व्याधिरेपोऽतिविख्यातः शुष्कार्श इति कीर्त्त्यते ॥ ५१० ॥

दाहतोदवतीताम्ना पिटिकावर्त्मसम्भवा ।

मृद्वीमन्दरुजासूक्ष्मा ज्ञेया साञ्जननामिका ॥ ५११ ॥

वर्त्मोपचीयते यस्य पिटिकाभिः समन्ततः ।

सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्वङ्गुलवर्त्मतत् ॥ ५१२ ॥

कण्डूमताल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः ।

न सम क्वाद्येदक्षि सभवेद्वर्त्मवन्धकः ॥ ५१३ ॥

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्मसम एव च ।

अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्षणवर्त्मंति तद्विदुः ॥ ५१४ ॥

क्लिष्ट पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा ।

ततः क्लिन्नत्वमापन्नं मुच्यते वर्त्मकर्ममम् ॥ ५१५ ॥

वर्त्मं यदाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ।

तदाह्य श्याववर्त्मंति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ५१६ ॥

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्मयस्य नरस्य हि ।

प्रक्लिन्नवर्त्मं तद्विद्यात् क्लिन्नमल्पथमन्ततः ॥ ५१७ ॥

यस्य धीतान्यधीतानि सन्नश्यन्ते पुनः पुनः ।
 वर्त्मान्युपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्न वर्त्मतत् ॥ ५२८ ॥
 विमुक्तसन्धिनियेष्टं वर्त्मयस्य न भोक्ष्यते ।
 एतद्वातहृत्तं वर्त्मं सरुजं यदि वा रुजम् ॥ ५२९ ॥
 वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ।
 विज्ञेयमर्बुदं पुंसां सरक्तमविलम्बितम् ॥ ५३० ॥
 विमेषिणीः शिरावायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः ।
 चालयत्यथ वर्त्मानि निमेष इति तद्विदुः ॥ ५३१ ॥
 वर्त्मस्यो यो विषर्धेत लोहितो मृदुरङ्कुरः ।
 तद्रक्तजं शोणितार्थः छिन्नं छिन्नं विवर्धते ॥ ५३२ ॥
 आपाकिकठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवो रुजः ।
 सकण्डूः पिच्छलः कोल संस्थानोलगणस्तु सः ॥ ४२३ ॥
 चयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः ।
 प्रस्रवन्त्यन्तरुदकं विसवद्विसवर्त्मतत् ॥ ५२४ ॥
 वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति यदा मलाः ।
 तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः ॥ ५२५ ॥
 प्रचालितानि बातेन पद्माण्यक्षिविशन्ति हि ।
 घृथ्यन्त्यक्षिमुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च ॥ ५२६ ॥
 अक्षिते च मिते भागे मूलकोशात्पतन्त्यपि ।
 पद्मकोपः सविज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ ५२७ ॥
 वर्त्मपद्माशयगतं पित्तं रोमाणि शान्तयेत् ।
 कण्डूदाहञ्च कुरुते पद्मशान्तं तमादिशेत् ॥ ५२८ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

उल्लङ्घिनीबहलकर्दमवर्त्मनो च श्यावञ्च यच्च पठितं ब्रिहवन्धवर्त्म ।

क्लिष्टञ्च पोथकियुतं खलु वर्त्म यच्च

कुम्भीकिनी च सह शर्करया च लेख्याः ॥ ५२८ ॥

श्लेष्मोपनाहलग्णौ च विसं च भेद्याः

ग्रन्थिश्च यः क्लमिक्ततोऽञ्जननामिका च ॥ ५२९ ॥

स्त्रिन्नां भित्वा विनिष्पौद्य भिन्नामञ्जननामिकाम् ।

शिशैलानतसिन्धूत्यैः सच्चोद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ५३१ ॥

रसाञ्जनमधुभ्यां वा भित्वा शस्त्रेण कर्मवित् ।

प्रतिसार्यांजनैर्युञ्ज्यादुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ॥ ५३२ ॥

स्वेदयेद् दृष्ट्यांगुल्या हरेद्रक्तं जलौकसा ।

करे संवृष्य दुर्वर्णं मञ्जयेत्सोचनं मुहुः ॥

द्वित्रिवारं शमयति कण्डूं दीपान्विताञ्जनम् ॥ ५३३ ॥

रसाञ्जनं व्योपयुतं संपेष्य वटकीकृतम् ।

कण्डूपाकान्वितां हन्ति नूनमञ्जननामिकाम् ॥ ५३४ ॥

रोचनाचारतुल्यानि पिप्पल्याः क्षौद्रमेव च ।

प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लग्ण इष्यते ॥ ५३५ ॥

निमेषं नाशमायाति सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥ ५३६ ॥

स्वेदयित्वा विसयन्ति क्षिद्राण्यस्य निराश्रयः ।

पक्वं भित्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेन च पूरयेत् ॥ ५३७ ॥

आलदारुवचापिष्टा सुरसापत्रवारिणा ।

छायाशुष्ककृतावर्ति क्लिन्नवर्त्मनिवारिणी ॥ ५३८ ॥

रसाञ्जनं सर्वरसो जातीपुष्पं मनःशिला ।

समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥ ५३९ ॥

एतत्समांशं मधुना पिष्ट्वा प्रक्लिन्न वर्त्मनि ।

अञ्जनं क्लेदकडूघ्नं पद्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥ ५४० ॥

अथ पित्तलक्षणमाह ।

पित्तश्लेष्मप्रकोपेन वर्मान्तः संप्रकुप्यति ।

नाम्नाऽतिलोमग्रं वापि विस्लिष्टं पित्तमेव च ॥ ५४१ ॥

—०—

तस्य चिकित्सामाह ।

वर्माऽवलेखं बहुशस्तथा शोणितमोक्षणम् ।

पुनः पुनर्विरिक्ञ्च पित्तरोगातुरो भजेत् ॥ ५४२ ॥

पित्तीस्त्रिग्वो वमेत्पूर्वं शिरया च सुतेऽसृजि ।

शिलारसाञ्जनव्योष गोपितैर्वर्तिरञ्जनम् ॥ ५४३ ॥

पित्तघ्नं छागमूत्रेण भावितं देवदारु च ॥ ५४४ ॥

हरितालवचादारु सुरसारसपिट्टितम् ।

अभयारससंपिष्टं तगरं पित्तनाशनम् ॥ ५४५ ॥

काकमाचीफलैकेन घृतयुक्तेन बुद्धिमान् ।

धूपयेत्पित्तरोगार्त्तं पतन्ति क्षमयोऽचिरात् ॥ ५४६ ॥

तुल्यकस्य पलं श्वेतमरीचानि च विंशतिः ।

त्रिंशताकाञ्जिकपलैः पिष्ट्वा ताम्ने निधापयेत् ॥ ५४७ ॥

पित्तानपित्तान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि ।

उत्सेकेनोपदेहाशु कण्डूशोथांश्च नाशयेत् ॥ ५४८ ॥

सैन्धवं गुह्यांबुयुक्तं मषामार्गजटया ताम्ने, घृष्ट्वा ।

वर्त्सबिलेखनं विधिनार रसाहराद्धिपिट्टपित्तहरम् ॥ ५४९ ॥

काशीशजातिकलिका रसाञ्जनक्षौद्रमरिचतुल्यांशैः ।

अपनयति पित्तकत्वं पिट्टैः पयसाञ्जनं सद्यः ॥ ५५० ॥

ताम्रपात्रे गुह्यामूलं सिन्धूत्थं मरिचान्वितम् ।

आरनालेन संघृष्टं मञ्जनं पित्तनाशनम् ॥ ५५१ ॥

पुष्पकाशीशचूर्णं वा सुरसारसभावितम् ।
 ताम्ब्रे दशाहं तत्पिबन् पक्ष्मशातनमञ्जनम् ॥ ५५२ ॥
 प्रलेपाच्छमयेन्नूनं चिपिटारुख्यं गदं नृणाम् ।
 शठीपत्रकनिर्व्यासं रसदृष्टं हरोतकी ॥ ५५३ ॥
 लाक्षानिर्गुण्डीमृद्गदावीरसेन
 श्रेष्ठं कर्पासं भावितं सप्त कृत्वः ।
 दीपाः प्रज्वाल्याः सर्पिषां तत्समुत्था
 श्रेष्ठा पिप्पलानां रोपणार्थं मपीसा ॥ ५५४ ॥
 याप्यः पक्ष्मोपरोधस्तु रोमोद्धरणलेखनैः ।
 बर्तमन्युपचितं लेख्यं स्वाव्यमुल्लिष्टशोणितम् ॥ ५५५ ॥

—०—

अथोपपक्ष्मलक्षणमाह ।

अन्तर्मुखानि पक्ष्माणि जनयन्ति मलास्त्रयः ।
 बाधां कुर्वन्ति रोमाणि तमाहु रूपपक्ष्मकम् ॥ ५५६ ॥

—०—

अथ तस्य चिकित्सामाह ।

प्रवृद्धान्तर्मुखं रोमसहिष्णोरुद्धरेच्छनैः ।
 सन्देशेनोद्धरेद् दृष्ट्यां पक्ष्मरोमाणि बुद्धिमान् ॥ ५५७ ॥
 सर्पिषाशतधीतेन सेचयेद्वणरोपणैः ।
 यष्टीसिद्धं घृतं सेकात् सद्यो हरति वेदनाम् ॥ ५५८ ॥
 सेचनात् पाचितं छित्वा गैरिकेनावचूर्णयेत् ।
 रसाञ्जनाम्बुना सेकान् कुर्यात्ताक्षारसेन तु ॥ ५५९ ॥
 हौ च भुवोरधोभागी पक्ष्मान्तादेकमेव च ।
 भागं त्यक्त्वा तु शस्त्रेण व्यध्येत्तिर्य्यग्गदं स्थितम् ॥ ५६० ॥

रक्तं वस्त्रेण गृह्णीयात् स्थिते रक्ते च सेचयेत् ।

मुहमात्रान्तरैर्भागे र्वभ्यात्पट्टं ललाटतः ॥ ५६१ ॥

सूच्य्रेणाग्निवर्णेन रोमकूपाणि निर्दहेत् ।

प्रदेहाः शीतलाः कार्याः क्रिया पक्ष्मोपरोधनी ॥ ५६२ ॥

रक्षत्रक्षिदहेत्पक्ष्म तप्तलोहशलाकया ।

पक्ष्मकोपे पुनर्नैव कदाचिद्रोमसम्भवः ॥ ५६३ ॥

इति वर्त्मपक्ष्मरोगोपक्रमः ।

—०—

अथ सशैल्यनेत्रलक्षणमाह ।

स्ववत्यशुचयन्त्रे वृत्तं लोहितराजिभिः ।

निमिषोन्मेषणाऽशक्तिं सशैल्यं तं विन्निर्दिशेत् ॥ ५६४ ॥

—०—

तस्य चिकित्समाह ।

नेत्रे त्वभिहितं कुर्याच्छीतमाच्योतनं हितम् ।

अन्तःस्त्रीस्तन्यसेकथं रक्तामोचथं शस्यते ॥ ५६५ ॥

दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात् ।

स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ॥

श्लेदाग्निधूमभयशोकरुजाभिघातैः

अभ्याहतामपि तथैव भिषक् चिकित्सेत् ॥ ५६६ ॥

आगन्तुदोषं प्रसमोक्षकार्यं वक्तोष्णणा स्वेदनमादितस्तु ।

आच्योतनं स्लोपयसा तु सद्यो यच्चापि पित्तज्वतजापहं स्यात् ५६७

सूर्योपरागाश्वरविद्युदादि विलोदनेनोपहृतेक्षणस्य ।

सन्तर्पणं स्निग्धहिमादिकार्यं साय निषेध्या स्निग्धफलाप्रयोगाः ॥ ५६८ ॥

निशाब्दत्रफलादावीं सिर्तामधुसमन्वितम् ।

अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥ ५६८ ॥

इत्काटाङ्कुरजस्तद्वत् स्वरसो नैवपूरणम् ॥ ५६९ ॥

वटपत्रपुटे क्षितं कलिङ्गं सृष्टं पचेत् ।

तद्रसस्तर्पणे चाक्षो रवं स्युर्जाङ्गलारसाः ॥ ५७१ ॥

आजं घृतं क्षीरपानं मधुकं सोत्पलानि च ।

जीवकर्पभकौ मेदा पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ॥

सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ५७२ ॥

इत्याजं घृतम् । इति नयनाभिघातः ।

सितमरिचनागरकेशर नीलोत्पलकल्कवर्त्तितावर्त्तिः ।

शमयति सततं निद्रां सूर्यस्तमश्चन्द्रलेखेव ॥ ५७३ ॥

वृद्धतीफलसैन्धव यष्टीमधुकल्कीतकैर्नस्यम् ।

अतिविततामपि सततां निद्रामेव सततं हन्यात् ॥ ५७४ ॥

क्षौद्राश्वलालासंघट्टैर्मरिचैर्नैवमञ्जयेत् ।

अतिनिद्राशमयति तमः सूर्योदयादिव ॥ ५७५ ॥

इति वङ्गसेने नैवरोगनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ६७ ॥

—०—

अथ शिरोरोगनिदानमाह ।

शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः ।

सन्निपातेन रक्तेन चयेण क्रिमिभिस्तथा ॥ १ ॥

सूर्यावर्त्तानन्तवात शंखकोर्ध्वावभेदकैः ।

एकादशविधस्याऽस्य लक्षणानि प्रचक्ष्यते ॥ २ ॥

यस्यऽनिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रानि शि च्चातिमात्रम् ।

बन्धोपतापैश्च भवेद्विशेषः शिरोऽभितापः सममीरणेन ॥ ३ ॥
 यस्योष्णमङ्गारचितं तथैव धूप्येच्छिरो दहति चाचिनासा ।
 शीतेन रात्रौ च भवेद्विशेषः शिरोऽभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ५ ॥
 शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरुप्रतिष्ठं मथो हिमञ्च ।
 शूनाच्चिकूटं वदनञ्च यस्य शिरोऽभितापः सकफः प्रकोपात् ॥ ५ ॥
 शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति ।
 रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ६ ॥
 असृग्वसा श्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह सचयेण ।
 क्षवः प्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥
 सखेदनच्छर्दनधूमनस्यै रसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ ७ ॥
 निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः ।
 घ्राणाच्च गच्छेद्द्रुधिरं सपूयं शिरोऽभितापः कृमिभिः सघोरः ॥ ८ ॥
 सूर्योदयं या प्रतिमन्दमन्दमच्चि भ्रुवं रुक्मसुपैतिगाढम् ।
 विवर्द्धते चांशुमता सहेव सूर्यापहृत्तौ विनिवर्त्तते च ॥ ९ ॥
 शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाद्वा ।
 सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापहृत्तं तमुदाहरन्ति ॥ १० ॥
 दोषाः प्रदुष्टास्तय एवमन्यां संपीड्यगाढं सरुजां सुतोव्राम् ।
 कुर्वन्ति चाच्चि भ्रुवि शंखदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ ११ ॥
 गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ।
 अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दीपत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १२ ॥
 रुक्षाशनाध्यशनप्राग् बातावश्याय मैथुनेः ।
 वेगसन्धारणायास्त ध्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ १३ ॥
 केवलः सकफो वार्धं गृह्णीत्व शिरसो बली ।
 मन्याभ्रूशंखकर्णाच्च ललाटार्धेऽतिवेदनाम् ॥ १४ ॥
 शस्त्रारणिनिभां कुर्यात्तोव्रां सोर्ध्वावमेदकः ।

नयन वायवा योत्र मतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १५ ॥
 रक्तपित्तानिलादुष्टा शखदेशे विमूर्च्छिता ।
 तीव्ररुग्दाहराग हि शीथ कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १६ ॥
 सशिरो विषवहेगी निरुध्याश गल तथा ।
 त्रिरात्राज्जीवित इन्ति शखको नामत परम ।
 त्र्यहाज्जीवतिभैषज्य प्रत्याख्यायाऽस्य कारयेत् ॥ १७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

वातिके शिरसोरोगे स्नेहस्वेदान् सनावनान् ।
 पानाहारोपनाहास्तु कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १८ ॥
 पिण्डोपनाहस्वेदश्च घन्वमासक्तो हित ।
 वातघ्नदशमूलादि सिद्धक्षीरण सेचनम् ॥ १९ ॥
 धूमं चास्य यथा कालं योजयेत् स्नेहिक भिषक् ॥ २० ॥
 पानाभ्यञ्जननस्येषु वस्तिकर्मणि सेचने ।
 विदध्याच्चैवृत तैलं बलातैलमथापि वा ॥ २१ ॥
 मुद्गान् माषान् कुलित्याश्च खादेच्च निश्चिकेबलान् ।
 कटुकोष्णान् सप्तर्षिष्कां नुष्णं वापि पिबेत्पय ॥ २२ ॥
 पिबेद्वा पयसा तैलं तत्कालं चाति मानव ।
 पञ्चमूलोऽथ चोरो नस्य दद्याच्छिरो गदे ॥ २३ ॥
 कुष्ठमैरुष्टमूलञ्च लेपात्काञ्चिकप्रेमितम् ।
 शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याश पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ २४ ॥
 देवदारुनत कुष्ठं नलदं विश्वभैषजम् ।
 लेपं काञ्चिकसपिष्टं स्त्रैलयुक्तं शिरोऽर्त्तिनुत् ॥ २५ ॥

वातकोपभयादत्र नोक्तं रक्तावसेचनम् ।

आशिरोव्यापनञ्चर्मं कृत्वाष्टांगुलमुच्छ्रितम् ।

तेनावेष्ट्यशिरोधस्ता आपकल्केन लेपयेत् ॥ २६ ॥

निखलस्योपविष्टस्य तैलै रूणैः प्रपूरयेत् ।

धारयेदारुजः शान्ते र्यामं यामार्द्धमेव वा ॥ २७ ॥

शिरोवस्तिजयत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम् ।

हनुमन्याच्चिकर्णात्ति मर्दितं मूर्ध्वकम्पनम् ॥ २८ ॥

तैलेनापूर्यमूर्ध्वानं पञ्चमात्राशतानि च ।

तिष्ठेत् श्लेष्मणिपित्तेऽष्टौ दशवाते शिरोगते ॥ २९ ॥

एष एव विधिः कार्यः तथा कर्णाक्षिपूरणे ।

विनाभोजनमेवैष शिरोवस्तिः प्रयुज्यते ॥ ३० ॥

घटिकाधिकयामैकं वृद्धवैद्योपदेशतः ।

प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्चाह मप्त एव च ॥ ३१ ॥

ततः स्नेहमपनोयकर्णतो वस्तिबन्धनं विमोच्य शिरःस्कन्द-

ग्रीवाष्टललाटान् सुखञ्च पाणिभ्यां मृद्नीयात् । ततः सुखोष्ण-

जलेन परिपिक्तगात्रः शालिपटिकादिभिर्जाङ्गलानूपरसैर्दाडिमा-

म्लैर्मात्रया भोजयेत् । इति शिरोवस्तिः ।

हेमन्तकाले शिशिरे वसन्ते सेव्यं हि मायूरमुग्रन्ति सर्पिः ।

उष्णो हि वर्ही विषभोजनश्च वर्षाशरदृग्रीष्मसुखेष्वपथ्यः ॥ ३२ ॥

दग्धमूलबलाराम्ना मधुकैस्त्रिफलैः सह ।

मयूरं पक्षपित्ताग्नं शक्त्यादास्यवर्जितम् ॥ ३३ ॥

जले पक्ताष्टतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत् ।

मधुरैः कार्पिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥ ३४ ॥

कर्णनासाक्षिजिह्वास्य गैलरोगविनाशनम् ।

मायूरमिति विख्यातं मूर्ध्वजलुगदापहम् ॥ ३५ ॥

दशमूलादिनातुल्यो मयूर इह गृह्यते ।

अन्येत्वाऽऽकृतिमानेन मयूरग्रहणं विदुः ॥ ३६ ॥

एषां जलद्वीणे पादावशेषः काथः-

कर्तव्यः मधुराणि च जीवनीयानि दशः ।

इति मयूरघृतम् ।

एतेनैव कपायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

चतुर्गुणेन पयसा कल्कैरेभिश्च कार्पिकैः ॥ ३७ ॥

समङ्गाचविकाभार्गो काश्मरोकुकुटाद्वयैः ।

आत्मगुप्तामहामेदा तालखर्जूरमस्तुकैः ॥ ३८ ॥

मृणालविश्वखर्जूर मधुकेच सजीवकैः ।

शतावरीविदारोक्षु बृहतीशारिवायुगेः ॥ ३९ ॥

मूर्वा खदंदा शार्दूल मृङ्गाटककशेरुकैः ।

स्थिरामलकरास्त्राभिः सूक्ष्मैर्लाशठिपोष्करैः ॥ ४० ॥

पुनर्नवातुगाचोरी काकोलोद्वयवासकैः ।

मधुकाक्षीटवाताम गुञ्जानाभिश्चकैरपि ॥ ४१ ॥

द्रव्यैरेतैर्यथा लाभं पूर्वकल्केन साधितम् ।

पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रयोजयेत् ॥ ४२ ॥

शिरोरोगेषु सर्वेषु कासे श्वासेऽतिदारुणे ।

मन्यादृष्टिग्रहे शोथे स्वरभेदे तथार्दिते ॥ ४३ ॥

योन्यसृक् शुक्रदोषेषु शस्तं बन्ध्यासुतप्रदम् ।

महामायूरमित्येतद् घृतमात्रेण पूजितम् ॥ ४४ ॥

इति महामायूरघृतम् ।

बलाविल्वगृते क्षीरे घृते मण्डं विपाचयेत् ।

तस्य शक्तिं प्रकुक्षं वा नस्यं शीर्षेणतेऽनिले ॥ ४५ ॥

इति बलादिघृतमण्डः । इति वातशिरोरोगः ।

पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्धं सम्यग्विरेचयेत् ।
 मृद्वीकात्रिफलेक्षूणां रसैः क्षीरैर्घृतैरपि ॥ ४६ ॥
 शर्कराक्षीरसलिलैः शिरस्य परिपेचयेत् ।
 सर्पिषः शतधौतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥ ४७ ॥
 निमज्जनञ्च शिरसः शीतले शस्यते मुहुः ॥ ४८ ॥
 कमलोत्पलपद्मानां शीतानां चन्दनाम्बुभिः ।
 स्पर्शः स्निग्धश्च पवनः सेव्योदाहार्तिनाशनः ॥ ४९ ॥
 चन्दनोशीरयथ्याह्व बलाव्याघ्रनखोत्पलैः ।
 क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्वाच्छीतैर्वा परिपेचनम् ॥ ५० ॥
 मृणालविसृजालूक चन्दनोत्पलकेशरैः ।
 स्निग्धैः शीतैः शिरोदिह्या तद्वदामलकोत्पलैः ॥ ५१ ॥
 यथ्याह्वचन्दनानन्ता क्षीरमिश्रं हितं घृतम् ।
 नावनं शर्कराद्राद्या मधुकैद्यापि पित्तजे ॥ ५२ ॥
 त्वक्पत्रशर्करापिष्टा नावनं तडुलांबुना ।
 क्षीरसर्पिर्हितं नस्यं जाङ्गला वा शुभारसाः ॥ ५३ ॥
 पद्मचन्दनकर्पूरं नागरं नीलमुत्पलम् ।
 प्रदेहः सघृतः कार्यः शिरःशूलहरो नृणाम् ॥ ५४ ॥
 इति पित्तशिरोरोगचिकित्सा ।
 रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम् ।
 शीतोष्णयोश्च विन्यासो दिशेपाद्रक्तमोक्षणम् ॥ ५५ ॥
 इति रक्तशिरोरोगचिकित्सा ।
 कफजे लेपनं स्नेहो रूक्षोष्णैः पाचनात्मकैः ।
 तीक्ष्णवपीडाधूमाश्च तीक्ष्णाश्च कवला हिताः ॥ ५६ ॥
 भुञ्जीतकटुतीक्ष्णोष्णै र्यूपैस्त्रिदोषसमृत्तैः ।
 पुराणयवगोधूमा ऋष्यमूलकश्चयुतान् ॥ ५७ ॥

अच्छञ्च पाययेत्सर्पिः पुराणं स्वेदयेत्ततः ।
 मधूकसारणं शिरः स्विन्नञ्चास्य विरेचयेत् ॥ ५८ ॥
 हरेणुनतशैलेय मुस्तैलागुरुदारुभिः ।
 रास्नास्थौषेयनलदै रूचोष्णैर्लेपयेच्छिरः ॥ ५९ ॥
 सरलागुरुशार्ङ्गं देवकाष्टैः सरोहिदैः ।
 चीरपिष्टैः मलवणैः सुखोष्णैर्लेपयेच्छिरः ॥ ६० ॥
 कृष्णाब्दशुण्ठीमधुका शताह्नोत्पलपावकैः ।
 जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शूलनिवारणः ॥ ६१ ॥
 यवपठिकयोद्यान्नं व्योषं चारसमन्वितम् ।
 पटोलमुद्गकौलित्यै र्मात्रावद्भोजयेद्रसैः ॥ ६२ ॥

—०—

उभे हरिद्रे पिप्पल्यः सरलं देवदारु च ।
 विडङ्गं चित्रको विल्वं रोहिण्यस्य च पल्लवाः ॥ ६३ ॥
 गन्धं सौवर्चलं द्राक्षा मञ्जिष्टामधुकं बला ।
 वेतसस्य च मूलानि पद्मकोशीरचन्दनम् ॥ ६४ ॥
 एभिर्विल्वप्रमाथैस्तु तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
 द्विगुणञ्च पयो दद्यात् मिद्वं तन्नस्यतो जयेत् ॥ ६५ ॥
 क्षेप्सज सन्निपातञ्च शीर्षरोगं नियच्छति ।
 उपजिह्विका गण्डमालां कण्ठशालूकमर्वुदम् ॥ ६६ ॥
 विदारिका मांसपाकं मुखशोर्षगलग्रहम् ।
 दन्तचालं हनोःकम्पं तैलमेतन्नियच्छति ॥ ६७ ॥
 इति हरिद्राद्य तैलम् । इति कफशिरोरोगचिकित्सा ।
 सन्निपातं भवे कार्थ्या सन्निपातहरोक्रिया ।
 पुराणसर्पिषः पानं विशेषेणादिशान्तिं हि ॥ ६८ ॥

श्यामानागरमिश्रेण श्वेतस्यन्देन तत्क्षणात् ।
 नाशयन्ति त्रिदोषोत्था शिरोऽर्त्तिः संप्रलेपनान् ॥ ६८ ॥
 त्रिकटुकपुष्कररजनी रास्त्रासुरदारुतुरगगन्धानाम् ।
 क्वाथः शिरोऽर्त्तिजालं नाशयतीति निवारयति ॥ ७० ॥
 नागरकल्कविमिश्रं क्षीर नखेन योजितं पुंसाम् ।
 नानादोषोद्भूतां शिरोरुजां हन्ति तीव्रतराम् ॥ ७१ ॥
 सत्तुन्नाः शर्कराक्षंशा दाडिमोकलिकाः शुभाः ।
 नश्यन्ति योजिताः सद्यः शिरःशूलझराः पराः ॥ ७२ ॥
 करञ्जगियुबीजानि पत्रकं शर्करावचा ।
 सर्वेषां शीर्षरोगाणां मितच्छीपविरेचनम् ॥ ७३ ॥
 नावनं सगुडं विश्वं पिप्पली वा ससैन्धवम् ।
 भुजस्तभादिरोगीषु सर्वमूर्धगदेषु च ॥ ७४ ॥

—०—

पट्टमधुकविङ्गैः समृद्धराजनागरैर्दृतं सिद्धम् ।
 पङ्क्तिन्दुनस्यदाना देतच्छीर्षामयं हन्यात् ॥ ७५ ॥
 पततां शिरोरुहाणां दन्तानां भ्रंशतां दृढीकरणम् ।
 नेत्रसुपर्णप्रतिमं करोति वै दृढं बलञ्चापि ॥ ७६ ॥

इति पङ्क्तिन्दुष्टम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताङ्गा जीवन्तीरास्त्रा सह सैन्धवञ्च ।
 भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिकाचं विश्वौषधं क्षुण्णतिलस्य तैलम् ॥ ७७ ॥
 अजापयस्तैलविमिश्रितञ्च चतुर्गुणं भृङ्गरसे विपक्षम् ।
 पङ्क्तिन्दवो नासिकया विधेयाः सर्वाणि हन्युः शिरसी विकारान् ७८
 च्युतांश्च केशांश्चलितांश्च दन्तान् निर्वन्धमूलान् सुदृढी करोति ।
 सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चतुर्गुणं बलञ्चाप्यधिकं करोति ॥ ७९ ॥

इति पङ्क्तिन्दुतैलम् ।

शताद्वैरुण्डमूलोग्राचक्रव्याघ्रीफलैः शृतम् ।

तैलं नस्यान्मरुच्छेऽतिमिरोर्ध्वगदापहम् ॥ ८० ॥

इति शताह्वातैलम् ।

जीवकर्पभकौ द्राक्षा सितायटीवलोत्पलैः ।

तैलं नस्यं पथः पक्वं वातपित्तशिरोगदे ॥ ८१ ॥

इति जीवकाद्यं तैलम् ।

बलाजीवन्तिनिर्यासैः पयोभिर्यमकं पचेत् ।

जीवनीयैश्च नस्यैश्च सर्वज्वरूर्ध्वरोगजित् ॥ ८२ ॥

इति बलाद्यं तैलम् ।

क्षयजे क्षयमासाद्य कर्तव्यो वृंहणो विधिः ।

पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ॥

क्षयकासापहं चात्र सर्पिः पथ्यतमं सदा ॥ ८३ ॥

कृमिजे व्योपनक्ताह्वा शिशुबीजैश्च नावनम् ।

अजामूत्रयुतं नस्यं कर्तव्यं कृमिजित्परम् ॥ ८४ ॥

शोणितं नस्ततो दद्यात्तेन मूर्च्छन्ति जन्तवः ।

मत्ताः शोणितगन्धेन समायान्ति यतस्ततः ॥ ८५ ॥

सुतीक्ष्णधूमनस्याभ्यां कुर्यान्निर्हरणं भृशम् ।

पूतिमांसकृतान् धृमान् कृमिघ्नांश्च प्रयोजयेत् ॥

भोजनानि कृमिघ्नानि पानानि विविधानि च ॥ ८६ ॥

ऋस्वशिशुकवोजैर्वा कांस्थनीलीसमायुतैः ।

कृमिघ्नै रवपीडैश्च मूत्रपिष्टैः समाचरेत् ॥ ८७ ॥

विडङ्गस्वर्जिकादन्ती हिङ्गुगोमूचसंयुतम् ।

विपक्वं सार्पपं तैलं कृमिघ्नं नस्यसुत्तमम् ॥ ८८ ॥

इति विडङ्गतैलम् ।

अपामार्गफलं व्योष निशाचारकरामटैः ।

सविडङ्गं शृतं मूत्रे तैलं नम्यं कृमिं जयेत् ॥ ८८ ॥

इत्यपामार्गतैलम् ।

सूर्यावर्ते विधातव्यं नस्यकर्मादि भेषजम् ।

पाययेत्सगुडं सर्पिं घृतपूरांश्च भक्षयेत् ॥ ८९ ॥

सूर्यावर्ते शिरावेधो नावनं क्षीरसर्पिषा ।

हितः क्षीरघृताभ्यासः स्नाभ्याश्चैव विरेचनम् ॥ ९० ॥

क्षीरपिष्टैस्त्रिजैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ ९१ ॥

महौषधस्य स्वरसं वचापिप्पलिभिर्युतम् ।

अवपीड्य प्रयोक्तव्यं सूर्यावर्तविभेदनम् ॥ ९२ ॥

भृङ्गराजरसशङ्खागक्षीरतुल्योऽर्कतापितः ।

सूर्यावर्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोजितः ॥ ९३ ॥

जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम् ।

तेनास्थं शम्यते व्याधिः सूर्यावर्तं सुदारणः ॥ ९४ ॥

मयूरान् कुक्कुटान् छागान् क्षीरेणैव विपाचयेत् ।

तत्क्षीरात्समुद्धृतं नवनीतमथोद्धरेत् ॥ ९५ ॥

तत्क्षीरे षड्गुणे साध्यं जीवनीयोपधैः सह ।

तस्य नस्यं प्रदातव्यं सूर्यावर्तं विनाशनम् ॥ ९६ ॥

कृतमालपद्मवरसैः खरिमञ्जरीमूलकल्कनवनीतम् ।

नस्येन जयति नियतं सूर्यावर्तं सुदारुणं पुंसाम् ॥ ९७ ॥

अर्धावभेदके पूर्वं स्नेहस्वेदो हि योजितम् ।

विरेकः कायशुद्धिश्च धूमः स्निग्धीष्णभोजनम् ॥ ९८ ॥

तिलकल्कारसं तैलं सक्षीद्रलवणान्वितम् ।

तैलस्य लेपनं शीर्षं मर्द्धमेदं व्यपीडयति ॥ ९९ ॥

विडङ्गानि तिलान् कण्ठान् समं कृत्वा तु पेपयेत् ।

नस्यकर्माणि दातव्य सर्वभेदं व्यपोहति ॥ १०१ ॥

शालिपर्णश्रसा पिष्टा नस्यमर्ध्वविभेदजित् ।

चक्रमर्दकबीजैर्वा लेपः काञ्चित्कपेपितः ॥ १०२ ॥

यद्यस्मिन्ते शिरसिशूलमतोवगाढं सूर्योदये समसितञ्च पयपिबत्वम् ।

नासाफुटेन परमार्थमचिन्त्यशक्तिं दृष्ट्वाऽऽमयेतदनुभूतफलं सदैव ॥ १०३ ॥

शारिवोत्पलयद्वाह कुष्टैर्लेपोऽम्बुसंयुतैः ।

घृतपूराथ सेव्या वा सूर्यावर्तार्धभेदयोः ॥ १०४ ॥

दशमूलीकपायन्तु सर्पिः सैन्धवमंयुतम् ।

नस्यमर्ध्वविभेदघ्नं सूर्यावर्तशिरोर्त्तिनुत् ॥ १०५ ॥

भृष्टाज्ये कुङ्कुमं किञ्चित् पिहितं सितया समम् ।

पिष्टं कृगल्या क्षीरेण भुक्तं पित्तविनाशकम् ॥

एतदर्ध्वावभेदघ्नं सूर्यावर्तं शिरोर्त्तिनुत् ॥ १०६ ॥

अणामार्गस्य बीजानि विश्वं सक्षौद्रशर्करम् ।

नस्यं प्रयोजयेन्नित्यं भूर्यावर्तार्धभेदयोः ॥ १०७ ॥

एष एव प्रयोक्तव्यः शिरोरोगे कफात्मके ॥ १०८ ॥

अनन्तवाते कर्त्तव्यः सूर्यावर्त्तेरितो विधिः ।

शिराव्यधश्च कर्त्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ १०९ ॥

आहारस्य विधातव्यो वातपित्तविनाशनः ।

मधुमिश्रकसंघाव घृतपूरैश्च भोजनैः ॥ ११० ॥

सशर्करं ककुममाज्यभृष्टं नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे ।

भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोर्विशूले सूर्योदये शङ्खकसार्धभेदे ॥ १११ ॥

शिरोपमूलकफलैरवपोडञ्च योजयेत् ।

अवपोडो हितो वा स्या इचापिप्यन्निभिः कृतः ॥ ११२ ॥

पीत्वा शशसुण्डरस मरिचैरवचूर्णितं ममभ्यस्तम् ।

संताड भक्तादौ सूर्यावर्त्तार्धभेदको हन्यात् ॥ ११३ ॥

धात्राक्षपथ्या सनिशागुडूचो भूनिम्बनिम्बैः कथितः पङ्कजः ।

भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोर्ध्वशूले सूर्योदये शङ्खकमर्द्धभेदे ॥ ११४ ॥

नक्ताभ्यकाचे पटले सशुके पाकेऽशुपाते तिमिरेऽक्षिरोगे ।

पद्मप्रकोपे विनिहन्ति चैष सद्यो गदं वायुरिवाभ्रहृन्दम् ॥ ११५ ॥

शर्करा कुङ्कुमं द्राक्षा चतुर्थांशेन निक्षिपेत् ।

नवन्नेते ततस्तेन कृत्वैक्यं नस्यमाचरेत् ॥ ११६ ॥

नस्यमेतत्प्रशंसन्ति सूर्यावर्त्तार्द्धभेदके ।

शिरोरोगे परं वापि वातपित्त समुद्भवे ॥ ११७ ॥

सूर्यावर्त्तहरः कृत्स्नो विधिरप्यत्र शम्यते ॥ ११८ ॥

जीवकर्पभकौ द्राक्षा मधुकं मधुकं बला ।

नीलोत्पलं चन्दनञ्च विदारिशर्करा तथा ॥ ११९ ॥

तैलप्रस्यं पचेदेभिः शनैः पयसि पङ्गुणे ।

जाङ्गलस्य तु मांसस्य तुलार्द्धस्य रसेन तु ॥ १२० ॥

सिद्धमेतद्भवेन्नस्य तैलमर्द्धावभेदकम् ।

वाधिर्यं कर्णशूलञ्च तिमिरं गलशुण्डिकाम् ॥ १२१ ॥

वातिकं पैत्तिकञ्चैव शोर्ध्वरोगं नियच्छति ।

दन्तचालं शिरश्चाल मर्दितञ्चापकर्षति ॥ १२२ ॥

इति जीवकाद्यं तैलम् ।

सूर्यावर्त्तं हितं यत्तच्छङ्खके स्नेदवर्जितम् ।

क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्ये पाने च शङ्खके ॥ १२३ ॥

शतायुरीं कृष्णतिला मधुकं नीलमुत्पलम् ।

दुर्वापुनर्नवां वापि लेत्रे साध्ववचापयेत् ॥ १२४ ॥

भद्रश्रियं पुण्डरीकं मधुकं नीलमुत्पलम् ।

पद्मकं चेतसं दूर्वा लामज्जकमथापि वा ॥ १२५ ॥

दार्दीहरिद्रामञ्जिष्ठा फेनिलोमीरमेव च ।

एतदालेपनं कुर्याच्छङ्खकस्य प्रशान्तये ॥ १२६ ॥
 सूर्यावर्त्तापहं चास्त्रि नवपीडं प्रयोजयेत् ॥ १२७ ॥
 क्रौञ्चकादवहंसानां शरार्थाः कच्छपस्य च ।
 रसैः संहतस्याथ तस्य शङ्खस्य सन्धिजाः ॥ १२८ ॥
 शङ्खकस्य शिरां प्राप्नो विध्यै देव न ताडयेत् ।
 सर्पिषाक्षीरपानन्तु नस्येनापि मुखेन वा ॥ १२९ ॥
 एष एव विधिः श्रेष्ठः शङ्खके शर्करान्वितः ।
 शर्कराक्षीरसलिलैः शिरस्य परिषेचयेत् ॥ १३० ॥
 वातीरूक्षादिभिः क्रुद्धः शिरकम्पमुदीरयेत् ॥ १३१ ॥
 तत्राश्रुताबलाराक्षा महास्त्रे हातिगन्धकैः ।
 स्नेहस्नेदोऽतिवातघ्नं शस्तं नस्यच्च तर्पणम् ॥ १३२ ॥
 दग्धमक्ष्यं विनिष्पीड्य निर्द्वेषीकृत्ययत्नतः ।
 कण्डुरामूलनिर्यासो माषयूपावलोडितम् ॥ १३३ ॥
 भक्षित शमयेच्चूर्णं शिरःकम्पमसंशयम् ।
 नस्यकर्मं च कुर्वीत शिरोरोगेषु शास्त्रवित् ॥ १३४ ॥
 कम्पदाहार्दिते कुर्याद्वातव्याधिक्रियाविधिः ॥ १३५ ॥
 इति श्रीवङ्गसेने शिरोरोगनिदानचिकित्साधिकारः
 समाप्तः ॥ ६८ ॥

अथ स्त्रोरोगाधिकारमाह ।

अत्र प्रथमं नष्टकुसुमस्य प्रतिक्रियामाह ।

गृहचिरस्थितमङ्गल चूतदलैः संस्कृतं जलं पेयम् ।
 मरिचासनाग्रमदिरा पानस्तारसलिलस्य ॥ १ ॥

इच्छाकुबोजदन्तो चपलागुडमदनकिण्वयावशूकैः ।
 सस्रुक् क्षीरैर्वर्त्ति र्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥ २ ॥
 सलिलनिपतितं कुसुमं रक्तजयाया गुह्यं वुमपोतम् ।
 जनयति कुसुमं नार्थ्या भृष्टं ज्योतिष्मतोपत्रम् ॥ ३ ॥
 पङ्कजद्वयाणां मूलं पिष्टकमशितं तथा सुराबीजम् ।
 हिमसलिलेन निपीतं भवतीह कुसुमाय नारीण्याम् ॥ ४ ॥
 इति कुसुमजननविधिः ।

—०—

अथ स्त्रीरोगनिदानमाह ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णा हर्मप्रवापादतिमैथुनाच्च ।
 यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ॥ ५ ॥
 अमृग्दरं भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं भवेदनम् ॥ ६ ॥
 तस्यातिवृद्धौ दीर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छामदक्षृपा ।
 दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रारोगाश्च वातजाः ॥ ७ ॥
 तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुःप्रकारं प्रदरं वदन्ति ।
 आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोय प्रतिमं कफात्तु ॥ ८ ॥
 सपोतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्त्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ।
 रुच्यारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातार्त्तिं वातात्पिशितोटकाभम् ॥ ९ ॥
 सचीद्रसर्पिः हरितालवर्णं मज्जः प्रकाशं कुण्ठं त्रिदोषम् ।
 तं चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा
 न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्सां ॥ १० ॥
 शङ्खत् स्रवन्तीमासावं वृष्णादाहज्वरान्विताम् ।
 क्षीणरक्ताः दुर्बलाश्च तामसाध्यां विनिर्दिशेत् ॥ ११ ॥
 मासान्निःपिच्छदाहार्त्तिः पञ्चरात्रानुबन्धि च ।

नेवातिबहुलात्यल्प मार्त्तव शुद्धमादिशेत् ॥ १२ ॥

शशासृक् प्रतिम यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ।

तदार्तव प्रशसन्ति यद्वासो न विरञ्चयेत् ॥ १३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

असृग्दर प्राणहर स्त्रीणा सर्वत्र कीर्तित ।

तस्मात्तस्य प्रशमने पर यत्न समाचरेत् ॥ १४ ॥

नारीणा प्रदरार्ताना योगान् वक्ष्याम्यत परम् ।

योनिशूलापहान् सिद्धान् गर्भसंस्थापनान् परान् ॥ १५ ॥

सत्रपु पूर्व वमन प्रशस्त रसेक्षुद्राक्षोदकतर्पणैश्च ।

सपिप्पलोभिर्मधुमण्डकल्कैर्मुस्ता यवानाञ्च गुडाम्बुमिश्रैः ॥ १६ ॥

पद्मकोत्पलबीजानि त्रायुसानि शतावरी ।

विदारो चेक्षुमूलञ्च पिप्पला धोतष्टतायुतम् ॥

योन्या शिरसिगात्रे च प्रदेहोऽसृग्दरापह ॥ १७ ॥

मुद्गपर्णीविपक्वेन तैलेन पिचुधारणम् ।

कर्तव्यं रक्तनाशाय मार्दवाय सुखाय च ॥ १८ ॥

दध्नासीवर्चलाजाजी मधुक नीलमुत्पलम् ।

पिवेत् क्षौद्रयुत नारी वातासृग्दरपीडिता ॥ १९ ॥

तिलचूर्णं दधिघृत फाणित शौकरी वसाम् ।

क्षौद्रेण सयुत पेय वातासृग्दरनाशनम् ॥ २० ॥

वाराहस्य रसो मेध्य सकीलित्यो निशाधिक ।

वातासृग्दरशान्त्यर्थं पिवेदध्ना वराहना ॥ २१ ॥

पित्तासृग्दरशान्त्यर्थं पिवेदिक्षुरसेन वा ॥ २२ ॥

‘

इति वातासृग्दर ।

पिवेदेण्येयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् ।
 वासकस्त्ररसं पैत्ते गुडुच्चारसमेव वा ॥ २३ ॥
 चन्दनोशीरपत्तङ्ग मधुकं नीलमुत्पलम् ।
 त्रपुसैर्वाखोजानि धातकीकदलीफल्गम् ॥ २४ ॥
 कोललाक्षावटारोह पद्मकं पद्मकेशरम् ।
 एतान् कल्कान् मधुयुतान् पाययेत्तंडुलांबुना ॥ २५ ॥
 अरहात्रयमयेदेतन् योषितां पैत्तिकं रजः ॥ २६ ॥

चन्दनादिकल्कम् ।

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं यष्ट्याश्च नागरं दधि ।
 पयस्योत्पलशालूक विसकालीयज रजः ॥
 पयसाशर्कराक्षौद्र युतेनासृग्दरे पिवेत् ॥ २७ ॥
 कपित्थवेणुपत्रञ्च सममेकत्र पेययेत् ।
 मधुना सह दातव्य तीव्रप्रदरनाशनम् ॥ २८ ॥
 अशोकबल्कलकाथ शृतं दुग्ध सुशीतलम् ।
 यथा बल पिवेत्प्रातः स्त्रीत्राऽसृग्दरनाशनम् ॥ २९ ॥
 क्षौद्रयुक्तं फलरसं काकीदुम्बरजं पिवेत् ।
 असृग्दरविनाशाय सशर्करापयोऽन्नभुक् ॥ ३० ॥

इति पित्तासृग्दरः ।

मधुकं त्रिफलालोघ्र सुष्टं सौराष्ट्रिकां मधु ।
 मद्यैर्निम्बगुडूच्यो तु कफजेऽसृग्दरे पिवेत् ॥ ३१ ॥
 रोहितकान्मूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरे पिवेत् ।
 जलेनामलकीबीज कल्कं वा ससितामधु ॥
 पिवेद्दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ३२ ॥
 काकजङ्गामूलं वा मलं कार्पासमेव वा ।

पाण्डुप्रदरनाशाय पिवेत्तडुलवारिणा ॥ ३३ ॥

तक्काशनरता सम्यक् सपिवेन्नागकेशरम् ।

व्रज तक्के ण सपीद्य खेतप्रदरशान्तये ॥ ३४ ॥

फलचिकं दारुवचा सवासा लाजा सदूर्वाकलशीसगङ्गा ।

चौद्रान्वित क्वाथमिदं सुशीतं सर्वात्मके पेयमसृग्दरे हि ॥ ३५ ॥

दावीरसाञ्जनवृषाद्भकिरातविल्व

भक्ष्मातकैरवकृतो मधुना कपायः ।

पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं मशूल

पीतासितारुणविलोहितनीलशङ्खम् ॥ ३६ ॥

लिप्ते ललाटपट्टे बलतरखञ्जनेत्रकल्मेन ।

प्रदरं शाम्यति नित्यं विचित्रिताद्रव्यशक्तिरियम् ॥ ३७ ॥

आखो पुरोषः पयसा निपेय्यं बद्धैर्बलादेकं महर्द्धाहं वा ।

स्त्रियो महाशोणितवेगनद्या चपेन पारं परमाप्नुवन्ति ॥ ३८ ॥

मधुना तार्क्ष्यं सर्वुक्तं मूलं स्यात्तण्डुलीयकम् ।

तडुलाम्बुयुतं पानात् सर्वप्रदरनाशनम् ॥ ३९ ॥

कुशमूलं समाहृत्य पाययेत्तडुलावुना ।

एतत्पीत्वा व्रजं नास्ती प्रदरात्परिमुच्यते ॥ ४० ॥

प्रदरं शमयति नार्थं क्षयितं सलिलेन वा पयसा ।

मूलं वास्तुकाजयो पीतं दिवसत्रयेणैव ॥ ४१ ॥

भूम्यामलकीबीजन्तु पीतं तण्डुलवारिणा ।

दिनद्वयत्रयेणैव स्त्रीरोगं नाशयेद् ध्रुवम् ।

मैद्वगं रुधिरस्त्राव रक्तातिसारमुख्यणम् ॥ ४२ ॥

असितोत्पलशालूकं निस्तुपारक्तशालयः ।

यवानोगैरिकयासा समभागेन चूर्णिता ॥

चौद्रे ण तांश्च संयोज्य लिङ्गाभदरपीडिता ॥ ४३ ॥

तण्डुलीयकमूलञ्च सक्षौद्रं तण्डुलांबुना ।
 रसाञ्जनञ्च लाक्षाञ्च छागिन पयसा पिबेत् ॥ ४४ ॥
 प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन समधुनापीतम् ।
 कुशवाय्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम् ॥ ४५ ॥
 दग्धामूपकविष्टान्तु लोहिते प्रदरे पिबेत् ॥ ४६ ॥
 शर्करायाः पलं पिष्ट्वा मधुकस्य चतुष्पलम् ।
 तण्डुलोदकसंयुक्तं लोहितप्रदरे पिबेत् ॥ ४७ ॥
 काश्मर्यवटशृङ्गानि पृथग्दन्त्यास्तथैव च ।
 घृतं सिद्धं भवेच्छ्रेष्ठं शोणितप्रदरे पिबेत् ॥ ४८ ॥

इति काश्मर्यादिघृतं त्रयम् ।

तरुस्थान्नितसेविण्या स्तदल्पोऽपद्रवं भिषक् ।
 रक्तपित्तविधानेन यथा वत्समुपाचरेत् ॥ ४९ ॥
 हितद्यौच विमेषेण लेहीयः कुटजाष्टकः ॥ ५० ॥
 पाठाजम्बाम्रायोर्मध्यं शिलाभेदं रसाञ्जनम् ।
 अम्बष्टकोमोचरसः समङ्गापद्मकिसरम् ॥ ५१ ॥
 वाङ्मोकातिविपासुस्तं बिल्वं लोध्रं सगैरिकम् ।
 कट्फलं मरिचं शुण्ठीं मृद्दीकारक्तचन्दनम् ॥ ५२ ॥
 कटुङ्गवत्सकानन्ता धातकीमधुकार्जुनम् ।
 पुष्पेणोदृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ५३ ॥
 तानि क्षौद्रेण सयुज्य पाययेत्तंडुलांबुना ।
 असृग्दरातिसारेषु रक्तं यञ्जीपवेश्यते ॥ ५४ ॥
 दोषागन्तु कृताये च बालानां तांश्च नाशयेत् ।
 योनिदोषं रजोदोषं श्वेतनीलं सपीतकम् ॥ ५५ ॥
 स्त्रीणां श्यांवारुणा यच्च तत् प्रसङ्गनिवर्त्तयेत् ।

चूर्णं पुष्पानुगं नान हितमात्रेय पूजितम् ॥ ५६ ॥
इति पुष्पानुगं चूर्णम् ।

अशोकवल्कलप्रस्थं तोयादकविपाचितम् ।
चंतुर्भागावशिष्टेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५७ ॥
तंडुलांबुत्वजाचीरं घृततुल्यं प्रदापयेत् ।
जीवकस्य रसयापि केशराजोद्भवस्तथा ॥
जीवनीयैः प्रियालैश्च परुषैः सरसाञ्जनैः ॥ ५८ ॥
यथ्याह्वाशोकमूलञ्च मृद्दीका च शतावरी ।
तंडुलीयकमूलञ्च कल्कैरेभिः पलार्द्धिकैः ॥ ५९ ॥
शर्करायाः पलान्यष्टौ गर्भं दत्वा सुचूर्णितम् ।
पुष्पयोगेन तत्क्षर्पिः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६० ॥
पीतमेतदघृतं हन्या त्वर्षदोषसमुद्भवम् ।
खेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरं हन्ति दुस्तरम् ॥ ६१ ॥
कुंक्षिशूलं कटिशूलं योनिशूलञ्च सर्वगम् ।
मन्दाग्निमरुचिं पांडुं क्लृप्तं श्वासकासकम् ॥ ६२ ॥
आयुः पुष्टिकारं धन्यं बलवर्धप्रसादनम् ।
देयमेतद्वरं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ ६३ ॥
इत्यशोकघृतम् ।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमारक्तशालयः ।
मुद्गपर्णीपयस्या च काश्मरीमधुयष्टिका ॥ ६४ ॥
बलातिबलयोर्मूलं सुत्पलं तालमस्तुकम् ।
विदारिशतमूली च शालपर्णी सजीवका ॥ ६५ ॥

१ फलं त्रपुसबोजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम् ।

१ फलमत्र त्रिफला ।

एयामर्क्षयस्तान् भागान् गवां चीरं चतुर्गुणम् ॥ ६६ ॥
 पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हृत्सीमके ॥ ६७ ॥
 बहुरूपश्च यत्पित्तं कामलावातशोणिते ।
 अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ ६८ ॥
 तरूणी चाख्यपुष्पा या या च गर्भे न विन्दति ।
 अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् ।
 शीतकल्याणकं नाम परसुक्तं रसायनम् ॥ ६९ ॥

इति शीतकल्याणकघृतम् ।

शतावरीरसप्रस्थं क्षौदयित्वा च पीडयेत् ।
 घृतप्रस्थसमायुक्तं चीरं द्विगुणितं तथा ॥ ७० ॥
 अन्तः कल्कानिम्मन्दया त्वापि कान् श्लक्ष्णपेपितान् ।
 जिवनीयानि यान्यष्टौ यष्टौ चन्दनपद्मके ॥ ७१ ॥
 खदंष्ट्रा चात्मगुप्ता च बलानागबला तथा ।
 शालपर्णीषृष्टपर्णी विदारिशारिवाहयम् ॥ ७२ ॥
 शर्करा च समा देया काश्मर्याश्च फलानि च ।
 सम्यक् सिद्धन्तु विज्ञाय तदेतदवतारयेत् ॥ ७३ ॥
 रक्तपित्तविकारेषु वातपित्तकृतेषु च ।
 वातरक्तं चयं श्वासं हिक्कां कासश्च दुस्तरम् ॥ ७४ ॥
 अंगदाहं शिरोदाहं रक्तपित्तसमुद्भवम् ।
 असृग्दरं सर्वभूतं मूत्रकृच्छ्रश्च दारुणम् ॥
 एतान् रोगान् शमयति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ७५ ॥

इति शतावरीघृतम् ।

मुद्गमापस्य निर्यूहे रास्त्राचित्रकनागरैः ।

सिद्धं सपिण्यलोविश्वैः सर्पिः श्रेष्ठमसृग्दरे ॥ ७६ ॥

इति मुद्गहृतम् ।

शाल्मलीपुष्पनिर्यासः पृश्निपर्णस्तथैव च ।

काश्मर्यं चन्दनञ्चैषां कल्केन स्वरसेन च ॥ ७७ ॥

एभिः पचेद् दृढप्रस्थं भवतार्यं सुशीतलम् ।

पिवेत्सर्पिरिदं नारो सर्वप्रदरशान्तये ॥ ७८ ॥

इति शाल्मलीहृतम् ।

काश्मरीवदरानन्ता गडूचीमधुकैः शृतम् ।

आजेन पयसासिद्धं मेतदहृतमसृग्दरे ॥ ७९ ॥

इति काश्मरीहृतम् । इत्यसृग्दरनिदानचिकित्सा ।

—०—

स्त्रोणामतिप्रसंगाद्वा शोकाद्वापि श्रमादपि ।

अतिसारकरोगाद्वा गरदोषात्तथैव च ॥ ८० ॥

आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ।

तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थाना न्यूतमार्गं व्रजन्ति हि ॥ ८१ ॥

प्रसन्ना निर्मलाः शीता निर्गन्धा नीरुजाः सिताः ।

स्रवन्ति चातिमात्रन्ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥ ८२ ॥

वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखं क्वचित् ।

शिरसः शिथिलत्वञ्च मुखतालुकशोषणम् ॥

मूर्च्छां जृम्भा प्रलापञ्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः ॥ ८३ ॥

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च तृप्तिं न लभते सदा ।

सोमरोग इति त्रेयो देहे सोमचयात् स्त्रियाः ॥ ८४ ॥

शरीरधारणाच्चापि सोमद्रव्याभिशब्दितः ।

तस्मात्सोमचयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा ॥ ८५ ॥

—०—

अथ सोमरोगचिकित्सामाह ।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु ।
 शर्करा सहितं खादेत् सोमधारणमुत्तमम् ॥ ८६ ॥
 मापचूर्णं समधुकं विदारीं मधुशर्कराम् ।
 पयसा पाययेत्प्रातः स्वपां धारणमुत्तमम् ॥ ८७ ॥
 कदलीनां फलं पक्वं विदारीञ्च शतावरीम् ।
 स्त्रीरेण पाययेत्प्रातः स्वपां धारणमुत्तमम् ॥ ८८ ॥
 स एव सरुजः सोमो मूत्रेण स्रवते मुहुः ।
 तत्रैलापत्रचूर्णेन पाययेत्तर्क्षणीं सुराम् ॥ ८९ ॥

—०—

अथ सूत्रातिसारमाह ।

सोमलक्षणसंस्पृष्टा कालातिक्रान्तयोगतः ।
 साऽतिक्रान्तक्रमेणैव स्रवेन्मूत्रमभीक्षणशः ॥ ९० ॥
 इति स्त्रीणां सोमोपक्रमः ।

—०—

अथ स्त्रीणां विद्वेषमभिधास्ये सत्रिविधो विद्वेषः तद्यथा दैव-
 कृतः अदत्तपुरुषत्वयोगकृतः सपत्नीकृतश्चेति । तत्र प्रथमो
 विरुद्धनक्षत्रकृतपरिणयतादिदोषात् आदित एव जायते । द्विती-
 यश्च विदग्धपुरुषसंयोगात् । तृतीयस्त्रीपक्षकृत अनियत एव काले
 प्रजायते । तत्र प्रथमे विवाहकालक इति तद्धोमः कर्त्तव्यः । ततः
 प्रदोषे भक्तपुतलिकां कृत्वा गन्धधूपादिपूजितां वस्त्राहतजीव-
 न्तिका दीपसंहितां शक्तपुष्पमालार्चितां कुशचण्डिकां कोणेषु च
 चतुर्वर्ण्यज्यायुक्ताम् । तस्या दर्शनं पूजनञ्च कृत्वा विनयान्वितो

मन्त्रं जपेत्, ततः कुमारीं च पूजयेद्भोजयेच्च । ततः संपद्यते सुखं
ॐ हूं हूं वं वशीकरणं कुरुष्व स्वाहा । इति वशीकरणमन्त्रः ।

द्वितीये च लज्जालुमूलेन गजान्वितेन कर्पूरमिश्रितेन वेराद्वे
प्रलेपं कृत्वा प्रसिद्धनरनारीविभ्रमधूमधूपेन कृताङ्गधूपः । समा-
लम्बनादिकृतगृद्धारकावेशः । नारीं गृहसम्पत्त्यवदस्त्रियं चाटु-
वचनां विषयोचितां समाहितः पुरुषोऽनिच्छन्तामभिगच्छेत्
कुमारीणाञ्च भोजनमुत्तृजेत् । ततः संपद्यते शुभम् । तृतीये
प्रियंगुकमयूरशिखाश्वेतपुनर्नगामूलं पिष्ट्वा क्षामलपयसालोद्य
योनिं प्रक्षालयेत् । पिष्टसूकरमांसेन रचितां स्त्रीप्रमाणां पुत्त-
लिकां कृत्वा । गन्धादिना समालम्ब्य पूजयित्वा स्त्रियं निर्मथ-
यित्वा श्मशाने रात्रिप्रहरैकगते टापयेत् । कुमारीं च पूजयेत्
ततः संपद्यते शुभम् । ॐ घोराग्नौ प्रियजननि हूं स्वाहा । इत्यपि
वशीकरणमन्त्रः । इति नागार्जुनज्ञतौ योगमारि स्त्रीदोषचिकित्सा
परिच्छेदः ।

—०—

अथ निदानमाह ।

विद्यतिर्य्यापदो योने निर्दिष्टा रोगस्यहे ।

मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च ॥ ८१ ॥

जायन्ते बीजदोषाश्च देवाश्च शृणु ताः पृथक् ॥ ८२ ॥

सा षेनिलमुदावर्त्ता रजः क्षच्छे ष मुञ्चति ।

वन्ध्यां नष्टार्त्तवां विद्या द्विभृतां नित्यवेदनाम् ॥ ८३ ॥

परिभृतायां भवति ग्राम्यवर्मण रुग्णशम् ।

वातलाकृर्कशास्तृथा शूलनिस्तीदपीडिता ।

चतसृष्वपिचाद्यासु भयन्त्यनिलवेदनाः ॥ ८४ ॥

सदाह जीयते रक्तं यस्यां सा लोहितचया ।
 सवातमुद्गिरेद्वोज वामिनोरजसायुतम् ॥ ८५ ॥
 प्रस्रंसिनीससते तु क्षोभितादु प्रजायिनी ।
 स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नोरक्तमक्षयात् ॥ ८६ ॥
 अत्यन्तपित्तलायोनि दीहपाकव्वरान्विता ।
 चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ ८७ ॥
 अत्यानदा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति ।
 कर्णिन्या कर्णिकायोनी श्लेष्मासृग्भ्याश्च जायते ॥ ८८ ॥
 मैथुनाचरणात्पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते ।
 बहुशयातिचरणा तयोर्वीजं न विन्दति ॥ ८९ ॥
 श्लेष्मलापिच्छलायोनिः कडूयुक्तातिशीतला ।
 चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ ९० ॥
 अनातृत्वाऽस्तनीपण्डो खरस्पर्शा च मैथुने ।
 अतिकायगृहीताया स्तरुण्यास्त्वण्डिनी भवेत् ॥ ९० ॥
 विवृताऽतिमहायोनि सूचोवक्त्रा निसृष्टता ।
 सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥ ९० ॥
 चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ।
 पञ्चासाध्याभवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥ ९० ॥

—०—

अथ योनिरोगचिकित्सा ।

योनिव्यापस्तुभूयिष्ठं कर्तव्यं कर्मवातजित् ।
 स्नेहस्वेदनवस्थादि विशेषाद्वातजासु च ॥ ९० ॥
 स्निग्धस्त्रिधा तथा योनिं दुःस्थितां स्थापयेच्च ताम् ।
 मधुरौषधसंसिद्धान् विषयराशं योनिषु ॥ ९० ॥

निक्षिप्य धारयेच्चापि पिचुतेलं यथा बलम् ।
 योनिशूलरुजादौःस्थ्य शोफस्त्रावप्रशान्तये ॥ १०६ ॥
 कर्षिण्यां वर्तयो देया शोधनद्रव्यसंयुता ॥ १०७ ॥
 स्रंसनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्त्रिधां प्रशान्तयेत् ।
 विधायवेश्वरैश्च ततो बन्धं समाचरेत् ॥ १०८ ॥
 पाणिनानामयेज्जिह्वां संवृतां बर्हयेत् पुनः ।
 प्रवेशयेन्निःसृताच्च विच्छेतां परिवर्जयेत् ॥ १०९ ॥
 वचोपकुक्षिकाजानी कृष्णावृषकसैन्धवम् ।
 अजमोदां यवचारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ ११० ॥
 पिष्ट्वा प्रसन्नयालोढ्य खादेत्तद् घृतभर्जितम् ।
 योनिपाश्वात्तिष्ठद्रोग गुल्माग्नौ विनिवृत्तये ॥ १११ ॥
 सुखं नारोपिवेत्काले योनिशूलनिपोडिता ।
 रास्त्राश्वगन्धावृषकैः शृतं शूलहरं पयः ।
 गुडूचीविफलादन्तो काथैश्च परिपेचनम् ॥ ११२ ॥
 सुषवोभूलविलेपात् प्रविष्टयोनेस्तु भवति निष्सारणम् ।
 मूषकवसयाभ्यङ्गो निःसृतयोने. प्रवेशाय ॥ ११३ ॥
 गुडूचीविफलाभीरु शुष्कनासानिशाह्वयैः ।
 श्रीपर्णीशैर्यकद्राक्षा कासमर्दकविल्वकैः ॥ ११४ ॥
 परुषकान्वितैरक्ष समैः प्रस्थो घृतः शृतः ।
 योनिवातविकारघ्नो गर्भदः परमो भवेत् ॥ ११५ ॥
 इति गुडूच्यादिघृतम् ।
 तैलंप्रस्थं गवां मूत्रे क्षीरे द्विगुणिते पचेत् ।
 गुडूच्यादेस्तु कल्केन तद्युक्तञ्च भिगम्बरः ॥
 वातात्तीर्णां पिचुं दद्याद् योनौ संचारयेत्सदा ॥ ११६ ॥
 इति गुडूच्यादितैलम् ।

नतवात्तीकिनीकुष्ट सैन्धवामरदारुभिः ।

तैलप्रसाधितो धार्यः पिचुर्योनी रुजापहः ॥ ११७ ॥

इति नताद्य तैलम् ।

पित्तलामान्तु योनीनां सैकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ।

शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ ११८ ॥

वरीघृतं बलातैलं युञ्ज्यात्पित्तविकारनुत् ।

दोष ज्ञात्वाऽसृज योज्यं प्रदरघ्नं क्रियाक्रमम् ॥ ११९ ॥

काश्मरीकुटजकाथे सिद्धमुत्तरवस्तिना ।

रक्तयोन्यरजस्का याऽपुत्रातासां हितं घृतम् ॥ १२० ॥

योन्यां बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षौष्णमीषधम् ।

तैलं सिन्धुयवान्नञ्च यथारिष्टञ्च योजयेत् ॥ १२१ ॥

पिप्पल्याः मरिचैर्मौषैः शताङ्गाकुष्टसैन्धवैः ।

वर्त्तिस्तुल्याप्रदेशिन्या धार्यायोनिविशोधिनी ॥ १२२ ॥

हिस्त्राकल्कान्तु वातात्ता कोष्णमभ्यज्य धारयेत् ।

पञ्चवल्कस्य पित्तात्ता श्यामादीनां कफार्दिता ॥ १२३ ॥

स्तब्धायां कर्कशायाञ्च कुर्यान्मार्दवकारकम् ।

सन्निपातसमुत्थायो क्रम साधारणं हितम् ॥ १२४ ॥

एला सधातकीजम्बू समङ्गामोचसर्जकम् ।

दुर्गन्धे पिच्छले स्त्रिन्धे स्त्रग्भिते चूर्णमिथ्यते ॥ १२५ ॥

दुर्गन्धानां कपार्य स्या तैलं कल्क एव च ।

चूर्णे वा सर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणम् ॥ १२६ ॥

—१—

अथ गर्भप्रदयोगानाह ।

लक्ष्मणाचन्दनं लोध्रं सुशोभं पद्मकं शठी ।

हे हरिद्रे वचाकुटं पद्मकेशरमुत्पलम् ॥ १२७ ॥

शारिबे द्वे विडङ्गानि समुनः कुसुमानि च ।

मांसीदारु खदंष्ट्रा च रेणुकं चोत्पलं तथा ॥ १२८ ॥

मधुकं शतपुष्पा च मात्रैषां कार्पिका भवेत् ।

एभिर्वाजघृतप्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।

तत्कषाय दशगुणं स्नेहपाकविधि पचेत् ॥ १२९ ॥

गुणंस्तस्य प्रवक्ष्यामि घृतस्यास्य महात्मनः ।

गर्भिणीनाञ्च नारीणां पानाभ्यञ्जनभोजनैः ॥ १३० ॥

बालानां ग्रहजुष्टानां घृतमेतत्प्रशस्यते ।

बन्ध्यापुष्टिप्रदं पौष्ट्य मपुत्राणाञ्च पुत्रदम् ॥ १३१ ॥

श्रेष्ठ वा योनिरोगे स्या दष्टगृदरविनाशनम् ।

यन्मया निर्मितं क्षीत लक्ष्मणाद्य घृतं महत् ॥ १३२ ॥

इति लक्ष्मणाद्यं घृतम् ।

सुहृदरे द्वे त्रिफलां गुडूचीं सपुनर्नवाम् ।

शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्त्रां मेदां शतावरीम् ॥ १३३ ॥

कल्कीकृत्य घृतप्रस्थ पचेत् क्षीरचतुर्गुणम् ।

तस्मिन् प्रपिवेन्नारी योनिशूलनिपीडिता ॥ १३४ ॥

पीडिता चलिता योनिर्निःसृता विवृता च या ।

पित्तयोनिश्च विस्त्रस्ता पण्डयोनिश्च या स्मृता ॥ १३५ ॥

प्रपद्यन्ते तु ता स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासक्तम् ।

एतत् फलघृतं नाम योनिदीपहर परम् ॥ १३६ ॥

इति फलघृतम् ।

एवं योनिषु शङ्कासु गर्भं विन्दन्ति योषितः ।

अदुष्टे प्राकृते बीजे बीजोपक्रमणे सति ॥ १३७ ॥

‘बीजस्य भ्रवन् न स्यात् हृदिमूत्रश्च फेनिलम् ।

पीत्वा च लभते पुत्रं वीर्यवन्तमसंशयः ॥ १४८ ॥
 पुष्पोद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं पिष्टञ्च कन्यया ।
 ऋत्वंते ऋतदूग्धाभ्यां पीत्वा प्रोत्थवला सुतम् ॥ १५० ॥
 तिलतैलकुड्ममेकं वृषसलिलैर्मंयुतं यक्षम् ।
 ऋतुकालान्ते पीत्वा गर्भं विदधाति बन्ध्यापि ॥ १५१ ॥
 जीवकपुत्रकबीजं चीरेण पिवेत्सपत्रमूलञ्च ।
 दारकनष्टा वनिता जनयति दोर्वायुषं पुत्रम् ॥ १५२ ॥
 चीरेण श्वेतवृद्धतीमूलं नासिकया पिवेत् ।
 दक्षिण्यात्मजार्थं वा कन्यार्थं वामया तथा ॥ १५३ ॥
 पुष्पोद्धृतं लक्ष्मणाया शक्राङ्गायास्तु कन्यया ।
 पिष्टं मूलं हविर्दुग्धं पीतं मृतौ तु पुत्रदम् ॥ १५४ ॥
 न्यग्रोधशङ्खासनकं प्रबालचूर्णञ्च सवर्णवत्सायाः ।
 गोचीरं परिपीतं पुत्रं प्रकरोति पुष्पञ्च ॥ १५५ ॥
 रोमराजी भवेद्यस्या वामपार्श्वेति मूर्च्छिता ।
 कन्यां तस्या विजानीया हृदिषे च तथा सुतः ॥ १५६ ॥
 इति गर्भोत्पादनविधिः ।
 मुस्ताकुष्ठं हरिद्रे द्वे पिप्पलीकटुरोहिणी ।
 काकोलीचीरकाकोली विडङ्गं त्रिफलावचा ॥ १५७ ॥
 मेदारास्त्राश्वगन्धा च विशाला च प्रियंगुका ।
 द्वे शारिवे शताह्वा च दन्तीमधुकमुत्पलम् ॥ १५८ ॥
 अजमोदा महामेदा चन्दनं रक्तचन्दनम् ।
 क्षातीपुष्पन्तुगाचीरी शर्करार्हिङ्गुकट्फलम् ॥ १५९ ॥
 चतुर्गुणेन पयसा विपचेद्गोमयाग्निना ।
 नक्षत्रे पुष्पसम्पन्ने भाण्डे ताम्रमये दृढे ॥ १६० ॥
 कलिषे वापि कल्याणे कृतकौतुकमङ्गलः ।

सर्पिरेव नरः पीत्वा स्त्रियु नित्यं वृषायते ॥ १६१ ॥
 एतद्वन्मया पियेत्रारी या च कन्याप्रजायिनी ।
 या चैवास्थिरगर्भा स्या द्या च सूता पुनः स्थिता ॥ १६२ ॥
 अनापुर्णं वा जनये द्या वा जनयते मृतम् ।
 सानारीजनयेत्पुत्रं वेदवेभाङ्गपारगम् ॥ १६३ ॥
 रूपलावण्यसम्पन्नं मजरश्च शतायुषम् ।
 वृहत्कल्याणकं सर्पिं भारद्वाजेन भाषितम् ॥ १६४ ॥
 अनुक्तं लक्ष्णामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सिकाः ॥

इति वृहत्कल्याणष्टतम् ।

मञ्जिष्टामधुकं कुष्ठं त्रिफलाशर्कराबला ।
 मेदापयस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ १६५ ॥
 अजमीदाहरिद्रे द्वे हिंशु कटुकरोहिणी ।
 उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोली चन्दनद्वयम् ॥ १६६ ॥
 एतेषां कार्पिकैर्भागै र्द्वैतप्रस्थं विषाचयेत् ।
 शतावरीरसचीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ १६७ ॥
 सर्पिरितन्नरः पीत्वा स्त्रियु नित्यं वृषायते ।
 पुत्रं जनयते नारी मेधाढ्यं प्रियदर्शनम् ॥ १६८ ॥
 या चैवास्थिरगर्भा स्या द्या वा जनयते मृतम् ।
 अत्रायुषं वा जनये द्या च कन्यां प्रसूयते ॥ १६९ ॥
 योनिदोषे रजोदोषे परिस्त्रावे च शस्यते ।
 प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ १७० ॥
 नाम्ना फलघृतश्चैतदग्निभ्यां परिकीर्तितम् ।
 अनुक्तं लक्ष्णामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सिकाः ॥ १७१ ॥

इति वृहत्फलष्टतम् ।

पीत्वा च लभते पुत्रं वीर्यवन्तमसंशयः ॥ १४८ ॥

पुष्पोद्धत लक्ष्मणाया मूलं पिष्टञ्च कन्यया ।

ऋत्वते घृतदूग्धाभ्यां पीत्वा प्रोत्थवला सुतम् ॥ १५० ॥

तिलतैलकुडवमेकं हृषसलिलैर्मयुतं पक्वम् ।

ऋतुकालान्ते पीत्वा गर्भं विदधाति बन्ध्यापि ॥ १५१ ॥

जीवकपुत्रकबीजं चीरेण पिवेत्सपत्रमूलञ्च ।

दारकनष्टा वनिता जनयति दोर्घायुषं पुत्रम् ॥ १५२ ॥

चीरेण श्वेतवृद्धतीमूलं नासिकया पिवेत् ।

दक्षिण्यात्मजार्थं वा कन्यार्थं वामया तथा ॥ १५३ ॥

पुष्पोद्धतं लक्ष्मणाया शक्राङ्गायास्तु कन्यया ।

पिष्टं मूलं हविर्दुग्धं पीतं सृष्टौ तु पुत्रदम् ॥ १५४ ॥

न्यग्रोधशृङ्गासनकं प्रबालचूर्णञ्च सवर्णवत्सायाः ।

गोचीरं परिपीतं पुत्रं प्रकरोति पुष्पञ्च ॥ १५५ ॥

रोमराजी भवेद्यस्या वामपार्श्वेति मूर्च्छिता ।

कन्यां तस्या विजानीया इक्षिणे च तथा सुतः ॥ १५६ ॥

इति गर्भोत्पादनविधिः ।

मुस्ताकुटं हरिद्रे हे पिप्पलीकटुरोहिणी ।

काकोलीचीरकाकोली विडङ्गं त्रिफलावचा ॥ १५७ ॥

मेदाराम्राखगन्धा च विशाला च प्रियंगुका ।

हे शारिवे शताङ्गा च दन्तीमधुकमुत्पलम् ॥ १५८ ॥

अजमोदा महामेदा चन्दनं रक्तचन्दनम् ।

जातीपुष्पान्तुगाचीरी शर्कराङ्गिकटफलम् ॥ १५९ ॥

चतुर्गुणेन पयसा विपचेद्रोमयाम्बिना ।

नक्षत्रे पुष्पसम्पन्ने भाण्डे ताम्रमये दृढे ॥ १६० ॥

कलिशे वापि कल्याणे कृतकौतुकमङ्गलः ।

सर्पिरेव नरः पीत्वा स्त्रियु नित्यं वृषायते ॥ १६१ ॥
 एतद्वन्ध्या पिवेन्नारी या च कन्ध्याप्रजायिनी ।
 या चैवास्थिरगर्भा स्या द्या च सूता पुनः स्थिता ॥ १६२ ॥
 अनापुषं वा जनये द्या वा जनयते मृतम् ।
 सानारीजनयेत्पुत्रं वेदवेनाङ्गपारगम् ॥ १६३ ॥
 रूपलावण्यसम्पन्न मजरश्च शतायुषम् ।
 वृहत्कल्याणकं सर्पिर्भरिद्वाजेन भाषितम् ॥ १६४ ॥
 अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सिकाः ॥

इति वृहत्कल्याणघृतम् ।

मञ्जिष्टामधुकं कुटं त्रिफलाशर्कराबला ।
 मेदापयस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ १६५ ॥
 अजमीदाहरिद्रे द्वे हिङ्गु कटुकरोहिणी ।
 उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोली चन्दनद्वयम् ॥ १६६ ॥
 एतेषां कार्ष्णिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 शतावरीरसजीरं घृताद्द्वयं चतुर्गुणम् ॥ १६७ ॥
 सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रियु नित्यं वृषायते ।
 पुत्रं जनयते नारी मेधाढ्यं प्रियदर्शनम् ॥ १६८ ॥
 या चैवास्थिरगर्भा स्या द्या वा जनयते मृतम् ।
 अस्यायुषं वा जनये द्या च कन्यां प्रसूयते ॥ १६९ ॥
 योनिदोषे रजोदोषे परिस्त्रावे च शस्यते ।
 प्रजावर्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ १७० ॥
 नाम्ना फलघृतश्चैतदग्निभ्यां परिकीर्तितम् ।
 अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सिकाः ॥ १७१ ॥

इति वृहत्फलघृतम् ।

शतावर्थाविदार्यथाय तथा मायात्मगुप्तयोः ।

श्वदंष्ट्रायाय निःक्वाथे नल्वणे च पृथक् पृथक् ॥ १७२ ॥

साधयित्वा घृतप्रस्थं पयश्चतुर्गुणे पचेत् ।

शर्करामधुसंयुक्तं मिलित्वा तत्प्रयोजयेत् ॥ १७३ ॥

इति शतावरीघृतम् ।

दृढदारुकमूलेन घृतं पक्वं पयोन्वितम् ।

एतद्व्यतमं सर्पिः पुत्रकामः पिवेन्नरः ॥ १७४ ॥

—०—

अथ संजातगर्भलक्षणमाह ।

हृदि रन्ने रुचिर्नित्यं टीविकारो मराजिका ।

अरुचिस्तनयोः काश्यं ग्लानिराटोपवर्जितम् ॥

कुक्षेरक्ष्णोः पक्ष्मलत्वं गर्भिणी स्फुटलक्षणम् ॥ १७५ ॥

यस्याः कुक्षौ भवेद् ग्लानिः पुनराभ्यानमेव च ।

गर्भिण्या दृश्यते नाय्याः तस्याः नागोदरं विदुः ॥ १७६ ॥

व्यवायस्वेदवर्जिन्या स्तस्याः स्याद्द्वी हृदं हितम् ॥ १७७ ॥

—०—

अथ गर्भस्त्रावपातयोरवधिपूर्वकलक्षणमाह ।

भयाभिघातात्तिक्ष्णोष्ण पानाशननिषेवणात् ।

गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ १७८ ॥

आचतुर्थान्ततो मासात् प्रसवेद्गर्भविद्रवः ।

ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमपट्टयोः ॥ १७९ ॥

—०—

अथ स्त्रावपातयोश्चिकित्सामाह ।

सेकावगाहना लेपाः शस्यन्ते तत्र शीतलाः ।

जीवेनाद्यैः कृतचीरं पानञ्चैव सशर्करम् ॥ १८० ॥

—०—

अकालपाते निदानपूर्वकं दृष्टान्तमाह ।

गर्भोऽभिघातविषमाशनपोडनाद्यैः

पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥ १८१ ॥

—०—

अथोचितकाले मूढगर्भलक्षणमाह ।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं

शूलञ्च योनिजठरादिषु मूत्रसंगम् ।

भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः सगर्भः

संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ १८२ ॥

द्वारं निरुध्य शिरसाजठरेण कश्चित्

कश्चिच्छरीरपरिवर्तनकुलदेहः ।

एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन

निर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः ॥ १८३ ॥

पार्श्वोपहतगतिरेति तथैव कश्चि-

दित्यष्टधागतिरियं ह्यपरा चतुर्धा ॥ १८४ ॥

सङ्कीलकः प्रतिखुरः परिधोऽथ बीज-

स्तेपूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम् ।

सङ्गीचयो भवति कीलकवत् स कीलो

दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसङ्गी ॥

गच्छेद्भुजद्वयशिराः सच बीजकाख्यो
योनी स्थितः सपरिघः परिघेन तुल्यः ॥ १८४ ॥

—०—

अथासाध्यमूढगर्भगर्मिण्योर्लक्षणाग्रमाह ।

अपविद्धशिराया तु शीताङ्गीनिरपन्नया ।
नोलोङ्गूतशिरा हन्ति सा गर्भं चस तां तथा ॥ १८५ ॥
गर्भास्त्रन्दनभावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता ।
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शून्यतांतर्मृते शिशौ ॥ १८६ ॥
मानसागन्तुभिर्मातु रूपतापैः प्रपोद्धितः ।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च निपोद्धितः ॥ १८७ ॥
योनिसंवरणं सङ्घः कुक्षौ मारुत एव च ।
हृन्युः स्त्रियं मूढगर्भा यथोक्ताद्याधुपद्रवाः ॥ १८८ ॥
इति मूढगर्भनिदानम् ।

गर्भस्य गतयश्चित्रा जायन्तेऽनिलकोपतः ।
तत्राऽनल्पमतिर्वैद्यो वर्तते मतिपूर्वकम् ॥ १८९ ॥
सृतं गर्भं भिषक् प्राज्ञः क्लृप्त्वा कर्पेत्प्रयत्नतः ।
धान्वन्तरिमताभ्राज्ञः साध्यज्ञातश्च शल्यवित् ॥ १९० ॥
अभिघातान्मृतायास्तु गर्भः प्रस्यन्दते यदि ।
जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ॥ १९२ ॥

गर्भाशयं परिहरन्तश्च गर्भिणीश्च

यत्र करोति सहसा महदाशुक्रमा ।

वैद्यस्तु चेद्भवति शास्त्रगतिप्रवीणः

प्राप्नोति मित्रधनधान्ययशांसि लोके ॥ १९२ ॥

गर्भस्य सन्ति गतयोऽष्टविधाः पुरोक्ताः

भ्राम्यन्ति वैरतिषु वातगति स्वभावात् ।
 अंसे त्रिके शिरसि भूयसितस्य सङ्गा
 उत्तानकाय विनिकुञ्चितसक्थिदेशम् ॥ १८२ ॥
 कव्यांसमुन्नमित वाससि सन्निपद्य
 स्किग्देशसंस्थमथ पाणितले निजे च ।
 सृच्छास्त्रलैर्घृतयुतैः परिमार्जयित्वा
 गर्भं समानयति रक्षति योषिताञ्च ॥ १८४ ॥
 सक्थ्या गतं सततमुन्नतमं सदेशं
 क्षिण्वे समागतकपूर्वनिपीडितेन ।
 सक्थिप्रसार्य परिधाय तथैव तिथ्य-
 गुत्क्षिप्ययत्नय गतं ननु योनिमार्गम् ॥ १८५ ॥
 पार्श्वगतस्य परिवृत्यशिरो निपीड्य
 पूर्वं समुन्नतिशिरोपरिणीय योन्याम् ।
 हस्तेन तं सपदि तं परिलभ्य शस्तैः
 कृत्वा हरेन्मृतकगर्भशरीरदेशान् ॥ १८६ ॥
 यद्यदङ्गं हि गर्भस्य तत्तत्सज्जति सन्निपक् ।
 सम्यग्विनिर्द्धरेच्छित्वा रक्षेन्नारीञ्च यत्नतः ॥ १८७ ॥
 सचेतनं तु शस्त्रेण न कथंचन दारयेत् ।
 आत्मानं जननीञ्चैव हन्यादाश ह्यचेतनः ॥ १८८ ॥
 नचोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्त्तमपि पण्डितः ।
 सध्यागु जननीं हन्ति निरुच्छासं पशुं यथा ॥ १८९ ॥
 मण्डनाग्रेण कर्त्तव्यं हृद्यमन्तर्विजानता ।
 वृद्धिपचन्तु तीक्ष्णाग्रं नयोनाववचारयेत् २०० ॥

अथ प्रतिमासं सवेदनागर्भिणीचिकित्सामाह ।

प्रथमाद्वादशं याव न्मासं गर्भच्युतौ रुजि ।

जानीयात् क्रमसञ्ज्ञात योगानेतान् भिषग्वरः ॥ २०१ ॥

मधुकं शाकबीजन्तु पयस्यासुरदारु च ।

अश्मन्तकः कृष्णतिला स्तान्म्रवस्त्रोद्यतादरी ॥ २०२ ॥

वृक्षादनीपयस्या च लता सोत्पलशारिवा ।

अनन्ताशारिवारास्ता पद्माऽथ मधुयष्टिका ॥

शृङ्गाटकं विसं द्राक्षा कशेरुमधुकं सिता ॥ २०३ ॥

सप्तैतान् पयसा योगा नद्धेशोकममापनान् ।

क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भं स्रवति योजयेत् ॥ २०४ ॥

कपित्थविल्ववृहती पटोलेचुनिदग्धिका ।

मूलानि क्षीरसिडानि पायवेद्विपगष्ट मे ॥ २०५ ॥

संप्राप्ते चाष्टमे मासे मैथुनं परिवर्जयेत् ।

यदि गच्छति दुर्मधाः काममोहादचेतनात् ॥ २०६ ॥

विपद्यते तदा गर्भं पततेनात्र संशयः ।

अन्धमूकादिवधिरो जायते कुञ्जमेव च ॥ २०७ ॥

नयमे मधुकानन्ता पयस्याशारिवाः पिबेत् ।

पयन्तु दशमे शुद्धा शृतगीतं प्रशस्यते ॥ २०८ ॥

मक्षीरा वा द्विताशुण्ठी मधुकं देवदारु च ॥ २०९ ॥

क्षीरिकामुष्पलं दुग्धं समद्रामूलकं शिवाम् ।

पिवेदेकादशे मासि गर्भिणीशूलशान्तये ॥ २१० ॥

मिताविदारोकाकोलो क्षीरे चैव मृणालिका ।

गर्भिणीद्वादशे मासि पिवेच्छूनघ्नमौषधम् ॥

एवमाध्यायते गर्भं क्षीयोरुक् क्षोषशाम्यति ॥ २११ ॥

कुशकाशोरुबूकानां मूलैर्गोक्षुरुकस्य च ।

शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ २१२ ॥

कशेरुशृङ्गाटकजीवनीयैः पद्मोत्पलैरण्डशतावरोभिः ।

सिद्धं पयः शर्करयाविमिश्रं संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णशूलम् ॥ २१३ ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्रपर्णीमधुकं सशर्करम् ।

सशूलगर्भसुतिपीडितांगना पयो विमिश्रं पयमात्रभुक् पिबेत् ॥ २१४ ॥

व्यवस्थिते च गर्भे गव्येनोदुम्बरशलाटुसिद्धेन पयसामोजयेद्गर्भं
पतिते तीक्ष्णं मद्यं पेयं तस्योपद्रवशान्त्यै । त्यागोपवशाद्वा न
पिबति मद्यं या तु सा च कोलसाधितां पेयामेवाग्रातु अतीते
स्नेहलवणवर्ज्याभिर्यवागूभिर्बुधालकादीनां पाचनीयोपसंस्कृता-
भिरुपक्रमेत् । यावन्तो मासागर्भस्य तावन्वहानोति । इति गर्भ-
शूलम् ।

—०—

अथ गर्भणीज्वरचिकित्सामाह ।

मधूकचन्दनोशीर शारिवापद्मयष्टिकैः ।

शर्करामधुसयुक्तः कषायो गर्भिणीज्वरे ॥ २१५ ॥

चन्दनं शर्करालोघ्रं सृङ्घोकाशर्करान्वितम् ।

क्वाथं कृत्वा प्रदातव्यं गर्भिणीज्वरशान्तये ॥ २१६ ॥

पिवेद्विषमजाक्षीरं नाशयेद्विषमज्वरम् ॥ २१७ ॥

आम्रजवूत्वचं क्वाथं लेहयेत्क्ष्माजसक्तुभिः ।

अनेन लीढमात्रेण गर्भिणीग्रहणीं जयेत् ॥ २१८ ॥

झीविराऽरक्षुरक्तचन्दनबला धान्याकवत्सादनी

सुस्तोशीरयवासपर्यटविषाक्वाथं पिवेद्गर्भिणो ।

नानावर्णकुजातिसारकगदे रक्तसुती वा ज्वरे

योगोऽयं सुनिभिः पुरा निगदितः सूत्र्यामये सत्तमः ॥ २१९ ॥

गोधामांसं प्रयत्नेन गर्भिणीञ्च प्रदापयेत् ।

वातपित्तकफोद्विक्ता ग्रहोत्थायेष्युपद्रवाः ॥

गर्भिष्युपद्रवान् सर्वान् गोधामांसं विनाशयेत् ॥ २२० ॥

समधुक्षागदुग्धेन कुलालकरमृत्तिका ।

अवश्यं स्थापयेद्गर्भं बलिनं पानयोगतः ॥ २२१ ॥

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवारिणा ।

गर्भपातान्तरोत्थे च गर्भस्त्रावनिवारणम् ॥ २२२ ॥

—०—

अथ गर्भिणीप्रसवविलम्बे चिकित्सामाह ।

जीवतिगर्भं सूतिका गर्भनिर्हरणे प्रयत्नेत । निहर्तुमशक्ये ।

अवनान्मन्वानुपशृणुयात् । तान्वक्ष्यामः ॥

—०—

इहामृतञ्च सोमय चित्रभानुय भामिनि ।

उच्चैः श्वाथ तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ २२३ ॥

इदममृतमपां समुद्धृतं वै तवलघुगर्भमिमं विमुञ्चतुस्त्रि ।

तदनलपवनाकवासवास्ते सह लवणाभ्युधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥ २२४ ॥

मुक्ताः पशीर्विषाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः ।

मुक्तः सर्वभयाद्गर्भः एहो हि माचिरं स्नाहा ॥ २२५ ॥

जलं चवनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्वितम् ।

पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥ २२६ ॥

इति चवनमन्त्राः ।

नाडी १६, ऋतु ६, वसुभिः ८, मह-

पक्ष २, दिग १०, छादश १८, भिरेव च ।

अर्क १२, भुवन १४, वेद ४, सहितैरुभप-

त्रिंशकमायर्थम् ॥

—०—

| | | |
|----|----|----|
| १६ | २ | १२ |
| ६ | १० | १४ |
| ८ | १८ | ४ |

क्षितिर्जलं वियत्तेजो वायुर्विष्णुः प्रजापतिः ।

ते गर्भं पातुनैरुच्यं वै शल्यञ्च दधस्यपि ॥ २२७ ॥

प्रसूयत्वमविक्लिष्टं मविक्लिष्टे शुभानने ।

कार्तिकेयद्युतिं पुत्रं कार्तिकेयाभिरक्षितम् ॥ २२८ ॥

—०—

प्रसवकाले गर्भिण्याः कर्णं एतत्सप्तवारान् जप्तव्यम् ॥

—०—

परुषकशिफालेपः स्थिरामूलकृतोऽपि वा ।

नाभिवस्तिभगे लेपः सुखं नारीप्रसूयते ॥ २२९ ॥

तुषाम्बुपरिपिष्टेन कन्देन परिलेपयेत् ।

लाङ्गल्याश्चरणौ सूते क्षिप्रमापन्नगर्भिणी ॥ २३० ॥

सितया चर्वणं कृत्वा कोकिलाक्षस्य मूलकम् ।

तत्कर्णपूरणेनाथ सुखं नारीप्रसूयते ॥ २३१ ॥

श्यामासन्दर्शनाभ्यान्तु लताभ्यां परिकल्पितम् ।

क्षिपेत्कुड्मकं मूर्ध्नि यावत्पादतलं व्रजेत् ॥

उद्धृतगात्रपीडायाः सुखप्रसवकारकम् ॥ २३२ ॥

अपामार्गशिखां योनिमध्ये निःक्षिप्य धार्यते ।

सुखं प्रसूयते नारी भेषजस्यास्य योगतः ॥ २३३ ॥

पाठामूलन्तु तद्वत्स्या दाटरूपकमूलकम् ।

लेपनाद्वारणाद्वापि सुखप्रसवकारकम् ॥ २३४ ॥

मूलञ्च शालिपर्णास्तु पिष्टं वा तडूलाम्बुना ।

नाभिवस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रसूयते ॥ २३५ ॥

सितपिकलोचनवर्णं चर्वणपूर्वञ्च कर्णपूरणतः ।

अपि विषमगर्भपीडितुवनिता सुखं मूर्तिसमितनुते ॥ २३६ ॥

पिष्टा पाठापत्रं नारीचीरेण या पिवेदबला ।
 सा गर्भं मूढजनितव्ययया प्रविमुच्यते भटिति ॥ २३७ ॥
 मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।
 घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ २३८ ॥
 इक्षोरुत्तरदिङ्मूलं स्त्रीप्रमाणेन तन्तुना ।
 वङ्गा कथ्याच्च नियतं सुखं नारीप्रसूयते ॥ २३९ ॥
 तालस्य चोत्तरं मूलं स्त्रीप्रमाणेन तन्तुना ।
 वङ्गा कथ्याच्च नियतं सुखं नारीप्रसूयते ॥ २४० ॥
 पञ्चाङ्गं चास्तिशौण्डं लोभ्रपत्राभ्यां विमिश्रितं कृत्वा ।
 मर्पिपिबिपाच्य पिष्टं भक्षितमात्रेण सूतिवनितायाः ॥
 गङ्गाप्रवाहतुल्यं रक्तं वै स्वास्थ्यमति कुरुते ॥ २४१ ॥
 वेगाघातादायुः योनिं सधार्म्यं वेदनां कुरुते ।
 तत्र विधेयः कल्कः शतपुष्पायाः सलिलेन लेपेन ॥ २४२ ॥
 करङ्गीभूतगोमूर्धं सूतिका भवनोपरि ।
 स्थापितस्तत् क्षणाद्वार्याः सुखं पुनवकारकः ॥ २४३ ॥

—०—

गोशिरः करङ्गीभूत मस्थिमात्रमेव स्थितम् ।

इति मूढगर्भम् ।

कटुतुम्भः हि निर्मोकः कृतवेधनः सर्पपैः ।
 कटुतैलान्वितैर्योनिं धूमः पातयतेऽपराम् ॥ २४४ ॥
 भूर्जगुगुलुधूपेन त्र्योल्याद्याः प्रधूपनम् ॥
 अपरा पातनं शस्तं मद्यः शूलनिवारणम् ॥ २४५ ॥
 कचवेष्टतयांगुल्या घृष्टे कण्ठे सुखं पतत्यपरा ।
 मूलेन लाहलक्याः संनिम्ने पाणिपादे वा ॥ २४६ ॥

कुष्ठं सगालिमूलञ्च सगोमूत्रञ्च पाययेत् ।

अपरा पतिता चिप्रां छिन्नं पक्षं वक्तुं यथा ॥ २४७ ॥

इत्यपरापातनविधिः ।

हिङ्गुपिप्पलीपाटल्यौ भाङ्गीमेदा महोपधम् ।

रास्त्रामतिविषाचथ्य मेभिर्दोषः प्रसिध्यति ।

योनिश्च रुद्धो भवति योनिशूलञ्च शाम्यति ॥ २४८ ॥

विष्वमार्कवजं मूलं कल्कं मद्येन पाययेत् ।

तेन योनिगतं शूल माशु शाम्यति योपिताम् ॥ २४९ ॥

गालिमूलाक्षमात्रन्तु मूत्रेणाम्नेन वा युतम् ।

सोपकुञ्चिकां पिप्पलीं मदिरां लाभतः पिवेत् ॥

सौवर्चलेन संयुक्तं योनिशूलनिवारणम् ॥ २५० ॥

अघापतन्तीमपरां पातयेत् पूर्ववद्विषक् ।

हस्तेनापहरेद्वापि पार्श्वभ्यां परिपीड्य वा ॥ २५१ ॥

धनुयाद्वा मुहुर्नारीं पीडयेद्वा सपिण्डिकाम् ।

तैलाक्तयोनेरेव तां पातयेन्मतिमान् भिषक् ॥ २५२ ॥

प्रसूतिकुशला योपि द्विधिरेन करोति मा ।

एव निहृतशल्या तां सिद्धेदुष्येन वारिणा ॥ २५३ ॥

ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत् ।

एव रुद्धो भवेद्योनि स्तच्छूलं क्षीपशाम्यति ॥ २५४ ॥

—०—

अथ मक्कलशूलस्य लक्षणमाह ।

वायुः प्रकुपितः प्रकुर्यात् सरुध्यरुधिरं स्तुतम् ।

सूताया हृच्छिरोवस्ति शूलमक्कलसंज्ञितम् ॥ २५५ ॥

पृथिव्यां पतिते गर्भे यौनौ पीडनमीष्यते ।

अप्रवेशो यथा वायो स्तस्य संरक्षणक्रिया ॥
हृदस्तिशूलमाधानं प्रविष्टे तत्र जायते ॥ २५६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

संचूर्णितयवक्षारं पिवेत्कोष्णेन वारिणा ।
सर्पिषा वा पिवेन्नारो मक्कलस्य निवृत्तये ॥ २५७ ॥
त्रिकटुचातुर्जातक कुस्तुम्बरोचूर्णसंयुक्तम् ।
खादेद् गुडं पुराणं नित्यं नारीमक्कदलनाय ॥ २५८ ॥
मातुलुङ्गस्य मूलन्तु मल्लिकामूलमेव च ।
विश्वसुस्तमिदं लेपं शिरोरोगविनाशनम् ॥ २५९ ॥
वूषणं पिप्पलीमूलं दारुचव्यं सचित्रकम् ।
रजन्वी हृपुपाजाली सक्षारलवणवयम् ॥
कक्कमुष्णांबुना पीत्वा सुखेनाशं विरिच्यते ॥ २६० ॥
इति मक्कलशूलम् ।

—०—

अथ सूतिकारोगनिदानमाह ।

प्रलापो वेपथुर्यस्याः सूतिका सा षडाहताः ॥ २६१ ॥
अहमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता ।
शोथः शूलातिसारी च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ २६२ ॥
मिथोपचारावर्त्तकेशा द्विपमाजीर्णभोजनात् ।
सूतिकायास्तु जायन्ते ये रोगास्ते सुदारुणाः ॥ २६३ ॥
ज्वरातिसारभोफाद्य शूलानाह बलक्षयाः ।
तन्द्राक्षिप्रमेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः ॥ २६४ ॥

क्षुच्छसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाग्रिताः ।
ते सर्वे सूतिका नाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ १६५ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

दशमूलकृतं तोय कीणञ्च हविषान्वितम् ।
पथ्याशिन्या द्रुत नार्थं पीत सूतीरुज जयेत् ॥ २६६ ॥
कृत्वोपवासमवला सुतजम्बवस्त्रे
प्रातर्निषोयकृमिशतुभय हि मूलम् ।
वासान्मसा किमथवा हविषापि पीत्वा
सूतीजयेत् पडिति रोगसमूहमुग्रम् ॥ २६७ ॥
चुट्टेरण्डजटाशृङ्गी कणाशृण्ठी सुखास्थूहशम् ।
सूतिका च प्रशान्त्यर्थं नि क्वाथ्य मधुना पिवेत् ॥ २६८ ॥
निम्बवल्कलवल्कस्तु सर्पिषा कान्त्रिकेन तु ।
पीत प्रशान्तयेन्नून मचिरात् सूतिकागदम् ॥ २६९ ॥
पञ्चमूलकपायन्तु सूतिका लवणान्वितम् ।
सुखीण पाययेत् पूत सूतिकारोगनाशनम् ॥ २७० ॥
सूतिकारोगशान्त्यर्थं क्वाथैर्वातहरा क्रिया ।
खेदोपनाहनाभ्यङ्गैः सावगाहैः प्रशस्यते ॥ २७१ ॥
पञ्चमूलस्य वा क्वाथ तप्तलोहेन सङ्गतम् ।
सूतिकारोगनाशाय पिवेद्वातहरा सुराम् ॥ २७२ ॥
सुतप्तलोहमाक्षय पारुष्यान्तु निधापयेत् ।
सूतिकोपद्रवान् सर्वान् हन्ति पीत्वा न शयः ॥ २७३ ॥
वज्री तप्तो लोहेन सुहृदूष सुवापितम् ।
पीत्वेन सूतिकागारी सर्वव्याधीन् व्यपोहति ॥ २७४ ॥

अमृतानागरसहचर भद्रोत्कटपञ्चमूलजलदलम् ।
 शीतं पीतं मधुना सह शमयति सूतिकान्तकम् ॥ २७५ ॥
 सहचरकुलित्यपुष्कर वैकट्यतदारुवैतसः कायः ।
 पीतः सङ्घिगुलबणः शमयति शूलज्वरौ सूत्याः ॥ २७६ ॥
 सहचरमुस्तगुडूची भद्रोत्कटविश्वबालकैः कथितम् ।
 पेयमिदं मधुमिश्रं सद्योज्वरशूलनुत् सूत्याः ॥ २७७ ॥
 देवदारुवचाकुष्ठं पिप्पलीविश्वभेषजम् ।
 कटफलं मुस्तभूनिम्ब तिक्ताधान्यहरोतकी ॥ २७८ ॥
 गजकृष्णा च दुस्पर्शा गोक्षुरं धन्वयासकम् ।
 वृद्धत्यतिविषाक्त्रिणा कर्कटं कृष्णजोरकम् ॥ २७९ ॥
 समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् ।
 क्वायमष्टावशेषन्तु प्रसूतां पाययेत् स्त्रियम् ॥ २८० ॥
 शूलकासज्वरश्वास मूर्च्छाकम्पशिरोऽर्त्तिनुत् ।
 युक्तं प्रलापष्टड्दाहं तन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥
 निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोत्थितम् ॥ २८१ ॥
 सिद्धं द्विपञ्चमूलाभ्यां पयः शर्करयायुतम् ।
 सूतिकोपद्रवान् हन्ति पीतमात्रं न संशयः ॥ २८२ ॥
 कृष्णातमूलशृङ्गेला द्विगुभांगी मदीप्यकम् ।
 वचामतिविषां राक्षां चव्यं संचूर्णपाययेत् ॥ २८३ ॥
 स्नेहेन दोषशान्त्यर्थं विदनोपशमाय च ।
 क्वायश्चैषां तथा कल्कं चूर्णं वा स्नेहभर्जितम् ॥ २८४ ॥
 शोकत्वग्घिङ्गतिविषा पाठाकटुकरोहिणी ।
 तथा तेजोवती चापि पाययेत् पूर्वशद्विषक् ॥ २८५ ॥
 दगाहं भोजने देयं क्षीरं वातहरेः शृतम् ।
 रसेनाद्यं दगाहश्च गिरीषो घावने हितः ॥ २८६ ॥

प्रजापत्येन विधिना जातकर्मादिकारयेत् ।
 पञ्चमेद्भिद्वितीये वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्त्तते ॥ २८७ ॥
 प्रथमे दिवसे तस्मा च्छिकालं मधुसर्पिणी ।
 अनन्तामित्रिते मन्त्री पाययेद्रे रिते शिशुम् ॥ २८८ ॥

—०—

चत्वारः सागराः पुण्याः स्तनयोः क्षीरवाहिनाः ।
 भवन्तु सुभगे नित्यं बालस्यायुर्वलप्रदाः ॥ २८९ ॥
 पिवन्वालोऽमृतसमं पयस्तवशुभानने ।
 दीर्घमायुरवाप्नोति देवाः प्राश्याऽमृतं यथा ॥ २९० ॥
 इति स्तनाभिमन्त्रणम् ।

यष्टीनिशाविशेषेण कृतरक्षीवलिक्रियाः ।
 जगर्जुर्वान्धवास्तस्य दधन्तः परमां मुदम् ॥ २९१ ॥
 दशमे दिवसे पूर्णं विधिभिः कुशलोचितैः ।
 कारयेत् सूतिकोत्थानं नाम बालस्य वार्चितम् ॥ २९२ ॥
 तुम्बोपत्रं तथा लोध्रं समभागानि कारयेत् ।
 दद्यात्ते पं भगस्येदं प्रसूताप्यक्षता भवेत् ॥ २९३ ॥
 वेतसस्य तु मूलाति काययेन्मृदुवह्निना ।
 भगः प्रक्षालितस्तेन गाढत्वमुपगच्छति ॥ २९४ ॥
 मूषिकानां वसायाश्च बल्लुनीनां तथैव च ।
 योनीषु स्त्रचणं श्रेष्ठं कन्या करणमुत्तमम् ॥ २९५ ॥
 पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम् ।
 मधुना योनिमालिष्य गाढीकरणमुत्तमम् ॥ २९६ ॥
 इति योनिगाढीकरणम् ।

प्रसूतवनिता वृद्धिकुचिद्धासायसंपिवेत् ।
 प्रातर्मथितसंमिश्रं त्रिसप्ताहं कषायुगम् ॥ २९७ ॥

अस्तनानागरसहचर भद्रोत्कटपञ्चमूलजलदजलम् ।
 शीतं पीतं मधुना सह शमयति सूतिकान्तकम् ॥ २७५ ॥
 सहचरकुलित्यपुष्कर वैकट्यतदारुवेतसः काथः ।
 पीतः सहिगुलवणः शमयति शूलज्वरौ सूत्र्याः ॥ २७६ ॥
 सहचरमुस्तगुडूची भद्रोत्कटविश्ववालकैः कथितम् ।
 पेयमिदं मधुमित्रं सद्योज्वरशूलनुत् सूत्र्याः ॥ २७७ ॥
 देवदारुवचाकुष्टं पिप्पलीविश्वभेषजम् ।
 कट्फलं मुस्तभूनिम्ब तित्ताधान्यहरीतकी ॥ २७८ ॥
 गजकण्ठा च दुस्पर्शा गोक्षुरं धन्वयासकम् ।
 वृद्धत्यतिविपाकिन्ना कर्कटं कृष्णजोरकम् ॥ २७९ ॥
 समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् ।
 क्वायमष्टावशेषन्तु प्रसूतां पाययेत् स्त्रियम् ॥ २८० ॥
 शूलकासज्वरश्वास मूर्च्छाकम्पशिरोऽर्त्तिनुत् ।
 युक्तं प्रलापवृद्धाह तन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥
 निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोत्थितम् ॥ २८१ ॥
 सिंहं द्विपञ्चमूलाभ्यां पयः शर्करयायुतम् ।
 सूतिकोपद्रवान् हन्ति पीतमात्रं न संशयः ॥ २८२ ॥
 कृष्णातम्बूलशुण्डेरला द्विगुभांगीं सदीप्यकम् ।
 वचामतिविषां राक्षां चव्यं संचूर्णपाययेत् ॥ २८३ ॥
 स्त्रे हेन दोषग्रान्ध्र्ये विदनोपशमाय च ।
 क्वायश्चैषां तथा कल्कं चूर्णे वा स्नेहभजितम् ॥ २८४ ॥
 भाकत्वग्विद्धतिविषा पाठाकटुकरोहिणी ।
 तथा तेजोवती चापि पाययेत् पूर्ववद्विषक् ॥ २८५ ॥
 दशाहं भोजने देयं क्षीरं वातहरैः शृतम् ।
 रसेनाद्यं दद्याद्वक्ष गिरीषो धावने हितः ॥ २८६ ॥

प्रजापत्येन विधिना जातकर्मादिकारयेत् ।
पञ्चमेऽह्नि तृतीये वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्त्तते ॥ २८७ ॥
प्रथमे दिवसे तस्मा च्छिकालं मधुसर्पिणी ।
अनन्तामिश्रिते मन्त्री पाययेत्प्रेरिते शिशुम् ॥ २८८ ॥

—०—

चत्वारः सागराः पुण्याः स्तनयोः क्षीरवाहिनः ।
भवन्तु सुभगे नित्यं बालस्यायुर्वलप्रदाः ॥ २८९ ॥
पिबन्वालोऽमृतसमं पयस्तवशुभानने ।
दीर्घमायुरवाप्नोति देवाः प्राश्याऽमृतं यथा ॥ २९० ॥
इति स्तनाभिमन्त्रणम् ।

यष्टीनिशाविशेषेण कृतरक्षोवलिः क्रियाः ।
लङ्गर्जुर्बान्धवास्तस्य दधन्तः परमां मुदम् ॥ २९१ ॥
दशमे दिवसे पूर्णे विधिभिः कुशलोचितैः ।
कारयेत् मूर्तिकोल्यानं नाम बालस्य वार्चितम् ॥ २९२ ॥
तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागानि कारयेत् ।
दद्यात्क्षेपं भगस्येदं प्रसूताप्यक्षता भवेत् ॥ २९३ ॥
वेतसस्य तु मूलाति काथयेन्मृदुवह्निना ।
भगः प्रक्षालितस्तेन गाढत्वमुपगच्छति ॥ २९४ ॥
मूपिकानां वसायाश्च बलुगुनीनां तथैव च ।
योनीषु म्रक्ष्णं श्रेष्ठं कन्या करणमुत्तमम् ॥ २९५ ॥
पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम् ।
मधुना योनिमालिष्य गाढीकरणमुत्तमम् ॥ २९६ ॥

इति योनिर्गाढीकरणम् ।

प्रसूतवनिता वृद्धिकुचिक्कासायसंपिवेत् ।
प्रातर्मथितसंमिश्रं त्रिसप्ताहं कषायुगम् ॥ २९७ ॥

सूतायाः कुम्भमुदरं पीतं तक्रेण मालतीमूलम् ।

घृतमधुलीढा सहसा करोति धात्रीशमं निशा च ॥२८८॥

१ १ १ ३ ५ ८ १६ १

एकेन्दुचन्द्रानलवाणकुम्भी कलैकभागं क्रमशो विमिश्रम् ।

सूताभ्रगन्धोपणलोहशङ्खवनोत्पलाभस्त्र विषं सुपिष्टम् ॥२८९॥

प्रसूतचापानलदन्तवन्धान् पुराऽमृताब्दत्रिफलायुतोऽयम् ।

आर्द्राश्विना वा किल सन्निपातान् गुदांकुरान् बलमितोनिहन्ति ३००

निजानुपानैर्निजपथभुक्तान् सर्वातिसारग्रहणोगदांश्च ।

प्रतापलंकेखरनामधेयं सूतश्च ग्रीक्तो गिरिराजपुत्रश्च ॥ ३०१ ॥

इति प्रतापलकेखरो रसः ।

शुण्ठग्रन्मिमूलं निर्गुण्डोमेघ शृङ्गीप्रसारिणी ।

खरसः परिभृष्टः स्या द्विङ्गजीरकसंस्कृतः ॥ ३०२ ॥

कटुतैलेन या नारी नक्तं भुञ्जीत वा पिवेत् ।

निहन्ति मूतिकारोगान् बलमग्नेर्लभेत्त सः ॥ ३०३ ॥

—०—

यवकोलकुलित्यांश्च मुद्गमापसमन्वितान् ।

द्विपञ्चमूलसहितान् काथयेत्सलिलाढके ॥ ३०४ ॥

तत्काथे तक्रसंयुक्ते यूपं कृत्वा सजीरकम् ।

घृतं घृताक्षमात्रेण सैन्धवेन च योजितम् ॥ ३०५ ॥

एष यूपः प्रदातव्यः चतुर्भागावशेषितः ।

एतेनैव समग्रीयात् पुरणाब्ध्यान्निपष्टिकान् ॥ ३०६ ॥

वातशून्यं सविटम्बं हन्तिमक्कससन्नितम् ।

मूतिकारोगशमनो यूपोऽयं परिकीर्तितः ॥ ३०७ ॥

इति यवादिर्यूपः ।

‘यवकोलकुलित्यानां शानिमूलं तथैव च ।

शस्तोऽयं सूतिकातंके यूपः सर्वज्वरापहः ॥ ३०८ ॥

इति यवादिर्द्वितीयोयूपः ।

पिप्पलीदेवकाष्टञ्च भद्रमुस्तकमेव च ।

अगुरुपिप्पलीमूलं श्लक्ष्णपिष्टञ्च कारयेत् ॥ ३०९ ॥

तक्त्रेण सहसंयुक्तं पचेद्यूपं विचक्षणः ।

अयन्तु घृतासंयुक्तः पीतमात्रो न संशयः ॥ ३१० ॥

बातिकां पित्तिकाञ्चैव श्लैष्मिकां सान्निपातिकां ।

सूतिकीपद्वयं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३११ ॥

इति पिप्पल्यादिर्यूपः ।

यवकोलकुलित्यानां शालिमूलं तथैव च ।

क्वाथयेदप्रमत्तस्तु सुपुते सलिलादके ॥ ३१२ ॥

तत्पादावस्थितं क्वाथं सर्पिर्युक्तं सजोरकम् ।

पक्वं घृताक्षमात्रेण सैन्धवेन समायुतम् ॥ ३१३ ॥

एतैर्मेव च यूपेण चाश्रीयाच्छालिपट्टिकम् ।

सूतिकीपद्वयं हन्ति भुक्तमात्रत्रसंशयः ॥ ३१४ ॥

इति यवाद्यं घृतम् ।

पिप्पलीदेवकाष्टञ्च आर्द्रकं गजपिप्पली ।

चित्रकं सैन्धवञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥ ३१५ ॥

सुखोष्णं योजयेदेतत् सूतिकारोगशान्तये ।

बातिकां पित्तिकाञ्चैव श्लैष्मिकान् सान्निपातिकान् ॥

सूतिकीपद्वयान् हन्ति पीतं ह्येतन्नसंशयः ॥ ३१६ ॥

इति पिप्पल्यादिक्वाथः ।

—०—

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकी हस्तिपिप्पली ।

चव्यर्धं रंजनीदेया भद्रमुस्तवचाभयाः ॥ ३१७ ॥

धान्याकमजमोदा च सपञ्चलवणानि च ।

भद्रदारुयवानी च भार्गीकुटजतण्डुलाः ॥ ३१८ ॥

कण्टकार्याश्च मूलं वै वृहतीबिल्वपेशिका ।

मरिचानि विडङ्गानि कल्कैरेतैश्च पादिकैः ॥ ३१९ ॥

यवकीलकुलित्यानां निर्यूहे च चतुर्गुणि ।

दधिप्रस्थं पयःप्रस्थं दत्त्वा प्रस्थं घृतं पचेत् ॥ ३२० ॥

वातिकान् पैत्तिकांश्चैव श्लेष्मिकान् सान्निपातिकान् ।

सूतिकोपद्रवान् सर्वा नभ्यङ्गादेवनाशयेत् ॥ ३२१ ॥

इति पिप्पल्याद्यं घृतम् ।

समूलपत्रशांखन्तु शतं भद्रोत्कटस्य च ।

वारिद्रोणेन साध्यं सात् स्याप्य पादावगेपितम् ॥ ३२२ ॥

घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गर्भं दत्त्वा च कार्ष्णिकम् ।

सव्योषं पिप्पलीमूलं चित्रको जोरक तथा ॥ ३२३ ॥

पञ्चमूलं कनिष्ठन्तु रास्त्रैरण्डममायुतम् ।

बलासिन्धुयवचार स्वर्जिकाकृष्णजोरकम् ॥ ३२४ ॥

मिदमेतद् घृतं मद्यो निहन्त्यात् सूतिकागदान् ।

ग्रहणीं पांडुरोगश्च अर्गामि जठर तथा ॥

अग्निश्च कुरुते दीप्तिं स्त्रीणां स्तन्यस्य शोधनम् ॥ ३२५ ॥

इति भद्रोत्कटाद्यं घृतम् ।

जोरकं हृषुषाधान्यं शताक्षधदराणि च ।

यवानीमेथिकाहिगु पञ्चिकाकाममर्देकम् ॥ ३२६ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं मजमोदाय धाप्यिका ।

चित्रकश्च एलांशानि तथा धान्यश्चतुष्पलम् ॥ ३२७ ॥

कसेरुक नागरश्च यटीदीप्यकमेव च ।

गुडस्य च शतं दद्याद् घृतप्रस्थं तथैव च ॥ ३२८ ॥

क्षीरद्विप्रस्थं युक्तं शनैर्मृदग्निना पचेत् ।
 पञ्चजीरकमित्येतत् सूतिकानां प्रशस्यते ॥ ३२८ ॥
 गर्भार्थिनीनां नारीणां वृंहणोये समाकृते ।
 विशतिं व्यापदोयोनेः श्वास कामं स्वरक्षयम् ॥ ३३० ॥
 हलीमकं पांडुरोगं दौर्वल्यं मूत्रकृच्छ्रताम् ।
 हन्ति पीतोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥
 उपयोगात् स्त्रियो नित्यं मलक्ष्मीमलवर्जिताः ॥ ३३१ ॥
 इति पञ्चजीरकगुडः । इति सूतिकारोगाः ।

—०—

अथ स्तनरोगनिदानमाह ।

सक्षीरी वाप्यदुग्धी वा प्राप्यदोषः स्तनौ स्त्रियाः ।
 प्रदूष्यमांसं रुधिरं स्तनरोगाय कल्पते ॥ ३३२ ॥
 यत्सरक्तं तनुस्त्रावं रुधिरामिषगन्धकम् ।
 शोथवृद्धिसमायुक्तं सरुजञ्च पयोधरम् ॥ ३३३ ॥
 पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधि विना ।
 लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणेः ॥ ३३४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्
 यद्विद्रधावपिहितं बहुधा विधानम् ।
 आमे विदाहिनि तथैव गते च पाकं
 तस्याः स्तनो सततमेव विनिर्दुहीतः ॥ ३३५ ॥
 जलोकोभिर्हरेद्रक्तं न स्तनावुपनायेत् ।
 दुःखस्तना तु या नारी सा शीघ्रं सुखीनी भवेत् ॥ ३३६ ॥

लेपोविशालमूलेन हन्ति षोडां स्तनोत्थिताम् ।
 निशाकनककल्काभ्यां लेपथापि स्तनार्त्तिहाः ॥ ३३७ ॥
 लेपो निहन्ति मूलं बन्ध्याकर्कोटोभवं शीघ्रम् ।
 निर्वाप्यतमलोहं सलिले तद्वा पिवेत्तत्र ॥ ३३८ ॥
 यष्टिर्निम्बं हरिद्रा च निर्गुण्डीधातकीसमम् ।
 चूर्णं स्तनत्रणे देयं रोपणं कुरुते भृशम् ॥ ३३९ ॥
 इति स्तनरोगाः ।

—०—

अथ स्तन्यरोगनिदानमाह ।

गुरुर्विदग्धाहारैस्तु दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् ।
 क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ ३४० ॥
 लवणं तनु चाम्बुञ्च कटुकं फेनिलं तथा ।
 मांसधावनसंकाशं पीतकञ्च तथैव च ॥ ३४१ ॥
 एतत्सप्तविधं क्षीरं बालस्य मलनिर्गमम् ।
 करोति लवणं क्षीरं बालस्य मलनिर्गमम् ।
 तनुक्षीरं कफं कुर्याद् दन्तञ्च मुखपाकताम् ॥ ३४२ ॥
 मांसधावनसंकाशं छर्दिञ्च कुरुते शिशोः ।
 फेनिलं श्वामकामन्तु मूत्रलं कटुपीतकम् ॥ ३४३ ॥
 कपायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ।
 कटुस्त्रलवणं पीतराजिमत् पित्तमंयुतम् ॥ ३४४ ॥
 कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सपिच्छंलम् ।
 क्षिलिङ्गं हृन्दजं विद्यात् सूर्यलिङ्गं विदोषजम् ॥ ३४५ ॥
 षट्पटुं चाम्बुनि क्षिप्तं मेकोभवन्ति पाण्डुरम् ।
 मधुरञ्च विषण्णञ्च प्रसन्नं तत्प्रशस्यते ॥ ३४६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलन्त्राह पिवेत् ।
 वातव्याधिहरं सर्पिः पीत्वा मृदुविरेचयेत् ॥ ३४७ ॥
 बस्तिकर्मततः कुर्यात् स्नेहादीन्धानिलापहान् ॥ ३४८ ॥
 पित्तदुष्टे मृताभोरु पटोलं निम्बचन्दनम् ।
 धात्रीकुमारय पिवेत् क्वाथयित्वा सगर्करम् ॥ ३४९ ॥
 अथवा त्रिफलोशीर निम्बं कटुकरोहिणी ।
 शारिवादिगणैः सिद्धं घृतं पीत्वा ततोऽनु च ॥
 पित्तघ्नं रेचनं कुर्याच्छीतं चाभ्यङ्गलेपनम् ॥ ३५० ॥
 कफदुष्टे घृतं पीत्वा यष्टीसेन्धवसंयुतम् ।
 रामपुत्रैः स्तनौ लिम्पे च्छिशोश्च दशनछदौ ॥
 सुखमेवं वमिहाल स्तीक्ष्णैर्धात्रोश्च वामयेत् ॥ ३५१ ॥

अथ अन्यदपिलक्षणमाह ।

स्तन्ये त्रिदोषसंदुष्टे शङ्खदामं जलोपमम् ।
 नानावर्णरुजं चार्द्धं विवदमुपवेश्यते ॥ ३५२ ॥
 भ्रमारीचकवम्यास्य पाकस्तृष्णाज्वरादयः ।
 स्युर्यत्रतं विजानीयात् क्षीरालमकसञ्चितम् ॥ ३५३ ॥

बालं तत्र च धात्रीञ्च मृदुरेकै विरेचयेत् ॥ ३५४ ॥
 क्रमं पेयादिकञ्चैव मुस्तादिः संप्रयोजयेत् ।
 पेयादिकं क्रमं कृत्वा मुस्तादिपाययेद् घृतम् ॥ ३५५ ॥
 धात्रीक्षीरविशुद्धार्थं मुह्यूपरसाग्निनी ।
 भार्गीदारुवृक्षापाठाः पिबेत्सातिविषाः शृताः ॥ ३५६ ॥
 पाठामूर्वा च भूनिम्ब दारुशण्डोकलिङ्गकाः ।

शारिवान्ततित्ताख्या क्वाथ स्तन्यविशोधन ॥ ३५७ ॥

हरिद्राद्य बचाद्य वा पिबेत् स्तन्यविशुद्धये ॥ ३५८ ॥

पटोलनिम्बासनदारुपाठा भूर्वा गुडूची कटुरोणीञ्च ।

सनागर वा कथितञ्च तोये धात्री पिबेत् स्तन्यविशुद्धि हेतो ॥ ३५९ ॥

इति स्तन्यविशुद्धि ।

भूमिकूष्माण्डमूल पिबति क्षीरेण या नारी

सशर्करैश्च पुष्टा ह्यतिशयदुग्धवती सा भवति ॥ ३६० ॥

कमलस्य तंडुलाना कल्क क्षीरेण दधि पिबेदबला ।

सा भवति प्रचुरक्षीरा घनकुचयुगलापि वार्द्धिक्ये ॥ ३६१ ॥

वनकर्पासिकेक्षूणा मूल सौवीरकेण च ।

विदारीकन्दस्वरस पिबेद्वा स्तन्यवर्धनम् ॥ ३६२ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूल चव्यशाण्डयवानिका ।

जोरके द्वे हरिद्रे च विड सौवर्चल तथा ॥ ३६३ ॥

एतेरवौषधै पिष्टैरारणाल विपाचयेत् ।

आमवातहरं हृथ कफघ्न बङ्गिदीपनम् ॥ ३६४ ॥

वज्रक काञ्चिकं नाम स्त्रीणामग्निप्रवर्धनम् ।

इति वज्रकाञ्चिकम् ।

स्वर्णशेफालिकापत्र स्रुहीपत्र तथैव च ।

चित्रकस्य च पत्राणि पत्र साक्षोटकस्य च ॥ ३६५ ॥

वासित काञ्चिकाग्नेन वातश्लेष्मगदापहम् ।

पत्रकाञ्चिकमाख्यात स्त्रीणा क्षीरविवर्धनम् ॥ ३६६ ॥

इति पत्रकाञ्चिकम् । इति क्षीरवर्धनविधिः ।

अन्तम्युपाकणाकल्कै सिद्ध तैल करोति वनिताया ।

पिचुधारणनस्यदानात् कुचद्वयं श्रीफलाकारम् ॥ ३६७ ॥

इत्यल्लुपाद्य तैलम् ।

श्रीपर्णीरसकल्पाभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम् ।
तत्तैलं तूलकेऽन्यस्य स्ननयोः परिधारयेत् ॥ ३६८ ॥
पतिताबुद्धितौ स्त्रोणां भवेयातां पयोधरी ।
गजकुम्भसमाकारौ उत्पन्नौ परिमण्डलौ ॥ ३६९ ॥

इति श्रीपर्णीतैलम् ।

शङ्खचूर्णस्य भागौ द्वौ हरितालश्च भागिकम् ।
शक्तेन सह संयुक्तं लोमशातनमुत्तमम् ॥ ३७० ॥
तैलं कुसुम्भकस्थाय क्षुद्दीक्षीर तथैव च ।
प्रगृह्यैकत्र भतिमां लोमशातनमुत्तमम् ॥ ३७१ ॥
कदलीदीर्घहन्तानां भस्मालं लवणं शमी ।
बीजं शीताम्भसापिष्टं लोमशातनमुत्तमम् ॥ ३७२ ॥
कासीसतुरगगन्धा सावरगजपिप्पली विपक्वेन ।
तैलेन यान्ति वृद्धिं स्ननकर्णपालिलिङ्गानि ॥ ३७३ ॥

इति कासीसाद्यं तैलम् ।

हरितालभाग एको भागाः पञ्चैव शङ्खचूर्णस्य ।
भागः पलाशभस्मत एतस्त्रेपात् कचानस्युः ॥ ३७४ ॥
करवीरशिङ्गादन्ती चीणिकीशातकानि च ।
रश्माचारोदके तैलं प्रशस्तं लोमशातनम् ॥ ३७५ ॥

इति करवीराद्यं तैलम् ।

कर्पूरभस्मातकशङ्खचूर्णं क्षारो यवानां सुमनःशिला च ।
तैलं विपक्वं हरितालमित्थं लोमानि निर्मलयति क्षयेन ॥ ३७६ ॥
इति कर्पूराद्यं तैलम् । इति लोमशातनप्रकारः ।

—०—

अथ निदानमाह ।

दिवास्वप्नादतिक्रोधा इषायामादतिमैथुनात् ।

क्षताश्च नखदन्ताद्यै र्वताद्याः कुपिता यदा ॥ ३७७ ॥
 पूयशोषितसंकाशं लकुचाकृति सन्निभम् ।
 उत्पद्यते यदा योनौ नास्त्रा कन्दस्तु योनिजः ॥ ३७८ ॥
 रूक्ष विवर्यं स्फुटितं वातिकन्तु विनिर्दिशेत् ।
 दाहरागज्वरयुतं विद्यात् पित्तात्मकन्तु तत् ॥ ३७९ ॥
 नीलपुष्पप्रतिकाशं कडूमन्तं कफात्मकम् ।
 सर्वलिङ्गसमायुक्त सन्निपातात्मकं वदेत् ॥ ३८० ॥

—०—

अथ चिकित्सासाह ।

खेदयेद्वातिकं कन्द पैत्तिकन्तु विरेचयेत् ।
 कफजे वमनं भूय सर्वजे सर्वमर्हति ॥ ३८१ ॥
 त्रिफलायाः कषायेण मधुयुक्तेन सेचयेत् ।
 प्रमदायोनि कन्देन व्याधिना परिसुच्यते ॥ ३८२ ॥
 गैरिकाञ्चनजन्तुघ्न कट्फलाम्बास्थिचूर्णतैः ॥
 पूरयेत् सततं योनिं निशाचोद्रसमायुतैः ॥ ३८३ ॥
 पूरयेच्चाभयारिष्टं मध्वारिष्टमथापि वा ।
 महामायूरमधवा वस्तौ पाने प्रयोजयेत् ॥ ३८४ ॥
 कोलमेकस्य मांसेन कन्दः शाम्यति योपिताम् ।
 मूपिकामांसमयुक्त तैलमातपभावितम् ।
 अभ्यङ्गादन्ति कन्द वा खेदं तन्मांससैन्यवैः ॥ ३८५ ॥
 प्राग्बोर्मांसं सपदि बहुधा सूक्ष्मखण्डीकृतयत्
 तैले पाच्य द्रवति नियतं यावदेतेन सम्यक् ।
 तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधानं
 हन्ति ग्रीडाकरभगफलं नात्र सन्देहशुद्धिः ॥ ३८६ ॥

पिष्टं शबूकमांसञ्च पक्वं तित्तिडिसंयुतम् ।
 लेपमात्रेण नारिणां योनिकन्दहरं परम् ॥ ३८७ ॥
 घोषकस्वरसः पीतो मस्तुना च समन्वितः ।
 योनिकन्दं निहन्त्याशु तन्नाडी चैव धूपतः ॥ ३८८ ॥
 सद्यो ब्रीडाकरं कन्द योनेर्वहुविकारजम् ।
 शलाकया तप्तया वा दहते कुगलो भिषक् ॥ ३८९ ॥
 एतत्कन्दस्य निर्दिष्टं समासेन चिकित्सितम् ।
 इति वङ्गसेने स्त्रीरोगनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ६६ ॥

—०—

अथ बालरोगनिदानमाह ।

विविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्त्तकः ।
 स्वास्थं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः ॥ १ ॥
 दन्तोद्धेदस्तु सर्वेषां रोगाणामपि कारणम् ।
 विशेषाज्जरविड्भेद कासहृदिशिरोरुजः ।
 अभिष्यन्दश्च शोथश्च विसर्पश्चापि जायते ॥ २ ॥
 पृष्ठभङ्गे विडालानां बर्हिणाञ्च शिखीघ्नमे ।
 दन्तोद्धेदे च बालानां न ते किञ्चिन्न दूयते ॥ ३ ॥
 वातदुष्टं शिशुं स्तन्यं पिवन्वातगुदातुरः ।
 चामस्वरः कृशाङ्गः स्यात् बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ ४ ॥
 स्विन्नोभिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् ।
 टण्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिवन् ॥ ५ ॥
 कफदुष्टं पिवेत् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् ।

निद्रार्दितो जङ्गः शूलः शुक्लाख्यः छर्दनः शिशुः ॥ ६ ॥

द्वन्द्वजे द्वन्द्वजं रूपं सर्वजे सर्वलक्षणम् ।

शिशोस्तीव्रामतीव्राच्च रोदनाल्लक्षयेद्भुजम् ॥ ७ ॥

क्षुद्ररोगे च कथिते ह्यजगल्लग्र हि पूतने ।

ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः ॥ ८ ॥

बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा ।

अनुबन्धे यथा व्याधिः प्रतिकुर्वीत कालवित् ॥ ९ ॥

यथा दोषं यथा रोगं यथोद्रेकं यथा बलम् ।

विभज्यदेशकालादीं स्तवं युज्येद् भिषग् हितम् ॥ १० ॥

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु ।

कार्यं तदेव भैषज्यं तेषु दाहादिकं विना ॥ ११ ॥

त एव दुष्टा दोषाश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ये ।

अतस्तदेव भैषज्यं मात्रास्तस्य कनीयनी ॥ १२ ॥

एकोऽधिकश्चर्मगतो विकारः कुकूणको नाम शिशोः प्रदिष्टः ।

नन्दिमहो नाम महानिहास्ति विज्ञायते वै शमयेद्यथावत् ॥ १३ ॥

—०—

अथ चिकित्साभाह ।

विडङ्गफलमावन्तु जातमावस्य भैषजम् ।

मामिनामि प्रयोक्तव्यं विडङ्गानां प्रवर्धनम् ॥ १४ ॥

अब्दादूर्ध्वं कुमारस्य दद्यात् कोनास्थिमात्रकम् ।

क्षीराच्चादः शिशोः कोनमन्नादो वदरोपमम् ॥ १५ ॥

क्षीरपस्थीपधं धावराः क्षीराच्चादस्य चोभयोः ।

आत्मन्यन्नाशनैर्दयं भौषधं भैषजं सदा ॥ १६ ॥

यथारोगं स्तनीं लिम्प्य स्त्रौषधैः, पाययेच्छिशुम् ।

मात्रया लङ्घयेद्वात्रीं शिशोर्नोक्तं विलङ्घनम् ॥ १७ ॥
 सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं न प्रतिवार्यते ।
 स्तन्याभावे पयः क्षार्गं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ॥ १८ ॥
 शृत्पिण्डेनाग्निवर्णेन क्षीरसिक्तेन सोपणा ।
 स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशम्यति ॥ १९ ॥
 दग्धेन कागशक्ता नाभिपाकेऽवचूर्णनम् ।
 त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वापि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥ २० ॥
 नाभिपाके निशालोध्रं प्रियंगुमधुकैः शृतम् ।
 तैलमभ्यञ्जने यस्त मेभिर्वा ह्यऽवचूर्णनम् ॥ २१ ॥

—०—

बालो यद्विराज्जातः स्तन्यं न गृह्णाति तस्य सैन्धवधात्रीमधु-
 छतपथ्या कल्के नोदपयेज्जिह्वाम् ।

—०—

कुष्टाभयावचात्राक्षीं कनकं चौद्रसर्पिषाः ।
 सपाठामधुना लोढा स्तन्यदोषनिवर्हणाः ॥ २२ ॥
 प्रियंगुस्त्रिजिंकासिन्धु मधुना लेहयेच्छिशुम् ।
 क्षीरामयं निहन्त्याशु विडङ्गेन युतं क्षमीन् ॥ २३ ॥
 पीतं पीतं वमति यः स्तन्यं तं मधुसर्पिषा ।
 द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकीलञ्च लेहयेत् ॥ २४ ॥
 शर्कराचौद्रसंयुक्ता तित्तालोढाज्वरं जयेत् ।
 लिम्पेन्मुहुर्मुहुर्बालं तत्कल्केन च बुद्धिमान् ॥ २५ ॥
 भद्रसुस्ताभयानिम्ब पटोला मधुकैः कृतः ।
 कायः सोष्णस्तु बालानां मण्डपज्वरनाशनः ॥ २६ ॥

—०—

पलङ्कपादचाकुष्टं गजचर्मविचर्म च ।

निम्बस्थ पत्रं माक्षीकं संयिर्युक्तान्तु धूपनम् ॥

ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालानान्तु विशेषतः ॥ २७ ॥

इति पलङ्कपादिधूपः ।

सर्पत्वक् सर्पपारिष्टपल्लवं तेजनीवचा ।

रसीनहिंग्वजालोम शृङ्गीमरिचमाक्षिकैः ॥

धूपः सर्वग्रहघ्नोऽयं कुमाराणां ज्वरापहः ॥ २८ ॥

इति सर्पत्वगादिधूपः ।

मध्वरिष्टदलखेत सर्पपैर्योजितोज्वरम् ।

बालानां शमयेद्भूपो नृतगोकुचिरोमजः ॥ २९ ॥

आम्रत्वक् कांचजम्बूत्य कपाशे पादशेषिते ।

शालिसिद्धां यवागूक्ष भुक्ता कुक्ष्यामयं जयेत् ॥ ३० ॥

समद्वाशास्मलीवेष्टं घातकीपद्मकेसरैः ।

पिटैरैतैर्यवागूः स्या दतीसारविनाशिनी ॥ ३१ ॥

विष्वक्ष पुष्पाणि च घातकीनां गजं सलोध्रं गजपिप्पली च ।

काथावलेही मधुना विमिश्री वास्त्रेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ ३२ ॥

इति बालविष्वादिः काथोऽयलेष्टयः ।

नागरातिविषासुस्ता बालकेन्द्रयवेः नृतम् ।

जलं हन्ति कुमाराणां कुचिरोगमसंशयम् ॥ ३३ ॥

अद्भोटमूलघातकी विष्वपेशोमहौपधम् ।

कघितं शीतलं येयं कुचिगेमविनाशनम् ॥ ३४ ॥

समद्वाघातकीलोध्रं शारिवाभिः नृतं जलम् ।

विहृदेऽपि शिशोर्दंय मतोसारं समाक्षिकम् ॥ ३५ ॥

पिष्टा पटीलमूलश्च शृङ्गवेरं वचामपि ।

विड्द्वान्यजमोदाश्च पिप्पलीतण्डुलानि च ॥ ३६ ॥

एतान्यालोढ्यसर्वाणि सुखतप्तेन वारिणा ।

पामप्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं योजयेद्विषक् ॥ ३७ ॥

पीडिताम्बास्थिकल्कोत्थ स्वरसं मधुना सह ।

कोष्ठभेदी शिशुः शीर्णो न चिरात् स्वस्थतां व्रजेत् ॥ ३८ ॥

शालीपर्णीं पृश्निपर्णीं घोटान्वक् कूयितं जलम् ।

घौद्रयुक्तं त्रिदोषघ्नं सर्वातिसारनाशनम् ॥ ३९ ॥

हरिद्राहययष्ट्याह्न सिंहीशक्यवैः शृतम् ।

शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं श्वासकासघ्नमीहरम् ॥ ४० ॥

धातकीविल्वधान्याक लोधेन्द्रयवबालकैः ।

लेहः क्षौद्रेण बालाणां ज्वरातीसारवातनुत् ॥ ४१ ॥

लोधेन्द्रयवधान्याक धात्रीक्षीवेरमुस्तकम् ।

मधुना लेहयेद्दालं ज्वरातिसारनाशनम् ॥ ४२ ॥

मधुसर्पिर्विड्भ्रानि सरलं देवदारु च ।

पटोलकुटजारिष्ट सप्तपर्णयवानिका ॥

ज्वरं हृदिमतिसारं शमयेच्चूर्णकं त्विदम् ॥ ४३ ॥

कल्कः प्रियङ्गुकोलास्थि मधुसुस्ताश्चनैः कृतः ।

घौद्रलीढः कुमारस्य हृदिदृष्ट्यातिसारनुत् ॥ ४४ ॥

हृत्ततोफलमूलत्वक् क्षणायन्यकसंभवः ।

तुगाक्षीरोयुतः क्षाथः पीतो हन्ति शिशोर्वमिम् ।

मूर्च्छां श्वासं ज्वरं कास मतिसारश्च पीनसम् ॥ ४५ ॥

धान्यमतिविषाग्नी गजाघ्नाश्चक्षुचूर्णितम् ।

बालानां हृद्यतीसारं मधुना हन्ति लेहनात् ॥ ४६ ॥

क्षीवेरशर्कराघौद्रं पीतं तंडुलवारिणा ।

शिशोः सर्वातिमारघ्नं दृढहृदिज्वरनाशनम् ॥ ४७ ॥

श्वेतकमलविप्लवकं संपिष्टं तंडुलावुना ।

मत्स्यण्डिमधुसंयुक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ ४८ ॥

विल्वमूलकपायेण लाजायैव सशर्कराः ।

आलोद्य पायवेदालं छर्द्यतोसारनाशनम् ॥ ४९ ॥

फलिन्यञ्जनमुस्तानां चूर्णं पीतं समाक्षिकम् ।

दृष्णां छर्दिमतोसारं शिशूनामुद्धतं हरित् ॥ ५० ॥

आम्रजम्बूप्रवालानि शालूकातिविषाणि च ।

क्षीरोणाञ्च प्रवालानि यष्टीमधुकमेव च ॥ ५१ ॥

दर्भामूलोगिराचुक्र कथितानि जलेन तु ।

शर्करामधुसंयुक्तं दृष्णाद्धिदनमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

दाडिमस्य तु बीजानि लोभं नागकेशरम् ।

चूर्णः सशर्कराक्षौद्रो लेहस्तथाविनाशनः ॥ ५३ ॥

हिंगुसैन्धवपालाश चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।

लोढं निवारयत्याशु शिशूनामुद्धतां दृषाम् ॥ ५४ ॥

शुद्धीं समुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ।

कासस्वरद्धिभिर्दितानां समाक्षिकां चातिविषां तथैकाम् ॥ ५५ ॥

सुस्तकातिविषायास कणाशुद्धीरजो लिहन् ।

सुच्यते मधुना दालः कासैः पञ्चभिरुत्थितैः ॥ ५६ ॥

क्षीरादस्य शिशोः कासं शुष्कं दृष्ट्वा गुदारुणम् ।

मापयूषं पिवेद्वाक्षी पिप्पलीघृतभर्जितम् ॥ ५७ ॥

द्राक्षां पिप्पलीशुण्ठीनां चूर्णं माक्षिकसर्षपा ।

लोढं निवारयेच्छीघ्रं कामं पञ्चविधं शिशोः ॥ ५८ ॥

व्याघ्रीकुसुमसञ्जातं रेश्मिरेदनेहिका ।

जग्ध्वापि चिरजं जातं शिशोः कासं व्यपोहति ॥ ५९ ॥

धान्यं शर्करयायुक्तं तडुन्नोदकसंयुतम् ।

पानमेतन्नदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः ॥ ६० ॥

गुडोदकञ्च कथितं व्योपमैश्वर्यसंयुतम् ।
 सुखोष्णं पाययेद्बालं कासरोगप्रशान्तये ॥ ६१ ॥
 कुलीरशृङ्गीचूर्णञ्च मूलकस्य फलं तथा ।
 युक्तोयं मधुसर्पिभ्यां लेहः श्वासापहं शिशोः ॥ ६२ ॥
 कृष्णादुरालभाद्राक्षा कर्कटाख्या तुगाक्षया ।
 चूर्णितामधुसर्पिभ्यां लीढा हन्ति शिशोर्गदान् ॥
 श्वासं कासं सतमकं ज्वरं वापि नियच्छति ॥ ६३ ॥
 द्राक्षादुरालभा चैव पिप्पल्योऽथ हरीतकी ।
 एतानि कृत्वा चूर्णानि योजयेन्मधुसर्पिषा ॥ ६४ ॥
 विराट् पञ्चराट् वा चूर्णमेतन्निपेक्षितम् ।
 कासः श्वासश्च बालानां तमकश्चोपशान्तये ॥ ६५ ॥
 हिङ्गुकर्कटशृङ्गी च गैरिकं मधुयष्टिका ।
 वृष्टिः क्षौद्रं नागरञ्च हिक्काश्वासविनाशनम् ॥ ६६ ॥
 चातुर्जातकसंयुक्तो गव्यस्य शक्तो रसः ।
 लेहोऽयं मधुना देयः हृदिप्रशमनः परः ॥ ६७ ॥
 नागरं पिप्पलीपाठा भांगी च मरिचानि च ।
 लेहोऽयं मधुना कास श्लेष्महृदिनिस्तृदनः ॥ ६८ ॥
 निशाकृष्णाक्षतं लाजा शृङ्गीमरिचमाक्षिकैः ।
 लेहः शिशोर्विधातव्यः हृदिकासरुजापहः ॥ ६९ ॥
 पत्रैर्वदरचाङ्गेरी काकमाचीकपित्तजैः ।
 शिशोरुग्मस्यतीसार नाशनं मूर्ध्निपनम् ॥ ७० ॥
 आम्रास्थिनाजसिन्धूतैः लेहक्षौद्रेण हृदिनुत् ।
 शिशोर्यक्ष्णपणं पीतं बीजपूररसेन वा ॥ ७१ ॥
 जंबूकतिन्दुकानाञ्च पुष्पाणि च फलानि च ।
 घृतेन मधुना लीढा सुच्यते हिक्कया शिशुः ॥ ७२ ॥

पिप्पलीमधुकानाञ्च चूर्णे समधुशर्करम् ।
 रसेन मातुलुङ्गस्य ह्रिकाहृदिनिवारणम् ॥ ७३ ॥
 चूर्णे कटुकरोहिण्या मधुना सह योजितम् ।
 ह्रिकां प्रशमयेत् क्षिप्रं हृदि चातिचिरोत्थिताम् ॥ ७४ ॥
 सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह ।
 लोढा सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हि हृदितः शिशुः ॥ ७५ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

विसर्पस्तु शिशोः प्राण नार्शनो वस्तिशीर्षजः ।
 पद्मवर्णी महापद्मो रोगो द्रोपचयोद्भवः ॥ ७६ ॥
 शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् ॥ ७७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

पटोलं त्रिफलारिष्टं हरिद्रां त्रिफलां पिवेत् ।
 क्षतविस्फोटवोसर्पं ज्वराणां शान्तये शिशुः ॥ ७८ ॥
 शारिवोत्पलकङ्गार भद्रथीमुस्तचन्दनैः ।
 प्रपुण्डरीकमञ्जिष्टा यष्टीमधुकसर्पणैः ॥
 कुमारैः प्रयस्तोऽयं लेपो वीसर्पनाशनः ॥ ७९ ॥
 अभ्यङ्गविषये कार्यं बालानां पद्मकं हृतम् ।
 विस्फोटरोगे निर्दिष्टं नात्र कार्या विचारणा ॥ ८० ॥
 न्यग्रोधोदुम्बरोग्गन्धर्वचवेतसजम्बुजैः ।
 त्वग्भिर्यष्ट्याद्यमञ्जिष्टा चन्दनोशीरपद्मकैः ॥ ८१ ॥
 श्लेष्मपिष्टैः यथा नाभं शिशोः कार्यं प्रलेपनम् ।
 सदाहरागविस्फोट वेदना व्रणशान्तये ॥ ८२ ॥

गृहधूमनिशाकुष्ट सर्जकेन्द्रयवैः शिशोः ।
 चन्दनोशीरपद्मैश्च सिंघापामाविचर्चिनुत् ॥ ८३ ॥
 वचाकुष्टपिडङ्गानां कीष्टक्वाथावगाहनम् ।
 कच्छूविचर्चिकाकंडू दद्रुभिर्मुच्यते शिशुः ॥ ८४ ॥
 तिलतंडुलयोर्नाडी मूलाभ्यां लेपनादद्रुतम् ।
 बालानां ब्राह्मणीयष्टी रोगः शाम्यति साम्प्रतम् ॥ ८५ ॥
 कणोपणसिताक्षीद्र सूक्ष्मैला सैन्धवैः कृतैः ।
 मूत्रग्रहे प्रदातव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ ८६ ॥
 घृतेन हिंगुविश्वैला हिंगुभांगीरजी लिहन् ।
 आनाहं पातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशोः ॥ ८७ ॥
 पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं घृतचौद्रपरिप्लुतम् ।
 रुदते त्रस्यते वापि लेहं दद्यात् सुखावहम् ॥ ८८ ॥
 कुक्कुन्दरमंलो माषा हरिद्राविल्वपत्रकम् ।
 इन्द्रं शिरीषपत्रञ्च धूमेनैतत्प्रयोजितम् ॥
 निहन्ति रोदनं रात्रौ बालस्याशु न संशयः ॥ ८९ ॥

—०—

अथ कुकूणकनिदानमाह ।

कुकूणकः क्षीरदोषा च्छिशूनामेव वर्त्तन्ति ।
 जायते तेन तत्रैवं कंडुरश्च स्रवेन्मुहुः ॥ ९० ॥
 शिशोः कुर्यात्तलाटाक्षि कूटनासावघर्षणम् ।
 न यत्कोऽर्कप्रभां द्रष्टुं न यत्किञ्चिन्नोलनक्षमः ॥ ९१ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

बह्मगोशक्तोष्णेन कुकूणं स्वेदयेत्ततः ॥ ९२ ॥

पिप्पलीमधुकानाञ्च चूर्णं समधुशर्करम् ।

रसेन मातुलुङ्गस्य ह्रिक्काहृदिनिवारणम् ॥ ७३ ॥

चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजितम् ।

ह्रिक्कां प्रशमयेत् क्षिप्रं हृदिं चातिचिरोत्थिताम् ॥ ७४ ॥

सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह ।

लोढा सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हि हृदि तः शिशुः ॥ ७५ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

विसर्पस्तु शिशोः प्राण नाशंनो वस्तिशीर्षजः ।

पद्मवर्णो मृदापद्मो रोगो द्रोणत्रयोद्वयः ॥ ७६ ॥

शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् ॥ ७७ ॥

—१—

अथ चिकित्सामाह ।

पटोलं त्रिफलारिष्टं हरिद्रां त्रिफलां पिवेत् ।

क्षतविस्फोटवोसर्पं ज्वराणां शान्तये शिशुः ॥ ७८ ॥

शारिवोत्पलकद्वार भद्रयीमुस्तचन्दनैः ।

प्रपुण्डरीकमञ्जिष्टा यटोमधुकसर्पपैः ॥

कुमाराणां प्रशस्तोऽयं लेपो वीसर्पनाशनः ॥ ७९ ॥

अभ्यङ्गविषये कार्यं बालानां पद्मकं हृतम् ।

विस्फोटरोगी निदिष्टं नात्र कार्या विचारणा ॥ ८० ॥

न्यषोधोदुम्बरोऽमृत्युञ्जयेतमजं बुजैः ।

त्वग्भिर्यष्ट्याक्षमञ्जिष्टा चन्दनोगीरपद्मकैः ॥ ८१ ॥

श्लेष्मपिष्टैः यथा नाभं शिशोः कार्यं प्रलेपनम् ।

मृदाहरागविस्फोट वेदना व्रणशान्तये ॥ ८२ ॥

गृहधूमनिशाकुष्ट सर्जकेन्द्रयवैः शिशोः ।
 चन्दनोशीरपद्मैश्च सिंघापामाविचर्चिनुत् ॥ ८३ ॥
 बचाकुष्टविडङ्गानां कोष्टकाथावगाहनम् ।
 कच्छूविचर्चिकाकण्डूदद्रुभिर्मुच्यते शिशुः ॥ ८४ ॥
 तिलतंडुलयोर्नाडी मूलाभ्यां लेपनाद्द्रुतम् ।
 बालानां ब्राह्मणीयष्टी रोगः शाम्यति साम्प्रतम् ॥ ८५ ॥
 कणोपणसिताक्षौद्र सूक्ष्मैला सैन्धवैः कृतैः ।
 मूत्रग्रहे प्रदातव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ ८६ ॥
 घृतेन हिंगुविश्वैला हिंगुभांगीरजी लिहन् ।
 आनाहं वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशोः ॥ ८७ ॥
 पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं घृतक्षौद्रपरिप्लुतम् ।
 रुदते व्रस्यते वापि लेहं दद्यात् सुखावहम् ॥ ८८ ॥
 पुष्कुन्दरमंली माया हरिद्राविल्वपत्रकम् ।
 इन्द्रं शिरोपपत्रञ्च धूमेनैतत्प्रयोजितम् ॥
 निहन्ति रोदनं रात्रौ बालस्याशु न संशयः ॥ ८९ ॥

—०—

अथ कुकूणकनिदानमाह ।

कुकूणकः क्षीरदोषा च्छिशूनामेव वर्तन्नि ।
 जायते तेन तत्रेव कंडुरश्च सवेन्मुहुः ॥ ९० ॥
 शिशोः कुर्यात्सलाटाक्षि कूटनासावधर्षणम् ।
 न शक्नोऽर्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्तन्मोलनचमः ॥ ९१ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

बह्वर्गशक्ततोष्येन कुकूर्धं स्वेदयेत्ततः ॥ ९२ ॥

मादृस्तन्यकटुस्रे ह काञ्चिकैर्भावितो जयेत् ।

स्नेदाद्दीपशिखातप्तो नेत्रामयमलक्तकः ॥ ८३ ॥

द्विनिशालोध्रयध्याह्व रोहिणी निम्बपल्लवैः ।

कुक्कुणके हिता वर्त्तिः पिष्टैस्ताम्बरजोन्वितैः ॥ ८४ ॥

फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च सशृङ्गवेरं वृहतीद्वयञ्च ।

आलेपनं श्लेष्महरं सुखीष्णं कुक्कुणके कार्य्यमुदाहरन्ति ॥ ८५ ॥

व्योषं सशृङ्ग समनःशिलालं करञ्जबीजञ्च सुपिष्टमेतत् ।

कटुर्दिप्तानामथ वर्त्मनान्तु श्रेष्ठं शिशूनां नयने विदध्यात् ॥ ८६ ॥

स्वरस वृहदारस्य काचिकेण समन्वितम् ।

आद्योतनेन बालानां कुक्कुणामयनाशनम् ॥ ८७ ॥

कृमिघ्नालशिनादावीं लाक्षागैरिककाञ्चिकैः ।

चूर्णाञ्जनं कुक्कुणे स्याच्छिशूनां पोथकीषु च ॥ ८८ ॥

मनःशिलाशङ्खनाभिः पिप्पल्योऽथ रसाञ्जनम् ।

वर्त्तिः चौद्रेण सयुक्ता बालसर्वाच्चिरोगनुत् ॥ ८९ ॥

इति कुक्कुणकचिकित्सा ।

—०—

अथ परिगर्भिकनिदानमाह ।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिवन्नपि ।

कामाग्निसादवमयू तन्द्राकाश्याऽरुचिभ्रमैः ॥ १०० ॥

तुद्यते कोटहृदया च तमाहुः पारिगर्भिकम् ।

रोगं परिभवाख्यञ्च युञ्ज्यात्तत्राग्निदीपकम् ॥ १०१ ॥

—०—

तस्य चिकित्सामाह ।

पारिगर्भिकरोगे तु युज्यते वङ्गिदीपनम् ॥ १०२ ॥

—०—

अथ तालुकण्टकनिदानमाह ।

तालुमध्ये कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् ।
तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १०३ ॥
तालुपातः स्तनद्वेषः कच्छात्पानं शक्नुवम् ।
दृढचिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्ध्वरता वसिः ॥ १०४ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

तालुपाके यवचारं मधुना प्रतिसारणम् ॥ १०५ ॥
हरोतकीवचाकुष्ठं कल्कं माघ्निकसंयुतम् ।
पीत्वा कुमार स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ १०६ ॥
शारिवातिलनोभ्राणां कपाथो मधुकस्य च ।
विस्त्राविते मुखे शम्भो धावनार्थं शिशोः सदा ॥ १०७ ॥
मुखपाके तु बालानां माम्बसारमयो रजः ।
गैरिकं चैद्रसंयुक्तं भैषजं सरसाञ्जनम् ॥ १०८ ॥
अश्वत्थत्वग्दलचोद्रे मुखपाके प्रलेपनम् ।
दार्वीयध्यामयाजाजी पत्रचोद्रे स्तया परम् ॥ १०९ ॥
गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम् ।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ११० ॥
शंखर्यध्यञ्जनैर्धूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत् ॥ १११ ॥
मोजिह्वादन्तकालेपः पेय वा सितचन्दनम् ।
शंखसौवीरयध्याह्नौ लेपो देयोऽहिपूतने ॥ ११२ ॥
गुदपाकोत्कटे कुथ्या द्रक्तास्त्राव जलौक सा ॥ ११३ ॥

—०—

अथ कश्चिद्रोगनिदानमाह ।

दृष्टं मलादिभिर्मातुः स्नान्यं संपिबतः शिशोः ।

यदा हि कुपितं पित्तं गुदं समभिधावति ॥ ११४ ॥

तदा सञ्जायते तत्र जलीकोदरसन्निभः ।

व्रणः सदाह आरक्तो ज्वरकासकरः परः ॥ ११५ ॥

करोति पीतकश्चापि वर्चः स्तम्भं भवेदपि ।

व्रणः पश्चात्तर्कं नाम व्याधिः परमदारुणः ॥ ११६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

तत्र संपातयेद्युक्त्या जलीकास उदारधीः ।

धीरहृच्चकपायेण किञ्चिदुष्णेन धावयेत् ॥ ११७ ॥

पिष्टा मधुरकं वापि लेपः पश्चात्तर्के हितः ।

अन्दनं शारिवेदे च शखनाभिसमायुतम् ॥

पश्चात्तर्के प्रलेपोऽयं मेघा लेह्यश्च शस्यते ॥ ११८ ॥

अशनस्य तु पुण्याणि शल्यचूर्णानि कारयेत् ।

गुटिकां कारयेद्देह्य स्तां च भक्तस्य वारिणा ॥

एतां पश्चात्तर्के दद्याद्दालैषु मतिमान् भिषक् ॥ ११९ ॥

अलम्बुधाजटाकल्कः सर्जचूर्णसमन्वितः ।

बहुधा कटुतैलेन मिश्रयित्वा च पाचितम् ॥

संदद्यात्तन्तुलीभावं गते विद्यां प्रलेपनम् ॥ १२० ॥

अभ्यन्य तिलतैलेन मर्जचूर्णावचूर्णिताम् ।

विच्छिद्यश्चेत् स्थिरैरण्ड वीजाभ्याश्च प्रलेपनात् ॥ १२१ ॥

शामलक्याः पलान्यष्टौ गोनूत्रे मस्रभावयेत् ।

भावयित्वा तपे पसा हिदिर्लिप्तप्रशाम्यति ॥ १२२ ॥

सरिचं नवनीताख्यं शोथघ्नं भक्षयेच्छिशुः ।
 सुस्ताकृष्णखण्डबीजानि भद्रदारुकलिङ्गकान् ॥
 पिष्ट्वा तोयेन लेपोऽयं शोथघ्नः परमः शिशोः ॥ १२३ ॥
 अम्लकाञ्जिकसप्रिष्ट शतपुष्पां ससैन्धवम् ।
 कुष्ठं स्नेहं तदत्युष्णं लोमशोद्धर्तनं शिशोः ॥ १२४ ॥
 मसूरं गुह्यपानीये विरसं वाथं पेपितम् ।
 सनिशं वाथवा तद्वद्वचचूर्णं शिशोर्हरेत् ॥ १२५ ॥

—०—

अथान्यद्रोगविशेषाणां निदानमाह ।

अङ्गुलीग्रहपादोयः स्थाल्याभक्तं निवेश्य तत् ।
 कृतमूत्रार्थभूभागे जानुभ्यां धरणी गतः ॥
 तण्डुलीत्याय यः खादेत् सशय्यामूत्रणं त्यजेत् ॥ १२६ ॥

—०—

अथ तस्य चिकित्सामाह ।

कृतमूत्रार्थभूभागे मृदं मृदा तुपोदके ।
 सचूर्णं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वात्तल्यविमूत्रणम् ॥
 न करोति नरी जातु मृष्टमेनं निरन्तरम् ॥ १२७ ॥
 इन्द्रगोपं ससिद्धार्थं मधुसर्पिः समायुतम् ।
 पक्वं कच्छपतैले तु युष्ट्यायुर्वलवर्धनम् ॥ १२८ ॥

—०—

अथ निदानमाह

कपालयोनिना दुष्टा गर्भस्तस्याश्च जायते ।
 सवर्णो निर्व्यथः शोथं स्तुं विद्यादुपशीर्षकम् ॥ १२९ ॥

यथा दोषोद्भवं विद्या त्पिङ्गिकार्वुदविद्रधीम् ।

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

उपशीर्षेनावनं शस्तं वातव्याधिचिकित्सितम् ।

पक्वे विद्रधिवत्तस्मिन् क्रमं कुर्याद्ययोदितम् ॥ १३० ॥

व्योषशिवोग्रारजनोकल्कं वा पीतमथ पयसा ।

हनुर्निपिक्तं कुरुते पाण्डुताबलस्य चाभ्यस्तम् ॥ १३१ ॥

स्रोतस्म, कफरुद्धेषु शिशोः शीतादिरचनात् ।

ज्वरेऽरुचौ प्रतिश्याये कामश्वसनसम्भवे ॥ १३२ ॥

प्रशुष्यति यदा बालः स्वस्यः स्निग्धमुखेक्षणः ।

पञ्चकोलकतिक्तानां चूर्णं मधुघृतं युतम् ॥

तदा तस्य प्रयोक्तव्यं ज्वरारुच्यादिशान्तये ॥ १३३ ॥

मैश्ववं व्योषशार्द्धं पाठागिरिकरञ्जकान् ।

शुष्यते मधुसर्पिर्भ्यां गुडूच्यादिञ्च योजयेत् ॥ १३४ ॥

यदा तु दुर्बलोवालः क्षुधयापीडितोऽग्निवान् ।

विदारोकन्दगोधूम यवचूर्णं घृतयुतम् ॥

पाययेदनु च क्षीरं शृतं समधुशर्करम् ॥ १३५ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

दन्तमूलाश्रितो वायु दन्तवेष्टान्विगोपयन् ।

यद्वा शिशोः प्रकुपितो नोत्तिष्ठन्ति तदा द्विजाः ॥ १३६ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

• दन्तपाल्शितु मधुना चर्मेन पतिसारयेत् ।

धातकीपुष्पपिप्पल्यो धात्रीफलरसेन वा ॥ १३० ॥

लावतित्तिरवलूररजः पुष्परसप्लुतम् ।

द्रुतं करोति बालानां दन्तकेसरवन्मुखम् ॥ १३८ ॥

—०—

अथाकालदन्तोत्पातलक्षणमाह ।

दन्तोत्पातभवे रोगे न बालमतिपीडयेत् ।

पाते दन्ते हि शाम्यन्ति स्वयं तदन्तकागदाः ॥ १३९ ॥

मद्यो जातस्य दृश्येत यस्य दन्तस्य सम्भवः ।

तं बालं राक्षसं विद्यात् सर्वलोकभयावहम् ॥

अचिरैव कालेन माता तस्य विनश्यति ॥ १४० ॥

एकमासे द्विमासे च त्रिमासे दन्तदर्शनात् ।

पिता तस्य विनश्येत वैवस्वतसमो हिंसः ॥ १४१ ॥

चतुर्थे भ्रातरं हन्याद्यदादं तस्य दर्शनात् ।

मासे तु पञ्चमे हन्याद्भ्रातरं भ्रातरं तथा ॥ १४२ ॥

षष्ठे मासे तु दन्तस्य दर्शनं हि यदा भवेत् ।

मातापित्रोर्धनञ्चैव नष्टं भवति निश्चितम् ॥ १४३ ॥

सप्तमे यदि दृश्येत दन्तानां हि समुद्भवः ।

शिरोर्वा तपते चैव दासी दासान् गुरुंस्तथा ॥ १४४ ॥

अष्टमे नवमे चैव दशमेकादशे तथा ।

द्वादशे त्रयोदशे चैव तथा चैव चतुर्दशे ॥

दन्ताद्यैव हि दृश्यन्ते तदा दन्ताः शमावहाः ॥ १४५ ॥

—०—

अथ प्रायश्चित्तम् ।

सदन्तो जायते बालो जातेऽप्यस्य द्विजोद्भवः ।

कुर्वन्ति तस्मिन्नुत्पाते शान्तिं च द्विजजातयः ॥ १४६ ॥

शिशुं सदक्षिणं दद्यान्ने गमेपञ्च, पूजयेत् ।

वत्सस्य मधुलाजानां प्राङ्मुख दधिदीपयोः ॥

चुम्बेत्कुमारं त्रीन्वारान् प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ॥ १४७ ॥

नौकाभारोहयेद्बालं सह धात्रया गजोत्तमम् ।

भोजयेद्भोजनं धात्रीं सर्पिपाययसाऽथवा ॥ १४८ ॥

इत्यकालदन्तोत्पातशान्तिप्रकारम् ।

—०—

अथ निदानमाह ।

रूक्षाशिनो हि बालस्य चालपत्यनिलः शिराः ।

हन्वाः शय्याप्रसुप्तस्य दन्तैः शब्दं करोत्यतः ॥ १४९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

कर्कटशाकविपक्षं क्षीरेण चरणतललेपनादचिरात् ।

दन्तदष्टागत शब्दं शमयति बहुधैव दृष्टमिदम् ॥ १५० ॥

योषिद्भगो बक्षरादूर्ज्वं बालो नो याति दीपताम् ।

मन्दाग्निर्बहुविण्मूत्रो दृश्यमानास्थिपञ्जरः ॥ १५१ ॥

शुष्कः स्थिरमहद्रोगः पूर्वन्तं मृदुशोध्य च ।

क्षणास्थिहृत्पयो मांसं वस्तून् स्नेहं च योजयेत् ॥ १५२ ॥

पादकल्कीऽथगन्धायः क्षीरे दशगुणि पचेत् ।

घृतं पेयं कुमारणां पुष्टिक्वचलवर्धनम् ॥ १५३ ॥

इत्यश्वगन्धाद्यं घृतम् ।

रास्त्राश्वगन्धाकाकोली पयस्या मुद्गपर्णिभिः ।

विडङ्गजीरकाभ्याञ्च घृतमृषभकेन च ॥

शिशूतमाङ्गनिर्यूहे सिद्धं पुष्टिविवर्धनम् ॥ १५४ ॥

इति रास्त्राद्यं घृतम् ।

गौरीयष्टोदचालोध्रं पख्ण्यौ राजाटनं सिता ।

चन्दनं पद्मकं लाक्षा सपद्मं कुसुदोत्पलम् ॥ १५५ ॥

लोवकर्पभकौ मेदा काकोलीशारिवाहयम् ।

पञ्चत्वग्दशमूलाम्बु क्षीरे प्रस्थं घृतं पचेत् ॥ १५६ ॥

योजितं पित्तवीसर्पे मुखपाके ग्रहार्तिषु ।

शस्तं गौर्यादिकं नाम बालानां सर्वरोगनुत् ॥ १५७ ॥

इति गौर्याद्यं घृतम् ।

लाक्षाकुष्ठविडङ्गानि सरलं रजनोदयम् ।

सूक्ष्मैलापद्मकं लोध्रं पद्मकं नागकेशरम् ॥ १५८ ॥

दधित्यतुत्यशैरोप शैरेयोद्दालपत्रकम् ।

घृतप्रस्थं पचेदैतेर्यावत्पाकञ्च गच्छति ॥ १५९ ॥

कोट्राखुसर्पदष्टेषु स्फोटेषु विविधेषु च ।

विसर्पेषु कुमाराणां लूतामूत्रकृतेषु च ॥

गण्डमालासु नारीषु सर्पिरेतद्यथासृतम् ॥ १६० ॥

इति लाक्षाद्यं घृतम् ।

अजाक्षीरसमं सर्पि चांगिरी खरमाढके ।

समद्वाधातकीलोध्रं कपित्थोत्पलसैन्धवैः ॥ १६१ ॥

सव्योषकुष्ठविल्वाह्रैः पिष्टैः प्रस्थोन्मितं घृतम् ।

पचेद् ग्रहण्यतीसारान् हन्ति पथ्यभुजः शिशोः ॥ १६२ ॥

इति चांगिरीघृतम् ।

पाठामतिविषां कुष्टं सरलं देवदारु च ।

द्विपिष्यल्यौ तेजवतीं चित्रकं विश्वमेपजम् ॥ १६३ ॥

उभे हरिद्रे सरलं फलानि कुटजस्य च ।

^१ गण्डोरोमजमोदाच्च विडङ्गं कटुरोहिणीम् ॥ १६४ ॥

वचां सर्पसुगन्धाच्च श्रेयसीं भरिचानि च ।

मातुलुङ्गस्य मूलानि दाडिमस्य रसेन तु ॥ १६५ ॥

श्लक्ष्णपिष्टानि सयोज्य क्षीरे सर्पिर्विषाचयेत् ।

नृद्वग्निर्यं कुमारः स्यात् कृमिकोष्ठश्च यो भवेत् ॥ १६६ ॥

अरोचकगृहीतश्च तथा यथातिसार्थ्यते ।

एतत्सर्पिः प्रयोक्तव्यं कुमारो बलवान् भवेत् ॥ १६७ ॥

पाण्डुरोगाच्च गुल्माच्च तथा श्वयथुसञ्चयात् ।

कृशभावाच्च दैन्याच्च स्वरभेदात्तथैव च ॥ १६८ ॥

प्रज्वालावर्णभेदाच्च चिप्रमेव विमुच्यते ।

इति पाठाद्यष्टतम् ।

सिद्धार्थकवचावाक्षी शङ्खपुष्पीपुनर्नवा ।

पयस्या मधुयथ्याञ्च कटुतैलफलवयम् ॥ १६९ ॥

गारिवे रजनीपाठा भृङ्गदारुसुवर्चना ।

भस्त्रिष्टात्रिफलाश्यामा हृषपुष्पं मगैरिकम् ॥ १७० ॥

एभिः पक्वा घृतप्रमथ सम्यङ्गन्त्राभिमन्वितम् ।

द्विमाम गर्भिणीनारो पण्यमानुपयोजयेत् ॥ १७१ ॥

सर्वज्ञं जनयेत्पुनः सर्वामयविवर्जितम् ।

न ग्रहरभिभूयेत बलवर्णान्वितः सुखी ॥ १७२ ॥

अस्य प्रयोगात् कुक्षिस्थः स्फुटवाग् व्याहरत्यपि ।
योनिदुष्टाय या नार्थ्याः शुक्रदुष्टाय ये नराः ॥ १७३ ॥
बन्ध्यापि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम् ।
खञ्जगद्गदमूकत्वं पानादेवापकर्षति ॥ १७४ ॥
सप्तरात्रिप्रयोगेण नरः श्रुतिधरो भवेत् ।
नाग्निर्दहति तद्देशं न वज्रमपहन्ति च ॥
न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते सोमसंज्ञकः ॥ १७५ ॥

फलत्रयमत्र द्राक्षाकाशमपरूपकाणि ॥

इति सोमष्टतम् ।

बचाकुष्टं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि वा ।
शारिवासैन्धवं चैव पिप्पलीष्टतमष्टमम् ॥ १७६ ॥
मेध्यं घृतमिदं सिंहं पातव्य मासमेव च ।
दृढश्रुतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भवेत् ॥ १७७ ॥
न पिशाचा न रक्षांसि न दैत्या न च मानवाः ।
बाधन्ते च कुमाराणां पिवतामष्टमङ्गलम् ॥ १७८ ॥

इत्यष्टमङ्गलष्टतम् ।

शङ्खपुष्पीवचाब्राह्मी कुष्टं त्रिफलया सह ।
द्राक्षा सशर्कराशुण्ठी जीवन्ती जीवकं बला ॥ १७९ ॥
शठीदुरालभाबिल्व ढाडिमं सुरसा तथा ।
सुस्तं पुष्करमूलञ्च सूक्ष्मैला गजपिप्पली ॥ १८० ॥
एषां कर्षससैर्भागैर्घृतप्रक्षं विपाचयेत् ।
कपाये कण्टकार्याय चीरं तस्माच्चतुर्गुणम् ॥ १८१ ॥
एतत्कुमारकल्याण घृतरत्नं सुखप्रदम् ।
बलवर्णकरं धन्यं कोट्याग्नेरतिवर्द्धनम् ॥ १८२ ॥

छायासर्वग्रहाऽलक्ष्मी क्षमिदन्तगदापहम् ।

सर्ववालामयहरं दन्ताद्भेदे विशेषतः ॥ १८३ ॥

वसामज्जायवा तैल मेभिरेव विपाचितम् ।

पूर्वार्थक्यथा शस्ये हे शकालोपपादितम् ॥ १८४ ॥

इति कुमारकल्याणकं घृतम् ।

खदिरार्जुनतालीस कुटस्थन्दनजे रसे ।

सत्तीरं साधितं सर्पिः श्वयथुच्च नियच्छति ॥ १८५ ॥

इति खदिराद्यं घृतम् ।

वराहारस्य, सिद्धार्थकवचापयस्यान्नाद्यप्रपाभागं शतावरीश-
रिवापिप्पलीकुटसैन्यवैः सिद्धं सर्पिः पातुं प्रयच्छति । सिद्धार्थ-
काद्यं घृतम् ।

क्षीराब्जादस्य, मधुकवचात्रिफलासिद्धम् । इति मधुकाद्यं
घृतम् । अन्नादस्य, द्विपञ्चमूलीक्षीरतगरभद्रदारुमरिचविडङ्ग-
मधुकद्राक्षासिद्धम् । तेन बालस्यारोग्यबलमेधायुंषि भवन्ति ।
इति द्विपञ्चमूलाद्यं घृतम् ।

—०—

वचाद्विहृहतीपाठा कटुकातिविपाचनैः ।

मधुरैश्च घृतं सिद्धं शस्तं दशनजन्मनि ॥ १८६ ॥

इति वचाद्यं घृतम् ।

श्यामाजयामतिक्लानां पुष्पाणां कायसाधितम् ।

यष्टीगर्भं घृतं पीत्वा कामग्रामी जयेच्छिरः ।

रक्तपित्तं पिषामाद्य नूर्च्छां निरवशेषतः ॥ १८७ ॥

इति श्यामाद्यं घृतम् ।

नागरं सुयहाभागी नैचुलानि फलानि च ।

कल्कैरचसभैरतैः प्रस्यार्धं सर्पिषः पचेत् ॥ १८८ ॥

द्विगुणेन जलेनैव जीर्णाहारः पिवेन्नरः ।

घृतमेतन्निहन्त्याशु कासश्वासापतन्वकान् ॥ १८८ ॥

इति नागराद्यं घृतम् ।

क्षीरद्वयं देवदारु विश्वाजाजी सदीप्यकम् ।

ग्रन्थिकं पिणलीतिक्ता द्रव्यैरेतैः समैर्घृतम् ॥ १८९ ॥

सौवीरदधिमद्यैश्च कल्कैरेतैः पचेद्विपक्व ।

प्रयुक्तं हन्ति तत्सर्पिः शिशोः परिभवास्थकम् ॥ १९० ॥

इति क्षीरद्वयाद्यं घृतम् ।

विभीतकं बचाकुष्ठं हरितालं मनःशिला ।

एभिः तैलं विपक्वन्तु बालानां पूतिकर्णके ॥ १९१ ॥

इति विभीतकाद्यं तैलम् ।

लाचारससमं तैलं सिद्धं मस्तुचतुर्गुणम् ।

रास्त्राजन्दनकुष्टाब्द वाजिगन्धानिशा युतैः ॥ १९२ ॥

शताङ्गादारुकुष्टाच्च मूर्वातिक्ताहरेणुभिः ।

बालानां ज्वररक्षोघ्न मभ्यङ्गाद्वलवर्णकत् ॥ १९३ ॥

इति लाचाद्य तैलम् । इति बालकरोगचिकित्सा ।

—०—

अथ बालग्रहनिदानमाह ।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्तस्यति रोदति ।

नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥ १९४ ॥

ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान् खादेत् कूजति जुम्भते ।

भ्रुवौ क्षिपति दन्तोष्ठं फेनस्यमति चासकृत् ॥ १९५ ॥

चामोऽतिनिशिजागर्त्ति शूलाङ्गो भिन्नविट् स्वरः ।

मांसशोणितगन्धश्च नचाश्राति यथा पुरा ॥ १८७ ॥
सामान्यग्रहपुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ।

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

रसोननिम्बपत्राणि जतुर्वशावलेखनम् ।
सिद्धार्थनिम्बपत्राणि वशत्वग् जतुना सह ॥ १८८ ॥
मर्षनिर्मीककोशानि निर्मील्य गौरमर्षपाः ।
धूपत्रय समर्पिष्क मेतत्सर्पग्रहापहम् ॥ १८९ ॥
द्वोपि व्याघ्राऽहि सिंहर्क्ष चर्मभिर्घृतमिश्रितैः ।
पृतिकरञ्जसिद्धार्थं वचाभक्षातदोप्यकैः ॥
सकुष्ठैः सष्टतैर्धूपः सर्वग्रहविमोक्षणः ॥ २०० ॥
काकजङ्गमलाखेता कपित्थक्षीरपादिकैः ।
सकरञ्जकदंबैश्च धूपं स्नातस्य वाचरेत् ॥ २०१ ॥

—०—

अथ स्कन्दग्रहजुष्टनिदानमाह ।

एक नेत्रस्य गात्रस्य स्त्रावः स्कन्दनकम्पनम् ।
अर्द्धदृष्ट्यानिरीक्षेत वक्त्रास्योरक्तगन्धिकः ॥ २०२ ॥
दन्तान् खादति विस्त्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति ।
स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चान्त्रमेव च ॥ २०३ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्कन्दोपग्रहसृष्टानां कुमाराणाञ्च शम्यते ।
वातघ्नद्रुमपत्राणां निष्कृत्वाः परियेचने ॥ २०४ ॥

तेषां मूलेन सिद्धञ्च तैलमभ्यञ्जने हितम् ।

सर्वगन्धसुरामण्ड कैटर्यावापमिथ्यते ॥ २०५ ॥

देवदारुणिराम्नायां मधुरेषु गणेषु च ।

सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पानमस्मै प्रदाप्रयेत् ॥ २०६ ॥

सर्पपाः सर्पनिर्मोको वचाकाकादनोष्टतम् ।

उष्ट्राजाविगवां वापि रोमाण्युद्धपनं शिशोः ॥ २०७ ॥

रक्तानि मात्स्यानि तथा पताकारक्ताश्च गन्धाविविधाश्च भक्ष्याः ।

घण्टा च देवाययलिर्निवेद्यः सकुक्कुटः स्कन्दग्रहे हिताय ॥

स्नानं त्रिरात्रं निशि च त्वरेण कुर्यात्परं शालियवैर्निवेद्यम् ॥ २०८ ॥

गायत्रिपृताभिरयाद्विरग्निं प्रज्वालयेदाहुतिभिश्च धोमान् ॥ २०९ ॥

सोमबल्लोमिन्द्रवल्लीं वृन्दाकं बिल्वजं शमीम् ।

मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितान्यथ धारयेत् ॥ २१० ॥

एलावालुकदार्यला कुटलाक्षाहरेणुभिः ।

राम्नाशिला समञ्जिष्टा क्लीवेरगुरुचन्दनैः ॥

स्कन्दग्रहे प्रलेपोऽप्यं श्लक्ष्णपिष्टैः भस्महितः ॥ २११ ॥

विल्वाग्निमन्यतर्कारी कासीमैरण्डपल्लवैः ।

पाटल्या स्फोतवासाभिः सायं पानं प्रशस्यते ॥ २१२ ॥

जीवनोयविप्रकन्तु घृतपानं प्रशस्यते ।

शतपुष्पादिभिः सिद्धं तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ २१३ ॥

रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां ग्रहनाशिनीम् ।

ग्रहन्यहनि कर्त्तव्या याभिः पङ्क्तिरतन्द्रितैः ॥ २१४ ॥

तपसां तेजसाश्चैव वपुषां यशसां तथा ।

विधानं योऽव्ययो देवः सते स्कन्दः प्रसीदतु ॥ २१५ ॥

ग्रहसेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः ।

देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान् गुह्यः ॥ २१६ ॥

देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः ।

गङ्गोमाकृतिकांनाञ्च सते शर्माप्रयच्छतु ॥ २१७ ॥

रक्तमाल्यां वरः श्रीमान्रक्तचन्दनभूषितः ।

रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौञ्चनाशनः ॥ २१८ ॥

इति स्कन्दग्रहजुष्टचिकित्सा ।

—०—

अथ स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टनिदानमाह ।

नष्टसंज्ञो वमेत् फेनं संज्ञाविनतिरोदति ।

पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ २१९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

विल्वः शिरीषो गौलोमी सुरसादिव्ययो गणः ।

परिपेके प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये ॥ २२० ॥

सुरसादिगणमाह ।

—०—

सुरमाश्वेतसुरमा पाठाफञ्जीफणिज्जकः ।

सौगन्धिकं भूसृष्टको राजिकाश्वेतबर्बरी ॥ २२१ ॥

कट्फलं खुरपुष्पा च कासमर्दय शलकी ।

विडङ्गमयनिर्गुण्डी कर्णिकार उदम्बरः ॥ २२२ ॥

वल्गु च काकामाची च तथा च विप्रमुष्टिका ।

कफकृमिहरः स्यात् सुरसादिरयं गणः ॥ २२३ ॥

—

वल्गुमूत्रविप्रक्षान्तु तैलमभ्यञ्जने हितः ॥ २२४ ॥

चौरहृत्कपाये तु काकोत्पादौ गृणे तथा ।

विपक्तव्यं घृतञ्चापि पानीयं पयसा सह ॥ २२५ ॥
 उत्सादनं वचाहिं गु युक्तं स्कन्दग्रहे हितम् ।
 गृध्रोलूकपुरीषाणि केशाहस्तिनखोद्धृतम् ॥
 हृषभस्य तु रोमाणि योज्यान्नुद्धूपनेऽपि च ॥ २२६ ॥
 अनन्तां कुनटीं विम्बीं मर्कटीञ्चापि धारयेत् ।
 पक्वापक्वानि मांसानि प्रसन्नं रुधिरं तथा ॥ २२७ ॥
 भूतोदनो निवेद्यथ स्कन्दापस्मारिणे वटे ।
 चतुष्पथे च कर्त्तव्यं स्नानमस्य यतात्मना ॥ २२८ ॥
 स्कन्दापस्मारसंज्ञोयः स्कन्दस्य दयितः सखा ।
 विशाखसञ्जश्च शिशोः शिवोऽस्तु विरुताननः ॥ २२९ ॥
 इति स्कन्दापस्मारग्रहरक्षाप्रकारः ।

—०—

अथ शकुनिग्रहनिदानमाह ।

स्रस्त्राङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः
 सास्त्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् ।
 स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकै
 विज्ञेयो भवति शिशुर्युतः शकुन्या ॥ २३० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

शकुन्यभिपरीतस्य कार्यो वैद्येन जानता ।
 वेतसान्त्रकपित्तानां निःक्वाथः परिपेचने ॥ २३१ ॥
 कषायमधुरैस्तैल कार्यमभ्यञ्जने शिशोः ॥ २३२ ॥
 मधुकोशीरङ्गीवेर शारिवोत्पलपद्मकैः ।

लोभं प्रियंगुमञ्जिष्ठा गैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम् ॥ २३३ ॥
 व्रणे पूक्तानि चूर्णानि पथ्यानि विविधानि च ।
 स्कन्दग्रहे धूपनानि तानीहापि प्रयोजयेत् ॥ २३४ ॥
 यतावरीमृगैर्वाह नागदन्तीनिदग्धिकाः ।
 लक्ष्मणां सहदेवीश्च बृहतीश्चापि धारयेत् ॥ २३५ ॥
 तिलतंडुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला ।
 वलिरप्य करञ्जेषु निवेद्यो नियतात्मना ॥ २३६ ॥
 निकुञ्जे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथा विधिः ।
 खेतशिरीषगन्ध्याष्ट कुष्ठगुग्गुलुसर्पपैः ॥ २३७ ॥
 सिद्धमभ्यञ्जने तैलं धारणं पूर्वमेव तु ।
 शकुनिग्रहशान्त्यर्थं प्रदेहं कारयेद्वितम् ॥ २३८ ॥
 स्कन्दापस्मारशमनं घृतञ्चापिह योजयेत्
 कुर्याच्च विविधां पूजां शकुन्याः कुशमैः शुभैः ॥ २३९ ॥
 अन्तरोक्षचरादेवो सर्वालङ्कारभूषिता ।
 अधोमुखोतीक्ष्णतुण्डा शकुनी ते प्रसीदं तु ॥ २४० ॥
 इति शकुनीग्रहहरणा ।

अथ रेवतीग्रहनिदानमाह ।

व्रणैः स्कोटेयितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदस्यक् ।
 भिन्नवर्चाज्वरीदाही रितोर्ग्रहन्क्षणम् ॥ २४१ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

पङ्कगन्धाजगृह्णी च शारिवाय पुनर्नवा ।
 सङ्गे विदारो च तथा कपायं परिपेचने ॥ २४२ ॥

तैलमभ्यञ्जने कार्यं कुष्ठे सर्जरसे तथा ॥
 पलकपाये नलदे तथा गिरिकदम्बके ॥ २४३ ॥
 धवाश्वकर्णककुभ धातकीतिन्दुकेषु च ।
 काकोल्यादौ गणे चापि पानीयं सर्पिरिष्यते ॥ २४४ ॥
 कुलित्याः शंखचूर्णञ्च प्रदेहः सर्वगन्धिकाः ।
 गृध्रोलूकपुरीषाणि वचायवफलं घृतम् ॥
 सन्ध्ययोरुभयोः कार्यं मेतद्रूपन शिशोः ॥ २४५ ॥
 शुक्लाः सुमनसो लाजा पयः शाल्योदन तथा ।
 बलिर्निवेद्योगोतीर्थं रिवत्यैः प्रयत्नात्मना ॥ २४६ ॥
 सङ्गमे च भिषक् स्नानं कारयेत् स्त्रीकुमारयोः ॥ २४७ ॥
 नानावस्त्रधरादेवी चित्रमाल्यानुलेपनैः ।
 चलत् कुण्डलिनीश्यामा रिवतीति प्रसीद तु ॥ २४८ ॥
 इति रिवतीग्रहरक्षा ।

—०—

अथ पूतनाग्रहनिदानमाह ।

अतिसारीज्वरस्फुण्डा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ।
 नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रहपूतनया शिशुः ॥ २४९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

अरलुकपोतवद्धा च वरुणः पारिभद्रकः ।
 आस्फोता चैव योज्याः स्युः बालानां परियेचने ॥ ५० ॥
 वचावयस्यागोलोमी हरितालं मनःशिला ।
 कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे वर्ग इष्यते ॥ २५१ ॥

हितं घृतं तुगाचीर्यां सिंहं मधुरकेषु च ॥ २५२ ॥
 कुष्ठतालीशतगरं चन्दनस्यन्दने तथा ।
 ब्रह्मास्थिमूलसंयुतं कुशमूलञ्च सप्तकम् ॥ २५३ ॥
 दूर्वायाः पत्रकं वापि तण्डुलांश्च क्षतांस्तथा ।
 धूपनात् पूतनां हन्ति स्तम्भं वायुपजायते ॥ २५४ ॥
 हस्त्यस्थिशकलं गृह्य वारिणापरिपेययेत् ।
 गात्रलेपात् कुमाराणां पानाद्वा पूतनां जयेत् ॥ २५५ ॥
 गन्धनाकुलीकुम्भोका मज्जानो वदरस्य च ।
 कुकुटास्थिघृतञ्चापि धूपनं सह सर्पपैः ॥ २५६ ॥
 धवः कदम्बः कुष्ठैले तथा गिरिकदम्बकः ।
 देवाह्वं रेणुकाहिंगु प्रलेपः पूतनागृहे ॥ २५७ ॥
 मत्स्योदनञ्च कुर्वीत कृशरां पल्लवं तथा ।
 शरावसपुटे कृत्वा बलिं शून्यगृहे भिषक् ॥ २५८ ॥
 काकादनीं चित्रफलं विम्बीं गुञ्जाञ्च धारयेत् ॥ २५९ ॥
 मलिनांवरसंवीता मलिनारूचमूर्दजा ।
 शून्यागाराश्रयादेवी दारक पातुपूतना ॥ २६० ॥
 इति पूतनाग्रहरचा ।

—०—

अथान्धपूतनाग्रहनिदानमाह ।

हृदिः कासीज्वरस्तृष्णा वसागन्धोऽतिरोदनम् ।
 स्तन्यद्वेषोऽतिमारय घ्नन्धपूतनया भवेत् ॥ २६१ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

१ तिक्तद्रुमाणां पत्रैस्तु कायः कार्थ्योऽभियेचने ॥ २६२ ॥

सुरासौवीरकं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
 तथा सर्जरसञ्चापि तैलार्थमुपसंहरत् ॥ २६३ ॥
 पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं वर्गोमधुरको मधु ।
 शालिपर्णीवृहत्थौ च घृतार्थमुपदिश्यते ॥ २६४ ॥
 सर्वगन्धैः प्रदेह्यथ गात्रेष्वक्ष्णोश्च शीतलैः ॥ २६५ ॥
 पुरीषं कौकुटं केशाश्चर्मसर्पभवन्तथा ।
 जीर्णञ्चाभीक्ष्ण्यो वासो धूपनायोपकल्पयेत् ॥ २६६ ॥
 काकादनीमृगैर्वारु तुम्बीसत्रिफलावचा ।
 धारणं शिरसाशस्त मन्थपूतनयाग्रहे ॥ २६७ ॥
 कुकुटीं मर्कटीं विम्बो मनन्ताञ्चापिधारयेत् ॥ २६८ ॥
 आममांसं तथा पक्वं शोणितञ्च चतुष्पथे ।
 निवेद्यसन्तश्च गृहे शिशोः रक्षानिमित्ततः ॥ २६९ ॥
 शिशोश्च स्त्रपनं कुर्यात् सर्वगन्धादिकैः शुभैः ।
 कुंकुमांगुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनैः समैः ॥
 सर्वगन्ध इति ख्यातो गणो ह्युत्तमगन्धकः ॥ २७० ॥
 करालापिङ्गलासुण्डी कपायांवरवासिनी ।
 देवीबालमिमं प्रीता सरच्चत्वन्धपूतना ॥ २७१ ॥

इत्यन्धपूतनारक्षा ।

—०—

अथ निदानमाह ।

वैपते कासते क्षीणे नेत्ररोगो विगन्धिता ।
 छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनयाशिशुः ॥ २७२ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

विम्बीं कपित्थं सुवह्नां तथाविल्वप्रचोबले ।
 नन्दी भङ्गातकञ्चैव परिपेके प्रयोजयेत् ॥ २७३ ॥
 वत्समूत्रं गवां मूत्रं मुस्ताञ्चामरदारु च ।
 कुष्ठञ्च सर्वगन्धञ्च तैलार्थमवचारयेत् ॥ २७४ ॥
 रोहिणीसर्जखदिर पलाशककुभत्वचः ।
 निष्काथ्यतस्मिन्निःकार्ये सत्तीरं विपचेद् दृढम् ॥ २७५ ॥
 प्रदेहः पूतनोक्तो यः स शस्तोत्र यदौषधम् ।
 शीतपूतनयाग्रस्तौ तदेवहितमुच्यते ॥ २७६ ॥
 गृध्रोल्बुकपुरीषाणि वत्सगन्धामहित्वचम् ।
 निम्बपत्राणि मधुकं धूपनार्थं प्रयोजयेत् ॥ २७७ ॥
 धारयेदपिलम्बाञ्च गुञ्जां काकादनीन्तथा ।
 नद्यां मुहूर्तदैनैश्चापि तर्पयेच्छीतपूतनाम् ॥ २७८ ॥
 जनाशयान्ते बालस्य स्त्रपनञ्चोपदिश्यते ।
 देव्यै देयञ्चोपहारो वारुणीरुधिरं तथा ॥ २७९ ॥
 मुहूर्तदनाशनादेवी सुराशोणितपायनी ।
 जलाशयरतादेवी पातुत्वां शीतपूतना ॥ २८० ॥

इति शीतपूतनारक्षाविधानम् ।

—०—

अथ मुखमण्डिकानिदानमाह ।

प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरभिसभृतः ।
 मूत्रगन्धोष्णककासो मुखमण्डिकयाग्रहे ॥ २८१ ॥

—०—

तस्य चिकित्सामाह ।

कपित्थविल्वतर्कारी वांसीगन्धर्वहस्तकः ।
 कुवेराक्षी च योज्याः स्युर्वालानां परिपेचने ॥ २८२ ॥
 खरसैर्भृङ्गश्चक्षाणां तथाजह्वयगन्धयोः ।
 तैलं वसाञ्च संयोज्य पचेद्भ्यञ्जने शिशोः ॥ २८३ ॥
 मधूलिकायां पयसि तुगाक्षीर्यां गणे तथा ।
 मधुरे पञ्चमूले च कनीयसि घृतं पचेत् ॥ २८४ ॥
 बचासर्जरसः कुष्ठं सर्पिषोऽडूपने हितम् ।
 धारयेदपि जिह्वाद्य चापचीरस्त्रिसर्पजाः ॥ २८५ ॥
 वर्णकं चूर्णकं माल्य मञ्जनं पारदं तथा ॥
 मनःशिलां चोपहरे द्रोष्टमध्ये वलि तथा ॥ २८६ ॥
 पायसं तु पुरोडाशं बल्यर्थमुपनाहयेत् ।
 मन्त्रपूताभिरङ्गिषु तत्रैव स्रपनं हितम् ॥ २८७ ॥
 अलङ्कृता रूपवती सुभगा कामरूपिणी ।
 गोष्टमध्यालयरता पातु त्वां सुखमण्डिका ॥ २८८ ॥
 इति सुखमण्डिकारक्षाविधानम् ।

—०—

अथ नैगमेपग्रहनिदानमाह ।

कर्दिस्रन्दनकण्डास्य शोषो मूर्च्छाविगन्धिता ।
 कर्ध्वं पश्येद्दृशेद्दन्तान्नैगमेपं ग्रहं बदेत् ॥ २८९ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

विल्वाग्निमन्यपूतीकाः कार्य्याः स्युः परिपेचने ।
 सुरासौवीरधान्याकं परिपेके प्रशस्यते ॥ २९० ॥

प्रियंगुसरलानस्ता शतपुष्पा कुट्टनटैः ।
 पचेत्तैलं सगोमूत्रैर्दधिमस्वम्बकाञ्जिकैः ॥ २८१ ॥
 पञ्चमूलद्वयकाये घोरि च मधुके तथा ।
 पचेद् दृढञ्च मतिमान् खर्जूर्यां मस्तकेऽथवा ॥ २८२ ॥
 वचां वयःस्थां गोलोमीं जटिलां वापि धारयेत् ।
 उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम् ॥ २८३ ॥
 सिद्धार्थकं वचाङ्गिगु कुष्टं चैवाक्षतैः सह ।
 भङ्गातकाजमोदञ्च हितमुद्धूपनं शिशोः ॥ २८४ ॥
 अधस्तात् क्षीरवृक्षस्य स्त्रपनं चोपदिश्यते ॥ २८५ ॥
 मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि पितृगृहे ।
 घूपः सुप्ते जने कार्यो बालस्य हितमिच्छता ॥ २८६ ॥
 तिलतण्डुलकं माल्यं भक्ष्याणि विविधानि च ।
 कुमारपितृमेपाय वृक्षमूले निधेदयेत् ॥ २८७ ॥
 अजाननयलाक्षिभूः कामरूपी महायशः ।
 बालं पालयिता देवो नैगमेपोऽभि रचितु ॥ २८८ ॥

—०—

अथान्यत् निदानमाह ।

यः कृगः शास्त्रदृग्बीजो दृढदाहा प्रतिघातकृत् ।
 कुर्याच्च माहमकर्मं सहसा कामपोडितः ॥ २८९ ॥
 सशब्दं वीक्ष्यते रात्रौ यो नाग्राति पुमुक्षितः ।
 शुष्कास्यो दलिकामेन सगृहितोऽपि बाध्यति ॥ ३०० ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

महामुण्डितिकीदीप्य काथस्नानं यथापहम् ।
 सप्तच्छदामयनिगा चन्दनैथानुलेपनम् ॥ ३०१ ॥

समूला सदला पिष्टा मूर्वा तिक्तासमन्विता ।

शिशोरुहर्त्तनं कुर्यात् सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ३०२ ॥

सर्पत्वक्तशुनं मूर्वा सर्पपारिष्टपक्षवाः ।

विडालविडनारोम मेपशृङ्गोवचामधु ॥

धूपः शिशोर्व्वरघ्नोऽय मशेषग्रहनाशनः ॥ ३०३ ॥

मृतगोकुक्षिसंस्थेन गोमयेन च धूपनम् ।

हन्ति सर्वग्रहांद्याशु ज्वरघ्नन्तु न संशयः ॥ ३०४ ॥

बालिशामोष्टकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ ३०५ ॥

ग्रहेष्वधिपतिः स्कन्दः सर्वरोगेषु रेवती ।

पूजनीयौ ततस्तस्मा तौ बालानां हितेच्छया ॥ ३०६ ॥

स्वस्ति ते सन्मुखः स्कन्दो महाभागा च रेवती ।

दिशः सूर्योऽन्तरिक्षञ्च स्वस्ति कुर्वन्ति सर्वदा ॥ ३०७ ॥

तेजसा ब्रह्मणाद्याय विष्णोरिन्द्रस्य तेजसा ।

सिद्धानां तेजसा चैव रक्षितोऽस्मिन् सुखी भव ॥ ३०८ ॥

मन्त्रैरेतैर्भिषक् पद्याद्रक्षां कुर्वीतबालके ।

भवन्ति निग्रहा बालाः सुखिता रोगवर्जिताः ॥ ३०९ ॥

बालरोगाधिकारोक्त मष्टमंगलकं द्रुतम् ।

भिषजा तत्रयोक्तव्यं मायुर्वेदविचारिणा ॥ ३१० ॥

ग्रहोपष्टब्धबालास्तु दुष्टिकित्स्यतमाः स्मृताः ।

वैकल्यं मरणं वापि ध्रुवं स्कन्दग्रहे नृणाम् ॥ ३११ ॥

इति बालग्रहाः ।

इति वङ्गसेने बालरोगनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ७० ॥

अथ विपनिदानमाह ।

कुलीनं धार्मिकं स्निग्धं सुभृतं सततोत्थितम् ।

अलुब्धमशठं भक्तं कृतज्ञं प्रियदनम् ॥ १ ॥

क्रोधपाकुर्य मात्सर्यं मदालस्यं विवर्जितम् ।

जितेन्द्रियं क्षमावन्तं शुचिं शीलदयान्वितम् ॥ २ ॥

मेधाविनमविग्रान्तं मनुरक्तं हितैषिणम् ।

पटुं प्रगल्भं निपुणं दक्षं भायाविवर्जितम् ॥ ३ ॥

पूर्वोक्तैश्च गुणैर्युक्तं नित्यं सन्निहिताऽगदम् ।

महानसे प्रयुञ्जीत वैद्यं तद्विद्यपूजितम् ॥ ४ ॥

प्रशस्तादिर्गदं गुरुतः शुचिभाण्डं महाशुचिः ।

मलाजकं गवाक्षाद्यं मात्मवर्गनिषेवितम् ॥ ५ ॥

विकचसृष्टसृष्टं सवितानं कृतार्चनम् ।

परोक्षतस्त्रीपुरुषं भवेच्चापि महानसम् ॥ ६ ॥

माहानसिकबोठारः सौपीदनिकपौपिकः ।

भवेयुर्वंद्यवशगा ये चाप्यन्ये तु केचन ॥ ७ ॥

इति माहानसिकस्य लक्षणम् ।

—०—

अथ विपलक्षणमाह ।

स्यावरजश्चैव द्विविधविषमुच्यते ।

मूलाद्यात्मकमाद्यं स्यात् परं सर्पादिसम्भवम् ॥ ८ ॥

स्यावरश्च ज्वरं हिक्का दन्तघर्षं गन्धग्रहम् ।

केन ह्यर्थं रुचिग्रासं मूर्च्छाञ्च कुरुते विषम् ॥ ९ ॥

निद्रान्तन्द्रां क्षमं दाहं सप्राकं लोमहर्षणम् ।
शोथं चैवातिसारञ्च कुरुते जङ्गमं विषम् ॥ १० ॥

—०—

अथ विपदातुर्लक्षणमाह ।

इङ्गितञ्चो मनुष्याणां वाक् चेष्टासुखवैकृतैः ।
जानीयाद्विपदातार मेभिल्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ ११ ॥
नददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च ।
अपार्थं बहुसंकीर्णं भापते चापि भूढवत् ॥ १२ ॥
हसत्यकस्मात् स्फोटये दङ्गुलीर्विलिखेन्महीम् ।
विषयुद्यास्य भवति त्रस्तश्चैकैकमीक्षते ॥ १३ ॥
विवर्णवक्त्रोध्यामश्च नखैः किञ्चिच्छिन्नत्यपि ।
वर्त्तते विपरीतश्च विपदाता विचेतनः ॥ १४ ॥

—०—

अथ विषयुक्तान्नपरिचाक्रममाह ।

नृपभुक्ते भुविन्यस्ते क्रौञ्चश्च मदमिच्छति ।
हृष्येन्मयूरस्तदृष्ट्वा क्रोशतः शुकशारिके ॥ १५ ॥
हंसक्रीडति चात्पर्थं भृङ्गराजस्तु कूजति ।
शुनको विस्मजत्यसु विष्टां मुञ्चति मर्कटः ॥ १६ ॥
उपचिप्तस्य चाग्रस्य बाष्पान्यर्धे विसर्पते ।
हृत्पीडोष्णञ्च नेत्रत्वं शिरो दुःखञ्च जायते ॥ १७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

तत्र स्यादङ्गने कुष्ठं लामज्जं नलदं मधु ।

कुर्याच्छिरीपरजनी चन्दनैश्च प्रलेपनम् ॥ १८ ॥
 हृदिचन्दनलेपञ्च कृत्वा वै सुखमाप्नुयात् ।
 प्राणिप्राप्तं पाणिदाहं नखशान्तिं करोति च ॥ १९ ॥
 सत्र प्रलेपे श्यामेन्द्र गोपीश्यामोत्पलानि च ।
 सचेतः प्रमोदामोहस्तदन्नमुपसेवते ॥ २० ॥
 ततो स्याटीलवलिङ्गा भवत्यरसवेदनी ।
 तुद्यते दह्यते वापि श्लेष्मा चास्ये प्रवर्तते ॥ २१ ॥
 तत्र वाथेरितं कर्म यथ स्याद्वात्तु कर्षितम् ॥ २२ ॥

—०—

मूर्च्छाहृदिभ्रमोदाह महन्वहनि एव च ।
 इन्द्रियाणां च वैकृत्य कुर्यादामाशये गतम् ॥ २३ ॥

—०—

तत्राशुमदनालावु विश्वघोषवतीफलैः ।
 हृदनं दध्युदग्निदंभ्यां मधवा तंडुलांशुना ॥ २४ ॥
 कोशातक्वग्निकः पाठा सूर्यवर्णामृताभया ।
 शैलं गिरीपकिण्णहो हरिद्रे वृहतीद्वयम् ॥ २५ ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

उद्देष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च ।
 जृम्भनं वेपनं ग्रासी ज्ञेयं पत्रविषेण तु ॥ २६ ॥
 मुष्कगोघः फलविषैर्दाहोऽयद्देष्ट एव च ।
 भवेत्पुष्पविषैः हृदि राक्षानं ग्रास एव च ॥ २७ ॥
 त्वक्पुष्पनिर्व्यामविषैरुपयुक्ते भवन्ति हि ।
 पांसुदोर्गन्धपादप्य गिरीरुक् कफसंस्त्रयाः ॥ २८ ॥

१ फेनागमः क्षीरविषै विद्धभेदो गुरुजिह्वता ।
हृत्पीडनं धातुविषै मूर्च्छादाहश्च तालुभिः ॥ २८ ॥
प्रायेण कालघातीनि विपाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ ३० ॥

—०—

अथ विपलिप्तशस्त्रहतस्य लक्षणमाह ।

मद्यः क्षतं पच्यते यस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम् ।
क्षणीभूतं क्षिन्नमल्पवर्धपूतिं क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य वापि ॥ ३१ ॥
दृष्ट्यामूर्च्छाज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाहतन्तं मनुजं व्यवसेत् ।
निह्नान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्ब्रूणे विषं यम्य दत्तं प्रमादात् ॥ ३२ ॥
मवातं गृहधूमाभं पुरीषं योतिसार्थ्यते ।
फेनमुद्धते चापि विपपीतं तमादिशेत् ॥ ३३ ॥

—०—

अथ जङ्गमविपलक्षणमाह ।

वातपित्तकफात्मानो भोगीमण्डलराजिलाः ।
यथा क्रमं समाग्याताद्व्यन्तराद्वद्वरूपिणः ॥ ३४ ॥
दृग्भीमो गिहृतः क्षणः सर्ववातविकारकृत् ।
पीतोमण्डलिनी शीथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ ३५ ॥
राजिलोत्थो भवेद्दृग्भीमो स्थिरशीथश्च पिच्छलः ।
पांडुः स्निग्धोऽतिमान्द्रासृक् सर्वश्रेष्ठाधिकारवान् ॥ ३६ ॥
लघुव्यक्तरम सूक्ष्मं रूक्षोष्णागुव्यवायि च ।
विकामिविशदं तीक्ष्णं विषं दृग्गुणं स्मृतम् ॥ ३७ ॥
मवादीकृतिकाश्रेषा भरणीषु प्रयत्नतः ।
पूर्वाशुभमदष्टस्य कस्य चिज्जीविन भवेत् ॥ ३८ ॥
नवमीपञ्चमीपटौ तथा कृष्णचतुर्दशी :

चतुर्योसन्धिके द्वे च दष्टा एषु न जीविताः ॥ ३८ ॥

—०—

अत्र सामान्यचित्तामाह ।

चन्दनं वृषणकेद दाहस्त्रावाः प्रकीर्त्तिताः ।

पूर्वं दष्टस्य पानञ्च हृदयावदरणं घृतम् ॥ ४० ॥

—०—

अथ निदानमाह ।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानं बल्मीकसम्भ्यासु चतुष्पथेषु ।

याम्ये च दष्टाः परिवर्जनीया ऋक्षेनरामर्मसुये च दष्टाः ॥

दवीकराणां विषमाशुघाति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणी भवन्ति ॥ ४१ ॥

अजोर्णपित्तत्रयमपोडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु ।

क्षीणेषु क्षते मेहनिकुष्ठजुष्टे रुज्ज्वले गर्भवतीषु चापि ॥ ४२ ॥

शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमस्तिराज्यो लताभिश्च न संभवन्ति ।

शीताभिरङ्गिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥ ४३ ॥

जिह्वं मुखं यस्य च केशशातो नामावसादश्च सकण्ठभङ्गः ।

कृष्णः मरुतः श्वयथुश्च दंशो हन्वोः स्थिरत्वञ्च स वर्जनीयः ॥ ४४ ॥

वर्त्तिर्घनायस्य निरेति वक्ताद्रक्तं सवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ।

दष्टाभिघाताद्यतुरश्च यस्य स चापि वैद्यैः परिवर्जनीयः ॥ ४५ ॥

उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतश्च होनस्वरं वाप्यथवा विवर्णम् ।

मारिष्टमत्यर्थमवेगिनश्च जह्यान्नरं यत्र न कर्मकुर्यात् ॥ ४६ ॥

—०—

अथ दूषोविषलक्षणमाह ।

ओणे विषघ्नोपधिभिर्हृतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ।

ध्मावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषोविषतामुपैति ॥ ४७ ॥

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगुणानुबन्धि ।
 तेनार्दिनो भिन्नपुरीषवर्णो विगधवैरस्ययुतः पिपासी ॥
 मूर्च्छां भ्रमं गद्गदवाग्वमित्वं विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ ४८ ॥
 श्रामाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।
 भवेत्समुद्भूतशिरोरुहांगो विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥ ४९ ॥
 स्थित रसादिष्वथवा यथोक्तान् करोति धातुप्रभवान् विकारान् ।
 कोषश्च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याश पूर्वं शृणु तस्य रूपम् ॥ ५० ॥
 निद्रागुरुत्वञ्च विजृम्भणञ्च विक्षेपहर्षावथवाङ्गमर्दम् ।
 ततः करोत्यन्नमदाविपाका वरोचकं मण्डलकोठजम् ॥ ५१ ॥
 मांसक्षय पादकरप्रशोथ मूर्च्छां न्तथा कूर्दिमथातिसारम् ।
 दूषीविषश्चासृष्टपाञ्चरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ ५२ ॥
 उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यदानाहमन्यत् क्षयते च शुक्रम् ।
 गद्गदमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान् विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ ५३ ॥
 दूषितं देशकालान्न दिवास्वप्नैरभीक्ष्णम् ।
 यस्मात्सन्दूपयेद्दातून् तस्माद् दूषीविष स्मृतम् ॥ ५४ ॥
 साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं सवत्सरोपितम् ।
 दूषीविषमसाध्यं स्यात् क्षीणस्याऽहितसेविनः ॥ ५५ ॥
 अथ गरविषमाह ।
 मौभाग्यार्थं स्त्रियः खेदरजोनानाङ्गजान्मलान् ।
 शत्रुप्रयुक्तांश्च मलान् प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ ५६ ॥
 तैः स्यात्पांडुः क्षणोऽल्पाग्निः गरस्यास्योपजायते ।
 मर्मप्रधमनाधानं हस्तयोः शोथलक्षणम् ॥ ५७ ॥
 जठर ग्रहणीरोगो यक्ष्मगुल्मयक्ष्मज्वराः ।
 एर्वविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ५८ ॥

अथ वृश्चिकादिदृष्टानां लक्षणमाह ।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिन्नतीवोर्ध्वमाशु च ।
वृश्चिकस्य विषं याति दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ॥ ६७ ॥
दष्टोऽसाध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ।
मांसैः पतङ्गिरत्यर्थं वेदनात्तो जहत्त्यशून् ॥ ६८ ॥

—०—

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरच्छर्दिरथापि वा ।
लक्षण कणभैर्दष्टे दंशश्चैव विशीर्यते ॥ ६९ ॥

—०—

हृष्टरोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गे भृशार्तिमान् ।
दष्टः शीतोदकेनैव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ ७० ॥

—०—

एकदष्टार्पितः शूनः सरुजः पीतकः सट्टम् ।
छर्दिर्निद्रा च सविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ७१ ॥

—०—

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ।
कण्डू शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलीकमः ॥ ७२ ॥

—०—

विदाह श्वयथुं तोदं स्वेदश्च ग्रहगोधिका ।
दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ७३ ॥

—०—

कण्डूमांसशकैरीष च्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ।
असाध्यकोटसदृश मसाध्यं मशकचतम् ॥ ७४ ॥

—०—

अथ लूताविपनिदानमाह ।

यस्माद्भूनं दृणं प्राप्ता मुनेः प्रखेदविन्दवः ।
 तस्माद्भूताः प्रभायन्ते सख्ययास्तार्थं षोडश ॥ ५८ ॥
 ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च ।
 ज्वरोदाहोऽतिसारश्च गटाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ६० ॥
 पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च ।
 शोथा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥
 सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम् ॥ ६१ ॥
 दूषोविषाभिर्लूताभिस्तं दष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ६२ ॥
 शोथाः श्वेताः सितारक्ताः पीता सपिडिका ज्वराः ।
 प्राणान्तिकाभिर्जायन्ते श्वासद्विकाशिरोग्रहाः ॥ ६३ ॥

—०—

अथांखुविपलक्षणमाह ।

आदंशाच्छोणितं पांडुमण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ।
 रोमहर्षश्च दाहश्च प्याखुदूषोविषादिते ॥ ६४ ॥
 मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यं क्लेदगद्गदोऽन्युतिज्वराः ।
 शिरोगुरुत्वं लालासृक् छर्दिद्यामाध्यमूपिकैः ॥ ६५ ॥

—०—

अथ कृकलासदष्टलक्षणमाह ।

काशं श्वावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव च ।
 व्यामोहो वर्चसो भेदो दष्टः स्यात् कृकलासकैः ॥ ६६ ॥

—०—

अथ वृश्चिकादिदृष्टानां लक्षणमाह ।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिन्नतीवोर्ध्वमाशु च ।
वृश्चिकस्य विषं याति दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ॥ ६७ ॥
दष्टोऽसाध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ।
मांसैः पतङ्गिरत्यर्थं वेदनात्तो जहत्यशून् ॥ ६८ ॥

—०—

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरच्छर्दिरयापि वा ।
लक्षण कणभेददृष्टे दशयैव विशीर्यते ॥ ६९ ॥

—०—

हृष्टरोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गी भृशार्तिमान् ।
दष्टः शीतोदकेनैव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ ७० ॥

—०—

एकदष्टार्पितः शूनः सरुजं पीतकं सट्टम् ।
छर्दिर्निद्रा च सविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ७१ ॥

—०—

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ।
कडू शोथ ज्वर मूर्च्छा सविषास्तु जलोकसः ॥ ७२ ॥

—०—

विदाह श्वयथुं तोद स्वेदञ्च ग्रहगोधिका ।
दंशे स्वेद रुजं दाह कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ७३ ॥

—०—

कांडूमान्मशकैरीष च्छोद्यः स्यान्मन्दवेदनः ।
असाध्यकीटसदृश मसार्थं मशकचतम् ॥ ७४ ॥

—०—

सद्यः प्रस्त्रावणी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता ।
पिटकामक्षिकादंशे तासान्तु स्थगिकाऽसुहृत् ॥ ७५ ॥

—०—

चतुष्पाद्भिर्हिपाद्भिर्वा नखदन्तविपक्ष यत् ।
शूयते पच्यते वापि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ ७६ ॥

—०—

अथावतरितविप्रलक्षणमाह ।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थं धातुमन्नाभिकामं सममूत्रविट्कम् ।
प्रसन्नवर्णंन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ७७ ॥

—०—

अथ चिकित्सामाह ।

स्यावरेण विपेणाक्षं नरं यत्नेन वामयेत् ।
बमनेन रुमं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम् ॥ ७८ ॥
विषमत्वर्थमुष्णञ्च तीक्ष्णञ्च कथितं यतः ।
अतः सर्वविषेयूक्तं यातशीतांशुसेवनम् ॥ ७९ ॥
पाययेन्मधुसर्पिभ्यां विषघ्नं भेषजं दृतम् ।
यष्टीकाद्येन शीतेन घृतं वा मधुना पिवेत् ॥ ८० ॥
अथवा गोपुरीषस्य रसेन मधुना सह ।
हृदयावदरणं सर्पिर्गवां चैव प्रयोजयेत् ॥ ८१ ॥
रजनीमैन्धवर्चाद्र संयुक्तं दृतमुत्तमम् ।
पानं मूलविपार्तस्य दग्धविडस्य चेक्षते ॥ ८२ ॥
खादिते खाद्यमाने च खादितव्ये च यो विषे ।
चण्डगन्धाजटां भुङ्क्ते तत्र नैव विषं क्रमेत् ॥ ८३ ॥

तुल्याज्यमधुपानान्ते लघुकोष्ठो घृतं पिवेत् ।
ततो निम्बाम्बुपानं वा क्वविमन्तु विनाशयेत् ॥ ८४ ॥

अथ निदानमाह ।

प्रायो वातोल्बणाभेक मूपपिंगाः सवृश्चिकाः ।
वातपित्तोल्बणाः कीटाः श्लैष्मिकाः कणभादयः ॥ ८५ ॥
यस्य यस्य च दोषस्य लिङ्गाधिक्यं प्रवर्त्तयेत् ।
तस्य तस्योपधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥ ८६ ॥
हृत्पीडा चानलस्तम्भः शिरायामोस्त्रिपर्वरुक् ।
घूर्णनोद्देशनं गात्रे व्यामता वातिके विपे ॥ ८७ ॥
संज्ञानाशस्तु निःश्वासी हृद्दाहकटुकास्यता ।
दन्तावदरण शोथो रक्तपित्तञ्च पैत्तिके ॥ ८८ ॥
हृद्यरोचकहृत्ताप प्रसेकक्लेशगौरवैः ।
सशैत्यमुखमाधुर्ये विद्याच्छेप्ताधिकं विपम् ॥ ८९ ॥

अथ चिकित्सामाह ।

घृतेन बहुलो लेप स्तैलाभ्यङ्गश्च वातिके ।
स्वेदनाङ्गीप्रलेपाद्यैर्वृंहणश्च हितो विधिः ॥ ९० ॥
सुशोतैस्तम्भयेच्छे कैः प्रदेहैद्यापि पैत्तिके ।
लेपनच्छेदनस्वेद वमनैः श्लैष्मिकं जयेत् ॥ ९१ ॥
शालयः पट्टिकाश्चैव कोरदूपाः प्रियंगवः ।
भोजनार्थं प्रशस्यन्ते लवणार्थं च सैन्धवम् ॥ ९२ ॥
तंडुलीयकजीवन्तो वार्ताकुः सुनिपण्णकः ।
मडूकपर्णीकुंलकं शाकवर्गं च शस्यते ॥ ९३ ॥
हरिणमुद्गौ यूपार्थं मस्तार्थं धात्रीदाडिमम् ।
रसार्थञ्च प्रशस्ता वा लावतित्तिरपर्वतराः ॥ ९४ ॥

विपद्ग्रीवधसंयुक्ता रसायुषाय संस्कृताः ।
 अविदाहोनि धात्रानि विपार्त्तानां च दापयेत् ॥ ८५ ॥
 उष्णवर्ज्यां विधिः कार्य्यो विपार्त्तानां विजानता ।
 सुक्ता कीटवियं तच्च शीतेनातिप्रवर्द्धते ॥ ८६ ॥
 दिवास्वप्नं व्यवायञ्च व्यायाम क्रोधमातपम् ।
 सुरातिलकुलित्यांश्च वर्जयेच्च विपातुरः ॥ ८७ ॥

—०—

अथ जङ्गमविप्रचिकित्सामाह ।

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादुष्टस्य देहिनः ।
 बध्नीयाद्वाद्दुसुपरि दशन्तु चतरंगुलम् ॥ ८८ ॥
 श्लोतचर्मन्तवल्कानां मृदुनान्यतमेन च ।
 न गच्छति विप देह सरिष्टाभिर्निवारितम् ॥ ८९ ॥
 दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते ।
 आचूपणच्छेददाहा सर्वत्रैव तु पूजिता ॥ ९० ॥
 प्रतिपूर्य्यमुखं वस्त्रैर्हितमाचूपण भवेत् ।
 सदष्टव्योऽथवा सर्पो लोष्टयापि हि तत्तृचणात् ॥ ९१ ॥
 मूलं तेडुलवारिणा पिबति यः प्रत्यङ्गिरा सम्भवम् ।
 निष्पिष्टं शुचिभद्रयोगदिवसे तस्याऽङ्घ्रिभीतिः कुतः ॥
 दर्पादेव फणी यदा दशति तं मोहान्वितो निष्पतन् ।
 स्थाने तत्र तदैव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात् ॥ ९२ ॥
 मसूरनिम्नपत्राभ्यां योऽत्तिमेपगते रवी ।
 अय्दमेकं न भीतिः न्या द्विपार्त्तस्य न संशयः ॥ ९३ ॥
 श्लेष्मणः कर्णरुदस्य वामनाभिकया कृतः ।
 श्लेपं हन्याद्विपं घोरं नृमूत्रसेवितं तथा ॥ ९४ ॥

कुलकमूलनस्येन कालदृष्टोऽपि जीवति ॥ १०५ ॥

पिण्डीतगरकं नेत्रे पुण्येणीत्याद्य योजितम् ।

चालयत्यत्र नोचित्रं पुरुषं दष्टमृतं खलु ॥ १०६ ॥

शिरोपपत्रस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम् ।

भावितं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जनैर्हितम् ॥ १०७ ॥

बन्ध्याकर्कोटमूलञ्च छागमूत्रेण भावितम् ।

नस्यं काञ्चिकसंपिष्टं विप्रोपहतचेतसः ॥ १०८ ॥

गृहधूमं हरिद्रे द्वे समूलं तंडुलीयकम् ।

अपि वासुकिना दष्टः पिवेद्दधिष्टंतद्भुतम् ॥ १०९ ॥

श्लेष्मातकीकटफलमातुलुङ्गश्वेतागिरिद्धा किण्वही सिता च ।

सतंडुलीयोऽगद एषमुख्यो विषेषु दर्शिकरराजिलानाम् ॥ ११० ॥

निर्गुण्डोसहितं यानात्सद्यः ऋणिविषायहम् ।

स्वरसेनैव मूलञ्च भावितं सिन्धुवारिजम् ॥ १११ ॥

सैन्धवं मरिचं तुल्यं निम्बबीजसमं कृतम् ।

मधुमर्पिर्युतं हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ ११२ ॥

सचतुर्मरिचः कर्पः चाङ्गेर्याः सह सर्पिषा ।

हन्ति पानप्रलेपाभ्यां चोग्रसर्पविष भयम् ॥ ११३ ॥

पारावतामिषं शुण्ठी पुष्कराक्षं सितं हितम् ।

गरुडण्यारुचिश्वास कासहिक्कापहं परम् ॥ ११४ ॥

द्राक्षाश्वगन्धानगमृत्तिका च श्वेता च पिष्टा सदृशैः स्वभागीः ।

देयो विभागः सुरसाच्छदस्य कपित्थबिल्वादपि दाडिमाञ्च ॥

एषोऽगदक्षौद्रयुतो निहन्ति बिशेषतो मण्डलिनां विषाणि ॥ ११५ ॥

प्रपौण्डरीकं सुरदारुमुस्ता कालानुसारी कटुरोहिणी च ।

स्थौण्येयकं ध्यामकगुग्गुलूनिपुन्नागतालीससुवर्चिकाश्च ॥ ११६ ॥

कुटन्नटैलासितसिन्धुशरशैलेय कुटं तगरं प्रियंगु ।

लोधाञ्जन काञ्चनगैरिकञ्च समागन्धं चन्दनसैन्धवञ्च ॥११७॥

सूक्ष्माणि चूर्णानि समानि कृत्वा शृङ्गे निदध्यान्मधुसयुतानि ।

एषोऽगदस्ताल्ये इति प्रसिद्धो विषं निहन्यादपितृकस्य ॥११८॥

इति ताक्ष्योऽगदः ।

त्रिविद्धि शाले मधुकं हरिद्रे मञ्जिष्टवर्गं लवणाय सर्वं ।

कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥११९॥

अयं गदो हन्त्युपयुज्यमानः पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्य योगैः ।

आचार्यविर्यो विषवेगहन्ता महागदो नाम महाप्रभावः ॥१२०॥

इति महागदः ।

विल्वपुष्पत्वची मांसी फलिनीनागकेसरम् ।

शिरीषं तगरं कुटं हरितालं मनःशिला ॥ १२१ ॥

एतानि ममभागानि पेपयेत्सलिलेन तु ।

ममभ्यङ्ग्य ततो गात्रं सर्पदष्टार्त्तिदारणः ॥ १२२ ॥

विषान्वाभक्षयेदुग्रान् गरांश्च विविधान् हरत् ।

कन्नासवरणं गच्छेद्युद्धे देवासुरोपमः ॥ १२३ ॥

राजहारेषु सर्वेषु धूपेयैवापराजितः ।

वृद्धस्तितिरिति प्रोक्तो ब्रह्मणा निर्मितः स्वयम् ॥ १२४ ॥

नाग्निर्दहति तद्देहं प्रभवन्ति न राक्षसाः ।

न म्रियन्ते तथा बाला दगाद्गो यत्र तिष्ठति ॥ १२५ ॥

इति दगाद्गोऽभ्यङ्गो धूपय ।

बटगुहं समञ्जिष्टं जीवकर्षभकौ सिता ।

कागमय्यमुदकं चैव पानं मण्डलदटके ॥ १२६ ॥

कोक्तोऽकुटं नतं व्योषं मधुकातिविषामधु ।

गृहधूमश्च पानेन घ्नन्ति सर्पभवं विषम् ॥ १२७ ॥
 मांसिचन्दनसिन्धूय कृष्णायट्पूषणोत्पलैः ।
 अञ्जनं स्यात्सगोपितं विषसुप्तस्य बोधनम् ॥ १२८ ॥
 नक्तमालफलं व्योषं विल्वमूलं निशाद्वयम् ।
 सौरसं पत्रमाजश्च मूत्रं बोधनमञ्जनम् ॥ १२९ ॥
 बीजकल्कं ससिन्धूयं मयूरकगिरीपयोः ।
 नस्यं यवफलं बीजं मपाठं वा प्रबोधकम् ॥ १३० ॥
 सम्यङ्गधूकसारिण गोमूत्रे भावितेन तु ।
 दद्याद्विषहरं नस्यं सिध्नाघ्नश्च प्रलेपनम् ॥ १३१ ॥
 मयूरपित्तेन च तडुलीयकं काकाण्डयुक्तं प्रपिबेदनल्पम् ।
 विषाणि च स्थावरजङ्गमानि सोपद्रवाण्याप्यचिरेण हन्ति ॥ १३२ ॥
 शिरोषारिष्टनक्ताह्व त्वक्कोशातकीफलैः ।
 हन्ति गोमूत्रसपिष्टैः विषं स्थावरजंगमम् ॥ १३३ ॥
 वचोपणशिलादारु नक्ताह्व द्विनिशाञ्जनम् ।
 शिरीषपिप्पलीयुक्तं गरदोषनिसूदनम् ॥ १३४ ॥
 तिक्ततुम्बीजबीजानि गोपित्तेन प्रलेपयेत् ।
 एष सर्वविषध्वंसो ब्रह्मपुत्रादिनाशनः ॥ १३५ ॥
 मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजश्चेति शिरोपतः ।
 गवां मूत्रेण सपिष्टं भेषजं विषवारणम् ॥ १३६ ॥
 मञ्जिष्टैलानिशाद्राक्षा सांसीयष्टीहरेणुका ।
 क्षौद्रं चेति विषघ्नोऽयं मगदः काशिकोऽब्रवीत् ॥ १३७ ॥
 लवणानि त्रिवहन्ती विशालाक्षप्रषणं निशा ।
 मञ्जिष्टामधुकं शृङ्गं ह्यगदः सर्वकर्म्मकृत् ॥ १३८ ॥
 चन्दनश्च शिलाकुष्ठं त्वक्पत्रैः लाब्धसर्पपाः ।

मांसीपद्मकवक्त्राऽसृक् सुरभीभवरोचना ॥ १३८ ॥

सृक्काहिंश्वं वुलामल्ल शतपुष्पाग्रियंगवः ।

पिष्टा सर्वविषीन्मन्यो नाम्ना चन्द्रोदयो गदः ॥ १४० ॥

इति चन्द्रोदयोऽगदः ।

श्यामेभपाटलीकृष्णा मल्लिष्टाकिण्वीशिला ।

कोविदारोपणे चक्रं निशे दध्यपराजितम् ॥ १४१ ॥

वृहतीमधुकञ्चैव गोमूत्रेण प्रपेययेत् ।

एष सूर्योदयो नाम्ना विषरक्षामयो गदः ॥ १४२ ॥

इति सूर्योदयोऽगदः ।

अपामार्गस्य बीजानि शिरीषस्य तथैव च ।

इमे दे काकमाची च गवां मूत्रेण पेययेत् ॥ १४३ ॥

सर्पिरेतेषु संसिद्धं विषमंशमनं परम् ।

अमृतं नाम विख्यात मपिसञ्जीवयेन्मृतम् ॥ १४४ ॥

इत्यमृतघृतम् ।

नागदन्तीविह्वहन्ती स्रुक्पयः पलिकैः समैः ।

गवां मूत्रादके सिद्धं सर्पिः सर्वविषापहम् ।

सर्पकीटविषार्त्तानां गरात्तानाञ्च शम्यते ॥ १४५ ॥

इति नागदन्त्याद्यं घृतम् ।

तंडुलीयकमूलेन गृहधूमेन चैकतः ।

क्षीरेण मष्टतं सिद्धं समस्तं विषरोगनुत् ॥ १४६ ॥

इति तंडुलीयघृतम् ।

मधुकं तगरं कुष्टं भद्रदारु चरेणवः ।

पुत्रागमैलयालूकं नागपुष्पोत्पलं मिता ॥ १४७ ॥

विडङ्गं चन्दनं पत्रं प्रियंगु ध्यामकं तथा ।

हरिद्रे द्वे वृहत्या च गारिवां गुमतो यत्ना ॥ १४८ ॥

कल्कैरेतैर्घृतं सिद्धं मज्जेयमिति विद्युतम् ।

विषाणि हन्ति सर्वाणि शीघ्रमेवाजितं क्वचित् ॥ १४८ ॥

इत्यजेयघृतम् ।

सरोध्रमभयाकुष्टं मर्कपुष्पीं तथोत्पलम् ।

नलवेतसमूलानि गरलं सुरसां तथा ॥ १५० ॥

सकालिन्दीं समञ्चिष्टां मनन्तां सशतावरीम् ।

शृङ्गाटकं समङ्गाञ्च पद्मकेसरमित्यपि ॥ १५१ ॥

कल्कीकृत्वा पचेत्सर्पिः पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ।

सम्यक् पक्वेऽवतीर्णे च शृतशीते विनिश्चिपेत् ॥ १५२ ॥

सर्पिस्तुल्यं भिषग् चोद्रे कृतरक्षं निधापयेत् ।

विषाणि हन्ति दुर्गाणि जङ्गमस्यावराणि च ॥ १५३ ॥

कृत्रिमाणि च यावन्ति गरदोषकृतानि च ।

स्पर्शादेव विषं हन्ति गरैरुपहतत्वचम् ॥ १५४ ॥

योगोऽयं तमकं कण्डूं मांसादञ्च विसंज्ञताम् ।

नाशयत्यञ्जनाभ्यङ्गं पानवस्तिषु भोजने ॥ १५५ ॥

सर्पकोटाखुलूताभिर्दृष्टानां विषणुत्परम् ।

मृत्युपाशहरं नाम घृतमेतन्नकीर्तितम् ॥ १५६ ॥

इति मृत्युपाशापहं घृतम् ।

—०—

अथ दूषोविषचिकित्सामाह ।

दूषोविषार्तं सुस्निग्धमूर्ध्वं चाधश्च शोधितम् ।

पाययेद्गदं सुख्यं मिदं दूषोविषापहम् ॥ १५७ ॥

पिप्पलीध्यामकं मांसी लोध्रमेला सुवर्चला ।

बालकं परिपेला च तथा कनकगैरिकम् ॥ १५८ ॥

चौद्रयुक्तो गदो ह्येष दूषोविषमपोहति ।

दूषोविषारिनामायं न कैश्चिदपि बाध्यते ॥ १५८ ॥

इति दूषोविषचिकित्सा ।

—०—

अन्येरुपविषै स्तोत्रै रेकीकृत्वा तु भूरिभिः ।

कालान्तरजिघांसाये क्रियते च गरन्तु तत् ॥ १६० ॥

घृणालस्यारुचिश्वासां स्ततः कुर्याग्निमार्दवम् ।

अविपाकाबलत्वञ्च कुर्यादुपचितो गरः ॥ १६१ ॥

—०—

अङ्गोष्मूलैः निःकाप्य सफाणितघृतं लिङ्घेत् ।

तैलाक्तः स्निग्धसर्वाङ्गो गरदोषविषापहम् ॥ १६२ ॥

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं चूर्णं ताप्य सुवर्णयोः ।

लेहः प्रथमयत्युग्रं नानायोगकृतं विषम् ॥ १६३ ॥

—०—

हृपनिम्बपटोलानां कायेनापि पचेद् घृतम् ॥

अभया गर्भितं तीय एतदारोग्यदं परम् ॥ १६४ ॥

इति हृपाद्यं घृतम् ।

रजनीहृयमस्त्रिष्टा पतङ्गगजकेशरैः ।

शीताम्बुषोष्टैरानेपः सद्यो लूतां विनाशयेत् ॥ १६५ ॥

कटभ्यर्जुनशैरोप शैलुक्षीरोद्गमत्वचः ।

कपायकल्कचूर्णाः स्युः कीटलूताव्रणापहाः ॥ १६६ ॥

चन्दनं पद्मकं कुष्ठं नतं चोशीरपाटले ।

निर्गुण्डोशारिवागैलु लूताविषहरोऽगदः ॥ १६७ ॥

चन्दनं पद्मकोशीरं शिरीषं सिन्धुवारिणा ।

० शीरशक्ता नतं कुष्ठं शारिवोदीथपाटलाः ॥

शैलुवरी च पिष्टोऽयं लूतायाः विषनाशनः ॥ १६८ ॥

फलनीहिनिशाचोद्र सर्पिर्भिः पद्मकाद्वयैः ।

अशेषकीटलूताना मगदः सर्वकामिकः ॥ १६९ ॥

करञ्जार्कपयो वाजि मारकैः सविषानलैः ।

साचोटस्वरसैः सिद्धं तैलं लूताव्रणापहम् ॥ १७० ॥

इति लूताविषचिकित्सा ।

—०—

कूर्दनं जालिनीक्वाथेः शुकाख्यां कीटयोरपि ।

विरेचने विवृहन्ती त्रिफलाकल्कं द्रव्यते ॥ १७१ ॥

शैरीयस्य च मूलं वा सचौत्रं तंडुलांशुना ।

अद्भोटकस्य वा मूलं यस्तमूत्रेण कल्कितम् ॥

पानालेपनयोरुक्तं सर्वाखुविषनाशनम् ॥ १७२ ॥

विशालांकीटमूलञ्च तिलमूलं सितामधु ।

घृतेनाखुविषं हन्ति पीतमात्रञ्च दुस्तरम् ॥ १७३ ॥

कुसुमपुष्पगोदन्तं स्वर्णक्षीरीकपीतविट् ।

दन्तीविषक्षैन्ध्रवैला किणिही फाणितं तथा ॥

क्षीरेणाखुविषं हन्ति पीता तिलकमञ्जरी ॥ १७४ ॥

त्रिकटुकायस्य हितो गोमयस्वरसोऽञ्जने ।

कपित्थगोमयरसो सचौद्रो लेह द्रव्यते ॥ १७५ ॥

मार्जारकस्य पित्तेन पीतो मांसरसो सृजा ।

सोपद्रवमपि क्षिप्रं जयेन्मूषकजं विषम् ॥ १७६ ॥

गवाक्षीबिल्वकाकोल तिलमूलाः सशर्कराः ।

मध्वान्यसयुताः पीताः मूषिकाविषनाशनाः ॥ १७७ ॥

बिल्वकाकोलयोर्मूलं गिरिकाण्यास्तिलस्य च ।

एतेषां मधुसर्पिभ्यां पावमाखुविषापहम् ॥ १७८ ॥

तंडुलोद्यकमूलेन सिद्धं सर्पिः पिवेन्नरः ।

मृषिकाणां विषं तेन नाशमायाति सत्वरम् ॥ १७८ ॥

इत्याखुविषचिकित्सा ।

दंशस्खलर्कदष्टस्य दुग्धयुक्तेन सर्पिषा ।

प्रसिञ्चयादगदैस्तैस्तैः पुराणञ्च घृतं पिवेत् ॥ १८० ॥

मूलस्य शरपुङ्खायाः कर्पं धत्तूरकान्वितम् ।

सतंडुलोदकैः पिष्ट्वा क्वायोन्मत्त भवेदलैः ॥

पक्कालर्कविषेणार्तः स्वादेत्तद्विषनाशनम् ॥ १८१ ॥

पिवेद्धत्तूरकशिकां क्षीरेण परिपेषिताम् ।

अङ्गोलवंशजां वापि खविषघ्नीं प्रयत्नतः ॥ १८२ ॥

काकोदुग्धरमूलस्तु धत्तूरफलकान्वितम् ।

पिवेत्तंडुलतोयेन सारमेयविषापहम् ॥ १८३ ॥

अङ्गोटोत्तरमूलोत्थं कपायस्य पलद्वयम् ।

सर्पिष्य पलं पीतं मलर्कविषनाशनम् ॥ १८४ ॥

रसोनोपण्वैदेही वचागोपित्तकल्किताः ।

पाननस्याञ्जनान्तेपैः खदंष्ट्राविषहाः पराः ॥ १८५ ॥

जलवेतसहस्रस्य मूलं कुट्टं पचेज्जले ।

सक्काथः शीतलः पेयः परञ्च विषनाशनः ॥ १८६ ॥

इत्यलर्कविषम् ।

सद्यो हृदिकर्जं दंशं चुक्रतैलेन सेचयेत् ।

विदारिगन्धासिद्धेन कयोष्येनेतरेण वा ॥ १८७ ॥

लवंशोत्तमयुक्तेन सर्पिषा वा पुनः पुनः ।

सिद्धेत्कीर्णारनालेन सक्षीरलवणेन वा ॥ १८८ ॥

शिशिकुङ्कुटवर्णाणि सैन्धवं तिलसर्पिषा ।

धूपो हन्ति प्रयुक्तस्तु कीठहृदिकर्जं विषम् ॥ १८९ ॥

घृतेन सैन्धवं पोत्वा वृश्चिकस्य विषं जयेत् ॥ १८० ॥
 तालनिम्बदलं केशाजीर्णाय संवणं घृतम् ।
 धूपो वृश्चिकविषस्य शिखिपत्रं घृतेन वा ॥ १८१ ॥
 अर्कच्रीरेण संपिष्टं लेपादीजं पलाशजम् ।
 वृश्चिकार्तिं हरेत् कृष्णा सशिरीषफला तथा ॥ १८२ ॥
 मनोह्वासैन्धवं हिंगु जातीपत्रं सनागरम् ।
 गोसकद्रससंपिष्टं गुटिका वृश्चिकार्तिनुत् ॥ १८३ ॥
 जीरकस्य कृत कल्को घृतसैन्धवसंयुतः ।
 सुखोष्णो वृश्चिकार्तिनां प्रलेपो मधुगा सह ॥ १८४ ॥
 गन्धमाघ्राय मृदितसूर्यावर्तदलस्य च ।
 वृश्चिकैर्व्यधितो जन्तुः चणाद्भवति निर्विषः ॥ १८५ ॥
 काममर्दकपत्रञ्च मूलञ्च कुशकाशयोः ।
 चर्वयित्वा च फुत्कारः कर्णं वृश्चिकजं हरेत् ॥ १८६ ॥
 पारावतशकृत्पथ्या तगरं विश्वभिषजम् ।
 बीजपूररसोपेतः परमो वृश्चिकागदः ॥ १८७ ॥

इति वृश्चिकविषम् ।

सोमवल्कोऽश्वकर्णय गोजिह्वाहसपादिका ।
 रजन्यौ गैरिकौ लेपो नखदन्तविषापहः ॥ १८८ ॥
 शमोनिम्बजटापत्र वल्कलैः कथितैर्जलैः ।
 नखदन्तक्षतं पुंसां नाशाय परिपेचयेत् ॥ १८९ ॥
 मञ्जिष्टापञ्चकोशीरै धान्यकैः परिपेपितैः ।
 सघृतैर्लेपनं दद्यान्नखदन्तविषापहम् ॥ २०० ॥
 द्विनिशागैरिकं स्त्रीषो नखदन्तविषापहः ।
 गोजिह्वामधुना लेपो नखदन्तविषप्रणुत् ॥ २०१ ॥

इति नखदन्तज विषम् ।

लेपः प्रदीप्ततैलेन खर्जूरविषनाशनः ।

हरिद्राद्वयलेपो वा सगैरिकामनःशिलः ॥ २०२ ॥

कुङ्कुमं तगरं शिषु पद्मकं रजनीद्वयम् ।

अगदी जलपिष्टोयं शतपद्मिपनाशनः ॥ २०३ ॥

—०—

कृष्णवेत्रस्य निःक्वाथः कल्को वा घृतमिश्रितः ।

शृङ्गोमत्स्यविषं हन्ति धूमो वा वह्निपक्षजः ॥ २०४ ॥

—०—

कोटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्यर्जलौकपाम् ॥ २०५ ॥

शिरीषकटभीपार्थ शैलुक्षीरिद्रुमत्वचः ।

विषं जलौकपां घ्नन्ति प्रयुक्ताः पानलेपयोः ॥ २०६ ॥

इति जलौकोविषम् ।

कीटघ्नन्तुलसीमूलं पीतं यष्टी सुकल्कितम् ।

मेघनादहृहम्बूलं तथा गव्येन सर्पिषा ॥ २०७ ॥

क्षीरिहृचत्वचालेपः कीटदष्टविषापहः ॥ २०८ ॥

हिङ्गुकुटनतव्योष पाठाजन्तुघ्नसैन्धवैः ।

सञ्चारातिविषैस्तुल्यैः लेपः कीटविषप्रणत् ॥ २०९ ॥

साङ्गुलीनिर्विषालावू जालिनीमूलबीजकैः ।

लेपो धान्याम्बुना पिष्टः पिण्डिका कीटनाशनः ॥ २१० ॥

वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ।

पाठाप्रतिविषाव्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ॥

दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥ २११ ॥

इति कीटविषम् ।

पिप्पलिकाभिर्दण्डानां मक्षिकामशकैसाद्या ।

गवां मूत्रयुतो लेपः कृष्णवल्मीकसृत्कृतः ॥ २१२ ॥

गुग्गुलुधूपं दत्वा कोमलरविपत्रपिण्डिका सघृता ।
 बद्धा क्षतेऽतिलोहितकाचण्डादंशविक्रान्तिहरो ॥ २१३ ॥
 सर्जरसेन सेको संदंशेनापि कण्टकोद्धरणम् ।
 वरटीदंष्ट्रविषस्य प्रशमनमेतद्वयं दष्टम् ॥ २१४ ॥
 मरिचं नागरीपेतं सिन्धुसौवर्चलान्वितम् ।
 फणिल्लकरसंहन्यास्त्रिपनाद्धरटीविषम् ॥ २१५ ॥
 शतपुष्पासमायुक्तं सैन्धवं परिपेषितम् ।
 सघृतं लेपनं दद्यान्मक्षिकाविपनांशनम् ॥ २१६ ॥
 केशरं तगरं शुण्ठी मरिचञ्च प्रलेपनात् ।
 मक्षिकादंशजा पीडा नाशं याति ध्रुवं नृणाम् ॥ २१७ ॥
 इति मक्षिकाविषम् ।

स्रुग्क्षीरपरिपिष्टेन बीजेन परिलेपनम् ।
 शिरीषस्य व्रजत्यस्तं विषं दर्दुरजं क्षणात् ॥
 दुर्वारापि व्यथा क्षिप्रं मत्स्यदंशात् तत्क्षणात् ॥ २१८ ॥
 अङ्घ्रीपत्रधूपेन धूपिता रुप्रशाम्यति ।
 कटुतैलसक्तुकेशानां धूपाद्दंशस्य च व्यथा ॥ २१९ ॥
 यवतिक्ततैललेपा म्मीनजस्य विनश्यति ॥ २२० ॥
 इति मत्स्यविषम् ।

हृक्व्याघ्रतरक्ष्णं शृगालहयशृङ्गकैः ।
 दष्टानां तत्क्षणात्तैल म्रक्षणाच्च चिकित्सितम् ॥ २२१ ॥
 घण्टाबीजस्य पत्रं वा मूलं पिष्टं प्रलेपनात् ।
 निहन्ति शूकजं घोरं विषं कूष्माण्डपत्रकम् ॥ २२२ ॥
 सेक्षुसर्जरसोपेतं सर्पपापत्रकैः सह ।
 सुवर्णभास्करतरोः कुसुमैर्जुनस्य च ॥
 धूपो वा धूपितो हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ २२३ ॥

न तत्र कीटा न विषा दुर्दरा न सरोस्रपाः ।

न कृत्यकर्म तत्र स्या दूषोऽयं यत्र दह्यते ॥ २२४ ॥

बिष्वाटकीयवत्तार पाटलावङ्गिकोत्पलम् ।

श्रीपर्णीशास्त्रलीयुक्ता निःकाथ्य प्रोक्षणं परम् ॥

सप्रोक्षितस्तेन सद्यो भवति निर्विषः ॥ २२५ ॥

छत्रीसर्जरसश्चैव भवेद्रात्री तथा दिवा ।

तच्छाया शब्दविचस्ताः प्रणश्यन्ति हि पद्मगाः ॥ २२६ ॥

—०—

असाध्यलक्षणानाह ।

सीत्कम्पं पुलकावृतं प्रतिमुहूर्वक्तं समालोकते ।

दन्तेनाधरपङ्क्तवं दशति चेच्छीतान्वितः कूजति ॥

यस्तापं जहतामुपैति नितरामन्तश्च सौत्कण्ठते ।

यद्वस्त्रास्य सितामलांवरवती रौद्रीश्मशानस्थली ॥ २२७ ॥

नेत्रे शुक्लतरे च यस्य यदि वा सृत्वं व्रजेद्दंशकः ।

सन्ध्यायाश्च सुरेन्द्रगोपसदृशे रात्रौ च नीलप्रभे ॥

दशे रक्तजलाविलेऽतिमुभगे भक्तं न किञ्चिद्विशो ।

मात्रं मालभते तदेव नियतं पिच्छालयं गच्छति ॥ २२८ ॥

नासावर्तविहाय यस्य पवनो वक्त्रेण याति द्रुतम् ।

नेत्रे याति विकामिते बहति यो ग्रीवाश्च वक्त्रप्रमनम् ॥

चन्द्रं पश्यति भानुविम्बसदृशं सूर्यं गणाद्भासतिम् ।

दष्टो याति स एव गैहमचिरात् कालाभिधानस्य वै ॥ २२९ ॥

विरुदाध्यगनक्रोधं क्षुब्धयायासमैद्युनम् ।

वर्जयेद्विषजुष्टोऽपि दिवास्पृष्टं विरोपसः ॥ २३० ॥

इति श्रीवङ्गसेने विपनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ७१ ॥

अथ जलदोषादियोगाधिकारमाह ।

भोजनादौ तु संभुङ्क्ते शण्डिराज्यभयोत्थितम् ।

कल्कन्तु सहते नित्यं नानादेशोद्भवं जलम् ॥ १ ॥

महार्द्रकयवक्षारौ पीत्वा चैवोष्णवारिणा ।

नानादेशोद्भवश्चैव वारिदोषमपोहति ॥ २ ॥

नागरंगफलचोचमातपे शोपितं तदनुचूर्णितमेक ।

कर्पमात्रमुपयुञ्ज्य गुडेन वारिकर्म कुरुते न कदापि ॥ ३ ॥

यो लेढिशयनसमये मधुमिश्रं बीजपूरदलचूर्णम् ।

स च पीङ्गाकरवातप्रसरनिरोधात् सुखं स्वपिति ॥ ४ ॥

दत्त्वैव दुग्धभक्तं विप्रायोत्पाद्य सितबलामूलम् ।

पुष्पे कन्यापिष्टं दत्तमनिच्छाहरं भक्ष्ये ॥ ५ ॥

भूयः स्वार्त्तवशोपित भावितगोरोचनरचिततिलकानि ।

नारी यं यं पश्यति पुरुषं तं तं वशीकुरुते ॥ ६ ॥

सुरदारशर्वरीद्वयकमलोद्भवकेशरैः कृतो लेपो ।

दुर्जययोपिद्विहितो रुचिकर इति गीयते बहुभिः ॥ ७ ॥

जबूधातकिपर्णैस्तद्भवकल्कैश्च धूपितो योनिः ।

त्यजति समस्त विकारं जन्मान्तरसञ्चितञ्चापि ॥ ८ ॥

नालसमेतं कमलं पिष्ट्वा क्षीरेण वर्तिता गुटिका ।

योषिद्योनौ विहिता तदेव कन्याकरं चित्रम् ॥ ९ ॥

तालकचन्दनसहितं कुटजकदम्बोद्भवं फलं पिबति ।

आसवमिश्रं कान्तर याः सा वन्ध्या भवेद्वियत् ॥ १० ॥

एकं माचिकृमिश्रं लेपाल्लोशातकी भय चूर्णम् ।

योन्यांवरांगपाते कुरुते रेतः स्रुतिः तस्याः ॥ ११ ॥

पथ्योपभोगविधिना परितः संवेष्ट्य वाससा विवृतम् ।

विहिता जलीका योनौ पातस्तनयोः कदापि न स्वात् ॥ १२ ॥

चूर्णं हयगन्ध्या सितया सहितञ्च सर्पिषा लोढम् ।

विदधाति नष्टनिद्रे निद्रामाश्वेव सिद्धमिदम् ॥ १३ ॥

किमत्र चित्रं यदि वज्रपर्णीवक्षाश्लगन्धा जलशूकचूर्णम् ।

अन्तर्विदग्धं नवनीतमित्रं करोति मेढ्रं गजमेढ्रतुल्यम् ॥ १४ ॥

सुष्कशिराजं मूलं दृढमंगुल्या निपीड्य रतिकाले ।

चिन्तान्तरनिहितमना स्तभोरितः च्युतं जयति ॥ १५ ॥

शुष्केन्दोवरकुसुमं तंडुलसहितं सदा शितं सायम् ।

तनुते सुगन्धिवदनं विकसितनीलोत्पलाभोदम् ॥ १६ ॥

कोमलवरुणजपत्रं करमृदित सदा स्तने निद्रितम् ।

तद्गतपुसां हृदि हरिद्रुतसिद्धमिदं दृष्टम् ॥ १७ ॥

कच्छपमस्तकचरणं तिलजे सिद्धं विनाशयत्यचिरात् ।

धातुक्षीणं पण्डं कुरुते बलं रतौ तथोग्रम् ॥ १८ ॥

शमयति गोक्षुरुचूर्णं क्षागक्षोरेण साधितं समधु ।

भुक्तं क्षपयति पाण्डं यज्जनितं प्राक् प्रयोगेण ॥ १९ ॥

निर्गुण्डिकनकवाशा श्रीफलामलकासनोत्पवाणि ।

गन्धर्वहस्तमूलं दूर्वा कुसुमं तथा रजनी ॥ २० ॥

मिहार्धेडगजत्व गिति समभागं प्रक्षिप्य नवनीते ।

उद्वर्त्तनं विधेयं सततं बलिनाशनं दृष्टम् ॥ २१ ॥

इति वङ्गसेने जलदोषवीर्य्यस्तम्भादियोगाधिकारः

समाप्तः ॥ ७२ ॥

—०—

अथ रसायनाधिकारमाह ।

मापस्याढकमादाय जलद्रोणे विपाचयेत् ।

अर्धापशेषं तत्पतं दत्त्वा चेक्षुरसं ततः ॥ १ ॥

आर्द्रकस्य रसश्चैव प्रस्थद्वयसमन्वितम् ।
 संयोज्यमेकतः कृत्वा स्थापयेद्भाजने दृढे ॥ २ ॥
 त्रिरात्रे पञ्चरात्रे वा मापचूर्णं विनिक्षिपेत् ।
 मासेन तज्जातरसं दशरात्रं स्थितं तथा ॥ ३ ॥
 शुक्तञ्च तत्प्रयोज्यं स्यात्तैले वस्तौ घृतेऽपि वा ।
 एतच्छुक्तं प्रसशन्ति मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ४ ॥

इति शुक्तम् ।

जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीमधुसंयुतम् ।
 मधुभाण्डे विनिक्षिप्य रसाङ्गं तत्पिधापयेत् ॥
 मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥ ५ ॥

इति मधुशुक्तम् ।

गुडमधुकाञ्चितकतक्रं यथोत्तरं द्विगुणभागसहस्रम् ।
 न्यस्तन्तु धान्यराशौ त्रिदिवसमिति भवेच्छुक्तम् ॥ ६ ॥

इति गुडतकम् ।

पिप्पलीचीरसंसिद्धं सर्वरोगहरं घृतम् ।
 कालीयकहरिद्राभ्यां कामलामेहनुत्परम् ॥ ७ ॥
 वृहतीरसकल्काभ्यां दुष्टकासक्षयापहम् ।
 गुडूचीरसकल्काभ्यां वातरक्तविकारनुत् ॥ ८ ॥
 खदिराष्टकसंसिद्धं श्वित्रकुष्टविसर्पनुत् ।
 मृद्वीकारसकल्काभ्यां रक्तपित्तज्वरांतकृत् ॥ ९ ॥
 पिप्पलादिघृतं षट्क वैदेहाधिपकीर्तितम् ॥ १० ॥

—०—

आनूपजो रसो मज्जा वसातैलं नवं घृतम् ।
 रसचीरं पंचैस्त्वस्य गवाप्त्र मधुरं गणम् ॥ ११ ॥

अश्वगन्धामपामार्गं तथा लाक्षारसं समम् ।

अथ सिद्धञ्च पूतञ्च चानुगुप्तं निधापयेत् ॥ १२ ॥

तेनाभ्यङ्ग्य सदा कर्षपालिञ्च सुप्रमर्दयेत् ।

अनेन पाल्यो वर्धन्ते नीरुजः निरुपद्रवाः ॥

मृदुपुष्पसमाः स्निग्धा जायन्ते भूषणक्षमाः ॥ १३ ॥

इति पालिवर्धनचतुःश्लोः ।

—०—

अथ शिवगुटिका ।

शिलाजतुषोडशपलं त्रिविधारं विभावयेत् ।

बलाया दशमूलस्य गुडूच्याः कर्कटस्य च ॥ १४ ॥

वराया मधुयव्याश्च रसमध्ये च वारिणा ।

घोरि सकृद् क्रमेणैव सप्त कृत्वा ततो द्रुतम् ॥ १५ ॥

काकोलियुग्मघनपुष्करवह्निरास्त्रा

मेदायुगर्दिचविकागजपिप्पलीनाम् ।

पाठाद्विजोरकनिकुम्भविदारियुग्म

वीरावरीमधुपलांशुमतोदयानाम् ॥ १६ ॥

पलिकानागपां द्रोणे सिद्धानां पादशेषिते ।

काथे भाषितमित्थं वा गिरिजं द्विपलञ्च तत् ॥ १७ ॥

युष्मत्पुष्पार्कटशृङ्गीधात्री व्योषतालीसकुडवेन ।

चूर्णपलेन विटार्थास्त्वक्क्षीर्या वा कर्षयुग्मेन ॥ १८ ॥

द्विपलेन चतुर्जाता सैलघृतघौद्रगर्कराभिश्च ।

तद्विपलाद्विगणाभिः कुर्याद् गुटिका ततोऽर्चममाः ॥ १९ ॥

ताः सिद्धा नवकुम्भे शुष्के जाति पुष्पाधियासिते स्याप्या ।

• तासामेकां खादेत्यतिदिनमनुपानं पेयञ्च ॥ २० ॥

क्षीररसदाडिमाश्रः शीतजलमधुगमवान्यतमम् ।
जोर्णाद्वे लघुभोज्यं यूपः पयांसि पिशितनिर्युहैः ॥ २१ ॥
सप्ताहमात्रमेवं सामान्यमतः क्रमं भवेत्परितः ।
भुक्तम्यान्ते प्राग्वा गुटिका न विरुध्यते चैषा ॥ २२ ॥
निष्पापाभूरिफला परिहार सुखोपयोजिता जयति ।
प्रबलवातगोणित मूरुस्तम्भं ज्वरं दीर्घम् ॥ २३ ॥
भगमूत्रगक्रदोषान् ग्रीवाशः पांडुहृदयक्रदोषान् ।
वध्मं वमिगुल्मपोनम ह्रिक्काकामारुचिश्वासान् ॥ २४ ॥
विद्रधिमुदरं कृच्छ्रं श्वित्रं पंढ्रं क्षय मदं मूर्च्छाम् ।
उन्मादमपस्मारं मुखरोगशिरोगदस्तम्भान् ॥ २५ ॥
आनाहसतोमारं हन्तीमककामलाग्रहणीरोगान् ।
यन्यग्र्युदांश्च पिण्डिकाभगन्दरं गण्डमालाञ्च ॥ २६ ॥
अतिकाशमतिम्यौख्यं स्येदमतिशीपदं गुदे कीलान् ।
दंष्ट्राविषं समूलं क्षरप्रयोगान् सुधोरांश्च ॥ २७ ॥
मन्त्रीपधिप्रयोगान् विप्रमुक्तान् भोतिकांस्तथा भावान् ।
पाप्माऽलक्ष्मी चेयं गुटिका शिवा नाम्ना प्रथिता ॥ २८ ॥
हृष्यावल्याधन्याकान्ति यशः श्रीवर्धनीमेध्या ।
क्लृप्ते स्त्रीवल्लभतां जय विवादे मुखम्याञ्च ॥ २९ ॥
बलीपलितरीगरहितो न भवति गात्रं सुवह्ममति चैव ।
वर्षद्वयप्रयोगाद्वर्षगतचतुष्टयं जीवेत् ॥ ३० ॥
इति वृहच्छिवागुटिका ।

—०—

अथ गुग्गुलुरमायनमाह ।

त्रिफलाशनखदिरामृतवर्षाभृभृङ्गोक्षुरुक्ताथे ।
सार्वाङ्गं तु गुग्गुलु पलानि त्रिंशच्च लेहवद्विपचेत् ॥ ३१ ॥

मधुघृतसिताविमिश्रं लिङ्गेन्नरः कान्तिबलबुद्धियुक्तः ।
तथा गदैर्विमुक्तो जीयति संवत्सरांस्त्रिंशत्तान् ॥ ३२ ॥

—०—

अथ गन्धककल्पमाह ।

चूर्णिकृत्यपलानि पञ्चनितरां गन्धाश्मनो यत्नत-
स्तच्चूर्णं त्रिगुणे च मार्कवरसे छायाविशुष्कीकृतम् ।
पथ्याचूर्णमथो तथा मधुघृत प्रत्येकमेकं पलम्
द्वौ यौवनमेति प्राप्स्युर्गलं खादेन्नरः प्रत्यहम् ॥ ३३ ॥

—०—

अथ गन्धकरसायणम् ।

गन्धकस्यार्धकपर्णन्तु मरिचं शाणमात्रकम् ।
असिताम्बरमष्टांशं शिलायां चूर्णितं शुभम् ॥ ३४ ॥
एतच्चूर्णत्रयं तैले तिलजे दिवसत्रयम् ।
वर्त्तित्रयं समारभ्य घृते वा स्थापितं तथा ॥ ३५ ॥
तदुद्धृत्यक्षीरपात्रे दीपं प्रज्वालय बुद्धिमान् ।
पातयेद्दर्त्तिमत्त्वं च तद्गवा रसरक्तिका ॥ ३६ ॥
पर्णत्रयं समारोप्य तद्गवाहुञ्जकद्वयम् ।
समूच्छं भक्षयेत्प्रातः क्षेत्रपालवलितं ततः ॥ ३७ ॥
दत्त्वा तु विधिना कृत्वा कामचारी भवेत्सदा ।
न चात्र परिहारोस्ति विहाराय नृणां भदा ॥ ३८ ॥
बलोपलितनाशाय वङ्गैर्वलविवर्द्धनम् ।
द्वितमेतत्सदा प्रोक्तं रसायनगुणैर्यथा ॥ ३९ ॥

अथ गन्धकद्रुतिमाह ।

पलमिह गन्धकचूर्णं राजिकातः कर्षकलितमादाय ।
 सिततरवसननिरुद्धं हविषाप्तुतशोषितं वज्रौ ॥ ४० ॥
 तद्रवमाज्ये मग्नं त्रिकटुकचूर्णैककर्षसंयुक्तम् ।
 मिलितैकशाण्मात्रं प्रातः खाद्यं नियतपर्णम् ॥ ४१ ॥
 वर्णवलयुतमेतज्जनयति कुरुते देहसुखम् ।
 सतताभ्यासवशादति जनयति सुधाधामलावन्यम् ॥ ४२ ॥

—०—

अथ गन्धकयोगमाह ।

यो गन्धाश्म सुचूर्णितं पिवति ना तैलेन कर्षोन्मित-
 मभ्यङ्गोष्णजलावसेजनरतः पेयामृतं प्रत्यहम् ।
 सप्ताहान्नियतं निहन्ति सकलां पामादि सर्वां रुजम्
 नित्याभ्यासवशाद्दिनष्ट सकलक्लेशोपद्रावः पुमान् ॥ ४३ ॥

—०—

अथ गन्धककल्पमाह ।

यो वालुपमतिः सुचूर्णितमिदं गन्धाश्म कृणासमम् ।
 पथ्या तुल्यमथापि पूजितगुरुः भूतेशपूजारतः ॥
 आहारादिषु यन्त्रणाविरहितः स्यात् पुष्टिशैथिल्यवितः ।
 प्रोत्फुल्लाम्बुजनेत्र एव मजरस्वामीकराभाश्रयः ॥ ४४ ॥
 शृङ्गराजरसेनेव लोहपात्रेऽग्निना पचेत् ।
 द्रावयित्वा विनिक्षिप्य मायूर इव जायते ॥ ४५ ॥
 जयाटलरसेनापि बर्द्धमानरसेन च ।
 शृङ्गवररसेनापि काकमाचारसेन ॥ ४६ ॥
 रसगन्धद्वयं लब्धं लोहपात्रे प्रियोत्तमे ।

एकीकृतं च तावच्च खल्वयेदपि यन्नतः ॥ ४७ ॥

यावच्च नीलवर्णं स्यात् कोलाङ्गारैश्च पाचयेत् ।

गोमयस्थालवालेन स्थापिते कदलीदले ॥ ४८ ॥

ढालयेत्पाकविप्राञ्च स्ततस्तु प्राशयेन्नरः ।

एवं सति सुस्वार्थाय पथ्यभुग्भिः प्रसेव्यते ॥ ४९ ॥

गन्धकपर्पटी चैषा सिद्धा कालस्य सिद्धिदा ।

दुर्नामग्रहणीमाम शूलञ्च ग्रहणीगदम् ॥ ५० ॥

कामलां पांडुगञ्च ब्रौह्मगुल्मजलोदरम् ।

भस्मकं चामवातञ्च कुष्ठानि च ध्रुवं जयेत् ॥ ५१ ॥

एवमादीनि जित्वैव वपुषा निर्मलः सुखी ।

जोवेद्वर्षशतं पूर्णं बलीपलितवर्जितः ॥

सर्वव्याधिचिकित्सायां कल्कोऽयमिति दुर्लभः ॥ ५२ ॥

इति गन्धकरमपर्पटी ।

तनुपचीकृतं ताम्रं नैपालं गन्धकं समम् ।

दत्त्वा चोर्ध्वमधो मध्ये स्थालिकामध्यसंस्थितम् ॥ ५३ ॥

कृत्वा खल्पपिधानञ्च स्थालीमध्ये निधाय च ।

शर्कराभक्तलेपेन लिप्ताः सन्धीस्तदूर्ध्वतः ॥ ५४ ॥

बालुका पूरिता स्थाली विहितायां पुनस्तथा ।

सुलिप्तायाञ्च यामैकमधोज्वालां प्रदापयेत् ॥ ५५ ॥

तत आकृष्टताम्रस्य मृतस्य त्विह योजना ॥ ५६ ॥

अथ कर्पे गन्धकस्य दङ्गिस्थं लोहपात्रगम् ।

शिला वट्टेन समर्द्य द्रुतं घृष्टं पुनः पुनः ॥ ५७ ॥

रसोऽग्नौ मयितः गृह स्तावन्मानः प्रदीयते ।

ततस्तथैव समर्द्य पुनराज्यं प्रदापयेत् ॥ ५८ ॥

अष्टविन्दुकमानञ्च मर्दयेन्मूर्च्छितं तथा ।

सैव स्यात्तत आकृष्य शिलावट्टादिकं दृढम् ॥ ५८ ॥
 संहृत्यालंबुपरस प्रसृतेन विलोडितम् ।
 पुनस्तथैव बद्धिस्थे लोहपात्रे विमर्दयेत् ॥ ६० ॥
 यावद्रसक्षयः पश्चा दाकृष्टं संप्रयोजयेत् ।
 अलंबुपारसेनैव गोलकं संप्रकल्पयेत् ॥ ६१ ॥
 तं पिण्डं वस्त्रनिष्पीड्य पिण्डे त्रिकटुजे पुनः ।
 वसनान्तरिते दत्त्वा पोटलीं कारयेत् सुधीः ॥ ६२-॥
 ततस्त्रां पोटलीमान्ये मग्नां कृत्वा विधारिताम् ।
 सूत्रेण दण्डसंलग्नां पाचयेत् कुशलो भिषक् ॥ ६३ ॥
 यदा निष्फेनता चाज्ये गुटिका च दृढा भवेत् ।
 तदा पक्वं तमाकृत्य पञ्चगुञ्जासुलाष्टतम् ॥ ६४ ॥
 त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं तुल्यं प्रातः प्रयोजयेत् ।
 तत्र स्यादनुपाने तु अम्लपित्तीच्छये पुनः ॥ ६५ ॥
 त्रिफलैव समा देया कोष्णं वारि पिबेदनु ।
 सप्तमे दिवसे रक्ती वृद्धिस्तान्नात्तु मापकम् ॥ ६६ ॥
 यावद्ययोगस्तथैव ह्यपकर्षः पुनर्भवेत् ।
 योगोऽयं ग्रहणीयश्च पक्तिशुलान्मपित्तहा ॥ ६७ ॥
 रसायनं समुद्दिष्टं गुदकीलादिनाशनम् ।
 न चात्र परिहारः स्याद्विहाराहारकर्मसु ॥
 ताम्बरसायनमिदं सर्वव्याधिहरं परम् ॥ ६८ ॥

—०—

घृतमधुमर्करया हितं लेहवन्मर्दनीयम् ॥
 इति ताम्बरसायनम् ।
 कण्टकवेधनयोग्यं ताम्बरं पत्रं कृतं समादाय ।
 कर्पाधिकपत्रमात्रं भस्माग्नी निर्दहेद्विपकुशल ॥ ६९ ॥

एवं पुनरपि वारद्वितीयं विमर्द्यमतिगाढम् ।
 प्रत्येकं मिलितेष्वपि तथैव वारत्रयं दद्यात् ॥ ७० ॥
 इन्द्रस्वरसभावितं गन्धकलितन्तु ताम्रकं कृत्वा ।
 खर्परसंपुटमध्ये विनिधायमृदातमुपलिम्पेत् ॥ ७१ ॥
 हस्तप्रमाणवदने गतं चतुर्हस्तपरिमाणे ।
 दत्त्वेन्धनं करीषं नुपमध्ये दहनमादाय ॥ ७२ ॥
 तदुपरि दत्त्वा ताम्रसंपुटं निहितं पुनश्च करीषाभिः ।
 संछाद्य तत्र वङ्गिं प्रज्वालयेद्भिषग्विशङ्कः ॥ ७३ ॥
 तावत् पुटं प्रदेयं यावत्तत्तन्मृच्च मृत्युमायाति ।
 मृतमधिगम्य च भाण्डे कचिदपि तत्स्थापयेत् पुटितम् ॥ ७४ ॥
 तदनु तावत्प्रमाणपारदं भादाय खल्वयेन्निपुणः ।
 खल्वशिलायां मध्ये गृहधूमनिशेष्टका चूर्णैः ॥ ७५ ॥
 पथाद्वारिविधानं पुनश्च त्रिकटुना लक्षयेन्निपुणः ।
 खल्वितसूतस्यैवं पातनं यन्त्रेण चोद्धारः ॥ ७६ ॥
 समकृतगन्धकसहितं पुनरपि कृत्वा खल्वयेत्त्रिदिनम् ।
 एवं तन्मृतसूतकमृतमात्रकमिश्रितं कुर्यात् ॥ ७७ ॥
 दुग्धपलाष्टकमाज्यं तत्सममञ्चं नारिकेलजलम् ।
 द्विपलं कलितत्रिफला क्वाथञ्च चतुर्गुणं दद्यात् ॥ ७८ ॥
 सुदृढे ताम्रकटाहे मार्त्तं वा स्थापयेद्विविधविधिभिः ।
 दर्ब्यां च ताम्रमय्याऽऽयस्यां चाल्पं पुनः पचेद्द्वयः ॥ ७९ ॥
 ज्ञात्वा पाकं भूयो भटिति कडाहमवतारयेन्निपुणः ।
 तदनुजं तस्मिन्नष्टलक्षणांश्च विश्राम्य क्रियतेऽपि ॥ ८० ॥
 त्रिकटुत्रिफलालोहितं चित्रकविडङ्गकभद्रमुस्तानाम् ।
 जीरकयोः प्रत्येकं कर्पकलितचूर्णनिक्षेपः ॥ ८१ ॥
 पुनरैलाकङ्गोललवङ्गजातिफलजातिकोपाशाम् ।

चूर्णं गुडत्वचोऽपि मापाष्ट परिमितं दद्यात् ॥ ८२ ॥
 ततः सुशीतं ताम्रं मापाष्टकमति विकीर्य घनसारम् ।
 ताम्रमयादिनि भाण्डे स्निग्धे मार्त्तवास्थाप्यम् ॥ ८३ ॥
 मनसि च विधाय सूर्यपूजां कृत्वा शुभे दिने चर्त्त ।
 आदायमापमेकं दधिमधुना सह भक्षयेत्सुचिरम् ॥ ८४ ॥
 तदनु च कण्ठप्रायः क्षीरं कार्यमनुपानमधिकाल्पम् ।
 नक्तमनल्पं पुनरपि तांबूलं भक्षयेत्सरजः ॥ ८५ ॥
 रक्तीद्वयमथ त्रितयं पञ्चकं वृद्धे र्मापकं यावत् ।
 स्थितमतश्चोपरिष्ठात्प्रतिलीमं ज्ञास्येत्तदनु ॥ ८६ ॥
 खादितमेतन्नियतं यस्य न ताम्रं प्रवर्त्तते प्रायः ॥
 तत्रापि सयवचार स्निफलाक्कायोऽत्र पानीयः ॥ ८७ ॥
 प्रारब्धे ऽस्मिंस्ताम्रे कतिचिद्विवसान्नभक्षयेन्मत्स्यान् ।
 क्रोधश्च दिवानिद्रां वेगनिरोधांस्त्यजेद्देहैरम् ॥ ८८ ॥
 शाकं चाम्बं वर्ज्यं दधि बहिरम्भं भक्षयेद्देव ।
 जह्यात्तित्तकपायं जह्यात्तत्कालिकीं पुष्टिम् ॥ ८९ ॥
 वृथं मधुरं शीतलमथ शाल्यन्नं मधुघृतमग्नीयात् ।
 मंदुरोहितशकुलशमृगैणादिकं मांसम् ॥ ९० ॥
 खादन्ने तद्वेपजमजीर्णं च न भवति न जानाति ।
 जयति च कफमतिगाढं कासं खासं च निवारयति ॥ ९१ ॥
 विरचितमेतत्ताम्रं धर्माध्यक्षेण धर्मपालेन ।
 बन्ध्यावटी यः पिण्डित इडानिवन्धचर्थाभिः ॥ ९२ ॥
 इति ताम्ररसायनम् ।
 जातीफलं, जातिपत्रं लवङ्गं केसरं तथा ।
 चातुर्जातकशुण्ठी च पिप्पलीब्रूपणानि च ॥ ९३ ॥
 चित्रकं पिप्पलीमूलं वरीमूलन्तु वंशजम् ।

सर्वं पिष्टा सुसूक्ष्मञ्च बाससा परिशोधयेत् ॥ ८४ ॥
 लोहचूर्णं तथाभ्रञ्च ताम्रभस्म च वङ्गकम् ।
 रसराजञ्च नागञ्च कल्कस्थार्द्धं प्रयोजयेत् ॥ ८५ ॥
 नागवल्लीरसेनैव अथवा माक्षिकेन च ।
 गुटिका तत्र संकार्या माषद्वयप्रमाणिका ॥ ८६ ॥
 पद्मसांद्यावभेदांश्च यथोक्तं भक्षयेद्बुधः ।
 गोदुग्धस्यानुपानञ्च उष्णं चैव विशेषतः ॥ ८७ ॥
 वर्धनं सप्तधातूनां वीर्य्यबुद्धिबलप्रदम् ।
 बलभाकान्तिरुचिरमग्नेः संदीप्तिकारकम् ॥ ८८ ॥
 कफरोगहरश्चैव बुद्धिज्ञानस्य कारणम् ।
 धन्या च लभते गर्भं शण्डोऽपि पुरुषायते ॥ ८९ ॥
 नपुंसको याति पुंस्त्वं रामाः कामायते शतम् ।
 वज्रकायः शुचिर्धातुर्दिव्यदृष्टिस्तु जायते ॥
 जराव्याधिर्विनिर्मुक्तो वर्षसेवी यदा भवेत् ॥ १०० ॥

इति षड्दामृतनामरसः ।

गन्धकस्य पलं प्रोक्तं रसस्य द्विपलं तथा ।
 नैपालस्य विशुद्धस्य ताम्रस्य च पलं भवेत् ॥ १०१ ॥
 ततो गन्धाईचूर्णेन ताम्रं संयुज्य चूर्णयेत् ।
 शेषाईगन्धकं कृत्वा पारदं खल्लयेद्विपक् ॥ १०२ ॥
 रसेन हस्तशुण्डराद्य लोहपात्रे पचेच्छनैः ।
 कृत्वा षड्दसमं पाकं ताम्रेण सह योजयेत् ॥ १०३ ॥
 तच्च गन्धकचूर्णेन सवेष्ट्य हविषा सह ।
 पाचयीत भिषक् प्राज्ञः पाकविभृदुबद्धिना ॥ १०४ ॥
 आलोद्य मधुसर्पिभ्यां भुत्वा तक्रं पिवेदनु ।

अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च ग्रहणीपाण्डुकामलाम् ॥ १०५ ॥
परिणामरुजं चाशु नाशयेत्तु प्रयोजितम् ॥

इति ताम्रकम् ।

जीर्णं ताम्ररसं चैव गन्धकञ्च सुचूर्णितम् ।
स्वर्णमाक्षौकमादाय धत्तूरकरसे पचेत् ॥ १०६ ॥
यावत्पाकं तथा कृत्वा शास्त्रविष्मन्दबद्धिना ।
त्रिफलापिण्डिकावेष्ट्य विधिवत्सर्पिषा पचेत् ॥ १०७ ॥
ज्ञात्वा पाकं समुत्तार्थं शोते निष्कास्य भक्षयेत् ।
विमर्द्य मधुसर्पिर्भ्यां नारिकेलं पिवेदनु ॥ १०८ ॥
पाण्डुरोगञ्च कासञ्च ज्वराञ्च विषमांस्तथा ।
गुल्मं प्लीहामयञ्चैव विनाशयति भक्षणात् ॥ १०९ ॥
इति द्वितीयताम्रकम् ।

गन्धकं जीर्णताम्रञ्च सूतकञ्च समांशकम् ।
तंडुलीयकमूलस्य रसेऽहिलवणस्य च ॥ ११० ॥
लोहपात्रे पचेत्ताव द्यावत्तद्गुलिकायते ।
तद्वस्त्रे पोटलीं बद्ध्वा वेष्टयेत्तां सुपिष्टया ॥ १११ ॥
आमलक्या ततः पक्त्वा सर्पिषा स्रदुवद्धिना ।
शर्करामधुसर्पिर्भ्यां मालोढ्य विधिवत्क्षिजेत् ॥ ११२ ॥
नारिकेलपयः पेयं तक्रं चानु यथाविधिः ।
आचरेद्ब्रह्मचर्य्यन्तु हितार्थं वैद्यवत्सलः ॥ ११३ ॥
दुर्नामप्लीहपाण्डुत्व ज्वरकामादिकान् गटान् ।
अग्निमान्द्यकृतान् सर्वां त्रिहन्त्यात् क्षिप्रमेव तु ॥ ११४ ॥
इति ताम्रामृताख्य रसायनम् ।

रसगन्धकताम्राणां चूर्णं कृत्वा समांशकम् ।

पुटपाकविधौ पक्ता मधुनालोद्य संलिहेत् ॥ ११५ ॥

सर्वरोगहरश्चेत् त्वर्पटाख्यं रसायनम् ।

इति पर्पटाख्यं रसायनम् ।

गन्धकं त्रिफलाभृङ्गौ समभागान्तु कारयेत् ।

भक्षयेत्कर्पमात्रान्तु वर्षान्मृत्युजंरापहः ॥ ११६ ॥

—०—

शुद्धगन्धपलान्वष्टौ मृततीक्ष्णपलद्वयम् ।

सूर्यपाके त्रिसप्ताहं दत्त्वा कन्याद्रवं पचेत् ॥ ११७ ॥

कर्पकं पातयेत् क्षीरे वर्षमेकं निरन्तरम् ।

दिव्यदृष्टिर्भवेन्नर्त्यो जीवेच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ११८ ॥

मन्त्रमत्र प्रवक्ष्यामि गंधराजस्य भक्षये ॥ ११९ ॥

उहः अमृतीय अमृतशक्तीय अमृतगंधोपजीवनिष्पन्नचन्द्रा-

मृतं याज्ञापनममृतत्वं कुरु स्वाहा । इति मन्त्रः ।

—०—

कुर्व्याद्गन्धकयोगानां क्षीरशाल्यन्नभोजनम् ।

केवलं वा पिबेत् क्षीरमन्यत्सर्वं विवर्जयेत् ॥ १२० ॥

इति गंधकरसायनम् ।

अतिक्षुण्णमतिस्निग्धं वज्रमञ्जनमन्निभम् ।

सर्वदोषपरित्यक्तं विशेषोपलवर्जितम् ॥ १२१ ॥

गिरिदोषोज्झितं शुद्धं प्रयुञ्ज्यात्सर्वकर्मासु ।

विहितं मस्तके नित्यं रसं रसायनादिषु ॥ १२२ ॥

एतद्व्याख्यमाख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम् ।

सर्वव्याधिहरं नूनं मजरामरकारकम् ॥ १२३ ॥

तद्वत्तेनेव पञ्चत्वं कृत्वा च सुविचक्षणः ।

कृत्वाय मन्मथे भाण्डे दृढे संस्थाप्य बुद्धिमान् ॥ १२४ ॥

यथीकृतं मेघनादस्य निर्यासे याति संप्लुतम् ।
 स्थापयेद्विवसं पञ्च चतुष्टयमथापि वा ॥ १२५ ॥
 स्थापयेद्रमसंछन्नं छायाया दिव्यमौषधम् ।
 मतीक्ष्णमसृणायाञ्च शिलायां पेपयेत्ततः ॥ १२६ ॥
 पिष्ट्वा तथैव संस्थाप्य संस्थानोपरिसंहृतः ।
 अतः पुनः पञ्चदिने पुटयेत्कुट्टं तदा ॥ १२७ ॥
 वलवांस्तद्रसेनैव पिष्ट्वा संस्थापयेत्ततः ।
 पवमादिक्रमेणैव पेपणं क्रियते सदा ॥ १२८ ॥
 पूर्वाक्तक्रमयोगेन घात्रीव्योषविडङ्गकैः ।
 संमिश्रं पेपयेद्दीरो यावन्निचन्द्रको भवेत् ॥ १२९ ॥
 निचन्द्रिकेऽतिमपीड्य अगुष्टायप्रमाणतः ।
 गुटिकां कारयेत्सर्वां छायायाञ्चैव शोषयेत् ॥ १३० ॥
 एकैकां भक्षयेत्प्राज्ञो वर्षमेकं निरन्तरम् ।
 द्वितीये च पुनर्वर्षे भक्षयेद् गुटिकाद्वयम् ॥ १३१ ॥
 एवं संवत्सरेणैव एकैकां वर्धयेद् गुटीम् ।
 अनेनैव विधानेन ध्योन्नः शतपलं नरः ॥ १३२ ॥
 अद्याद्भवेन्न मटेहो वज्रकायो महाबलः ।
 मासत्रयेण रक्ताख्य क्षय कामं सुदारुणम् ॥ १३३ ॥
 पञ्चकासञ्च हृच्छूलं ग्रहण्यशीं गदांस्तथा ।
 आमघातं तथा शीघ्रं पांडुरोगं सुदारुणम् ॥ १३४ ॥
 मृत्युकल्पं महाव्याधिं वातपित्तकफोद्भवम् ।
 हृन्त्यष्टादशकुष्ठानि यथोक्तपथ्यसेवनात् ॥ १३५ ॥
 इत्यभ्रककल्पः ।
 गगनं कज्जलसन्निभं स्निग्धमदीपं वियोगितम् ।
 बहुशः दूर्वालवुपमूलैर्युक्तं वस्त्रे विवदञ्च ॥ १३६ ॥

दत्त्वा सलिलं तावत्करेण घर्षञ्च पङ्कतां नीतम् ।
 निपुणं गृहीतमुदकादञ्जनपुञ्जघनीभूतम् ॥ १३७ ॥
 द्वित्रिवारपरिपुटितं रवितरुमथिताल्पदुग्धकादिरसे ।
 चूर्णितमयितं शिलायां कुडवमेकं तटादाय ॥ १३८ ॥
 प्रथमं चतुरष्टगुणे गोमूत्रे वा पचेन्मृदुज्वालम् ।
 निपुणमनलं दत्त्वा समुद्रयाभ्रं तथा दुग्धे ॥ १३९ ॥
 अक्षयं विडङ्गचूर्णं गगनार्धं त्रिकटुसम्भवञ्च रजः ।
 त्रिकटुममं त्रिफलीयं पृथक् तदर्द्धञ्च बन्ध्यायाः ॥ १४० ॥
 नतकरिकर्णीद्विद्वदार्कं रक्तान्नलनीलकानाञ्च ।
 मूलस्य तालमूलीरक्ताञ्चभारहपुष्यानाञ्च ॥ १४१ ॥
 पत्रकं सवाजिगन्धाशतावरीमूलसम्भवञ्चापि ।
 अमलिनं पुनर्नवार्कं तर्कारी सवाद्यान्मूलस्य ॥ १४२ ॥
 चूर्णं कण्टकपर्णीभवं समृताभृङ्गराजस्य ।
 त्रिहतास्याया स्त्रिभुवनविजयस्य केशराजस्य ॥ १४३ ॥
 सुविदितपाकं शीतं गगनचूर्णञ्च भाजने सर्वम् ।
 समधुमितैरनुरूपैः समिश्रं मध्वाज्यकर्षेण ॥ १४४ ॥
 पिष्टं तदनुशिलायां स्निग्धभाण्डे निधाय मविधिज्ञः ।
 मोक्षाहं सुविनीतो गृह्णीयाद्वराभ्रकं कल्पम् ॥ १४५ ॥
 मृदुक्लतं वमनविरिक्तं वैद्यं प्रदृष्टेन मात्प्रयोगिन ।
 याति शरीरविशुद्धिर्दीपितं देहानलो नीरुक् ॥ १४६ ॥
 पूजितगुरुदेवानलवितथि मिद्वसाधुमान्यजनः ।
 स्निग्धोदनपरिदप्तः दीनग्लानि रक्षितः सत्कृतः ॥ १४७ ॥
 स्थिरमङ्कलो विनीत सर्वेन्द्रियः प्रशान्तमर्षात्मा च ।
 परिकृतपरोपकारः वामं समुज्झितो जितक्रोधः ॥ १४८ ॥
 यद्वावानश्रीयाद्देवजराजस्य मापकात्रष्टो ।

पुण्ये दिवसे कृत्वा गुटिकां तथा भक्षयेत्प्रातः ॥ १४८ ॥

अनुपानं शीतजलं सततमन्नातिभोजनं नात्र ।

हिताहिताद्यं सुखदं शाकान्मदधिपरिहीनञ्च ॥ १५० ॥

अतितिक्तकटुकपाय चाराभिष्यन्दि तीक्ष्णरूक्षाणि ।

वातलविदाहिदुर्जरगुरुण्यसेव्यानि वस्तूनि ॥ १५१ ॥

पानं दूराध्ययनं रतिमतिशीतलं दिवास्वप्नञ्च ।

प्रत्युपदेशं द्वेषं वातातपजागरणोद्वेगान् ॥ १५२ ॥

चिन्ताशोकविपादव्यायाम मदकरोन्माटकरान् ।

पिशितञ्चानूपदेशं शीतपानं वर्जयेदनिश्चम् ॥ १५३ ॥

कृकरमयूरकलावक तित्तिरिशशकाजमेपमारङ्गम् ।

जांगलं पिशितं श्याम मापं पटोलञ्च वार्त्ताकुम् ॥ १५४ ॥

पथ्याशीपिशितं रसं सैन्धवं सघृतकं सधान्याकम् ।

खस्तिकपष्टिकलोहित शालीनति निस्तुपान्मुद्गान् ॥ १५५ ॥

क्रमुकफलानि द्राक्षापक्वान्फलानि चैध शस्तानि ।

खादु च परिणति मधुरं कलिकरञ्चापि वाऽऽसवन्तोयम् ॥ १५६ ॥

प्रतिसप्ताहकमेतत् क्रमाद्वा प्रवर्धयेद्दोमान् ।

युक्तिविचाराभिज्ञो भेषजस्य पर्यन्तं भवति ॥ १५७ ॥

रसायनराज कुर्वन् मनुजो मनोभिलाषं प्राप्नोति ।

नागार्जुनोपदिष्टं यन्मासोपविहितविधिना च ॥ १५८ ॥

अपगतसकलव्याधिः बलिपलितवर्जितोऽति महातेजाः ।

शूरः प्राज्ञो वाग्मोत्रिवर्गफलभाजनो दक्षः ॥ १५९ ॥

नदमत्तकुञ्जरबलः सौकुमार्योत्साहसपन्नश्च ।

पोडशवर्षकरो बहु प्रसूतः सुचिरजीविनोपेतः ॥ १६० ॥

जीवेद्द्वर्षसहस्रं सतताभ्यासाच्च सर्वसम्पन्नः ।

चन्द्रकगनीयकान्तिः पत्रनवलो धामसमधामा ॥ १६१ ॥

शोषयकृतिसार श्लेष्मपक्कारसिन्धयक्ष्मणः ।
 कासश्वासविसर्पग्रहणी गुल्माश्मरीशोथान् ॥ १६२ ॥
 प्रदरजलोदरभस्मकवमिषामाश्लोपदप्रमेहांश्च ।
 विबन्धभगन्दरकुष्ठ विषमज्वरपांडुरोगांश्च ॥ १६३ ॥
 श्रुतिवदनोदरलोचन मस्तकरोगान् समूत्रकृच्छ्रांश्च ।
 आशु रसायनराजः शमयति युक्त्या प्रयुक्तस्तु ॥ १६४ ॥

सामं समीरमुपहन्ति कफं सपित्तं
 सास्त्रञ्च पित्तमथ जाठरवह्निमान्द्यम् ।
 वातप्रकोपजनितान् कफजांश्च सर्वान्
 पित्तोद्भवांश्च निखिलान् सगदांस्तथैव ॥ १६५ ॥
 नागार्जुनोदितरसायणसंहिताया
 मालोच्य चात्मनि समस्तरुजाविधाने ।
 राजानमेनमुपयुज्य रसायनानां
 श्रीविश्वरूपमुपसंस्कृतवान् कृतार्थः ॥ १६६ ॥

इति महाबलविधानाभ्रकम् ।

गगनमुलूखलक्षुषं काञ्चिकहृषीव जलदनादरसैः ।
 कुलिररसमुनिरसाभ्यां पिष्ट्वा प्रत्येकशः पुटितम् ॥ १६७ ॥
 सौवीरादिरसेन सम्पन्नं प्राप्यरविकरैः शोथम् ।
 मिलितत्रिफला त्रिकटुकविडङ्गचूर्णञ्च पादसमम् ॥ १६८ ॥
 घृतमधुसिताविमिश्रं प्रातः कृत्वाष्टमापपरिमाणम् ।
 शिशिरमलिलानुपानं भोजनमिह मांसमुद्गादि ॥ १६९ ॥
 साधितं यः सदा भुङ्क्ते पञ्चभूतमिदं नरः ।
 अभ्रकमूचिमस्तञ्च जायन्ते ये गुणानथ ॥ १७० ॥
 घननिविडगूढसन्धिः श्वसनबलोत्पत्तकुक्षरप्राणः ।

सर्वद्वन्द्वसहिष्णु द्विरष्टवर्षाकृतिश्चैव ॥ १७१ ॥

इत्यभ्रकम् ।

रजनीकराक्षयपक्षे प्रशस्ततिथिनक्षत्रकरणयोगेन ।

सितकुसुमाद्यैस्तु बलिं दद्यात्साधुप्रयत्नेन ॥ १७२ ॥

अङ्गारराशिदहनज्वालातिधातमग्निवर्णं तत् ।

आकरदोषोत्थित्वै पयसि सुवाप्य धारयेत्तदनु ॥ १७३ ॥

असकृत् कृतैकपत्रं मरिचजलेन त्रयद्वयं पर्युषितम् ।

शुक्तामलमष्टणायां शिलायां वर्त्तयेद्बहुशः ॥ १७४ ॥

शुद्धिभाजनोदरस्थं सम्यक् सितविपुलवस्त्रसंस्कृतम् ।

परिपोतसकलसलिलं दिनकरकिरणैस्तु कुर्वीत ॥ १७५ ॥

घनरजसः पलमेकं तंडुलमेकञ्च परिगृह्य ।

त्रिंशत्पन्नानि पयसो व्योषं सदुग्धवृत्तमभ्रभुक् ॥ १७६ ॥

मासेन गुणगणांश्च संप्राप्नोति नरस्तमाख्यातः ।

घनकुञ्चितनीलकचो दुन्दुभि नादविरहितश्रवणः ॥ १७७ ॥

सनरो वाग्मीश्रुतिवान् शास्त्रविज्जीवेद्ब्रह्मणो दिवसम् ।

इत्युमाभापितमभ्रकं ।

अभ्रं चतुष्पलं ग्राह्य ममलं धीतशोपितम् ।

पत्रितं लोहपात्रस्थं तंडुलोयरसाप्लुतम् ॥ १७८ ॥

गोजीरसेन संमर्द्य सदुपहृतसमं कृतम् ।

वचाविडङ्गचूर्णेण तुल्यभागेन योजितम् ॥ १७९ ॥

भ्रिण्टोप्रवर्त्तकाकास भृङ्गराजतिलद्रवैः ।

प्रत्येकं क्रमशो दत्त्वा प्रस्थार्धं घटयेत्ततः ॥ १८० ॥

पिष्टाष्टमासंकां दत्त्वा वटिकान् वर्त्तयेद्विषक् ।

कवर्णाद्यश्च द्रव्यादि सप्ताहत्रितयं त्यजेत् ॥ १८१ ॥

ततो यथेष्टं कुर्वीत व्यवायाग्रमभोजनम् ।

हृत्यै तदम्बपित्तञ्च शूलाम्बातपांडुताः ॥

प्लीहाग्निसादशोथार्थो विष्टम्भग्रहणोगदान् ॥ १८२ ॥

इति तृतीयमम्भकम् ।

क्षणाभ्रकपलमेकं संकुप्योलूखले तु मुसलेन ।

अम्बरसायनमेतत् चेष्ट्या टकोन्मिता पथ्या ॥ १८३ ॥

आर्द्रकरसेन भाव्यं शुष्कं कृत्वैतत् क्षिपेच्चूर्णञ्च ।

त्रिकटुत्रिफलासुस्तकचिचक पयसाञ्च पिचुमानम् ॥ १८४ ॥

कामिरिपु चाक्षद्वितयं प्रचेप्यं चात्र गगनमानमयः ।

कृत्वा तोयेन वटीं पण्मापोन्मितां भुक्त्वा च ॥ १८५ ॥

अम्बं वार्यनुपेयं दधिशुक्तं धार्यमनुदिवसम् ।

शूलं कफाम्बपित्तं विनिहन्ति वातरुजां सद्यः ॥ १८६ ॥

इति पानीयभक्तवटी ।

त्रिफलात्रिकटुकसुस्तविडङ्गभक्तातककेसराणाम् ।

करिवर्त्तकददन्ती तंडुलिकापुनर्नवात्रिहता ॥ १८७ ॥

चित्रद्विजोरकचूर्णान्येकत्र कर्षमितानि कार्याणि ।

गन्धतिलाः कर्षार्धं गगनपलशोधितं विधिवत् ॥ १८८ ॥

अम्बशुक्तं भक्तपयसो दत्वा कुर्यादधर्मापिकां वटिकाम् ।

अम्बं वार्यनुपेयं कार्यं तदधिविहितपथ्यम् ॥ १८९ ॥

कफातिदुष्टवक्त्रेर्नातः परमत्र भेषजं दृष्टम् ।

हृत्यात्तदाम्बातं ग्रहणीगदगुल्मशूलरुजः ॥ १९० ॥

इति द्वितीयपानीयभक्तवटी ।

अन्यिकं त्रिफलाचित्रं त्रिहस्तोद्धितकुम्भकी ।

एषां कर्षार्धकं चूर्णं प्रत्येकं तावदुन्मितम् ॥ १९१ ॥

वृषपणं लवणं पाक्यं विडङ्गं कार्पिकं पृथक् ।

पलं क्षणाभ्रकश्चैव मन्तर्दग्ध्वा विनिक्षिपेत् ॥ १९२ ॥

तेनैव पेपलं कृत्वा सर्वमेकत्र योजयेत् ।

शिशुर्यार्द्रकनिर्गुण्डो नागवक्त्रस्थिसंहता ॥ १८३ ॥

रसेर्द्विपलिकैरेषां वटो भाव्याक्षसंमिता ॥

इति तृतीयपानीयभक्तवटी ।

विडङ्गं पिण्णलीमूलं त्रिफलामुनिज फलम् ।

लोहकं गन्धकं चित्रं पलाहं चूर्णितं पृथक् ॥ १८४ ॥

तूरपणं चूर्णितं ग्राह्यं सार्धं द्विपलिक पृथक् ।

अस्तशुद्धाभ्रकपलं कर्पाधे पारदस्य च ॥ १८५ ॥

अस्थिसंहारनिर्गुण्डो नागवक्त्रार्द्रकैः शुभेः ।

रसेश्चतुष्पलैरेवं भावयित्वा पृथक् पृथक् ॥ १८६ ॥

यथान्निं भक्षयेदेतां वटीमनुपिवेज्जलम् ।

वारिभक्तञ्च भुञ्जीत कुर्व्यात् पूर्वोक्तकान् जणान् ॥ १८७ ॥

इति चतुर्थपानीयभक्तवटी ।

गन्धार्द्रं करसस्तुल्यो विडङ्गमरिचार्द्रकैः ।

त्रिफलाचिह्नतावह्निः कषादन्तीपुनर्नवा ॥ १८८ ॥

त्वक्क्षीरं माणिकुलिशं यवागूरागखण्डिकाः ।

प्रत्येकैकं पलं चूर्णं सुष्णपानीयकं हविः ॥ १८९ ॥

अभ्राच्चतुष्पलं चूर्णं मेक्रीकृतार्द्रकांबुना ।

त्रिफलापयसाभाव्या कोलाहमानकीवटी ॥ २०० ॥

भक्तोदकानुपानेन सेव्यावह्निप्रदीपनी ।

अस्तपित्तामवातादीन् हन्ति पयसान्नभोजनम् ॥ २०१ ॥

इति पञ्चमपानीयभक्तवटी ।

मेकदनावरुणाद्रेर्दण्डोत्पलखण्डवरुणशिशुरिभिः ।

वचाभृङ्गराजमानैस्तण्डुलीयकामरावतीभिः ॥ २०२ ॥

सूरणपुनर्नवाभिः गगनं पृथगेध्मावितं नूनम् ।
 खरतरणिकरार्पणं शोयणशुद्धिर्विधातव्या ॥ २०३ ॥
 पलमेकं छिन्नरुहा कृष्णागुडूचोसत्वपलमेकम् ।
 अभ्रकमानं त्रिफलात्रिकटुरजः पारदानाञ्च ॥ २०३ ॥
 प्रथमञ्च मधुसर्पिर्भ्यां मूर्च्छितेन रसेन मर्दयेद्भवाम् ।
 तदनुत्रिफलारजसा तदनुगुडूच्याः सत्वेन ॥ २०४ ॥
 तदनु त्रिकटुरजोभूयिष्ठमवनितममृतमवदाय ।
 स्निग्धे निधाय भांडे रक्षन् सुवस्त्रपिहितमुखे ॥ २०५ ॥
 खादेद्भोजनमादौ मध्ये चान्ते च वारमेवैकम् ।
 जलमभिः पिवेद्रसास्त्रं रक्तोद्वह्ना द्विगुणमेव ॥ २०६ ॥
 जीरं दधि चात्र घृतं सपूतमस्थि मांसानि ।
 नाद्यादशेषशकं मद्यं जीर्णमन्नञ्च ॥ २०७ ॥
 हरति चास्त्रपित्तं ग्रहणी दुर्नामकामलादिरुजः ।
 जनयत्यचिराद्दुधिरं जठरानलपुष्टिदं परम् ॥ २०८ ॥

इत्यभ्रकसन्धानम् ।

माणकन्दोऽश्वकर्णञ्च त्रिवृता सुस्तकं समम् ।
 त्रिकटुत्रिफलाभृङ्ग मपामार्गञ्च दाडिमम् ॥ २०९ ॥
 लावीवृद्धतिकाजातो हयञ्च शतपुष्पिका ।
 सूर्यावर्तस्तालमूली चूर्णमेघाञ्च कार्पिकम् ॥ २१० ॥
 विडङ्गचूर्णं द्विगुणं पादहीनञ्च गन्धकम् ।
 चतुर्गुणाभ्रकं कार्यं गुडूचोमपि तद्गुणाम् ॥ २११ ॥
 सुचूर्णमभ्रकं वस्त्रपातितं काञ्जिके क्षिपेत् ।
 अन्ते पयसि वा पथ्या दुद्धरेत्पञ्चमेऽहनि ॥ २१२ ॥
 मंडूरपेयितापेथ्य वंशपत्ररसेन च ।
 ततः पुटानि देयानि बध्यमाणैर्महौषधैः ॥ २१३ ॥

वंशपत्ररसेः पूर्वं पुटयेदातपे भिषक् ।
 मंडूरपर्णीचित्रञ्च दन्तीरसं पुनर्नवा ॥ २१४ ॥
 त्रिष्टुतातालपटोलं चास्थिसंहार एव च ।
 आर्द्रकं तालमूली च सूर्यावर्तञ्च शिखिका ॥ २१५ ॥
 केशराजो भृङ्गराजः शतमूली च मुस्तकम् ।
 ततः प्रचिप्य चूर्णानि द्विगुणाय चतुष्टयम् ॥ २१६ ॥
 सप्तधा पेपयेद्भाटं त्रिफलाक्कायवारिणा ।
 तेनैव गुटिका कुर्यान्मापैकैकप्रमाणिका ॥ २१७ ॥
 वटिका द्वितयं भक्ष्य मन्त्रवार्थ्यानुपानतः ।
 वयोवस्थामग्निबलं व्याधिं प्रकृतिमेव च ॥ २१८ ॥
 दृष्ट्वा मात्रां प्रयुञ्जीत यथा क्षेपः प्रदीयते ।
 ग्रहणीमन्त्रपित्तञ्च पित्तश्लेष्माणमेव च ॥ २१९ ॥
 अर्शांसि बद्धिसादञ्च ग्रीहानमरुचिन्तया ।
 वटिकेयं निहन्त्याशु नात्र कार्या विचारणा ॥ २२० ॥
 निर्वापञ्चेच्च मंडूरं त्रिफलाया रसे शुभे ।
 सूर्यावर्तरसे वायु उभयत्र च वा भिषक् ॥ २२१ ॥
 तत्तु सुचूर्णितं वस्त्र पतितं स्थापयेद्विषक् ।
 ततः काञ्चिकनिक्षेपं समुद्धारादिसंस्कृतम् ॥ २२२ ॥
 इति षष्टीपानीयभक्तवटिका ।

—०—

अथ लोहरसायनमाह ।

सर्वेषां लोहजातीनां कान्तं भवति कान्तिदम् ।
 तथा कान्तं विशेषेण भवेत्तद्गुणदं स्मृतम् ॥ २२३ ॥
 एकान्ते च पचेत्सोहमादो शस्ते दिने ततः ।

धात्रीपिण्डारकीकृत स्वरसेनार्करश्मिभिः ॥ २२४ ॥

स्थापयेद्यद्वैचूर्णं ग्राहयेत्तु पृथक् पृथक् ।

उच्चटास्वरसेनैव पूर्वोक्तेनैव भावयेत् ॥ २२५ ॥

धात्राश्वगन्धयोः पिण्डारकस्यापि रसेन च ।

मिलित्वैवं पुनर्भावं प्रचंडरविरश्मिभिः ॥ २२६ ॥

काकमाचोरसेनेव स्थापनीयं पुनः पुनः ।

भावनान्ते च सर्वत्र खलितव्यं प्रयत्नतः ॥ २२७ ॥

पश्चाच्चूर्णं विधातव्यं मप्रमत्तेन धीमता ।

इदं सूर्यमयूखेन मारणं परिकीर्तितम् ॥ २२८ ॥

—०—

धात्रीपिण्डारकरजः स्वरसेन प्रकल्पयेत् ।

नारिकेलस्य पात्रे तु भावना विधिरिष्यते ॥ २२९ ॥

इति सूर्यमयूखेन लोहमारणम् ।

एकपत्रोलतं कृष्णं मभ्रकं वज्रसन्निकम् ।

भावयेद्विचित्रिदिवसं जम्बोरसरसकाञ्चिकैः ॥ २३० ॥

त्रिफलायारसे भावं ततः शिथुरसे पुनः ।

प्रत्येकशः शोधितव्यं सूक्ष्मं खल्लेन बुद्धिमान् ॥ २३१ ॥

ततो लज्जालुकरसे वाजिगन्धारसे तथा ।

भावनं खल्लके कार्यमिति चाभ्रकमारणम् ॥ २३२ ॥

भावना नारिकेलस्य पात्रेनान्यत्र शस्यते ।

इति सूर्यमयूखेनाभ्रकमारणम् ।

त्रिहताचित्रकं सुस्तं त्रिफलाद्रूपय तथा ।

एकैर्कशोमतो भागं स्यादधं रसगन्धयोः ॥ २३३ ॥

लोहाभ्रकविडङ्गानां भागश्च द्विगुणो भवेत् ।

एतत्सकालचूर्णन्तु चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥ २३४ ॥

त्रिफलायाः कपायेण गुटिकां कारयेद्विपक् ।
 तत्रैकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारिपिवेदनु ॥ २३५ ॥
 पक्तिशूलं त्रिदोषोत्थं मन्त्रपित्तं वमिं तथा ।
 हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वस्तिकुचिगुदां रजम् ॥ २३६ ॥
 कासं श्वासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषमां रजम् ।
 यक्षत्प्लीहोदरं गुल्मं यक्ष्माणं ग्रहमेव च ॥ २३७ ॥
 विष्टम्भमामदौर्वल्यं मग्निसाटं नियच्छति ।
 सर्वानेतान् शमयति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २३८ ॥

इति सप्तमीपानीयभक्तवटिका ।

गव्येन नवनीतेन स्वर्णमाक्षिकवृद्धिकौ ।
 निष्पिप्यलेपयेत्तोहं कान्तपाण्ड्यादिसम्भवम् ॥ २३९ ॥
 धापयेत्कर्माकाराग्नीं सिक्तासिक्ता पुनः पुनः ।
 त्रिफलाक्वाथतोयेन ततो निर्वापयेत्सुधीः ॥ २४० ॥
 पथात् संपिप्यते लोहं दाहयेत् पुटवज्जिना ।
 अग्नेराकृष्यविधिना जलधौतं प्रयत्नतः ॥ २४१ ॥
 श्लेष्मचूर्णं ततः कृत्वा बहुष्टुष्टन्तु कारयेत् ।
 पलं चतुष्टयं तस्य मधूकस्यापि तत्समम् ॥ २४२ ॥
 पथ्याधात्रीविभीतक्या रसय त्रिकटोस्तथा ।
 वचावङ्गिविडङ्गानि कृष्णजीरकजीरकैः ॥ २४३ ॥
 दन्तीपुनर्नवामृत्ती प्रत्येकं पलसंख्यया ।
 एलायाः कर्षकं दद्यात् कार्षिकं कटुरोहिणी ॥ २४४ ॥
 एलार्धं गन्धकं देयं पलाहं गुग्गुलुत्वचम् ।
 चूर्णयित्वा विधानेन सर्वमैकत्र कारयेत् ॥ २४५ ॥
 दृढतमदृढपलं दत्वा क्षीरं चतुः शरावकम् ।
 चतुर्विंशपलक्वाथ त्रिपुलशेषवारिणा ॥ २४६ ॥

वस्त्रपूतेन विधिवत् पाचयेत्ताम्रभाजने ।
 दार्वीं लोहमयीं गृह्य पाकं कुर्याद्विपाकवित् ॥ २४७ ॥
 शीतलञ्च ततः कुर्यात् स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
 रक्तिकादिक्रमेणैव घृतेन मधुना सह ॥ २४८ ॥
 संमर्द्यलोहदण्डेन लोहपात्रे च भक्षयेत् ॥
 क्षीरानुपानं दातव्यं पित्तदुष्टापरोगिणे ॥ २४९ ॥
 तथा मकोष्ठिने दद्याद्यवक्षारस्य वारिणा ।
 मूर्च्छाच्छर्दिं तृपा रक्तपित्तशूलादिसम्भवे ।
 क्षीरं शर्करयामित्रं ह्यनुपानं प्रयोजयेत् ॥ २५० ॥
 चतुर्धा ग्रहणी ज्ञेया घातपित्तक्षफोद्भवा ।
 ज्ञात्वा कुक्षौ मनाक् कूलमामगन्धं सलोहितम् ॥ २५१ ॥
 कुक्षौ दक्षिणतः शूलं नाभिमण्डलतोपरि ।
 घातपित्तनिदानं हि लक्षयित्वा प्रदीयते ॥ २५२ ॥
 नारिकेलञ्च समधुपानञ्च हितमिच्छता ।
 रक्तच्छर्द्यां विगन्धत्वमीपत्पानन्तु पैत्तिके ॥
 क्षीरं शर्करया युक्तमनुपानन्तु दापयेत् ॥ २५३ ॥
 कटिशूले चिकशूले कुक्षिशूलं शरोचके ।
 आमवातनिदाने च मुखस्रावे प्रकीर्तितम् ॥ २५४ ॥
 पार्श्वशूले चिकशूले नाभिमण्डलतोपरि ।
 त्वरे सशूले सामे च वायुसामं निवर्त्तयेत् ॥ २५५ ॥
 क्वचिन्नाभेरधः शूले वामपार्श्वे क्वचिन्नवेत् ।
 शूले वा परिणामे च भ्रमे पृष्टे क्वचित् क्वचित् ॥ २५६ ॥
 शीतलेन यवक्षारमनुपानञ्च वारिणा ।
 प्रकम्पस्योर्ध्ववायुयस्तकम्पं मुहुर्मुहुः ॥
 कुक्षिशूलं मूर्धशूलं मूर्धधूमञ्च नश्यति ॥ २५७ ॥

हरोतकीयवचारं सैन्धवं सितशर्करा ।

हिङ्गुघृतं नारिकेल जलेन त्वनुपानकम् ॥ २५८ ॥

शुक्राश्मरीशुक्रस्त्रावे मूर्धशूलश्च पंक्तिकम् ।

कुक्षी नाभौ भवेच्छूलं मेहत्वं परिणासकम् ॥ २५९ ॥

रसं कूष्मांडमज्जाया यवचारं सशर्करम् ।

एकोक्त्यानुपानन्तु दद्यादश्मरिरोगिणे ॥ २६० ॥

शर्कराद्यागलं क्षीरं शृङ्गाटककरीरकौ ।

त्रिफलायारसं ग्राह्यं मूलभाम्नातकस्य च ॥

एकोक्त्यानुपानेन शाम्येच्छुक्रप्रमेहकम् ॥ २६१ ॥

इति सर्वतो भद्रलोहः ।

त्रिगुणमायसंचूर्णं त्रिफला चाभ्रकाद्रसात् ।

द्विरष्टभागिनिवारि ण्यष्टगिष्टन्तु कारयेत् ॥ २६२ ॥

तेन पादावग्रेपेण क्षमे नाज्येन यत्नतः ।

रसेन बहुपुत्रायाः द्विगुणक्षीरसन्मितम् ॥ २६३ ॥

लोहमय्याऽऽपयद्भवे पात्रे चायसि मृगमये ।

दिव्यौषधहतं लोहं प्रहर्त्तं संपुटादिभिः ॥ २६४ ॥

पचेत्पाकविधिज्ञैस्तु वज्रिना मृदुना शनैः ।

अभ्रकं निहतं क्षुण्णं सूतकञ्च विमूर्च्छितम् ॥ २६५ ॥

अयसश्चार्धभागञ्च त्वादी पाके प्रयोजयेत् ।

रसेन त्रिफलादन्ती विडंगं क्षीरकद्वयम् ॥ २६६ ॥

पलाशबीजं हृषुपा चित्रव्यूहं वृहदारुकम् ।

लतापलाशमूलञ्च वृहत्पत्रं गुडत्वचम् ॥ २६७ ॥

व्योषं समं ग्रन्थिकञ्च गुडूचीतालमूलकम् ।

शियुमन्यौ तथा यास स्तथा च क्षीरकक्षुको ॥ २६८ ॥

कापालिकाकलिङ्गाख्यं गन्धानिम्बयवानिकम् ।

चूर्णीकृत्यचिपेद्यत्रा स्त्रोहाभ्रकसमं भिषक् ॥ २६८ ॥

वातश्लेष्मप्रधानस्य सस्कृतं नागरेण च ।

निहन्ति वातसन्दिग्धं कफजुष्टं तथैव च ॥ २७० ॥

सथोवज्जिकर ह्येत द्वलपुष्टिकरं तथा ।

रसायनमिदं दिव्यं ममृताख्यं परं शुभम् ॥ २७१ ॥

इति वातश्लेष्मप्रकृतौ रसायनम् ।

कफपित्तविनाशाय लिख्यते चाधुना पुनः ।

अरुचिं सकलां पुंसां व्यपोहतिवरः सदा ॥ २७२ ॥

मधुकं पिडखर्जूरं धान्यकं जीरकद्वयम् ।

व्योषं हविथमाज्येयं शर्करा च पलद्वयम् ॥ २७३ ॥

तित्तं वकञ्च तालीयं सविडङ्गं गुडत्वचम् ।

मेघाचछदबीजञ्च चविकचैलकं तथा ॥ २७४ ॥

गुडूचीत्रिवृतादन्ती वचा च चविकास्तथा ।

बलापलाशशिमुच्चं कुङ्कुमं वृद्धदारुकम् ॥ २७५ ॥

ग्रन्थिकं चित्रकं वापि कलिङ्गं भद्रमुस्तकम् ।

वृद्धत्यत्रं पृथुलिका काकज्जिह्वापुनर्नवाम् ॥ २७६ ॥

संचूर्ण्य चूर्णमादाय गगनं द्विगुणं मतम् ।

रसायनविधियुक्तं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥ २७७ ॥

मन्दाग्निग्रहणीदोषाः कफपित्तभवाश्च ये ।

भस्मत्वयान्ति वै क्षिप्रं कोष्टभङ्गो यथाग्निना ॥ २७८ ॥

इति कफपित्तप्रकृतौ रसायनम् ।

तत्सिद्धं सिद्धनाथेन निर्मितं सत्वहेतुना ।

आमवातादिनाशाय लिख्यते चाधुनेरितम् ॥ २७९ ॥

धान्यनागरविडङ्गं गुडूचीजीरकद्वयम् ।

पलाशबीजं कोलञ्च पिप्पलीमुस्तकन्तथा ॥ २८० ॥

त्रिवृच्च त्रिफलादन्ती^१ एलकं^२ वृहतीद्वयम् ।

चविकाग्रन्यिकाचित्रं^३ सर्वच्च वृहदारुक्कम् ॥ २८१ ॥

पञ्चायम. पलानाञ्च^४ प्रत्येकं^५ तद्विकापिकम् ।

आमवातघ्नचूर्णं^६ च यथाविधि निपेवितम् ॥ २८२ ॥

इत्यामवातादिव्याधौ रसायनम् ।

शिरः शूलमुखश्वास कफपित्तापनुत्तये ।

लिख्यते चाधुना दिव्यं रसायनमनुत्तमम् ॥ २८३ ॥

शर्करामधुकं^७ द्राक्षा मूसलीद्रायमाणकम् ।

वासागुडूचीकालिङ्गं^८ व्योषञ्च त्रिफलात्रिवृत् ॥ २८४ ॥

दन्ती क्षमिहरं^९ चूर्णं^{१०} वृहदारं पलोन्नितम् ।

सृदुपाके विनिक्षिप्तं^{११} क्षिप्तपाकमनाकृति ॥ २८५ ॥

सेवितं हरेते नित्यं रक्तपित्त सुदारुणम् ॥

इति श्वासादिव्याधौ रसायनम् ।

वातरक्ते महाकुष्ठे जङ्घोर्वोः^{१२} स्तब्धतां गते ।

सर्वाङ्गके तथा वाते क्रियमाणं रसायनम् ॥ २८६ ॥

अभ्रकेन समं गन्ध नवनीतामलच्छवि ।

सूर्चि^{१३} तञ्च तथा सूतं त्रिकटुत्रिफलावचा ॥ २८७ ॥

विडङ्गं^{१४} जीरके द्वे च पलाशवीजमैलकम् ।

वृहदारुत्वचं कन्द सविडङ्गं^{१५} सचित्रकम् ॥ २८८ ॥

श्यामाकं शिशुदन्ती च त्रिवृतावर्गदूपिका ॥ २८९ ॥

प्रत्येकं कार्पिकं मात्रं पाके खरतरे क्षिपेत् ।

इति वातरक्तादिव्याधौ रसायनम् ।

प्लीहोदरं यक्ष्मकुल्लं^{१६} शस्त्रचारग्निभिर्विना ।

विनाशाय प्रयोज्यानि चूर्णानीमानि देहिनाम् ॥ २९० ॥

कन्द कांपालिकाचथ विडङ्गं^{१७} सहृहदलम् ।

शरपुंखा च पाठा च चित्रकं समहीपधम् ॥ २८१ ॥

एषान्तु पलिकां मात्रां क्षिपेन्नोहरसायने ।

लवणानि च सर्वाणि सत्तारं वृद्धदारकम् ॥ २८२ ॥

दोष्यकञ्च प्रयुञ्जीत पाकार्यमभयांसुरी ।

झीहोदरविनाशाय द्वे पले च पृथक् पृथक् ॥ २८३ ॥

मानेन दण्डकरणेन सूरणेनाधिकं पुनः ।

इति झीहोदरव्याधौ रसायनम् ।

राजयक्ष्मणि खासे च कासे रक्तोत्पणे हितम् ।

महौपधं सतालीशं काकणं नागकेशरम् ॥ २८४ ॥

जीवन्तिमभयां मृद्धीं सर्वाभ्यो द्विगुणान्तया ।

शर्कराञ्च क्षिपेत्तत्र गुडूची सत्वमेव च ॥ २८५ ॥

इति राजयक्ष्मादिव्याधौ ।

त्रिफलायाः प्रकुर्वीत प्रत्येकं पलसप्तकम् ।

वारिण्यष्टगुणे पक्वा पञ्चभागेन शेषयेत् ॥ २८६ ॥

पट्शरावास्तु दुग्धस्य हविषः पलपञ्चकम् ।

पुटिनादायसः पञ्च शुद्धाभ्रस्य पलद्वयम् ॥ २८७ ॥

त्रिडङ्गं त्रिफला जीरं द्वयं त्रिकटुचूर्णितम् ।

लोहचूर्णं समं ग्राह्यं गुणवृद्धं ततः पचेत् ॥ २८८ ॥

अह्णोगदमत्युग्रं हृत्त्येतद्वारिसम्भवम् ।

इति वातग्रहण्याम् ।

विभीतकामयावात्री प्रत्येकं तु पलाष्टकम् ।

वारिण्यष्टगुणे साध्यं पङ्गीनावतारिते ॥ २८९ ॥

अतः पलानि पञ्चैव पयसोष्टौ शरावकान् ।

सर्पिषो दशपलान्यत्र दद्यात्तोहं विपाचयेत् ॥ २९० ॥

त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं प्रत्येकं तु द्विकार्षिकम् ।

विडङ्गं भद्रमुस्तञ्च जीरकं द्वयमेव च ॥ ३०१ ॥

पृथगर्धपलं ग्राह्यं कुर्यात्पाकन्तु मध्यमम् ।

पैत्तिके ग्रहणीरोगे योजयेन्मतिमान् भिषक् ॥ ३०२ ॥

इति पित्तग्रहस्थाम् ।

प्रत्येकं षट्पलं धात्री शिवा वैभीतकत्वचम् ।

उदकानां शरावैस्तु षड्विंशत्या विपाचयेत् ॥ ३०३ ॥

पञ्चभागावशिष्टेन लोहं पञ्चपलानि च ।

तावद्वत्वा दधि तस्मिन् खरपाकं विपाचयेत् ॥ ३०४ ॥

त्रिकटुत्रिफलाचङ्घ्रि विडङ्गं भद्रमुस्तकम् ।

चूर्णं लोहसमं चात्र प्रक्षिपेदवतारिते ॥

शैष्णिकं ग्रहणीदोषं हन्यादेतद्रसायनम् ॥ ३०५ ॥

इति श्लेष्मग्रहस्थाम् ।

लोहं पूर्वं पुटेच्छुद्धं गृह्णित्वा पलपञ्चकम् ।

पुनर्नवावरीमूलं त्रिफलापुटितं पुनः ॥ ३०६ ॥

वराचतुर्गुणं लोहं पचेदष्टगुणे जले ।

सप्तभागावशेषेण द्विशराव पयः क्षिपेत् ॥ ३०७ ॥

गतावरोरसश्चापि लोहतुल्यं प्रदापयेत् ।

पलानि दश चान्यस्य मृदुपाकेऽवतारिते ॥ ३०८ ॥

द्विजीरकं विडङ्गञ्च पलाशबीजमेव च ।

त्रूपर्णं त्रिफलाचङ्घ्यं चूर्णमेषां पयः समम् ॥ ३०९ ॥

इति वातपित्तग्रहस्थाम् ।

अष्टादशपलान्यत्र त्रिफलायाविपाचयेत् ।

सलिलद्विगुणं चास्मिन्नवभागावशेषितम् ॥ ३१० ॥

विपचेत्पूर्ववत्तोहं पुटितं वक्ष्यमाणकैः ।

वरायाः केशराजस्य चार्द्रकस्य रसेन च ॥ ३११ ॥

एतत्पञ्चपलं ग्राह्यं सर्पिर्देशपलानि च ।

शतावरीरसस्याष्टौ नारिकेलोदकस्य च ॥ ३१२ ॥

पलाईं मरिचं कृष्णा नागरं पलसम्मितम् ।

पङ्क्तिं विंशमापकं चूर्णं त्रिफलायाः प्रकल्पयेत् ॥ ३१३ ॥

त्रिचत्वारिंशतामापैरधिकं चूर्णितं पलम् ।

चित्तकस्य विडङ्गस्य पचेत्पाकखरं ततः ॥ ३१४ ॥

वातश्लेष्मोत्तरे चैव कुक्षिरोगे तथा घृतम् ॥

इति वातश्लेष्मग्रहण्याम् ।

मूर्च्छितं पुटितं शुद्धं मायसः पलपञ्चकम् ।

शतावरीरसे सम्यक् पुटितं पञ्चधा पुनः ॥ ३१५ ॥

अष्टौ पलानि गृह्णीया त्रिफलायाः पृथक् पृथक् ।

सलिलस्यार्मणे पक्ता पादशिष्टेऽवतारिते ॥ ३१६ ॥

द्वात्रिंशच्च पलान्यत्र सर्पिरष्टादशैव तु ।

मध्यपाकं ततः पक्ता चैषां कर्पद्वयं पृथक् ॥ ३१७ ॥

त्रिकटुं त्रिफलां बङ्गिं विडङ्गं भद्रमुस्तकम् ।

पलाशस्य च बीजानि क्षिप्वा कुर्याद्रसायनम् ॥

पित्तश्लेष्माधिकश्चैव निहन्त्याद् ग्रहणीगदम् ॥ ३१८ ॥

इति पित्तश्लेष्मग्रहण्याम् ।

आज्यं चतुष्पलं शुद्धं घनं तान्तवविसृतम् ।

कुट्टाद्रारिष्टवृक्षीजं मधूकपर्णिकादिभिः ॥ ३१९ ॥

तिग्मांशुकरसं पकं पुटिताम्बुचतुष्पलम् ।

प्रस्थार्द्धं पयसो दद्याद् नारिकेलोदकस्य च ॥ ३२० ॥

पचेत्पाकविधानज्ञो बङ्गिना घट्टनाशनैः ।

त्रिफलात्रिकटुवङ्गि बिडङ्ग जीरकद्वयम् ॥ ३२१ ॥
जातीफल जातीकोष लवङ्गं भद्रमुस्तकम् ।
कङ्कोलकञ्च संचूर्ण्य शाणमात्रं क्षिपेत् पृथक् ॥ ३२२ ॥
पाकं ज्ञात्वा समुद्धृत्य भ्रामराष्टपलान्वितम् ।
रसकादिविधानेन खादेन्भाषाष्टकं पुनः ॥ ३२३ ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्दुर्घृतं सुखी ।
नागार्जुनेन रचितं रसाख्यमिदमुत्तमम् ॥ ३२४ ॥
विनापि परिहाराद्यैर्लोहोदितफलप्रदम् ॥

इति लोहाभ्रकम् ।

शङ्खस्य नाभिचूर्णञ्च सुराक्षारञ्च सैन्धवम् ।
टङ्गणञ्च खटीशुभ्रा वराटोभयमाक्षिकम् ॥ ३२५ ॥
शणः गुडञ्चयशदं पूर्वोक्तं शुभतान्त्रिकम् ।
तुरटीधूमसारञ्च नवसारं निशासिता ॥ ३२६ ॥
सर्वं समं गृहीत्वा तु ह्येकविंशतिभिर्दिनैः ।
जलोपितञ्च तत्सर्वं स्थापयेद्विधिविज्ञिपक् ॥ ३२७ ॥
तत उद्धृत्य सकुट्य शिलायाः पेपयेत्तर ।
पिष्ट्वा पिष्ट्वा पुनः पिष्ट्वा स्निग्धा पिष्टि प्रकाशयेत् ॥ ३२८ ॥
शरेषु ताञ्च सलेप्य कोष्ठिकायन्त्रगे पचेत् ।
तीव्राग्निना दिनेकेन पक्व पक्व समाहरेत् ॥ ३२९ ॥
एतद्रसायनं दिव्यं खर्पराख्यं महोत्तमम् ।
सर्वनेत्रामयान् हन्ति विषमज्जरनाशनम् ॥ ३३० ॥

इति खर्पराख्यं रसायनम् ।

—०—

हनुमन्त्यास्तभार्दितशिरःकम्पभ्रमशङ्खतोदयवणः दशनशूलाव-
भेदशयनं नयनेन्द्रं लुप्तघ्राणादच्छेदं वाधिर्यपीनसं पृथक् प्रतिनाह

घ्राणाक्षिग्रीवातिमिरामिथ्यन्दमूर्ध्वहतानाम् । शिरोवस्ति प्रधान
अनायास्यये पिठे स्थापयित्वा पादाभ्यङ्ग कार्यं पुरा भुक्तवता
वस्तिचर्मा गव्य माहिष वा कपायमष्टागुलोच्छ्रितं द्विमुख शिर
प्रमाणमादाय त निर्वलीक कृत्वा सलाटे सूत्रेण बद्धा । सुखो
ष्णाम्बुपरिक्लिन्नमापपिद्धानुलिप्तमपरिस्त्रावीकृत्य ततोऽस्य यथा
व्याधिदोषहृदितभेषजसिद्धमन्यतर स्नेहमासिञ्चेत् । केशभूमेरु
पर्यष्टागुल तावच्च धार्यो यावत्कर्णमुखनासाभ्य स्नेहस्त्रावो वेद
नोपशमो वा न भवेत् विशेषतस्तु बातविकारेष्वष्टादशमात्रा
सहस्राणि पित्तरक्तजेष्वष्टो षट्कफजेषु सहस्रमारोग्य प्रति सर्व
कालप्रतिपिद्ध । प्रयोज्यस्तु शिरोवस्ति त्राहानि यच्चाहानि सप्त
दिनानि वा तत पानीयन्तु स्नेह विमोच्य वस्ति शिरः स्कन्द
ग्रीवापृष्ठललाटादीननुमुख पाणिभ्या मृद्नीयात् । तत सुखो
ष्णाम्बुपरिसिक्तगात्र शालिपिष्टकादीना जाङ्गलानूपरसेन दाडि
भान्मैर्मात्रा भोजयेत् ।

सर्वेन्द्रियाणा हि वल केशाना दृढमूलताम् ।

करोति वाग्विशुद्धिञ्च मूर्ध्नि तैलाबुसेचनात् ॥ ३२१ ॥

इति शिरोवस्ति ।

—०—

सप्तोत्तर भर्गमशतम् । तानि मर्माणि पञ्चात्मकानि । तद्यथा
मासमर्माणि, शिरमर्माणि, स्नायुमर्माणि, अस्थिमर्माणि, सन्धि
मर्माणि चेति । तत्रैकादशमासमर्माणि, एकचत्वारिंशत् सिरा
मर्माणि । सप्तविंशति स्नायुमर्माणि अष्टावस्थिमर्माणि । वि
ंशतिसन्धिमर्माणि, तदेतत् सप्तोत्तर भर्गमशतम् । तेषामेकादशै
कस्मिन् सकृद्विभवन्ति । एतेनेतरसकृद्विवाङ्ग च विख्यातौ ।
उदरोरसोर्द्वादश चतुर्दशपृष्ठे ग्रीवा प्रत्यूर्ध्व सप्तविंशत् । तत्र

सक्थिमर्माणि क्षिप्रतलहृदयकूर्चकूर्चशिरो गुल्फेन्द्रवस्तिजा-
न्वाण्यूर्वीलोहिताक्षाणि विटपञ्चेति । एतेनेतरसक्थिव्याख्यातम् ।
उदरोरमस्तु गुदवस्तिनाभिहृदयस्तनमूलस्तनरोहितापलापान्यप-
स्तम्भौ चेति । पृष्ठमर्माणि तु कटिकतरुणकुक्कुन्दरनितम्बपार्श्व-
सन्धिबृहत्सफलकान्यसौ चेति । बाहुमर्माणि तु क्षिप्रतल-
हृदयकूर्चकूर्चशिरो मणिवन्धेन्द्रवस्तिकूर्परान्यूर्वी लोहिताक्षाणि
कक्षधरञ्चेति । एतेनेतरो बाहुव्याख्यातः । जत्रूर्ध्वं मर्माणि चतस्रो
धमन्योऽष्टौ मातृका द्वे कृकाटिके द्वे विधुरे द्वौ फणौ द्वावपाङ्गौ
द्वावबत्तौ द्वावुत्तेपौ द्वौ शङ्खायेकास्थपनी पञ्चसीमन्ताश्चत्वारि-
शृङ्गाटकान्यधोऽधिपतिरिति । तत्र तलहृदयेन्द्रवस्तिगुदस्तन-
रोहितानि मांसमर्माणि । नीलधमनीमातृका शृङ्गाटकापाङ्ग-
स्थपनी फणस्तनमूलापलापापस्तम्भहृदयनाभिपार्श्वसन्धि-बृहत्तौ-
लोहिताक्षोर्यः शिरामर्माणि । आणिविटपकक्षधर-कूर्चकूर्च-
शिरोवस्ति क्षिप्रांसविधुरोत्तेपाः स्नायुमर्माणि । कटिकतरुण-
नितम्बां सफलकशङ्खास्वस्थिमर्माणि । जानुकूर्परसीमन्ताधिपति
गुल्फमणिवन्धकुक्कुन्दरावर्त्तकृकाटिकाश्चेति सन्धिमर्माणि । तान्ये-
तानि पञ्चविकल्पानि मर्माणि भवन्ति । तद्यथा, सद्यः प्राणहराणि,
कालान्तरप्राणहराणि, विशल्यघ्नानि, वैकल्यकराणि, रुजाकरा-
णीति । तत्र सद्यः प्राणहराण्ये कोनविंशतिः कालान्तरप्राणहराणि
व्यस्त्रिंशत्, त्रीणि विशल्यघ्नानि चतुश्चत्वारिंशद्वैकल्यकराणि,
अष्टौ रुजाकराणीति । उक्ताश्च श्लोकाः ।

शृङ्गाटकान्यधिपतिः शङ्खौ कण्ठशिरोगुदम् ।

हृदयं वस्तिनाभौ च घ्नन्ति सद्यो हतानि च ॥ ३३२ ॥

वक्षोमर्माणि सीमन्ततलक्षिप्रेन्द्रवस्तयः ।

कटीकतरुणे सन्धौ बृहत्तौ ये च पार्श्वयोः ॥

नितम्बाविति चैतानि कालान्तरहराणि च ॥ ३३३ ॥
 उत्क्षेपो स्थापनी चैव विशल्यघ्नानि निर्दिशेत् ॥ ३३४ ॥
 लोहिताक्षाणि जानूर्वीः कूर्चा विटपकूर्पराः ।
 वुकुन्दरेकचधरे विधुरे सक्ककाटिके ॥ ३३५ ॥
 असांसफलकापांगानीले मन्ये फले तथा ।
 वैकल्यकरणान्याहु रावर्त्ता द्वौ तथैव च ॥ ३३६ ॥
 गुल्फौ द्वौ मणिवन्धौ द्वौ द्वे द्वे कूर्चशिरांसि च ।
 रुजाकराणि जानियादष्टावेतानि बुद्धिमान् ॥ ३३७ ॥
 सद्यः प्राणहरं हन्ति सप्ताहाभ्यन्तरे हितम् ।
 कालान्तरहरं पचान्मासाद्वा हन्ति वै क्वचित् ॥ ३३८ ॥
 यथा चानुविशल्यघ्न वैकल्यश्च रुजाकरम् ।
 पूर्वमुदतशल्येन मृत्युदं ये रुजाकरे ॥ ३३९ ॥
 विद्धमन्ते तु मर्मे तदन्यं यच्चान्तरावकृत् ।
 कदाचिद्वैकल्यकर क्षिप्रं हन्याद्वह्निश्रुतम् ॥ ३४० ॥
 इन्द्रियार्थेषु संवित्तिं मनोबुद्धिविपर्ययः ।
 रुजश्च तोत्रा विविधा भवन्त्याशुहरे हते ॥ ३४१ ॥
 हते कालान्तरहरे ध्रुवो धातुक्षये नृणाम् ।
 ततो धातुक्षयाज्जन्तु वेदनाभिय पीड्यते ॥ ३४२ ॥
 हते वैकल्यजनने केवलं वैद्यनैपुणात् ।
 शरीरक्षयमासाद्य विकलत्वमवाप्नुयात् ॥ ३४३ ॥
 विशल्यघ्नेषु विज्ञेयं पूर्वोक्तं यच्च कारणम् ॥ ३३४ ॥
 रुजाकराणि मर्माणि क्षतानि विविधा रुजः ।
 कुर्वन्ति तानि वैकल्यं कुर्वैद्यवशगो यदि ॥ ३४५ ॥
 छेदभेदाभिघातेभ्यो दहनाक्षारणात्तथा ।
 उपधातं विजानीया नर्मणा तुल्यलक्षणम् ॥ ३४६ ॥

अग्निः सोऽमोऽनिलः सत्त्वं रजश्च तम एव च ।

प्रायेण मर्म्मसु नृणां भूतात्मा ज्ञावतिष्ठते ॥

तस्मान्मर्म्मस्वभिज्ञता न जीवन्ति शरीरिणः ॥ ३४७ ॥

क्षिन्नेषु पाणिचरणेषु सिरा नराणां

सङ्कोचमोयुरसृगल्पमतो निरेति ।

प्राप्याऽमितव्यसनमुग्रमतो मनुष्याः

संक्षिन्नशास्त्रतरुवन्निधनं न याति ॥ ३४८ ॥

क्षिप्रेषु तत्र सतलेषु हतेषु चोग्रं

गच्छत्यसृग्वहुर्जं च करोति वायुः ।

एवं विनाशमुपयांतिह तत्र विद्धाः

किञ्चल्लक्षपत्रमथनादिव पङ्कजानि ॥ ३४९ ॥

मर्म्माण्यधिष्टाय हि ये विकारा मूर्च्छन्तिकाये विविधा नराणाम् ।

प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति नरस्य यत्नैरभिसेव्यमानाः ॥ ३५० ॥

इति मर्म्मनिर्देशः ।

अशीतिर्वातजा रोगाः स्वरभेदो विषादिकम् ।

पादशूल पाददाहं पादयोर्भेद्भुसुप्तते ॥ ३५१ ॥

गुल्फग्रहं पिडकार्त्तिं ज्वानुनीर्भेदनं तथा ।

उरुस्तम्भोरुसादौ च पांगुल्यं गुल्फगृध्रमी ॥ ३५२ ॥

गुदभ्रंशो गुदस्यार्त्तिं राक्षेपौ मुष्कयोरपि ।

शिरः स्तम्भो बह्वणार्त्तिः श्रोणिभेदोऽथ खञ्जता ॥ ३५३ ॥

उदावर्तः सविड्भेदः कुञ्जत्वं वामनं तथा ।

त्रिकष्टग्रहो कुक्षौ वैष्टकौ पार्श्वमर्दकः ॥ ३५४ ॥

हृद्भेदो हृद्ग्रहश्चैव हृष्यभेदौ च यक्षसः ।

ग्रीवास्तम्भो बाहुशोथो मन्थास्तम्भश्च कम्पकृक् ॥ ३५५ ॥

हनुग्रहौष्ठ श्यावी च दन्तशैथिल्यभञ्जने ।

वाक्सङ्गो भूकता चैव शीपयास्य कर्पायता ॥ ३५३ ॥
 रसानामनभिज्ञत्वं गन्धनाशोऽथ कण्ठक ॥ ३५४ ॥
 उच्चैः श्ववणवाधिर्यं मशब्दश्ववणं तथा ॥ ३५५ ॥
 वर्त्मनोः स्तंभसंकोचौ तिमिरं नेत्रशूलिनम् ।
 अक्षिभुवोः स्फुरत्वच्च भेदः शङ्खललाटयोः ॥ ३५६ ॥
 शिरोर्त्तिः केशविस्फोटोऽर्दिताक्षेपप्रदण्डकाः ।
 एकसर्षाङ्गरोगौ च स्तंभः पञ्चवधः अमः ॥ ३५७ ॥
 लृम्भणश्च क्षितित्वच्च प्रलापो स्वप्नवेपथुः ।
 विश्वाचीरौच्यपासथौ ग्लानिः श्यावारुणाभताः ॥ ३५८ ॥

—०—

चत्वारिंशच्च पित्तजा ओष्ठशोषोऽथ धूमकः ।
 अस्त्रको वमथुर्दाहो विपाकः प्रवलोष्मता ॥ ३६१ ॥
 अन्तर्दाहोऽग्निसादथ अतिस्वेदोऽग्निगन्धता ।
 अथैकदेशदरणं क्लेदो मांसासृजोरपि ॥ ३६२ ॥
 त्वग्दाहो रक्तपित्तञ्च दारणं मांसमर्मणोः ।
 कोठमण्डलविस्फोटाः रक्तास्यं हरितालता ॥ ३६३ ॥
 हरिद्रागुलिकाकारं चक्षुः क्षण्णा सकामला ।
 तित्तास्यता मूतिमुखं मामगन्धि भवेत्तनु ॥ ३६४ ॥
 तमः प्रवेशनं चास्य गुदमेद्राक्षिपक्तयः ।
 हरिद्रमृवता वक्त्र जीवादानमव्यमिता ॥ ३६५ ॥

—०—

त्रिंशत्तिः श्लेष्मजा तन्द्री तमिनिद्राङ्गौरवम् ।
 आलस्यं मुखमाधूर्यं स्तिमितत्वं मुखस्त्रवः ॥ ३६६ ॥
 श्लेष्मोद्गारो मुखाधिक्यो वलासो धमनीचयः ।
 उरःकण्ठप्रलापौ च गलगण्डोऽतिनिद्रता ॥ ३६७ ॥

श्वेताभो मूत्रवाहुल्य मुर्ददः शीतवर्जिता ।
अमीख्याता समालोक्य अष्टौ च गुणकर्मभिः ॥ ३६८ ॥
इत्यशीतिर्वातजाय चत्वारिंशच्च पित्तजाः ।
विंशतिः कथितं पूर्वंः श्लेष्मरोगोपदर्शनम् ॥ ३६९ ॥

इति वातपित्तश्लेष्मजरोगाणां मणना ।

चिकित्सितं वातहरं पथ्यसाधनमौषधम् ।
प्रायश्चित्तप्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम् ॥ ३७० ॥
यज्जरा व्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ।
दीर्घमायुर्धृतिं मेधा मारोग्यं तरुणं वयः ॥ ३७१ ॥
प्रभां वर्णं स्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलप्रदम् ।
वाक्सिद्धिं प्रणतां कान्तिं लभतेऽन्यान्रसायनात् ॥ ३७२ ॥
पूर्वं वयसि मध्ये वा शब्दकायः समाचरेत् ।
नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रामायनो विधिः ॥
न भाति वाससि श्लिष्टे रङ्गयोग इवापितः ॥ ३७३ ॥
शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः ।
त्रिंशः सप्तस्तमथवा प्राक्पोतं स्थापयेद्वयः ॥ ३७४ ॥
मंडूकपर्णाः स्वरसः प्रभाते प्रयोज्य यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।
रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्पः कल्काः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्पाः ॥ ३७५ ॥
आयुः प्रदान्यामयनाशनानि वलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि ।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्याविशेषेण च शङ्खपुष्पी ॥ ३७६ ॥
मधुकेन तुगाचीर्या पिप्पल्या लवणेन च ।
त्रिफलासितया वापि युक्तिसिद्धं रसायनम् ॥ ३७७ ॥
असिततिलसमेतैर्जिह्वपत्रस्य भृङ्गैः
प्रतिदिनमपियुक्तैः स्यान्नरः कामरूपः ।
अमृतफलंसिताद्यैर्युषितैस्त्रैर्हिमासात्

प्रहतगणसमूहः कृष्णकेशधिरायुः ॥ ३७८ ॥

चूर्णीकृतं भृङ्गरजस्य पत्रं कृष्णैर्मिलितैरामलकैश्च सार्द्धम् ।

सितासमं भक्षयतां नराणां न व्याधयो नैव जरानमृत्युः ॥ ३७९ ॥

सम्यग् भृङ्गरजः क्षुण्णं वस्त्रपूतः प्रयत्नतः ।

धीरन्तु समभागेन मासमेकं नियोजयेत् ॥ ३८० ॥

वर्षेनान्यो गमनरहितो मत्तमातङ्गगामो

भूको वाग्मीश्वररहितो दूरशब्दानुश्रावी ।

पण्डः पुत्रो भवति पलितो नीलजीमूतकेशो,

जोर्णादन्ताः पुनरपि दृढावज्जदेहा भवन्ति ॥ ३८१ ॥

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाङ्गे भुक्त्वा वा भोजयेन्नरः ।

पिण्ड्यः किंशुकक्षार भाविताष्टतभर्जिताः ॥ ३८२ ॥

प्रयोज्या मधुसर्पिर्भ्यां रसायनगुणैपिणा ।

जेतुं श्वासं चयं शोथं ह्रिक्कां कासं गन्धग्रहम् ॥ ३८३ ॥

अर्शाशिशङ्खणीरोगं पांडुतां विषमज्वरम् ।

वैस्त्रयं पीनमं शोथं गुल्मवातबलासकम् ॥ ३८४ ॥

सिन्धूल्यशर्कराशुण्डो कणामधुगुडैः क्रमात् ।

वर्षादिष्वभयाप्राश्या रसायनगुणैपिणा ॥ ३८५ ॥

शोष्मे तुल्यगुडां ससैन्धवयुतां मेघावनडांवरैः ।

सार्द्धं शर्करया शरदमलया शुण्डां तुपारागमे ॥

पिण्ड्याशिशिरे वमन्तसमये चौद्रेण सयोजिता ।

राजन् भक्षहरोतकीं प्रतिदिनं नश्यति ते व्याधयः ॥ ३८६ ॥

ज्वरान्तेऽभयामिकां प्राग्भुङ्क्ते च विभीतकम् ।

भुङ्क्ते तु मधुसर्पिर्भ्यां चत्वार्यामलकानि च ॥ ३८७ ॥

प्रयोजयेत्समानिकं त्रिफलायारसायनम् ।

जीवेद्वर्षशतं पूर्णं मजराव्याधिरेह च ॥ ३८८ ॥

विडङ्गासनधात्रीणां चूर्णं लोहरजो दृतम् ।

एतत्समाश्रयवृद्धोऽपि तारुण्यमधिगच्छति ॥ ३८८ ॥

कृमिघ्नमलकापथ्या कृष्णालोहरजो दृतम् ।

तैलान्वितं रजो लोद्धा जरयानाभिभूयते ॥ ३८९ ॥

मासं वचाञ्चाम्पुपसेव्यमाना क्षीरेण तैलेन दृतेन वापि ।

भवन्ति रक्षोऽभिरष्टरूपामेधाविनो निर्मलवर्त्यवाचः ॥ ३९० ॥

तोत्रेण कुष्टेन परोतमूर्त्तिः यः सोमराजीं नियतेन खादेत् ।

सम्बत्सरं कृष्णतिलं द्वितीयं ससोमराजीव वपुर्विधत्ते ॥ ३९१ ॥

पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य पिष्ट्वा पिबेद्यः पयसार्धमासम् ।

मासत्रयं तक्षिगुणं समं वा जीर्णोऽपि भूयः सं पुनर्नवः स्यात् ॥ ३९२ ॥

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने शृङ्गरजः समुत्थम् ।

क्षीराग्निंस्ते बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति ॥ ३९३ ॥

शतावरीमुण्डतिकागुडूचीं सहस्त्रिकर्णा सह तालमूली ।

एतानि कृत्वा समभागयुक्त्या सर्पिर्मधुभ्यां सततं विलिङ्गात् ॥ ३९४ ॥

जरारुजाक्षत्युविमुक्तदेही भवेन्नरः कान्तिबलादियुक्तः ।

विभाति देवोपम एव नित्यं शुद्धामयो भूरिविशुद्धबुद्धिः ॥ ३९५ ॥

पीताऽश्वगन्धा पयसार्धमासं दृतेन तैलेन सुखांबुना वा ।

कशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथांबुवृष्टिः ॥ ३९६ ॥

आभाञ्च सोमराजोञ्चं समभागविचूर्णिताम् ।

नरः क्षीरेण संपीत्वा सकृशः स्थूलतां व्रजेत् ॥ ३९७ ॥

देहकम्पे च शोषे च योगमेतत् प्रयोजयेत् ।

मासमात्रोपयोगेन मतिमाज्जायते नरः ॥

मेधावीर्यमृतिमायैव बलीपलितनाशनः ॥ ३९८ ॥

अश्वगन्धातसीशुण्ठी निर्गुण्डीमागधी तथा ।

पट्टाऽपराजितश्चैव सप्रभागानि कारयेत् ॥ ४०० ॥

कर्षेक भक्षयेन्नित्यं पयसाञ्च पिबेदनु ।

सन्निवातं निहन्त्याश्च साध्यासाध्य न संशयः ॥

इसायनमिदं प्रोक्त वलोपलितनाशनम् ॥ ४०१ ॥

हृददारकमूलन्तु योजयेन्मधुसर्पिणा ।

सप्ताहात् क्षीरभक्ताशो किन्नरैः सह गीयते ॥ ४०२ ॥

हस्तिकर्णरजः खादे त्रातरुत्याय सर्पिणा ।

यथेष्टाहारचारोऽपि सहस्रायुर्नरो भवेत् ॥ ४०३ ॥

मेधावी बलवान् कामी स्त्रीशतानि व्रजत्यसौ ।

मधुनात्वश्ववेगः स्याद्वर्षिष्टः स्त्रीसहस्रगः ॥ ४०४ ॥

अथ मन्त्रः प्रयोक्तव्यो भिषजा वाऽभिमन्त्रणे ।

ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्षरचममफलसिद्धिं देहि

कटस्थवचनेन स्वाहा ।

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनो वचाभयाशुण्डिशतावरीसमा ।

घृतेन स्तोढा प्रकरोति भानवं त्रिभिर्दिनैस्त्योक्तसहस्रधारिणम् ॥ ४०५ ॥

ब्राह्मीवचाभयावामा पिप्पलीमधुसयुता ।

अस्य प्रयोगात्सप्ताहात् किन्नरैः सह गीयते ॥ ४०६ ॥

पञ्चाङ्गमिन्द्राशनशृङ्गाचूर्णं पलायक सप्तमितापलानि ।

मितार्धमानं मधु तप्त्य चोद्वेष्टं क्षिपेत्पर्यमिदं विमिश्रम् ॥ ४०७ ॥

कृत्वा नरो मामचतुष्टयं यत् पयोऽथमघोपयसा च भुङ्क्ते ।

विहाय रोगान् समलान्मनीषीजीवेक्षिरयौवनसंस्थितयोः ॥ ४०८ ॥

दोषीमार्दपलासम्य मपिधानं निरूपितम् ।

धात्रीफलमहस्रेण नीरुजा मध्वदारुणी ॥ ४०९ ॥

नीरभ्युर्निर्दह्यन्मन्दं गोमयस्य च वङ्किना ।

स्त्रिवमामलकं क्षुण्णं यथादुर्बलं चूर्णकम् ॥

लोण्डोत्पलचूर्णानां मध्येवाटकसंयुतम् ॥ ४१० ॥

तत्तुल्येन शिलार्द्धे च विडङ्गस्यादुकेन च ।

सर्पिर्मर्च्चिकतैलानां मादङ्कानां पृथक् पृथक् ॥ ४११ ॥

तत्संस्थाप्य विसंसाहं सुभाण्डे दृढभाबिते ।

ततोऽग्निबलमालोक्य प्रयुञ्जीत यथाविधिः ॥ ४१२ ॥

एतद्रसायनं श्रेष्ठं महामुनि निषेवितम् ।

अनेनाब्दशतं पूर्णं वपुस्तिष्ठति निर्जरम् ॥ ४१३ ॥

अङ्गानाञ्च न श्रेयित्वं न च लावण्यशून्यता ।

जायते न च वैकल्य मिन्द्रियाणां कदाचन ॥ ४१४ ॥

कासश्वासातिसारज्वरं पिठककटोकुष्ठमेदोविकारान् ।

मूत्राघातोदरार्शः श्वयथुगलशिरः सावशूलाक्षिरोगान् ॥ ४१५ ॥

ये चान्ये वातपित्तत्रयमजकफं कृता व्याधयः सन्ति जन्तो ।

तांस्तानभ्यासयोगादपनयति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥ ४१६ ॥

अग्नयः प्रसृतान्यष्टौ रवावनुदिते पिवेत् ।

वातपित्तकफान् हत्वा जीवेद्दशशतं नरः ॥ ४१७ ॥

व्यङ्गबलीपलितघ्नं पीनस वैश्वर्यं कासशोथघ्नम् ।

रजनीक्षयेभ्युनस्यं रसायनं दृष्टिजननञ्च ॥ ४१८ ॥

विगतवननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं

पिबति खलु नरो यो घ्राणरंध्रेण वारिं ।

स भवति मतिपूर्णश्चक्षुपातार्घ्यतुल्यो

बलिपलितविहिनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ ४१९ ॥

प्रसन्नदृष्टिर्दृढदन्तकेशः शशाङ्कः पलितैर्विहिनः ।

पिडिका विनाशः कमलास्रगन्धो नस्योपसेवी भवतीह मर्त्यः ॥ ४२० ॥

तस्मिन्फलांस्तु निशिस्थं बलोपलितहरं दृष्टिजननञ्च ।

प्रसृतत्रयं प्रपेयं नासिकरंध्रेण नैशिकं तोयम् ॥ ४२१ ॥

दुर्गामश्वासकासज्वरवमथु दृष्यापांडुता नेत्ररोगान् ।

ह्रिकाकुष्टातिसारश्वग्नमदसदृशाऽजीर्णशूलप्रदोषान् ॥
 वृणाशूलासपित्त ज्वरविगतजरारोचकानाह वातान् ।
 हन्यादेतानवश्य मधुनि परिगता पूतना चाम्बपित्तम् ॥ ४२२ ॥
 इति मधुहरीतकी ।

अथ पलं सुगुलुरत्र योज्यं पलत्रयं व्योषपलानि पञ्च ।
 पञ्चानि चाष्टौ त्रिफलारजस्य कर्प लिङ्गन् यात्यमरत्वमेव ॥ ४२३ ॥
 इति लोहगुग्गुलु ।

त्रिकण्टविदारिनिस्तुप तिल बहुपत्री रज्यतु'प्रस्थम् ।
 भस्मातकप्रस्थयुत तत्समान गुडूच्याश्च ॥ ४२४ ॥
 पञ्चत्रिंशन्मधुनो व्योषस्थाष्टौ पलानि दशवङ्गि ।
 द्विगुणवाराही सप्त दशगुणा कर्करा सष्टता च ॥ ४२५ ॥
 खादेद्यथाग्निर्हन्तुं रोगानीकं त्रयं कासम् ।
 अश्मर्युदरभगन्दरकुष्टबलीपलितपोनसानान्यम् ॥ ४२६ ॥
 नरसिंहसदृशविक्रममन्यान्यप्यभिवाञ्छितानि लभते ।
 बलवर्णस्वरकान्ति प्रधुत्साहसत्वसयुक्तम् ॥ ४२७ ॥
 उपयुञ्ज्य चूर्णमिदं सर्वरोगहरश्च नरसिंहाख्यम् ।
 पुत्रान्जनयति वीर्यन् नरसिंहपराक्रमानरोगान् ॥ ४२८ ॥
 वाराहमूर्ध्ववत्कन्दो वाराहीकन्दसज्जितः ।
 भिषजातदलाभेपि चर्मकारालुकोमत ॥ ४२९ ॥
 इति नरसिंहचूर्णम् ।

अश्वगन्धापलं त्रिंशच्चूर्णयित्वा विचक्षणः ।
 वृद्धदारकचूर्णेन समभागस्तु कारयेत् ॥ ४३० ॥
 स्वापयित्वा घटे दिव्ये सर्पिषा परिभाषिते ।
 कर्ममेकं समशीयाच्चूर्णस्य पयसा सह ॥ ४३१ ॥

अवाहिकस्य स्वेदस्य परिहारो न विद्यते ।

करोवनित्यं स्रवति सर्वदोषविवर्जितम् ॥ ४३२ ॥

• तेजसा प्रभवत्युग्रो रश्मिवानिवभास्करः ।

भवत्येव चतुर्मासैर्बलीपलितवर्जितः ॥ ४३३ ॥

इत्यश्वगन्धार्द्यं चूर्णम् ।

• वृद्धदारुत्रिवृद्धन्तो कदम्बार्जुनगोक्षुरा ।

वाय्यालकाजकर्णी च वाजिगन्धाशतावरी ॥ ४३४ ॥

कर्पासीपृश्निपर्णी द्वे बल्लिश्चैवापराजिता ।

कञ्चुकीतालमूलौ च वृहत्पत्रौ प्रलाशिका ॥ ४३५ ॥

अग्निक चित्रकं चैव विच्छेदेवावचामृता ।

चाणपुष्पी च पाठा च विम्बीवरुण एव च ॥ ४३६ ॥

शिशु कुलिशभङ्गौ च मुण्डी च कोकिलाखकः ।

• अर्कक्षीरं शताह्वा च वचाचव्यफलत्रिकम् ॥ ४३७ ॥

यवान्नी चाजमोदा च द्विजीरं धान्यतण्डुला ।

विडङ्गमुस्ततालीशं निशे लवणपञ्चकम् ॥ ४३८ ॥

एलापुष्करनागाश्च त्वक्पत्रं हस्तिपिप्पली ।

फलीकुष्ठं शठीरेणु जलहिगु सवानर्कम् ॥ ४३९ ॥

पाप्राणभेदो वृक्षाम्भ भट्टीत्कटवितुम्भकः ।

पलिकाभागती याह्या गुडूचीविश्वदारुकम् ॥ ४४० ॥

स्रुहीपलाशमृत्पाशं शिखरीविडकं गणा ।

स्वर्जिका यावशूकार्या चैषा चार पलोन्मिता ॥ ४४१ ॥

अम्भकस्य पलान्यष्टौ चत्वारिगन्धस्य च ।

• पलद्वयरसं याह्यं लोहं चाष्टपलं तथा ॥ ४४२ ॥

गवाक्षीभङ्गकेशी च शालिचं केशराजकम् ।

माणकम्, फटिष्यं दहनो हस्तिकर्णकः ॥ ४४३ ॥

भस्मातमुसुलोशुण्डी त्रिफलावज्जबंज्ञापि ।
 एषां रसे पृथग्लोहं पुटयेन्मर्दयेत्तथा ॥ ४४४ ॥
 ग्रन्थिमान्मारिपथैव चारं दृष्टतीका तथा ।
 उत्कटो लोहितो बज्जि माषो बाणरसैः शुभैः ॥ ४४५ ॥
 पुटयेदभ्रंकञ्चैव मयसश्च यथाविधिः ।
 काकशामणि पिण्डेन पयसा संयुतेन च ॥ ४४६ ॥
 यावत्पिण्डो भवेत्तावच्छास्त्रविन्मृदुवज्जिना ।
 एकीकृत्यंशुमे भाण्डे स्थापयेद्रसमोपितम् ॥ ४४७ ॥
 सर्पिषामकरन्देन भक्षयेत्तत्तु सः ।
 अनुपिवेत्पयः क्षीरं यूपं मांसरसं तथा ॥ ४४८ ॥
 भोजनं चाग्निमाषेर्चं कार्यञ्चैव सत्तु तथा ।
 विहितञ्च मितं चाद्या दीपधे पावामङ्गते ॥ ४४९ ॥
 आहारिण समं कार्यं नित्यमेवाप्यवज्जिना ॥
 अग्निहृदिकरः कायारोगाणां चापहारकः ॥ ४५० ॥
 वाते पित्ते कफे शूने हृद्रोगे श्वासकांसयोः ।
 क्षये च विविधे घोरे शोथे चैवाङ्गसंगमे ॥ ४५१ ॥
 आमवाते त्रिकशूने शक्तिशूने च मर्यगे ।
 अम्बपित्ते मशूले च शोथे सर्वोदरे तथा ॥ ४५२ ॥
 पुत्रकार्यं मृते योन्वे पुंस नार्याभिपत्तयैः ।
 क्षयमेष हितो नित्यः शक्रहृदिकरः परः ॥ ४५३ ॥

शक्ति हृददारककक्ष्यः ।

—०—

लगतिं ज्योतिष्मतीप्रगिद्धगुणिनी तम्यास्तैनं निष्कामयित्वा
 जीर्णं पुराणगात्रयेन मत्स्यष्टिमधुरेण । पाणितन्नाहं महद्वा
 प्रत्यहं भक्षयेत् दर्शयेत्पन्न यावत् नातः परतरं विहृदिः कार्या-

भासंस्थितिथैषा पलमप्युत्तममात्रा हतभुग्वलानुरोधेन भिषजा-
नानुकल्पनीया एव तैलादकमुपयुज्यमहाबलौ महाप्राणः षोडश-
वर्षाकृतिर्निर्रोगा भवति । इति ज्योतिष्मतोतैलपानविधिः ।

विडङ्गसारो मेघाख्यो रक्तवङ्गिररूपकरः ।

हस्तिकर्णः सितांर्कस्तु श्वेतवर्षासमुद्भवम् ॥ ४५४ ॥

वाक्कुचीमुण्डिकाभृद्भो राजको हृद्ददारकः ।

गुडूचतिबलारास्त्रा तालमूलीशतावरी ॥ ४५५ ॥

पिण्डारकथैडगजो वैडालः केशराजकः ।

एकैकं पलमेतेषां ग्राह्यं ममधुना घृतम् ॥ ४५६ ॥

रसस्यैकं पलं ग्राह्यं लोहस्य पलविंशतिः ।

चत्वारिंशत्तथाभ्रस्य शुल्बं चापि चतुष्पलम् ॥ ४५७ ॥

गन्धकस्य पलान्यष्टौ पट्पलानि मनःशिला ।

स्वर्णमाक्षिकचत्वारि पट्पलानि शिलाजतोः ॥ ४५८ ॥

त्रिफलात्रिकटुनाञ्च प्रत्येकञ्च पलत्रयम् ।

सर्वाण्येतानि सचूर्ण्य घृतेन मधुना सह ॥ ४५९ ॥

स्निग्धे भाण्डे समालोढ्य स्थापयित्वा विचक्षणः ।

भक्षयेत् क्रमयोगेन लोहं सर्वरसायनम् ॥ ४६० ॥

इति लोहरसायनम् ।

पारदं विधिना शुद्धं पलद्वितयममितम् ।

चतुष्पलं लोहचूर्णं चतुर्विंशपलं सिता ॥ ४६१ ॥

मनोह्वागन्धपापाणः हरितालञ्च शुद्धकम् ।

कासीम हिगुकुष्टञ्च वचोशोररमाञ्जनम् ॥ ४६२ ॥

मार खट्विह्वलस्य नातोफलममन्वितम् ।

द्विपलं सूक्ष्मचूर्णन्तुं सर्वेषां परिकीर्तितम् ॥ ४६३ ॥

गगनाद्विपलं क्षया लोहवत्पुटितात् क्षुतात् ।

शास्त्रोक्तपृथगुद्दिष्टैः संयुज्यं विधिनोचितम् ॥ ४६४ ॥

त्रिंशच्च चैफले तोये प्रस्थेन सर्पिषा सह ।

शृङ्गवेररसप्रस्थं निष्कृष्यं वक्ष्यमाणकैः ॥ ४६५ ॥

त्रिवर्णीदितचित्रञ्च चास्थिसंहारसूरणम् ।

नामवर्षांसगोधूम भूमिकूष्माण्डतंडुलाः ॥ ४६६ ॥

सौभाग्यजनं तालमूली मोरटं शङ्खपुष्पिका ।

पृथगष्टपलक्षैषां वारिद्रोणे विपाचयेन् ॥ ४६७ ॥

अष्टभागावशिष्टेन कषायं कारयेत्सुधीः ।

मधुनो द्वात्रिंशत्पलं क्षिपेत्तत्र सुशीतले ॥ ४६८ ॥

त्रिकटुत्रिफलासिन्धु विडं सौवर्चलं तथा ।

टङ्गणो यावशूकश्च सुरद्रारुपरं पराः ॥ ४६९ ॥

अम्लवेतसमृद्धीका महार्द्रमधुयष्टिका ।

शृङ्गीदुरालभासुखं विडङ्गं रक्तचन्दनम् ॥ ४७० ॥

जीरकञ्च सधन्याकं चूर्णं पलांसिकं पृथक् ।

दासरसायणं प्रोक्तं नराणां हितकाम्यया ॥ ४७१ ॥

न चात्र परिहारोऽस्ति विहाराहारयन्त्रणे ।

अन्नपानानि सर्वाणि भक्ष्यभोज्यानि योनि च ॥ ४७२ ॥

तानि प्रकृतिभेदज्ञो बुद्धिपूर्वैः प्रदापयेत् ।

सर्वव्याधिहरश्चेतत् स्वस्थीस्यस्य हितं सदा ॥ ४७३ ॥

इति दानरसायनं लोहम् ।

नागार्जुनो सुनीन्द्रः शशासयत्तोद्यशाश्वमतिगहनम् ।

तस्यार्घ्यस्य स्मृतये धयमेतं द्विगदाक्षरैर्वक्ष्यामः ॥ ४७४ ॥

मेने सुनिः स्वतन्त्रे भूयः पाकं न पलपञ्चकादध्वक् ।

सुवहुप्रयामदोषादूर्ध्वञ्च न पलत्रयोदशकात् ॥ ४७५ ॥

तृत्रायसि पचनीये पञ्चपनादौ त्रयोदशपनकान्ते ।

लोहाक्षिगुणात्रिफलाग्राह्या पङ्क्तिः पलैरधिकां ॥ ४०६ ॥

मारुणपुटनस्थालीपाकास्त्रिफलैकभागसंपाद्याः ।

त्रिफलाभागद्वितयं ग्रहणीर्यं लोहपाकार्थम् ॥ ४०७ ॥

सर्वत्रायः पुटनायथैषां शरावसंख्यानाम् ।

प्रतिपलमेव त्रिगुणं पाकर्थं काथमादेयम् ॥ ४०८ ॥

सप्तपलादौ भागे पञ्चदशान्तेभ्यसां शरावैश्च ।

चण्णद्वैकादशकान्तैरधिकं तद्वारिकर्तव्यम् ॥ ४०९ ॥

तत्राष्टमो विभागः शेषः काथस्य यत्नतः स्याद्यः ।

तेन हि मारुणपुटनस्थालिपाका भविष्यन्ति ॥ ४१० ॥

पाकार्थं तु त्रिफला भागद्वितये शरावसंख्यातम् ।

प्रतिपलमम्बुसप्तं स्यादधिकं द्वाभ्यां शरावाभ्याम् ॥ ४११ ॥

तत्र चतुर्थो भागः शेषो निपुणैः प्रयत्नतो ग्राह्यः ।

अयसः पाकार्थत्वात् स च सर्वस्मात् प्रधानतमः ॥ ४१२ ॥

पाकार्थमश्वसारे पञ्चपलादौ त्रयोदशपलान्ते ।

दुग्धशरावद्वितयं पादैरेकाधिकैरधिकम् ॥ ४१३ ॥

पञ्चपलादिमात्रास्तदन्तां तदनुसारतो ग्राह्यम् ।

चतुरादिकमेकान्तं शक्तावधिकं त्रयोदशकात् ॥ ४१४ ॥

त्रिफलात्रिकटुकचित्रककान्तक्रामकविडङ्गचूर्णानि ।

अन्यान्यपि देयानि पञ्चाशस्य च बीजानि ॥ ४१५ ॥

जातोफलजातोकोपैलाकडोलकलवङ्गानाञ्च ।

सितकृष्णजीरकयोरपि चूर्णान् प्रयसा समानि स्युः ।

त्रिफलात्रिकटुविडङ्गा नियता अन्ये यथा प्रकृतिः ॥ ४१६ ॥

कालायसंदोषहते जातोफलादेर्लवङ्गकांतस्य ।

क्षेपः प्रज्ञातुरूपः सर्वस्योनस्य चैकादशैः ॥ ४१७ ॥

कान्तिक्रामकमेकं निःशेषप्रदोषमपहंरत्ययसः ।

द्विगुणत्रिगुणचतुर्गुणमाख्यं देयं यथा प्रकृति ॥ ४८८ ॥

यदि भेषजभूयस्त्व' स्तोकत्वं वा तथापि चूर्णानाम् ।

अयसासाम्भं संख्या भूयोऽल्पत्वेन भूयोऽल्पा ॥ ४८९ ॥

इति साध्यसाधनविधिः ।

गजकर्णपत्रमूलैः शतावरोभृङ्गकेशराजरसैः ।

आद्यस्थालीपाकं दद्यात् प्रत्येकमेकं वा ॥ ४९० ॥

इति स्थालीपाकभेषजानि ।

त्रिफलांबुभृङ्गकेशर शतावरिकाकन्दमाणसहजरसैः ।

भस्मातककरिकर्णछदमूलपुनर्नवा स्वरसैः ॥ ४९१ ॥

इति पुटभेषजानि । इति नागार्जुनो लेहः ।

समूलपत्रामुत्पाद्य ग्राह्णीं प्रचात्यवारिणां ।

उलूखलेक्षोदयित्वा रसं वस्त्रेण गालयेन् ॥ ४९२ ॥

रसं चतुर्गुणे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

भेषजानि च पेथानि तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥ ४९३ ॥

हरिद्रामलकं कुटं विहत्तां सह्रितकोम् ।

एतेषां पलिकान् भागा च्छेपांस्तु कार्पिकाम्बिदुः ॥ ४९४ ॥

पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करं च वा ।

सर्वमेतत्समालोह्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४९५ ॥

एतन्प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिय जायते ।

सप्तरात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रन्तु धारयेत् ॥ ४९६ ॥

हृन्म्याष्टादशकुटानि ह्यर्गामिं पड्डिधानि च ।

पञ्चगुल्मान् प्रमेहाय कासं पञ्चविधं जयेत् ॥ ४९७ ॥

वन्ध्यानाश्चैव नारीणां नराणामस्यरेतसाम् ।

घृतं सारस्वतं नाम वर्णीयुर्वलवर्द्धनम् ॥ ४९८ ॥

इति सारस्वतं घृतम्

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशंखिनी वचाशतावर्यभयामहौपधैः ।
 घृतं विपक्वं पिबतां प्रशस्तं वचस्तु येषां विकलञ्च जल्पताम् ॥ ४८८ ॥
 इति गुडूचादिघृतम् ।

यत्कन्दनालदलकेसरवद्विपक्वं
 नीलोत्पलस्य तदपि प्रथितं द्वितीयम् ।
 सर्पिश्चतुष्कुबलयं सहिरण्यपात्रं
 मेध्यं गवामपि भवेत्किमुमानुपाशाम् ॥ ५०० ॥
 इति चतुष्कुबलयघृतम् ।

आजं पयः शृङ्गवेरं वचाशियुहरोत्तकी ।
 पिप्पल्यो मरिचं पाठा सैन्धवं दशमं घृतम् ॥ ५०१ ॥
 शृङ्गवेरादयोभागा लवणान्ताः पलायकम् ।
 चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५०२ ॥
 एतत्प्राशितमात्रेण किन्नरैः सह गीयते ।
 लङ्गददमूकत्वं धानादेव प्रशाम्यति ॥ ५०३ ॥
 नष्टञ्च स्मरते ग्रन्थं श्रुतिश्चाप्युपजायते ।
 एतत्सारस्वतं नाम स्मृतिमेधाविवर्द्धनम् ॥ ५०४ ॥

इति द्वितीयसारस्वतं घृतम् ।

मडूकीं सवर्चां सशंखकुसुमां सत्रहसौवर्चलाम् ।
 गुञ्जां श्वेतवतीं शतखरियुतां ब्राह्मीं गुडूचीं तथा ॥ ५०५ ॥
 पिष्ट्वाशैः पलिकैरिमानि विधिवद्ब्याणि प्रस्त्रावणम् ।
 सर्पिष्पृथग्मथाढकेन पयसा युक्तिं पचेत्पाचनम् ॥ ५०६ ॥
 नाम्नाष्टांगमिदं विदेहरचितं ख्यातं पिवेद्यो घृतम् ।
 सल्लोकस्य सहस्रमेकदिवसेनैवाखिलं धारयेत् ॥
 अक्षीणाप्रतिहीनवारि मधुरस्सष्टाभिधायी सदा ।

लोके शक्रवहस्यतीसमृत्त्या पूज्यश्च नित्यं सदा ॥ ५०० ॥

अत्यष्टांगमङ्गलं कृतम्

सतताध्ययन वादः परतन्त्रावलोकनम् ।

सद्विद्याचार्यसेवा च बुद्धिमेधाकरो गणः ॥ ५०५ ॥

आयुष्य भोजनं जीर्णं वेगानामविधारणम् ।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च साहसानि च वर्जयेत् ॥ ५०८ ॥

न केवल दीर्घमथायुरश्नुते रसायनं यो विधिवन्निपेवते ।

गति सदिव्या मुनिसेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथैव चाक्षयम् ॥ ५१० ॥

इति वङ्गसेने रसायननिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ७३ ॥

—•—

अथ वाजीकरणाधिकारमाह ।

रक्तेन कुण्ठं श्लेष्म वाताभ्यां ग्रन्थिसन्निभम् ।

पूयाभं रक्तपित्ताभ्यां क्षीणं मांसतपित्ततः ॥ १ ॥

कृच्छ्राख्ये तान्यसाध्यन्तु विदोष मूत्रविड्निभम् ।

तेष्वाद्याष्कुक्रदोषांस्तान् संहस्वेदादिभिर्जयेत् ॥ २ ॥

क्रियाविग्रेषैर्मतिमां स्थैर्योत्तरवस्तिभिः ।

पाययेत्सर्पं सर्पिर्भिषक् गोणितगोपिणाम् ॥ ३ ॥

धातुकीपुष्पखदिर दाहिमार्जुनसाधितम् ।

कुण्ठपाथ्ये पित्रेत्सर्पिः शालिसारादिसाधितम् ॥ ४ ॥

ग्रन्थिभूते पित्रेत्सर्पिः श्विनकोशीरङ्गिगुभिः ।

स्निग्धं वान्तयिरिक्तञ्च निरुद्धमनुवासितम् ॥ ५ ॥

योजयेच्छुक्रदोषार्त्तं सम्यगुत्तरवस्तिना ।

विधिमुत्तरवस्त्यन्तं कुर्व्यादार्त्तवशुद्धये ॥ ६ ॥

स्त्रीणां स्त्रीहृदियुक्तानां चतसृष्वार्त्तवार्त्तिषु ।
 कुर्यात्कल्कमिमञ्चापि पथ्यानां वमनानि च ॥ ७ ॥
 ग्रन्थिभूते पिवेत्पाठां तूर्यपणं वृक्षकाणि च ।
 दुर्गन्धे पूयसंक्राये मज्जस्तुल्ये तथार्त्तवे ॥ ८ ॥
 पिवेद्भद्रश्रियः काथं चन्दनकायमेव च ।
 शुक्रदोषहराणाञ्च यथास्वमदधारणम् ॥ ९ ॥
 योगैः समस्तैः सृष्टैस्ते स्तैले मूपालिकां पचेत् ।
 तां भक्षयित्वा पीत्वा ऽनुशर्करामधुना पयः ।
 नरश्चटकवङ्गच्छेदं शतवारं निरन्तरम् ॥ १० ॥
 चूर्णं विदार्याः सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् ।
 सर्पिः क्षेद्रयुतं लीढा दशगच्छेन्नरोऽङ्गनाः ॥ ११ ॥
 एवमामलकचूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।
 शर्करामधुसर्पिभ्यां युक्तं लीढापयः पिवेत् ।
 एतेनांशोतिवर्षोऽपि युवेव परिहृत्यते ॥ १२ ॥
 विदारोकन्दकल्कञ्च घृतेन प्रयसा नरः ।
 उदुस्वरसमं खादे हृदोऽपि तरुणायते ॥ १३ ॥
 अश्वत्थफलशुङ्गाग्रं मूलं त्वग्निः शृतं पयः ।
 पीत्वा सशर्कराचैव हृदोऽपि तरुणायते ॥ १४ ॥
 स्वयं गुप्ताखखसयोर्वीजचूर्णं मशर्करम् ।
 धातोस्तेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥ १५ ॥
 मापाणां पलमेकन्तु संयुक्तं मधुसर्पिषा ।
 तं लीढानुपिवेत् क्षीरं तेन वाजी भवेन्नरः ॥ १६ ॥
 कर्पं मधुकचूर्णन्तु घृतक्षीद्रसमन्वितम् ।
 पयोनुपानं यो लिङ्घ्यात् सगच्छेद्दशचाङ्गनाः ॥ १७ ॥
 घृष्टीनां वृद्धवत्सानां मापवर्णभृतां गवाम् ।

यत्क्षीरं तत्प्रभं सन्ति बलकामेषु जन्तुषु ॥ १८ ॥
 शर्करायास्तुलैकं स्यादेकं गव्यस्य सर्पिषा ।
 पक्ता पूपालिका खादे ब्रह्माः सूर्यस्य योषितः ॥ १९ ॥
 इति पूपालिका ।

दध्नीर्धातुकमीपदन्तमधुरं खण्डस्य चन्द्रद्युतेः ।
 प्रस्यं क्षौद्रपलं पलञ्च हविषः शुण्डाश्चतुर्माषिकम् ॥
 अक्षार्धं मरिचाद्विडङ्गत इह द्वौ माषकावेकतः ।
 कृत्वा शलपटाच्छनैः कंरसलेनोन्मथ्यविस्तारयेत् ॥ २० ॥
 मृद्व्वाण्डं मृगनाभिचन्दनं रससृष्टे गुरुधूपिते ।
 कर्पूरेण सुगन्धितां तदखिलां संलोभ्य संस्थापयेत् ॥
 या पीता मधुरस्वरेण सुरसा सेयं रसाला तथा ।
 स्थातामन्मयदीपनी सुरचिताकान्ते व नित्यं प्रिया ॥ २१ ॥
 इति रसाला ।

शुभेद्भिदेशसंभूतं पलगतं सम्यगखगन्धायाः ।
 पुष्येहनि सचुणं द्रोणेऽभमि पचेत् सुविद्वान् ॥ २२ ॥
 ज्ञात्वाष्टभागशेषं गृहीयात्तद्रसं सुप्ररिपूतम् ।
 हे चेवात्र पलगते दद्याच्छांगस्य शुद्धमांसस्य ॥ २३ ॥
 सर्पिः प्रस्यमथेकं मेध्यं गोपयश्चतुर्गुणं दद्यात्
 कल्कानक्षमांशानुध्वंमतः सप्रयदयामि ॥ २४ ॥
 काकोनीद्वे मृद्वौ द्वे मेदे जीवकं स्वयं गुप्ताम् ।
 ऋतंभकमेनां मधुकं मृद्वीकां शूर्पपर्णीञ्च ॥ २५ ॥
 जीवन्तीं सोपकुल्यां बलां विदारीं शतावरीञ्चापि ।
 दत्त्वा मम्यग्विपचेत्सर्पिरयोदृत्य पीत्वा च ॥ २६ ॥
 मधुगर्करयोः कुडयं दत्त्वा भाण्डे स्थिते मृदितम् ।

लीकृतत्पाणितल यथेष्टाहारमश्रोयात् ॥ २७ ॥

घोषञ्चतशिशुहृदा घोषेन्द्रियाहीनमासाञ्च ।

प्रांश्यप्राप्नुयु सद्यो पुष्टिवन्नारोग्यतेजासि ॥ २८ ॥

उपयुज्य सर्पिरेतत्समतिवर्षोऽपि युवेव भूत्वा ।

बहुश स्त्रियोऽभिगच्छेत् न चात्र शक्रचयं लभते ॥ २९ ॥

पुत्रार्थिनी च नारीलभते पुत्रान् वयस्यंतीतेऽपि ।

बन्ध्यापि लभते पुत्रं प्रयोगादश्वगन्धायाः ॥ ३० ॥

उपयुक्ते यं पुरुषस्त्रिमास सार्धमास वा ।

नारीशतं सगच्छेन्नैव भजेद्योपितां वृत्तिम् ॥

खलित्वं बलोपलितैर्न चास्य देहोऽभिभूयते चिप्रम् ॥ ३१ ॥

वातव्याधिभिर्नात्तस्तथैव हृदस्तिशूलात्ता ।

भुजानां सर्पिरिदं नरानो रोगा भवन्तीह ॥ ३२ ॥

एवं जगद्विस्तार्य सर्पिरिदं वाजिगन्धायाः ।

येष्ट वृत्तीकरणं निर्दिष्टं पूर्वमश्विभ्याम् ॥ ३३ ॥

इति वृद्धदश्वगन्धाद्यष्टतमम् ।

अश्वगन्धाप्रस्थमेकं दुग्धस्रैवाढकं द्वयम् ।

ष्टतप्रस्थमिदं दद्यात् ऋतुनैर्द्विगुणितं पचेत् ॥ ३४ ॥

त्रिकटुकं चतुर्जातं विडङ्गं जातिपत्रकम् ।

बला चातिबला चैव श्वदद्रा वृद्धदारुकम् ॥ ३५ ॥

पलैकञ्च प्रदातव्यं लोहं वङ्गं तथा म्रकम् ।

प्रस्थार्धं माक्षिकं दद्यात् प्रस्थार्धं शर्कराशुभा ॥ ३६ ॥

सर्वमेतद्दिनिक्षिप्य सिन्धौ भाण्डे निधापयेत् ।

ह्रीं कालौ भक्षयेन्नित्यं समोदन्नाग्निबलं यथा ॥ ३७ ॥

अथ वातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं कटिप्रहम् ।

शोषसन्धिगतं वातं मस्थिभङ्गञ्च गृध्रप्रसीम् ॥ ३८ ॥

अग्निदोषश्च त्वग्दीपं धाददोषं तथैव च ।
 गर्भप्रसवजान्दोषा नामगर्भस्त्रवाच्च यत् ॥ ३८ ॥
 पोण्डुत्वमामवातश्च शुक्रदोषश्च शण्डताम् ।
 सर्ववातामिहान्येत यथा सिद्धो गजानिव ॥
 अश्वगन्धादिविख्यातं सर्ववातरुजापहम् ॥ ४० ॥

इत्यश्वगन्धादिष्टम् ।

ष्टत शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे शृतम् ।
 रेतः शुद्धिकरं तच्च शस्तुं चाप्यार्त्तवार्त्तिषु ॥ ४१ ॥
 यद्वयं पुरुषं कुर्याद्वाजीवसुरतक्षमम् ।
 तद्वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्मिषजाम्बरैः ॥ ४२ ॥
 क्लीवः स्यात् सुरताशक्तस्तदभावः क्लैवमुच्यते ।
 तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥ ४३ ॥
 तैस्तैर्भावैरद्वयैस्तुरिरसोर्मनमि कृते ।
 ध्वजं पतत्यतो नृणां क्लैव्यं समुपजायते ॥
 द्वेष्टस्त्रीसंप्रयोगाच्च क्लैव्यं तन्मानसं स्मृतम् ॥ ४४ ॥
 अन्तरेणोष्णलवणै रतिमात्रेण सेवितं ।
 सौम्यधातुचयोऽष्ट क्लैव्यं तस्मात् प्रजायते ॥ ४५ ॥
 अतिव्यवायशीलोयो न च वाजीक्रियारतः ।
 ध्वजमद्भमवाप्नोति मशुकचयहेतुकम् ॥ ४६ ॥
 महतामेन्द्रोगेण चतुर्थीक्लीवता भवेत् ।
 वीर्यवाहिशिराछेदान् सैहनानुन्नतिर्भवेत् ॥ ४७ ॥
 वलिनः क्षुब्धमनसो निद्रोधाद् वृद्धचर्यते ।
 षष्ट क्लैव्यं स्मृतं तच्च शुक्रस्तम्भनिमित्तकम् ॥ ४८ ॥
 लज्जप्रभृतियत्क्लैव्यं सहजं तदि मृतमम् ॥ ४९ ॥
 असाध्यं सहजं क्लैव्यं मर्मछेदाच्च गृह्येत् ।

साध्यानामवशिष्टानां कार्यो वाजीकरो विधिः ॥ ५० ॥
 नरो वाजीकराभ्यस्ते सम्यक् शुद्धो निरामयः ।
 आसत्ततिं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वन्तु षोडशात् ॥ ५१ ॥
 न तु वै षोडशादर्वाक् सप्तत्याः परतो न च ।
 आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ ५२ ॥
 शुष्कं रुचं तथा काष्ठं जन्तुकीटविजर्जरम् ।
 धृतमाशुविशीर्यंतं तथा हृद्गः स्त्रियं व्रजेन् ॥ ५३ ॥
 शोथकासज्वरार्शांसि स्वरकाश्यातिपांडुताः ।
 अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्च क्षयकादयः ॥ ५४ ॥
 आयुष्मन्तो मृन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विता ।
 स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ ५५ ॥
 त्रिभिस्त्रिभिरहोभिश्च सेवेत मदिरां नरः ।
 सर्वर्तुषु नरो ग्रीष्मे पञ्चाद्योषां भजेद्बुधः ॥ ५६ ॥
 ग्लानिः श्रमश्च दीर्बल्यं धात्विन्द्रियबलक्षयः ।
 क्षयहृङ्गुपदंशाद्यां रोगाद्यातीव दुर्जयाः ॥
 अकालमरणश्च स्याद्भजतः स्त्रियमन्यथा ॥ ५७ ॥
 रजस्वला मकामाश्च मलिनामप्रियामपि ।
 वर्णबद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ॥ ५८ ॥
 हीनाङ्गीं मलिनां द्वेष्यां योनिदोषसमन्विताम् ।
 स्वगोत्रां गुरुपत्नीश्च तथा प्रव्रतामपि ॥
 सन्ध्ययोः पर्वकाले च नोपेयात्प्रमदां नरः ॥ ५९ ॥
 रजस्वलां गतवंतो नरस्यासंयतात्मनः ।
 दृष्ट्यायुस्तेजसां हर्तनि रधर्मश्च ततो भवेत् ॥ ६० ॥
 लिङ्गिनीं गुरुपत्नीश्च स्वगोत्रामथ पर्वसु ।
 वृद्धां वा सन्ध्ययोद्यापि गच्छेज्जीवितसंक्षयम् ॥ ६१ ॥

वयोरूपगुणोपेतौ तुल्यशीलगुणान्वयाम् ।

अभिकामोऽभिकामाख्यां हृष्टो हृष्टामलं कृताम् ॥

सेवितप्रमदां नित्यं वाजीकरणसेवनः ॥ ६२ ॥

स्नानं सशर्करं चीरं मांसभोक्ष्याणि गौडकाः ।

सुजलं स्वप्रसेवा च व्ययायान्तो हितानि तु ॥ ६३ ॥

स्त्रीस्त्रक्षयं भृगयतां वृद्धानां च रिरंसताम् ।

क्लीवानामल्पशुक्राणां योगा वाजीकरा हिताः ॥ ६४ ॥

इक्षुरगोक्षुरकाः शतमूली यानरिनागबलातिबलाच ।

चूर्णमिदं पयसानिशिपेर्यं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥ ६५ ॥

माक्षीकधातुमधुपारदलोहचूर्णं

पथ्या शिलाजम्बुबिडङ्गघृतानि लिङ्घ्यात् ।

एकाधिविशतिं महानि गदार्दितोऽपि

चाशीति कोऽपि रमयेत्प्रबलो युवेव ॥ ६६ ॥

गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् ।

गोधूमैस्तृप्तिताचींद्र सर्पिमिश्रं सुशीतलम् ।

भुक्त्वा वाप्यतिजीर्णोऽपि दशदारा व्रजत्यपि ॥ ६७ ॥

पिप्पलीलवणोपेतौ वत्साण्डौ चीरसर्पिषा ।

माधितौ भक्षयेद्यस्तु सगच्छेत्प्रमदाशतम् ॥ ६८ ॥

वत्साण्डमिश्रे पयसि भावितानऽमलचिलान् ।

यः खादेत्स नरो गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ ६९ ॥

कुन्नीरकूर्मनक्राणा मण्डान्येवं हि भक्षयेत् ॥ ७० ॥

उघटाचूर्णमप्येव क्षीरेणोत्तममुच्यते ।

शताथर्व्युघटाचूर्णं पयमेव सुखांशुना ॥ ७१ ॥

घृतनिप्तं मापयिदलं दुग्धे मिदं मितौष्यसंयुक्तम् ।

भुक्तं तदेव कुरुते गतिं रमण्यं शतयोषाम् ॥ ७२ ॥

त्रिकण्टकात्मगुप्तानां बीजचूर्णं संशर्करम् ।

क्षीरेण यः पिबेद्भक्षे इश्वारं निरन्तरम् ॥ ७३ ॥

घृतं शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे पचेत् ।

शर्करापिप्पलीक्षीद्र युक्ते तद्व्यमुच्यते ॥ ७४ ॥

इति शतावरीघृतम् ।

मापाणामात्मगुप्तानां बीजानामाढकत्रयम् ।

जीवकर्पभको मेदे वीराहडो शतावरी ॥ ७५ ॥

मधुकं चाश्वगन्धा च साधयेत् कुडवोन्मितम् ।

तमेवास्मिन् घृतप्रस्थे द्रव्यादशगुणं पयः ॥ ७६ ॥

विदारिणीं दशप्रस्थ प्रस्थमिन्दुरकस्य च ।

दत्त्वा मृदग्निना साध्यं सिद्धं सर्पिर्निधापयेत् ॥ ७७ ॥

शर्करायास्तुगाक्षीर्याः क्षीद्रस्य च पृथक् पृथक् ।

भागान्चतुष्पलांश्चात्र पिप्यत्याश्च द्वयं पलम् ॥ ७८ ॥

पलंपूर्वमतो लीढ्वा ततोऽन्नमुपयोजयेत् ।

यदोच्छेदक्षयं शुक्रं शिफसद्योत्तमं बलम् ॥ ७९ ॥

इति मापबलम् ।

गोधूमाश्च पलशतं निःकाथ्य सलिलाढके ।

पादावशेषे पूते च द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥ ८० ॥

गोधूमं युञ्जातफलं मापद्राक्षापरूपकम् ।

काकोलीक्षीरकाकोली विदारो च शतावरो ॥ ८१ ॥

अश्वगन्धा मखर्जूरा मधुकं तूरपणं सिता ।

भस्मातकं चात्मगुप्ता समभागानि कारयेत् ॥ ८२ ॥

घृतप्रस्थ पचेदेव क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।

मृदग्निनाथ सिद्धेऽस्मिन् द्रव्याण्ये तानि निक्षिपेत् ॥ ८३ ॥

त्वंगेला पिप्पलीधान्यं कर्पूरं नागकेसरम् ।

यथालाभं विनिक्षिप्य सिंताक्षौद्रपलाष्टकम् ॥ ८४ ॥

दत्वेक्षुखण्डमालोद्य विधिवद्विनियोजयेत् ।

शाल्योदनेन भुञ्जीत पिवेन्मांसरसेन वा ॥ ८५ ॥

केवलं वा पिवेदस्य पलमात्रं प्रयत्नतः ।

न तस्य लिङ्गशैथिल्यं नच शुक्रक्षयो भवेत् ॥ ८६ ॥

वत्यं परं वातहरं शुक्रसंजननं परम् ।

परमोजकरश्चैव पुष्टिवर्णबलप्रदम् ॥ ८७ ॥

वातपित्तहरं हृत्थं पित्तगुल्महरं परम् ।

मूत्रकुच्छप्रशसनं वृद्धानां चापि शस्यते ॥ ८८ ॥

पलद्वयं तदाश्रीयं दशरात्रमंतद्रितः ।

स्त्रीणां शतं च भजते पीत्वा ह्यनुपिवेत्पयः ॥ ८९ ॥

अश्विभ्यां निर्मितं चैव गोधूमाद्य रसायनम् ॥ ९० ॥

जलद्रोणे तु गोधूमं क्वाथे तच्छेषमाढकम् ।

युञ्जातकस्य स्याते तु तदुष्णं तालमस्तकम् ॥ ९१ ॥

इति गोधूमाद्यं दृतम् ।

जीवन्यतिबलामेदा काकोलीद्वयजीरकैः ।

साभयातिष्ठता कृष्णा काकंनामा रसायनैः ॥ ९२ ॥

स्वयगुप्ता शटी गृद्धी जीवकशारिवाहयैः ।

सहाचरंवराविम्ब पिप्पलीमूलभर्जनैः ॥ ९३ ॥

पिट्टैस्तैलं दृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेन च ।

दत्तमनुवासनैर्ज्ञेयं शुक्राग्निबलवर्धनम् ॥ ९४ ॥

हृंहणं वातपित्तघ्नं गुल्मानाह हरं परम् ।

नस्यैः पानेयं संयुक्तं मूर्ध्वजद्वुगदापहम् ॥ ९५ ॥

इति जीवन्तीयमकम् ।

कूषाण्डकात्पल्यंतं सुखिन्नं निष्कुली कृतम् ।

प्रस्थं च घृततैलस्य तस्मिन् तप्ते निधापयेत् ॥ ८६ ॥

त्वक्पत्रधान्यकथ्योप जीरकैलार्द्रकं पलम् ।

पङ्गुन्याचव्यमातङ्गं पिप्पलीशृङ्गवेरकम् ॥ ८७ ॥

शृङ्गाटकं कशेरुक्ष प्रलम्बं तालमस्तकम् ।

चूर्णीकृतं पलांशश्च गुडस्य तु तुलां पचेत् ॥ ८८ ॥

शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः संप्रदापयेत् ।

कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनां च दीपनम् ॥ ८९ ॥

कृशानां हृद्दृग् यथेष्टं वाजीकरणमुत्तमम् ।

प्रमदांसु प्रसक्तानां ये च स्युः क्षीणरितसः ॥ ९० ॥

क्षयेण च गृहीतानां परमेतद्भेषजं मतम् ।

कासं श्वासं ज्वरं हृक्कां हन्ति हृदिमरोचकम् ॥

गुडकूषाण्डकं ख्यातं मग्विभ्यां समुदाहृतम् ॥ ९०१ ॥

इति गुडकूषाण्डकम् ।

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं तर्पणं गुरुम् ।

हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्व्यमुच्यते ॥ ९०२ ॥

अभ्यंगच्छादनस्नानं गन्धमाख्यविभूषणैः ।

गृहशय्यासनंसुखैर्वासीभिर्विदितैः प्रियैः ॥ ९०३ ॥

विहङ्गानान्तुतैरिष्टैः स्त्रीणां वाऽऽभरणस्त्रनैः ।

संवादनैर्वस्त्रोणा मिष्टानाञ्च हृषायते ॥ ९०४ ॥

सुरूपा यौवनावस्थां लचणैर्वा विभूषिता ।

न्यावस्थां शिचिता चैव सा स्त्री हृष्यतमा स्मृता ॥ ९०५ ॥

जरयाहृतया शुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्मणात् ।

नराणां मरणं शस्तं मधिव्रातादसेवनात् ॥

क्षयाक्षयादधिस्रावात् स्त्रीकात् स्त्रीदीपकर्मणात् ॥ ९०६ ॥

श्रीर्वक्ष्य मुखशोषश्च पाण्डुत्वं मदनं भ्रम ।

क्षौब्यं शुक्रविसर्गश्च क्षीणशुक्रश्च लक्षणम् ॥ १०७ ॥

इति वङ्गसेने वाजीकरणनिदानचिकित्साधिकारः

समाप्तः ॥ ७४ ॥

—०—

अथ स्नेहपरनाधिकारमाह ।

तत्र प्रथमरोगाऽनुत्पादनक्रममाह ।

हिताभिर्जुहुयान्नित्यं मन्त्रं राग्निं समाहितम् ।

अन्नपानसमिद्धिर्वा मात्राकालविचारवित् ॥ १ ॥

तत्र नित्यं प्रयुञ्जीत स्वस्थान् न परिहार्यते ।

अज्ञातानां विकाराणां मनुत्पत्तिकरं हितम् ॥ २ ॥

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् ।

तदभावे हि भावानां सभाषश्च शरीरिणाम् ॥ ३ ॥

नरो हिताहारविहारमेधोसमीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।

दाताशम सत्यपर धर्मावानामोपसेवी च भवत्यरोगः ॥ ४ ॥

मतिश्च वै कर्मसुखानुज्योः सत्त्वं विधेयं विषदा च बुद्धिः ।

ज्ञानं तपः सत्यरतीवयोगो यन्माप्ति तन्माभिभवन्ति रोगाः ॥ ५ ॥

अर्थेष्वलभ्येषु हतप्रयत्नं कृतादरो नित्यमुपायवन्तु ।

जितेन्द्रियं नानुत्पन्ति रोगाः स्तृक्कालयुक्तं यदि नास्ति र्देवम् ॥ ६ ॥

नागरीनागरम्येऽथ रथम्येऽथ रथो सदा ।

समरोरस्य मेधावी हतेष्वदहितो भवेत् ॥ ७ ॥

इति रोगानुत्पादनम् ।

वमनं रेचनं नस्यं निरुहयानुवासनम् । ∴

श्रेयः पञ्चविधं कर्म्म विधानं तस्य कथ्यते ॥

आपो यथा विरुध्यन्ते स्निग्धासान्नादयत्नतः ।

तथा संशोधनद्रव्यैः स्निग्धकोष्ठात्कफं नयेत् ॥ ८ ॥

मलापहं रोगहरं बलवर्णप्रसादनम् ।

पीत्वा संशोधनं सम्यग् गायुष्मान् पूज्यते चिरम् ॥ १० ॥

कट्यू रूजहृत्पादस्थे वाति स्नेहं विशेषतः ।

पिवेत्प्राग्भोजनाज्जन्तुः कट्यादीनां मलापहम् ॥ ११ ॥

पिवेत्संशोधनादूर्ध्वं मूर्ध्वजत्रुनिले गदे ।

बलितेनेन्द्रियाणाञ्च वैकल्यं क्षीयजायते ॥ १२ ॥

पक्षाघातं सङ्घट्टोगं सेव्यमानं निहन्ति च ।

सहान्ते नाशिनः स्नेहो बलवर्णकरः परः ॥ १३ ॥

सोपानक्षलघो कोष्ठे निरामे वोक्ष्यपावकम् ।

पाययित्वा भिषक् स्नेहं कटूष्णं वारिं पाययेत् ॥ १४ ॥

यथा दीपं यथा कालं यथा व्याधिर्यथा बलम् ।

स्नेहं पक्वमवकं वा पाययित्वा चिकित्सकः ॥ १५ ॥

सर्पिः शरदिपातव्यं यस्मामञ्जा च माधवे ।

तन्म प्रावृपिनात्युष्णं शीते स्नेहं पिवेन्नरः ॥ १६ ॥

जलसुणं हृते पेयं यूपस्तेलेषु शंस्यते ।

यस्मामञ्जसिमण्डस्तु सर्वेषां मथाबु वा ॥ १७ ॥

ऋते भक्तातकस्नेहा तत्रुत्तोयं सुशीतलेम् ।

त्रिकर्पादूर्ध्वकर्पेण वृद्धिः सार्धपले तथा ॥ १८ ॥

ततः कर्पेभिर्हृदिभ्यः भवेद्यायत्पलत्रयम् ।

ततोऽपि च पलाधेन वृद्धिर्यावच्च षट्पलम् ॥ १९ ॥

मात्रेऽपि स्नेहपानस्य जघन्यामध्येमोक्षमाः ॥ २० ॥

एकाहमुत्तमार्पेया चरहमेव तु मध्यमा ।

स्नेहमात्रा यथा योगं समाहन्तु कनीयसी ॥ २१ ॥

अहोरात्रेण महती जीर्यत्यङ्गि तु मध्यमा ।

दिनार्धे चापराः तिस्रः स्नेहमात्राः प्रमाणतः ॥ २२ ॥

केवलं पैत्तिके सर्पिं वार्तिके लवणान्वितम् ।

देयं बहुकफे तैलं व्योषचारसमायुतम् ॥ २३ ॥

शीतकाले दिवास्नेहं शुष्णकाले पिवेत्रिणि ।

वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥ २४ ॥

पिवेत्पित्तकफे चोष्णं स्नेहमूर्च्छादपापहम् ।

शीतं वातकफार्तस्य गौरवारुचिशूलक्षन् ॥ २५ ॥

न्युः पच्यमाने दृढदाहभ्रमोमूर्च्छारुचिस्तमः ।

परिपिच्योऽप्यनुष्णाद्विजीर्णस्नेहोऽयतो नरः ॥ २६ ॥

यवागूं प्रागयेदुष्णां कृतां पटिकतंडुलैः ।

अल्पस्नेहां विलेपीष्व जीर्णस्नेहे सुखोदनम् ॥ २७ ॥

दृढस्य स्नेहसिद्धेन यूषेनाल्पशृतेन वा ।

पिवेत्संगमनं स्नेहं मयकाले प्रकाशितम् ॥ २८ ॥

सिद्धार्थे पुनराहारे नैशे जीर्णं पिवेत्तरः ।

स्नेहसात्तरः क्लेशसहो दृढकाले च शीतले ॥ २९ ॥

अच्छमेयं पिवेत् स्नेहं मण्डपानं हि गोमनम् ।

दृढाद्यमनभिष्यन्दि भोज्यमंशं प्रमाणतः ॥ ३० ॥

नातिस्निग्धमसंकीर्णं सुघ्ने हं पातुमिच्छता ।

पियेत्रहं चतुरहं पञ्चाहं षडहानि वा ॥ ३१ ॥

सप्तरात्रात्परं स्नेहं सात्तरभावाय कल्पते ।

नृदुकोटस्मिरात्रेण सिद्धत्वाच्छोपसेवया ॥

स्निघ्नाति क्षुरकोटस्तु सप्तरात्रेण मानवः ॥ ३२ ॥

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वाऽयस्य स्नेहो न जीर्यते ।
 विष्टभ्य वापि जीर्येत वारिपोष्ये न वामयेत् ॥
 ततः स्नेह पुनर्दद्यात्तद्वुकोटाय देहिने ॥ ३३ ॥
 स्नेहाऽजीर्णविशकायां पुनरुष्णोदकं पिबेत् ।
 तनोद्गारो भवेच्छुद्धो रुचिः स्यान्न भवेन्नति ॥ ३४ ॥
 स्नेहपीतस्तु तृष्णायां पिबेदुष्णोदकं नरः ।
 एवं चानुप्रशाम्यन्तं स्नेहमुष्णाद्भुङ्क्ष्वनोदरेत् ॥ ३५ ॥
 स्नेहद्विषः शिशून्ब्रूहान् सुकुमासून् कृशानपि ।
 तृष्णालुं चोष्णकाले च सहभक्तेन पाययेत् ॥ ३६ ॥
 बालवृद्धादियुं स्नेहपरिहारासहिष्णुम् ।
 योगानिर्माननुद्देगान् सद्यः स्नेहान् प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥
 प्राश्यमांसरसान् स्नेहान् पेया वा स्नेहमर्जिताः ।
 पिवेत्सुखोष्णं मनुजः सद्यः स्नेहनं नुच्यते ॥ ३८ ॥
 धारोष्णं स्नेहसंयुक्तं पीत्वा सलवणं पथः ।
 दध्नी रसं सारगुडं पीत्वा स्निध्यति मानवः ॥ ३९ ॥
 सर्पिष्मतीबहुतिना तथैव खल्वतडुला ।
 सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनं नुच्यते ॥ ४० ॥
 शर्कराष्टतसंस्पृष्टे दुह्याद् गां कलसेऽथवा ।
 पाययिदक्षमेतद्धि सद्यः स्नेहनं नुच्यते ॥ ४१ ॥
 विषर्जयेत् स्नेहपानं मजीर्णीतरुधक्षरी ।
 दुर्बलो रोचकोऽस्थूलो मूर्च्छार्क्षितो मदपीडितः ॥ ४२ ॥
 क्षयाभिभूतरूजिनः श्रान्तपाणक्तमान्वितः ।
 वस्तिदत्तो विरिक्तश्च वान्तोऽथवापि मानवः ॥ ४३ ॥
 अकाले च मज्जता स्त्री स्नेहपानं विवर्जयेत् ।
 स्नेहपानाद्भवेदेया मृगानां नाजाविधो गदः ॥ ४४ ॥

गदा वा कृच्छतां यान्ति न सिध्यन्ति तथा पुनः ।

उष्णोदकोपचारी स्याद् ब्रह्मचारी चपाशयः ॥ ४५ ॥

वेगरोधनव्यायामक्रोधशोकहिमातपान् ।

वर्जयेत्प्रयतो नित्यं सेवयेच्छयनामनम् ॥ ४६ ॥

स्नेहं पीत्वा पुनः स्नेहं प्रतिमुञ्चानमेव च ।

स्नेहपथ्यापचारादिं जायन्ते दारुणा गदाः ॥ ४७ ॥

पुरोपं ग्रन्थितं रुद्धं वायुरप्रगुणो विटम् ।

पक्वा खरत्वं रौच्यञ्च गात्रस्याऽस्त्रिग्वलक्षणम् ॥ ४८ ॥

वातानुलोम्यं दीप्ताग्निर्वर्चः स्त्रिग्वमसंहितम् ।

मार्दवं स्त्रिग्वता चाङ्गे स्त्रिग्वधानामुपजायते ॥ ४९ ॥

पाण्डुतासदनं तन्द्रा पुरीषस्य विपक्वता ।

उत्कृशो जाड्यमरुचिः स्यादतिस्त्रिग्वलक्षणम् ॥ ५० ॥

मिथ्याहारादिना लोके स्नेहः पीतो ज्वरादिहृत् ।

प्रकुर्यात्तद्वृत्तं तत्र मलं ज्ञात्वा विरेचनम् ॥ ५१ ॥

रुचस्य स्नेहनं स्नेहेरतिस्नेहस्य रुच्यम् ।

श्यामाकपोरदूषाच्च तक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥ ५२ ॥

दीप्तान्तराग्निः परिशुद्धकोष्ठः प्रत्यग्रधातुर्वलवर्णयुक्तः ।

हृद्देन्द्रियो मन्दज्वरः शतायुः स्नेहोपसेवो पुरुषः प्रदिष्टः ॥ ५३ ॥

स्नेहमेव परं विद्याद् दुर्बलानलदीपनम् ।

बलं स्नेहमभिर्द्धिं समायातः सदुर्वलः ॥ ५४ ॥

स्नेहे व्यायामसंशोत वेगाघातप्रजागरान् ।

दिवास्वप्नमभिव्यन्दि रुक्षाश्च विवर्जयेत् ॥ ५५ ॥

इति वङ्गसेने स्नेहपानाधिकारः समाप्तः ॥ ७५ ॥

अथ खेदाधिकारमाह ।

येषां नस्य विधातव्यं वस्त्रियैवापि दिहिनाम् ।

शोधनीयाश्च ये केचित् पूर्वं खेद्यास्तु ते मताः ॥ १ ॥

पथात् खेद्या हृते शल्ये मूढगर्भाद्युपद्रवाः ।

सम्यक् प्रजाताऽकाले च पथात् खेद्यैव यत्नतः ॥ २ ॥

खेद्यः पूर्वं च पथाच्च भगदर्थ्यगंसस्तथा ।

अश्मर्या चातुरो जन्तुः शिषाब्ध्यास्त्रे प्रचक्ष्महे ॥ ३ ॥

स्नेहक्षिप्रं शरीराय तैलाभ्यक्तार्थं देहिने ।

दोषानां क्षेपकालज्ञो ध्यान्खेदं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

नानभ्यक्ते नापि चास्निग्ध देहे खेदो योज्यः स्नेहवद्भिः कथञ्चित् ।

दृष्टं लोके काष्टमस्निग्धमाशु गच्छेद्भङ्गं खेदयोगैर्गृहीतम् ॥ ५ ॥

भांसमापतिलादीनां बालुकानामथापि वा ।

कुम्भीपिण्डेऽष्टकाखेदा न्नाय प्रस्तरसंकरात् ॥ ६ ॥

वातघ्नैर्दशमूलैर्वा शीतैरसच्छाद्य चक्षुषी ।

हृषणो हृदयं दृष्टो खेदयेन्मृदुवा न वा ॥

मध्यमं वह्णौ शिषं मङ्गावयवमिष्टतः ॥ ७ ॥

खेदो हितस्वनाग्नेयो वाते मेदः कफावृते ।

निवातगृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम् ॥ ८ ॥

उपनाहाह्वयक्रोध भूरिपानक्षुधातपाः ।

खेदयन्ति दग्धैतानि नरमग्निगुणादृते ॥ ९ ॥

सर्वात् खेदा त्रिवाते च जीर्णोष्णं वा च कारयेत् ॥ १० ॥

व्याधौ शीति शरीरे च महान् खेदो महावले ।

दुर्बले दुर्बलः खेदो मध्यमे मध्यमो मतः ॥ ११ ॥

हलासे रुचणः खेदो रुचस्निग्धः कफानिले ।

कफमेदो हृते वाते सेवेत् कोष्णं गृहं रविम् ॥ १२ ॥

तत्र तापोपस्वेदौ विशेषतः श्लेष्मघ्नौ । उपनाहस्वेदो वातघ्नः
अन्यतरस्मिन् पित्तसंसृष्टे द्रवस्वेद इति कफमेदोऽन्विते वार्यो नि-
वातग्रहातपगुरुप्रावरणादिभिः स्वेदमुत्पादयेदिति ।

स्नेहक्लिन्ना धातुसंस्थाय दोषाः स्वस्थानस्याये च मार्गेषु लिप्ताः ।
सम्यक् स्वेदैर्योजितैस्ते द्रवत्वं प्राप्ताः कोष्टं यान्ति देहादशेषात् ॥ १३ ॥
शीतशूलव्यपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे ।

सञ्जाते मार्दवे देहे स्वेदनादिरतिर्मता ॥ १४ ॥

अग्नेर्दीप्तिं मार्दवं त्वक् प्रसादं

भक्त्यङ्गां श्रोतमां निर्मलत्वम् ।

कुर्यात् स्वेदो हन्ति निद्रां सवन्दुः

सन्धोन् स्तब्धाद्येष्टयेदाशु युक्तः ॥ १५ ॥

स्वेदास्त्रावो व्याधिहानिर्लभत्व शीतार्थित्वमार्दवं चातुरस्य ।

सम्यक् स्निग्धे सच्चथं प्राङ्गुरेतत् मिथ्यास्निग्धे व्यतयेनैतदेव ॥ १६ ॥

स्फोटोत्पत्तिः पित्तरक्तप्रकोपो मूर्च्छा भ्रान्तिर्दाहवृणाक्तमाय ।

अतिस्निग्धे सधिषीडावृषा च क्रिया शोतां तत्र कुर्यादधिघ्नः ॥ १७ ॥

अतिस्निग्धनराणाञ्च शोतावुप्रासनं हितम् ।

स्नानमुष्णानुना चापि ह्यनशिष्यदिभोजनम् ॥ १८ ॥

पाण्डुर्मेहोरक्तपित्ती वृषांतः क्षामो घोर्णो चोदरातो विपातः ।

वृट्छर्द्यातीं गर्भिणी पीतमद्यो नैते स्वेद्यायथ मर्त्तान्तिषारी ॥ १९ ॥

स्वेदादेपां यान्ति देहा विनाशं चामाध्यत्वं यान्ति चैषा विकाराः ।

स्वेदेः सार्धं दुर्वलाजोर्णभक्ता यदि म्यातां स्वेदनीयो ततस्ती ॥ २० ॥

इति वङ्गसेने स्वेदाधिकारः समाप्तः ॥ ७६ ॥

अथ वमनाधिकारमाह ।

शरत्काले वसन्ते च प्राष्ठत् काले च देहिनाम् ।

वमनं रेचनं चैव कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥

कफे कफोत्पत्तौ चापि वमनं सप्रशस्यते ॥ २ ॥

वामयेदतिसारार्तं मधःपित्तास्त्ररोगिणाम् ।

ग्रन्थिमेहापचोक्तुष्ट स्नेपदोन्मादरोगिणः ॥ ३ ॥

समस्तदोषपरोसर्पं खासकासोर्ध्वरोगिणः ।

नवज्वरश्च हीतश्च हृत्तासारार्तं विगेषतः ॥ ४ ॥

नवामये तेमिरिकं न गुल्मिनं न चापि पाण्डुररोगपीडितम् ।

स्थूलक्षतक्षीणक्षयातिवृद्धान्शोर्दिताक्षेपकपीडितांश्च ॥ ५ ॥

रुक्ते प्रमेहे तरुणे च गर्भे गच्छत्ययोर्ध्वं रुधिरे च तीव्रे ।

दुष्टे च कोष्ठे क्षमिभिर्मनुष्यं वर्चोऽभिधाते न च वामयेत् ॥ ६ ॥

एतेऽप्यजीर्णव्यर्धिता वास्याये च विपातुराः ।

अत्युत्प्लवणकफा ये च ते च स्युर्मधुकास्तुना ॥ ७ ॥

अवस्थावमनात् क्रोधात् क्षुब्धतां यान्ति देहिनः ।

असाध्यतां वा गच्छन्ति मैत्रे वास्यास्त्वतिसुताः ॥ ८ ॥

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लङ्घनपात्रनैः ।

जिताः संशोधनयेत्तु न तेषां पुनरुद्भवः ॥ ९ ॥

योऽखिलैर्विविधैरन्त्रैर्दोषानुत् क्षेप्यदेहिनः ।

क्षिग्धस्त्रिन्नायवमनं दत्तं मम्यक् प्रवर्त्तते ॥ १० ॥

निशिसुप्तश्च पूर्वाङ्गे जीर्णाहारकृते चणम् ।

वमनं पाययित्वा तु जानुमात्रासने स्थितम् ॥

कण्ठं गन्धर्वनालेन स्पृशन्तं वामयेद्भिषक् ॥ ११ ॥

ललाटं वमतः पुंसः पाश्वो हस्तेन बोधयेत् ॥ १२ ॥

कफश्च कटुतीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादुहिमैर्वमेत् ।
 सस्वादुलवणास्त्रोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ १३ ॥
 पानद्रव्यरसस्योक्तेः स्वरसः पलमिष्यते ।
 वमनं रेचनं चाक्षं स्नेहादिशमनं परम् ॥ १४ ॥
 क्वाथद्रव्यस्य कुडवं श्रुपयित्वा जलादुक्ते ।
 अर्द्धभागावशिष्टञ्च वमनेष्ववचारयेत् ॥ १५ ॥
 यष्टीमधुवचाकुष्ठं बीजानां कुटजस्य च ।
 कल्कैरालीढ्य निम्बस्य कषायं पाययेद्विषक् ॥ १६ ॥
 प्रवृत्तलालाह्वत्तासं वामयेत् स्निग्धमातुरम् ।
 कृष्णेन्द्रयवसिन्धूत्य राठकल्कयुतं पिवेत् ॥ १७ ॥
 यष्टीकषायं सक्षौद्रं तेन साधुवमत्यलम् ॥ १७ ॥
 निम्बकषायोपेतं फलिनीगदमदनमधुसिन्धूत्यम् ।
 मधुयुतमेतत्मानं कफपरिपुर्णाशये शस्तम् ॥ १८ ॥
 तडुलसलिलनिपिष्टं यः पोत्रा वमति नरः पूर्वाह्ने ।
 फलिनीवल्कलकल्कं हरति गदश्च कफपित्तरुजम् ॥ १९ ॥
 घाटरूपवधानिम्बं पटोलं फलिनीत्वचम् ।
 क्वाथयित्वा पिवेत्तोयं वान्ति कृन्मदनान्वितम् ॥ २० ॥
 जीसूतकफलेष्वाकु कुटजाः हातवेधनः ।
 धामार्गवश्च सयोज्यः सर्पथा वमनेष्वमो ॥ २१ ॥
 मदनफलमज्जसिद्धं चोरं दधितां गतं तप्तमं वा ।
 वमनायकफप्रसेके वमनं कफेषु च प्रयुञ्जयात् ॥ २२ ॥

—०—

तत्र सुकुमारं कृष्णं बालं वृद्धं भोरं वा वमनमाधेषु यिका-
 १७ चोरदधितक्रयदागूनामन्यतमेनाकठं पाययित्वा वामयेत् ।

—०—

कंफप्रसेकं हृदयांविशुद्धिः कंङ्कु च दुर्बामितलिङ्गमाहुः ।
 पित्तातियोगश्च विसंज्ञताश्च हृत्कण्ठपीडामपि चातिवान्ते ॥२३॥
 पित्ते कफस्यानुसुखं प्रवृत्ते शुद्धेषु हृत्कण्ठशिरःसु चापि ।
 लघौ च देहे कफसंश्रये च स्थिते सुवान्तं पुरुषं व्यवस्येत् ॥२४॥
 पित्तान्तमिष्टं वमनं विरेकादर्हं कफान्तञ्च विरेकमाहुः ।
 द्वित्रौन् सविट्कानपनीयवेगान्नेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥२५॥

सम्यग्वान्तं चैनमभिवीक्ष्यस्नैहिकवैरेचनिकोपशमनीयानाम-
 न्यतमं धूममाकण्ठं सामर्थ्यतः पाययित्वा आर्क्षारिकमुपदिशेत् ।

वान्त्वर्यमौषधे पीते वान्तिर्भवति नो यदि ।

पिवेद्वात्रीकंशामिम्बं कपायमुष्णवारिण्या ॥ २६ ॥

वमनस्यातियोगे तु शीतांशुपरिसेवनं ।

पिवेत्कटुरसैर्मण्डं सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥

वमनेऽतिप्रवृत्ते च हृद्यं कार्यं विरेचनम् ॥ २७ ॥

सोद्गारायां भृशं कृत्वा मूर्च्छायां याममुस्तयोः ।

समधूकांजनं चूर्णं लेहयेन्मधुसर्पिणा ॥ २८ ॥

वमतोऽन्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः ।

निःश्रिताश्च तिलद्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेशयेत् ॥ २९ ॥

ततो पराह्णे सुविशुद्धदेहं सुशोभिरङ्गि परिपिक्तगात्रम् ।

कुलित्यमुद्गाढक्रजाङ्गलानां यूपैरसैर्वाप्यपभोजयेत्तम् ॥ ३० ॥

पेयां विलेपीमकृतं कृतं च यूप रसं त्रीनुभयं तथैकम् ।

क्रमेण सेवेत् नरोऽन्नकालान् प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ ३१ ॥

धान्यकल्केन सर्शुडां नागरेण समन्विता ।

सुलघ्नीदीपनी पेया वातरक्ते च शस्यते ॥ ३२ ॥

अथाणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः सधुक्षमाणो भवति क्रमेण ।
 महान् स्थिरः सर्वपचस्तथैव शुद्धस्य घेयादिभिरन्तराग्निः ॥३४॥
 कफप्रसेकस्वरभेदनिद्रा तन्द्रास्यदौर्गन्ध्यविषोपसर्गाः ।
 गुरुत्वकण्डूषङ्खणीप्रदोषा न सन्ति जन्तोर्वमतः कदाचित् ॥३४॥
 छिन्ने तरो पुष्पफलप्रवाला यथा विनाश सहसा व्रजन्ति ।
 तथाहते श्लेष्मणि छर्दितेन तज्जा विकाराविलयं व्रजन्ति ॥३५॥
 वमनादिविधानेषु यावत्कालस्तु गच्छति ।
 तावद्धि परिहर्तव्यं शोततोयातिमैथुनम् ॥ ३६ ॥
 इति वङ्गसेने वमनाधिकारः समाप्तः ॥ ७७ ॥

अथ विरेचनाधिकारमाह ।

अतो वमन्ते शरदि देहशुद्धी विरेचयेत् ।
 अन्यदात्ययिके काले शोधनं शीलयेद्बुधः ॥ १ ॥
 पित्ते विरेचनं युञ्ज्या ह्येषे पित्तोत्प्लवणेऽपि च ।
 पित्तमत्युत्प्लवणोक्त्य स्नेहे स्वेदे कृते मति ॥ २ ॥
 वमने च कृते पूर्व्यं ततः संम्यग्विरेचयेत् ।
 अन्यथा योजितं कुर्यान्मन्दान्निं गोरवासवी ॥ ३ ॥
 पित्ताधिको मृदुः कोष्टः पयसापि विरिच्यते ।
 वातेन श्लेष्मणा क्रूरो दुर्विरेच्यः न उच्यते ॥ ४ ॥

समदीर्घो मध्यमः साधारण इति । तत्र मृदौ मृदीमाध्याक्रूरौ
 तीक्ष्णा मध्ये मयमा कर्त्तव्येति ।

मृदुमध्यक्रूरकोष्टे कर्षमर्द्धपलम्पलम् ।
उष्णोदकानुपानन्तु पलं द्वे च पलत्रयम् ॥ ५ ॥
स्तदर्द्धम्पाययेच्चूर्णं मनुपानञ्च तादृशम् ।
क्वाथे क्वाथविधिः कार्यं स्तदर्द्धः स्वरसोऽपि च ।
पित्तं दद्यात्तथा स्नेहं पलाहं पलमेव वा ॥ ६ ॥

इति विरेचनमात्राः ।

यथा वमने प्रसेकौषधपित्तानिलाः क्रमेणायान्ति तथा विरे-
चने पुरीषपित्तोपधकफा इति ।

—१—

स्नेहस्वेदाबलत्वाग्ने यस्तु सशोधनं पिवेत् ।
दारुशुष्कमिवानाम्य तद्देहमतिपातयेत् ॥ ७ ॥
स्नेहस्वेदैः प्रचलितारसैः स्निग्धैरुदीरिताः
दीपाः कोष्ठगता जन्तोः सुखा हर्तुंस्विरेचने ॥ ८ ॥
शारदे सौक्ष्म्यतैक्ष्ण्यग्राहा बिकाशित्वाद्विरेचनम् ।
वमनं च हरेद्दीपं सम्यगुक्तं तथान्यथा ॥ ९ ॥
यात्यधो दीपमादाय पच्यमानं विरेचनम् ।
गुणोद्रेकाद्वजेदूर्ध्वं मपक्वं भेषजं पुनः ॥ १० ॥
मृदुकोष्टस्य दीप्ताग्ने र्दत्तं सम्यग्विरेचनम् ।
न सम्यग्निर्हरेद्दीपा नऽतिमात्रप्रधावितम् ॥ ११ ॥
दृढत्वं सैन्धवशुण्ठीनां चूर्णमग्नेः पिवेच्चरः ।
वातार्दितो विरेकाय जाङ्गलानां रसेन वा ॥ १२ ॥
पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं स्वादुक्वायादिभिः पिवेत् ॥ १३ ॥

भित्त्वा द्विधेत्तुं परिलिप्य कल्कैस्त्रिमण्डिजातैः परिवेष्ट्य रज्ज्वा ।
पक्वन्तु सन्ध्यां पुटपाकयुक्त्या खादेत्तु ता पित्तगदी सुशीताम् ॥ १४ ॥

हरोतकीविडङ्गानि सैन्धवं नागरं त्रिवृत् ।

मरिचानि च तत्सर्वं गोमूत्रेण विरेचनम् ॥ १६ ॥

त्रिवृच्छाणव्यसमा त्रिफला तत्समानि च ।

क्षारकृष्णाविडङ्गानि तच्चूर्णं गन्धसर्पिषा ॥ १७ ॥

लिङ्गाद्गुडेन गुटिकां कृत्वा वाप्युपयोजयेत् ।

कफघातकृतान् गुल्मान् ग्रीहोदरभगन्दरान् ।

हृत्स्थन्यानापि चाप्येतन्निरुपायं विरेचनम् ॥ १८ ॥

त्रिफलाक्वाथमूत्रैश्च सव्योषं कफपिण्डितः ।

कृष्णाशुण्ठीविहृत्क्षार चूर्णं चौद्रेण लेहयेत् ॥ १९ ॥

एतद्विरेचनं मुख्यं सर्वश्लेष्मविकारिणाम् ॥ २० ॥

शर्कराचौद्रसंयुक्तं त्रिवृच्चूर्णं विचूर्णितम् ।

रेचनं सुकुमाराणां त्वक्पत्रमरिचान्वितम् ॥ २१ ॥

पथ्यासैन्धवकृष्णानां कल्कमुष्णाम्बुना पिवेत् ।

विरेकः सर्वदोषघ्नः श्रेष्ठो नाराचसंघ्नितः ॥ २२ ॥

त्रिवृत्पिप्पलिसिन्धुसै रन्वितं गुग्गुलुं पिवेत् ।

फलत्रिककषायेन रेचनं सर्वदोषनुत् ॥ २३ ॥

पिप्पलीनागरक्षार श्यामास्त्रिवृतया सह ।

लेहयेन्मधुना सार्धं कफव्याधौ विरेचनम् ॥ २४ ॥

हरोतक्यास्तु कर्पाई कर्पाई विहृतस्तथा ।

शीतांबुना समम्पिद्धा भर्जयेत्कर्पिषा मनाक् ॥ २५ ॥

तद्वध्यं शीतलं ज्ञात्वा सिताकर्षेण योजयेत् ।

भुक्त्वा विरिच्यते जन्तु र्यावदुष्णं न सेवते ॥ २६ ॥

इत्येतावत्येकदिनमात्रा ।

हरोतकीभिः कथितं सुवीरं दन्त्यग्निकृष्णाविडचूर्णयुक्तम् ।

विरेचनं वाञ्छुतैलमिश्रं निरत्ययं योज्यमथामयघ्नम् ॥ २७ ॥

त्रिवृतां कौटजं बीजं पिप्पलीं विश्वभेषजम् ।
 समृद्धोकारसंचौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ २८ ॥
 त्रिवृददुरालभासुस्ता शर्करोदीच्यचन्दनम् ।
 द्राक्षांमुना सयष्ट्याह्वं शीतलश्च घनात्यये ॥ २९ ॥
 त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ।
 त्रिवृतां हवुषां दन्तीं सप्तलां कटुरोहिणीम् ॥ ३० ॥
 स्वर्णचीरोच्च कम्पिलं गोमूत्रे भावयेत्प्रहम् ।
 एष सर्वर्तुको योगः स्निग्धानां मलदोषहा ॥ ३१ ॥
 सचौद्रां शर्करां पक्वा कुर्यान्मृद्भाजने नवे ।
 दद्याच्छीते त्रिवृच्चूर्णं त्वक्पत्रमरिचैः सह ॥
 लिङ्घ्यात्तं मात्रया लेहं मीश्वराणां विरेचनम् ॥ ३२ ॥
 अभयापिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।
 त्वक्पत्रपिप्पलीमुखं विडङ्गामलकानि च ॥ ३३ ॥
 ण्तानि समभागानि दन्ती च त्रिगुणा भवेत् ।
 त्वहृदष्टगुणादेया पङ्गुणा चात्र शर्करा ॥ ३४ ॥
 मधुना मोदकान् कृत्वा चाक्षमात्रान् प्रमाणतः ।
 एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चान्तु पिवेज्जलम् ॥ ३५ ॥
 तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते ।
 पानाहारविहारेषु भवेन्निर्यन्वणः सदा ॥ ३६ ॥
 पाण्डुत्वकासविषमज्वरबुद्धिसादान्
 जङ्घोरुष्टजघनोदरपार्श्वशूलान् ।
 दुर्नाममण्डलभगन्दरशोफगुल्मान्
 यक्ष्मोदरभ्रमविदाहकामूत्रकृच्छ्रान् ॥ ३७ ॥
 म्लीहाक्षिरोगयक्ष्मदशमरिक्षुष्टमेहान्
 हन्याद्रंसायनमिदं भिषजा प्रयुक्तम् ।

अल्पथ्ययं बहुफलं सततं प्रयोज्य

मायुष्करं पलितनाशनमश्विष्टम् ॥ ३८ ॥

इत्यभयाद्यो मोदकः ।

विडङ्गसारामलकाभयानां पल पलं स्यात्त्रिवृतस्त्रयश्च ।

गुडस्य षड्द्वादशभागयुक्ता मानेन त्रिंशद्गुटिका विधेयाः ॥ ३९ ॥

निवारणे यक्ष्वरेण सृष्टः समाणिभद्रः किलशाख्यभिष्वे ।

अथ हि कुष्ठक्षयकासनाशनो भगन्दरप्लीहगुदोदरार्तिजित् ॥ ४० ॥

यथेष्टचेष्टान्नविहारसेवी ह्यनेन वृद्धस्तरुणो भवेच्च ॥

इति माणिभद्रमोदकः ।

गुडस्याष्टपलं पथ्या विंशतिः स्युः पलानि च ।

दन्तोच्चित्रकयोः कर्पाः पिप्पलीत्रिवृतोर्दशः ॥ ४१ ॥

कृत्वैतान्मोदकानेकं दशमे दशमेऽहनि ।

संखादेदुष्णसेवो चा हारं निर्यन्वणास्वमी ॥

दोषघ्ना ग्रहणीपाण्डु रोगार्श कुष्ठनाशनाः ॥ ४२ ॥

गुडाद्योमोदकः ।

विरेकाद्यौषधं पोतं न मम्याद्यदि रेचयेत् ।

पिवेदुष्टांभसा तव सैन्यं दोषशान्तये ॥ ४३ ॥

हृत्कुक्ष्यगुद्विपरिदाहकाडूर्विण्मूत्ररोगाय न सहिरिक्ते ।

मूर्च्छागुदभ्रशकपातियोगाः शूलोद्गमयातिथिरिणनिद्रम् ॥ ४४ ॥

गतेषु दोषेषु कफान्वितेषु नाभ्यान्ध्रुत्वे मनसस्य तुष्टौ ।

गतेऽनिले चाप्यनुन्नोभयं सम्यग्विरिक्तमनुजं व्यवम्येत् ॥ ४५ ॥

मन्दान्निमघ्नीममसहिरिक्तं न पाययेत्तद्विषये यशानूम् ।

घोषं तृपात्तं सुविरेचितञ्च तन्त्रीं सुखोष्णं क्षुधपाययेत्तान् ॥ ४६ ॥

हृदिताम्रं क्षौमं मये धूपं मुक्ता प्रयोजयेत् ।

शोणितस्त्रायसंगुदि स्नेहं योजनमहूनेः ॥ ४७ ॥

वक्रियस्य ततो मन्दः स्याद्द्वैदस्तमुपाचरेत् ।

मद्यपो वातपित्ताब्धो योऽल्पपित्तकफाश्रयः ॥ ४८ ॥

पेयादिरहितस्तस्य तर्पणादिक्रमं दिशेत् ।

आस्थाप्य स्नेहितं तोक्ष्वैरेचयेत्तोनरेचितम् ॥ ४९ ॥

पद्मकीशीरनागाह चन्दनानि प्रयोजयेत् ।

अतियोगे विरेकस्य पानलेपनसेचनैः ॥ ५० ॥

सौवीरपिष्टः सहकारकल्को नाभिप्रलेपादतिसारहन्ता ॥ ५१ ॥

कल्कं शाल्मलीमूलस्य मस्तुना सह संपिवेत् ।

गङ्गाप्रवाह तुल्यं हि नाशयेद् ग्रहणीगदम् ॥ ५२ ॥

अञ्जनं चन्दनोशीरं मज्जास्रं चातियोगनुत् ।

लाजचूर्णेः पिवेन्नन्य मतियोगहरं परम् ॥ ५३ ॥

दधारनालधात्री चूर्णयुताः शक्तवः प्रलेपेन ।

सन्तापारुचिच्छणा वमनविरेकातियोगहराः ॥ ५४ ॥

चीणक्षयोरक्षतबालवृद्धादीनोऽथ शोपी भयशोकतप्तः ।

ग्रान्तस्तृपात्तो परिजीर्णभक्तो गर्भिण्यधो गच्छति यस्य चाष्टक् ५५

नवप्रतिश्यायमदात्ययो च नवज्वरीया च नवप्रसूता ।

शल्पाहिंताद्याप्यविरेचनोयाः स्नेहादिभिर्यत्वनुपस्कृताश्च ॥ ५६ ॥

अत्यर्थपित्ताभिपरीतदेहाविरेचयेत्तानपि मन्दवीर्यैः ।

विरेचनैर्यान्ति नरा विनाश मज्जप्रयुक्तैरविरेचनोयाः ॥ ५७ ॥

नचातिसिन्धुकायस्य दद्यात् स्नेहविरेचनम् ।

दोषाः प्रच्याविता भूयो लीयन्ते तेन वर्त्मसु ॥ ५८ ॥

विषाभिघातपिडिका शोफपाण्डुविसर्पिणः ।

नातिसिन्धुविशोद्धाः स्युस्तथा कुट्टप्रमेहिणः ॥ ५९ ॥

विरुद्धस्नेहसाक्षरान्तु भूयः संस्नेह्यरेचयेत् ।

अतः दोषा हृतास्तस्य भवन्ति शयवन्धनाः ॥ ६० ॥

बुद्धेः प्रसादम्वलमिन्द्रियाणां धातुस्थिरत्वं ज्वलनाभिहृदिम् ।
 चिराच्च पाकं वयसः प्रकुर्व्या द्विरेचनं सम्यगुपास्यमानम् ॥ ६१ ॥
 यथौदकानां स्थिरजङ्गमानां जलेऽपनीते ध्रुवमेव नाशः ।
 पित्ते हृतेत्वेवमुपद्रवाणां पित्तात्मकानां ध्रुवमेव नाशः ॥ ६२ ॥
 सव्योषं पिप्पलीमूलं त्रिवृहन्तो सचित्रकम् ।

तच्चूर्णं गुडसमिश्रं भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ॥ ६२ ॥
 एतद्गुडाष्टकं चूर्णं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
 शोथोदावर्त्तगुल्मघ्नं ग्रीहपाण्ड्वामयापहम् ॥ ६४ ॥
 पश्चाद्विरिक्तो वान्तश्च ततश्चापि निरुहणम् ।
 निरुद्धस्त्वनुवायः स्यात् सप्तरात्राद्विरेचितः ॥ ६५ ॥
 कृतः शिराव्यधो यस्य कृतं यस्य च शोधनम् ।
 मासं परिहरेज्जन्तु र्यावन्नो बलपान् भवेत् ॥ ६६ ॥
 क्रोधायासौ मैथुनंश्च दिवास्वप्नोश्चभाषणे ।
 पान यानासने स्थानं चिरञ्चक्रमणं हिमम् ॥ ६७ ॥
 सम्भोगतोययोः सेवा प्रवातातपयोस्तथा ।
 विरुद्धाध्ययनामात्मर भोजनानि विशेषतः ॥ ७८ ॥

इति वङ्गसेने विरेचनाधिकारः समाप्तः ॥ ७८ ॥

अथ वस्तिकर्माधिकारमाह ।

वस्तिर्वाति च पित्ते च कफे रक्ते च गच्छते ।
 समर्गं मूत्रिपाते च यस्तिरेव सदा दितः ॥ १ ॥
 वायोर्वेगं ममुद्धन्तं नान्यावस्तिशृते क्रिया ।
 पवनानिहतोयस्य वेला वेगमिवो दधेः ॥ २ ॥
 वाते वातोत्पन्ने व्याधी वस्तिः शूलः, स च त्रिधा ।

निरुहोऽन्वासनाख्यश्च लिङ्गे चोत्तरसंज्ञितः ॥ ३ ॥

कपायचौरतो वस्ति निरुहः सनिगद्यते ।

यः स्नेहैर्दीयते सस्या दनुवासनसंज्ञकः ॥ ४ ॥

वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिति स्मृतः ।

निरुहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ॥ ५ ॥

निरुहो दोषहरणा द्रोहणादथवातनोः ।

आस्थापये द्वयो देहं यस्मादास्थापनः स्मृतः ॥ ६ ॥

निशानुवासनात् स्नेहोऽन्वासनयानुवासनः ॥ ७ ॥

विरिक्तसम्पूर्णहिताशनस्य आस्थाप्यशय्यामनुदीयते यत् ।

तदुच्यते वाप्यनुवासनञ्च तेनानुवासश्च बभूव नाम ॥ ८ ॥

उत्कृष्टावयवे दाना, द्वस्तिरुत्तरसंज्ञितः ।

निरुहमात्राप्रथमे प्रकुञ्चो वत्सरे परम् ॥ ९ ॥

प्रकुञ्चद्विः प्रत्यब्दं यावत् षट्प्रसृतास्तवः ।

प्रसृतं बर्हयेद्दूर्ध्वं द्वादशाष्टादशावधिः ॥ १० ॥

आसप्ततेरिदं मानं दशैव प्रसृतं परम् ।

यथायथं निरुहस्य पादोमात्रानुवासने ॥ ११ ॥

सुवर्णरूप्यव्रतुताम्बरोति कांशायसास्थिद्रुमवैणुदेतैः ।

नलैर्विपाणैर्मणिभिश्च तैस्तेः कार्याणि नेत्राणि सुकर्णिकानि ॥ १२ ॥

षट्द्वादशाष्टांगुलसम्मितानि षड्विंशतिद्वादशवर्षजानाम् ।

स्युर्मुङ्गकर्कधुसतीनवाह्नि छिद्राणि वर्त्या पिहितानि चापि ॥ १३ ॥

यथा ययोऽगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां मूलाग्रयोः स्युः परिष्ठाहवन्ति ।

ऋजूणि गोपुच्छसमाकृतानि श्लक्ष्णानि च स्युर्गुटिकासुखानि ॥ १४ ॥

स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्यभागे मूलान्यिते वस्तिनिबन्धने द्वे ।

जारह्वो माहिपहारिणौ वा स्याच्छीकरो वस्तिरजस्य यापि ॥ १५ ॥

दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धः कपायरक्तः समृद्धस्तु सिद्धः ।

नृणां वयोवीक्ष्य यथानुरूपं नेत्रेषु योज्यस्तु सुवदस्तुतः ॥ १६ ॥

नेत्राभावे हितानाडी नलवंशास्थिसम्भवा ।

वस्त्याभावे हितं चर्मं वस्त्रं वापि हितं घनम् ॥ १७ ॥

द्वादशांगुलकं नेत्रं कलाय यव रंभ्रकम् ।

अंगुले कर्णिकायुक्तं सुखे हृत्तं समं मृदुः ॥ १८ ॥

इति नेत्रपरिमाणविधिः ।

विरेचनाद्वते सप्त रात्रे जातबलाय वै ।

कृताहारायसायाङ्गे वस्तिर्दयोऽनुवासनः ॥ १९ ॥

उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः ।

तदर्थं न च हीनस्य त्रिधामात्रानुवासने ॥ २० ॥

प्रसृतस्य पलार्धेण पलस्य पिचुना तथा ।

तदर्थस्यार्धकर्पेण हृदिः कार्या यथा क्रमम् ॥ २१ ॥

पट्पलं त्रिपलं सार्धं म्यलं पूर्णं यथा भवेत् ॥ २२ ॥

देवदारुवचारास्त्रा शताब्दाकुष्ठसैन्धवैः ।

अथचूर्णम्रदातव्यं पट्चतुर्द्वयमापकैः ॥ २३ ॥

यद्वा सैन्धवचूर्णेन शताङ्गे न च संयुतम् ।

चूर्णं मायं पले स्नेहे सिन्धुजम्भशताद्ययोः ॥ २४ ॥

क्षीरं न चेद्देतरणं प्रदाय द्वाद्द्वेत्त्राद्दे वाप्यनुवासनीयः ॥ २५ ॥

छत्सृष्टानिलविण्मूत्रे नरे वस्तिं निधापयेत् ।

अन्यथा निहितो वस्तिर्नैवान्तः सम्प्रपद्यते ॥ २६ ॥

प्रसुप्तं वामपार्श्वेण कृताश्वं मनुवासायेत् ॥ २७ ॥

वामाश्रया हि ग्रहणीगुदश्च तत्पार्श्वमभ्यस्य गुदोपसृज्यः ।

स्तीयन्त एवम्वलयय तन्मात्रमव्ये च पार्श्वं कृतियस्तिंदानम् ॥ २८ ॥

प्रसारितैकजङ्घेन कार्याऽन्योपरिकुक्षिता ।

वस्तिं सव्ये करे कृत्वा दक्षिणे नावपोडयेत् ॥ २९ ॥

तयाम्यनेत्रं प्रणयेत् स्निग्धे खिन्नमुत्तं गुदे ।

उच्छास्य वस्त्रेर्वदनं वदं हस्तमकम्पयन् ॥ ३० ॥

पृष्ठपंशम्रतिततो नातिद्रुतविलासितम् ।

नातिवेगं नातिमन्दं सन्नदेव प्रपीडयेत् ॥ ३१ ॥

सावगेपमकुर्वीत वायुः शेषे हि तिष्ठति ।

निरुहदानेपि विधिरयमेव समोरितः ॥ ३२ ॥

शोते बभन्ते च दिवानुवास्यो रात्रौ शरद्भोमधनागमेपु ॥ ३३ ॥

स्नेहवस्त्रिर्विधेयस्तु नाविशुद्धस्य देहिनाः ।

स्नेहवीर्य्यन्तथा दत्ते देहं नानुविसर्पति ॥ ३४ ॥

अशुद्धमपि यातेन केवलेनातिपीडितम् ।

अहोरात्रस्य कालेषु सर्वेष्वेवानुवासयेत् ॥ ३५ ॥

ततः प्रणिहिते स्नेहे उत्तानो वाक्गतं भवेत् ।

प्रमारितैः सर्वगात्रैः स्तुधा वीर्यं प्रसूर्यति ॥ ३६ ॥

आकुञ्चयेच्छनैस्त्रीस्त्रीव्यक्त्यिवाहु ततः परम् ।

ताडयेत्तलयोरेनं व्रीह्योन्वारान् शनैः शनैः ॥ ३७ ॥

स्फिजोद्यैर्न ततः योगीं शय्यां तीक्ष्णतृचिपेदुधः ।

एवं प्रणिहिते बभूवी मन्दायासोऽथ मन्दवाक् ॥ ३८ ॥

स्वास्तीर्णं शयने काम भासीताचारिके ततः ।

कूर्परे ज्ञानुनी चैव कुर्याच्छीणि गतागतम् ॥ ३९ ॥

पाणिपादतले चाम्य हन्तव्ये मुष्टिना तटा ।

विक्रमंचालनं चापि कुर्याद्द्वारद्वयं ततः ॥ ४० ॥

भवेत् सुप्तोऽप्यथ तथा निरेति महसा सुखम् ।

यथोचितात्पादहीनं भोजयित्वाद्युवासयेत् ॥

नित्यमेकाग्रतरे वापि दोषकायान्वपेक्षया ॥ ४१ ॥

स्नेहेन पार्श्वग्रन्थिनिपिण्डिकाद्या ये चापि गात्रावयवा रुगात्ताः ।

तायावमृद्धीतसुखं ततश्च निद्रासुपासीतकृतौपधान ॥ ४२ ॥

अनुवासिताय दातव्यमितरेऽङ्गि सुखोदकम् ।

धान्यशूण्ठीकपाय वा स्नेहव्यापत्तिनाशनम् ॥ ४३ ॥

पित्तोत्तरे कटुष्णाश्च स्तावन्मात्रं पिवेदनु ।

स्नेहाजीर्णं शमयति श्लेष्माणं तद्विनत्ति च ॥ ४४ ॥

पवनस्यानुकूलत्वं कुर्यादुष्णोदकं नृणाम् ।

क्वाथार्द्धमात्रया प्रातः धान्यशूण्ठीजलं पिवेत् ॥ ४५ ॥

यस्यानुवासनो दत्तः सकृदत्र श्रमं ब्रजेत ।

अत्युष्णो वातिशीतो वा वायुना वा प्रपीडितः ॥ ४६ ॥

अमात्रोधिकमात्रो वा गुरुत्वाद्बहुभेजः ।

तस्यान्योऽल्पतरो देयो न हि सिद्ध्यति तिष्ठति ॥ ४७ ॥

वीन्यस्य यामानऽनुवर्त्तते च स्नेहो नरः स्यात्सविशुद्धदेहः ॥ ४८ ॥

अशुद्धमपि वातेन केवलेनातिपीडितम् ।

स्नेहः शूण्ठादौर्मतिमान्निरुहैः समुपाचरेत् ॥ ४९ ॥

रूक्षस्य बहुवातस्य ह्यो चीन्वाप्यनुवासनान् ।

दत्त्वा स्निग्धतनुं ज्ञात्वा ततः पथ्यान्निरुहयेत् ॥ ५० ॥

न चाभुक्तवतः स्नेहः प्रणिप्तेयः कथञ्चन ।

सूक्ष्मत्वात् शून्यकोष्ठस्य क्षिप्रमूर्ध्वमधो नयेत् ॥ ५१ ॥

एकं तथा वीन् कफजे विकारि पित्तात्मके पञ्च तु सप्त वापि ।

वाते तु त्रैकादशधा पुनर्वा वस्तीनऽयुग्मान् कुशलो विदध्यात् ॥ ५२ ॥

सदानुवासयेद्भुक्तं सार्द्धपाणिं नरं भिषक् ।

ज्वरं विदग्धभुक्तस्य कुर्यात् स्नेहं प्रयोजितः ॥ ५३ ॥

न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वानुवासयेत् ।

मन्दं मूर्च्छाञ्च जनयेद्द्विधाद्येह प्रयोजितः ॥ ५४ ॥

स्नेहवर्द्धिं निरुहं वा नैकमेवाभ्यसेच्चिरम् ।

स्नेहात्पित्तकफोत्क्लेशौ निरुह्यात्पवनाद्भयम् ॥ ५५ ॥

तस्मान्निरुद्धोऽनुवास्यो निरुद्धश्चानुवासितः ।

नैवं पित्तकफोत्क्लेशौ स्यातां न पवनाद्भयम् ॥ ५६ ॥

निरुद्धशोधितैर्मार्गैः स्नेहः सम्यग्विसर्प्यति ।

अपेतसर्वदोषासु नाङ्गोऽपि बहिर्जलम् ॥ ५७ ॥

अहोरात्रादपि स्नेहः प्रत्यागच्छन्न दुष्यति ।

कुर्याद्वस्तिगुणान्यापि जीर्णस्वल्पगुणो भवेत् ॥ ५८ ॥

यस्य नोपद्रवं कुर्यात् स्नेहवस्तिरनिःसृतः ।

सर्वोऽल्पो बाह्यतो रोच्यादुपेक्ष्यः संविजानता ॥ ५९ ॥

अनायान्तमहोरात्रात् स्नेहं सौपद्रवं हरित् ।

स्नेहवस्तावन्नायाते नान्यः स्नेहः प्रशस्यते ॥ ६० ॥

कुट्टकनुक्कल्कन्तु पाययेत्तक्रसंयुतम् ।

श्रीण्णरात्तैश्चण्णस्तरत्वाच्च वस्तिं तस्यानुलोमयेत् ॥

गोमूत्रेण त्रिहृत्पथ्या कल्कं वातानुलोममम् ॥ ६१ ॥

अशुद्धस्य मलोन्मिथः स्नेहो नैति यदा पुनः ।

तदाङ्गसदनाधाने शूलं श्वासश्च जायते ॥ ६२ ॥

पक्वाशय गुरुत्वञ्च तदा दद्यान्निरुहणम् ।

तीक्ष्ण तीक्ष्णोपधैरेव मिहं चाप्यनुज्ञासनम् ॥ ६३ ॥

भयोन्माददृषाशीषा ऽजीर्णरुचिप्रमेहिणः ।

मूर्च्छाकुष्ठोदरस्थील्य कासश्वासक्षयातुराः ॥ ६४ ॥

शोषभ्रममदच्छर्दि युताः वस्यसहाऽबलाः ।

नास्त्राभ्या नानुवास्याश्च वातरोगादृते नराः ॥ ६५ ॥

उदरो च प्रमेही च कुष्ठोऽस्थूलश्च मानयः ।

अवश्यं स्थापनीयाश्च नानुवास्याः कथञ्चनः ॥ ६६ ॥

अनेन विधिना सप्त तथाष्टौ वा नवैव वा ।

विधेया वस्तयो नृणामन्तरान्सनिर्गृहणम् ॥ ६७ ॥

विष्टब्धानिलविरमूत्रः स्नेहहीनोऽनुवासनः ।

दाहकृमपिपासार्त्तिकरथाप्यनुवासनः ॥ ६८ ॥

सानिलः सपुरोपश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य वा ।

ओषचोषी विना शीघ्रं ससम्यगनुवासितः ॥ ६९ ॥

शुद्धस्य दूरानुगते स्नेहे स्नेहस्य दर्शनम् ।

मुखे सर्वेन्द्रियाणां वा प्युपलेपोऽवसादनम् ॥ ७० ॥

स्नेहगन्धि मुखञ्चापि कासश्वासावरोचकाः ।

अतिपीडितवत्तत्र विधिरास्थापनन्तथा ॥ ७१ ॥

गले निष्पोद्य तद्वाश कम्पयेत्तं प्रयत्नतः ।

कार्यं नश्यं सुतीक्ष्णञ्च तीक्ष्णं चापि विरेचनम् ॥ ७२ ॥

उत्कृष्टो ग्लानिरङ्गस्य सादः पर्वव्यथारुचिः ।

निरेति स्नेहसंमिश्रं पुरोपं बहुशो मृदु ॥ ७३ ॥

इषत्स्थान्य भवेत्कुत्रि गुदवङ्गवस्त्रिपु ।

स्निग्धस्यैतानि तिक्तानि जानीयादनुवासने ॥ ७४ ॥

जोर्णात्रमथ सायाङ्गे स्नेहप्रत्यागते पुनः ।

लघुत्वं भोजयेत्कामं दोषाग्निस्तु नरो यदि ॥ ७५ ॥

दत्तस्तु प्रथमो वस्त्रिः स्नेहचेदस्त्रिवङ्गणी ।

सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु कोटस्यस्रनिलं जयेत् ॥ ७६ ॥

बलवर्णां च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः ।

रम चतुर्थो रक्तान्तु पञ्चमः स्नेहयेदपि ॥ ७७ ॥

षट्स्तु स्नेहयेद्गामं भेदः स्निग्धति सप्तमः ।

अष्टमो नवमथास्त्रि तथा मज्जानमेव च ॥ ७८ ॥

एव शृङ्गगतान् दोषान् द्विगुणः माधु माधयेत् ।

अष्टादशाष्टादशकान् यो वस्त्रीनां निषेवते ॥

यथोक्तेन विधानेन परिहारक्रमेण तु ॥ ७८ ॥

सकुञ्जरबलोऽश्वस्य जवतुल्योऽमरप्रभः ।

वीतपाप्माश्रुतधरः सहस्रायुर्नरो भवेत् ॥ ८० ॥

आपादतलमूर्ध्वस्थान् दीपान् पक्वाशयस्थितः ।

वीर्येण वस्तिरादत्ते वृषादित्यो रसानिव ॥ ८१ ॥

पक्वाशयावस्तिवीर्यं स्वदेहमनुसर्त्यति ।

वृक्षमूले निपिक्ताना मपाम्पूर इव द्रुमम् ॥ ८२ ॥

स चापि वस्तिः सहसा केवलः समलोऽपि वा ।

प्रत्येति वीर्यन्वनिर्ले रपानाद्यैः प्रणीयते ॥ ८३ ॥

मूले निपिक्तो हि यथा द्रुमः स्यान्निलच्छदः कोमलपङ्कवश्च ।

काले वृक्षत्पुष्पफलानुबन्धस्तथा नरः स्यादनुवासनेन ॥ ८४ ॥

मुग्धाश्च ये संकुचिताश्च केचित् ये पङ्गवो यैपि च गात्रभङ्गाः ।

येषाञ्च शाखासु चरन्ति बाताः शस्तो विशेषेण हि तेषु वस्तिः ॥ ८५ ॥

आग्लापिते प्राग्रथिते पुरोपे शूले च भक्तानभिनन्दने च ।

एवप्रकाराश्च भवन्ति कुक्षौ य आसयास्तेषु च वस्तिरिष्टः ॥ ८६ ॥

याश्च स्त्रियो वातकृतोपसर्गा गर्भत्र विदन्ति नृभिः समेताः ।

क्षीणेन्द्रिया ये च नराः कृशाश्च वस्तिः प्रशस्तः परमो हि तेषु ॥ ८७ ॥

उष्णाभिभूतेषु तथातिशीतान् शीताभिभूतेषु तथा सुखीष्णान् ।

तत्प्रत्यनोकेऽथ समुक्तयुक्त्या सर्वत्र वस्तीन् प्रविभज्य दद्यात् ॥ ८८ ॥

न हं हणीयान्विदधीतवस्तीन् विशोधनीयेषु गदेषु वैद्यः ।

कुष्ठप्रमेहादिषु मेद्वेगेषु नरेषु ये चापि विशोधनीयाः ॥ ८९ ॥

क्षीणक्षतानामविशोधितानां न शोषिणां नो कृशदुर्बलानाम् ।

न मूर्खितानां विदधीतवस्ति येषाञ्च दीपाः पुनरूर्ध्वगाः स्युः ॥ ९० ॥

शाखागतान् कोष्ठगतांश्च रोगान्धमेदि सर्वावयवाहृगांश्च ।

ये सन्ति दीपा न तु कश्चिद्वन्धो वायोंः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥ ९१ ॥

विषमूत्रपित्तादिमलाशयानां बातापहः सौख्यकरश्च यस्मात् ।
तस्मान्न वातैकसमाश्रयाणां वस्तिं विना भेषजमन्यदस्ति ॥
तस्मान्चिकित्सार्थमिति ब्रुवन्ति सर्वां चिकित्सामपि वस्तिमेवे ॥८॥

गुडूच्ये रण्डपूतीक भार्ग्वीहृषक रौहिपम् ।

शतावरीं सहचरं काकनासा पलोन्मितान् ॥ ८३ ॥

यवमापातसीकोल कुलित्यान् प्रसृतोन्मितान् ।

चतुर्दोषेऽभसः पक्ता द्रोणशेषेण तेन च ॥ ८४ ॥

पचेत्तैलाढकं पेथ्यै जीबनीयैः पलोन्मितैः ।

अनुवासनमेतदि सर्ववार्तविकारनुत् ॥ ८५ ॥

इति गुडूचीतलम् ।

जीबन्तीं मदनं मेदां व्यावर्णीं मधुकं वलाम् ।

जीवकर्यभकी कृष्णां काकनासां शतावरीम् ॥ ८६ ॥

स्वगुप्तां क्षीरकाकोलीं कर्कटाख्यां शंटीं वचाम् ।

पिष्टातैलं घृतं क्षीरे साधयेत्तु चतुर्गुणे ॥ ८७ ॥

हृंहणं बातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्धनम् ।

मूत्ररेतो रजो दोषान् हरेत्तदनुवासनात् ॥ ८८ ॥

इति जीवन्त्याद्यं यमकम् । इत्यनुवासनवस्तिविधिः ।

—•—

अथ निरुहविधिमाह ।

निरुहयस्तिर्वहुधा भिद्यते कारणास्तरैः ।

तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः ॥ ८९ ॥

यातव्याघावुदावर्त्तं वातासृग्विषमश्वरे ।

मूत्रकृच्छ्रोदरानाह मूत्रदोषाश्मरीषु च ॥ ९० ॥

• हृद्यसृग्दरमन्दाग्नि प्रमेहेषु निरुहणम् ।

शूलैऽम्बुपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवहुधः ॥ १०१ ॥

मधुर्नहनकल्काख्याः कषाया वा मताः क्रमात् ।

त्रोणि षड्द्वादशत्रीणि पलान्यनिलरोगिषु ॥ १०२ ॥

पित्ते चत्वारि चत्वारि द्वे द्वे चैव चतुष्टयम् ।

षट्त्रोणि द्वादशत्रीणि कफे चापि निरूहणम् ॥ १०३ ॥

नात्युच्छ्रितं नाप्यतिनीचपाटंसपादपीठं शयनं प्रशस्तम् ।

प्रधानमृदास्तरणोपपन्नं प्राक् शीर्षकं शुक्लपटोत्तरीयम् ॥ १०४ ॥

प्रक्षिप्यवस्तौ मथितं खजेन सुबद्धपुच्छानननिर्वलीकम् ।

अंगुष्ठमध्येन सुखं पिधाय गृह्णीतवैद्यो निजसव्यहस्ते ॥ १०५ ॥

तैलाक्तगात्रं कृतमूत्रविट्कं नातिक्षुधार्त्तं शयने मनुष्यम् ।

समे सुदेशे नतशीर्षकञ्च नात्युच्छ्रितोनास्तरणोपपन्ने ॥ १०६ ॥

सव्येन पार्श्वेन सुखं शयानं कृत्वर्जुदेहञ्च भुजोपपन्नम् ।

निष्कुच्यसव्येतरमस्य सक्थिवामं प्रसार्य प्रणयेच्च वस्तिम् ॥ १०७ ॥

स्निग्धे गुदे नेत्रचतुर्थभागं स्निग्धैर्जनैरक्षितं पृष्टयंशम् ।

अकम्पनावेपनलाववादीन् पार्श्वोर्गुणोच्चापि हि दर्शयद्भिः ॥ १०८ ॥

प्रपोष्यचैकग्रहणेन दत्ते नेत्रं शनैरेव ततोपकर्षेत् ।

तिथ्येक् प्रणीते न गता च धारा गुदं प्रणश्येच्चलिते च नेत्रे ॥ १०९ ॥

दत्तः शनैर्नाशयमेति वस्तिः कण्ठं प्रधावत्यतिपीडितस्तु ।

शीतस्तु विष्टभ्य करोति दाहं मूर्च्छाञ्च तापन्त्वतिमात्रमुष्णः ॥ ११० ॥

स्निग्धोऽग्निनाशं पवनं विरूक्षस्तथात्पमात्रोऽलवणस्वयोगम् ।

करोति मात्राभ्यधिकोऽतिरोगं क्षामन्तुसान्द्रः सुचिरेण चैति ॥ १११ ॥

दाहातिसारौ लवणोऽतिकुर्यात्तस्मात् सुयुक्त्या सममेव दद्यात् ।

विड्वातवेगञ्च विधार्थ्य दत्ते निःकृष्यमुक्ते प्रणयेच्च शेषम् ॥ ११२ ॥

अनुवासितमभ्यक्तं स्निग्धं शनैर्निरूहयेत् ।

अनुवास्य स्निग्धतनुं दृतीयेऽङ्गि निरूहयेत् ॥

मध्याह्ने किञ्चिदावृत्ते निरूहन्तु समाचरेत् ॥ ११३ ॥

सुव्यं प्रसारयेत् शक्यं दक्षिणञ्चोपकुञ्चयेत् ।

मध्याह्ने सुमना जीर्णं निरन्नो वाग्यतो नरः ॥ ११४ ॥

वस्तिं सव्ये करं कृत्वा दक्षिणेनावपोऽङ्गयेत् ।

एकेनैवावपोङ्गेन न द्रुतं न विलम्बितम् ॥ ११५ ॥

—०—

ततो नैवमपनीयत्रिंशन्मात्राः षोडनकालादवैद्योत्तिष्ठेत्यातुरं
ब्रूयात् । आतुरमुपवेशयेदुक्तटकं वस्तीरागमनायेति निरूह प्रत्या-
ममनकास्तो मुहूर्त्ता भवति ।

—०—

यावत्प्रत्येति हस्तायं दक्षिणं जानुमण्डलम् ।

निमेषोन्मेषकालञ्च सामात्रापरिकीर्त्तिता ॥ ११६ ॥

अनेन विधिना दद्याद् वस्तिं वस्तिविशारदः ।

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथार्हतः ॥ ११७ ॥

सम्यग्ग्निरूढलिङ्गे तु प्राप्ते वस्तिं निवारयेत् ।

अपि हीनं क्रमं कुर्याद् वैव कुर्यादतिक्रमम् ।

विशेषात् सुकुमाराणां हीन एव क्रमो मतः ॥ ११८ ॥

मृदुर्वस्तिः प्रयोक्तव्यो विशेषाद्बालहृदयोः ।

तयोस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु ध्रुवं हन्याद्वलीजसौ ॥ ११९ ॥

सस्नेह एकः पवने निरूहौ द्वौ स्वादुशीतौ पयसा च पित्ते ।

त्रयः समूचाः कटुकोष्णरूचाः कफे निरूहा न परे विधेयाः ॥ १२० ॥

एकोपकर्षत्यनिलः स्वमार्गात्पित्तं द्वितीयस्तु कफं तृतीयः ।

प्रत्यागते कोष्णजलावसिक्तः शाल्यदमध्यात्तनुनारसेन ॥ १२१ ॥

जीर्णं च मायं लघु चाल्पमात्रं भुक्तानुवायः परिहृष्टनार्यम् ।

निरूहणादीगमनेन तैलेनास्त्रानिलत्रौपधमाधितेन ॥ १२२ ॥

दत्वा स्फिजी पाणितलेन तालं स्नेहय्य शीघ्रागमनायवैद्यः ॥ १२३ ॥

अल्पाल्पवेगोविद्धात ह्रीनो ह्रीनगिरुद्धणः ।

मूच्छाशूनकफप्रांयो महावेगोऽतिगद्गितः ॥ १२४ ॥

यस्य मूत्रं पुरोपश्च कफोमांयुष गच्छति ।

क्रमेण लघुता चेव सुनिरुद्धः सज्जनवः ॥ १२५ ॥

सुनिरुद्धं ततो जन्तुं स्नात भुक्तरसोदगम् ।

यद्योक्तेन विधानेन योजयेत् स्नेहवस्तिना ॥ १२६ ॥

तदहस्तस्य प्वना द्वयं बलवदिष्यते ।

रसोदनोऽनुशस्तश्च तदहस्यानुर्वागमनम् ॥ १२७ ॥

सम्यग्निरुद्धं तैलाक्त जलेनोष्णेन सेवितम् ।

अल्पस्नेहं जाडूलेन रसेनार्चन्तु भोजितम् ॥ १२८ ॥

योजयेदल्पमात्रेण तत्क्षणं स्नेहवस्तिना ।

पद्यादग्निबल ज्ञात्वा पवनस्य विचेष्टितम् ॥

अन्नौपस्तभिते कोष्ठे स्नेहवस्तिर्विधीयते ॥ १२९ ॥

द्वारहे त्रारहे चाङ्गारथ पञ्चमे च दद्यान्निरुद्धावनुर्वागमनञ्च ॥ १३० ॥

विविक्तता मनसुष्टिः स्निग्धता व्याधिनियहः ।

आस्थापने स्नेहवस्ती सम्यग्दत्ते तु लक्षणम् ॥ १३१ ॥

अनायान्त सुहृत्तान्त निरुद्धं शोधनेऽरेत् ।

निरुद्धैरेव मतिमान् चारमूत्राग्निसयुतः ॥ १३२ ॥

विगुणानिलविष्टव्यं चिरं तिष्ठन्निरुद्धणम् ।

शूलारतिवृणारोपान्तरणव्युपायते ॥ १३३ ॥

न तु भुक्त्वते देय मास्वापन्नमिति स्थितिः ।

भ्रामं तदुदरेऽनुक्तं कर्दिं वा जनयेद् मृगम् ॥ १३४ ॥

कोपयेत्सर्वदोषान्वा तस्माद्दद्यादभोजिने ॥ १३५ ॥

भावस्थिकं क्रमं चापि मत्वा कार्यं निरुद्धणम् ।

मलेऽपक्षटे दोषाणां बलवत्त्वं न विद्यते ॥ १३६ ॥

अतिप्रपीडितो बस्तिः प्रक्रम्यामाशयं गतः ।

वार्तरितो नासिकाभ्यां मुखतो वा प्रपद्यते ॥ १३७ ॥

छर्दिहृत्तासमूर्च्छादीन् प्रकुर्याद्वाहमेव च ।

तत्र तूष्णं गलापीडं प्रकुर्यादवधूननम् ॥ १३८ ॥

शिरःकायविरैकौ च तीक्ष्णैः सेकांश्च शीतलान् ।

—०—

अथ द्वादशप्रसृतानाह ।

दत्त्वादौ सैन्यवस्याक्षं मधुनः प्रसृतद्वयम् ।

विनिर्मथ्य ततो दद्यात् स्नेहस्य प्रसृतचयम् ॥ १३९ ॥

एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतं चिपेत् ।

समूर्च्छिते कपायन्तु चतुःप्रसृतसंमितम् ॥ १४० ॥

चितरेक्ष तथा बाप भन्तेहिप्रसृतोन्मितम् ।

एव प्रकल्पितो बस्तिर्द्वादशप्रसृतो भवेत् ॥ १४१ ॥

धारयेत्प्रापधं पाणिं न तिष्ठत्यवलिप्य च ।

न करोति च सोमन्तं सुनिरुद्धः प्रयोजितः ॥ १४२ ॥

इति निरुद्धविधिः ।

वातघ्नौषधनिःक्ताद्याः सैन्यवतिष्ठता युताः ।

मास्त्राः सुखोष्णा देयाः स्युर्वस्तयः कुपितेऽनिले ॥ १४३ ॥

न्यग्रोधादिगणक्तायः काक्कोन्त्यादि समायुतः ।

विधेयावस्तयः पित्ते मक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ १४४ ॥

न्यग्रोधादिगणक्तायाः पिप्पल्यादिसमायुताः ।

मक्षौद्रमूत्रा देयाः स्युर्यस्तयः कुपिते कफे ॥ १४५ ॥

शर्कराक्षौद्रमक्षौद्र घृतयुताः सुशीतलाः ।

क्षीरिहचकपायाद्याः वस्तयः शोणिते हिताः ॥ १४६ ॥

प्रियवादिगणकाया अम्बटादिसमायुताः ।

सचीद्राः सट्टतां वार्षि वस्तयो ग्राहिणी हिताः ॥ १४७ ॥

बिडार्यैरावतीशेलु शाल्मलीधन्वनांकुराः ।

क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलवस्तयः ॥ १४८ ॥

बाराहमाहिपोरभ्र वैडालैण्यकोकुटम् ।

सदास्त्रम्सृगाजम्बा देयं पिच्छिलवस्तिषु ॥ १४९ ॥

मात्रा पिच्छिलवस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मता ॥ १५० ॥

इति पिच्छिलवस्तयः ।

दद्यानुत्कृष्टं शनं पूर्वं मध्यं दोषहरं पुनः ।

पथात्समनीयञ्च वस्तिं दद्याद्विचक्षणः ॥ १५१ ॥

एरण्डमूलं मधुकं पिप्पलीसैन्धवं वचा ।

हृषुपाफलकल्कश्च वस्तिरुत्कृष्टशतः स्मृतः ॥ १५२ ॥

इत्युत्कृष्टशतवस्तिः ।

शताह्वामधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च ।

सकाञ्चिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ १५३ ॥

इति दोषहरवस्तिः ।

प्रियंगुर्मधुकं मुस्तं तथैव च रसाञ्जनम् ।

सक्षीरः शस्यते वस्तिर्दापाणां शमनः स्मृतः ॥ १५४ ॥

शोधनद्रव्यनिःकायास्तत्कल्कैः स्नेहसैन्धवैः ।

पुत्था खजेन मथिता वस्तयः शोधनाः स्मृताः ॥ १५५ ॥

इति शोधनवस्तिः ।

त्रिफलाकाथगोमूत्रैः क्षौद्रचारसमायुताः ।

ऊपकादिप्रतीबापावस्तयो लेखनाः स्मृताः ॥ १५६ ॥

इति लेखनवस्तिः ।

हं हणद्रव्यनिःकायाः कल्कैर्महुरक्षेर्युताः ।

सर्पिर्मांसरसोपेताः वस्तयो हं हणाः स्मृताः ॥ १५७ ॥

इति हं हणवस्तिः ।

शताह्नी शिष्यसिद्धार्यं बक्राक्रौष्टवचाघनैः ।

राठेन्द्रयवसिधूलैः पिष्टैर्वस्तिः प्रकल्पितः ॥ १५८ ॥

दशमूलोरसचौद्रतैलकाञ्चिकयोगतः ।

शोधनो दीपनाशाय पुष्टिवर्णाग्निवर्धनः ॥ १५९ ॥

चत्वारो मर्दनाः पिष्टाः चोद्रतैलचतुष्पलम् ।

कुडवं मांसनिर्यासा इत्वार्षं रुचकाद्भवेत् ॥ १६० ॥

बलवर्णकरो वस्तिर्ह्यथो भासवलप्रदः ।

वातशोपितदेहानां हं हणः स्वर्यकारकः ॥ १६१ ॥

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्त्रासप्तच्छदान्धसः ।

चत्वारः प्रसृता ह्येको घृतात्सर्पपक्वकतः ॥

निरुद्धः पञ्चतिक्तोऽयं मेहाभ्यन्दनाशनः ॥ १६२ ॥

विडङ्गविफलादन्ती सुस्त्रास्तुपर्णिकास्तथा ।

कपायाः प्रसृताः पञ्चतैलादिको विमथ्यतान् ।

विडङ्गादिकपायेण निरुद्धः कफनाशनः ॥ १६३ ॥

इति विडङ्गादिनिरुद्धः ।

मधुतैलात् प्रकुञ्चाः पट् पट् चैरण्डकपायतः ।

युक्तः सैन्धवकर्षेण गताह्लादं गलेन च ॥ १६४ ॥

यण्यो हृष्यो निरुद्धोऽयं मलहृन्मधुतैलिकः ।

गुग्गुलोदापत्तहृद्गर्शो मेहहन्ता निरत्ययः ॥ १६५ ॥

परशङ्कायतुष्पांगं मधुतैलपन्नाटकम् ।

यतुष्पापन्नादे सैन्धवाच्चेण संयुतः ॥ १६६ ॥

बलवर्णकरो वस्त्रिष्टो दोषनहृत् ।

मिदो गुल्मकमिह गूयोदावर्त्तनाशनः ॥ १६० ॥

मधुतैले समे स्यातां काथश्चैरण्डमूलजः ।

पलाईं शतपुष्पायां स्ततोर्द्धं सैन्धवस्य च ॥ १६८ ॥

पलेनैकेन संयुक्तः खजेन तु विलोडितः ।

देयः सुखोष्णो भिषजा मधुतैलिकसंज्ञकः ॥ १६८ ॥

तदेव मधुतैलञ्च काथः सरससैन्धवः ।

पिण्लीफलसंयुक्तो वस्त्रिर्युक्तरथः स्मृतः ॥ १७० ॥

चतुष्पल तु मधुनः तैलस्यापि चतुष्पलम् ।

एरण्डमूलकाथस्य तथा देय पलायकम् ॥ १७१ ॥

पलाईं शतपुष्पायां स्ततोर्द्धं सैन्धवस्य च ।

मदनस्य फलञ्चैक योन्ध युक्त्वा विमर्दयेत् ॥ १७२ ॥

रसक्षीरास्त्रमूत्राणां मार्ज्यञ्च पलमात्रकम् ।

खजेनालोडितः कोष्णो मधुतैलिकसंज्ञितः ॥ १७३ ॥

पादहीनोऽपि देयः स्याद्वस्त्रिर्लेखनहृत् ।

दीपनो गाढविट्कक्षः क्षमीणां नाशनः परः ॥ १७४ ॥

पाचनो निष्परिहारः सुखदो निरुपद्रवः ।

पुटकैकं प्रदानेन सिद्धोऽयं वस्त्रिरुत्तमः ॥ १७५ ॥

इति मधुतैलिकनिरुहवस्तयः

क्षौद्रौज्यक्षीरतैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत् ।

ह्रस्वपासैन्धवाक्षांशो वस्त्रिः स्याद् यापनः परः ॥ १७६ ॥

इति यापनवस्त्रिः

गोमूत्रस्य पलान्यष्टौ गुडाऽत्यम्बकयोः पलम् ।

शताह्वसैन्धवे स्यात्ता सचमात्रे प्रमापतः ॥ १७७ ॥

देय आमेऽनिलै रुचस्तद्वतैलंपलान्वित. ।

उदावर्त्तं वातकोष्ठे सिद्धवस्तिरिति स्मृतः ॥ १७८ ॥

इति सिद्धवस्तिः ।

सैन्धवाक्षं समादाय शताह्वाचसमन्वितम् ।

गोमूत्रस्य पलान्यष्टावन्त्रिकायाः पलद्वयम् ॥ १७९ ॥

गुडस्य तु पले द्वे तु सर्वमांलोद्यं यञ्जत. ।

बस्त्रपूत सुखोष्णञ्च वस्तिं दद्याद्विचक्षण. ॥ १८० ॥

शूलं विट्सगमानाहं मूत्रकृच्छ्रञ्च दारुणम् ।

क्रिम्युदावर्त्तवातादीन् सद्यो हन्यान्नयोजितः ॥ १८१ ॥

इति चारवस्तिः ।

अष्टौ पलानि मूत्रस्य रुबुक्षायाश्चतुष्पलम् ।

पलद्वयं तु तैलस्य माक्षिकं प्रसृतं तथा ॥ १८२ ॥

रसकक्षीरसोवीरं तिक्तिकोक्कम्लम्पलम् ।

गुडादेकं पलं दद्यान्मदनेस्य पलं तथा ॥ १८३ ॥

शतपुष्पावचाराक्षा कुट्टदारुघनं निशा ।

सिंहार्थकं विल्वपेणो यवानोसैन्धव वला ॥ १८४ ॥

कर्षान्वितं क्षणपिष्टं मृजेनागु प्रमथ्य च ।

युञ्ज्यान्निरुद्धवस्त्राञ्चो निरप्रायं सहहुणम् ॥ १८५ ॥

मूत्रवस्तिरिति म्यात सर्वव्याधिहरः परः ।

इति मूत्रवस्तिः

सिन्धुद्रव्यं कर्षमन्त्रिकायाः पलं गुडार्धपलम् ।

सुरभीपयमं कुडयं सर्वैरेतैः क्षतो यस्ति ॥ १८६ ॥

ईपतैलयुतोयं सुते दत्ते निहन्ति रोगगणम् ।

कट्युदपटगोधं शूलं चामानिस्त घोरम् ॥ १८७ ॥

चिरभवमूर्खस्तम्भं गृध्रसिरोगं च जानुसंकोचम् ।

विषमज्वराणि घोरं क्लैव्यञ्च विनाशयत्याशु ॥ १८८ ॥

वस्तिर्वेतरणोक्तो गुणगणयुक्तः सुविख्यातः ॥ १८९ ॥

भोजयित्वा च सायाह्ने सर्वस्यायं प्रशस्यते ।

अथ चेदलवान् जन्तु रभुक्तापि तदा क्वचित् ॥ १९० ॥

इति वैतरणवस्तिः ।

दशमूलोक्तपायस्य पलान्यष्टौ पलद्वयम् ।

तैलस्य मधुनश्चाथ शताह्नात्तं प्रयोजयेत् ॥ १९१ ॥

अक्षच्च सैन्धवस्येष्टं वस्तिरेभिर्महागुणः ।

आत्रेयानुमतो ह्येव मुक्ते योन्यो विचक्षणैः ॥ १९२ ॥

नित्यमेकान्तरं वापि परिहारविवर्जितः ।

सुकुमारेषु वृद्धेषु स्त्रीषु यन्त्रणभीरुषु ॥

द्वीयमानोनिहन्त्याश दोषानीकान् सुदुस्तरान् ॥ १९३ ॥

वातरक्तं क्षयं कासं कुष्ठञ्च विषमज्वरम् ।

अश्वरोन्मूलकच्छश्च गुल्मघ्नीहृहलीमकम् ॥ १९४ ॥

वातपित्तभवान्नोगान् कफजान् सात्रिपातिकान् ।

तान् सर्वान्नाशयत्याश वलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ १९५ ॥

नैरुद्धिकेषु सर्वेषु वस्तिषु प्रवरो मतः ।

शक्रसंजननो हृष्य स्वादिमात्रिकसंज्ञकः ॥ १९६ ॥

शतशः सन्ति निरुद्धाः सुश्रुतचरकादिमुन्निगदिताः ।

भिषजां पुनरमुनैव व्यवहारश्चादिमात्रेण ॥ १९७ ॥

इत्यदिमात्रिकनिर्गुहः ।

एरण्डमूलं विफलापलांशा क्लृप्तानि मूलानि पलानि पञ्च ।

रास्नाशङ्गन्धा सबलागुडूचोपुनर्नवास्वधदेवदारु ॥ १९८ ॥

भागा पलाशामदनाष्टयुक्ता जले द्विकसे कथिताष्टशैषे ।

पेयाशताह्वाहपुपाप्रियंगु सपिप्पलीकं मधुक वचा च ॥ १८८ ॥

रमाञ्जन वासकबोजमुस्तमच्चप्रमाणं लवणाशयुक्तम् ।

समाचिकस्तैलयुतं संमूत्रो वस्तिर्नृणां लेखनदीपनीय ॥ २०० ॥

जह्वोरुपादत्रिकष्टशूलं कफाहतं मारुतविग्रहञ्च ।

विष्मूत्रवातग्रहणं सशूलमाधानकं माश्मरिशर्कराञ्च ॥ २०१ ॥

आनाहमर्शोग्रहणी प्रदोषा नैरण्डवस्ति शमयेत् प्रयुक्तं ।

इत्येरण्डाद्योनिरुहं ।

घेह गुडं मासरसं पथ्यं ह्यस्त्रानि मूत्रं मधुसैन्धवञ्च ।

एतान्यनुक्तान्यपि दापयेच्च निरुहयोगे मदनात् फलञ्च ॥ २०२ ॥

लवणं कार्पिकं दद्यात् फलमेकान्तु मादनम् ।

वाते गुडं सिता पित्ते कफे सिद्धार्थकादयः ॥ २०३ ॥

विट्श्लेष्मपित्तानिलमूत्ररुपाहार्यावह शुकवल्गप्रदयः ।

विट्क स्थित दीपचयं पिरस्य भैरवान् विकारान् शमयेन्निरुहं ॥ २०४ ॥

ज्वरे छर्द्यामतीमारि गूढशय्यादिदोषेषु च ।

हृदोग्रहे कृताहारे दुर्बले व्याधिकर्पिते ॥ २०५ ॥

घीणे रक्तातिसारे च तथा मूर्च्छातिरुपिते ।

प्रथितामा नराणाञ्च निरुहो न प्रशस्यते ॥ २०६ ॥

पोतघे हस्य वान्तस्य विरिक्तस्य मुताहता ।

निरुहितस्य कायाग्निर्मन्दोभगतिं देहि न ॥ २०७ ॥

स चात्येकं पुभियाश्चैवपयुक्तैर्विन्दते ।

काष्ठैरगुभिरप्येष मधुचित इमान् ॥ २०८ ॥

युक्तेऽग्नी जीवति चिरं रोगो म्यादिगतिं गते ।

शान्ते पञ्चत्वमायाति देही तस्माद्दुरोऽनल ॥ २०९ ॥

कालमु वस्तिष्यनुयाति यावत्तावदप्येपरिहारकारकम् ।

अत्याशनस्थानवचांसि पान स्वप्नं दिवामैथुनवेगरोधान् ॥

भीतोपवातातपशोकरोपांस्यजेदकालाहितभोजनञ्च ॥ २१० ॥

इति निरुहकल्पनाविधिः ।

—०—

अथोत्तरवस्तिविधिमाह ।

वस्तोरुत्तरसंज्ञस्य विधिं वक्ष्याम्यतः परम् ।

द्वित्रयास्थापनतः शुद्धौ निदध्याद्वस्तिमुत्तरम् ॥ २११ ॥

आतुराङ्गुलिमानेन ज्ञेयन्तु द्वादशाङ्गुलम् ।

वृत्तं गोपुच्छवन्मूलं मध्ययोः कृतकर्णिकम् ॥ २१२ ॥

सिद्धार्थवाहिच्छिद्राग्रं हेमरूप्यादिनिर्मितम् ।

चतुर्दशाङ्गुलं नेत्रं तत्र कार्यं विजानता ॥ २१३ ॥

मालती मृथवृत्ताभं कर्त्तव्यं छिद्रमेव च ।

मेद्रायांमसमं केचिदिच्छन्ति खलु तद्विदः ॥ २१४ ॥

स्नेहप्रमाणं परमं प्रकुञ्चं चात्र कीर्तितम् ॥ २१५ ॥

पञ्चविंशतिवर्षाणामधोमात्राद्विकार्षिकी ।

तदूर्ध्वंमूलमात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः ॥ २१६ ॥

निविष्टकर्णिकं मेद्रे नारीणां चतुरङ्गुलम् ।

मूत्रयोतः परोणाहः सुहृवाहि दशाङ्गुलम् ॥ २१७ ॥

तासामपत्यमार्गं तु निदध्याच्चतुरङ्गुलम् ।

द्व्यगुलं मूत्रमार्गं तु कन्यानां त्वेकमङ्गुलम् ।

विधेयङ्गाङ्गुलञ्चासां विधिवद्वक्ष्यते यथा ॥ २१८ ॥

स्नेहस्य प्रसृतं चात्र स्वागुलीमूलसम्मितम् ।

एवं प्रमाणं विहितमर्थाङ्गुद्विविकल्पितम् ॥ २१९ ॥

श्रीरत्नः शीकरो वापि वस्तिराजं पूजितः ।

तदलाभे नियुञ्जीत गलत्रर्म च पक्षिणाम् ॥ २२० ॥

अथातुरमुपसिञ्चं सुखिन्नं प्रथिताशयम् ।

यवागूं सष्टतक्षीरां पीतवन्त यथाबलम् ॥ २२१ ॥

निपणमाजानुसमे पीठे स्थानाश्रये समे ।

स्वभ्यक्तवंस्तिमूर्द्धान तैलेनोप्येन युक्तिः ॥ २२२ ॥

ततः समं स्थापयित्वा नालमस्य प्रहर्षितः ।

पूर्वं शलाकयान्विष्टमागं नेत्रमनन्तरम् ॥ २२३ ॥

• शनैःशनैर्घृताभ्यक्तं निदध्यादगुलानि षट् ।

ततोऽवपीडयेदस्ति शनैर्नवञ्च निर्दरेत् ॥ २२४ ॥

ततः प्रयोजितस्त्रेहमपराङ्गे विचक्षणः ।

पयसा भोजयेदेन यूपैर्मांसरसेन च ॥ २२५ ॥

अनेन विधिना दद्यादस्तीं स्त्रीयतुरोऽपि वा ।

• ततः प्रत्यागते स्त्रे हे स्त्रे ह्वंस्त्रिक्रमो हितः ॥ २२६ ॥

स्त्रीणां कंनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम् ।

मूत्ररुच्छविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ॥ २२७ ॥

योनिमागेषु नारोणा स्त्रेहमात्राद्विपालिकी ।

मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानाञ्च द्विकार्षिकी ॥ २२८ ॥

उत्तानायैश्चियै दद्याद्दूर्हलान्वै समाहितः ।

कन्येतरस्यै कन्यायै तद्वत्तमग्निपीडयेत् ॥ २२९ ॥

द्विकर्णिकेन नेत्रेण दद्याद्योनिमुष्य प्रति ।

गर्भाशयविशुद्ध्यै स्त्रे हेन द्विगुणेन तु ॥ २३० ॥

अप्रत्यागच्छति भिषग्ब्रह्मायुत्तरसंज्ञके ।

भूयो वस्ति निदध्यात्तु सयुक्तं शोधनीपथैः ॥ २३१ ॥

पायो वस्तिं निदध्यात्तु प्रोक्तं गुल्फविक्रितिते ।

प्रयेशयेद्वा मातृमातृ फलवर्तिं तु योनिगाम् ॥ २३२ ॥

सूत्रं विंशितान्तां स्निग्धां शोधनद्रव्यमंयुताम् ।

पीडयेद्वाप्यधोनाभेर्वस्तेरुपरिवेष्टिताम् ॥ २३३ ॥

आरग्वधस्य पत्रेण निर्गुण्डराः स्वरसेन च ।

फुर्याहोमूत्रपिष्टेन वर्त्तिञ्चापि ससैन्यवाम् ॥ २३४ ॥

सुहृत्तासर्पपसमां प्रविभिद्यत्रयांसि च ।

वस्तेरागमनार्थाय तां निदध्याच्छलाकया ॥ २३५ ॥

आगारधूमवृद्धतोफलं पिप्पलीसैन्यवैः ।

विहृताशुतगोमूत्रसुरापिष्टैः सनागरैः ॥ २३६ ॥

दह्यमाने भिषग्वस्त्रौ पायौ वस्त्रिं प्रदापयेत् ।

क्षीरिवृक्षकपायेण पयसा शीतलेन च ॥ २३७ ॥

शर्करा मधुमित्रेण शीतेन मधुकाम्बुना ।

वस्त्रिः शक्ररुजः पुंसां स्त्रीणांमार्त्तवजारुजः ।

हृन्वाद्दुत्तरवस्त्रिस्तु नोचितो मेहिनां क्वचित् ॥ २३८ ॥

शुक्रं दुष्टं शोणितं चाङ्गनानां कष्टं शान्तिं यदुति चासृग्दण्ड ।

मूत्राघात मूत्रदोषान् प्रवृद्धान् योनेर्दोषांश्चापराऽपातसंज्ञम् ॥ २३९ ॥

शुक्राघातं शर्करामशमरीञ्च शस्तं वस्त्रौ वृद्धे मेहने च ।

घोरानन्यान् वस्त्रिजातांश्च रोगांश्चात्तं मेहादुत्तरो हन्ति वस्त्रिः ॥ २४० ॥

सम्यग्दत्तं लिङ्गञ्च व्यापदः क्रम एव च ।

वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य समानं स्नेहवस्त्रिनां ॥ २४१ ॥

दृताभ्यक्ते गुदे चोष्णं श्लक्ष्णं स्वांगुष्ठसन्निभा ।

मलप्रवर्त्तिनीर्वर्त्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता ॥ २४२ ॥

इत्युत्तरवस्त्रिविधिः ।

इति वङ्गसेने वस्त्र्यधिकारः सकाप्तः ॥ ७० ॥

अथ धूमपानाधिकारमाह ।

प्रायोगिकः कासहरश्च धूमो वै रेचनः स्नेहिकवामनीयो ।

पञ्चप्रकारागदिताश्च धूमाः सिद्धान्तविज्ञिर्मुनिभिश्च वैद्यैः ॥ १ ॥

एलादिना कुष्ठनतोन्मिक्त्वेन क्षौमं प्रलिप्यांगुलकाष्टमाना ।

प्रायोगिके वर्त्तिरियञ्च नेत्रमष्टांगुलं पङ्गुणित प्रशस्तम् ॥ २ ॥

हृहस्थौ चूरपणं शृङ्गो सेंगुदो त्वङ्मनःशिला ।

एषा कासहरा वर्त्तिर्नेत्रं षोडशकांगुलम् ॥ ३ ॥

शिरोविरेचने वर्त्तिर्नेत्रं हरत्तमितं मतम् ॥ ४ ॥

स्निग्धसज्जैर्मधूच्छिष्टस्नेहगुग्गुलुगर्पयैः ।

स्नेहिके वर्त्तिरेभिस्तु जैत्रं द्वात्रिंशदंगुलम् ॥ ५ ॥

वामनीये तु बहुरक्षायुस्त्रिखुरचर्मभिः ।

वर्त्तिदशांगुलं नेत्रं धूमः पञ्चपिधो मतः ॥ ६ ॥

अथ मुखोपविष्टः सुमना कञ्जधोदृष्टिरतन्द्रितः स्नेहात्ता
प्रदीप्तायां वर्त्तिं स्त्रोत्तसि प्रणिधाय धूमं पिबेत् ।

मुखेन तं पिबेत्पूर्वं नासिकाभ्यां पुनः पिबेत् ।

मुखपीतं मुखेनैव बभेत्पीतञ्च नासया ॥ ७ ॥

यो बभेत्स्नतो धूमं नस्तपीतं मुखेन वा ।

मनेत्रकर्णनासास्यसंश्रयान् लभते शदान् ॥ ८ ॥

तत्र प्रायोगिकं त्रींस्त्रीनुष्णसानाददीतं मुखनासिकाभ्यां
पर्यायांस्त्रीयतुरी वेति । मुखनामाभ्यां पीतं स्नेहिकं यावद्व्यु
प्रवृत्तिरिति । नासिकाभ्याश्च पीतं वैरेचनिकमादौपदर्शनात्
मुखेनैव कासान्तकरो यासान्तरिपु च । वामनीयश्च मुखेनैव तिल
तण्डुलकृता यवागू पित्वा वामनीयो यथा योगम् ।

हृत्कण्ठेन्द्रियमंशुद्धिर्लाघवं शिरसः शमः ।

यथेरिनानां दोषाणां सन्यक् पीतस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

वाधिर्यमान्धं सूक्ष्मं रक्तपित्तं शिरोभ्रमम् ।

अकाले चातिपीतस्य धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥ १० ॥

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं विरेको रक्तमोक्षणम् ॥ ११ ॥

तस्य योगातियोगौ विज्ञातव्यौ । तत्र योगे रोगोपशमन-
मिति । अनियोगे तालुशोषपरिदाहपिपाशामदमूर्च्छाकर्णच्छेद-
दोर्वल्यमिति ।

—०—

स्रैहिकं धूमकं दोषे वायौ पित्तानुगे यदि ।

शीतन्तु रक्तपित्ते श्वात् श्लेष्मपित्ते विरूध्यणम् ॥ १२ ॥

न विरिक्तः पिषेडुमं न हते वस्तिकर्मणि ।

न रक्ते न विषे नात्तो नाशक्तो नच गर्भिणी ॥ १३ ॥

न ग्रमे न सटे नामे न पित्ते न प्रजाग्ररे ।

न मूर्च्छाभ्रमदृष्यासु न क्षोणे नापि च क्षते ॥ १४ ॥

न मद्यदुग्धे पीत्वा च न रोहश्च माक्षिकम् ।

धूमं न भुक्त्वा दध्ना च न रुक्षः क्रुद्ध एव च ॥ १५ ॥

न तालुशोषे तिमिरे शिरस्यऽभिज्ञते न च ।

न शङ्खके न रोहिण्यां न रोगे च महात्यये ॥ १६ ॥

एषु धूममकाले च मोहात्पिप्रति यो नरः ।

रोगान्मृत्युः प्रवेक्षन्ते द्वाग्ना धूमविभ्रमात् ॥ १७ ॥

गौरवं शिरसःशूलं पीनमार्द्धावभेदको ।

कर्णाक्षिशूलं कासश्च हिकाश्वासौ गलग्रहः ॥ १८ ॥

दन्तदौर्वल्यमास्त्रावः श्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः ।

पृतिस्त्रावश्च हृदिश्च दन्तशूलमरोचकः ॥ १९ ॥

हनुमन्याग्रहः कण्डूः क्षमयो मुखपाण्डुता ।

श्लेष्मप्रसेको वैश्वर्यं गलगण्डुरपजिह्विका ॥ २० ॥

खालित्य पिञ्जरत्वच्च केशानां पतनन्तथा ।

क्षवथुश्चातितन्द्रा च बुद्धेर्मोहोऽतिनिद्रता ॥ २१ ॥

धूमपानादग्रशाम्यन्ति बलं भवति चाधिकम् ।

शिरोरुहकपालानां मिन्द्रियाणां रमस्य च ॥ २२ ॥

न च वातऋषात्मानो बलिनोऽप्यूर्ध्वजत्रुजाः ।

धूमरिक्तकपालस्य व्याधयः स्युः शिरोगताः ॥ २३ ॥

धूमप्रयोगात्पुरुषः प्रमत्तेन्द्रियबाधनाः ।

दृढकेशद्विजग्मयुः प्रमत्तविशदाननः ॥ २४ ॥

प्रयोगपाने तं स्याष्टौ कालाः संपरिकीर्तिताः ।

स्नात्वा भुङ्क्ता समुत्थित्वा दन्ताग्रिष्टप्य च ॥ २५ ॥

नावनाञ्जननिद्रान्ते चात्मयान्धूमपो भवेत् ।

वातश्लेष्मसमुत्क्षेपः कालेष्वेषु हि लक्ष्यते ॥ २६ ॥

अगुष्ठपरिणाहेन मध्ये स्थूलोऽन्तयोस्तनुः ।

पङ्भागो धूमनेत्रस्य वक्ष्यमानं प्रगम्यते ॥ २७ ॥

ऋजुत्रिकोणकनितकोनाभ्यग्रप्रमाणितम् ।

वस्तिनेत्रममदृश्यं धूमनेत्रं प्रगम्यते ॥ २८ ॥

गरायमपुटयुतं प्रपधूने नयेद्वने ।

धूमनेत्रेण सतिमान् येदना साधनान्तये ॥ २९ ॥

इति वङ्गसेने धूमपानाधिकारः समाप्तः ॥ ७८ ॥

अथ कवलाधिकारमाह ।

चतुर्धा कवलः स्नेहो प्रसादीशोधिरोपणो ।

स्निग्धोष्णः स्नेहिको वाति स्वादुशोतैः प्रसादनः ॥ १ ॥

पित्तं कटुम्ललवणै रूचः सशोधनः कफे ।

कपायतिक्तमधुरैः कटुरो रोपणो ब्रणे ॥ २ ॥

बचात्रिकटुकैश्चैव सिद्धार्थैः कल्कपेपितैः ।

तैलमूत्रसुरायुक्तै र्मधुनान्यतमेन च ॥ ३ ॥

महितैः स्विन्नमृदित स्निग्धभालकपोलकः ।

मुखे गृहीत्वा कवलं मात्रयाऽनन्यमानसः ॥ ४ ॥

तिष्ठेद्यावन्मुखं पूर्णं स्थाप्य घ्राणचक्षुषोः ।

ततस्त्यक्त्वाऽपरो ग्राह्यो यावदाऽऽदोपसत्तयः ॥ ५ ॥

एवं स्नेहपयः क्षोद्र रसमूत्रास्त्रमयुताः ।

कपायोष्णोदकाभ्याञ्च कवला दोपतो हिताः ॥ ६ ॥

मुखं सचार्यते यातु सा मात्रा कवले स्मृता ।

अमचार्या तु सा मात्रा गण्डूपे सा प्रकीर्तिता ॥ ७ ॥

तावद्धारयितव्योऽनन्यमनसाऽनुव्रतदेहेन यावद्दोषपरिपूर्णकपो-
लत्व नासास्त्रोत्तोनयनपरिप्लवथ भवति तदा विमोक्तव्यः । पुन-
श्चान्यो ग्रहीतव्य आशुक्षिलिङ्गमिति ।

—०—

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्य वक्त्रलाघवम् ।

इन्द्रियाणां प्रसादश्च कवले शुद्धिलक्षणम् ॥ ८ ॥

क्षीने जायकफोत्कृष्टे वा वरसज्ज्ञानमेव च ।

अतियोगे मुखे पाकः शोषस्तृष्णारुचिः क्लमः ॥ ९ ॥

शोधनीये विशेषेण भवन्त्येतत्तु लक्षणम् ॥ १० ॥

तिलानीलोत्पलं सर्पिः शर्कराक्षीरमेव च ।

सवीट्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहनाशनः ॥ ११ ॥

कवलस्य विधिर्द्विष्य समासेन प्रकीर्तितः ।

विभज्यभेषजं बुद्ध्या कुर्वीत प्रतिसारणम् ॥ १२ ॥

कल्कोरसक्रिया चौद्रं चूर्णं चेति चतुर्विधम् ।

अगुल्यग्रप्रणीतं तु यथास्वं सुखरीगिषु ॥ १३ ॥

तस्य योगातियोगञ्च कवलोक्तं विभावयेत् ।

तान्येव शमयेद्द्वयाधीन् कवलोल्यं प्रयोजितः ॥ १४ ॥

दोषघ्नमनभिष्यन्दि भोजयेच्च तथा नरम् ॥ १५ ॥

इति वङ्गसेने कवलाधिकारः समाप्तः ॥ ७८ ॥

—०—

अथ नस्याधिकारमाह ।

प्रतिमर्शोऽवपीडश्च नस्यं प्रधनं तथा ।

शिरोविरेचनं पञ्च नस्यभेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥

द्वारं हि शिरसो नासा तेन तद्वशाप्य हन्ति तान् ॥ २ ॥

—०—

श्रीपधमौपधपक्को वा स्नेहो नासिकाभ्यां दीयत इति नस्यम् ।
नस्यं तद्विविधं शिरोविरेचनं स्नेहनञ्च तद्विविधमपि पञ्चधा ।
तद्यथा,—प्रतिमर्शं विरेचनं विकल्पोऽवपीडः प्रधमनं चेति ।

ये तु वातात्मका रोगाः शिरः कम्पार्दितादयः ।

शिरमस्तर्प्यणं तेषु नस्यकर्मप्रगम्यते ॥ ३ ॥

स्नग्धमुत्तिगुरुत्वाद्याः शैषिकाये शिरोगटाः ।

शिरोविरेचनं तेषु नस्यकर्मप्रगम्यते ॥ ४ ॥

शर्करैश्चुरसचीर छतमांसरसान् पृथक् ।

घोणानां नस्ततो दद्याद्रक्तपित्तगदेषु च ॥ ५ ॥

—०—

वातपैत्तिकेषु रोगेषु वातपित्तहर द्रव्यसिद्धेन स्नेहेनेति ।

—०—

यथा दोषोदये काले रोगिणी नावनं भिषक् ।

शरद्वशन्तयोः स्वस्थे पूर्वाङ्गे संप्रयोजयेत् ॥

वर्षासु शिशिरि ग्रीष्मे सायं मध्यन्दिनेऽथवा ॥ ६ ॥

—०—

भुक्तवानपतर्पितोत्यर्थतरुणप्रतिश्रयायो गर्भिणी स्नेहोदकम-
द्यद्रव्योत्तोऽजोर्णी दन्तवस्ति. क्रुद्धोगरार्तस्त्रुषाभिभूतोबालोवृद्धः
थान्तोवेगावरोधितः शिरःस्नातः स्नातुकामद्य न नस्यकर्मार्ह इति ।
तस्य स्नेहननस्यस्य प्रमाणमष्टौ विन्दवः प्रदेशिनी पर्वहृदयनि.सृता
प्रथममात्रा द्वितीयाशुक्ति स्त्रुतीया पाणिशुक्तिरित्येतास्त्रिस्त्रो
मात्रा यथाबलं प्रयोन्याः । तत्रोच्चारितवातमूत्रपुरीषाय भुक्तवते
व्यभ्रे काले पाणितापोपस्त्रेदितगलकपोलललाटप्रदेशाय वाता-
तपरजोहोनवेश्मन्युत्तानशायिने प्रसारितकरचरणाय किञ्चित्प्रल-
म्बितशिरसे वस्त्राच्छादितनयनाय वामहस्तप्रदेशिन्यग्रोन्नामित-
नासाग्राय विशुद्धस्त्रोतसि दक्षिणहस्तेन स्नेहमुष्णानुत्तमं रजत-
सुवर्णं ताम्रं सृत्वात्र-शुक्तीनामन्यतमस्यं शुक्त्या पिचुना वा सुखो-
ष्णमद्भुत विच्छिन्नधारया सिञ्चेत् । यथा नेत्रेण प्राप्नोति तथा
प्रयतेतेति ।

—०—

स्नेहेन सिञ्चति शिरो न कथञ्चन कम्पयेत् ।

न भापेत् न कुप्येत न ब्रूयान्न हसेत्तथा ॥ ७ ॥

तिलानीलोत्पलं सर्पिः शर्कराक्षीरमेव च ।
 सवीट्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूपो दाहनाशनः ॥ ११ ॥
 कवलस्य विधिर्ह्येव समासेन प्रकीर्तितः ।
 विभज्यभेषजं तुद्धा कुर्वीत प्रतिसारणम् ॥ १२ ॥
 कल्कोरसक्रिया चौद्रं चूर्णं चेति चतुर्विधम् ।
 शृंगुत्थग्रप्रणीतं तु यथास्वं सुखरोगिषु ॥ १३ ॥
 तस्य योगातियोगञ्च कवलोक्तं विभावयैत् ।
 तान्येव शमयेद्दगाधीन् कवलौऽयं प्रयोजितः ॥ १४ ॥
 टोपघ्नमनभिष्यन्दि भोजयेच्च तथा नरम् ॥ १५ ॥
 इति वङ्गसेने कवलाधिकारः समाप्तः ॥ ७८ ॥

—०—

अथ नस्याधिकारमाह ।

प्रतिमर्गोऽवपीडय नम्यं प्रधने तथा ।
 गिरोविरेचनं पञ्च नम्यभेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥
 द्वारं हि शिरसो नासा तेन तद्ग्राप्य हन्ति तान् ॥ २ ॥

—०—

औषधमौषधपक्वो वा खेहो नामिकाभ्यां दीयत इति नम्यम् ।
 नस्यं तद्विविधं गिरोविरेचनं खेहनञ्च तद्विविधमपि पञ्चधा ।
 तद्यथा,—प्रतिमर्गो विरेचन विकल्पोऽवपीडः प्रधमनं चेति ।

ये तु वातात्मका रोगाः शिरः कम्पादितादयः ।

शिरमस्तप्येणं तेषु नम्यकर्मप्रगम्यते ॥ ३ ॥

अग्निसुप्तिगुरुत्वाद्याः शैलिकाये गिरोगदाः ।

शिरोविरेचनं तेषु नम्यकर्मप्रगम्यते ॥ ४ ॥

शर्करेक्षुरसवीर घृतमांसरसान् पृथक् ।

क्षीणानां नस्ततो दद्याद्रक्तपित्तगदेषु च ॥ ५ ॥

—०—

वातपैत्तिकेषु रोगेषु वातपित्तहर द्रव्यसिद्धेन स्नेहेनेति ।

—०—

यथा दोषोदये काले रोगिणो नावनं भिषक् ।

शरद्वशन्तयोः स्वस्थे पूर्वाङ्गे संप्रयोजयेत् ॥

वर्षायु शिशिरे ग्रीष्मे सायं मध्यन्दिनेऽथवा ॥ ६ ॥

—०—

भुक्तवानघतर्पितोत्थर्थतरुणप्रतिश्यायो गर्भिणी स्नेहोदकम-
द्यद्रवपीतोऽजोर्णी दन्तवस्तिः क्रुद्धोगरार्त्तस्तृपाभिभूतोबालोवृद्धः
आन्तोयेगावरोधितः शिरःस्नातः स्नातुकामश्च न नस्यकर्म्मार्ह इति ।
तस्य स्नेहननस्यस्य प्रमाणमष्टौ विन्दवः प्रदेशिनी पर्वद्वयनिःसृता
प्रथममात्रा द्वितीयाशुक्ति स्तृतीया पाणिशुक्तिरित्येतास्त्रिस्त्रो
मात्रा यथाबलं प्रयोज्याः । तत्रोच्चारितवातमूत्रपुरीषाय भुक्तवते
व्यभ्ने काले पाणितापोपस्नेदितगलकपोलललाटप्रदेशाय वाता-
तपरजोहीनविश्वन्युत्तानशायिने प्रसारितकरचरणाय किञ्चित्प्रल-
म्बितशिरसे बस्त्राच्छादितनयनाय बामहस्तप्रदेशिन्यग्रोत्रामित-
नासाग्राय विशुद्धस्त्रोतसि दक्षिणहस्तेन स्नेहमुष्णानुतप्तं रजत-
सुवर्णं ताम्रं सृत्पात्रशुक्तीनामन्यतमस्य शुक्त्या पिचुना वा सुखो-
ष्णमद्भुत विच्छिन्नधारया सिञ्चेत् । यथा नेत्रेण प्राप्नोति तथा
प्रयतेतेति । •

—०—

स्नेहेन सिञ्चति शिरो न कथञ्चन कम्पयेत् ।

न भापेत् न कुप्येत् न ब्रूयान्न हसेत्तथा ॥ ७ ॥

एवं हि विहितं श्रेष्ठो नैवान्तः प्रतिपद्यते ।
 ततः कासप्रतिश्यायं शिरोच्छिगदसम्भवः ॥ ८ ॥
 शृङ्गाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्न गिलेद्वम् ।
 पञ्चसप्तदशैः स्युर्मात्रा नस्यविधारणे ॥ ९ ॥
 उपविश्याथ निष्ठोषे त्रासावक्तान्तर्गटवम् ।
 वामदक्षिणपाश्वर्थाभ्यां निष्ठोषेत्समुखं न हि ॥ १० ॥
 ललाटस्वेदनं कुर्याद्यदि नो बहिराव्रजेत् ॥ ११ ॥
 नीते नम्ये मनस्तापं रजः क्रोधादिकं त्यजेत् ।
 शयीतनिद्रा व्यक्ता च प्रोक्ता नो वाक्शतं नरः ॥ १२ ॥
 तथा वैरेचनस्यान्ते धूमो वा कबलो हितः ।
 व्यवभुक्तवते नस्य करस्त्रिन्नायं दापयेत् ॥ १३ ॥
 श्रेष्ठस्य द्विन्दवो ह्यष्टौ प्रदेया नस्यकर्मणि ।
 शक्तिश्च पाणिशक्तिश्च तिस्रो मात्राः प्रकीर्तिताः ॥ १४ ॥
 हात्रिशद्विन्दवस्यापि शक्तिरित्यभिधीयते ।
 द्वे शक्ती पाणिशक्तिश्च श्रेया नु कुशलेर्नरैः ॥ १५ ॥
 चत्वारो द्विन्दवः षड् वा तथाष्टौ वा यथा वनम् ।
 शिरोविरेचने योज्या ऊर्ध्वजलविकारिणाम् ॥ १६ ॥
 शिरोऽभिघाते त्वरुचौ स्वरभङ्गे गलगहे ।
 कासे नामामयेऽप्या नम्य देयं विरेचनम् ॥ १७ ॥
 शिरोपशिशुभिन्भूत्य रुचकवृषपादयः ।
 द्विग्वार्द्रकरसद्यैः प्रयोज्या नम्यकर्मणि ॥ १८ ॥
 लाघवशिरसोयोगे भुजस्तम्भावबोधनम् ।
 विकारोपगमं शुद्धिरिन्द्रियाणां मनःसुखम् ॥ १९ ॥
 लाघवशिरसं शुद्धिं श्योतसा व्याधिसर्चयः ।
 चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसं शुद्धिलक्षणम् ॥ २० ॥

कंडूप्रदेही गुरुता स्रोतसां कफसंस्त्रवः ।
 हीने विशुद्धे शिरसि लक्षणं संप्रकीर्तितम् ॥ २१ ॥
 मस्तुलुङ्गागमो वातदुष्टिरिन्द्रियविभ्रमः ।
 शून्यता शिरस्यपि भूर्ध्निगाढं विरेचिते ॥ २२ ॥
 हीनेविशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत् ।
 सम्यग्नियोजिते वापि सर्पिर्नस्ते नियोजयेत् ॥ २३ ॥

—०—

प्रतिमर्शस्तु चतुर्दशसु कालेपूपादेयो भवति । तद्यथा, तल्लो-
 त्यितेन प्रक्षालितमुखेन गृहान्निर्गच्छता व्यवायव्यायामाध्वपरि-
 श्रान्तेन मूलोच्चारकबलाञ्जनान्ते भुक्तवता हृदि तवता दिवास्वप्नो-
 त्यितेन सायं चेति ।

—०—

ईषदुत्तिष्ठितः स्नेहो यदा वक्तुं प्रपद्यते ।
 नस्ये'निपिक्तं तं विद्या अतिमर्शं प्रमाणतः ॥ २४ ॥
 उत्तिष्ठन्न पिबेत् स्नेहं निष्ठोवेन्मुखमागतम् ।
 क्षीणे दृष्ट्यास्य शोषार्त्ते बाले हृद्वे च युज्यते ॥ २५ ॥
 तेन रोगाः प्रशम्यन्ति नराणामूर्ध्वजतुजा ।
 इन्द्रियाणाञ्च वैमल्यं कुर्यादास्यं सुगन्धि च ॥ २६ ॥
 हनुदन्तशिरोग्रोवा त्रिकबाह्वरसां बलम् ।
 बलीपलितखालित्य व्यङ्गानां चाप्यसम्भवः ॥ २७ ॥
 तैलं कफे मवाते च केवले पवने वसाम् ।
 दद्यात्तस्तः मदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥ २८ ॥
 चतुर्विधस्य स्नेहस्य विधिरेष प्रकीर्तितः ।
 श्लेष्मस्यानां विरोधित्वात्तेषु तैलं प्रशस्यते ॥ २९ ॥
 अवपोऽङ्गः प्रथमं ह्यो भेदावपरौ स्मृतौ ।

शिरोविरचनस्यात्र तौ तु देयौ यथायथम् ॥ ३० ॥
 कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः ।
 अवपोडः सनिर्दिष्ट स्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ ३१ ॥
 पङ्गुलादिद्विवक्ताया नाडीचूर्णं तथा धमेत् ।
 तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हितम् ॥ ३२ ॥
 ऊर्ध्वजङ्गमते रोगे कफजे स्वरसञ्चये ।
 अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे ॥ ३३ ॥
 शोफापक्ष्मारकुटेषु नस्यं वैरेचनं हितम् ।
 भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहनमिष्यते ॥ ३४ ॥
 गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे ।
 मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपोडनम् ॥ ३५ ॥
 अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते ।
 चूर्णं प्रधमनं धीरैः स्तब्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ ३६ ॥

—०—

वैरेचनं नस्यं यथा ।

नस्यं स्याद्गुडशुण्ठीभ्यां पिप्पल्या सैन्धवेन वा ।
 जलपिष्टेन तेनाक्षि कर्णनासाशिरोगदाः ॥
 मन्याहनुगलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठगाः ॥ ३७ ॥
 मधुकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैन्धवैः ।
 नस्यं कोष्णजलैः पिष्टं दद्यात् संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ३८ ॥
 रोहितमव्यपित्तेन भावितं मरिचं वचाः ।
 कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः ॥ ३९ ॥
 इति वङ्गसेने नस्याधिकारः समाप्तः ॥ ८० ॥

—०—

अथ स्वस्थवृत्ताधिकारमाह ।

उत्थायात्मवता ब्राह्मे स्वस्थेनारोग्यमिच्छता ।

धीमतायदनुष्ठेय तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

प्रतिपद्वर्गपष्टीषु नवम्येकादशीषु च ।

दन्तानां काष्ठसयोगो दहत्याऽऽसप्तमं कुलम् ॥ २ ॥

कनिष्ठाग्रसमस्थूलमायत द्वादशांगुलम् ।

प्रातरुत्थाय मतिमान् भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ ३ ॥

करञ्जकरवीरार्कं मालतोककुभाग्रनाः ।

खदिराम्नातकौ शुद्धौ सहकारकपित्तकौ ॥ ४ ॥

शस्थन्ते दन्तपवना ये चाप्येवंविधा द्रुमाः ॥ ५ ॥

आयुर्यशोबलं वर्णं प्रजापशुव्रस्त्रि च ।

वज्रप्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्व नो देहि वनस्थते ॥

इत्यादि श्रुतिवाक्येन गृह्णीयात् सुवनस्पतिम् ॥ ६ ॥

द्वादशांगुलमाद्यानां क्षत्रियाणां दशांगुलम् ।

अष्टांगुलन्तु वैश्यानां शूद्राणान्तु षडंगुलम् ॥ ७ ॥

दन्तकाष्ठन्तु नारीणां विधिवच्चतुरंगुलम् ।

तदग्रेण शनैर्दन्तात् घर्षयेत्तानपीडयन् ॥ ८ ॥

निहन्ति गन्धं वैरस्य जिह्वादन्तास्यजं मलम् ।

निरस्य शुचिमाधत्ते सद्यो दन्तविशोधनम् ॥ ९ ॥

सुखवैरस्य वैगन्ध्यं शोषजाद्यापहं सुखम् ।

दृढीकरञ्च दन्तानां स्नेहगण्डुपधारणम् ॥ १० ॥

बिण्मूत्राखिलदीपधातुशमनाकाङ्क्षान्नपानिररुचिः ।

भुक्तं जीर्यति पुष्टये परिणतिः स्वप्नावधीते सुखम् ॥

गृह्णीते विषयान्यथा स्वमुचितान् वृत्तानतो वृत्तितः ।

स्वस्थस्याभिहितं चतुर्दशविधं जन्तोरिदं लक्षणम् ॥ ११ ॥

दध्याज्यादर्शसिद्धार्थवित्त्वगौरोचनास्रजाम् ।
 दर्शन स्पर्शनं कार्यं प्रवृत्तमशुभापहम् ॥ १२ ॥
 पञ्चरात्रान्नखश्मश्रु केशलोमानि कर्तयेत् ।
 केशश्मश्रुनखादीनां कर्तन संप्रसाधनम् ॥
 पौष्टिकं धन्यमायुष्यं शौचकान्तिकरं परम् ॥ १३ ॥
 उत्पाटयेन्न लोमानि नासायास्तु कथञ्चन ।
 दृष्टिदौर्बल्यतिमिर मभीक्ष्णोद्धरणाद्भवेत् ॥ १४ ॥
 तांबूलपत्रसत्कारं पूंगाढञ्च कफापहम् ।
 चूर्णं कफानिलहरं खदिरं कफपित्तनुत् ॥ १५ ॥
 संयोगतो दोषहरं कान्तिसौष्टवकारकम् ।
 पथं सुमोत्थिते भुक्ते वान्ते यान्ते च मानवे ॥ १६ ॥
 तांबूलञ्च विपात्तानां भूच्छाचयास्रपित्तिनाम् ।
 रूक्षदुर्बलमत्तानां महितं चास्यशोषिणाम् ॥ १७ ॥
 देहदृक्केशदन्ताग्नि श्रोत्रवर्णबलक्षयः ।
 शोषः पित्तानिलास्रं स्यादतितांबूलमक्षणात् ॥ १८ ॥
 पर्णमूले वसेद्दशाधिः पर्णाग्रे पापसम्भवः ।
 चूर्णपर्णं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥ १९ ॥
 आयुरग्रे यशोमूले मध्ये लक्ष्मीर्व्यवस्थिता ।
 तस्मादपश्च मध्यञ्च मूलं पर्णं विवर्जयेत् ॥ २० ॥
 केशभूमिगतानुगंगाब्जिरोभ्यङ्गोपकर्षति ।
 केशानां गृदुतां स्नेहं रक्षःशान्तिं करोति च ॥ २१ ॥
 करोति शिरमस्तृप्तिं केशानां दृढतामपि ।
 तर्पणं चेन्द्रियाणाञ्च दत्तोभ्यङ्गस्तु भूर्ध्वनि ॥ २२ ॥
 केशप्रसाधनीकेश्या रजो जन्तुमनापहा ।
 जन्तुमन्या शिरः कर्णं शूनघ्नं कर्णपूरणम् ॥ २३ ॥

अभ्यङ्गो मार्दवकरः कफवातविनाशनः ।

धातूनां पुष्टिजननी शृजावर्णबलप्रदा ॥ २४ ॥

पादप्रक्षालनं पादमलरोगग्रमापहम् ।

दृष्टिप्रसादनं हृद्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ २५ ॥

निद्राप्रदो देहसुखयक्षुष्यः पादरोगहा ।

पादत्वग्मृदुकर्त्ता च पादाभ्यङ्गः प्रशस्यते ॥ २६ ॥

उद्धर्त्तनं वातहरं कफमेदोविलायनम् ।

स्थिरोकरणमङ्गानां त्वक् प्रसादकरं तथा ॥ २७ ॥

तन्द्रापाप्मोपशमनं तुष्टिदं पुष्टिवर्द्धनम् ।

रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेय दीपनम् ॥ २८ ॥

तच्चातिमारज्वरितकर्णशूलादितादिषु ।

आधानारोचकाजीर्ण भुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥ २९ ॥

श्रीमत्पारिपदं शस्तं निर्मलांबरधारणम् ।

हृद्यं मौगन्ध्यमायुष्यं काम्य पुष्टिवलप्रदम् ॥ ३० ॥

सौमनस्य मलक्षोघ्नं गन्धमात्यनिषेवनम् ॥ ३१ ॥

पद्मलं विशदं कान्त्य मत्णोरञ्जितमञ्जनम् ।

नेत्रमञ्जनसंयोगाद्भवेन्निर्मलतारकम् ॥ ३२ ॥

चक्षुष्यं स्पर्शनार्हञ्च पदयोर्व्यसनापहम् ।

बल्यं पराक्रमसुख हृद्यं पादवधारणम् ॥ ३३ ॥

घर्मानिलरजोऽम्बुघ्नं कृत्रधारणमुच्यते ॥ ३४ ॥

सुखस्थानप्रतिष्ठानं शत्रूणाञ्च निषेधनम् ।

अरुष्टम्भनमायुष्यं भयघ्नं दण्डधारणम् ॥ ३५ ॥

अग्निर्वातकफस्तृग्ध शीतवेगघ्नाशनः ।

आमाभिषण्णदशमनी रक्तपित्तप्रकोपनः ॥ ३६ ॥

आहारः प्रीणनः सुषो बलाङ्गहेहधारकः ।

शक्त्यायुः शुक्रमत्वौज स्तेजरुत्साहवर्द्धनः ॥ ३७ ॥
 अपि शाकं जलखिन्नं लवणस्नेहभर्जितम् ।
 बुभुक्षितस्य कल्पं स्यात् स्वादु स्याद्दुर्हर्षं तथा ॥
 तत्तु षड्भुजसंपन्नं मन्दाग्नेर्भोजनञ्च यत् ॥ ३८ ॥
 चुक्सम्भवति जीर्णेषु मलदोषरसेषु च ।
 उचितोनुचितो वापि सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ ३९ ॥
 यः प्रसादः परोऽन्नस्य परं जीर्णस्य सर्वशः ।
 सरसोजलयस्तस्य नयः देहेषु देहिनः ॥ ४० ॥
 रक्तस्यांजलयस्त्वष्टी शक्यतः सप्त सर्वशः ।
 पित्तस्यां जलयः पञ्च षट्कफस्य प्रचक्षते ॥ ४१ ॥
 मूत्रस्य विद्याश्वत्वारो वसायाश्चाञ्जलिद्वयम् ।
 द्वावञ्जलीमेदस्तुमज्जश्वेदाञ्जलिर्नतः ॥ ४२ ॥
 शुक्रमस्थान्निर्जयोमग्निष्कन्म्यौजसस्तथा ।
 चत्वारोजलयः रक्षोणां रजसः प्रकृतिस्थितिः ॥ ४३ ॥
 द्वावञ्जलीप्रसृताया स्नान्यस्यापीह योपिताम् ।
 एवं तस्य परं मानं निदिश्यं प्रचक्षते ॥ ४४ ॥
 प्रमाणमेतदातूना सदुष्टानामुदाहृतम् ।
 क्षीनाः स्वेनप्रमाणेन विविधायापि धातवः ॥
 योजयन्ति विष्णवैश्च क्षीया हृदाः क्षयप्रदाः ॥ ४५ ॥
 बालव्यजनमौजस्य मक्षिजादीन् व्यपीडति ॥ ४६ ॥
 सेवेतविषयान् काले भुञ्जात् तत्परतां यमी ।
 नातिजग्राहणं निद्रां सर्वभूतहितैर्पिताम् ॥ ४७ ॥
 देयगोत्राघ्राणाचार्यं गुरुहृद्वान् भटार्चयेत् ॥ ४८ ॥
 चतुष्पथनमम्यत्तां दातायष्टा प्रियवदः ।
 कृद्धानामनुनेता च दीनानामनस्यकः ॥ ४९ ॥

आश्वासकश्च भीतानां बन्धुवत्सर्वदेहिनाम् ।

रागद्वेषनिदानानां हन्ता धर्मपरायणः ॥ ५० ॥

नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्षकारोविगयेष्वसक्तः ।

दाता समः सत्यपरः क्षमावानामोपसेवी च भवत्यरोगः ॥ ५१ ॥

पृष्ठतोऽर्कं निषेवेत जठरेण हुताशनम् ।

क्षामिनं सर्वभावेन पुण्यश्लोकममायया ॥ ५२ ॥

भुञ्क्ष्वस्तूकशोकेन तत्र सत्त्ववर्णं पिव ।

राजन् हरोतकीं भुञ्क्ष्वनश्यन्तु भवतो गदाः ॥ ५३ ॥

न वेगान्धारयेद्दीमान् वातविषमूत्ररेतसाम् ।

घृन्नाकासचयोद्गारश्वासदृष्यावमोक्षधाम् ।

धारितेष्वेपु जायन्ते तन्मार्गस्यानजा गदाः ।

धार्यो वेगस्तु शस्त्रानां मनोवाक्कायकर्मणाम् ॥ ५४ ॥

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत् ।

अनुजायाग्रतिपदं सर्वधर्मेषु तुल्यताम् ॥ ५५ ॥

स्त्रियं श्रियं धनञ्चापि परस्याभिलषेव हि ।

न कुर्याच्चक्षुःश्रोत्रं चेतो न कालमतिवाहयेत् ॥ ५६ ॥

प्रणयेनापि नो वाच्यं वचनं परतापि यत् ।

अहिंसा सततं कार्या धार्या चेतस्यनित्यता ॥ ५७ ॥

हिताभिर्जुहुयान्नित्यं मन्तरग्निं समाहितः ।

अन्नपानसमिद्धिर्ना माप्ताकालौ विचारयन् ॥ ५८ ॥

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते ।

अजातानां विकाराणां अनुत्पत्तिकरञ्च यत् ॥ ५९ ॥

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् ।

तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम् ॥ ६० ॥

मतिर्वचः कर्मसुखानुबन्धि सत्त्वं विधेयं विषदा च बुद्धिः ।

ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः ॥ ६७ ॥
 अर्थेष्वलभ्येष्वकृतप्रयत्नं कृतादरं नित्यमुपायवत्सु ।
 जितेन्द्रियं नानुपतन्ति रोगास्तत्कालयुक्तं यदि नास्ति दैवम् ॥ ६८ ॥
 । कफे प्रच्छर्दनं पित्ते विरेको वस्तिरीरणे ।
 शस्यते त्रिष्वपि हितो व्यायामो दोषपाचनः ॥
 भुक्तं विरुद्धमप्यन्नं व्यायामान्न प्रदुष्यति ॥ ६९ ॥
 अशाकभोजोद्यतमत्तियोन्मसा पयोरसान् सेवति नातियोन्मसः ।
 निरामभुग्वातकृतां विदाहिनां नच प्रभुग्जीर्णभुगल्परुक्सः ॥ ७० ॥
 नगरीनगरस्येव रथस्येव रथी सदा ।
 स्वगरीरस्य मेधावी कृत्येष्वव हितो भवेत् ॥ ७१ ॥
 इति वङ्गसेनेऽनागतामयप्रतिषेधाधिकारः
 समाप्तः ॥ ८१ ॥

—०—

अथ द्रव्यगुणाधिकारमाह ।

चक्षुष्यो मधुरो हृथ्यो बल्यो धातुविवर्धनः ।
 अस्मोरसोमतो हृद्यः क्लेदोदीपनपाचनः ॥ १ ॥
 दीपनोन्मरत्यष्टाघ्न स्तिलः शोधनरोपणः ।
 पीडनो लेपनः स्तम्भी कषायो घ्राहिरोपणः ॥ २ ॥
 रसवीर्यविपाकानां माययाद्रव्यमुत्तमम् ।
 उत्तरोत्तरमंशेषादितरेषां प्रधानता ॥ ३ ॥
 सतिक्लृप्तवणं कुटं स्वल्पवातयिषापहम् ।
 स्वादुपाकरभो ज्ञेयं स्तगरः कुटवद् गुणैः ॥ ४ ॥
 यन्याग्निगन्धा वातघ्नी काष्ठश्चासद्ये हिता ।
 देवदारुभयेत्तद त्वाग्निगन्धमयापहम् ॥ ५ ॥

सोष्णं लघु च शीतञ्च सुगन्धि कटुकं गुरु ।
 वातपित्तहरो बल्या हृथ्यासंग्रहिणी बला ॥ ७ ॥
 शीफलैरण्डमूलानि शूले वातकफोल्बणे ।
 पृष्णिपर्णीस्त्रिरा चैव पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ८ ॥
 वातभोजनसंस्कारे शस्यते वातभूयसाम् ।
 चक्षुष्यं वातपित्तघ्नं बल्यं लोहितचन्दनम् ॥ ९ ॥
 क्लीवेरं कूर्दिहृत्तास तृष्णातीसारनाशनम् ।
 पाचनं दीपनं हृथ्यं शूलघ्नं विश्वभेषजम् ॥ १० ॥
 वातश्लेष्महरं हृथ्यं सुप्तं पित्ताऽविरोधि च ।
 पिप्पलोष्ठी हृगुल्माशी जठरेषु विधीयते ॥ ११ ॥
 दीपनीपाचनी हृद्या नात्युष्णा कटुक्ता मता ।
 मरिचं नातिशीतोष्णं पित्तलं कफवातजित् ॥ १२ ॥
 संग्राहिरोचनं सुप्तं दीपनं दीपपाचनम् ।
 सतिक्तातिविषासोष्णा संग्राहिण्यामपाचनी ॥ १३ ॥
 गुडूचीवातपित्तघ्नी मेहघ्नीपाचनीसरा ।
 कूर्दि कुष्ठज्वरश्वास कासारोचकनाशिनी ॥ १४ ॥
 किराततिक्तकस्तिक्तो रक्तपित्तज्वरापहः ।
 यावदुणैरसैस्तिक्ता प्रोक्ताभूनिष्ववत्सरा ॥ १५ ॥
 किराततिक्तवत् ज्ञेये चायमाणादुरालभे ।
 कफवातज्वरकूर्दि क्लम्यरोचकनाशने ॥ १६ ॥
 कफपित्तहरी तिक्ता वरिष्ठखदिरद्रुमी ।
 तृष्णारोचकवीसर्प कण्डूकुष्ठविनाशनी ॥ १७ ॥
 वासकः कासवैश्वर्य्य रक्तपित्तकफापहः ।
 सेव्यः पित्तकफस्वेद दाहदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ १८ ॥
 कफवातहरीपथ्या बुडगायुः स्वरवर्धनी ।

ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः ॥ ६४ ॥

अथैष्वलभ्येष्वकृतप्रयत्नं कृतादरं नित्यमुपायवत्सु ।

जितेन्द्रियं नानुपतन्ति रोगास्तत्कालयुक्तं यदि नास्ति दैवम् ॥ ६५ ॥

। कफे प्रच्छर्दनं पित्ते विरेको वस्तिरोरणे ।

शस्यते त्रिष्वपि हितो व्यायामो दोषपाचनः ॥

भुक्तं विरुद्धमप्यन्नं व्यायामात् प्रदुष्यति ॥ ६४ ॥

अशाकभोजोद्यतमत्तियोन्मसा पयोरसान् सेवति नातियोन्मः ।

निरामभुग्वातकृतां विदाहिनां नच प्रभुग्जीर्णभुगत्यरुक्सः ॥ ६५ ॥

नगरीनगरस्येव रथस्येव रथो सदा ।

स्वशरीरस्य मेधावी क्षत्येष्वव हितो भवेत् ॥ ६६ ॥

इति वङ्गसेनेऽनागतामयप्रतिषेधाधिकारः

समाप्तः ॥ ८१ ॥

—०—

अथ द्रव्यगुणाधिकारमाह ।

चक्षुष्यो मधुरो वृष्यो बल्यो धातुविवर्द्धनः ।

अम्लोरसोमतो हृद्यः क्लीदीदीपनपाचनः ॥ २ ॥

दीपनोच्चरत्नान्न स्तिक्तः शोधनरोपणः ।

पीडनी लेखनः स्तम्भी कषायो घाहिरोपणः ॥ ३ ॥

रसबोध्यविपाकानां मात्रयाद्रव्यमुत्तमम् ।

उत्तरोत्तरमंशेषादितरेषां प्रधानता ॥ ४ ॥

सतिक्लृवणं कुष्टं स्वल्पवातविषापहम् ।

स्वादुपाकरसो ज्ञेयः स्तगरः कुष्टवद् गुणैः ॥ ५ ॥

बल्याश्वगन्धा वातघ्नी कासश्वासचये हिता ।

देवदारुभवेत्तप्तः त्वासश्वासहामयापहम् ॥ ६ ॥

शीथं लघु च शीतञ्च सुगन्धि कटुकं गुरु ।
 वातपित्तहरो वत्या हृष्यांसग्रहिणी वला ॥ ७ ॥
 श्रीफलैरण्डमूलानि शूने वातकफोत्थये ।
 घृणिपर्णीसिरा चैव पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ८ ॥
 वातभोजनसंस्कारे शस्यते वातभूयसाम् ।
 चक्षुष्यं वातपित्तघ्नं बल्यं लोहितचन्दनम् ॥ ९ ॥
 ह्रीवेरं हृदिहृत्तासं दृष्ट्वातोसारनाशनम् ।
 पाचनं दीपनं हृष्यं शूलघ्नं विश्वमेघजम् ॥ १० ॥
 चातश्लेष्महरं हृद्यं सुस्तं पित्ताऽविरोधि च ।
 पिप्पलोद्गीर्हृगुल्मार्थं जठरं विधीयते ॥ ११ ॥
 दीपनीपाचनीहृद्या नात्युष्णा कटुक्रा मता ।
 मरिचं नातिशीतोष्णं पित्तल कफवृत्तजित् ॥ १२ ॥
 संग्राहिरोचनं सुस्तं दीपनं दीपपाचनम् ।
 सतिक्तातिविपासोष्णा संग्राहिष्यामपाचनी ॥ १३ ॥
 गुडूचीवातपित्तघ्नी मेहघ्नीपाचनीसरा ।
 हृदि कुटन्वरश्वासं कासारोचकनाशिनी ॥ १४ ॥
 किराततिक्तकस्तिकी रक्तपित्तज्वरापहः ।
 यावद्गुणैरसैस्तिक्ता प्रोक्ता भूनिस्त्ववत्सरा ॥ १५ ॥
 किराततिक्तवत् क्षेये चायमाणादुरालमे ।
 कफवातज्वरहृदि हृद्यरोचकनाशने ॥ १६ ॥
 कफपित्तहरी तिक्ता वरिष्ठखदिरद्रुमौ ।
 दृष्ट्वा रोचकवोसर्पं कण्डूकुटविनाशनौ ॥ १७ ॥
 वासकः कामवैश्वर्यं रक्तपित्तकफापहः ।
 सेव्यः पित्तकफस्त्रेदं दाहदोर्गन्धनाशनः ॥ १८ ॥
 कफवातहरी पथ्या बुद्ध्यायुः स्वरवर्धनी ।

विवन्धश्वासकासास्र हिकामारुचिनाशिनी ॥ १८ ॥

कफवातहरं केश्यमचमच्चिवलप्रदम् ।

वयसः स्थापनं हृथं शस्तमामलकं त्रिषु ॥ २० ॥

ककुभो भग्नरुग्घातो कदरो टन्तदार्ध्यकृत् ।

कण्डू रोगापचीपिप्पे विशेपाद्रजनी हिता ॥ २१ ॥

तद्वह्नीर्विशेषेण कफाभिष्यन्दनाशिनी ।

पार्श्वरुक्कासश्वासार्तिं हिकान्नं पौष्करम्पतम् ॥ २२ ॥

मूलं कर्कटकस्यापि शृङ्गीकुक्ष्यनिले हिता ।

जीरकौलाहयं पृथ्वी चव्या दीपनपाचनी ॥ २३ ॥

भेदनं पिप्पलीमूलं दीपनं शूलनाशनम् ।

कट्फलो मुखरोगघ्नः कासश्वासकफापहः ॥ २४ ॥

कर्पूरः शीतलः पाके चक्षुष्यः कफनाशनः ।

सुगन्धिः कटुर्को हृद्यः कंकोलः कफवातजित् ॥ २५ ॥

तद्वज्जातीफलं प्रोक्तं लवङ्गकुसुमानि च ।

चक्षुष्यं मधुरं सेव्यं पुण्डरीकं च शस्यते ॥ २६ ॥

कुङ्कुमं तूष्णवीर्यं स्याद्वातघ्नं विषनाशनम् ।

नाल्युष्णं नातिशीतञ्च वीर्यतो मरिचं सितम् ॥ २७ ॥

कण्डूघ्नं रोचनं हृद्यं हृथं चैवार्द्रकं स्मृतम् ।

सिन्धुं तीक्ष्णं कटुरसं शूलाजीर्णविवन्धजित् ॥ २८ ॥

तीक्ष्णोष्णं कटुकं पाके रुच्यं पित्ताग्निवर्धनम् ।

कटुश्लेष्मानिलहरं गन्धाढ्यं जीरकं हितम् ॥ २९ ॥

आर्द्राकुस्तुम्बरी कुर्यात् स्वादुसौगन्ध्यद्वयताम् ।

सा शुष्कामधुरापाके दृष्ट्यादाहरुजापहा ॥ ३० ॥

जम्बीरः पाचनः तीक्ष्णः कृमिवातकफापहः ।

मुरभिर्दीपनो हृद्यो मुखवैशद्य कारकः ॥ ३१ ॥

भस्मत्वं नैति दग्धा क्षिमिक्षिमि कुरुते चमंगन्याहुतास्ते ।
सा शुद्धाशोभनीयावरतनुमृगजाराजयोध्यप्रशस्ता ॥ ४४ ॥

करनलजलमध्ये स्थापयित्वा महद्भिः

पुनरपि तदवश्यं चिन्तनीयं महद्भिः ।

भवति यदि सरक्तं तज्जलं पीतवर्णं

न भवति मृगनाभिः क्वचिमोऽसौविकारः ॥ ४५ ॥

—०—

सौवर्चलन्तु काचाभं सैन्धवं स्फटिकप्रभम् ।

करमर्दफलाकारा द्राक्षा सा मध्यमा स्मृता ॥ ४६ ॥

उच्चमासैव विज्ञेया या भवेद्भोस्तनाकृतिः ।

रक्तचन्दनमत्यन्तं लोहितं चोत्तमं मतम् ॥ ४७ ॥

हरिद्राकुंकुमाभा तु त्र्येष्टा पीता तु मध्यमा ।

अतिपीता प्रशस्ता तु ज्ञेया दारुनिशाबुधैः ॥ ४८ ॥

खण्डश्च विमलं त्र्येष्टं चन्द्रकान्तसमप्रभम् ।

रुद्रपुष्पसुसंकाशमगोद्धा चोत्तमा भता ॥ ४९ ॥

श्वेतचन्दनमत्यन्तं त्र्येष्टं गुरु सुगन्धि च ।

सुवर्णह्रदिकं ज्ञेयं धातुमाचिकमुत्तमम् ॥ ५० ॥

त्र्येष्टं शिलाजतु ज्ञेयं यत्क्षिप्रं न विशीर्यति ।

तोयपूर्णं कांस्यपात्रे प्रतानेन विवर्द्धते ॥ ५१ ॥

स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः ।

नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिक्विलः ॥ ५२ ॥

शुष्को दुर्गन्धिकश्चैव वर्णान्यत्वमुपागतः ।

गुग्गुलुः सतु विज्ञेयः पुराणो बीर्यवर्जितः ॥ ५३ ॥

शधिकान्तनिभं त्र्येष्टं तथा स्फटिकसन्निभम् ।

कर्पूरं स्निग्धमत्यर्थं सुदृढतया हरिणुका ॥ ५४ ॥

समं शुभ्रं गुरुस्निग्धं फलं जात्याः प्रशस्यते ।
 एला सूक्ष्मफला त्र्येष्टा प्रियंगुः श्यामपांडुरा ॥ ५५ ॥
 सुरा पीता बरा प्रोक्ता सुस्तमानूपसम्भवम् ।
 अविकारा लघुदीर्घा लताकस्तूरिका मता ॥ ५६ ॥
 सरलत्वक् क्वचिर्ज्ञेया नलिकाश्वत्थपिच्छिला ।
 सुगन्धिगुरुक्षुद्रश्च सुरदारुप्रकीर्तितः ॥ ५७ ॥
 सरलं स्निग्धमत्यर्थं सुगन्धि च मनोहरम् ।
 मृगशृङ्गनिभं कुष्ठं शिरोच्छेदे वचारुणा ॥ ५८ ॥
 कनिष्ठांगुलिसंकाशं मुत्तमं यन्निर्घर्षकम् ।
 सुसूक्ष्मकेसरा स्निग्धा मांसी पिङ्गजटाकृतिः ॥
 काकतुण्डनिभः स्निग्धः त्र्येष्टः स्यादगुरुर्गुरुः ॥ ५९ ॥
 वर्तुला मांसला स्वच्छा त्र्येष्टा पूतिः प्रकीर्तिता ।
 सुगन्धिशीतं चोथोरं कीर्तितं गन्धकर्मणि ॥ ६० ॥
 बराहमूर्ध्ववत्कन्दो बाराहीकन्दसंज्ञितः ।
 भिषजातदलाभे तु चर्मकारालुकी मतः ॥ ६१ ॥
 सूक्ष्मास्थिमांसलापघ्ना सर्वकर्मणि सम्प्रता ।
 चितान्धसि च या मज्जेज्ज्ञातव्यमया च सा ॥ ६२ ॥
 एतेषामपरेषाञ्च नवता प्रचरो गुणः ॥ ६३ ॥
 अक्षोडकश्च वातामं सुञ्जातो भिषुकस्तथा ।
 पारावतं पीलुफलं लवलीफलमेव च ॥
 नामान्येतानि सर्वाणि प्रसिद्धान्युक्तनामभिः ॥ ६४ ॥

अथ प्रतिनिधिमाह ।

शुक्लद्रुसो गौमये श्याञ्चन्दने रक्तचन्दनम् ।
 सिद्धार्थं सर्षपः प्रोक्तः सैन्धवं लवणे मतम् ॥ ६५ ॥

मधु यत्र न विन्देत तत्र जीर्णगुडो मतः ।
 चोराभावे भवेन्मीढो रसोमासूर एव वा ॥ ६६ ॥
 बराहकान्तकाभावे स्तम्भने विकसा मता ।
 चित्रकाभावतो दन्तो क्षारः शिखरिजोऽथवा ॥ ६७ ॥
 दद्यात्संकुष्टकं वैद्यः सुवर्णक्षीर्यभावतः ।
 अभावादस्त्रवेतस्य पक्वं चुक्रं प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥
 अर्कपर्णादिपयसो ह्यभावे तद्रसो मतः ।
 रसाञ्जनस्याभावे तु सम्यग्दार्ढ्यं प्रयुज्यते ॥ ६९ ॥
 नीलोत्पलस्याभावे तु कुसुदं देयमिष्यते ।
 रक्तचन्दनका भावे नक्षीशोरं विदुर्वुधाः ॥ ७० ॥
 श्रीखण्डचन्दनाभावे देयं कर्पूरमिष्यते ।
 कर्पूराभावतो देयं ग्रन्थिपर्णं विशेषतः ॥ ७१ ॥
 रुचकाभावतो दद्यात्तवणं विडमुत्तमम् ।
 शङ्खक्यभावतो देयं शिखिपिच्छञ्च तद्गुणम् ॥ ७२ ॥
 अभावे हिङ्गुपत्रास्तु हिङ्गु तद्गुणकारकम् ।
 ऊपरा भावतो देयं लवणं पांशु पूर्वकम् ॥ ७३ ॥
 अन्योन्या भावतोऽन्योऽन्यं देयं वैद्येन जागता ।
 सिताभावे भवेत् खण्डः शाल्यभावे च घटिकः ॥ ७४ ॥
 सुवर्णमथवा रूप्यं योगे यत्र न लभ्यते ।
 तत्र लौहेन कर्माणि भिषक्कुर्याद्विचक्षणः ॥ ७५ ॥
 तालीशपत्राभावे तु स्वर्णताली प्रशस्यते ।
 अभावान्नागपुष्पस्य पद्मकेसर मुच्यते ॥ ७६ ॥
 सौराष्ट्रभावतो ज्ञेया कठिनी गुणकारिणी ।
 अभावे लक्षणायास्तु नीलकन्दशिखा मता ॥ ७७ ॥
 यूथिकामावतो ज्ञेया जानी तद्गुणकारिणी ।

मयूराभावतो दद्याच्छृङ्गसाखुकानपि ॥ ७८ ॥
 कक्षोलाभावतो जातो यस्ता तस्या अभावतः ।
 लवङ्गकुसुमं देयं यतो दृष्टं तदर्थकत् ॥ ७९ ॥
 बंधूकाभावतो देयं पुष्पं पुन्नागसम्भवम् ।
 वकुलाभावतो देयं कच्चारोत्पलपद्मजम् ॥ ८० ॥
 माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात् स्वर्णगैरिकम् ।
 अभावे सोमरान्यास्तु प्रपुत्राटफलं मतम् ॥ ८१ ॥
 दारुहरिद्राभावे तु हरिद्रा दीयते बुधैः ।
 अहिंसाया अभावे तु मानकन्दः प्रकीर्तितः ॥ ८२ ॥
 तुम्बुरतैलाभावे तु हितमारुष्करं यदि ।
 यदा न पौष्करं मूलं कुष्टं योज्यं तदा बुधैः ॥ ८३ ॥
 लाङ्गल्यभावतो वज्रिपत्री दद्याद्विषग्वरः ।
 असम्भवे तु द्राक्षायाः काश्मर्याः फलमिष्यते ॥ ८४ ॥
 तथोरभावे पुष्पन्तु मधूकस्य समीरितम् ।
 न भवेद्दाडिमं यत्र हृच्चान्नं तत्र योजयेत् ॥ ८५ ॥
 चविकागजपिप्पली पिप्पलीमूलवत् स्मृते ।
 अभावे पृष्णिपर्णास्तु सिंहपुच्छो विधीयते ॥ ८६ ॥
 मूलाभावे त्वचं ग्राह्यं लताजिह्विन्यसम्भवे ।
 न तं तगरपादी स्यादभावे कुष्टमिष्यते ॥ ८७ ॥
 युष्मातः पश्चिमे ख्यातो ग्राह्यं तालस्य भस्तकम् ।
 भस्मातकासहत्वे तु रक्ताचन्दनमिष्यते ॥ ८८ ॥
 रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च ।
 युष्मात्तद्विधमन्यन्तु द्रव्यज्ञानविशारदः ॥ ८९ ॥

इति द्रव्यस्य भावाभावी ।

पयः सर्पिः प्रयोगे च गव्यमेव प्रशस्यते ।

मूत्रे गोमूत्रमप्येवं विशेषो यत्र नेरितः ॥ ८० ॥

सारः स्यात् खदिरादीनां निम्बादीनां त्वचस्तथा ।

फलंतु दाडिमादीनां पटोलादे च्छदस्तथा ॥ ८१ ॥

महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भानि यानि च ।

तेषान्तु बल्कलं ग्राह्यं क्लृप्तमूलानि कृत्स्नयः ॥ ८२ ॥

कुर्मपृष्ठावरस्थाया मध्ये निम्ना समाचला ।

दुर्गन्धा शब्दसंयुता शिला नेष्टा तु पैवणे ॥ ८३ ॥

इति वङ्गसेने द्रव्यगुणाधिकारः समाप्तः ॥ ८२ ॥

—०—

अथ गणपाठाधिकारमाह ।

स्थिरापुनर्नवैरण्ड शङ्खसर्पपजीवकाः ।

खदंद्वाभीरुलांगूली विदारोहसपादिकाः ॥ १ ॥

हृहत्थी पुष्पिणी च विश्वे देवा महाबला ।

सहायगालविन्दा च हृश्चिकाली महासहा ॥

शोषगुल्मानिलश्वास कासपित्तहरो गणः ॥ २ ॥

आरग्वधो निशांवष्टा करकस्तापसद्रुमः ।

चुद्रखेता महाखेता हृश्चिकालीत्ययं गणः ॥

व्रणकुष्ठविषश्वास कृमिमेदः कफापहः ॥ ३ ॥

सुरसे कासमर्दय फण्णिज्जार्जकभूस्तृणम् ।

निर्गुण्डीसुरसाफंजी कुलाहलसुगन्धिका ॥ ४ ॥

चवकः कालभालश्च चवपुष्टिः प्रचीवलः ।

विडङ्गः काकमाची च मरिचो मूषकर्णिका ॥ ५ ॥

सुपर्णी चेति वर्गीय कृमिश्लेष्मविनाशनः ।

कासारुचिप्रतिश्याय श्वासहा व्रणशोधनः ॥ ६ ॥

कुष्ठकं विफलाराठं वृद्धिकाग्निः सुहोपयः ।
 वातारिरप्यपामार्गो मेदोऽर्शोऽश्मरिमेहहा ॥ ७ ॥
 पिप्पल्यग्निवचावासा कालग्रन्थिकसुस्तकम् ।
 मार्गोऽमूर्वा महानिम्बं पाठायष्टी च सर्पपाः ॥
 द्विगुतिक्ता विडङ्गश्च वातश्लेष्महरो गणः ॥ ८ ॥
 एलाचक्राद्वक्रीन्तोल्वक् पत्ररोमाहरोचकाः ।
 चण्डाश्वफलपुन्नाग दारुसर्जरसोनतम् ॥ ९ ॥
 शक्रशक्तिदधिध्याम कुन्दरुव्याघ्रहस्तजाः ।
 एलादिः पिण्डका कण्डू विपानिलकफान्तकृत् ॥ १० ॥
 वचाजलजदेवाह्वा नागरातिविषाभयाः ।
 हरिद्राद्वययव्याह्र कलशोकुटजोद्धवाः ॥ ११ ॥
 वचाहरिद्रादिगणौ वातातोसारनाशनौ ।
 मेदः कफाव्यपवन स्तन्यदोषनिवर्हणौ ॥ १२ ॥
 मूर्वाघण्टानृताराठ पाठाभूनिम्बकूलकाः ।
 करञ्जवरशैरीय सुपवी सकटिलकाः ॥
 मेहकुष्ठन्वरच्छर्दि विपश्लेष्महरो गणः ॥ १३ ॥
 सालस्थन्दनकालीय धवसर्जार्जुनासनाः ।
 शिरीषशिशिपाभूर्ज खट्विरं चन्दनद्वयम् ॥ १४ ॥
 कदरो बालीकर्णय करञ्जः केम्बुकोऽगुरु ।
 गणोऽय कफपाण्डुत्व सुष्टमेहविनाशनः ॥ १५ ॥
 बारुणीदगराभोरुविल्वजातीविषाणिका ।
 सैरेय वृद्धतियुग्म दर्भपूतीकशिग्रपाः ॥ १६ ॥
 जयाग्निमन्यविल्वग्नि नक्तमालाग्निमोरटाः ।
 यर्गोऽन्तर्पिद्रधिश्लेष्म मेदो शुन्मशिरोर्त्तिनुत् ॥ १७ ॥
 धीरद्वर्चोन्निमन्यश्च काशहृत्तादनीकुशाः ।

मोरटेन्दीवरीसूर्य भक्तादण्डकगोक्षुराः ॥ १८ ॥
 वसुको वसिरो दर्भ सैरियाश्मकमेदकाः ।
 भस्मरीशर्कराक्षरस्त्र मारुतार्तिहरो गणः ॥ १९ ॥
 रोधद्वयप्लवाशोक जम्भशैलेय वालुकाः ।
 कदम्बो जिङ्गिणी चैव श्योपर्णी च बहुस्रवा ॥ २० ॥
 वर्गो लोघादिको नान्ना कफमेदो विशोषणः ।
 पानदोषहरो बल्यः स्तम्भोसर्वविषापहः ॥ २१ ॥
 भर्कालर्केन्दुपुष्पी च करञ्जो नागदन्तिका ।
 राक्षामधुकमायूर पादा एष गणः शुभः ॥
 मेदः कफाव्यपवन स्तन्यदोषविनाशनः ॥ २२ ॥
 श्यामादन्तोद्वन्ती च युवाश्यामामृतामृताः ।
 सप्तला शङ्खिनीश्वेता राजवृक्षः सतिल्वकः ॥ २३ ॥
 कम्पिप्लवः करञ्जश्च हेमचोरोत्थय गणः ।
 सदावर्त्तोदरानाह विप्रगुल्मविनाशनः ॥ २४ ॥
 हृहतीधातकीपाठा यष्टोमधुकलिङ्गकाः ।
 दीपनीयो वृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ २५ ॥
 पटोलं चन्दनं मूर्वा पाठातिक्तामृताघनः ।
 पित्तश्लेष्मानिलवर्दि ज्वरकण्डूविषापहः ॥ २६ ॥
 काकोत्थो मधुकं शृङ्गी मेदे द्वे जीवकर्षभौ ।
 प्रपौण्डरीकमृद्वीका ऋद्धिहृत्ती तुगासहा ॥ २७ ॥
 पयस्या पद्मकं छिन्नोत्पेय वर्गोऽतिवृद्धयः ।
 स्तन्यञ्च जीवनो वृक्षः पित्तासानिलनाशनः ॥ २८ ॥
 उपसैन्धवकाशीस हयहिगुशिलाजतु ।
 तुल्यकं चेति मेदघ्नः शर्कराश्मरिच्छदणः ॥ २९ ॥
 भारिवापन्नकोशीर मधुकं चन्दनद्वयम् ।

काशमरीमधुकं चेति सारिवादिरयं गणः ॥ ३० ॥

रक्तपित्तं निहन्त्याशु तृष्णां चातिप्रमाथिनीम् ।

तोत्रपित्तज्वरामर्दं सर्वदाहविनाशनः ॥ ३१ ॥

अञ्जनं फलिनीमांसी पद्मोत्पलरसाञ्जने ।

एलामधुकनागाह्वा विषान्तदीहपित्तनुत् ॥ ३२ ॥

परूपो दाडिमं द्राक्षा काशमरी काकजं फलम् ।

राजादनं सधात्रीकं कतकेन समन्वितम् ॥ ३३ ॥

परूपकादिको नाम्ना गणो वातामयापहः ।

द्वयोरुचिप्रदसृणा मूषदोषविनाशनः ॥ ३४ ॥

—०—

पियंगु समंगा-धातकीलोधमुद्रागचन्दनकुचन्दनमोचरसाञ्जन-
कुम्भीकस्रोतोऽञ्जनपद्मकेसरयोजनवल्गवे दीर्घमूला चेति ।

—०—

अम्बष्टाधातकीलोध्रं समङ्गापद्मकेसरम् ।

मधुकारलुवित्त्वञ्च गणौ मुनिभिरोरितौ ॥ ३५ ॥

प्रियङ्ग्वम्बष्टकादी च पक्कातीसारनाशनौ ।

मन्थानीयौ द्वितौ पित्ते व्रणानां चातिरोपणौ ॥ ३६ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ मधुकप्लघतिन्दुकाः ।

प्रियानवदरीपार्थ नन्दीहृत्ताम्रजम्बलाः ॥ ३७ ॥

पलाशोरुष्करः श्वेतं लोध्रं जम्बूरयं गणः ।

पित्तासृग्मेहनुद्वेष्टो योनिदाहनिवारणः ॥ ३८ ॥

गुडूचीनिम्बधान्याक मधुकं चन्दनान्वितम् ।

तृष्णादाहसृक्छर्दि सर्वज्वरहरो गणः ॥ ३९ ॥

उत्पलं कुमुदं पद्मं कङ्गारं लोहितोत्पलम् ।

मधुकं चेति पित्तान्न त्रिपछर्दिहरो गणः ॥ ४० ॥

सुस्तापाठाहरिद्रे द्वे तिक्ताहैमवतीबचा ।
 द्रवत्यतिविपाकुष्टं भक्तातकफलवयम् ॥ ४१ ॥
 साम्बटं चेति वर्गीय कफरोगनिपुदनः ।
 शोधनः पाचनः स्नान्यो योनिदीपहरो गणः ॥ ४२ ॥
 अक्षधातुभयाहन्ति त्रिफलाविषमज्वरम् ॥
 चक्षुष्यादीपनीपित्त कुष्टमेहकफान्तकृत् ॥ ४३ ॥
 आमलक्यभयाक्षणा चित्रकश्चेत्यर्थं गणः ।
 सर्वज्वरकफघ्नश्च मैदीदीपनपाचनः ॥ ४४ ॥
 वपुताम्रमयः शीश हेमरूप्यश्च तन्मयः ।
 वर्गश्च शूलहृद्रोगपाण्डुमेहगदापहः ॥ ४५ ॥

—०—

लाक्षारेवतकुटजाऽम्बमारकट्फलहरिद्रादयनिम्बसप्तच्छदमा-
 लत्वस्तायमाणा चेति ।

—०—

कषायतिक्तमधुरः कफपित्तार्तिनाशनः ।
 कुष्टकामिहरश्चैव दुष्टत्रणविशोधनः ॥ ४६ ॥
 बिल्वोन्मिन्नस्य श्योनाकः श्रीपर्णीपाटलामहत् ।
 दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिति स्मृतम् ॥ ४७ ॥
 पुष्पापर्णीस्थिरा चैव बृहत्तोदयगोक्षुरम् ।
 हं हण कफवातघ्नं पञ्चमूलं कनिष्ठकम् ॥ ४८ ॥
 विटारीसारिवाद्याग शृङ्गीवत्सादनीनिशा ।
 कच्छपित्तानिलहरं वल्लीजं मूलपञ्चकम् ॥ ४९ ॥
 गृध्रनखीश्वदंष्ट्रा च शैरेयं करमर्दिका ।
 एतच्छ्लेष्मानिलौ हन्ति कण्टकं मूलपञ्चकम् ॥ ५० ॥
 कुण्ड काशहर्यं दर्भो नलश्चेति तृणोडवम् ।

पित्तकृच्छरं पञ्च मूलं वसिष्ठविशोधनम् ॥ ५१ ॥

एतेस्तैलानि सर्पो यि प्रलेपं पानकान्यपि ।

गणैर्विभव्यकुर्वीत यथाविधिभिर्पञ्चवरः ॥ ५२ ॥

एकद्विद्रव्यज्ञोऽपि क्रियायोग्यो बृहन्नृपः ।

हृत्वा तु तत्समं द्रव्यं मय योज्योऽल्पमेवजः ॥ ५३ ॥

इति बह्वर्सेने द्रव्यगणाधिकारः समाप्तः ॥ ८२ ॥

अथ संशोधनसंशमनरसद्रव्यादीनां

वर्गाधिकारमाह ।

मदनकुटज जीमूतेत्ताकुधानां मार्गवन्नोन्नतवेधन-सर्पप-विडङ्ग-
पिप्पली-करञ्ज-प्रपुन्नाट-कोविदार पिलु-कर्चूरनतकटुभरारिष्टाश्व-
गन्धाजगन्धाविदुलबन्धुजीवकश्चेता शतपुष्पाविधौवचैर्वास्तुकाचिचा-
चैत्यूर्ध्वभागहराणीति । तत्र कोविदारपूर्वाणां फलानि कोविटा-
रादीनां मूलानि । बृहच्छामादन्तो द्रवन्तो सप्तला शङ्खिनी-
विषाणिका-गवाक्षी कृगलाक्षी-सुहो-सुवर्णक्षीरी-चित्रक-किणिही-
कुशकाशतिल्वक-कम्पिल्वकचम्पकरम्पकपाटला पूगहरीतक्यामल-
कविभीतक-नीलिनीचतुरगुल-पूतीकारम्बध महावृच-ममकदार्क-
ज्योतिष्मतो चैत्यधोभागहराणि । तत्र तिल्वकपूर्वाणां मूलानि
तिल्वकादीनां पाटलान्तानां त्वचः । कम्पिल्वकफलरज इति ।
पूगादीनामेरुष्टान्तानां फलानि । पूतीकारम्बधयोः पत्राणि । शि-
याणां क्षीराणीति । कोशातकीमसलाशङ्खिनीदेवदालीकारवेक्षिका
चैत्युभयतो भगहराणि एषां स्वरमा इति । पिप्पलीविडङ्गापा-
मार्गशिथुशिरीषसिद्धार्थकमरिच-करवीरविम्बी-गिरिकर्णिका-कि-
णिही-वचाज्योतिष्मतीकरञ्जाकाल्कलसुनातिविषाष्टवैर-ताली

सतमालसुरसार्जकेद्भुदीमेपशृङ्गी-मातुलुङ्गीमुरुङ्गी-पीतुजातीसाल-
तालमधुकलाच्छाहिङ्गुलवणमद्यगोशकद्रसमूवाणि चेति शिरो-
विरेचनानि । तत्र करवीरपूर्वाणां फलानि करवीरादीनामर्जका-
न्तानां मूलानि तालीसपूर्वाणां कन्दाः । तालीसादीनामर्जका-
न्तानां पत्राणि । इद्भुदीमेपशृङ्गीस्त्वक् मातुलुङ्गीमुरुङ्गीपीतु-
जातीनां पुष्पाणि । सालतालमधूकानां साराः । लाच्छाहिङ्गुनि-
र्यासौ । लवणानि पार्थिवविशेषाः । मद्यमासवसंयोगाः । गोशक-
द्रसमूत्रे मलाविति ।

—०—

संशमनान्यत ऊर्ध्वस्वक्ष्यामः ।

तत्र भद्रदारुकुटहरिद्रा वरुणमेपशृङ्गीवलातिबलातर्गरात्त-
गलकच्छुराशक्तकीकुवेराक्षीवीरतरु-सहचरान्निमन्त्र-वत्सादनीश्व-
दद्वाश्मभेदकालकार्कःशतावरी-पुनर्नवावसुकबसिरकर्बूर-भार्गीका-
र्पासीवृश्चिकालीपत्तूरवदरयवकोलकुलित्यप्रभृतीनि विदारिगन्धा-
दिष्व हे चाये पञ्चमूल्यौ समासेन वातसंशमनो वर्गः । चन्दनकुच-
न्दनञ्जीवेरोशीरमंजिष्ठापयस्याविदारीशतावरीगुन्दाशैवालकङ्गार-
कोकनदोत्पलकदलीदूर्वाप्रभृतीनि काकोल्यादिः सारिवादिर्न्यग्रो-
धादिरुत्पलादिस्तृणपञ्चमूलमिति समासेन पित्तसंशमनो वर्गः ।
कालीयकागुरुतैलपर्णी-कुटहरिद्राशीतशिवशतपुष्पासरलरास्त्राप्र-
कीर्योदकीर्येद्भुदीसुमनःकाकादनीलाङ्गलकीहस्तिकर्णसुष्णातता-
ललामज्जकप्रभृतीनि वल्लोकण्टकपञ्चमूल्यौ पिप्पल्यादिर्वृहत्यादि-
र्वचादिर्मुष्ककादिःसुरसादिरारखधादिरिति समासेन श्लेष्मसंशमनो
वर्गः । काकोल्यादिः क्षीरघृतवसामज्जाशानिपष्टिकयपगोधुममाप-
शृङ्गाटककशेरुकवपुसैर्वाकालासुकालिन्दककर्कशककतकोद्या-
लुकप्रियालपुष्करबीजकाश्मर्यसधूकद्राक्षाखर्जूरतालनारिकेलेषु-

विकारवलातिवलात्मगुप्ताविदारोपयस्यागोक्षुरकक्षीरकक्षीरमोरट-
मधूलिकाकूष्माण्डकप्रभृतीनि समासेन मधुरोवर्गः । दाडिमाम-
लकमातुलुङ्गाम्नातककपित्थकरमर्दवदरकोलप्राचीनामलकतित्ति-
ङ्गीकक्षीशाम्भयपारिवतवेत्रफललकुचाम्बवेतसदन्तशठदधितक्र-
सुराशक्तमौवीरकतुषोदक-धान्यान्त्र-प्रभृतीनि समासेनाम्बोवर्गः ।
सैन्धवसौवर्चलविडपाक्यरोमकसामुद्रक-पक्लिमयवचारोपरसुवर्चि-
काप्रभृतीनि समासेन लवणोवर्गः । पिप्पल्यादिः सुरसादिर्मधु-
शियुमूलक-लसुन-सुपुङ्ख-शीतशिवकुट्टदेवदारुहरिणुकावलगुजफल-
घण्डागुगुलु-मुस्तालाङ्गलकीशकनाशापीलुप्रभृतीनि शालसारा-
दिश्च प्रायशः कटुकोवर्गः । आरग्वधादिर्गुडूच्यादिर्मण्डूकपर्णीवेत्र-
करीरहिरिद्राहयेन्द्रयववरुण-स्वादुकण्टकसप्तपर्ण-हृत्तीक्ष्णशङ्खिनी
द्रवन्तीद्वहृत्कृतवेधन-कर्कोटक-कारवेत्तकवार्ताककरीरकरवीरसु-
मनःशङ्खपुष्पापामार्ग-त्रायमाणाऽशोक-रोहिणी-वैजयन्ती-पुनर्नवा-
हृदिकध्नीज्योतिष्पतीप्रभृतीनि समासेन तिक्तको वर्गः । न्यग्रो-
धादिरस्वटादिः प्रियङ्गादिलोधादिस्त्रिफलाशुलकीजम्बाम्नास्थि-
तिन्दुकादीनि कतकशाकफल-पापाणभेदक-वनस्पतिफलानि
आमलक्यादिः शालसारादिश्च प्रायशः कोविदारकुरवकजीवन्ती-
चिल्लोपालकी-सुनिपखप्रभृतीनि नीवारचणकादयो मुद्गादयश्च
समासेन कपायोवर्गः । पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवैरा-
न्त्रवेतससरिचाजसोदाभन्नातकास्थिहिङ्गुनिर्व्यासा इति दशेमानि
दीपनीयोवर्गः । . . .

इति वङ्गसेने संशोधनसंशमनरसद्रव्यादीनां वर्गा-

धिकारः समाप्तः ॥ ८३ ॥

अथर्तुचर्यामाह ।

भूवाप्यान्नेघनिःस्यन्दा त्पाकादग्नाज्जलस्य च ।
 वर्षास्त्रिग्नवले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः ॥ १ ॥
 तस्मात्साधारणः सर्वो विधिर्वर्षासु बध्यते ।
 उदमस्य दिवास्त्राप मवश्यायं नदीजलम् ॥ २ ॥
 व्यायाममातपं चैव व्यवायं चात्र वर्जयेत् ।
 दिव्यं कथितकूपोत्थं वार्षिकं सारसमेव वा ॥ ३ ॥
 प्रातृपिथ्याकुले बङ्गौ भोज्यमक्लेदि वातजित् ।
 परिशुष्कलघुस्निग्ध मुष्णास्त्रबलणञ्च यत् ॥ ४ ॥
 प्रायोवपानं सक्षौद्रं संस्कृतञ्च घनोदये ।
 पुनः संरक्षता चाग्निं यवगोधूमशालयः ॥ ५ ॥
 पुराणाजाङ्गलैर्मासैर्भोज्या यूषैश्च संस्कृतैः ।
 पिवेत् क्षौद्रान्वितं चाल्पं माध्वीकारिष्टमेव वा ॥ ६ ॥
 सविषप्राणिविषमूत्र लालानिष्टोवनादिभिः ।
 मदाद्भूत तदा तोयं नवकं विषसन्निभम् ॥ ६ ॥
 वायुना विषजातेन तत्पूर्वण च धर्षितम् ।
 बर्ज्यं सर्वोपयोगेषु तस्मिन् काले विपश्चिता ॥ ७ ॥
 सोपदंशं निषेवेत माध्वीकारिष्टमाधवम् ।
 पिवेत्प्रातृपि धीरोऽल्पं रात्रौ तदपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥
 निरुहैर्वस्त्रिभिश्चान्यै रथान्यैर्मारुतापहैः ।
 कुपितं शमयेद्वातं वार्षिकं वा चरेद्बिधिम् ॥ ९ ॥
 भूयो वर्षासु संयोगो गङ्गाया दक्षिणे तटे ।
 ततः प्रातृथ्य वर्षास्थ्या वृत् तेषां प्रकीर्तितौ ॥ १० ॥
 तस्या एवोत्तरे देशे बहुशो हिमसंकुले ।
 भूयः शीतमतस्तत्र हेमन्तत्रिग्निराबुधौ ॥ ११ ॥

ततो व्यतीते वर्षर्तौ नीलमेघावगुण्ठिते ।

व्योम्निप्रसन्नदिङ्मागं लब्धप्रमरभास्करे ॥ १२ ॥

शक्रस्वलव्यसंदर्श जातमाममदस्ततः ।

आक्रामतिरवेर्लक्ष्मो स्तिरस्कृत्यघनान्मलान् ॥ १३ ॥

द्राक्षेच्छुचोरसेवी च भवेत्तत्र नराधिपः ।

वर्षाभूपचितं पित्तं निर्हरेच्च विरेचनैः ॥ १४ ॥

तिक्तसर्पिः प्रयोगैर्वा शिराणां चापि मोक्षणैः ।

दिवासूर्यांशुसंतप्तं निशिचन्द्रांशुशीतलम् ॥

कालेन पक्वं निर्दोषं भगस्ये नरविपोकृतम् ॥ १५ ॥

हंसोदकमिति स्यात्तं शारदं विमलं शुचि ।

स्नानपानावगाहेषु हितमस्तु यथाश्रुतम् ॥ १६ ॥

शारदानि च मात्स्यानि वासांसि विविधानि च ।

इक्षवः शङ्खयो मुक्ताः सरोऽम्भः कथितं पयः ॥ १७ ॥

शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चेन्दुरश्मयः ॥ १८ ॥

हेमन्ते शिशिरे चाग्रं विसर्गादनयोर्वलम् ।

शरदसन्तयोर्मर्ष्यं ह्येनं वर्षानिदाघयोः ॥ १९ ॥

शीते शीतानिलस्यर्शं संरुद्धो वलिनां वली ।

पक्ता भवति हेमन्ते मात्रा द्रव्यगुरुक्षमः ॥ २० ॥

स यदा नेत्यनं युक्तं लभते देहजं तदा ।

रसं हिनस्यती वायुः शीते शीतः प्रकुप्यति ॥ २१ ॥

तस्मात्तुषारसमये स्निग्धान्नलवणानुसान् ।

शोऽकानूपमांमाना म्मेध्यानामुपयोजयेत् ॥ २२ ॥

विन्नेशयानां मांसानि प्रमहानां मृतानि च ।

भक्षयेन्मदिरां सौधु मधुराक्षं पितृक्षरं ॥ २३ ॥

गौरसानिच्छुर्विस्तृती र्षसातैलं नृबोदनम् ।

हेमन्ते भजतस्तोय सुखमायुर्न हीयते ॥ २४ ॥
 शस्ता रमाला हेमन्ते पीतधूमो मदोत्कटः ।
 चौत्तकौशेय मवीत स्वाशये कुण्डकास्तृते ॥ २५ ॥
 कुङ्कुमागुरुदिग्धाङ्गो निर्वाते भूमिगङ्गरे ।
 शयीतशयने चापि सुविस्तीर्णे मनोरमे ॥ २६ ॥
 तत्वापनीतदारास्तु प्रिया नार्थः खलङ्कताः ।
 रमयेत्तु यथा कामं वलादपि मदोत्कटाः ॥ २७ ॥
 प्रवात प्रमिताहार सुदमन्य हिमागमे ।
 वर्जयेच्छीतसस्पर्शं शीतान्युपवनान्यपि ॥ २८ ॥

—०—

एष एव विधिः कार्यः शिशिरपि सदा बुधेः ।
 हेमन्तशिशिरौ तुल्यौ शिशिरऽल्पं विशेषणम् ॥ २९ ॥
 रौच्यमादानजं शीतं मैघमाकृतवर्षजम् ।
 तस्माद्हेमन्तिकः सर्वः शिशिरे विधिरिष्यते ॥ ३० ॥
 निवातमुष्णं त्वधिकं शिशिरे गृहमाग्रयेत् ।
 कटुतिक्तकषायानि वातलानि लघूनि च ।
 वर्जयेदन्नपानानि शिशिरे शीतलानि च ॥ ३१ ॥

—०—

असन्ते निचितः श्लेष्मा दिनकृद्वाभिरीरितः ।
 कायाग्निं बाधते रोगां स्ततः प्रकुरुते बहन् ॥ ३२ ॥
 तस्मादसन्ते कर्माणि वमनादीनि कारयेत् ।
 गुर्वेक्ष्मक्षिग्धमधुरं दिवास्वप्नञ्च वर्जयेत् ॥ ३३ ॥
 यष्टिकान्वा नशाब्जालीन् मुद्गनीवारको द्रवान् ।
 लावादिबिष्किररसे दद्याद्दृष्टेय युक्तिः ॥ ३४ ॥
 पटोलनिम्बधातार्कैः स्तित्कैश्चान्यैर्हिमात्यरे

शुचिशुक्लांबरधर चन्दनागुरुधूपितः ।
 पीनस्तनोरुजघनां रूपयीवनशालिनीम् ॥ ३६ ॥
 काननेषु विचित्रेषु सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
 कामयेद्यावदुक्ताहं सुमनाः कुसुमागमे ॥ ३७ ॥
 व्यायाममञ्जनं धूपं तीक्ष्णञ्च कबलप्रहम् ।
 तैलप्रायुक्ताश्च सर्वान्वा सेवेत कुसुमागमे ॥ ३८ ॥

—०—

मयूषैर्जगतस्तेजो ग्रीष्मे ये पीयते रविः ।
 स्वादुशीतं द्रवं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम् ॥ ३९ ॥
 शीतं मयर्करं मन्यं जाङ्गलान्मृगपक्षिणः ।
 घृतमप्ययः सशाल्यन्नं भजन् ग्रीष्मेन मीदति ॥ ४० ॥
 व्यायामसुष्णमायासं मैथुनं परिदाहि च ।
 रसांश्चापि गुणोद्भक्तान्विशेषेण विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥
 सर्पिः खण्डगुडाक्तांश्च सहकारसमन्वितान् ।
 प्रातराशं पिबेत्तर्ल न च शीतोत्तरं ततः ॥ ४२ ॥
 यथगोधूमविकृतो ज्वालीय विविधानपि ।
 प्रसृष्टानूपमांसानि वृथान्यन्यानि यान्यपि ॥ ४३ ॥
 मद्यमस्यं न वा योष्य मद्यया सुबह्वदकम् ।
 लवणाम्बकटूष्णानि व्यायामं चात्र वर्जयेत् ॥ ४४ ॥
 दिवाशीतगृहे निद्रां निशिसोमांशुशीतले ।
 भजेच्चन्दनदिग्धाङ्गः प्रवातं हर्म्यमस्तके ॥ ४५ ॥
 व्यजनेः पाणिसंस्पर्शं चन्दनोदकशीतलैः ।
 मेथ्यमानो भजेदस्यां सुक्तामणिविभूषितः ॥ ४६ ॥
 काननानि च शीतानि जलानि कुसुमानि च ।
 पीयकाले निषेवेत मैथुनाद्विरतो नरः ॥ ४७ ॥

हेमन्ते भजतस्तोय सुण्णमायुर्न होयते ॥ २४ ॥

शस्ता रसाला हेमन्ते पीतधूसो मदोत्कटः ।

चौल्लकौशेय संवीत स्वाशये कुथकास्तृते ॥ २५ ॥

कुङ्कुमागुरुदिग्धाङ्गो निर्वाते भूमिगङ्घरे ।

शयीतशयने चापि सुविस्तीर्णे मनोरमे ॥ २६ ॥

तत्वापनीतदारास्तु प्रिया नार्थः खलद्भृताः ।

रमयेत्तु यथा कामं बलादपि मदोत्कटाः ॥ २७ ॥

प्रवात प्रमिताहार मुदमन्य हिमागमे ।

वर्जयेच्छीतसस्पर्शं शीतान्युपवनान्यपि ॥ २८ ॥

—०—

एष एव विधिः कार्यः शिशिरैपि सदा बुधैः ।

हेमन्तशिशिरी तुल्यौ शिशिरेऽल्पं विशेषणम् ॥ २९ ॥

रौच्यमादानजं शीतं मैघप्रारुतवर्षजम् ।

तस्माद्देमन्तिकः सर्वः शिशिरे विधिरिष्यते ॥ ३० ॥

निवातमुष्णं त्वधिकं शिशिरे गृहमाश्रयेत् ।

कटुतिक्तकपायानि वातलानि लघूनि च ।

वर्जयेदन्नपानानि शिशिरे शीतलानि च ॥ ३१ ॥

—०—

वसन्ते निश्चितः श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरितः ।

कायाग्निं बाधते रोगां भूततः प्रकुर्वते बह्वन् ॥ ३२ ॥

अस्माद्वसन्ते कर्माणि धमनादीनि कारयेत् ।

गुर्वग्नस्त्रिधमधुरं दिवास्वप्नञ्च वर्जयेत् ॥ ३३ ॥

याष्टिकान्वा नवाब्जालोन् मुद्गनीवारको द्रवान् ।

लावादिबिष्किररसे दद्याद्भृष्टैश्च युक्तितः ॥ ३४ ॥

पटोलनिम्बवार्त्ताकै स्तिक्तैश्चान्यैर्हिमात्यये ॥ ३५ ॥

शुचिगुक्तांशरधर खन्दनागुरुधूपितः ।
 पोमस्तनोरुजघनां रूपयौवनशालिनीम् ॥ ३६ ॥
 काननेषु विचित्रेषु सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
 कामयेद्यावदुक्ताहं सुमनाः कुसुमागमे ॥ ३७ ॥
 व्यायाममञ्जनं धूपं तोषणञ्च कवलयहम् ।
 तैलपुष्पांश्च स्यान्वा मेवेत कुसुमागमे ॥ ३८ ॥

—•—

मयूपैर्जगतस्तेजो ग्रीष्मे ये पीयते रविः ।
 स्वादुशीतं द्रव्यं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम् ॥ ३९ ॥
 शीतं मशकैरं मन्यं लाङ्गलान्मृगपक्षिणः ।
 घृतमयः मशाल्यन्नं भोजनं ग्रीष्मेन सीदति ॥ ४० ॥
 व्यायाममुष्णमायामं मैथुनं परिदाहि च ।
 रसांश्चापि गुणोद्दिक्तान्विशेषेण विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥
 मर्षिः खण्डगुडाक्तांश्च सहकारममन्वितान् ।
 प्रातरागं पिबेत्तत्र न च शीतोत्तरं ततः ॥ ४२ ॥
 यथगोधूमविकृतो ज्वालीय विविधानपि ।
 प्रसङ्गानूपमांसानि वृष्यान्व्यानि यान्यपि ॥ ४३ ॥
 मद्यमस्त्रं न वा योष्य मद्यया सुवह्दकम् ।
 मद्यमास्त्रकटूष्णानि व्यायामं चास्य वर्जयेत् ॥ ४४ ॥
 दिवागीतगृहे निद्रां निशिसोमांश्चगीतले ।
 भजेत्खन्दनदिग्धाद्गन्धः प्रयातं हर्म्यमस्तके ॥ ४५ ॥
 व्यजनेः पाणिमस्पर्शं खन्दनोदकगीतलैः ।
 मीथ्यमाणो भजेदप्यां मुक्तामणिविभूषितः ॥ ४६ ॥
 काननानि च गीतानि जलानि कुसुमानि च ।
 योऽस्यकाले निपेयेत मैथुनाद्विरतो नरः ॥ ४७ ॥

व्यायाममातपं यासं व्यवायं चात्र वर्जयेत् ।

पानभोजनसस्कारान् प्रायः चौद्रान्वितान् भजेत् ॥ ४८ ॥

मरांसि वाप्यः सरितो वनानि रुचिराणि च ।

चन्दनानि जलार्द्राणि स्रजश्च कमलोज्ज्वलाः ॥ ४९ ॥

तालवृन्तानि नोदारा स्तथा शीतगृहाणि च ।

घर्मकाले निषेवेत वासांसि सुलघूनि च ॥ ५० ॥

ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताह्य द्रुतुमन्धिरिति स्मृतः ।

तत्र पूर्वं विधिस्त्याज्यः सेवनीयो परः क्रमात् ॥ ५१ ॥

मतां वृत्तोपपन्ने न विधिनां वर्तते नरः ।

घोरान्तुक्ततान्दीपा आग्न्यास्तु कदाचन ॥ ५२ ॥

कार्तिकस्य दिनान्यष्टा वष्टावग्रहणस्य च ।

यमदष्टा इति प्रोक्ता स्वल्पाहार्यऽत्र जीवति ॥ ५३ ॥

वर्षासु मयमल्पं वा समन्तादुदकं पिबेत् ।

उष्णमेव वसन्ते च काम ग्रीष्मेषु शीतलम् ॥ ५४ ॥

हेमन्ते च वसन्ते च शीतमिष्टं पिबेन्नरः ।

शृतशीतपयो ग्रीष्मे प्राहृत्काले रस पिबेत् ॥ ५५ ॥

यूय वर्षागमस्यान्ते प्रपिवेच्छीतलं जलम् ।

अतिस्निग्धकटुप्राय हितमग्नी घनक्षये ॥ ५६ ॥

समदोष समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।

प्रसन्नात्केन्द्रिय मनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ ५७ ॥

इति वङ्गसेन ऋतुचर्याधिकारः समाप्तः ॥ ८४ ॥

—०—

अथ धान्यवर्गमाह ।

रूचः, शालिस्त्रिदोषघ्न स्तृष्णामेदो निवारणः ।

महाशालिः परं हृष्यः कलमः श्लेष्मपित्तहा ॥ १ ॥

शीतो गुरुस्त्रिदोषघ्नो मधुरो गौरयष्टिकः ।

किञ्चिद्दीनो सितस्तृष्णात्यरोयं रसपाकतः ॥ २ ॥

दग्धायामवनौ जानाः शालयो लघुपाकिनः ।

कपाया वद्विण्मूत्रा रूक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥ ३ ॥

स्थलजाः कफपित्तघ्नाः कपायाः कटुकान्वयाः ।

किञ्चिद्वसतिक्तमधुराः पवनानलवर्धनाः ॥ ४ ॥

कैदारा मधुरा हृष्या बल्याः पित्तनिवर्धनाः ।

द्वैपत्कपायाल्पमला गुरवः कफशुक्रलाः ॥ ५ ॥

रोम्यातिरोम्या लघवः शीघ्रपाका गुणोत्तराः ।

विटाहिनी दोषहरा बल्या मूत्रविवर्धनाः ॥ ६ ॥

शालयः क्षिणरूढा ये रूक्षास्ते वर्धवर्चसः ।

श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः श्लेष्मपित्तहा ॥ ७ ॥

तद्विषयद्रुनीवाराः कोरदूपाः प्रकीर्तिताः ।

बहुमूत्राः कफहराः कपाया वातकोपनाः ॥ ८ ॥

सूपानामुत्तमामुद्रा लघीयांसोऽल्पमारुताः ।

हरितास्तेष्वपि वरा आढकीकफपित्तनुत् ॥ ९ ॥

रजः कपायो विषदोषशुक्र बलामट्टिचयकहिदाही ।

कटुर्विपाके मधुरस्तु शिम्बिः प्रभिन्नविण्मारुतपित्तलघ ॥ १० ॥

उष्ण कुलत्यो रसतः कपायः कटुर्विपाके कफमारुतघ्नः ।

कुटाश्मरीशुल्मनिपूदनश्च संघाहकः पीनसकासहन्ता ॥ ११ ॥

आनाहमेदो गुदकीलहिक्काश्वाभापहः शोणितपित्तक्षयः ।

बलासहन्ता नयनन्मयघ्नो विशेषतो बन्धकुलत्य उक्तः ॥ १२ ॥

दन्त्योऽग्निमेधाजघ्नोऽल्पमूत्रः स्तन्योऽय केशोऽनिलहा गुरुश्च ।

तिन्नेषु सर्वेष्वसितः प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तधान्ये ॥ १३ ॥

पाके रसे चापि कटुः प्रदिष्टः सिद्धार्थकः शोणितपित्तकोपी ।
 स्निग्धोष्णतीक्ष्णः कफवातहन्ता तथागुण चास्मितसर्पपोऽपि ॥
 मापो गुरुभिन्नपुरीषमूत्रः स्निग्धोतिहृष्योमधुरोनिलघ्नः ।
 सन्तर्पणः स्तन्यकरो विशेषादलप्रदः शुक्रकफादहृद्य ॥ १५ ॥

अहृद्यः स्नेहपित्तघ्नो राजमापोऽनिलार्तिहृत् ।

अवलगुलः रैडगजो निष्पावा वातपित्तलाः ॥ १६ ॥

काकाण्डो मात्मगुप्तानां मापवत् फलमादिशेत् ।

मसूरा मधुराः पाके ग्राहिणी रुक्षशीतलाः ॥ १७ ॥

मकुष्टकाः प्रशस्यन्ते रक्तपित्तज्वरादिषु ।

चणकाश्च मसूरश्च यण्डोका सहरेणवः ॥ १८ ॥

गुरवः शीतमधुराः सकषाया विरूक्षणाः ।

पित्तश्लेष्मणि शस्यन्ते सूपेप्वालेपनेषु च ॥ १९ ॥

यवः कषायो मधुरो हिमश्च कटुर्विपाके कफपित्तहारी ।

व्रणेति पथ्यस्तिलवच्च नित्यं प्रवक्ष्यमूत्रो बहुवातवर्चाः ॥ २० ॥

स्थव्याग्निमेधास्वरयणैश्च सुपिच्छिलः स्थूलविलेपनश्च ।

मेदोमरुत्तृट्शमनोऽय रुक्षः प्रसादनः शोणितपित्तयोद्य ॥ २१ ॥

एतैर्गुणैर्हीनतरांश्च किञ्चिद्विद्याद्यवेभ्योऽतियवानशेषैः ॥ २२ ॥

गोधूम उक्तो मधुरो गुरुश्च बल्यः स्थिरः शुक्ररुचिप्रदश्च ।

स्निग्धोऽतिशीतो निलपित्तहारी सन्धानकच्छ्लेष्महरः सरश्च ॥ २३ ॥

तेषां मसूरः सग्राही कलायो वातलः परम् ।

अनार्तवव्याधिहरमपर्यागतमेव च ॥ २४ ॥

अभूमिल नवं चापि धान्यं न गुणवत् स्मृतम् ।

नव धान्यमभिष्यन्दि लघुसंवत्सरोपितम् ॥ २५ ॥

विदाहगुरुविष्टग्नि विरुद्धं वातकोपनम् ॥ २६ ॥

इति वङ्गसेने शिम्बिधान्यशकधान्यवर्गाधिकारः ॥ ८५ ॥

अथ मांसवर्गमाह ।

संग्राहीदीपनः शीतः कपायो मधुरो लघुः ।
 लावः कटुविषाकथ सन्निपाते च पूजितः ॥ १ ॥
 श्वेदगुरुस्तु मधुरो वृथो मेधाग्निवर्धनः ।
 तित्तिरिः सर्वदोषघ्नो ग्राही वर्णप्रसादनः ॥ २ ॥
 रक्तपित्तहरः शीतो लघुश्चापि कपिञ्जलः ।
 कफोत्थेषु च रोगेषु मदे वाते च शस्यते ॥ ३ ॥
 वातपित्तहरा बल्या मेधाग्निबलवर्धनाः ।
 लघाक् कृक्कुरा हृदय स्तथा जैरोपनक्तुरा ॥ ४ ॥
 कपायः स्वादुलवण स्वचः कैशोरुचिप्रदः ।
 मयूरः स्वरमेधाग्नि दृक्क्योत्रेन्द्रियदाह्यक्षत् ॥ ५ ॥
 स्निग्धोष्णोऽनिलहा वृथः स्वेदस्वरवलावहः ।
 वृंहणः कुक्षुटो वन्य स्तद्वद्गम्यो गुरुर्मतः ॥ ६ ॥
 मृगाः सर्वप्रकाराद्य पित्तश्लेष्महराः स्मृताः ।
 किञ्चिद्वातकराद्यापि लघवो बलवर्धनाः ॥ ७ ॥
 कपायो मधुरो हृद्यः पित्तामृक् कफवातहा ।
 संग्राहीरोचनो बल्य स्तेपा मेणो ज्वरापहः ॥ ८ ॥
 मधुरो मधुरः पाके दोषघ्नोऽनलदीपनः ।
 शीतलो बद्धविण्मूत्रः सुगन्धिर्हरिणो लघुः ॥ ९ ॥
 कपायः स्वादुलवणो गुरुः काणकपोतकः ।
 रक्तपित्तप्रशमनो विशदोऽपि कपायकः ॥ १० ॥
 कपायो मधुरश्चापि गुरुः पारावतः स्मृतः ।
 कुलिङ्गो मधुरः स्निग्धः कफशुक्रविबर्धनः ।
 सन्निपातहरो वैश्व कुलिङ्गस्त्वतिशुक्लः ॥ ११ ॥

प्रसङ्गाः शोषगुल्मार्थो ग्रहणीदीपिणां हिताः ।
 मर्बदीपहरास्तेषां मेदस्तु बलद्रूपकम् ॥ १२ ॥
 हृपसिहकपिव्याघ्र भासमार्जारभूषिकाः ।
 तरक्षु कुरर श्येन शशघ्नोजम्बुकादयः ॥ १३ ॥
 गुहाशया वातहरा गुरुणा मधुराश्च ते ।
 स्निग्धा बल्या हिता नित्यं नेत्रगुह्यविकारिणाम् ॥ १४ ॥
 नकुलः शल्लकीगोधा शशधापि भुजङ्गमाः ।
 खासकासानिलहरा भूशयाः कफपित्तलाः ॥ १५ ॥
 कपायमधुरस्तेषां शशः पित्तकफापहः ।
 नातिशीतलपौर्यत्वा द्वातसाधारणो मतः ॥ १६ ॥
 महिषो गजयः खड्गी वराहश्चमरोरुहः ।
 आनृपाः मधुराबल्या गुरुस्निग्धाः कफप्रदाः ॥ १७ ॥
 नातिस्निग्धा चमर्यस्तु मदपित्तकफाः स्मृताः ।
 ह्रगलस्वनभिष्यन्दे तेषां पीनसनाशनः ॥ १८ ॥
 हं हणं मांसमौरभ्रं पित्तश्लेष्मकरं गुरु ।
 मेदः पुच्छोद्भवं हृष्य सौरभ्रसंहृशं गुणैः ॥ १९ ॥
 खासकासप्रतिश्याय विषमज्वरनाशनम् ।
 गव्यं यमात्यग्निहितं दुष्पाकमनिलापहम् ॥ २० ॥
 औरभ्रवत्सलवणं मासमेकशफीद्भवम् ।
 हंसकारण्डवक्रौञ्च मद्भुभक्ष्याश्चमारसाः ।
 नन्द्यावर्त्ता बलाकाश्च श्लेष्मला गुरवः प्रवाः ॥ २१ ॥
 मत्स्यः कर्कटकः कूर्मः शिशुमारोऽथ शृङ्गायः ।
 शङ्खाश्च गुरवः स्निग्धाः शीताहृष्याजलेशयाः ॥ २२ ॥
 सामुद्रा गुरवः स्निग्धा मधुरा नातिपित्तलाः ।
 उष्यावातहरा हृष्या वर्चश्लेष्मविवर्धनाः ॥ २३ ॥

बलावहाविशेषेण मत्स्याशित्वात्समुद्रजाः ।

समुद्रजेभ्यो नादेया हं हणत्वाद गुणोत्तराः ॥ २४ ॥

इति बङ्गसेने मांसवर्गाधिकारः समाप्त ॥ ८६ ॥

—०—

अथ फलवर्गमाह ।

पाठामूर्वाशठोशाकं वास्तूकं सुनिपयकम् ।

विद्यादृग्राहि त्रिदोषघ्नं मार्कवं चित्तिवास्तुकम् ॥ १ ॥

संप्राहीक्षकः प्रोक्तः स्निग्धः पञ्चांगुलः सरः ।

भण्टीवत्सादनीफल्नी वातघ्नी लघुदीपनी ॥ २ ॥

काकमाचीत्रिदोषघ्नी स्तन्या हृष्या कलम्बिका ।

चांगिरीकफवातघ्नी सार्पपं सर्वदोषघ्नात् ॥ ३ ॥

सार्पपं च सकौसुम्भं राजिकैकान्तपित्तलां ।

नाडीकः कफवातघ्नः कटुर्मधुरशीतलः ॥ ४ ॥

सतीनशाकं श्लेष्मघ्नं त्रैपुटं वातघ्नमतम् ।

थोहस्तिनी सपत्तूरा मूत्रलाश्मरिभेदनी ॥ ५ ॥

कालशाकंतु कटुकं दीपनं कफशोधजित् ।

हृष्यास्निग्धा च शीता च मृत्युघ्नी चाप्युपोदिका ॥ ६ ॥

रूचो विषमदघ्नश्च प्रशस्तो रक्तपित्तिनाम् ।

मधुरो मधुरः पाके शीतलस्तंडुलीयकः ॥ ७ ॥

वर्षाभ्यौ कफवातघ्नी हिती शोफोदरेर्गर्गसि ॥ ८ ॥

कटुतिक्तरसा हृद्या रोचना वज्रिदीपनी ।

सर्वदोषहरीलघुः कण्ठग्रामूलकपोतिका ॥ ९ ॥

महत्तद्गुर्विष्टम्भि तीक्ष्णमामश्च दीपलम् ।

तत्तेव सैहसिदन्तु वातनुत्कफपित्तजित् ॥ १० ॥

शुष्कन्तु शोथशमनं गरदीपहरं लघु ।

विष्टम्निवातलं शकं शुष्कमन्यत्र मूलकात् ॥ ११ ॥

पुष्पञ्च पत्रञ्च फलं तथैव यद्योत्तरन्ते लघवः प्रदिष्टाः ।

तेषान्तु पुष्पं कफवातहन्तु फलं निहन्त्यात्कफमारुती च ॥ १२ ॥

रक्तपित्तहरीशोष कुष्ठघ्नोहिलमोचिका ।

कफापहं शाकमुक्तं वरुणप्रपुनाटयोः ॥ १३ ॥

स्निग्धोष्णतीक्ष्णः कटुपिच्छिलश्च गुरुः सरः स्वादुरसोऽथ बल्यः ।

वृथश्च मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्नास्थिसंधानकरो रसोनः ॥ १४ ॥

हृद्रोगजीर्णन्वरकुचिशूलविबन्धगुल्मारुचिकासशोषान् ।

दुर्न्नामकुष्ठानिलसादजन्तु समीरणश्चासकफांश्च हन्ति ॥ १५ ॥

नात्युष्णवीर्योऽनिलहाकटुश्च तीक्ष्णो गुरुर्नातिकफावहश्च ।

बलावहः पित्तहरोऽथ किञ्चित्पलांडुरग्नेश्च विष्टद्विकारी ॥ १६ ॥

स्निग्धोऽथ रुच्यः स्थिरधातुकर्त्ता बल्योऽथ मेधाकफपुष्टिदाता ।

स्वादुर्गुरुः शोणितपित्तशस्तः सपिच्छिलः क्षीरपलांडुरुक्तः ॥ १७ ॥

न्यग्रोधोदुम्बरांश्चत्य प्लक्षपद्मादिपल्लवाः ।

कपायाः स्तम्भनाः शीता हिताः पित्तातिसारिण्याम् ॥ १८ ॥

अंसनं कटुकं पाके कफघ्नमनिलापहम् ।

शोथघ्नमुष्णवीर्यञ्च पत्रं पूतिकरंजजम् ॥ १९ ॥

बेणोः करीराः श्लेष्मघ्नाः कटुकारसपाकतः ।

विदाहिनो नातिबलाः सकपाया विरूक्षणाः ॥ २० ॥

कफशोणितपित्तघ्नं रोचनं कारवेल्लकम् ।

कारवेल्लकवज्ज्ञेयं फलं कर्कोटकस्य च ॥ २१ ॥

पटोलपत्रं पित्तघ्नं नालं तस्य कफापहम् ।

फलं त्रिदोषशमनं मूलं तस्य विरेचनम् ॥ २२ ॥

पित्तनुत्तेषु कूषाण्डं बालं मध्यं कफापहम् ।

शुष्कं लघूष्णं सत्तारं दीपनं वस्तिशोथनम् ॥ २३ ॥

सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यं चेतोविकारिणाम् ।

बालं सनीलं व्रणसं तत्तु पित्तहरं स्मृतम् ॥ २४ ॥

तत्पाण्डुकफकृज्जीर्णं मम्लं वातविनाशनम् ।

एवोरुकं सकर्कारुसंपक्वं कफपातजित् ॥ २५ ॥

सत्तारं मधुरं रुच्यं तच्चोक्तं नातिपित्तलम् ।

सत्तारमधुरं मेदि शीर्णवृत्तं कफावहम् ॥ २६ ॥

कंडूकुट्टमिध्रानि कफपित्तहराणि च ।

फलानि वृंहतीनान्तु कटुतिक्तलघूनि च ॥ २७ ॥

कफवातहरं तिक्तं रोचनं कटुकं लघु ।

वार्त्ताकुदीपनं प्रोक्तं जीर्णं सत्तारपित्तलम् ॥ २८ ॥

अत्यर्थमधुरारुच्यं पित्तघ्नीमधुकर्कटी ।

कर्कन्धुकोलवदरमम्लं वातविनाशनम् ॥ २९ ॥

पक्वं पित्तानिलहरं स्निग्धं समधुरं सरम् ।

पुराणं दृढप्रशमनं श्रमघ्नं दीपनं परम् ॥ ३० ॥

सौवीरं वदरं स्निग्धं मधुरं वातपित्तजित् ।

आमं कपित्थं वैश्वर्यं ग्राहिमधुरवातलम् ॥ ३१ ॥

कफानिलहरं पक्वं मधुरानुरसं गुरु ।

दीपलं पित्तकृत्पाण्डु जम्बीरमतिपित्तलम् ॥ ३२ ॥

गुल्मवातकफश्वास काशघ्नं बीजपूरकम् ।

केसरं मातुलुङ्गस्य दीपनं कफवातजित् ॥ ३३ ॥

वातपित्तहरं मांसं त्वक्स्निग्धोष्णानिलापहा ।

अत्यर्थमधुरारुच्यं पित्तघ्नी मधुकर्कटी ॥ ३४ ॥

पित्तमारुतलङ्घालं पित्तलं बह्वकेसरम् ।

हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसवलप्रदम् ॥ ३५ ॥

कपायानुरसं स्वादु.वातघ्नं हृंहणं गुरु ।

पित्ताविरोधिसंपक्कं माम्भं शुक्रविवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥

हृंहणं मधुरं बल्यं गुरुविष्टभ्यजीर्यति ।

आम्रातकफलं हृष्यं सस्त्रे हं कफवर्द्धनम् ॥ ३७ ॥

त्रिदोषविष्टभकरं लकुचं शुक्रनाशनम् ।

अम्लं तृष्णाहरं रुच्यं पित्तकृत्करमर्दकम् ॥ ३८ ॥

हृद्यं स्वादुकपायाम्लं भव्यमास्यविशोधनम् ।

गरदोषहरं नीपं प्राचीनामलकं तथा ॥ ३९ ॥

वातापहं तित्तिडीकं मामं पित्तबलासकृत् ।

ग्राहिसंदीपनं हृद्यं सम्पक्कं कफवातनुत् ॥ ४० ॥

तस्मादल्पान्तरगुणं कोशाम्भफलमुच्यते ।

अम्लीकायाः फलं तद्वत् पक्कं भेदि तु केवलम् ॥ ४१ ॥

अम्लं समधुरं हृद्यं तृष्यमेतत्तु रोचनम् ।

वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नागरंगफलं गुरु ॥ ४२ ॥

कपायानुरसं चैषां दाडिमं नातिपित्तलम् ।

दीपनीयं रुचिकरं हृद्यं विचैर् विबन्धनम् ॥ ४३ ॥

द्विविधं तत्तु विज्ञेयं मधुरं बाम्बमेव च ।

त्रिदोषघ्नन्तु मधुरं मम्लं वातकफापहम् ॥ ४४ ॥

अश्वत्योदुम्बरप्लव न्यग्रोधानां फलानि च ।

कपाय मधुराम्लानि वातलानि गुरुणि च ॥ ४५ ॥

वृत्तमारुक्करं स्वादु पित्तघ्नं शोषवह्निकृत् ॥ ४६ ॥

अत्यम्लं वातघ्नं ग्राहि जाम्बवं कफवातजित् ॥ ४७ ॥

आमं कपायं संग्राहि तिन्दुकं वातकीपनम् ।

विप्राके गुरुसम्पक्कं मधुरं कफपित्तजित् ॥ ४८ ॥

मधुरं च कपायञ्च स्निग्धं संग्राहि चालुकम् ।

स्थिरोक्तरश्च दन्तानां वाकुलं फलमुच्यते ॥ ४८ ॥

अत्यम्बुमियन्मधुरं कपायानुरसं लघु ।

वातघ्नं पित्तजननं मामं विद्यात्परूपकम् ॥ ५० ॥

तदेव मधुरं पक्वं वातपित्तनिवर्हणम् ।

विपाके मधुरं शीतं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ५१ ॥

पौष्करं स्वादुविष्टम्बि वल्यं कफहरम्परम् ।

कफानिलहरं तीक्ष्णं स्निग्धं संग्राही दीपनम् ॥ ५२ ॥

कटुतिक्तकपायोष्णं बालं बिल्वसुदरद्वयम् ।

तदेव विद्यात्संपक्वं मधुरानुरसं गुरु ॥ ५३ ॥

विदाहिविष्टम्भकरं दीपकतृप्तिमारुतम् ।

पनसं सकपायन्तु स्निग्धं स्वादुहिमं गुरु ॥ ५४ ॥

मौचं स्वादुरसं प्रोक्तं कपायं नातिशीतलम् ।

रक्तपित्तहरं हृद्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरु ॥ ५५ ॥

फलं स्वादुरसं चैव तालजं गुरुपित्तजित् ।

तद्बीजं स्वादुपाकञ्च मूत्रलं वातपित्तजित् ॥ ५६ ॥

हृद्यं मूत्र विवन्धघ्नं पित्तासृग्वातनाशनम् ।

कैश्वं रसायनं मेध्यं काश्मर्यफलमुच्यते ॥ ५७ ॥

क्षतक्षयापहं हृद्यं हृंहृणं तर्पणं गुरु ।

स्निग्धं हृद्यं समधुरं खर्जूरं रक्तपित्तजित् ॥ ५८ ॥

हंहृणीयमहृद्यञ्च मधूककुसुमं गुरु ।

वातपित्तप्रशमनं फलं तस्योपदिश्यते ॥ ५९ ॥

कपायं कफपित्तघ्नं किञ्चित्तिक्तं रुचिप्रदम् ।

हृद्यं सुगन्धिसाम्बुञ्च लवलीफलमुच्यते ॥ ६० ॥

शमीफलं गुरुस्वादु, रुक्षोष्णं कफनाशनम् ।

गुरुश्लेष्मातकफलं कफक्षन्मधुरं हिमम् ॥ ६१ ॥

करञ्जकिंशकारिष्टफलं जन्तु प्रमेहनुत् ।

प्रियालमज्जामधुरो हृष्यः पित्तानिलापहः ॥ ६२ ॥

वैभीतको मदकरः कफवातविनाशनः ।

कपाय मधुरो मज्जा कोलानां पित्तनाशनः ॥ ६३ ॥

लृणाढ्यनिलघ्नश्च तददामलकस्य च ।

बीजपूरकसंपाको मज्जाकोशाम्नसम्भवः ॥ ६४ ॥

स्वादुपाकोऽग्निबलदः स्निग्धः पित्तानिलापहः ।

शीतं कपायमधुरं टङ्कं मारुतकहुर ॥ ६५ ॥

यस्य यस्य फलस्येह वीर्यम्भवति यादृशम् ।

तस्य तस्यैव बीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ ६६ ॥

धान्येषु मांसेषु फलेषु चैत्र शकेषु चानुक्तमपि प्रसोद्धात् ।

यास्वादतो भूतगुणैर्गृहीत्वा तदादिशेद्ब्रह्ममनस्यबुद्धिः ॥ ६७ ॥

इति वङ्गसेने फलवर्गाधिकारः समाप्तः ॥ ८० ॥

—०—

अथ व्यञ्जनमांसव्यञ्जनयोरधिकारमाह ।

वातश्लेष्महरश्चैव रक्तपित्तप्रदूषणम् ।

अग्निसन्दीपनं हृद्यं मुष्णान्नन्तु प्रशस्यते ॥ १ ॥

धीतः सुविमलः शुद्धो मनोज्ञः सुरभिः समः ।

स्निग्धः सुप्रसृतस्तूष्णो विशदद्यौदनो लघुः ॥ २ ॥

शीतलं तर्पणं हृद्यं मधुश्रमहरं परम् ।

लघुद्रुतविपक्वन्तु सद्योन्नं वारिभावितम् ॥ ३ ॥

त्रिदोषकोपणं रुचं मलकन्मूत्रशोधनम् ।

स्वादुमेदः कफोत्क्षेदि वार्यन्नं निशिसंस्थितम् ॥ ४ ॥

मधुरं शीतलं सारलं लृणाघ्नं दीपनं परम् ।

आमघ्नन्तर्पणं हृद्यं घोलभक्तं रुचिप्रदम् ॥ ५ ॥
 भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ।
 अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ॥ ६ ॥
 वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं पाचनं परम् ।
 विशेषादामवातघ्नं लवणं काष्ठीकार्द्रकम् ॥ ७ ॥
 दीपनं तर्पणं रुच्यं मामघ्नमनुलोमनम् ।
 मन्दाग्नीनां सदा पथ्यं विल्वं काष्ठीकसंस्थितम् ॥ ८ ॥
 कपाय मधुरो रुच्यः शीतः पाके कटुर्लघुः ।
 श्लेष्मपित्तप्रशमनो मुह्ययूयोत्तमो मतः ॥ ९ ॥
 सुखिन्नो निस्तुपो भृष्ट ईपत् सूपो लघुर्मतः ।
 मापः समधुरो रुच्यो विदाही चाम्बपित्तकृत् ॥ १० ॥
 वातघ्नो दीपनश्चैव चाम्बमापो गुरुः सरः ।
 खिन्नं निष्पीडितं शाकं हितं स्यात् स्नेहसंस्कृतम् ॥ ११ ॥
 वातपित्तहरं हृद्यं पुष्टिकृद्वलवर्धनम् ।
 कफमेदोऽग्निसहरं सरं सुलघुदीपनम् ॥ १२ ॥
 घातार्ताकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितम् ।
 हितं ततो गुरुतरं सतैलं लवणान्वितम् ॥ १३ ॥
 वृद्धं कृष्णार्णवकं खिन्नं घृतभृष्टं सुपाचितम् ।
 पकं चिन्वाफलं तक्रं गुडयुक्तं सुभावितम् ।
 विकटुन्निमुगन्निभ्यां मोदितं दीपनाशनम् ॥ १४ ॥
 सुखिन्नमग्नौ घृतपाचितञ्च गुडान्वितं घोरविलोडितञ्च ।
 विजातयुक्तं च सकेसरं च दुग्धाम्बमेतत्परिकीर्तितञ्च ॥ १५ ॥
 हृद्यञ्च पुष्टिञ्च करोति कान्तिं निषेव्यमाणं बलमादधाति ॥ १६ ॥
 लघुघ्नो हृंहृणा रुच्या ऋद्धिघ्ना रागपाण्डवः ।
 रप्तालां पाचनीहृष्या वातहृत् सगुडं दधि ॥ १७ ॥

गुरवः पैष्टिका भक्ष्या हृंहणा वातनाशनाः ।

धातपित्तहरो हृथ्यो घृतपूरोऽग्निनाशनः ॥ १८ ॥

हृंहणा समिता भक्ष्या बल्याः पित्तानिलापहाः ।

पिशितैर्वेश्वराद्यैः संपूर्णा गुरुतर्पणाः ॥ १९ ॥

बैदलाः शैमला ज्ञेया गुरवो भिन्नवर्चसः ।

वातपित्तहरा वर्णा दृष्टिदा घृतपाचिताः ॥ २० ॥

भक्ष्यास्तैलकृता दृष्टि वातघ्नाः पित्तकोपनाः ।

तोयेनालीङ्गिता भक्ष्याः स्निग्धाश्चाभसि दुर्जराः ॥ २१ ॥

गुरवो हृंहणा हृथ्या ये च क्षीरोपसाधिताः ।

अत्युष्णा मण्डलाः पथ्याः शीतला गुरवो मताः ॥ २२ ॥

लाजाम्बुर्दिङ्गराः शीता हृथ्या गुर्वी च शङ्कुली ।

पिष्टकं गुरुविष्टम्भि त्रिदाहि कफपित्तलैर्म् ॥ २३ ॥

कपालाङ्गारपक्ताः स्युः किञ्चित्तुतराद्य ते ।

कुल्माषा वातला रूक्षा गुरवो भिन्नवर्चसः ॥ २४ ॥

शक्तवो वातला रूक्षा वातवर्चोऽनुलोमिनः ।

तर्पयन्ति नरं शीघ्रं पीताः सद्यो बलाश्च ते ॥ २५ ॥

मधुरा लघवः शीताः शक्तवः शालिसम्भवाः ।

ग्राहिणी रक्तपित्तघ्ना स्तृष्णाक्किर्दिङ्गरापहाः ॥ २६ ॥

मूपका वा यवैर्घाल मोदकाः पित्तनाशनाः ।

विष्टम्भो पायसो बल्यो मेदः कफकरो गुरुः ॥ २७ ॥

कफपित्तकरा बल्या कृशराऽनिलनाशिनी ।

पाचनो दीपनः पथ्यो मण्डः स्याद्घृततण्डुलैः ॥ २८ ॥

लाजमण्डो विश्वानामपथ्यः पाचनदीपनः ।

वातानुलोमनो हृथ्यः पिप्पलीनागरायुतः ॥ २९ ॥

वातानुलोमनीलघ्वी सोण्यतन्वी ज्वरापहा ।

ग्राहिणी तर्पिणी हृद्या विलेपी वलवर्हिनी ॥ ३० ॥

शाकमांसफलैर्युक्ता विलेप्योऽम्बाय दुर्जरा ।

दाडिमामलकैर्यूपो बङ्गिहृदातपित्तहा ॥ ३१ ॥

श्वासकासप्रतिश्याय कफघ्नो मूलकैः कृतः ।

यवकीलकुलत्यानां यूपः कण्ठोऽनिलापहः ॥ ३२ ॥

कपित्थतक्रचांगीरो मरिचालाजिचित्रकैः ।

कफवातहरो छोप खण्डो दीपनपाचनः ॥ ३३ ॥

प्रीणनः प्राणजननः श्वासकासक्षयापहः ।

रक्तापित्तत्रयमहरो हृद्यो मांसरसः स्मृतः ॥ ३४ ॥

रोचनोपाचनोहृद्या साम्ना वातकफापहा ।

जम्बीरसाधिता चैव कलम्बो च निगद्यते ॥ ३५ ॥

अम्लं समधुरं हृद्यं रोचनं वातकोपनम् ।

वार्त्ताकं दीपनं हृद्यं तित्तिडीगुडसाधितम् ॥ ३६ ॥

रक्तापित्तहरं रुच्यं स्नेहेन परिभावितम् ।

वातपित्तहरं बल्यं रोचनं बङ्गिदीपनम् ॥ ३७ ॥

संयाहिपुष्टिदं ज्ञेयं कदलीमूलसाधितम् ।

कमिष्ठुहृदं रुच्यं हरिद्रा नाडिकायुतम् ॥ ३८ ॥

सुगन्धिमधुरं साम्नां दुर्जरं तक्रमावितम् ।

रुच्यं वातहरश्चैव नागरंगस्य केसरम् ॥ ३९ ॥

द्वैपत्तिकं समधुरं हृद्यं रोचनदीपनम् ।

वार्त्ताकं कटुकं पाके सतीनदलसाधितम् ॥ ४० ॥

वातलं रोचनं हृद्यं कलाय दलसाधितम् ।

अम्लं समधुरं हृद्यं रोचनं कण्ठशीघनम् ॥

वातघ्नं दुर्जरं चैव मष्टचीरप्रसाधितम् ॥ ४१ ॥

दुर्जुरामधुरा रुच्या वटका माप्रकादिभिः ।

चिञ्चाफलेन संसिद्धा रोचनाश्च विशेषतः ॥ ४२ ॥
 कफवातहरं रुच्यं दीपनं चानुलोमनम् ।
 ज्वरितानां हितं मांसं पटोलफलसाधितम् ॥ ४३ ॥
 रक्तपित्तविसर्पघ्नं कुट्टमेहज्वरापहम् ।
 रोचनञ्च विशेषेण वेत्नाय परिसाधितम् ॥ ४४ ॥
 वातक्षेपहरं रुच्यं दीपनं चानुलोमनम् ।
 ज्वरकुट्टहरं मांसं झस्रवार्त्ताकुसाधितम् ॥ ४५ ॥
 कफपित्तप्रशमनं ज्वरकुट्टविनाशनम् ।
 कुमिमेहहरं हृद्यं मांसं कैम्बुकसाधितम् ॥ ४६ ॥
 कफवातहरं हृद्यं दृष्ट्यारोचकनाशनम् ।
 अम्रघृन्तर्पणं मांसं सिद्धं बदरशृङ्गकैः ॥ ४७ ॥
 आर्द्रामामलकैः सिद्धं विदोषशमनं लघु ।
 ज्वरहृच्चामेदोघ्नं मांसं बङ्गिप्रदीपनम् ॥ ४८ ॥
 वातक्षेपहरं हृद्यं मनुलोम्यग्निदीपनम् ।
 गलरोगप्रशमनं शुष्काम्बफलसाधितम् ॥ ४९ ॥
 रुच्यं प्रीतिकारं हृद्यं मांसमास्त्रेण साधितम् ।
 कफपित्तप्रशमनं व्रणशोधनरोपनम् ॥ ५० ॥
 अग्निसन्दीपनं मांसं कारवेल्लकसाधितम् ।
 कफवातहरं हृद्यं दीपनं चानुलोमनम् ॥ ५१ ॥
 रोचनं बलकृन्मांसं बालमूलकसाधितम् ।
 प्रक्षीणबलमांसस्य वातेनाभिहतस्य च ॥ ५२ ॥
 रुच्यं पुष्टिकारं हृद्यं मृगमांसं हितं नृणाम् ।
 वातहृद्गलगण्डास्य रोगशोथविनाशनम् ॥ ५३ ॥
 स्त्रेहं रोचनं दीप्यं मांसं दाधिकमुच्यते ।
 मांसन्तु कफपित्तघ्नं तोड़कादिरसाधिकम् ॥ ५४ ॥

कासश्वासहरं हृद्यं चक्षुष्यं स्वरवर्णदम् ।
हृद्यं वातहरं रुच्यं वृष्यं पुष्टिवलप्रदम् ॥ ५५ ॥
त्र्येष्टं पथ्यतमं मांसं करमर्दकसाधितम् ।
शूलघ्नं दीपनं मांसं सिद्धं चिक्षाफलेन तु ॥
कफपित्तहरं रुच्यं बालचिक्षाकसाधितम् ॥ ५६ ॥
रुच्यं कृफानिलहरं विषन्धानाहभेदनम् ।
शूलघ्नं दीपनं हृद्यं पक्वचिक्षाफलेन तु ॥ ५७ ॥
वातश्लेष्महरं हृद्यं मर्शः कुष्ठविनाशनम् ।
विवदमीपन्मधुरं मूलकैः सह जाङ्गलम् ॥ ५८ ॥
वातश्लेष्मानिलहरं मेहकुष्ठविषायहम् ।
धातूनां वृंहणं वृष्यं करोरैः सह साधितम् ॥ ५९ ॥
गुरुविषाके मधुरो रुच्यो मांसवटः स्मृतः ।
उदावर्तानिलहरो हृद्यो मूलकसाधितः ॥ ६० ॥
कफपित्ताविरोधी स्या द्वातार्त्तिकेन प्रसाधितः ।
पिष्टः सिद्धः पटोलस्य पत्रैः जीर्णज्वरापहः ॥ ६१ ॥
कफपित्तहरो रुच्यो श्रोणसुन्दरसाधितः ।
विदोषकोपनं सर्वं पूतिमांसं प्रकीर्तितम् ॥ ६२ ॥
कफपित्तहरं हृद्यं दीपनं हृदिनाशनम् ।
मांसं अङ्गिकरं विद्या दार्द्रकेन प्रसाधितम् ॥ ६३ ॥

इति वङ्गसेने व्यञ्जनमांसव्यञ्जनयोगुणाधिकारः

समाप्तः ॥ ८८ ॥

—०—

अथ मत्स्यव्यञ्जनगुणाधिकारमाह ।

गुरती वृंहणाः सर्वे मत्स्याः गुणवत्प्रदाः ।

विपाके मधुराद्योष्णा कफपित्तविवर्धनाः ॥ १ ॥
 दोषाग्नीनां हिताः पुंसां मैथुनप्रतिषेविनाम् ।
 मत्स्यादं नाभिबाधन्ते रोगावातसमुद्भवाः ॥ २ ॥
 मधुरो वृंहणो वृष्यो वातहा वज्रिदीपनः ।
 दग्धमत्स्यो रुचिकरो जम्बीरपरिभावितः ॥ ३ ॥
 दग्धमत्स्यो भवेच्छ्रेष्ठो बलपुष्टिविवर्धनः ।
 क्षीणाः क्षताश्च ये केचि द्ये भग्ना जर्जरीकृताः ॥
 दग्धमत्स्या हितास्तेषां सतैललवणान्विताः ॥ ४ ॥
 हृद्यः प्रीतिकरो रुच्यो बातहृज्जर्जराम्नकः ।
 वातानुलोमनो हृद्यः पुष्टिकृद्बलवर्धनः ॥
 अत्यग्नीनां नृणां शस्तः सस्नेहः शाकमत्स्यकः ॥ ५ ॥
 विपाके मधुरो हृद्यो विष्टम्भी वातकोपनः ।
 रोचनस्तु विशेषेण मूलकेन प्रसाधितः ॥ ६ ॥
 आरेवतैः सिद्धमत्स्य आमवातविनाशनः ।
 कटीशूलहरः सम्य ग्विड्बन्धे ऽर्शसां हितः ॥ ७ ॥
 कफवातहरो हृद्यो दीपनो भक्करोचनः ।
 आरनालशृतो मत्स्यो हृद्यश्चैव गुणोत्तरः ॥ ८ ॥
 वातश्लेष्महरो हृद्यो दीपनो भक्करोचनः ।
 अश्वैस्तु संस्कृतो मत्स्यो विबन्धानिलनाशनम् ॥ ९ ॥
 विष्टम्भीरोचनो हृद्यो राजमाषप्रसाधितः ।
 कफघ्नः पित्तशमनो हृद्यः पथ्योऽग्निवर्धनः ॥ १० ॥
 शोथसंशमनश्चैव मत्स्यो वार्त्ताकुसाधितः ।
 अश्वीकया शृतो मत्स्यो विबन्धानाह शूलनुत् ॥ ११ ॥
 दधितकारनालैश्च सिद्धा मत्स्या रुचिप्रदाः ॥ १२ ॥
 त्रिदोषशमनो हृद्यो रुच्यो पुष्टिविवर्धिनी ।

मधुरा कटुमी प्रोक्ता सतीनदलसाधिता ॥ १३ ॥
 वातघ्ना रोचनी हृद्यः पालंक्ष्येन प्रसाधितः ।
 वातघ्नो गुरुरुच्यस्तु मत्स्यघण्टो बलप्रदः ॥ १४ ॥
 विष्टम्भी भिन्नवर्चास्तु शाकघण्टो बलप्रदः ।
 रोचनी मधुरो हृद्यः पित्तघ्नः शोणवृन्त्युक् ॥ १५ ॥
 मूत्रलो गुरुपाकश्च कथितो दधिमत्स्यकः ।
 कफपित्तहरो रुच्यः कर्कोटेन प्रसाधितः ॥ १६ ॥
 कर्कोटीमधुरा हृद्या रुच्या मत्स्येन साधिता ।
 कफपित्तहरोरुच्या निम्बेन परिपाचिता ॥ १७ ॥
 मधुरो रोचनी हृद्यो मत्स्यः कूष्माण्डघण्टितः ॥ १८ ॥
 मूत्रलाभिन्नविट्काच गुर्वी रुच्या कफापहा ।
 अलावूर्मधुरा प्रोक्ता निर्गुण्डोसाधिताबुधैः ॥ १९ ॥
 रोचनः कफपित्तघ्नः केम्बुनाडीप्रसाधितः ।
 रोचनः कफहृत् त्रेयः कूष्माण्डापप्रसाधितः ॥ २० ॥
 कपाय ईपनाधुरो रुच्यो हृद्यः कफापहः ।
 वृष्णाघ्नो गुरुपाकश्च कदलीनाडिका शृतः ॥ २१ ॥
 कफघ्नः कटुकः पाके पिच्छिलो दीपनः परम् ।
 रुच्यः पित्तहरो त्रेयः पिप्पलीनाडिका शृतः ॥ २२ ॥
 मधुरो रोचनी हृद्यो दृष्टिवज्जिविनाशनः ।
 त्रेयः सिद्धफलेनैव साधितः कृमिबर्धनः ॥ २३ ॥
 वातघ्नो मधुरो हृद्यो रोचनः शिथ्विमाधितः ॥ २४ ॥
 कफपित्तहरस्तिक्तो रोचनस्तु विशेषतः ।
 शुष्कपत्रेण मत्स्यान्तः सर्वेषां परिकीर्तितः ॥ २५ ॥
 अशीघ्रो दीपनो याही रुच्यो मधुरपाकतः ।
 काण्डवातामशूलघ्न आङ्गेरीतक्तसाधितः ॥ २६ ॥

संग्राहीदीपनो हृद्यो रुच्यो वातानुलोमनः ।
 कफवातहरः सान्त स्तिन्तिडीकप्रसाधिनः ॥ २७ ॥
 कफपित्तहरो रुच्यः स्वादुक्लृष्टातकोपनः ।
 विपाके दुर्जरः प्रोक्तो राजिका परिसाधितः ॥ २८ ॥
 अम्लः समधुरो हृद्यो रोचनश्चाग्निवर्धनः ।
 वातानुलोमनश्चैव मत्स्ययुक्तेण साधितः ॥ २९ ॥
 मधुरो दुर्जरः प्रोक्तो मत्स्यः कूष्माण्डशुक्लकैः ।
 गुर्वीविपाके मधुरा बटिका वा कृता स्मृता ॥ ३० ॥
 वातक्षेपहरो हृद्यो बलकृत्पित्तकारकः ।
 क्षये क्षीणे मद्यपाने त्रिषुमत्स्यः सदा हितः ॥ ३१ ॥
 संग्राहीदीपनो हृद्यः शूलघ्नो रक्तनाशनः ।
 वातघ्नो मधुरः प्रोक्तो मत्स्यः कञ्चटसाधितः ॥ ३२ ॥
 कषायो मधुरो हृद्यः पित्तघ्नो रोचनस्तथा ।
 दीपनो वातहा ग्राही हृद्यः कञ्चटघण्टिकः ॥ ३३ ॥
 शूलघ्नो दीपनो हृद्यः कफवातामनाशनः ।
 संग्राही च विशेषेण पाठापच्येण साधितः ॥ ३४ ॥
 संग्राही दीपनो हृद्यः कासमर्दकसाधितः ।
 कफपित्तहरो हृद्यो मूलिका शुण्ठिसाधितः ॥ ३५ ॥

इति वङ्गसेने समस्त्यव्यंजनगुणाधिकारः

समाप्तः ॥ ८६ ॥

—०—

अथ द्रवद्रव्याधिकारमाह ।

तत्रादौ तोयवर्गमाह ।

पानादिष्वव्यक्तं सुशीतं तर्पनाशनम् ।

अर्धं लघु च हृद्यञ्च तोयं गुणवदुच्यते ॥ १ ॥
 नादेयं वातलं रुचं दीपनं लघुलेखनम् ।
 नदेऽभिर्यन्दिमधुरं सान्द्रं गुरुकफावहम् ॥ २ ॥
 लघ्नाघ्नं दीपनं हृद्यं कषायं मधुरं गुरु ।
 ताडागं वातलं स्वादु कषायं कटुपाकि च ॥ ३ ॥
 वातश्लेष्महरं दाम्प्यं सचारं कटुपित्तलम् ॥ ४ ॥
 चीण्डामग्निकरं रुचं मधुरं कफपित्तकृत् ।
 कफघ्नं दीपनं हृद्यं लघुप्रस्रवणीद्भवम् ॥ ५ ॥
 सचारं पित्तलं कौषं श्लेष्मघ्नं वज्रिदीपनम् ।
 मधुरं पित्तशमनं मघिदाह्नीद्विदं मतम् ॥
 वैकिरं लघु सचारं कफघ्नं वज्रिदीपनम् ॥ ६ ॥
 कैदारं मधुरं प्रोक्तं विपाके गुरुदोषलम् ।
 तद्वत्पात्वलमुद्दिष्टं विशेषादोषलन्तु तत् ॥ ७ ॥
 सोमद्रमुदकं क्लिष्टं लवणं सर्वदोषकृत् ।
 अनेकदोषमानूपं वार्यभिर्यन्दिगर्हितम् ॥ ८ ॥
 परिदोषैरसंयुक्तं त्रिरवयं तु जाड्यलम् ।
 पाके विदाहि लघ्नाघ्नं प्रशस्तं प्रीतिवर्धनम् ॥ ९ ॥
 दीपनं स्वादुशीतञ्च तोयं साधारणं लघु ॥ १० ॥
 नद्यः शीघ्रवहा लघुरः प्रोक्तायाद्यामलोदकाः ।
 गुर्व्यः शैवालसंछन्नाः कलुषा मन्दगाय याः ॥ ११ ॥
 प्रायेण नद्यो मरुषु सुतिललवणान्विताः ।
 लघ्वाः समधुराश्चैव पौरुषेयावलेहिताः ॥ १२ ॥
 दिवार्ककिरणैर्जुष्टं जुष्टमिन्दुकरैर्निशि ।
 अरुधमनभिर्यन्दि तत्तुल्यङ्गमनावुना ॥ १३ ॥
 गगनावुविदोषघ्नं गृहीतं यत्सुभाजने ।

वलं रसायनं नैत्रं पात्रापेक्षि ततःपरम् ॥ १४ ॥
 भूर्च्छापित्तास्रदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये ।
 क्लमभ्रमपरीतेषु तमके वमथौ तथा ॥
 ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमन्त्रः प्रशस्यते ॥ १५ ॥
 पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे ।
 आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ॥
 हिक्कायां स्नेहपोते च शीताम्बुपरिवर्जयेत् ॥ १६ ॥
 कफमेदोऽनिलघ्नञ्च दीपनं वस्तिशोधनम् ।
 कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकं निशि ॥ १७ ॥
 अरोचके प्रतिश्याये प्रमेहे श्वयथौ क्षये ।
 मन्देऽग्नावुदरे कुष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा ॥
 व्रणे च मधुमेहे च पानीय मन्दमाचरेत् ॥ १८ ॥
 चन्द्रकान्तमणिस्पष्टः शुभ्रैश्चन्द्रांशुभिर्निशि ।
 यन्मुञ्चेन्निर्मलं बारि तद्विद्यादमृतोपमम् ॥ १९ ॥
 स्निग्धं स्वादुहिमं दृढं दीपनं वस्तिशोधनम् ।
 हृथं पित्तपिपासाघ्नं नारिकेरोदकं गुरु ॥ २० ॥
 इति तीर्थवर्गः ।

—०—

अथ क्षीरवर्गमाह ।

अल्पाभिष्यन्दिगोक्षीरं गुरुस्निग्धं रसायनम् ।
 रक्तपित्तहरं शीतं मधुरं रसप्रकरोः ॥ २१ ॥
 अल्पांशुपानध्यायाम कटुतिक्ताऽशनैर्लघु ।
 आजं शोषज्वरश्वास रक्तपित्तातिसारनुत् ॥ २२ ॥
 महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततरं पथ्य ।

चक्षुष्यमग्निदोषघ्नं दधिनाय्यां गुणोत्तरम् ।
 लघुपाके बलासंघ्नं स्त्रीर्योष्यं पक्तिनाशनम् ॥ ३४ ॥
 रसे पाके च मधुरं कषायं वातपित्तनुत् ।
 कोपनं कफवातानां दुर्गन्धान्नाश्चाविकं दधि ॥ ३५ ॥
 पीनसे चातिसारे च शीतके विषमज्वरे ।
 अरुचौ मूत्रकृच्छ्रे च काशे च दधिप्रसूते ॥ ३६ ॥
 शरदृशीश्वसन्तेषु प्रायशो दधिगर्हितम् ।
 हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधिप्रसूते ॥ ३७ ॥
 वातघ्नं कफकृत् स्निग्धं हृद्घ्णं वातपित्तकृत् ।
 कुर्याद्भक्ताभिलाषञ्च दधि यत्सुपरिसुतम् ॥ ३८ ॥
 शृतचोरात्तु यज्ज्ञातं गुणवद्दधि तत् स्मृतम् ।
 वातपित्तहरं हृष्यं धात्वग्निबलवर्धनम् ॥ ३९ ॥
 दध्नः सरो गुरुर्हृषी विज्ञेयोऽनिलनाशनः ।
 वज्रेर्विवर्धनश्चापि कफशूलविवर्धनः ॥ ४० ॥
 दधित्वसारं रुच्यन्तु ग्राहिविष्टम्बिवातलम् ।
 दीपनीयं लघुतरं सकषायं रुचिप्रदम् ॥ ४१ ॥
 दण्डाकृमहरं मस्तु लघुस्त्रीतो विशोधनम् ॥ ४२ ॥
 इति दधिवर्गः ।

—०—

अथ तक्रवर्गमाह ।

ब्रह्मणीदोषशोफार्शो ब्रह्मतीसारगुल्मनुत् ।
 विदोषशमनं तक्रं सुदृढस्नेहमादिशेत् ॥ ४३ ॥
 शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोत्प्लेखामयेषु च ।
 मार्गविरोधे दुष्टे च बाधौ तक्रं प्रशस्यते ॥ ४४ ॥

वातेऽम्बं सैन्धवोपेतं पित्ते स्वादुसशर्करम् ।
 पित्तेतक्रं कफे वापि व्योपचारसमायुतम् ॥ ४५ ॥
 नतु तक्रं चते दद्या ओष्णकाले न दुर्वले ।
 न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके ॥ ४६ ॥
 ग्राहिणीवातलारूक्षा दुर्जरा तक्रकूर्चिका ।
 गुरुः किलाटोऽनिलहा पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ ४७ ॥
 मधुरौ वृंहणी हृषयी तद्वत्प्रेयूपमोरटौ ॥ ४८ ॥
 इति तक्रवर्गः ।

—०—

अथ नवनीतवर्गमाह ।

नवनीतं नवं ग्राहि हृद्यं रोचनदीपनम् ।
 क्षयारूच्यर्दितप्लीहं ग्रहण्यर्शां विकारनुत् ॥ ४९ ॥
 चोरोद्भवं हिमं ग्राहि रक्तपित्ताक्षिद्योगनुत् ।
 क्षतिबुद्धग्निशक्नोजः कफमेदो विशोधनम् ॥ ५० ॥
 विषाके मधुरं सर्पिं वातपित्तविकारनुत् ।
 गव्यं मेध्यञ्च चक्षुषं तत्संस्काराक्षिदीपनुत् ॥ ५१ ॥
 अपस्मारगरोन्मादं मूर्च्छां मनवं घृतम् ।
 अजावीनान्तु सर्पिं पि विद्यात्सखीरवद्गुणैः ॥ ५२ ॥
 इति घृतवर्गः ।

—०—

अथ तैलवर्गमाह ।

क्षिप्रभिन्नचुतोत्पिष्टं मथितं चतपिचिन्ते ।
 भृगुस्फुटितविद्वाग्निं दग्धविस्मिष्टद्वारिते ॥ ५३ ॥

तथाभिहतनिर्भुङ्ग मृगव्याघ्रादिभिः क्षते ।
 सैकाभ्यङ्गावगाहेषु तिलतैलं प्रशस्यते ॥ ५४ ॥
 तद्वदस्तिषु पाने च नश्ये कर्णाक्षिपूरणे ।
 अनुपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये ॥ ५५ ॥
 क्षमिघ्नं सारपं तैलं कंडूकुष्ठापहं लघु ।
 कफमेदोऽनिलहरं लेखनं कटुदीपनम् ॥ ५६ ॥
 विपरके कटुकं तैलं कीसुभ्रं सर्वदोषक्षत् ।
 क्षीमं तैलमचक्षुषं पित्तकृद्वातनाशनम् ॥ ५७ ॥
 फलोद्भवानि तैलानि यान्यनुक्तानि तानि च ।
 गुणात्कर्म च विज्ञाय फलैस्तान्यपि निर्दिशेत् ॥ ५८ ॥
 यावन्तः स्यावराः स्नेहाः समासात्परिकीर्तिताः ।
 सर्वे तैलगुणा ज्ञेयाः सर्वे चानिलनाशनाः ॥ ५९ ॥
 इति तैलवर्गः ।

अथ मधुवर्गमाह ।

विदोषघ्नं मधुप्रोक्तं मेध्यंशंसन्ति वातलम् ।
 ह्रिकाश्वासक्षमिकटिं मेहवृण्णा विषापहम् ॥ ६० ॥
 मेदः स्थौल्यापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम् ।
 दोषत्रयहरं पक्व भाममन्त्रश्च दोषलम् ॥ ६१ ॥
 इति मधुवर्गः ।

अथेक्षुवर्गमाह ।

इक्षुवो रक्तपित्तघ्ना बल्ल्या वृष्याः कफप्रदाः ।
 स्वादुपाकरसाः स्निग्धाः गुदवो मूत्रला हिमाः ॥ ६२ ॥

अविदाहो कफकरो वातपित्तनिवर्हणः ।
 वक्त्रप्रज्ञादनो हृद्यो दन्तनिय्योडितो रुसः ॥ ६३ ॥
 गुरुर्विदाहोऽधिष्ठो यान्त्रिकस्तु प्रकीर्तितः ॥ ६४ ॥
 मूलाग्रजन्तुजग्धादि पीडनान्मलसंकारात् ।
 किञ्चित्कालविष्टत्या च विकृतिं याति यान्त्रिकः ॥ ६५ ॥
 फाणितं गुर्वभिप्रायि बलकृन्मूत्रशोधनम् ।
 नातिश्लेष्मकरः स्निग्धः सृष्टमूत्रशक्तदुग्धः ॥ ६६ ॥
 पित्तघ्नो मधुरः स्निग्धो वातहासृक् प्रसादनः ।
 सपुराणोऽधिकगुणो गुडः पथ्यतेऽमी मतः ॥ ६७ ॥
 खण्डं वृषं सरं स्निग्धं स्वादुसृक् पित्तवातजित् ।
 वातपित्तप्रशमनी रक्तपित्तहरी सिता ।
 कर्षतीसारहृष्योक्ता ह्लादनीमधुशर्करा ॥ ६८ ॥
 इतीक्षुवर्गः ।

अथ मद्यवर्गमाह ।

सर्वम्पित्तकरं मद्यं मत्तं रोचनदीपनम् ।
 भेटन कफवातघ्नं हृद्यं वस्तिविशोधनम् ॥ ६९ ॥
 काशार्शो ग्रहणीरोग मूत्राघातानिलापहा ।
 स्तन्यरक्तचयहिता सुरादोपनवृंहणी ॥ ७० ॥
 रक्तपित्तकरास्तीक्ष्णाः सुक्ष्मसौवीरजातयः ।
 पित्तदाहनुदो बाह्ये स्थिताः शीतकराः स्मृताः ॥ ७१ ॥
 इति मद्यवर्गः ।

अथ मूत्रवर्गमाह ।

ग्रेमूर्धं कटुतीक्ष्णोष्णं सचास्त्वात्र वातलम् ।

लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तलं कफवातजित् ॥ ७२ ॥

शूलगुल्मोदरानाहं विरेकास्थापनादिषु ।

मूत्रप्रयोगमाध्येषु गव्यं मूत्रं प्रयोजयेत् ॥ ७३ ॥

हृत्तासोदरगुल्मेषु कुष्ठमेहविशुद्धिषु ।

आनाहशोथटीलासु पांडुरोगेषु माहिषम् ॥ ७४ ॥

कासश्वासापहं शोथकामलापांडुरोगनुत् ।

कटुतिक्तान्वितं छागं भीषन्मारुतकोपनम् ॥ ७५ ॥

हृत्तोदरहरं श्वास शोथवर्धनं ग्रहे हितम् ।

सचारतिक्तकटुकं मुष्णं वातघ्नमाविकम् ॥ ७६ ॥

दीपनं कटुतोक्ष्णं वातरेतोविकारनुत् ।

आश्लं कफहरं रुचं कृमिदद्गुविनाशनम् ॥ ७७ ॥

सतिक्तलवणं भेदि वातघ्नं पित्तकोपनम् ।

तीक्ष्णं चारे किलासे च नागमूत्रं प्रयोजयेत् ॥ ७८ ॥

गररितो विकारघ्नं तीक्ष्णं जठररोगनुत् ।

दीपनं गार्दभं मूत्रं कृमिवातकफापहम् ॥ ७९ ॥

शोथकुष्ठोदरोन्नादं मारुतकृमिनाशनम् ।

अशोघ्नं कारभं मूत्रं मानुषन्तु विषापहम् ॥ ८० ॥

इति मूत्रवर्गः ।

इति वङ्गसेने द्रवद्रव्याधिकारः समाप्तः ॥ ८० ॥

—०—

अथारिष्टाधिकारमाह ।

फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधूमांश्चुदा यथा ।

स्थूयन्ति भविष्यत्वं तथारिष्टानि पञ्चताम् ॥ १ ॥

तानि सौक्ष्म्याग्रमादाद्वा तथैवाशुव्यतिक्रमात् ।
 अज्ञानाच्च न गृह्यन्ते सुमूर्षो न त्वसम्भवात् ॥ २ ॥
 न त्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते ।
 मरणञ्चापि तच्चास्ति यत्त्वारिष्टं पुरःसरम् ॥ ३ ॥
 ध्रुवं त्वरिष्टे मरणं ब्राह्मणैस्तत्किलाऽमलैः ।
 रसायनपरैर्जाप्य तत्परैर्वा निवार्यते ॥ ४ ॥
 असिद्धिं प्राप्नुयाद्भोके प्रतिकुर्वन्गतायुषः ।
 तस्माद्यत्नेनऽरिष्टानि लक्षयेत् कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥
 वैद्या रिष्टानि सिद्ध्यर्थं भविष्यं मरणं स्फुटम् ।
 कक्षयन्त्यातुरगतं शुभञ्चाशुमेव च ॥ ६ ॥
 नक्षत्रोद्भवपीडा च यथाकालं विपच्यते ।
 अरिष्टपाकन्तु तथा ब्रुवते बह्वी जनाः ॥ ७ ॥

—०—

अथ दूतलक्षणमाह ।

दूतस्य गच्छतो वैद्य मानेतुं रोगिणः कृते ।
 प्रदीप्तं शोभनं प्रीतं सौम्यं न शकुनं शुभम् ॥ ८ ॥
 उत्तमस्यापि नीचोऽपि नीचस्याप्युत्तमो जनः ।
 नरो विद्वत्तवैष्य न दूतः शुभशूचकः ॥ ९ ॥
 पापण्ड्यायमवर्णानां सवर्णः कर्मसिद्धये ।
 त एव विपरोताः स्युर्दूताः कर्मविपक्षये ॥ १० ॥
 नपुंसकः स्त्रीबह्वी ऽनेककाय्याभिमुखकाः ।
 पाण्डुरङ्गायुधधराः पाण्डुरैतरयामभः ॥ ११ ॥
 आर्द्रजीर्णायुस्यैक मलिनोद्भूतयामभः ।
 रुध्निर्दुर वक्ता रूक्षमङ्गल्यभिधायिनः ॥ १२ ॥

न्यूनाधिकाङ्गा उद्दिग्ना विकला रौद्ररूपिणः ।
 हिन्दन्तस्तृणकाष्ठानि स्पृशन्तो नाशिकास्तनम् ॥ १३ ॥
 वस्तान्तानामिकाकेश नखरोमदशास्पृशः ।
 वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ १४ ॥
 कपालोपलभश्मास्थि तुषाङ्गारकराश्च ये ।
 विलिखन्तो महीं केचिन्मुञ्चतो लोद्गभेदिनः ॥ १५ ॥
 तैलकर्दमदिग्धाङ्गा रक्तस्वगनुलेपनाः ।
 फलं पक्वमसारम्बा गृहीत्वान्यच्च तद्विधम् ॥ १६ ॥
 नखैर्नखान्तरं वापि करेण चरणौ तथा ।
 काष्ठोपानञ्चर्महस्ता विकृता व्याधिपीडिताः ॥ १७ ॥
 वामाचारारुदन्तो वा श्वासिनो विकृतेक्षणाः ।
 याम्यादिशि प्राञ्जलयो विषमैकपदस्थिताः ॥ १८ ॥
 दैन्यगमङ्गल्यचिह्नानि दधत्तश्चापराण्यपि ।
 दक्षिणाभिमुखं देशे मलिने क्रूरकर्मणि ॥ १९ ॥
 ज्वालयन्तं पठन्तं वा क्षुरकर्मणि चोद्यतम् ।
 भूमौ शयानं नग्नं वा वेगोक्कर्गेषु वा श्चिम् ॥ २० ॥
 प्रकीर्णकेशमभ्यक्तं क्लिन्नं क्लान्तमथापि वा ।
 वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ २१ ॥
 पित्रे च चाहुतिकार्ये वा तथा चोत्पातदर्शने ।
 मध्याङ्गे चार्धरात्रे च सन्द्ययोः कृतिकासु च ॥ २२ ॥
 आर्द्राश्लेषामधामूल पूर्वासु भरणीषु च ।
 चतुर्थ्याञ्च नवम्याञ्च पञ्चम्यां सन्धिदिनेषु च ॥
 वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ २३ ॥
 खिन्नाभितप्ता मध्याङ्गे ज्वलनस्य समीपतः ।
 गर्हिताः पित्तरोगेषु दूता वैद्यमुपागताः ॥ २४ ॥

ते वातकफरोगेषु कर्मसिद्धिकरा भवताः ।

रक्तपित्तातिसारेषु प्रमेहेषु विविधतः ॥

पूजिता गन्तरीने च वैद्यं दूता उपागताः ॥ २५ ॥

शुक्लवासी गौरशुचि श्यामा वा प्रियदर्शनाः ।

स्वस्थां ज्ञातौ स्वगोष्ठे वा दूताः कार्यकराः स्मृताः ॥ २६ ॥

अथ्यङ्गाः षट्पदी दूताः शुभलेपांवरस्त्रजः ।

हृषवाजिसमारुढा शार्ङ्गवेष्टाः सुजातयः ॥ २७ ॥

मिषजः समवे प्राप्ताः सज्जीविदियेमान्विताः ।

जनसम्याः प्रयस्ता श्वादे रोगिणिः सुखहेतवः ॥ २८ ॥

यस्या प्राणान्वितो वाति सा नाडीजीवसंबुता ।

टिग्विभागोऽपि तस्यायः सजीवः सनिगद्यते ॥ २९ ॥

स्वस्य प्राग्मुखमासीनं सेने देशे शुचौ शुचिम् ।

उपसर्पन्ति ये वैद्यं ते च कार्यकराः स्मृताः ॥ ३० ॥

इति दूतलक्षणानि ।

—०—

अथ शकुनलक्षणमाह ।

वैद्यस्य गच्छतः कर्तुं चिकित्सां रोगिणो भवेत् ।

सिद्धिदं शकुनं सौम्यं दीप्तं नैव प्रयस्यते ॥ ३१ ॥

भामोदकुम्भातयव विप्रवारणगोहृपाः ।

शङ्खवर्गाश्च पूज्यन्ते प्रमथानि दर्शनं गताः ॥ ३२ ॥

स्त्रीपुविंशी सबकागौर्वहमानाः खलहताः ।

कन्द्या मत्स्या फल चामं मृष्टिकी मोदकादधि ॥ ३३ ॥

हिरण्यक्षतदूर्वाश्च खलान सुमनी नृपः ।

भूप्रगान्तोर्निनी वाजो चाप्यो हसः शिखी तथा ॥ ३४ ॥

भवन्ति दर्शनादेव भिषजः कार्यसिद्धिदाः ।
 ब्रह्मदुन्दुभिनिर्घोषः शङ्खवेणुरयस्वनाः ॥ ३५ ॥
 सिंहगोष्ठपनादोऽश्वं क्लेपितं गजघ्नं हितम् ।
 शस्तं हंसरुतं नृणां वाचश्च हृदयप्रियाः ॥ ३६ ॥
 पञ्चपुष्पफलोपेताः सक्षीरा नीरुजी द्रुमाः ।
 आश्रिता वा नभो वेश्म ध्वजतोरणवेदिकाः ॥ ३७ ॥
 दिक्षुयान्तासु बक्तारो मधुरं पृष्ठतोऽनुगाः ।
 वामा वा दक्षिणा वापि शकुनाः कर्मसिद्धये ॥ ३८ ॥
 दक्षिणादामगमनं प्रशस्तं श्वशृगालयोः ।
 भासकौशिकयोश्चैवं नोभयं शशसर्पयोः ॥ ३९ ॥
 दर्शनं वा रुतं वापि न गोधार्ककलाशयोः ।
 ग्रथर्वुदादिषु सदा हेदशब्दः प्रशस्यते ॥ ४० ॥
 विद्वद्भुदरगुल्फेषु भेदशब्दस्तथैव च ।
 रक्तपित्तातिसारेषु रुद्धशब्दश्च पूजितः ॥ ४१ ॥
 दौर्मनस्यश्च वैद्यस्य यात्रायां नैव पूजितम् ।
 वैद्यामनावसादोवा आतुरो बाध्यधीमुखः ॥ ४२ ॥
 वैद्यसंभाषणाङ्गानि कुब्जमास्तरणानि च ।
 प्रसृज्याद्वाधुनीयाद्वा करौ पृष्ठं शिरस्तथा ॥ ४३ ॥
 हस्त चाक्षय्य वैद्यस्य न्यसेच्छिरसि चोरसि ।
 न ससिद्धयति वैद्यो वा गृहे यस्य न पूज्यते ॥ ४४ ॥
 वैद्य यद्योन्मुखं पृच्छेत् त्वाष्णिं वा स्वाङ्गमातुरः ।
 भूयः सपूज्यते यस्य गृहे वैद्यः ससिद्धयति ॥ ४५ ॥
 शुभं शुभेषु दूतादिष्वशुभं ह्यशुभेषु च ।
 आतुरस्य भुवं तस्माद् दूतादींस्तच्चयेद्विषक् ॥ ४६ ॥
 इति शकुनलक्षणम् ।

अथ दुःस्वप्नानाह ।

स्वप्नाध्यायं प्रवक्ष्यामि मरणाय शुभाय च ।
 पश्यन्ति सुहृदो यांस्तु स्वप्नान् स्वयमर्थाय वा ॥ ४७ ॥
 चे हाभ्यशरारोरस्तु करमव्यालगर्दभैः ।
 मार्जारकपिशार्दूल शृगालैर्नारकेन च ॥ ४८ ॥
 तरक्षोद्दाम्नाभ्याश्च भल्लुकेन गुनापि वा ।
 घराहैर्महिषैर्वापि यो यायादक्षिणामुखः ॥ ४९ ॥
 कृष्णारक्ताम्बरधरा हसन्ती रक्तमूर्ध्वजा ।
 य चाकर्षति बद्धा स्त्री नृत्यन्ती दक्षिणामुखम् ॥ ५० ॥
 अन्त्यावसृज्यिभिर्यो वा कृष्यते दक्षिणामुखः ।
 परिष्वजेयुर्यस्यापि प्रेताः प्रव्रजितास्तथा ॥ ५१ ॥
 आभ्रायते यद्य मुहुः श्वापदैर्विकृतांननैः ।
 पिबेन्मधु च तैलं वा यो वा पङ्क्तेऽवसीदति ॥ ५२ ॥
 पङ्कप्रलसगात्रो वा नृत्येद्वापि हसेत्तथा ।
 निरम्बरद्य यो रक्तां गिरसा धारयेत् स्रजम् ॥ ५३ ॥
 यस्य वंशोनलो वापि तालो वोरसि जायते ।
 य मत्स्यादिर्गसेद्यो वा नीरुग्णो वा विलीयते ॥ ५४ ॥
 उच्चादधः पतेद्यस्तु श्वापदैर्वा निहन्त्यते ।
 झ्रियते स्तोतसा यो वा यो वा मोहमवाप्नुयात् ॥ ५५ ॥
 पराजोयेत बध्येत काकाद्यैर्वाभिभूयते ।
 पतन तारकादीनां प्रणाशं दोषचक्षुषोः ॥ ५६ ॥
 यः पश्येद्देवतानां वा प्रकम्पमवनेस्तथा ।
 यस्य हृदिर्विरेको वा दशनाः प्रपतन्ति वा ॥ ५७ ॥
 शाल्मलीं किंशुकं यूषं वल्मीकं पारिमद्रकम् ।
 पुष्पाख्यं कीबिदारं वा चितां वा योऽधिरोहति ॥ ५८ ॥

कर्पासतैलपिण्याक लोहानि लवणं तिलान् ।

लभेताश्रति बा. पक्कं मांसं यद्य पिवेत्पुराम् ॥ ५८ ॥

यः स्वप्नेषु नरः पश्ये द्रक्तृकृष्णाम्बराहतान् ।

कृष्णांश्च विकृतान्चरुणा न्दण्डपाशधरानपि ॥ ६० ॥

कुर्वतो भर्त्सनं चासं दक्षिणाशांसमाश्रितान् ।

सस्वस्थो लभते रोगं व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥ ६१ ॥

यथा स्वप्नकृति स्वप्नो विस्मृतो विहितस्तथा ।

चिन्ताकृतो दिवा दृष्टो भवन्त्यफलदास्तु ते ॥ ६२ ॥

ज्वरितानां शुनासख्यं शोषिणां कपिभिस्तथा ।

उन्मादे राक्षसैः प्रैते रपस्मारे प्रवर्त्तनम् ॥ ६३ ॥

मेहातिसारिणां तोय पानं स्नेहस्य कुट्टिनाम् ।

गुल्मेषु स्वावरोत्पत्तिः कोष्ठे मूर्ध्नि शिरोरुजि ॥ ६४ ॥

पिपासा श्वासयोन्मूर्च्छा शङ्कुल्याद्यैव भक्षणम् ।

हरिद्राभक्षणं वापि यद्ववेत्पाण्डुरोगिनः ॥

रक्तपित्ती पिवेद्यस्तु शीणितं सपिनश्यति ॥ ६५ ॥

क्रव्यादाक्रमणं श्मसानगमनं घातस्तथोच्चादधो

रक्तस्रग्वसनं बिबाहकलहौ चौरं क्षिरेको घमिः ।

बन्धं लौहकपर्दलाभनटनं पङ्कान्मसोर्मज्जनं

दन्ताच्चिग्रहपादचर्मपतनं स्वप्ने गदादिप्रदम् ॥ ६६ ॥

स्वप्नानेवविधान् दृष्ट्वा प्रातरुत्थाय यन्नवान् ।

दद्यान्मापांस्तिलाङ्गीर्हं विप्रेभ्यः काञ्चनं तथा ॥ ६७ ॥

जयेद्वापि शुभाश्वान् गायत्रीन्विपदीन्तथा ।

दृष्ट्वा तु प्रथमे यामे स्वप्नान्ध्यायात्पुनः शुभम् ॥ ६८ ॥

जपेद्दान्यतमं वेदं ब्रह्मचारी समाहितः ।

न चाऽऽचक्षीतकस्मेचिद् दृष्ट्वा स्वप्नमशीभनम् ॥ ६९ ॥

देवतायतने चैव वसेद्राचित्रयं तथा ।

विप्रांश्च पूजयेन्नित्यं दुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥ ७० ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रशस्तस्वप्नदर्शनम् ।

देवान् द्विजान् गोहृषभान् जीवतः सुहृदो नृपान् ॥ ७१ ॥

समिद्धमग्निं साधूंश्च निर्मलानि जलानि च ।

पश्येत्कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७२ ॥

युद्धे चात्मजयं दृष्ट्वा नरः सुखमवाप्नुयात् ।

तुरगो हृदिको मृद्धो मच्चिकाश्च जलौकसः ।

स्वप्ने दशन्ति यं तस्य धनारोग्ये विनिर्दिशेत् ॥ ७३ ॥

मांसं मद्यं, स्त्रजः श्वेता वासांसि च फलानि च ।

लभेत् कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७४ ॥

बीजाद्यादर्यसुखेतवसनातपवारणम् ।

गुर्वङ्गणादिभोगो यः सोऽर्यदो गदनाशनः ॥ ७५ ॥

विपुल्यापक्कमांसस्य गवादीनां विशेषतः ।

भक्षणं विड्विलेपय रोदनं मरणं निर्जम् ॥

दृष्ट्वा जागरणं कुर्यादर्यलाभाय रोगहृत् ॥ ७६ ॥

नदीनदसमुद्रांश्च क्षुभितान् कलुषोदकान् ।

तरिन् कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७७ ॥

हृषाम्बगजसोघात्र नी गैलार्द्रवनस्पतीन् ।

आरोहेद्भुव्यलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७८ ॥

इत्यादिकाच्छुभान् स्वप्नान् दृष्ट्वा फलममृद्वे ।

स्तुत्वा देवान् द्विजातिभ्यो दद्यात् स्वर्णं च भोजनम् ॥ ७९ ॥

भूयो दृष्टव्युतध्याता ऽनुभूतेष्टैकगोचराः ।

स्वप्नो निरर्यकाजीर्णो च्छिद्यभावादिसम्भवः ॥ ८० ॥

इति स्वप्नकथनम् ।

अथ बालज्ञानम् ।

अकस्माच्छीलविकृति रकस्माद्वपुरुत्तमम् ।

अकस्मादिन्द्रियोत्पत्तिः सन्निपाताग्रलक्षणम् ॥ ८१ ॥

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत् ।

तदरिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोधमे ॥ ८२ ॥

व्यञ्जनानि सुतो विद्या बुद्धिर्मदो धनं यशः ।

स्वल्पे वयसि यस्यैतत् न स जीवेच्चिरन्तरः ॥ ८३ ॥

भक्तिः शीलं स्मृतिस्त्यागो मेधाबलमनुत्तमम् ।

भजन्ति वा निवर्तन्ते षड्भिर्मासैर्मरिष्यतः ॥ ८४ ॥

शृणोति विविधान् शब्दान् यो दिव्यानसतो बहून् ।

समुद्रपुरमेघानां मसम्पत्तौ च निष्ठुरान् ॥ ८५ ॥

तान् स्वराच्चावगृह्णीते गृह्णीते घान्यशब्दवत् ।

ग्राम्यारण्यस्वनांयापि विपरीतान् शृणोति च ॥ ८६ ॥

द्विषच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति ।

यथाकस्मान्न शृणुते स गतायुरिति स्मृतः ॥ ८७ ॥

यस्तूष्णसमये शीतं मुष्णं जानाति शीतके ।

सञ्ज्ञातशीतपिण्डको यश्च दाहे न पीड्यते ॥

दाहार्तो यश्च रोमाञ्ची पञ्चत्वं तस्य निश्चितम् ॥ ८८ ॥

उष्णगात्रोऽतिमात्रश्च यश्च शीतेन वेपते ।

प्रह्वारनाभिजानाति स यायाद्यममन्दिरम् ॥ ८९ ॥

पांशुनेवावकोर्णानि यस्तु गात्राणि मन्यते ।

नानावर्णाश्च राज्यो वा यस्य गोत्रे भवन्ति हि ॥ ९० ॥

स्नातानुलिप्तं य वापि सेवन्ते नीलमल्लिकाः ।

सुगन्धिर्वाति चाकस्मान्तं वृवन्ति गतायुषम् ॥ ९१ ॥

सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धं सुरभिं तथा ।

विपरीते न गृह्णाति भावान्यथोपसेवितान् ॥ ८२ ॥
 कमोपयुक्ताश्च रसा यस्य दोषाभिद्वये ।
 यस्य दोषाग्निसात्म्यञ्च कुर्युर्मिथोपयोजिताः ॥
 यो वा रसान्नसंवेत्ति तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ८३ ॥
 नृणोऽप्यो पीडिते कथं नयो धुकधुकध्वनिम् ।
 यो वा गन्धं न गृह्णाति शान्तदोषस्य मानवः ॥ ८४ ॥
 दिवान्योतींषि यद्यापि ज्वलितानीव पश्यति ।
 चन्द्रं सूर्यमिवाचष्टे सूर्यं वा चन्द्रवर्चसम् ॥ ८५ ॥
 अमेघोपप्लवे चापि शक्रचापतडिहुणान् ।
 तडिद्वन्तो सितान् वापि निर्मले गगने घनान् ॥ ८६ ॥
 विमानयानप्रासादै र्यथ संकुलमस्वरम् ।
 यद्यानिलं मूर्त्तिमन्त मन्तरिक्षे च पश्यति ॥ ८७ ॥
 उन्मथितादिकान् भावान् कालावस्थादिशस्तथा ।
 विपरीते न गृह्णाति भावानन्याञ्च यो नरः ॥ ८८ ॥
 धूमनोहारवासोऽभि राहतामिव मेदिनीम् ।
 प्रदीप्तमिव चाकाशं यो वाष्पुतमिवाश्रयि ॥
 भूमिमष्टादशाकारां रेखाभिर्यथ पश्यति ॥ ८९ ॥
 अरुन्धतीं ध्रुवञ्चैव विष्णोरपि पदद्वयम् ।
 न पश्येत् सगतायुः स्यात्तुर्थम्याढमण्डलम् ॥ ९० ॥
 रसज्ञारुन्धती ज्ञेया घ्राणार्थं च ध्रुवं विदुः ।
 भ्रुवोर्मध्यं पदे विष्णो स्तारकामाढमण्डलम् ॥ ९१ ॥
 ज्योत्स्नादशीर्षतोऽप्येव कथायां यथ न पश्यति ।
 पश्यत्येकाङ्गहीनां वा विकृतां वान्यसत्त्वजाम् ॥ ९२ ॥
 श्वकाकफद्वन्द्वभ्राणां प्रेतानां यच्चरच्चसाम् ।
 पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृततामपि ॥ ९३ ॥

झीग्रियौ नश्यतो यस्य बुद्धिर्मेधा स्मृतिस्तथा ।

अकस्माद्य भजन्ते च स परासुरसंशयम् ॥ १०४ ॥

यस्याधरीष्ठः पतितः क्षिप्तयोर्ध्वन्तयोत्तरः ।

उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १०५ ॥

आरक्ता दग्धना यस्य श्यावा वाय पतन्ति च ।

खञ्जनप्रतिमा वापि तं गतायुपमादिशेत् ॥ १०६ ॥

अकस्माद्ददनं यस्य कुङ्कुमाभं प्रजायते ।

अङ्गकम्पो गतिभ्रंशो यदि वा स न जीवति ॥ १०७ ॥

पीड्यते कुण्डली यस्य नाभिस्थाहारबन्धना ।

दह्यते यस्य चाङ्गारः सर्वर्षेण मृतिं ब्रजेत् ॥ १०८ ॥

अकस्माद्यः क्षयः स्थूलो भवेत् स्थूलोऽथवा क्षयः ।

प्रकृतिं वा त्यजेच्छोघ्रमष्टमासात् सजीवति ॥ १०९ ॥

क्षणास्तत्रावलिप्ता च जिह्वाशूना च यस्य वै ।

कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसन् ॥ ११० ॥

कुटिला स्फुटितां वापि प्रसुमा यस्य नासिका ।

भग्ना विस्फुरिता वापि स परासुरसंशयम् ॥ १११ ॥

केशाः सीमन्तिनो यस्य संचिप्ते विनते भ्रुवी ।

लुनन्ति चाक्षिपक्ष्माणि स परासुरसंशयम् ॥ ११२ ॥

न धारयति यः शोर्षं बाह्वरत्यत्रमास्थगम् ।

नखाङ्गुलिचयं चापि दन्ताः शुष्यन्ति यस्य च ॥

एकाग्रदृष्टिर्मूर्धात्मा स परासुरसंशयम् ॥ ११३ ॥

बलवान् दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति ।

उत्थाप्यमानो बहुशः स परासुरसंशयम् ॥ ११४ ॥

उत्तानः सर्वदा शेते पादौ विकुरुते

विप्रसारणशीलो वा स परासुरसं

गीतपादकरोच्छ्वासं चित्रोच्छ्वासं यो भवेत् ।

काकोच्छ्वासं यो मर्त्यः स परासुरसंगयम् ॥ ११६ ॥

निद्रा न विद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा ।

मुह्येद्वा वक्तुकामश्च प्रत्याख्येयः स जानता ॥ ११७ ॥

खेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते ।

पुरुषस्या विपार्तस्य स परासुरसंगयम् ॥ ११८ ॥

अनन्योपद्रवकृतः शीघ्रः पादसमुद्भवः ।

पुरुषं हन्ति नारीन्तु गृह्यजो मुखजो हयम् ॥ ११९ ॥

अतोसारो ज्वरो हिक्का कर्दिःशूनाङ्गमेदनम् ।

कासिनः श्वासिनो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ १२० ॥

खेदोदाहय बलवान् हिक्का श्वासस्तथैव च ।

बलवन्तमपि प्राणैर्वियुञ्जीत न संययः ॥ १२१ ॥

श्वावा जिह्वा भवेद्यस्य सर्वश्चाक्षि निमज्जति ।

मुखं च जायते पूति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ १२२ ॥

बलमापूर्व्यतेऽसृभ्यः खिद्येते चरणौ तथा ।

चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥ १२३ ॥

अतिमात्रं लघूनि स्युर्गर्वाणि गुरुकानि च ।

यस्याकस्मात् सविज्ञेयो गन्ता वै यमशासनम् ॥ १२४ ॥

पङ्कमस्त्रवशात्तैल घृतगन्धाय ये नराः ।

पूतिगन्धाय ये चाति गन्तारस्ते यमालयम् ॥ १२५ ॥

ज्वरातिमारुह्याः स्युर् यस्यान्योऽन्यावसादिनः ।

प्रक्षीणबलमांसस्य स न शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ १२६ ॥

यूकाल्पनाटमायान्ति बलिं नाश्रन्ति वायसाः ।

येषां चापि रतिर्नास्ति गतास्ते यममन्दिरम् ॥ १२७ ॥

क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृप्ये हृद्यैर्मिदं हितैस्तथा ।

अन्नपानैर्नशाम्येते तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ १२८ ॥

प्रवाहिकाशिरःशूलं कीष्टं शूलञ्च दारुणम् ।

पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ १२९ ॥

निवर्तते महाव्याधिः सहसा यस्य देहिनः ।

उत्पद्यते च वा यस्य सहसा सविनश्यन्ति ॥ १३० ॥

न चाहारबलं यस्य दृश्यते सविनश्यति ।

नासाभङ्गो भवेद्यस्य सप्तरात्रं सजीवति ॥ १३१ ॥

चिकित्स्यमानः सम्यक् च विकारो योऽभिवर्द्धते ।

प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणन्तर्द्रतायुषः ॥ १३२ ॥

यस्याख्ये निर्गते मेद्रमुक्लिक्तमथवाच्यथा ।

अचिरान् स्नानमस्नानं मात्स्यं मूर्ध्नि चिरादपि ॥ १३३ ॥

भामण्डलं न पश्येद्यो मूर्जिते नयने नरः ।

विकृतं वाथ सम्पर्शेत्सगतायुरिति ध्रुवम् ॥ १३४ ॥

भुवौ केशाः ससीमस्ताः सावर्त्ता अपि मृत्यवे ।

कपोतो वायसो गृध्रः काकीलो यस्य मूर्ध्नी ॥

क्रव्यादो वापि लीयेत परमासायुः स उच्यते ॥ १३५ ॥

व्याप्यते पांशुर्वर्षण काकपक्षैश्च ताद्यते ।

स्वप्ने पि यो नरस्तस्य मृतिर्मासचतुष्टयात् ॥ १३६ ॥

यस्याभिषिक्तमात्रस्य हृदिनीरं प्रशुष्यति ।

पिबतोऽपि जलं शोषः स्याद्दशाहं सजीवति ॥ १३७ ॥

स्यापयित्वा करं भूमौ निरुन्ध्याकष्यमांगुलिम् ।

प्रहरेण भवेन्मृत्यु र्यद्युत्तिष्ठेदनामिका ॥ १३८ ॥

मध्याह्ने विमलेऽम्बरं दिनमणेर्विम्बं जले निर्मले ।

पश्येत्पात्रगते यदा गदयुतः पूर्णन्तदा स्याच्छुभम् ॥

हीन दक्षिणपश्चिमोत्तरपुरोभानेषु मासैः क्रमात् ।

पट्विद्वेकमितैर्दिनैश्च दशभिच्छिद्रं सधूमं दिनात् ॥ १३८ ॥

हस्तयोः पादयोश्चापि कनिष्ठायाश्च मूढजः ।

चत्वारो यस्य भिद्यन्ते तुल्यं मासात्मनृत्युभाक् ॥ १३९ ॥

कपोलमांसविच्छेदो नृत्युः स्यात्पञ्चरात्रतः ।

चक्षुर्नासिकयोर्मध्ये स्यन्दाभावेन पञ्चमे ॥ १४० ॥

नृत्युः स्यादथ गात्राणां स्तब्धत्वादेकवासरे ।

ललाटस्य त्रिरक्षाणां नाशान्नृत्युरहस्यये ॥ १४१ ॥

सप्ताहान्नृत्युरङ्गस्य शीतताईस्य चोष्णता ।

अकस्माद्दृपणं निम्नं पक्षान्नृत्युप्रदं भवेत् ॥ १४२ ॥

ग्रीवायाः स्तब्धयोर्नाड्यो विच्छेदादपि पक्षतः ।

अकस्मात्कृष्णरेखा स्या ज्जिह्वाया यदि मध्यतः ॥

दृढो वा दन्तसंदंशस्तदा नृत्युस्तिग्रावतः ॥ १४३ ॥

रात्राविन्दुवधं पश्येद्दिवानचक्रमण्डलम् ।

अमेघं विद्युतं पश्येत् स्फुरन्ती दक्षिणाग्रिताम् ॥

जले चेन्द्रधनुर्जीविद् द्वित्रिमासान् समानवः ॥ १४४ ॥

दिवाच्छायां नयः पश्ये दुष्कायाः पतनं तथा ।

हसत्पाकमयूराणां पश्येदेकत्र नेलनम् ॥ १४५ ॥

चन्द्रद्वन्द्वं द्विसूर्यं वा स्वशिरोज्वलनं तथा ।

गन्धर्वनगरं वापि वृक्षाग्रे शिखरे गिरौ ॥ १४६ ॥

पश्येत्तत्र पिशाचाणां रूपमन्यच्च भीषणम् ।

प्रकम्पितो भूयं चैव सूच्छित्तो वा भवेन्मुहुः ॥ १४७ ॥

छर्दन्मूत्रं पुरीषं वा सुवर्णरजतप्रभम् ।

प्रत्यक्षं यदि वा स्वप्ने दशमासान्सजीवति ॥ १४८ ॥

कण्ठीष्ठतालुरसना दन्तं यस्य पृथक् पृथक् ।

शुद्धलंभीक्ष्णं परमासुप्तस्य नृत्युं विनिर्दिशेत् ॥ १४९ ॥

- * सप्तर्षिचन्द्रनक्षत्र दिशां रात्रावदर्शनात् ।
 कलङ्करहित चन्द्र सूर्यं रश्मिविवर्जितम् ॥ १५० ॥
 अग्नि तेजोविहीनश्च सोमश्चाप्यपरश्मिकम् ।
 रात्रौ सूर्यं दिवाचन्द्रं स्वनेत्रे ज्वलनं तथा ॥ १५१ ॥
 नाभौ ह्रिकां गुदे राजीं वर्णम्यङ्गोपमं मुखे ।
 गण्डेऽतिरिक्तपिडकां गात्रे वर्णविचित्रताम् ॥ १५२ ॥
 हृदये स्फुरणं माशु प्रकम्पमथ तालुनि ।
 चन्द्रच्छिद्रं रविच्छिद्रं पश्येद्भूमौ तथाम्बरे ॥
 आत्मनैव हि यः पश्ये त्पश्येन्मृत्युं त्रिपक्षतः ॥ १५३ ॥
 मूत्रशुक्रपुरीषाणि तुल्यकालं पतन्ति चेत् ।
 वर्षान्मृत्युर्भवेत्यस्य भेषजादिक्रिया वृथा ॥ १५४ ॥
 कर्णयोर्यदि नो शब्दः स्तूर्जनोभ्यां निरुद्धयोः ।
 जायते प्राप्तकालस्य लक्षणं तत्समादिशेत् ॥ १५५ ॥
 सर्वाङ्गशीतलत्वञ्च दृशाहान्मरणं वदेत् ॥ १५६ ॥
 कर्दमे पांशुदेशे वा पुरतः पृष्टतोऽपि वा ।
 खण्डपादोदये नूनं मृत्युर्मासचतुष्टयात् ॥ १५७ ॥
 श्रुतिबाधिर्यतो मृत्युः सप्ततुर्मासान्तरे भवेत् ।
 स्वस्येन्द्रियस्य पततो मृत्युर्मासत्रयाद्भवेत् ॥ १५८ ॥
 भ्रूमध्ये ज्योतिषो दृष्टौ द्विमासाद्यमदर्शनम् ।
 एकमासात्तथा मृत्युर्धर्षणे गोलकक्षयात् ॥ १५९ ॥
 जिह्वाया अपहृत्तौ च दशाहान्मृत्युसंगमः ।
 दक्षिणाशां गतां छाया मात्मनो यदि पश्यति ॥
 अथैव मृत्युरस्माकमिति पश्ये दनित्यताम् ॥ १६० ॥
 स्रस्यस्य स्थूलजिह्वा चेन्निःस्पर्शा रसवर्जिता ।
 यावत्पञ्चदिनं मृत्युः पञ्चाशद्विसेऽथ वा ॥ १६१ ॥

अम्लादित्वञ्च रसतो नीलादित्वञ्च वर्णतः ।

विकारे शुक्रमूत्राणां परमासाद्यमदर्शनम् ॥ १६२ ॥

युगत्रिपञ्चधारं वा बच्चावर्त्तिसुगन्धिं वा ।

मूत्रं यस्य भवेत्तस्य मृत्युः परमासमध्यतः ॥ १६३ ॥

स्थिरत्वेपि स्वदेहस्य तच्छाया चञ्चला यदि ।

चतुर्मासाद्भवेन्मृत्युरित्यागमविदो विदुः ॥ १६४ ॥

ज्वरो यस्य तु पूर्वाह्ने शष्पकासश्च दारुणः ।

बलमांसविहीनस्य दुर्लभन्तस्य जीवितम् ॥ १६५ ॥

ज्वरो यस्याऽपराह्णे तु श्लेष्मकासश्च दारुणः ।

प्रक्षीणबलमांसस्य दुर्लभन्तस्य जीवितम् ॥ १६६ ॥

प्रतैः सह पित्तैश्च स्वप्ने यः कथ्यते शुना ।

सघोरं ज्वरमासाद्य सद्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥ १६७ ॥

सहसा ज्वरसन्ताप स्तृणामूर्च्छा बलक्षयः ।

विक्षेपणं च सन्धीनां मुमूर्षुरपजायवे ॥ १६८ ॥

गोसर्गं बद्धना यस्य स्नेदः प्रच्यवते मृगम् ।

लेपज्वरोपसृष्टस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १६९ ॥

देवद्विजसुहृद्देव गुरुन्यो द्वेष्टि यस्य वा ।

मज्जन्यसु शङ्खच्छ्लेष रैतांसि स न जीवति ॥ १७० ॥

इत्यादिलक्षणैर्ज्ञात्वा मरणं समुपस्थितम् ।

लोकद्वयसुखप्राप्त्यै धर्मीमेव समाचरेत् ॥ १७१ ॥

सौम्याकारेन्द्रियः श्रोतो दृष्टा बक्ता च विन्दति ।

सम्यक् स्पर्शं रसं गन्धं रोगीरोगाद्यनुप्यते ॥ १७२ ॥

स्वल्पो ज्वरो भवेद्यस्य जिह्वा भवति कोमला ।

उष्णौ पादौ तथा पाणी सरीरौ सुखमाप्नुयात् ॥ १७३ ॥

ज्वरः स्नेदविहीनः स्यात् कण्ठः कफविचर्जितः ।

नास्त्वामार्गगतिः प्राणो यस्य रोगो स जीवति ॥ १७३ ॥
 भवेन्निद्रा सुखं यस्य स्मृति भ्रंशो न जायते ।
 नाकारवर्णहानिः स्यात् स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ १७४ ॥
 यस्यादरो भवेद्द्वेष्टे प्रीतिर्भयपण्यकर्मणि ।
 पथ्ये रुचिः स्पृहा धर्मं स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ १७५ ॥
 इत्यादिलक्षणे वैद्यः साध्यं विज्ञाय रोगिणम् ।
 आयुर्वेदोक्तमार्गेण चिकित्सां सम्यगाचरेत् ॥ १७६ ॥
 इति कालज्ञानम् ।

—०—

अथ नेत्रपरीक्षामाह ।

रौद्रे रूक्षे च धूम्राभे नयने स्तब्धचञ्चले ।
 तथाभ्यन्तरक्लृणाभे भवती वातरोगिणः ॥ १७७ ॥
 पित्ररोगे तु पीताभे नीले वा रक्तवर्णके ।
 सन्तप्ते भवतो दीपं सहेते नाबलोकितुत् ॥ १७८ ॥
 ज्योतिर्हीने च शृङ्गाभे जलपूर्णं सगौरवे ।
 मन्दाबलोकने नेत्रे भवत कफकोपतः ॥ १७९ ॥
 तन्द्रामोहाकुले श्यामे निर्भुग्ने रूक्षरौद्रके ।
 रक्तवर्णे च भवतो नेत्रे दोषत्रयोदये ॥ १८० ॥
 दोषत्रये भवेच्चिह्नं नेत्रयोस्तु त्रिदोषजम् ।
 दोषद्वयप्रकोपे तु भवेद्दोषद्वयोद्भवम् ॥ १८१ ॥
 एकदृष्टी यदा नेत्रे स्वाधीनेन च रोगिणः ।
 उन्मीलिते च भवत क्षणादेव निमीलिते ॥ १८२ ॥

बहुवर्णं च भवती विकृतानेकचेष्टिते ।

नेत्रे मृत्युं कथयतो रोगिणो नात्र सशयः ॥ १८४ ॥

सौम्यदृष्टीप्रसन्नाभे प्रकृतिस्ये मनोरमे ।

नेत्रे कथयतः शीघ्रं रोगशान्तिञ्च रोगिणः ॥ १८५ ॥

इति नेत्रपरीक्षा ।

—०—

अथ मुखपरीक्षा ।

वातकोपे मुखं रुचं स्तब्धं वक्त्रं गतप्रभम् ।

पित्तकोपे भवेद्रक्तं पीतं वा परितप्तकम् ॥ १८६ ॥

कफकोपे गुरुस्निग्धं भवेच्छूनमिवाननम् ।

धिलिङ्गञ्च त्रिदोषे स्या द्रिलिङ्गञ्च द्विदोषके ॥ १८७ ॥

इति मुखपरीक्षा ।

—०—

अथ जिह्वापरीक्षा ।

वातकोपे प्रसृप्ते व स्फुटिता मधुरा भवेत् ।

स्तब्धावर्णेन हरिता जिह्वालालां प्रसृजति ॥ १८८ ॥

पित्तकोपे तु रक्ताभा तित्ता दग्धेव जायते ।

जिह्वादाहान्विता विदा कण्ठकैरिव सर्वतः ॥ १८९ ॥

कफोदये भवेज्जिह्वा स्थूला गुर्वी विलेपनो ।

सुस्थूलकण्ठकोपेता क्षारा बहु कफावहा ॥ १९० ॥

दोषद्वये द्विदोषोक्त लक्षणा रसना भवेत् ।

सर्वचिह्ना त्रिदोषे स्या द्विकृतानेकलक्षणा ॥ १९१ ॥

इति जिह्वापरीक्षा ।

नासामार्गगतिः प्राणो यस्य रोगो स जीवति ॥ १७३ ॥
 भवेन्निद्रा सुखं यस्य स्मृति भ्रंशो न जायते ।
 नाकारवर्णहानिः स्यात् स रोगो जीवति ध्रुवम् ॥ १७४ ॥
 यस्यादरो भवेद्द्वेष्टे प्रीतिर्भेषज्यकर्मणि ।
 पथे रुचिः सृष्टा घर्मे स रोगो जीवति ध्रुवम् ॥ १७५ ॥
 इत्यादिलक्षणेभ्यः साध्यं विज्ञाय रोगिणम् ।
 आयुर्वेदोक्तमार्गेण चिकित्सां सम्यगाचरेत् ॥ १७६ ॥
 इति कालज्ञानम् ।

—०—

अथ नेत्रपरीक्षामाह ।

रौद्रे रूक्षे च धूम्रामे नयने स्तब्धचञ्चले ।
 तथाभ्यन्तरक्षणां भवतो वातरोगिणः ॥ १७७ ॥
 पित्तरोगी तु पीतामे, नीले वा रक्तवर्णके ।
 सन्तप्तो भवतो दीपं सहेते नावलोकितुत् ॥ १७८ ॥
 ज्योतिर्हीने च शक्तामे जलपूर्णं सगौरवे ।
 मन्दावलोकने नेत्रे भवतः कफकोपतः ॥ १७९ ॥
 तन्द्रामोहाकुले श्यामे निर्भुग्ने रूक्षरौद्रके ।
 रक्तवर्णे च भवतो नेत्रे दोषत्रयोदये ॥ १८० ॥
 दोषत्रये भवेच्चिह्नं नेत्रयोस्तु त्रिदोषजम् ।
 दोषद्वयप्रकोपे तु भवेद्दोषद्वयोद्भवम् ॥ १८१ ॥
 एकदृष्टौ यदा नेत्रे स्वाधीनेन च रोगिणः ।
 उन्मीलिते च भवतः क्षणादेव निमीलिते ॥ १८२ ॥
 सततोन्मीलिते नेत्रे यदा नित्यं निमीलिते ।
 विलुप्तकणतारे च भ्रमदूस्त्रोग्रतारके ॥ १८३ ॥

बहुवर्णं च भवती विस्तृतानेकचेष्टिते ।

नेत्रे मृत्युं कथयती रोगिणी नात्र संशयः ॥ १८४ ॥

सौम्यदृष्टीप्रसन्नामे प्रकृतस्थे मनोरमे ।

नेत्रे कथयतः शीघ्रं रोगशान्तिञ्च रोगिणः ॥ १८५ ॥

इति नेत्रपरीक्षा ।

—०—

अथ मुखपरीक्षा ।

वातकोपे सुखं रुच्यं स्तब्धं धक्तं गतप्रभम् ।

पित्तकोपे भवेद्रक्तं पोटं वा परितप्तकम् ॥ १८६ ॥

कफकोपे गुरुस्निग्धं भवेच्छूनमिवाननम् ।

द्विलिङ्गञ्च त्रिदोषे स्या द्विलिङ्गञ्च द्विदोषके ॥ १८७ ॥

इति मुखपरीक्षा ।

—०—

अथ जिह्वापरीक्षा ।

वातकोपे प्रसृप्तेव स्फुटिता मधुरा भवेत् ।

स्तब्धावर्णेन हरिता जिह्वालालां प्रमुञ्चति ॥ १८८ ॥

पित्तकोपे तु रक्ताभा तित्ता दग्धेव जायते ।

जिह्वादाहान्विता विषा कण्टकैरिव सर्वतः ॥ १८९ ॥

कफोदये भवेज्जिह्वा स्थूला गुर्वी विलेपनी ।

सुस्थूलकण्टकोपेता क्षारा बहु कफावहा ॥ १९० ॥

दोषद्वये द्विदोषोक्त लक्षणा रसना भवेत् ।

सर्वचिह्ना त्रिदोषे स्या द्विकृतानेकलक्षणा ॥ १९१ ॥

इति जिह्वापरीक्षा ।

—०—

पानीयेन समं मूत्रं सुपाकसहितं भवेत् ।
 रक्तवातेन रक्तं स्यात् कौसुमं रक्तपित्ततः ॥ २०३ ॥
 तैलतुल्यं भवेन्मूत्रं नित्यं सहजपित्ततः ।
 कफप्रकृतितो मूत्रं तुल्यं पल्लववारिणा ॥ २०४ ॥
 वातप्रकृतितो मूत्रं नीराभं बहुलं भवेत् ।
 अधो बहुलमारक्तं मूत्रमालोक्यते यदा ॥
 वदन्ति तदतीसार लिङ्गं तल्लिङ्गवेदिनः ॥ २०५ ॥
 जलोदरसमुद्भूतं मूत्रं घृतकण्ठीपमम् ।
 आमवातवशान्मूत्रं तक्रतुल्यं प्रजायते ॥ २०६ ॥
 मलेन पीतवर्णञ्च बहुलञ्च निगद्यते ।
 पीतवर्णं यदा मूत्रं तैलतुल्यं सवुद्बुदम् ॥
 तदप्यसाध्यमादिष्टं सङ्घिर्वैद्यकवेदिभिः ॥ २०७ ॥
 अजीर्णेन भवेन्मूत्रं श्वेतञ्चापि तथोरुणम् ।
 अजामूत्रसमं मूत्रं मजीर्णत्वाच्च जायते ॥ २०८ ॥
 मूत्रन्तु कृष्णतां याति क्षयरोगे तथा किल ।
 क्षयरोगे यदा श्वेतं मसाध्यं तद्विनिर्दिशेत् ॥ २०९ ॥
 पीतमच्छञ्च जायेत मूत्रं पित्तोदये सति ।
 समधातोः पुनः कूपं जलतुल्यञ्च कथ्यते ॥ २१० ॥
 ऊर्ध्वन्नीलमधोरक्तं रुधिरं प्रजायते ॥ २११ ॥
 प्रवर्तते यदा मूत्रं स्निग्धं तैलसमप्रभम् ।
 आक्षारादुदरन्तस्थं वृद्धिं याति तदा किल ॥ २१२ ॥
 ऊर्ध्वमपीतमधोरक्तं मूत्रं चेद्भोगिणस्तदा ।
 पित्तप्रकृतिसंभूतं सन्निपातं वदेद्भिषक् ॥ २१३ ॥
 यस्येक्षुरसंकाशं मूत्रं नेत्रे च पिञ्जरे ।
 रसाधिक्यं विजानीया क्षुब्धं तस्य निर्दिशेत् ॥ २१४ ॥

अथ मूत्रपरीक्षा ।

रात्रेद्यतुर्थयामस्य घटिकानां चतुष्टये ।

उत्थाप्य रोगिणं वैद्यी मूत्रोत्सर्गन्तु कारयेत् ॥ १८१ ॥

आद्यन्तधारां सन्त्यज्य मध्यमां काचभाजने ।

कारयेत्कांस्थपात्रे वा कुर्यात्पात्रं पटावृतम् ॥ १८२ ॥

ततः सूर्योदये जाते प्रकाशे सति भाजने ।

स्थितं मूत्रसमालोक्ष्य कुर्यात्तस्य परीक्षणम् ॥ १८३ ॥

वाते तोयसमं मूत्रं रूचं बहुतरं भवेत् ।

रक्तवर्णम्वेत्यित्ते पीतं वा, स्वल्पमेव च ॥ १८४ ॥

कफे श्वेतं घनं मूत्रं म्लिग्धं सञ्जायते तथा ।

द्विदोषे इन्द्रचिह्नं स्यात् सर्वलिङ्गं त्रिदोषजे ॥ १८५ ॥

सुलक्षितं गृहीतं यन्मूत्रं घर्मे निधाय तत् ।

तैलविन्दुं क्षिपेत्तत्र निश्चले वैद्यसत्तमः ॥ १८६ ॥

जायन्ते बुद्बुदा यत्र विकारः सोऽस्तिपित्तलः ।

रूक्षञ्च श्यामलच्छाद्यं वाते मूत्रं प्रजायते ॥ १८७ ॥

तरीमुपरिवध्नाति तैलविन्दुस्तथात्र वै ।

मूत्रं श्लेष्मणि जायेत समं पल्लववारिणा ॥ १८८ ॥

मूत्रेण सादेमिलित स्तैलविन्दुः प्रजायते ।

सिद्धार्थतैलसदृशं मूत्रं वै पित्तमारुते ॥ १८९ ॥

श्वेतधारा भ्रूधारा पीतधारा तदा ज्वरः ।

रक्तधारा ज्वरे दीर्घे क्षणा च मरणाय वै ॥ २०० ॥

श्लेष्मवाते भवेन्मूत्रं काष्ठीकेन समन्तथा ।

पांडुरं श्लेष्मपित्ते च पीतञ्चैव परीक्षयेत् ॥ २०१ ॥

सन्निपाते च यन्मूत्रं क्षणं तल्लक्षयेद्बुधः ।

काष्ठीकेन समं मूत्रं भातुलुङ्गममप्रभम् ॥ २०२ ॥

पानोयेन समं मूत्रं सुपाकसहितं भवेत् ।
 रक्तवातेन रक्तं स्यात् कौसुमं रक्तपित्ततः ॥ २०३ ॥
 तैलतुल्यं भवेन्मूत्रं नित्यं सहजपित्ततः ।
 कफप्रकृतितो मूत्रं तुल्यं पल्लववारिणा ॥ २०४ ॥
 वातप्रकृतितो मूत्रं नीराभं बहुलं भवेत् ।
 अधो बहुलमारक्तं मूत्रमालोक्यते यदा ॥
 वदन्ति तदतीसार लिङ्गं तल्लिङ्गवेदिनः ॥ २०५ ॥
 जलोदरसमुद्भूतं मूत्रं घृतकण्ठीपमम् ।
 आमवातवशान्मूत्रं तक्रतुल्यं प्रजायते ॥ २०६ ॥
 मलेन पीतवर्णञ्च बहुलञ्च निगद्यते ।
 पीतवर्णं यदा मूत्रं तैलतुल्यं सवुद्दुदम् ॥
 तदप्यसाध्यमादिष्टं सद्भिर्वैद्यकवेदिभिः ॥ २०७ ॥
 अजीर्णेन भवेन्मूत्रं श्वेतञ्चापि तथोरुणम् ।
 अजामूत्रसमं मूत्रं मजीर्णत्वाच्च जायते ॥ २०८ ॥
 मूत्रन्तु कृण्वतां याति क्षयरोगे तथा किल ।
 क्षयरोगे यदा श्वेतमसाध्यं तद्विनिर्दिशेत् ॥ २०९ ॥
 पीतमच्छञ्च जायेत मूत्रं पित्तोदये सति ।
 समधातोः पुनः कूपं जलतुल्यञ्च कथ्यते ॥ २१० ॥
 ऊर्ध्वनीलमधोरक्तं रुधिरं प्रजायते ॥ २११ ॥
 प्रवर्तते यदा मूत्रं स्निग्धं तैलसमप्रभम् ।
 आहारादुदरन्तस्य वृद्धिं याति तदा किल ॥ २१२ ॥
 ऊर्ध्वम्पीतमधोरक्तं मूत्रं चैद्रोगिणस्तदा ।
 पित्तप्रकृतिसंभूतं सन्निपातं वदेद्विपक्वं ॥ २१३ ॥
 यस्येक्षुरसंकाशं मूत्रं नेत्रे च पिञ्जरे ।
 रसाधिक्यं विजानीया हृद्जनं तस्य निर्दिशेत् ॥ २१४ ॥

रक्तं स्वच्छञ्च यन्मूत्रं तज्ज्वराधिक्यं लक्षणम् ।

धूस्रवर्णं यदा मूत्रं ज्वराधिक्यं तदादिशेत् ॥ २१५ ॥

कृष्णमच्छञ्च जानीर्यात् सन्निपातज्वरोद्भवम् ।

उपरिष्ठात्पीतवर्णं मधःकृष्णं सवुद्बुदम् ॥

मूत्रं प्रसूतदोषेण संशयो नात्र कश्चन ॥ २१६ ॥

आपीतफेनरक्ताद्य मसितेक्षुरसोपमम् ।

पित्ते कफेऽनिले मूत्रे निरामे च ज्वरे भवेत् ॥ २१७ ॥

यदा प्रसारमाप्नोति तैलं क्षेमं तदादिशेत् ।

विन्दुरूपं यदा तैल मसाध्यत्वाय रोगिणः ॥ २१८ ॥

प्रसरत्पूर्वदिग्भागे पश्चिमे वा तथोत्तरे ।

तैलविन्दुस्तदा रोग विमुक्तिं रोगिणी दिशेत् ॥ २१९ ॥

दक्षिणस्यामथैशाने आग्नेये नैऋते तथा ।

वायव्ये चापि दिग्भागे प्रसरन्मृत्सूचकः ॥ २२० ॥

निमज्जति यदा मूत्रे भ्रमद्वा नैव सर्पति ।

तदारिष्टं विजानीयां रोगिणी नात्र संशयः ॥ २२१ ॥

तेलप्रसारणान्मूत्रे विक्षताकारमूर्त्तयः ।

हलकूर्मखरोद्गादे भवन्ति मृत्सूचकाः ॥ २२२ ॥

यदि मूत्रगते तैले हंसछत्रादिकं भवेत् ।

रोगोरोगविमुक्तः स्यात्तदायुश्चाप्नुयाच्चिरम् ॥ २२३ ॥

इति मूत्रपरीक्षा ।

इति वैङ्गसेनेऽरिष्टाधिकारः समाप्तः ॥ ८१ ॥

—०—

अथ क्षीपनपाचनद्रव्यलक्षणाधिकारमाह ।

पचेन्नामं वज्रिह्वद्य क्षीपनं तद्यथा मिमिः ।

पचत्यामन्नं यत् कुर्यात् दनलं तदि पाचनम् ।

नागकेसरवह्निद्या चित्रो दीपनपाचनः ॥ १ ॥

न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषांस्तृयोदशान् ।

समो करोति यज्ज्ञेयं शमनन्तद्व्याऽभ्युत्ता ॥ २ ॥

कृत्वा पाकमलानां यद्वित्वा बन्धमधो नयेत् ।

तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ ३ ॥

पक्कव्यं यदपक्वं च श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ।

नयत्यधः स्तंसनन्तद्व्या स्यात् कृतमालकः ॥ ४ ॥

मलादिकमवहं यद्वहं वा पिण्डितमग्नैः ।

भित्वाध पातयति त द्वेदनं कटुको यथा ॥ ५ ॥

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतामयेत् ।

रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं द्रवता यथा ॥ ६ ॥

अपक्वपित्तशेषाणां बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत् ।

वमनं तद्वि विज्ञेयं मदनम्य फलं यथा ॥ ७ ॥

म्यनाद्वह्निर्नयेदूर्ध्वं मधो वा मलमक्षयम् ।

टेहे मंगोधनन्तद्व्या द्वेददालीफलं यथा ॥ ८ ॥

श्लिष्टान् कफादिकान्दोषान् नुन्मूलयति यद्वलात् ।

द्वेदनन्तद्व्या चारो मरिचानि गिलाजतु ॥ ९ ॥

धातून्मलान्वा देहस्य विगीष्योक्षेत्तयेच्च यत् ।

लेपनन्तद्व्या क्षौद्रं श्रीरमुष्णं यथा यथाः ॥ १० ॥

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्भवशोपकम् ।

आग्निं गच्छ यथा गुग्गुली जीरकं मज्जपिप्पली ॥ ११ ॥

रोक्ष्याच्छेत्यात्कपायत्वा मधुपाकाद्य यद्वयेत् ।

भ्राश्र्मर्हं भ्राश्र्मन्ताम्या यथा टुटुकवत्सकी ॥ १२ ॥

रमायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् ।

यथाऽभ्युत्ता रुदन्ती च गुग्गुलुय हरीतकी ॥ १३ ॥

यस्माद्ब्रह्माद्ब्रवेत् स्त्रीषु हर्यो वाजीकरश्च तत् ।

यथा नागबलाद्याः स्युर्वीजश्च कपिकच्छुजम् ॥ १४ ॥

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलश्च तदुच्यते ।

यथाश्वगन्धामुशली शर्करा च शतावरी ॥ १५ ॥

प्रवर्तकानि कथ्यन्ते जनकानि च रेतसः ।

दुग्धं मापाद्य भक्ष्यात् फलमज्जाऽऽमलानि च ॥ १६ ॥

प्रवर्तनी स्त्रीशुक्रस्य रचनं वृद्धतोफलम् ।

जातीफलं स्तम्भनं स्यात् कालिन्दं चयकारि च ॥ १७ ॥

देहस्य सूक्ष्मक्षिद्रेषु विशेत्तत्सूक्ष्ममुच्यते ।

तदयथा सैन्धवं क्षौद्रं निम्बस्तौलं रुवूझवम् ॥ १८ ॥

पूर्वं व्याप्याखिलं कार्यं ततः पाकश्च गच्छति ।

व्यवायि तदयथाभङ्गा क्रिने चाहिमसुझवम् ॥ १९ ॥

सन्धिवन्धास्तु शिथिलान् यत्करोति विकाशि तत् ।

विश्लेथौजश्च घातुभ्यो यथाक्रमुककौद्रवौ ॥ २० ॥

वृद्धिं लुम्पति यद्ब्रव्यं मदकारि तदुच्यते ।

तमोगुणप्रधानश्च यथा मद्यसुरादिकम् ॥ २१ ॥

व्यवायि च विकाशि स्यात् सूक्ष्मक्षेदि महावहम् ।

आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २२ ॥

निजवीर्येण यद्ब्रव्य स्त्रोतोभ्यो दोषसञ्चयम् ।

निरस्यति प्रमाथि स्यात्तदयथा मरिचं वचा ॥ २३ ॥

पैच्छिभ्याह्नौरवाद्ब्रव्य रुद्धा रसवहाः शिराः ।

धत्ते यद्दौख्यं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २४ ॥

इति वङ्गसेने दोषनपाचनादिलक्षणाधिकारः

समाप्तः ॥ ८२ ॥

वङ्गसेनीत्यत्तिः ।

श्रीकृष्णः पृथिवीं निजाघ्निकमलाऽरोगीकृतां हा यदा ।
 त्यक्त्वा धामनिजं गतस्तत इयं मद्यल्पकालान्तरे ॥
 जातारोगवती पुनर्भयकरा दृष्ट्वा तदा ता महम् ।
 नभैवाश्रुजनिं गदाधरगृहे चक्रे च नोरोगिकाम् ॥ १ ॥
 भूमावागमनञ्च मे सुभिषजो ज्ञास्यन्ति सर्वे कथम् ।
 इत्येवं सुविचार्य वै क्षितितले स्वीया मिमांसहिताम् ॥
 लोकानां हितकाम्यया स्वयशसे सुस्थापयित्वा ततः ।
 वैद्यानां गभुताकरोञ्च गमनं याम्याश्रमं मे कृतम् ॥ २ ॥
 अगस्तिसंहितेयं प्राक् ख्याता मल्लभृतस्ततः ।
 गदाधरगृहे जन्म लब्ध्वा मे पुनः संस्कृता ॥ ३ ॥
 वङ्गसेन इति नाम्ना विख्यातस्तदनन्तरम् ।
 अग्नोऽयं सर्वसिद्धान्त सारः शीघ्रफलप्रदः ॥ ४ ॥

इति श्रीमहैद्यगदाधरात्मजसहैद्यविद्याचार्ये

श्रीवङ्गसेनविरचितो वङ्गसेनाह्वयो ग्रन्थः

समाप्तः ॥